एक ही राष्ट्रीय दुःखों से चिढ़े हुए तरुण हृदयों की आवश्यकता होती है और सौभाग्य से राजाराम महाराज को उस समय ऐसे ही नवयुवक मिले भी थे; और इसी कारण वे सफलतापूर्वक औरंगज़ेब से दो हाथ भी कर सके, और अन्त में महाराष्ट्र से मोगल-सत्ता का उच्चाटन कर सके। उस समय के नवयुवकों ने अपने सर्वस्व पर पानी छोड़ कर और राष्ट्र तथा धर्म के लिए "शहीद" बन कर—आत्मबलिदान कर के—महाराष्ट्र पर आई हुई उस आपत्ति को दूर किया; और "मराठा" इस नाम का क्या महत्व है सो संसार को दिखला दिया। धन्य है उन नवयुवकों को और उनको जन्मनेवाली उनकी माताओं को!

एक ओर यदि बादशाह मन ही मन यह सोच कर आनन्दित हो रहा था कि मराठों के राजा संभाजी का वध कर डालने के कारण उसके अनुयायियों का तेज मारा गया है और महाराष्ट्र अब निष्कंटक होगया है तो दूसरी ओर अपने राजा का क्रूर रीति से वध होने के कारण मराठों के मन में उसका बदला लेने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई थी। और उसमें भी मरते समय संभाजी ने हिन्दूधर्म के विषय में जो उग्र और ज्वाज्वल्य अभिमान प्रकट किया उसको देखकर तो मराठों के मन में उनके विषय में अत्यन्त प्रेम और आदर उत्पन्न हुआ और चारों ओर यही भावना उत्पन्न होगई कि बादशाह ने संभाजी को नहीं मरवाया, किन्तु हमारे अत्यन्त प्यारे सुहृद का वध करवाया है। राजाराम के शासनकाल की सारी घटनाओं में देशप्रेम और प्रतीकार-बुद्धि दिखलाई देती है! इन दो प्रबल मनोवृत्तियों के आधार पर ही यह इतिहास स्थापित किया गया है। और उसे पढ़ते समय यह बात ध्यान में रक्खे बिना उसका मर्म और संगति मालूम नहीं हो सकती। संभाजी का वध करवा डालने के बाद थोड़े ही दिनों में बादशाह ने मराठी सत्ता के केन्द्र रायगढ़ किले को जीतने का निश्चय किया और तदनुसार उसने जंजीरे के सिद्दी को आज्ञा भी भेजी। यह समाचार जब मराठों के जासूस ने रायगढ़ में आकर बतलाया तब सब लोग बड़े चिन्तातुर हुए। राजाराम किले में नज़रकैद थे। सो येसूबाई ने उन्हें तुरन्त ही छोड़ दिया। बाद को राजाराम को यह सलाह पड़ी कि सारे राजनीतिज्ञों और सरदारों को जमा कर के उनकी सम्मति से अगला सब प्रबन्ध करना चाहिये। सब दरबारी लोगों ने भी उनके इस विचार का अनुमोदन किया। इसके बाद सब लोगों के पास, रायगढ़ में तुरन्त उपस्थित होने के लिए, आज्ञापत्र भेजे गये। नियमानुसार दरबार किया गया। संभाजी की गद्दी पर बाल-शिवाजी की स्थापना हुई थी और राजारामसहाराज उनके "कारभारी" के स्थान पर थे। दीवानखाने की एक ओर सिंहासन के पास चिक के पर्दे में येसूबाई बैठी थीं। दरबार खूब भरा हुआ था। ऐसी [illegible] स्थिति में रायगढ़ पर पहले कभी दरबार नहीं हुआ। सारे मानकरी, सरदार, दरकदार लोग यथास्थान होने के बाद राजारामसहाराज ने उन्हें सब को बुलाने का कारण बतलाया, और गद्गद स्वर से सब के सामने यह प्रार्थना की कि यदि आप लोगों को हिन्दुत्व पर कुछ भी श्रद्धा हो, '[illegible]' की यदि कुछ अभिमान हो, और 'दादा' की मृत्यु का बदला लेना हो तो आप सब लोग एक [illegible] से और एकदम से, एक प्रकार से, शिवाजी की रक्षा करें। राजारामसहाराज के मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द दरबार में बैठे हुए देशभक्तों के हृदय में बिजली का काम कर रहा था और धनाजी, सन्ताजी, इत्यादि वीरों की भुजाओं को फड़का रहा था; तथा दरबार के अनेक राजनीतिज्ञों की बुद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न कर रहा था। अन्त में महाराज ने सब को यही सम्मति दी कि आप सब लोग किले में रह कर मोगल सेना का चकनाचूर उड़ा दो। इस पर भिन्न भिन्न दरबारियों ने अनेक प्रकार की सम्मति दी। अन्त में येसूबाई से पूछने पर उन्होंने कहाः—"लड़के की उम्र छोटी है, राज्य तो गया ही है, ऐसी दशा में आप सब पराक्रमी शूरवीर दरबारी एकमत होकर राजाराम साहब को साथ लेकर बाहर चले जाइये। और यदि कहें कि लड़का बाहर जा कर रहे, तो इसके लिए रायगढ़ से अच्छी और दूसरी जगह दिखती नहीं है। इसलिए लड़के को और हमको बन्दोबस्त के साथ यहीं रहने दीजिए। आप सब राजारामसाहब के साथ बाहर जाकर सेना एकत्र कर के यदि राज्य का बन्दोबस्त रक्खोगे तो सारी बात बनी रहेगी। यहां कोई गड़बड़ नहीं होने पावेगी। और यदि कुछ गड़बड़ी भी हुई तो यह किला दुरुस्त, मजबूत है, वर्ष छै मास टिकाव धरेगा। तब तक आप सब लोग मिल कर किसी जगह बन्दोबस्त कर ही रक्खेंगे; फिर हम लोगों को भी निकाल ले जाइयेगा। उस समय यदि शत्रु की प्रबलता अधिक देखी जावगी तो खूब तैयारी कर के राज्यसंस्थापन भी किया जा सकेगा। परन्तु इसी समय यदि सारा कुटुम्ब बाहर हो जायगा तो एकदम ही सब को शत्रु के हस्तगत होना पड़ेगा। कुछ पार नहीं पड़ेगा। इस लिए राजारामसाहब और उनके साथियों को मिल कर चले जाना चाहिए। मोह में आ कर यदि सभी एक जगह रहेंगे तो सारी बात यहीं की यहीं बिगड़ जायगी और सबों को फँसना पड़ेगा।" इस गम्भीर विचार और इस उत्कट निःस्वार्थभाव को तो देखिये! मराठों के इतिहास में येसूबाई के समान नीतिज्ञ, निःस्पृह और राजकारणपटु स्त्री दूसरी नहीं मिलती। ऐसी परिस्थिति में यदि दूसरी कोई अल्प बुद्धि वाली स्त्री होती तो पहले अपने और अपने लड़के की रक्षा का प्रबन्ध पहले किया होता। परन्तु उस दूरदर्शी देवी ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि इस समय [illegible] की अपेक्षा राजाराम की आवश्यकता मराठी राज्य को विशेष है और इसी कारण उसने यह आग्रह प्रकट किया कि राजाराम और सब कर्तृत्ववान् पुरुष यहां किले में रहकर लड़ते हुए न पड़े रहें। अर्थात् मोगल सेना का सारा आक्रमण उसने अपने ऊपर स्वीकार कर लिया।

देखिये यदि सलाह सब को पसन्द नहीं, इस कारण राजाराम ने भी बड़ी कठिनाई से उसके लिए [illegible] दी और किले के [illegible] पूरी पूरी व्यवस्था कर तथा कुछ विश्वसनीय पुरुषों को वहीं रख कर, अन्य लोगों के साथ वे बाहर चले गये। [illegible]

सब मराठे [illegible] यहां लाये गये और बादशाह की [illegible] उनको बतलाई गई।

आज्ञा जापान ने चीन से ले ली और यह चेंचुप्रवेश होने के बाद १९१५ के मार्च में एक खरीता भेजा जिसमें लिखा था कि, "पूर्व मंगोलिया की सब खानों का ठेका जापान को देना चाहिए। और वहां जापानी लोगों की बस्ती करने का अधिकार मिलना चाहिए।" इस खरीते को जापान ने इस युक्ति से भेजा कि जिससे चीन को उसे मान्य ही करना पड़ा। अगस्त १९१६ में इस भाग में जापानी लोगों की ऐसी बस्तियां हो गईं कि जिनको सम्हालना चीनी अधिकारियों के लिए अत्यन्त कठिन हो गया। उस समय वहां कुछ लड़ाई दंगे भी हो गये और इस लिए जापानी सरकार को अपने लोगों की संरक्षा के लिए बड़ी चिन्ता होने लगी और उन्हों ने एकदम जापानी सेना उस ओर रवाना की, और साथ ही चीन के पास एक खरीता भेज कर यह प्रकट किया कि, "मंचूरिया और पूर्व मंगोलिया प्रान्तों के किसी भाग में भी शान्ति-रक्षा के योग्य प्रबन्ध का कार्य जापान को सौंपा जाय।" यह खरीता १० अक्टूबर को भेजा गया; और उसकी शब्दरचना ऐसी सैनिक डांट की थी कि कदाचित् जापान को उक्त प्रान्तों में शान्ति रक्षा का अधिकार मिल भी गया होगा और यही नहीं बल्कि जापान ने उसके अनुसार उन प्रान्तों में अपनी सेना भी रख दी होगी।

अरब की राष्ट्रीय हलचल।

जैसे मा बाप में झगड़ा होने पर लड़का इस कठिनाई में पड़े कि मा का पक्ष लूं या बाप का—बस यही हाल इस समय मुसलमानी समाज का हो रहा है। इस्लामी लोगों को इस समय धार्मिक दृष्टि से जिस पक्ष को स्वीकार करने का मोह हो सकता है इसके विरुद्ध पक्ष का सहारा लिये बिना देशहित साधना भी उनके लिए कठिन हो रहा है। धर्म और देशाभिमान में जो यह झगड़ा मचा रक्खा है उसके कारण मुसलमान समाज का मन एक प्रकार से "संदूट" सा हो गया है, अथवा तुलसीदास जी के कथनानुसार—

> धर्म-सनेह-उभय-मति-घेरी।
> भइ गति साँप-छछूंदर केरी॥

का सा हाल हो रहा है। क्रिश्चियन लोगों ने यह निश्चित कर लिया है कि धर्म और वैदिक व्यवहार का सम्बन्ध नहीं है। पर इस्लामी धर्म का यह हाल नहीं है। इस धर्म की हवा जहां एक बार शरीर में लगी कि फिर उसके पराक्रम के आगे सारी पृथ्वी भी क्षुद्र मालूम होने लगती है। आज तक हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और कास्पियन समुद्र से लेकर अटलांटिक महासागर तक प्रायः सारे प्रदेश में उन्होंने अपना हरा झंडा फहराया है। पर यह सारा वृत्तान्त 'धार्मिक युग' में हुआ। गत शताब्दी में 'राष्ट्रीय युग' का प्रारम्भ होने से मुसलमान लोग पीछे पड़ गये। अब यह निश्चित होने का समय आ गया है कि धार्मिक दृष्टि से जमा हुआ समाज का वह प्रभाव, मिटता है या थोड़े बहुत अन्तर से वह राष्ट्रीय विचारों का पोषक होता है। इस समय का अनुभव तो यही बतलाता है कि इस्लामी लोगों में तुर्की और अरबी दो पक्ष उत्पन्न हो गये हैं; और तुर्की लोगों ने साम्राज्य-मत का पुरस्कार किया है। चूंकि तुर्की का बादशाह कितनी ही शताब्दियों से सम्पूर्ण मुसलमान लोगों का धर्मगुरु माना जाता रहा है, इसलिए तुर्की का आग्रह है कि राजकीय दृष्टि से भी इन लोगों को हमारा ही वर्चस्व स्वीकार करना चाहिए। परन्तु अरब लोग सोचते हैं कि तुर्क लोग अन्य लोगों से सुधार में पीछे हैं, और चूंकि वर्तमान महायुद्ध में उन्होंने जर्मनी का पक्ष लिया है, इसलिए अन्त में वे पराभूत भी होंगे-इसी कारण उन लोगों ने "इस्लाम हमारा, मक्का हमारा" के न्याय से अब यह प्रकट कर दिया है कि हमें न तुर्की का राजकीय आधिपत्य स्वीकार है और न धार्मिक सत्ता ही स्वीकार है।

यह घोषणा यद्यपि अभी हाल ही की है, तथापि अरब लोगों की राष्ट्रीय हलचल का जन्म कोई दस वर्ष पहले हुआ था। सन् १९०५ में मुस्तफा कमाल पाशा नामक एक नीति-चतुर इजिप्शियन ने पेरिस में 'अरबी राष्ट्रीय मंडल' की स्थापना की। इस मंडल का उद्देश्य अरब लोगों को तुर्कों के पंजे से छुड़ा कर उनका स्वतंत्र राष्ट्र बनाना है। इस राष्ट्र की पूर्वपश्चिम सीमा लालसागर और टैग्रीस नदी तक तथा दक्षिणोत्तर सीमा भूमध्यसागर और ओमन के समुद्र तक रखी गई है। इससे हमारे पाठकों को मालूम होगा कि इस भावी अरब राष्ट्र की सीमा वर्तमान अरबिस्तान या अरबदेश ही नहीं है; किन्तु तुर्की साम्राज्य का बहुत सा वह भाग भी उसमें सम्मिलित किया गया है कि जिसमें अरब लोगों की बस्ती अधिक है। अर्थात् सीरिया, लिबेंट और पैलिस्टाइन प्रान्त भी अब अरब राष्ट्र के अंग बनाये जायँगे। अरबी-राष्ट्र-मंडल ने विचार किया है कि मदीना शहर जिस भाग में बसा हुआ है उस प्रान्त का एक स्वतंत्र राज्य बना कर वहां के सुलतान के अधिकार में सम्पूर्ण अरबी मुसलमानों का धर्मगुरुत्व दिया जाय; अर्थात् अरबलोग तुर्की बादशाह को छोड़ कर मदीना के राजा को खलीफा मानें; लिबेंट की स्वतंत्रता कायम रखी जाय; और पैलिस्टाइन के जो स्थान क्रिश्चियन लोगों को पवित्र मालूम होते हों वे वर्तमान स्थिति में ही सुरक्षित रहे जायँ। इस काल्पनिक अरबी राज्य की लोकसंख्या लगभग १ करोड़ २० लाख होगी और उसमें से ८५ प्रति सैकड़ा लोग मुहम्मदी धर्म के होंगे। नजीब अजूरी बे नामक अरब राष्ट्रभक्त ने सन् १९०५ में एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसके अनुसार तो इस राज्य में मेसोपोटेमिया तक का समावेश करना पड़ेगा और पैलिस्टाइन पर ज्यूइश लोगों का जो वर्चस्व है उसे बिलकुल ही हटा देना पड़ेगा। इस ग्रन्थकार का मत है कि इस सारे प्रदेश का एक ही स्वतंत्र, उन्नतिशील और सभ्य अरबी राज्य बनाना चाहिए तथा उसमें अरबी साहित्य, कलाकौशल और विज्ञान इत्यादि का पुनरुद्धार करना चाहिए। इन विचारों का प्रभाव बहुत से अरब लोगों के मन पर हुआ है और "तरुण अरब" नाम से एक प्रबल पक्ष का नवीन अस्तित्व हुआ है। सीरिया प्रान्त में इस पक्ष की बड़ी प्रबलता है।

जब तुर्किस्तान में "तरुण तुर्कों" का विजय हुआ और वहां राज्यक्रान्ति हुई तब "तरुण अरबों" की आकांक्षाएं भी एकदम बढ़ चलीं। उन्होंने समझा कि "बस अब अपनी इच्छा के अनुसार अरब राष्ट्र को स्वराज्य मिलने के दिन निकट आ गये।" तुर्की पार्लिमेंट में बहुत से अरब सभासद थे। उन्होंने वहां सभा में अपना आग्रह प्रकट किया। परन्तु तुर्क लोगों की अभिलाषा कुछ दूसरी ही थी। उन्होंने अरबों को स्वराज्य के अधिकार देने से तो इनकार किया ही, किन्तु उलटे यह आग्रह किया कि अरबों को तुर्की सभ्यता स्वीकार करके उसीके गीत गाना चाहिए। जर्मन लोग सदैव यह बड़ाई मारते रहते हैं कि उनकी 'कल्चर' (सभ्यता) सारे संसार में विजयी होने वाली है। जान पड़ता है, तुर्कों ने भी यह उन्हीं का अनुकरण किया है। अरबों की मुख्य शिकायत तो यही है कि तुर्क सभ्य नहीं हैं। जिस पर भी उनके ऊपर जबरदस्ती तुर्की सभ्यता लादना अवश्य ही एक हास्यजनक बात है। अस्तु। अरबों ने जब देखा कि तुर्कों से उन्हें कुछ भी सहानुभूति नहीं मिलती तब वे अत्यन्त निराश होकर स्वराज्य प्राप्त करने पर उतारू हुए; और इसकी राष्ट्रीय हलचल में विलक्षण जोर आने लगा। सन् १९१३ में पेरिस में अरबों की कांग्रेस हुई; और इसके बाद महायुद्ध का अवसर मिलते ही उन्होंने तुर्की सत्ता को अलग कर के अब स्वतंत्रतापूर्वक स्वराज्य का झंडा खड़ा किया है।

एतक़ादख़ाँ को किले पर हमला करने के लिए भेजा। एतक़ादख़ाँ अपनी विस्तृत सेना के साथ मंज़िल दर मंज़िल करते हुए किले के सन्मुख आ पहुँचा; और जगह जगह मोर्चा बांध कर किले को चारों ओर से घेर लिया। इसके सिवाय उसने ऐसी भी सावधानी रखी कि जिससे किले पर रसद न पहुँचने पाये, परन्तु किले पर अन्न-सामग्री इत्यादि पहले ही से बहुत सी एकत्र कर दी गई थी, जिससे इस विषय में मराठों को कोई चिन्ता नहीं थी। एतक़ादख़ाँ समझता था कि मुग़लों के हमले के आगे किला बहुत दिन तक नहीं ठहर सकेगा। परन्तु एक एक दो दो कर के दस मास बीत गये, और किला हाथ आने के कोई लक्षण नहीं देख पड़े। बादशाह एतक़ादख़ाँ को बराबर भिड़िया रहा था कि किला जल्दी सर करो और तदनुसार उसने भी अपना कोई उपाय उठा नहीं रखा; परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। जैसे दर्या में तूफ़ान उठने से लहरें किसी चट्टान में आकर टक्कर मारें और फिर लौट जाँय; तथा चट्टान में कुछ असर न हो; बस यही हाल किले पर मुग़लों के हमलों का हुआ। प्रत्येक बार उन हमलों को मराठों ने अत्यन्त शूरता से व्यर्थ कर दिया। परन्तु किले पर अन्नसामग्री की कमी दिन/दिन भासने लगी और इधर एतक़ादख़ाँ भी शिथिल होने लगा, विजय किसी को भी प्राप्त होता हुआ दिखाई नहीं देता था। बादशाह यह देख-कर बहुत तड़फड़ा रहा था कि उसकी इतनी विस्तृत सेना अभी तक किले को हस्तगत नहीं कर सकी। और किले के मराठे भी यह देख कर बहुत हताश हो रहे थे कि मोगल सेना पर धावा कर के उनको हटाने के लिए राजाराम तथा अन्य सरदारों की ओर से कुछ भी प्रयत्न नहीं होता। इस प्रकार दोनों पक्ष शिथिल हो कर बैठ रहे थे। वास्तव में रायगढ़ के इस घेरे की गणना इतिहास के प्रसिद्ध घेरों में होनी चाहिए। अस्तु। सरल मार्ग से जब एतक़ाद-ख़ाँ ने कार्यसिद्धि होती हुई नहीं देखी तब अन्यमार्गों से उसने अपना कार्य करने की युक्ति चलाई; और उसके सौभाग्य तथा मराठों के दुर्भाग्य से उसकी युक्ति सफल भी होगई। किले की रक्षा करनेवाले सूर्याजी, उद्धव, खंडेराव, इत्यादि नौकरों के विश्वास पर भूल कर येसूबाई अपने अधीर हृदय को ढाँढ़स बँधाती थीं। इस विचार से कि, किला आज नहीं तो कल शत्रु के हाथ में जायगा, खंडेराव और उद्धव, इन दो सरदारों का धैर्य और शौर्य द्विगुणित होगया; परन्तु इस निराशा ने सूर्याजी का मन कलुषित कर डाला; और उसे स्वार्थी तथा स्वामिद्रोही बना दिया। सूर्याजी वाई प्रान्त के देशमुख घराने का था। उसे एतक़ादख़ाँ ने ज्यों ही उस प्रान्त की 'देशमुखी' देने का वचन दिया त्यों ही वह अपने स्वामी के साथ विश्वासघात कर के किले को शत्रु के हाथ में देने के लिए तैयार होगया। उसके निश्चय के अनुसार एक दिन किले पर हमला हुआ; और मराठे लोग लड़ने लगे, इतने ही में सूर्याजी ने चुपके से किले का दरवाज़ा खोल दिया। फिर क्या था, मोगल सैन्य टिड्डीदल की तरह किले के अन्दर घुस पड़ी। उस समय येसूबाई तथा खंडेराव और उद्धव के मन की क्या दशा हुई होगी सो पाठकगण ही सोच लें। येसूबाई को ब्रह्मांड याद आने लगा। मराठे वीरों ने ज्यों ही यह देखा कि किला शत्रु के हाथ में आगया त्यों ही वे सब वीर शिवाजी और येसूबाई के राजमहल की ओर दौड़े, और महल को चारों ओर से घेर कर शत्रु के साथ भिड़ना प्रारम्भ किया। परन्तु दस मास की कठिन लड़ाई से छीजी हुई मराठी सेना उस मोगल सैन्यसागर से कहां तक सामना कर सकती थी? खंडेराव अपने साथियों सहित यमराज की तरह लड़ रहा था। उसके चेहरे पर निराशाजन्य निश्चिन्तता स्पष्ट झलक रही थी। संताप से उसके नेत्र अंगार की तरह लाल होगये थे और ऐसा जान पड़ता था कि उस स्वामिद्रोही, बेईमान, विश्वासघाती सूर्याजी को मानो भस्मसात् कर डालना चाहता है। येसूबाई और शिवाजी को विधर्मी लोगों के हाथ में देते हुए उसके प्राणों पर आ बनी। परन्तु जब मुसलमान सरदार ने क़ुरान की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा की कि उनका बाल भी बांका न होने पायेगा और न उन्हें धर्मभ्रष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा तब सब मराठे लोगों ने हथियार नीचे रख दिये; और किले पर मुसलमानों का चांद चमकने लगा। एतक़ादख़ाँ ने किला लूट लिया और शिवाजी का सिंहासन तोड़ कर, बहुत दिन की एकत्र की हुई सम्पत्ति ऊंटों पर लदवा कर बादशाह के पास भिजवा दी। ये ऊंट और येसूबाई, शिवाजी, खंडेराव, उद्धवजी, इत्यादि क़ैदी जब बादशाह की छावनी में पहुँचे तब वह एतक़ादख़ाँ पर बहुत ख़ुश हुआ और उसे "ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ" का ख़िताब भी दिया एतक़ादख़ाँ ने सूर्याजी को बादशाह से मिलाया। इस पर बादशाह ने यह आग्रह किया कि जब तुम मुसलमान होगे तब तुम्हें वाई की देशमुखी दी जायगी। अन्त में सूर्याजी ने मुसलमानी धर्म की दीक्षा ले ली। इस प्रकार सूर्याजी ने केवल स्वामिद्रोह ही नहीं किया; किन्तु धर्मद्रोह भी किया और यह भी किस लिए! सिर्फ़ वाई की सड़ी सी देशमुखी के लिए! रायगढ़ को लड़ा कर सूर्याजी ने यदि शिवाजी की गद्दी की रक्षा के भाव लिया की होती तो कुछ यह बात नहीं थी कि राजाराम ने उसे देशमुखी न दी होती अथवा वे उसे देने में समर्थ न थे। परन्तु उस पापी नराधम को यह सात्विक विचार सूझता ही कैसे? जैसे कोई पत्थर का टुकड़ा पर्वत पर से फिसलता हुआ नीचे गड्ढे ही में जा कर थमता है उसी प्रकार वह स्वयं तो नीतिभ्रष्ट हुआ ही; किन्तु अपनी भार्या पीढ़ी को भी परधर्म के नरकगर्त में डाला। उसके पाप का प्रायश्चित्त इसी लोक में उसे मिल गया। अर्थात् शाहूमहाराज का जब छुटकारा हुआ और वे सितारे पहुँचे तब उन्होंने सूर्याजी को पकड़वा मँगाया और उसकी अनेक प्रकार से निर्भर्त्सना कर के उसका वध किया गया। पाठको! यह दृश्य देखिये!

और यह दृश्य भी देखिये! रायगढ़ फतेह होने के बाद एक दिन बादशाह अपने दरबार में क़ाज़ी, फ़क़ीर, अमीर, उमराव, इत्यादि लोगों से वार्तालाप करते हुए बैठा था कि इतने ही में किसी ने उसे सलाह दी कि शाहू को मुसलमान बनाना चाहिए। बादशाह को भी यह सलाह बहुत पसन्द पड़ी। फिर क्या था, यह समाचार बात की बात में सारी छावनी में फैल गया। और बादशाह की प्यारी बेटी ज़ेबुन्निसां बेगम के कान तक भी यह बात पहुँची। ज़ेबुन्निसां बड़ी चतुर, प्रेमिनी और विचारशील थी। छत्रपति शिवाजी महाराज जब दिल्ली गये थे, तब, कहते हैं, कि यह उन पर मोहित होगई थी और अनेक बार इसने अपनी यह इच्छा प्रदर्शित की थी कि महाराज मुसलमानी धर्म स्वीकार कर के उससे विवाह करें। पर जब उसने देखा कि ऐसा होना किसी प्रकार सम्भव नहीं तब उसने आमरण अविवाहित रहने का प्रण किया और इस प्रण का उसने अन्त तक प्रतिपालन भी किया। इस प्रकार की ऐतिहासिक दन्तकथा है। वह झूठ हो या सच, पर इतना अवश्य है कि येसूबाई और बालशिवाजी जिस दिन से क़ैद होकर छावनी में आये तभी से वह इन लोगों की बड़ी फ़िक्र रखती थी—कहते हैं कि ज़ेबुन्निसां बेगम ने इन लोगों का डेरा अपने पास ही रखा था; और शिवाजी को वह अपने पेट के लड़के की तरह रखती थी। अस्तु। येसूबाई को जब यह मालूम हुआ कि बादशाह के दरबार में शिवाजी को धर्मभ्रष्ट करने का विचार होरहा है तब तो उसका हृदय काँप उठा और ऐसा मौका न आने देने के लिए उन्होंने ज़ेबुन्निसां से प्रार्थना की। उसने भी उन्हें धैर्य दिलाया। इधर बादशाह की आज्ञा के अनुसार शिवाजी को धर्मभ्रष्ट करने की सब तैयारी की गई; और उसे क़ाज़ी लोग उस जगह ले गये जहां यह कृत्य होना था। अब येसूबाई बहुत व्याकुल हुई और चिल्ला चिल्ला कर रोने लगी। ज़ेबुन्निसां ने किसी न किसी तरह उसे धीर बँधाया और स्वयं बादशाह के पास पहुँची; तथा अपने पिता से शिवाजी को वहां लाने का कारण पूछा। इस पर ज्यों ही बादशाह के मुख से यह शब्द निकले कि शिवाजी को मुसलमान बनाने की यह सारी तैयारी है, त्यों ही वह एकदम नागिनी के समान कुपित होकर बोली:—"क्या ऐसे अबोध और असहाय बालक को जबरदस्ती भ्रष्ट करने के लिए आपने यह सारी तैयारी कर रखी है? आपको किसने ऐसी सम्मति दी? ऐसे पापी चांडाल को देहदण्ड ही मिलना चाहिए। ऐसा क्षुद्र विचार आपके मन में कदापि नहीं आ सकता, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। यदि आप को मुसलमानी धर्म का प्रचार ही करना है तो उसके लिए अनेक लोग हैं; इस अबोध बच्चे पर क़ुरान की गदा क्यों चलाते हो? एतक़ादख़ाँ के हाथ में जब ये लोग आये तब उसने क़ुरान पर हाथ रख कर क्या प्रतिज्ञा की थी सो क्या आपको मालूम है! फिर आज यह उस प्रतिज्ञा का भंग क्या किया जाता है? और

आज्ञा जापान ने चीन से ले ली और यह चंचुप्रवेश होने के बाद १९१५ के मार्च में एक खरीता भेजा जिसमें लिखा था कि, "पूर्व मंगोलिया की सब खानों का ठेका जापान को देना चाहिए। और वहां जापानी लोगों को बस्ती करने का अधिकार मिलना चाहिए।" इस खरीते को जापान ने इस युक्ति से भेजा कि जिससे चीन को उसे मान्य ही करना पड़ा। अगस्त १९१६ में इस भाग में जापानी लोगों की ऐसी हस्तियां हो गईं कि जिनको सम्हालना चीनी अधिकारियों के लिए अत्यन्त कठिन हो गया। उस समय वहां कुछ लड़ाई दंगे भी हो गये और इस लिए जापानी सरकार को अपने लोगों की संरक्षा के लिए बड़ी चिन्ता होने लगी और उन्हों ने एकदम जापानी सेना उस ओर रवाना की, और साथ ही चीन के पास एक खरीता भेज कर यह प्रकट किया कि, "मंचूरिया और पूर्व मंगोलिया प्रान्तों के किसी भाग में भी शान्ति-रक्षा के योग्य प्रबन्ध का कार्य जापान को सौंपा जाय।" यह खरीता १० अक्टूबर को भेजा गया; और उसकी शब्दरचना ऐसी सैनिक ढांट की थी कि कदाचित् जापान को उक्त प्रान्तों में शान्ति-रक्षा का अधिकार मिल भी गया होगा और यही नहीं बल्कि जापान ने उसके अनुसार उन प्रान्तों में अपनी सेना भी रख दी होगी।

अरब की राष्ट्रीय हलचल।

जैसे मा बाप में झगड़ा होने पर लड़का इस कठिनाई में पड़े कि मा का पक्ष लूं या बाप का-बस यही हाल इस समय मुसलमानी समाज का हो रहा है। इस्लामी लोगों को इस समय धार्मिक दृष्टि से जिस पक्ष को स्वीकार करने का मोह हो सकता है उसके विरुद्ध पक्ष का सहारा लिये बिना देशहित साधना भी उनके लिए कठिन हो रहा है। धर्म और देशाभिमान में जो यह झगड़ा मचा रखा है उसके कारण मुसलमान समाज का मन एक प्रकार से "संमूढ" सा हो गया है, अथवा तुलसीदास जी के कथनानुसार—

धर्म-सनेह-उभय-मति-घेरी।
भइ गति सांप-छछूंदर केरी॥

का सा हाल हो रहा है। क्रिश्चियन लोगों ने यह निश्चित कर लिया है कि धर्म और ऐहिक व्यवहार का सम्बन्ध नहीं है। पर इस्लामी धर्म का यह हाल नहीं है। इस धर्म की हवा जहां एक बार शरीर में लगी कि फिर उसके पराक्रम के आगे सारी पृथ्वी भी क्षुद्र मालूम होने लगती है। आज तक हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और कास्पियन समुद्र से

लेकर अटलांटिक महासागर तक प्रायः सारे प्रदेश में उन्होंने अपना हरा झंडा फहराया है। पर यह सारा वृत्तान्त 'धार्मिक युग' में हुआ। गत शताब्दी में 'राष्ट्रीय युग' का प्रारम्भ होने से मुसलमान लोग पीछे पड़ गये। अब यह निश्चित होने का समय आ गया है कि धार्मिक दृष्टि से जमा हुआ, समाज का वह प्रभाव, मिटता है या थोड़े बहुत अन्तर से वह राष्ट्रीय विचारों का पोषक होता है। इस समय का अनुभव तो यही बतलाता है कि इस्लामी लोगों में तुर्की और अरबी दो पक्ष उत्पन्न हो गये हैं; और तुर्की लोगों ने साम्राज्य-मत का पुरस्कार किया है। चूंकि तुर्की के बादशाह कितनी ही शताब्दियों से सम्पूर्ण मुसलमान लोगों के धर्मगुरु माने जाते रहे हैं, इसलिए तुर्कों का आग्रह है कि राजकीय दृष्टि से भी हम लोगों का हमारा ही वर्चस्व स्वीकार करना चाहिए। परन्तु अरब लोग सोचते हैं कि तुर्क लोग अन्य लोगों से सुधार में पीछे हैं, और चूंकि वर्तमान महायुद्ध में उन्होंने जर्मनों का पक्ष लिया है, इसलिए अन्त में वे पराभूत भी होंगे-इसी कारण उन लोगों ने "इत्ताय इस्तारा, नस्ताय स्तारा" के न्याय से अब यह प्रकट कर दिया है कि हमें न तुर्कों का राजकीय आधिपत्य स्वीकार है और न धार्मिक सत्ता ही स्वीकार है।

यह घोषणा यद्यपि अभी हाल ही की है, तथापि अरब लोगों की राष्ट्रीय हलचल का जन्म कोई बीस वर्ष पहले हुआ था। सन् १८९५ में मुस्तफा कमाल पाशा नामक एक नीति-चतुर इजिप्शियन ने पेरिस में 'अरबी राष्ट्रीय मंडल' की स्थापना की। इस मंडल का उद्देश्य अरब लोगों को तुर्कों के पंजे से छुड़ा कर उनका स्वतंत्र राष्ट्र बनाना है। इस राष्ट्र की पूर्वपश्चिम सीमा लालसागर और टैग्रीस नदी तक तथा दक्षिणोत्तर सीमा भूमध्यसागर और ओमन के समुद्र तक रखी गई है। इससे हमारे पाठकों को मालूम होगा कि इस भावी अरब राष्ट्र की सीमा वर्तमान अरबिस्तान या अरब-देश ही नहीं है; किन्तु तुर्की साम्राज्य का बहुत सा वह भाग भी उसमें सम्मिलित किया गया है कि जिसमें अरब लोगों की बस्ती अधिक है। अर्थात् सीरिया, लिबैंट और पैलिस्टाइन प्रान्त भी अब अरब राष्ट्र के अंग बनाये जायँगे। अरबी-राष्ट्र-मंडल ने विचार किया है कि मदीना शहर जिस भाग में बसा हुआ है उस प्रान्त का एक स्वतंत्र राज्य बना कर वहां के सुलतान के अधिकार में सम्पूर्ण अरबी मुसलमानों का धर्मगुरुत्व दिया जाय; अर्थात् अरबलोग तुर्की बादशाह को छोड़ कर मदीना के राजा को खलीफा मानें, लिबैंट की स्वतंत्रता कायम रखी जाय, और पैलिस्टाइन के जो स्थान क्रिश्चियन लोगों को पवित्र मालूम होते हों वे वर्तमान स्थिति में ही सुरक्षित रखे जाँय। इस काल्पनिक अरबी राज्य की लोकसंख्या लगभग १ करोड़ २० लाख होगी और उनमें से ८५ प्रति सैकड़ा लोग मुहम्मदी धर्म के होंगे। नजीब अज़ूरी बे नामक अरब राष्ट्रभक्त ने सन् १९०५ में एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसके अनुसार तो इस राज्य में मेसोपोटेमिया तक का समावेश करना पड़ेगा और पैलिस्टाइन पर ज्यूइश लोगों का जो वर्चस्व है उसे बिलकुल ही हटा देना पड़ेगा। इस ग्रन्थकार का मत है कि इस सारे प्रदेश का एक ही स्वतंत्र, उन्नतिशील और सभ्य अरबी राज्य बनाना चाहिए तथा उसमें अरबी साहित्य, कलाकौशल और विज्ञान इत्यादि का पुनरुद्धार करना चाहिए। इन विचारों का प्रभाव बहुत से अरब लोगों के मन पर हुआ है और "तरुण अरब" नाम से एक प्रबल पक्ष का नवीन अस्तित्व हुआ है। सीरिया प्रान्त में इस पक्ष की बड़ी प्रबलता है।

जब तुर्किस्तान में "तरुण तुर्क" का विजय हुआ और वहां राज्यक्रान्ति हुई तब "तरुण अरबों" की आकांक्षाएं भी एकदम बढ़ चलीं। उन्होंने समझा कि "बस अब अपनी इच्छा के अनुसार अरब राष्ट्र को स्वराज्य मिलने के दिन निकट आ गये।" तुर्की पार्लिमेंट में बहुत से अरब सभासद थे। उन्होंने भरी सभा में अपना आनन्द व्यक्त किया। परन्तु तुर्क लोगों की अभिलाषा कुछ दूसरी ही थी। उन्होंने अरबों को स्वराज्य के अधिकार देने से तो इनकार किया ही, किन्तु उलटे यह आग्रह किया कि अरबों को तुर्की सभ्यता स्वीकार कर के उसीके गीत गाना चाहिए। जर्मन लोग सदैव यह बड़ाई मारते रहते हैं कि उनकी 'कल्चर' (सभ्यता) सारे संसार में विजयी होने वाली है। जान पड़ता है, तुर्कों ने भी यह उन्हीं का अनुकरण किया है। अरबों की मुख्य शिकायत तो यही है कि तुर्क सभ्य नहीं हैं। फिर पर भी उनके ऊपर ज़बरदस्ती तुर्की सभ्यता लादना अवश्य ही एक हास्यजनक बात है। अस्तु। अरबों ने जब देखा कि तुर्कों से उन्हें कुछ भी सहानुभूति नहीं मिलती तब वे अत्यन्त निराश होकर चलवा करने पर उतारू हुए; और उनकी राष्ट्रीय हलचल में विलक्षण जोर आने लगा। सन् १९१३ में पेरिस में अरबों की कांग्रेस हुई, और उसके बाद महायुद्ध का अवसर मिलते ही उन्होंने तुर्की सत्ता को दमन कर के अब स्वतंत्रतापूर्वक स्वराज्य का झंडा खड़ा किया है।

परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्र स्वराज्य का झंडा भी टिकना कठिन हो गया है। बेलजियम, सर्विया, ग्रीस, इत्यादि राष्ट्रों की जो दुर्दशा हुई उस पर विचार करने से इन अरबों को अब यह मालूम होने लगा है कि पूर्ण स्वातंत्र्य की अपेक्षा किसी न किसी प्रबल साम्राज्य का आश्रय लेने से ही स्वत्व की रक्षा अधिक अच्छी तरह हो सकती है। जब बड़े बड़े साम्राज्यों का भी कुछ ठिकाना नहीं है; और जब कि ऐसा जान पड़ता है कि मानो 'मित्र-संघ' और 'जर्मन संघ' यही दो भेद संसार में रहेंगे तब, ऐसे कलियुग में, यदि अरब लोग अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाने लगें तो उनका कौन ईश्वर पार करेगा? कालमाहात्म्य सदैव किसी न किसी प्रकार का सिर पर रहता ही है। उसके अनुरोध से जो चलेगा वह तरेगा और जो उसके विरुद्ध चलने का प्रयत्न करेगा वह चारो खाने चित्त गिरेगा। तात्पर्य यह है कि इधर कुछ दिनों से अरब के राष्ट्रभक्तों ने स्वतंत्र स्वराज्य का विचार छोड़ कर साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य का आदर्श अपने सामने रखा है। परन्तु यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि कौन से साम्राज्य का आश्रय करना उनके लिए श्रेयस्कर होगा। अँग्रेज़, फ्रेंच, जर्मन और रूसी, इन चार यूरोपियनों से अरबों की भलाई-बुराई का सम्बन्ध लगा हुआ है। बगदाद रेलवे तैयार करने में जर्मनी ने नेतृत्व स्वीकार किया और भूमध्यसागर से ईरान की खाड़ी तक के प्रदेश में अपने अड्डे जमाने के लिए जर्मन लोग प्रयत्न कर रहे हैं। इधर अँगरेज़ लोग यह प्रयत्न कर रहे हैं कि ईरान की खाड़ी से लेकर स्वेज़ नहर तक, अरबिस्तान का सारा किनारा अपने वर्चस्व में रखा जाय। रूस का सम्बन्ध केवल आर्मीनिया से है; और इसलिए अरबों को उसका उपसर्ग विशेष नहीं पहुँचेगा। हाँ, फ्रेंचों का सम्बन्ध इस भाग से अन्य सब की अपेक्षा अधिक है; इसलिए फ्रांस की ही ओर अरब लोगों का विशेष झुकाव है। सीरिया प्रान्त में शिक्षा और रेलवे का खूब प्रचार करके फ्रेंचों ने वहां के लोगों को सभ्य बना दिया। और चूंकि फ्रेंच लोग लोकसत्ताक राज्य के अभिमानी हैं, इस लिये अरब के स्वराज्यवादियों के उद्देश्य को वे सदा ही प्रोत्साहन देते रहे हैं। तरुण तुर्कों की कांग्रेस पेरिस में जो हुई उसका भी कारण यही है। अरब देशभक्तों का यह मतान्तर देखना हो तो "नदं मुर्रा" नामक रशियन अरब महाशय का चरित्र पढ़ना चाहिए। पहले जो लोग बड़ी ज़ोरदार भाषा में यह प्रतिपादन करते थे कि अरबों को स्वतंत्र स्वराज्य स्थापित करना चाहिए उनमें यह बहुत प्रसिद्ध लेखक था। पर जब से वर्तमान महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तब से इसकी भी राय बदल गई है। अभी हाल में उसने एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिख कर यह प्रतिपादन किया है कि अरबिस्तान और सीरिया फ्रेंच साम्राज्य के अंग बनाये जायें; और फ्रेंच लोग उन प्रान्तों को स्वराज्य के [illegible] देवें। यह पुस्तक फ्रेंच और अरब, इन दोनों लोगों को बहुत [illegible] आई है। इस पुस्तक की पहली आवृत्ति फ्रांस में बात की [illegible] में बिक गई। और इसी पुस्तक के विचारों से प्रभावित [illegible] कर कोई ७-८ सौ अरब फ्रेंचों की ओर से लड़ने के लिए सेना [illegible] भरती हो गये। फ्रेंचों ने आज तक अरबों की उन्नति के लिए जो प्रयत्न किया है उसके बदले में ये लोग आज फ्रांस की रणभूमि में प्राण अर्पण करने के लिए तैयार हुए हैं। ये स्वयं-सैनिक कहते हैं कि, "हम इस समय फ्रांस की सहायता में प्राणों की आहुति देंगे और इसके बदले में हमें विश्वास है कि अरबों का कल्याण करने में फ्रेंच लोग कभी त्रुटि न करेंगे।" इधर तो ये हमदर्द [illegible] लोग अत्यन्त कुपित हुए हैं। उधर के समाचारपत्रों से [illegible] पड़ता है कि तुर्कों ने सीरिया के कितने ही नागरिकों, व्यापा[illegible] और धनवान लोगों को पकड़ कर दमास्कस और बेरूट [illegible] में [illegible] फांसी पर लटका दिया। कहते हैं कि कम से कम दो सौ लोगों को तुर्कों ने राजद्रोह के अपराध में [illegible] प्रायश्चित दिया और ये लोग फ्रांस का जयजयकार म[illegible] हुए आनन्दपूर्वक मर गये! लिबनन प्रान्त के आसपास तो [illegible] सेना ने घेरा ही डाल दिया है और ये लोग यहां के निवासि[illegible] को भूखों मार डालना चाहते हैं। फ्रेंचों के लिए मरणान्त कष्ट स[illegible] वाले इन पुरुषार्थी लोगों की सहायता के लिए यहां पहुंचने का [illegible] काश यद्यपि फ्रेंच लोगों को नहीं है; तथापि अमेरिकन वकील [illegible] द्वारा उन्होंने तुर्की सरकार के पास यह सन्देशा भेज दिया है [illegible] "इस सारी खून-खराबी का जवाब तुमको आगे पीछे देन[illegible] पड़ेगा।"

अरबों और फ्रेंचों के हेलमेल का यह वृत्तान्त केवल राजनी[illegible] दृष्टि से दिया गया; परन्तु केवल राजनैतिक दृष्टि से इसलामी सम[illegible] का विचार करने से उसमें भूल भी हो सकती है। सर्वसाधा[illegible] शिक्षित लोग केवल राजनैतिक दृष्टि को लेते हैं; परन्तु मुसलमान सम[illegible] अपनी धार्मिक दृष्टि कभी नहीं छोड़ता। अतएव तुर्क बादशाह[illegible] सम्बन्ध छूटने पर उसकी जगह किसी न किसी धर्मगुरु की आ[illegible] श्यकता फिर भी मौजूद ही है; क्योंकि इसके बिना अरबी जन[illegible] को सन्तोष नहीं हो सकता। इंगलैंड और रूस को यह आ[illegible] श्यकता बड़ी तीव्रता से मालूम हो रही है; क्योंकि इसके [illegible] म्राज्य में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक है। इसी लि[illegible]

चीन की रेलवे।

मक्का के शरीफ को खलीफा बना कर स[illegible] अरबों को तुर्कों के पंजे से छुड़ाने का [illegible] प्रयत्न हो रहा है उसमें इंगलैंड और रूस [illegible] भी हाथ है। मक्का के वर्तमान शेरीफ का ज[illegible] मुहम्मद की लड़की फातीमा के वंश में हुआ [illegible] और यह बात उस को धर्मगुरु बनाने के लि[illegible] काफी है। आधुनिक दृष्टि से भी इस शेरी[illegible] की योग्यता कम नहीं समझी जाती। उस[illegible] तीनों लड़कों ने यूरोप में जा कर उच्च शि[illegible] प्राप्त की है। आज कल वे क्रान्तिकारक प[illegible] के नेता और सेनापति हैं। जेद्दा और कि[illegible] फुज़ा नामक दो महत्वपूर्ण बन्दर उन्होंने ह[illegible] गत कर लिये हैं, और इस कारण जलमार्ग [illegible] गोला बारूद परदेश से लाने में उन्हें अ[illegible] सुभीता हो गया है। सारांश यह है [illegible] इंगलैंड, फ्रांस और रूस के प्रबल राष्ट्रों [illegible] सहायता से अरबों के द्वारा तुर्की को दब[illegible] का विचार बहुत कुछ फलद्रूप होने के लक्ष[illegible] दिखाई देते हैं। बालकन युद्ध में यूरप से तु[illegible] को निकालने का प्रयत्न हो ही चुका [illegible] है, और इस महायुद्ध में अरबिस्तान य[illegible] हाथ से चला गया तो समझो कि तुर्की साम्राज्य [illegible] साधारण सा राष्ट्र रह जायगा। तथापि मुसलमानी समाज निर्ब[illegible] न होगा; किन्तु उलटे प्रबल ही होगा, क्योंकि अब आधुनि[illegible] सुधाररूपी अमृत का पान किये हुए धर्मगुरु उनके नेता बने[illegible] और इस लेख के प्रारम्भ में जो हम ने लिखा है कि, मा-बाप [illegible] झगड़ा होते समय लड़का समझदार हो जाता है सो अब आगे [illegible] दशा न रहेगी तथा मुसलमानी समाज निश्शंकता से यह कहते हु[illegible] कि, "स्थितोऽस्मि गतसन्देहः" आधुनिक संकटों से शूरता के सा[illegible] टक्कर लगाने को तैयार होगा।

चीन का गोलमाल।

अमेरिका और जापान में जो परस्पर द्वेषाग्नि भीतर ही भीत[illegible] धधक रही है वह कब और कहां भड़केगी, इसका कुछ ठीक नहीं [illegible] परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भड़काने का प्रयत्न दोनों ओर [illegible] कुछ लोग कर रहे हैं; और इस कारण बीच ही में न जाने कह[illegible] यह आग उमड़ उठे। अमेरिका बहुत दिन से जापानी लोगों को [illegible] "एशियाटिक" कह कर रोक रहा है, और जापान भी—[illegible] न नहीं तो औगुण करते ही हुए नहीं—यह अपमान सह रहा [illegible] है। परन्तु जापानी लोगों को "एशिया-निवासी" कह कर [illegible] अमेरिका ने चिढ़ाया, इससे उन दोनों राष्ट्रों का वैमनस्य नए [illegible] कर उनका अगर द्वेषभाव बढ़ गया है, और मनुष्यस्वभाव [illegible]

दृष्टि से देखा जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। तथापि अभी तक ऐसा उदाहरण नहीं देखा गया था कि इस प्रकार चिढ़ कर जापान ने अमेरिका का भी प्रतिबन्ध किया हो। परन्तु गत १४ अक्टूबर को ऐसा ही एक उदाहरण जापान की ओर से भी देखा गया है। चीन के शांटंग प्रान्त में एक बड़ी भारी नहर है; उसको दुरुस्त करने का ठेका चीन सरकार ने एक अमेरिकन कम्पनी को दिया था। जापान ने इसे अस्वीकार किया है। अर्थात् नहर चीन में है, दुरुस्त करने का ठेका देनेवाली चीनी सरकार है, लेनेवाले अमेरिकन लोग हैं; और उसे अस्वीकार करनेवाली जापानी सरकार है। इस विचित्रता से आश्चर्यित हो कर चीन ने कहा, कि "हम तो अपने घर की मरम्मत करते हैं और तुम बीच में उसकी स्वीकारी अथवा अस्वीकारी देनेवाले 'दालभात में मूसलचन्द' कौन हो?" अमेरिकन लोगों ने भी जापान से यही प्रश्न किया है। इस पर जापान का उत्तर इस प्रकार है:—"कियौचौ बन्दर जर्मनों से हमने जीता है; और यह बन्दर शांटंग प्रान्त में ही है; अतएव इस प्रान्त का वर्चस्व भी अब हमारे हाथ में आ गया है। इस लिए इस प्रान्त की सारी बातों पर देखरेख रखने का अधिकार हम को ही है। चीन को नहीं है। इस लिए वर्तमान नहर की दुरुस्ती का कार्य भी हमारे ही द्वारा होना चाहिए"। जापान का यह उत्तर अमेरिका को अवश्य बुरा लगेगा, परन्तु है यह साधार—इसमें सन्देह नहीं। पर इसमें भी एक भेद है। सन् १९१४ में जब कियौचौ लेकर जर्मनी को पराजित करने के लिए जापान आगे बढ़ा था तब उसने यह प्रकट कर दिया था कि "ये प्रान्त जर्मनी से जीत कर हम फिर चीन को सौंप देंगे"। इस वचन का यदि कुछ मूल्य होगा तो कियौचौ भी चीन का ही समझना चाहिए फिर शांटंग प्रान्त पर जापान के वर्चस्व का प्रश्न ही नहीं रहता। हां, "जिस की लाठी उसकी भैंस" के न्याय से देखा जावे तो कियौचौ जापान के हाथ में है ही; और अतएव उसके आसपास के प्रदेश पर यदि वह अपनी छाया डाले तो, साधारण नीति की दृष्टि से चाहे यह बात अनुचित देख पड़ती हो, परन्तु राजनीति की दृष्टि से इसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं है। अमेरिका भी इस विषय में निःशंक हो कर कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि उसने फिलिपाइन द्वीपों को जो एक बार गिलंकृत किया सो अब तक उन्हें फिर स्वतंत्र करने का वचन पूर्ण नहीं किया है। अच्छा यदि चीन का पक्ष लिया जाय तो उधर भी आपत्ति है। क्योंकि मन्रो-डाक्ट्रिन के अनुसार यदि "संयुक्त राज्य" सारी अमेरिकन रियासतों का राज्यकार्य अपने तंत्र से चलाने का आग्रह कर सकता है तो जापान भी चीन पर अपनी सत्ता क्यों नहीं चला सकता? तात्पर्य यह है कि चाहे जापान हो, चाहे अमेरिका हो, मौका आने पर रियायत किसी ने नहीं की है, और इसी लिए जब वे दूसरे को नीति का उपदेश करने लगते हैं तब उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हां, इतना अवश्य है कि इस सारे गोलमाल में चीन पर अत्याचार हो रहा है, और वह बीच में ही रगड़ा जाता है। जापानी लोग इस पर यह कहते हैं कि गत पचीस तीस वर्ष से चीन, जापान के शत्रु से मित्रता का नाता पुष्ट कर रहा है। उनके इस कथन में चाहे कुछ सत्यांश हो; परन्तु इस बात को स्वीकार किये बिना कोई न रहेगा कि जापान जैसा व्यवहार चीन के साथ कर रहा है वह संशयास्पद है। चीन साम्राज्य के कितने ही महत्वपूर्ण स्थान जापान ने छीन लिये हैं, और चीन के राज्यकार्य में सरकारी और साधारण जापानी लोग मन माना हस्तक्षेप करते हैं; स्वयं चीन की राजधानी में (पेकिंग में) जापानी सिपाही प्रतिदिन सैनिक ठाट-बाट से निकल कर चीनी लोगों को चिढ़ाने के लिए तैयार रहते हैं; चीन को परराष्ट्र से जब कोई सन्धि करनी होती है तब जापानी राजनीतिज्ञ यह आग्रह करते हैं कि इस बात के लिए पहले हमारी सम्मति प्राप्त करनी चाहिए; और इधर कुछ दिनों से तो रूस-जापान का ऐसा गुट हुआ है कि ये दोनों स्पष्ट कहते हैं कि मंगोलिया इत्यादि प्रान्तों से चीन का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। ऐसी दशा में यदि चीन जापान के पंजे से छूटने का प्रयत्न करे—फिर वह प्रयत्न चाहे स्वयं अपने बल पर हो अथवा जापान के शत्रु के आश्रय पर हो—तो इसमें उसका क्या दोष है? अपनी अपनी स्वत्वरक्षा सभी चाहते हैं।

चीन में रेलवे की प्रगति।

आधुनिक सभ्यता के फैलने के लिए रेलवे एक उत्तम साधन है। इस कारण ज्योंही चीन में उन्नतिशील पक्ष का जन्म हुआ त्योंही चारों ओर से यह आवाज उठी कि देश में रेलवे का फैलाव होना चाहिए। इधर कुछ दिनों से चीन में बलवा मच रहा था और फिर महा युद्ध ने भी भयंकर रूप धारण कर लिया, इस कारण चीन का रेलवे-कार्य स्थगित हो गया था। परन्तु अन्त में गत ३० सितम्बर को, एक हजार मील रेलवे-मार्ग तैयार करने का ठेका एक अमेरिकन कम्पनी को दे दिया गया। चीन में छै हजार मील रेलवे मार्ग पहले ही से फैला हुआ है। उसमें से ३५०० मील सरकारी है, और शेष भिन्न भिन्न कम्पनियों के हाथ में सुभीते के साथ दिया हुआ है। सन् १९१३ में चीन और जापान ने दक्षिणी मंचूरियन रेलवे के विषय में शर्तें की थीं; इस रेलवे का भी कार्य अब प्रारम्भ हुआ है। यह कम्पनी १६५ मील रेलवे बनावेगी; जिसमें से ६५ मील पहले तैयार होगी।

दूसरा महत्वपूर्ण लोहमार्ग (रेलवे) हांको से लेकर चांगशा तक है। यह अन्तर ३०० मील है। यह मार्ग १९१७ में ही जारी करने का विचार है। इस रास्ते के तैयार हो जाने पर कैंटन से लेकर हांको होते हुए पेकिंग तक और ट्रांस-सैबेरियन-रेलवे के द्वारा यूरप तक हेलमेल हो जायगा।

यह लोहमार्ग चीन की अत्यन्त घनी बस्ती के प्रदेश से हो कर जाता है। और कहते हैं कि उसी भाग में उत्तमोत्तम खानें भी हैं। १८९८-१९०५ तक इस भाग में रेलवे बनाने का ठेका एक अमेरिकन कम्पनी के पास था; पर उससे कुछ काम नहीं हो सका। १९१७ में ब्रिटिश कम्पनी ने यांगत्सी नदी के दक्षिण में छै सौ मील रेलवे बनाने का निश्चय किया। इस भाग में अत्यन्त घनी, अर्थात् प्रति वर्ग मील दो सौ तक बस्तियां पाई जाती हैं। आज तक यहां का सारा व्यापार यांगत्सी नदी के द्वारा नौकाओं से होता है; और इस नदी से माल का आना जाना भयंकर भी समझा जाता है। इसी कारण इधर रेल का महत्व विशेष समझा गया है।

चीन की राज्यक्रान्ति के कारण उपर्युक्त छै सौ मील रेलवे बनाने का कार्य १९१४ तक बन्द हो गया था; बाद को फिर प्रारम्भ हुआ। परन्तु यूरोपियन युद्ध के कारण पूंजी की कमी फिर मालूम होने लगी, और इस कारण हाल में सिर्फ तीन ही सौ मील रेलवे—हांको से चांगशा तक—बनाने का निश्चय कायम रहा। उसके दक्षिण ओर कैंटन से चाउचाउ तक दो सौ मील मार्ग तैयार हो गया है; और चीन की सरकार ने उस पर एक चीनी डायरेक्टर के द्वारा रेलगाड़ी भी जारी कर दी है।

ब्रिटिश कम्पनी इस समय जो तीन सौ मील मार्ग तैयार कर रही है उसमें एक दो बातें विशेष ध्यान में रखने योग्य हैं। पहली बात यह है कि यंत्र की अपेक्षा यहां मनुष्यों से काम लेने में खर्च कम पड़ता है। दूसरी यह कि इस स्थान में सिर्फ दस बीस इंजिनियर परकीय हैं; और शेष सारा कार्य यहीं के सुशिक्षित लोगों के द्वारा होता है। प्रति १५ मील पर एक परकीय इंजिनियर रखा गया है, और उसके नीचे के सारे कार्य चीनी लोग ही करते हैं। इन चीनी लोगों ने परदेश में जा कर उत्तम प्रकार की शिक्षा सम्पादन की है।

चीन में लकड़ी का अभाव है, इस कारण जापान और अमेरिका से रेलवे के लिए लकड़ी मंगाई गई है, और लोहा हांको के निकट की एक लोहे की खान से निकाला गया है। सिमेंट चीन का ही काम में लाया जाता है; और कंक्रीट तैयार करने का कार्य यंत्र से नहीं करते, हाथ से ही करते हैं। सड़क तैयार करने का काम प्रायः ठेके से होता है और प्रति मील लगभग पांच सौ मजदूर लगाये जाते हैं। सब जगह यंत्रों की अपेक्षा मजदूर लगाने में ही खर्च कम पड़ता है; इस कारण पत्थर, मिट्टी, इत्यादि पदार्थों के ढोने में चीनी मजदूरों की बड़ी मांग रहती है।

ठाकुर दानीसिंह साहब।

(लेखक—श्रीयुत पं० बदरीनाथ जी भट्ट बी० ए०।)

(कई खुशामदियों के साथ ठाकुर साहब बातें कर रहे हैं।)

ठाकुर—और आप तो सब बातें जानते हैं, लेकिन फिर भी मैं विश्वासपूर्वक-बल्कि यकीनन कह सकता हूं कि मैंने इस संसार को आप लोगों से कहीं अधिक देखा भाला और जाँचा पड़ताला है।

खुशा०—इसमें क्या शक है।

ठाकुर—आजकल के आदमियों के मुकाबिले में पहिले लोगों के आचार व्यवहार, बातचीत, डीलडौल, जिस्म शरीर दुगुने—

१ खुशा०—बल्कि तिगुने—

२ खुशा०—बल्कि चौगुने—

३ खुशा०—बल्कि पँचगुने—

ठाकुर—बल्कि छः गुने, सतगुने, अठगुने, नौगुने, दसगुने, वगैरह हुआ करते थे।

खुशा०—(एक दूसरे की ओर मुस्कराकर देखते हुए) बेशक, इसमें क्या झूठ है?

ठाकुर—नहीं बहुत से लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं होता।

एक खुशा०—उनकी बात जाने दीजिए।

दूसरा—वो सब के सब बेवकूफ़ हैं।

तीसरा—इसमें क्या शक है।

चौथा—भला कहां ठाकुर साहब और कहां वे!

ठाकुर—मतलब यह है कि अगर ऐसा न होता तो आज हिन्दू जाती संसार से कभी की क्यों न लोप हो गई होती?

एक खुशा०—भला इस बात का वे लोग क्या जवाब रखते हैं?

ठाकुर—मेरा कहना तो यह है कि आज कल के कुसंस्कारों ने हमारे यहाँ वालों लड़केवालों को गुड्डा-गुड़िया बना दिया—

खुशा०—सच है।

ठाकुर—यानी उन्हें किसी काम का न रक्खा—

खुशा०—बेशक।

ठाकुर—यानी वे किसी भी मर्ज़ की दवा न रहे, सिवाय इसके कि अपनी नाड़िया पर पड़े पड़े काम की शिकायत किया करें और डाक्टरों-हकीमों, मन्तकियों-ज्योतिषियों, झाड़ूवालों—ए! बल्कि झाड़ाफूँकीवालों, गुनियाओं, टोटका और छू-मंतर करनेवालों को रोज कई बार फाँस दिया करें, खाना-पाना तो कुछ न खायें दिन रात बस निरा दूध ही दूध पिया करें और इतना होने पर भी मन्दाग्नि की शिकायत किया करें!

खुशा०—आप का कहना बिलकुल ही सच है।

ठाकुर—भगवान् जाने इनके पेट को क्या हो गया है, जो ज़रा खाने से ही-बस कुछ पूछिये न।

खुशा०—क्यों न हो, आप तजुर्बे की बातें कहते हैं।

ठाकुर—मगर अफ़सोस फिर भी मेरी बात कोई नहीं मानता! क्या भली दुनिया रह गई है, कि अपना मतलब निकल जाने के बाद कोई किसी को नहीं पहचानता!

खुशा०—ज़माना बुरा—

ठाकुर—(जोश ही में) और मेरी तो यह राय है कि जो कुछ मेरे यहाँ पुराने ज़माने से होता आया है सो तो—जब तक मेरा दम सलामत है तब तक—उसी लीक पर चलेगा।

एक खुशा०—'स्वधर्मे निधनं श्रेय' ऐसा कुछ महात्मा लोग [illegible] में कहते हुए देखे जा सकते हैं।

ठाकुर—तो फिर न! हम लोगों में बहादुरी आवे कहाँ से? यही नहीं, [illegible] और [illegible] बराबर इस्तमाल भी पड़ते हैं और [illegible] की [illegible] से काम नहीं चलते, [illegible] अमूल्य [illegible] बराबर भी नहीं [illegible] ठाकुर साहब का [illegible]।

एक खुशा०—[illegible] भी [illegible] हुए कह—

ठाकुर—(जोश में ही) [illegible] इन्हें [illegible] में [illegible] भी न क्या [illegible] रखते हैं? हम से [illegible] हम से—[illegible] हैं। [illegible]! इनके [illegible] बहादुरी [illegible] लिखी है कि [illegible]

तो—सच कहता हूं कि—भुजाएं फड़कने लगती हैं; यहाँ तक कि कभी कभी तो मैं—क्या कहूं—पास बैठे हुए आदमियों को—आदमियों पर हाथ छोड़ बैठता हूं।

खुशामदी—(एक दूसरे की ओर देख कर हँसते हुए—'क्यों न हो,' 'आखिर आप भी तो उन्हीं में से हैं' आदि कहते हैं।)

ठाकुर—जी हाँ, यही तो मेरा भी कहना है, आखिर मैं भी तो उन्हीं में से हूं; इस बदन में (छाती पर हाथ रखते हुए) भी तो वही खून जोश खाता है। यही सब बातें दिखलाने के लिये ही मैं ने आज के लिए एक पुतलीवाले से कह दिया था। वह अब आता ही होगा। मैं भी आप लोगों और इन लोगों को इसी वजह से-इसी बहाने-कुछ न कुछ देते रहने का इरादा किया करता हूं कि जिसमें आप लोग मेरी जगह जगह तारीफ किया करें, क्योंकि

'रुस्तम रहा जमीं पै न वह साम रह गया,
मर्दों का आसमाँ के तले नाम

(प्रवेश एक ओर से पुतलीवाले का और दूसरी ओर से कुछ चंदा माँगनेवालों का) क्या कहा? हाँ—

'आसमाँ के तले नाम रह गया।'

आइये महाशयजी। क्या कहूं यह पुतलीवाला—

पुतली०—(कई बार झुक कर) सलाम हुजूर! हुजूर का बोलबाला, वैरियों का मुँह काला! दाता हुजूर को सलामत रक्खे, औलाद बढ़ावे।

ठाकुर—अच्छा अब बको मत (रौब से सब की ओर देखते हुए) झटपट अपना सरंजाम ठीक कर। (रौब से सब की ओर देखते हैं। पुतली वाला सरंजाम ठीक करता है।)

एक चंदा मांगनेवाला—(दूसरे के कान में) यह तमाशा क्यों कराया जा रहा है? (ठाकुर साहब सुन लेते हैं।)

ठाकुर—लीजिये! अब प्रश्न यह है कि पुतलियों का तमाशा क्यों कराया गया है, 'इससे लाभ क्या?' महाशयजी! इससे बड़े बड़े अच्छे उपदेश मिल सकते हैं। समझनेवाले के लिये सभी कहीं सब कुछ है और बेसमझ के लिये कहीं भी कुछ नहीं। यह तो अपनी २ समझ की बात रही। भला सोचने की बात है कि अगर इससे कुछ भी लाभ न होता तो आज आप यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यों उठाते?

एक खुशा०—सच है।

दूसरा—ठाकुर साहब ने भी क्या सीतरी कही है?

ठाकुर—हाँ, तब तो आपके दर्शन ही नहीं हो सकते थे। (सब एक दूसरे की ओर देखते और जैसे तैसे अपनी हँसी रोकते हैं।) आप कुछ भी क्यों न समझें, या न समझें, मैं तो यही कहूँगा कि यह संसार भी पुतलियों का एक तमाशा है, और हम सब लोग पुतलियाँ हैं; अगर इस तमाशे से लाभ नहीं तो इससे भी कुछ लाभ नहीं। मतलब यह है कि अगर ईश्वर की राय भी आप से मिल जाय तो न सिर्फ सभी काम ही खतम हो जाय, बल्कि कभी भी किसी के भी न बच रहने से ज़रा भी किसी किस्म की भी पुतलियों का तमाशा किसी को भी न दीखे या दीख सके।

खुशा०—वाह! क्या बात निकाली है।

चंदेवाला—मेरा यह मतलब नहीं था—

ठाकुर—नहीं नहीं, आपका कुछ भी मतलब क्यों न हो, बहुत से लोग मुझे बेवकूफ या आधा पागल समझते हैं। वे अगर मुझे पूरा ही पागल समझें तो भी मेरे पास उनके लिये कोई इलाज नहीं। आप बुरा न मानियेगा, मैंने आपके ऊपर कुछ नहीं कहा। हाँ जी, बड़े बड़े राजा लोग भला [illegible] ही आपके सामने आते होंगे। मैं कोई झूठ नहीं कहता। [illegible], आप ठाकुर साहब का '[illegible]' [illegible] और [illegible] फिर अपनी आँखों [illegible] यह तमाशा देख लीजिये। सब आपकी समझ में आ जावेगा।

(तमाशा शुरू होता है, [illegible] ढोल बाजा, सिपाही आदि आते हैं और [illegible] [illegible] जाते हैं। [illegible] तमाशा होता

है, अकबर बादशाह तख्तपर और सब राजा लोग इधर उधर बैठते हैं, मुजरा होता है।)

पुतलीवाला--देखिये हजूर अब राजा मानसिंह चीतौड़ जीतने चले--

ठाकुर--ठहर! ठहर! बदमाश!

पुतली०--हैं? देखिये जे चले (मानसिंह की पुतली आगे बढ़ कर बादशाह को कई बार सलाम कर के चलने के लिये पीठ फेरती है।)

ठाकुर--(खड़े होकर बड़े जोश के साथ) ठहर! पहले बतला कि कौन कहां और क्यों जाता है।

पुतली०--हजूर, जे (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जैपुरवाले बादसाह से हुकम लेकर चीतौड़गढ़ को जीतने--

ठाकुर--(क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही! कलंकी! बदमाश! पहले मुझ से तो जान बचा ले फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मैं अभी सालों को ढेर-(ठाकुर साहब डंडा लेकर पुतलियों पर पिल पड़ते हैं और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियाँ तोड़ फोड़ डालते हैं, दो एक हाथ पुतलीवाले के भी जमाते हैं। देखनेवाले आश्चर्य और भय से बगलें झांकते हैं*।)

पुतली०--हाय मैं मरा--

ठाकुर०--'हाय हाय' कैसी?

पुतली०--मैं मरा-हाय मेरा रुजगार गया--

ठाकुर--(कुछ ठंडे होकर) क्या कहा? क्या हुआ? क्या हुआ?

पुतली०--हुआ क्या हजूर! अब तो मैं जीता ही मरा-मैं तो गरीब आदमी हूं, अब कैसे अपनी रोजी कमाऊंगा। हाय, इधर कमर में--

ठाकुर--क्या?

पुतली०--मैं यहां क्यों आया? हाय करम-

ठाकुर--(नरमी के साथ) तेरी क्या हानि हुई?

पुतली०--मेरी रोजी गई--

ठाकुर--अच्छा, तो कितने का नुकसान हुआ, सच सच बता।

पुतली०--पाँच रुपये का।

ठाकुर--(उदासीनता के साथ) हम नहीं जानते, तूने ऐसा बुरा तमाशा क्यों दिखाया?

पुतली०--(अपना सामान समेटता और रोता हुआ) अब किस को रोऊं, हाय, गरीब की कहीं सुनवाई नहीं-

ठाकुर--क्या तुझे मालूम नहीं था कि हम लोग मानसिंह से नाराज हैं?

पुतली०--हजूर! मेरे तो करम फूट गये, मैंने अच्छा तमासा-

ठाकुर--(सोच कर) और हम उसे अपनी जाति का कलंक समझते हैं--

पुतली०--तो तमासे का जो कुछ ठैरा था सो ही दिलवा दीजिये-आगे आपकी मरजी--

ठाकुर--हम तो दो आने देंगे।

पुतली०--हजूर, ऐसी गरीब-मार मत करो, आठ आने ठैरे थे।

ठाकुर--किससे ठैरे थे?

पुतली०--हजूर से-

ठाकुर--किसके सामने? (खुशामदियों की ओर) हाँ, बिना गवाहों के मुकद्दमा खारिज समझा जाता है।

पुतली०--मैं तो गरीब हूं हजूर, झूठ नहीं कहूं हूं, आज सबेरे आप से ही ठैरे थे।

ठाकुर--अच्छा तो अगर मान भी लें कि 'ठैरे थे' या 'आठ आने ठैरे थे,' तो भी ठैरने से क्या होता है? आठ आने क्या अगर आठ रुपये-या बल्कि यों कहिये (खुशामदियों की ओर) कि आठ सौ रुपये--ठैरते तो क्या मैं दे देता? ऐसा अंधेर कैसे हो सकता है? (पुतली० की ओर) जो चार आदमी कहेंगे सो दूंगा। (खुशामदियों की ओर) तमाशा देखने वाले चार भले मानस जो कह देंगे सो दे दिया जायगा। क्यों साहब! इसका तमाशा कै पैसे का था?

पुतली०--हजूर! मैंने तो अपने जाने अच्छा से अच्छा--

ठाकुर--(जोश में आकर बीच ही में) तमाशा तो तूने ऐसा दिखाया था कि आठ आने की जगह तुझे आठ ऊंगे भी नहीं दिये जाने चाहिये। (क्रोध में) और तू जो कहता है कि 'ठैरे थे,' सो ठैरने से क्या होता है? 'आठ आने ठैरे थे'--ठैरे थे तो क्या हुआ? कुछ दे तो नहीं दिये गये थे? भला सोचने की बात है, दिया तो वही जायगा जो वाजिब होगा। अगर हमनें आठ आने ठैरा कर तुझे दे दिये होते तो बात दूसरी होती, क्योंकि 'प्रान जायँ पर बचन न जाई,' बस, अब तो वही मिलेगा जो ठीक समझा जायगा। (खुशामदियों की ओर) क्यों न? और पहले तो इसी बात का तेरे पास क्या सबूत है कि हमने जिस वक्त तुझ से ठैराये उसी वक्त आठ आने नहीं दे दिये। ऐसा तू बड़ा भोला है न, जो अपने पैसे छोड़ जाता।

एक चंदेवाला--ठाकुर साहब, क्या कहें, नुकसान तो बिचारे का

ठाकुर--अजी नुकसान फायदा तो होता ही रहता है। (पुतलीवाले से) अरे भाई चार आनें से ज्यादे नहीं देंगे, तुझे लेना होय तो ले जा, नहीं तो मौज कर।

पुतली०--(रोकर) वाह हजूर वाह, मैं तो गरीब आदमी हूं-मेरी कहाँ सुनाई होगी, न मैं कोई पढ़ा लिखा हूं, मैं तो आप लोगों का गुलाम हूं। जो आपकी मर्जी, सो ही मेरे लिये भगवान् की मर्जी, करमों में बदा था सो हुआ; जे सामान जो टूटा है इसका भी कुछ मिल जाता तो बड़ी मेहरबानगी होती।

ठाकुर०--अच्छा, अभी तो तू चार आने ले जा, बाकी के लिये कल्ह बात करियो।

पुतली०--(हाथ जोड़ कर और ठाकुर साहब के पैर छूकर) हाँ हजूर, कुछ तो परवस्ती होनी चाहिये, (ठाकुर साहब बड़ी मुश्किल से-तरह तरह का मुंह बनाते हुए चार आने अंटी में से निकाल कर देते हैं। पुतलीवाला लेता है।)

पुतली०--हजूर की खिजमत में कल्ह हाजर होऊंगा। हाँ हजूर, हजूर का बोलबाला रहे-(सामान लेकर जाता है।)

ठाकुर--अरे मंसुखा! ओ मंसुखा!

(प्रवेश मंसुखा नौकर का)

मंसुखा--हजूर-हुकम?

ठाकुर--(पुतलीवाले की ओर इशारा कर के) देख, वो जा रहा है, दीखा? हां, जब कभी वो पुतलीवाला आवे तो कह दीजो कि ठाकुर साहब घर पै नहीं हैं। जब कभी वो आवे तभी दरवाजे पर से ही टरका दिया करियो। बदमाश कहीं का, देखूं अब क्या लिये लेता है? मुझे ही ठगना चाहता था! (चंदेवालों से) हां महाशयजी, कहिये; पुतलीवाले से तो पीछा छुटा, अब आप कहिये।

एक चंदेवाला--ठाकुरसाहब! करोड़ों अनाथ बालक विधर्मी हो रहे हैं। उनकी रक्षा करने के लिये-

ठाकुर--अच्छा, तो जो विधर्मी होगये हैं उनकी रक्षा के लिये-हां-विधर्मियों की रक्षा के लिये मैं कुछ नहीं दे सकता।

दूसरा चंदेवाला--विधर्मियों की रक्षा के लिये नहीं, बल्कि उन बच्चों की परवरिश के लिये जो अनाथ हैं और सहायता न मिलने पर विधर्मी हो जायँगे--

ठाकुर--ऐसों के लिये जो थोड़े ही दिनों में विधर्मी हो जायँगे मेरे पास कौड़ी नहीं है। और दूसरे इस बात का क्या सबूत है कि वे सब क्षत्रिय हैं?

तीसरा--एक ऐसा अनाथालय बन जाय जिसमें--

ठाकुर--हां, मैं समझ गया, मुझे भी घर की मरम्मत करानी है। अच्छा, तो इसके बारे में आप फिर कभी मुझ से मिलिये। इस वक्त तो मुझे फुरसत नहीं है। सेठ निर्मलचंद के घर दावत है। कल्ह मिलिये। सब काम हो जायगा। मैं अच्छे कामों के लिये चंदा क्या अपनी जान तक दे देता हूं-दे दिया करता हूं।

चंदेवाले--(एक दूसरे की ओर मुस्कराते हुए) बहुत अच्छा, राम राम।

(चंदेवाले जाने लगते हैं, ठाकुर साहब मंसुखा से उनकी ओर इशारा कर के कान में कुछ कहते हैं; मंसुखा वे पीछे को मुंह मोड़ कर ठाकुर साहब की ऐसा करते देखते हैं, और हँस कर चले जाते हैं।)

ठाकुर--(खुशामदियों से) बदमाशों से साफ मैं दम कर लिया।

खुशा०--इसमें क्या शक है।

ठाकुर--(उठ कर चलते हुए) देखूं मुझ से क्या लिये लेते हैं? (सब लोग उनके पीछे २ जाते हैं) ऐसों का भी यहीं इलाज है।

खुशा०--इसमें क्या शक है?

---

* ऐसा ही एक सीन 'Don Quixote' में आया है। --लेखक।

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का जनवरी मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०।)

जनवरी मास के अख़ीर में और फरवरी के प्रारम्भ में युरोप में शीत अधिक पड़ा; और इस कारण युद्ध-कथा में शिथिलता आ गई। जनवरी के पहले पखवाड़े में जर्मनी ने बेला और फाक्सनी नाम के दो गाँव ले लिये और सिरेत नदी का चालीस पचास मील लम्बा प्रदेश अधिकृत कर के जर्मनी ने खाई खोदना प्रारम्भ किया। वर्ष वर्ष पहले रोमानिया ने ही यह प्रान्त जर्मनी की सम्मति और सहायता से मजबूत कर रखा था, कि जिससे, यदि कभी रूस से युद्ध करने का मौका आवे तो सीरेत की तटबन्दी में ही उसे रोका जा सके। यह मजबूती की जगह अधिकार में आते ही सेनापति मेकेन्सन की फौज ने यहीं छावनी डाल दी और पीछे हटनेवाली रूसो-रोमानियन सेना का पीछा करना छोड़ दिया। जब कि सारा डोब्रुजा प्रान्त अधिकार में आगया, और डान्यूब नदी के मुख भी आधे आधे खुल गये, तब फिर, सेनापति हिंडनबर्ग की इस धमकि को, कि रूस के बेसारेबिया प्रान्त में सेना उतार कर रूसो-रोमानियन सेना को झपट डालेंगे, सत्य कर दिखलाने का प्रयत्न जर्मन सेना ने क्यों छोड़ दिया? तथा उसी समय के लगभग ग्रीस का राजा, जो कि जर्मन सहायता की आशा से उद्दण्डता दिखला रहा था, मित्रराष्ट्रों के सामने क्यों लच गया? जनवरी के तीसरे और चौथे सप्ताह में ऐसे समाचार आये कि आस्ट्रो-जर्मन सेना को अब रोमानिया की रणभूमि से हटा कर किसी दूसरी ओर लिये जाते हैं। कुछ लोगों ने यह अनुमान निकाला कि अब स्विट्ज़रलैंड और हालैंड की सीमा पर एक बड़ी भारी आस्ट्रो-जर्मन सेना जमा हो रही है; और अब हालैंड तथा स्विट्ज़रलैंड की उदासीनता ज़बरदस्ती भंग की जायगी; और ये देश भी बेलजियम की तरह अत्याचार से पादाक्रांत किये जायँगे। यही मदोन्मत्त जर्मनी का विचार है। इसके सिवाय कई लोगों का अनुमान ऐसा था कि वास्तव में हालैंड या स्विट्ज़रलैंड की उदासीनता भंग करने का यह उद्योग नहीं है, किन्तु से० हिंडनबर्ग की यह तैयारी इस लिए है कि जिससे आगामि वसन्तकाल में सोम नदी के किनारे जिस समय एंग्लो-फ्रेंच सेना अपने परिपूर्ण ज़ोर से आक्रमण का प्रारम्भ करे उस समय फ्रेंचों की दाहनी ओर और अंगरेज़ों की बाईं ओर दोनों सिरों पर, एकाएक हमले किये जा सकें। जनवरी के अन्त में रोमानियन और बालकन युद्ध शिथिल पड़ा। यही नहीं, बल्कि पश्चिम रणभूमि में फ्रांस और बेलजियम की ओर, और पूर्व रणभूमि में उत्तर की तरफ रूस की ओर जगह जगह छोटे छोटे हमले कर के जर्मनी ने इस बात का पता लेना शुरू किया कि रूस की सेना तथा एंग्लो-फ्रेंच सेना का बड़ा जमाव कहाँ है। इन सब चिन्हों से जनवरी के अन्त में ऐसा जान पड़ा कि मई जून मास में मित्रराष्ट्रों की पूर्ण तैयारी के साथ होनेवाले हमलों के पहले ही, उनके विचारों को [illegible] के नहीं तो नष्ट कर देने के लिए, जर्मनी स्वयं अपनी ओर से, [illegible] दक्षिण भाग में, दोनों-तीनों तट, कहीं न कहीं, इस वर्ष की [illegible] की चढ़ाई की तरह, दो तीन मास लगातार खूब ज़ोरशोर से [illegible] करने की तैयारी में लगा होगा। फरवरी के आरम्भ में जर्मनी ने ज़ोरदार [illegible] की बात प्रकट की उस से भी उपर्युक्त अनुमान की ही पुष्टि हुई। जर्मन सरकार ने अमेरिका, हालैंड, स्वीडन, आदि सब उदासीन राष्ट्रों से प्रकट किया कि फरवरी के दूसरे सप्ताह से इंग्लैंड, फ्रांस, इटली इन देशों के किनारों के समुद्री मैदान में, चाहे जिस राष्ट्र का, चाहे जिस माल का, और चाहे जिस स्वरूप का, कोई भी जहाज जो देख पड़ेगा, उसके मुसाफ़िरों अथवा खलासियों के प्राणों की कुछ भी ख़बरदारी न रखते हुए, एकदम समुद्र में डुबा देने की आज्ञा जर्मनी ने अपनी टारपीडो नौकाओं को दे दी है। अतएव उदासीन राष्ट्रों के जहाजों को इँगलैंड, फ्रांस और इटली के आसपास के मृत्युमय समुद्र में, बिलकुल ही न आना चाहिए। टारपीडो नौकाओं की धूमधाम अभी तक जारी तो थी ही; परन्तु जर्मनी ने सिर्फ इतनी आज्ञा दे रखी थी कि अमेरिका का झंडा जिस जहाज पर हो उस जहाज की व्यर्थ प्राणहानि न की जाय; पर अब यह आज्ञा भी रद कर दी गई; और जनवरी के अन्त में, जर्मनी ने, भूमध्यसागर और इँगलैंड के आसपास के समुद्र में, मित्रराष्ट्रों से हेलमेल रखनेवाले सब जहाजों को, एक तरफ से, अमानुष क्रूरता के साथ, जलसमाधि देने का, अनियंत्रित अधिकार दे दिया। रोमानिया के विजय का पूर्ण लाभ प्राप्त होते हुए भी जर्मनी ने "यमस्य करुणा नास्ति" के समान अकराल-विकराल और अमानुष स्वरूप क्यों धारण किया? किसी हिंस्रपशु को रक्त की चाट लग जाय और उससे वह और भी अधिक क्रूरता धारण करे; सो तो ठीक ही है; पर वास्तव में इससे भी बढ़ कर सैनिक परिस्थिति में अथवा सैनिक नीति में, इस भयानक क्रूरता का मूल कारण, कहीं न कहीं ढूँढ़ना चाहिए। जर्मनी के सम्पूर्ण अत्याचारों की तह में सैनिक नीति कहीं न कहीं सदैव रहती है। सैनिक नीति सफल करने के लिए जर्मनी न्यायनीति नहीं देखता, धर्म की परवा नहीं करता, मनुष्यता की ओर नहीं देखता; और राष्ट्र-राष्ट्र में होनेवाली शर्तों को पददलित करने में आगापीछा नहीं देखता। जर्मनी का यह बर्ताव निन्दनीय और गर्हणीय है, तथा मनुष्यमात्र को लज्जित करनेवाला है। अब सारे उदासीन राष्ट्र जर्मनी के इस बर्ताव का तिरस्कार कर रहे हैं। अमेरिका का राष्ट्र भी जर्मनी से युद्ध करने के लिए तैयार होनेवाला है। इस प्रकार की यह नादिरशाही जर्मनी क्यों दिखलाता है? जंगली लोगों से अधिक मनुष्यता जर्मनी में क्यों नहीं दिखाई देती? एक बार पापाचरण सह जाने से फिर पाप पचने लगता है; और इस प्रकार फिर क्रमशः पिंड ही पापमय बनने लगता है। ऐसी ही कुछ जर्मनी की दशा होने लगी है, यह सच है; परन्तु पाप की प्रत्येक गोली के आस पास सैनिक नीति का अवगुंठन जर्मनी की आज तक की पापपूर्ण कृति में दिखाई देता रहा है। अच्छा अब यह देखना चाहिए कि उपर्युक्त अनियंत्रित जलसमाधि के पाप के पीछे रह कर जर्मनी की कौन सी सैनिक नीति काम कर रही है। जनवरी के दूसरे सप्ताह में सेनापति मेकेन्सन ने सीरेत नदी पर मुकाम किया। उस समय पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों रणभूमियों को मज़बूत कर रूसो-रोमानिया का पीछा करने भर को फालतू सेना आस्ट्रो-जर्मनों के पास थी। यह अधिक सेना अब खाली होगई। दिसम्बर मास में बुखारेस्ट लेते ही, अपने को विजयी प्रकट कर के, जर्मनी ने प्रे० विल्सन के द्वारा सन्धि की बातचीत शुरू की। इंगलैंड, फ्रांस, रूस और इटली, ये चारों राष्ट्र, पराभूत की हैसियत से, सन्धि करने को तैयार नहीं हुए। इन सब से यही अपेक्षा थी कि वसन्त ऋतु में विजय सम्पादन करेंगे। प्रे० विल्सन ने सन्धिचर्चा का कार्य बड़े ज़ोरशोर से जारी किया। उन्होंने जनवरी में फिर इस सन्धि को लेकर बातचीत चलाई [illegible] है, न कोई जेता, विजयहीन सन्धि करने में कोई हर्ज नहीं। आस्ट्रिया वालों ने प्रे० विल्सन की बात मानली थी; परन्तु इंग्लैंड ने युद्ध

भी इच्छा प्रकट नहीं की; तब तो जर्मनी को मालूम होगया कि विजय सम्पादन कर के जर्मनी के पाप का प्रायश्चित्त जर्मनी को ही दे कर तब फिर इंगलैंड सन्धि का निश्चय करेगा। अच्छा; इंगलैंड को ही ऐसा क्यों करना चाहिए? क्या सिर्फ मन का हौसला पूरा करने के लिए ही इंगलैंड ऐसा करता है? नहीं, इंगलैंड को ऐसा करना पुण्यकर्म मालूम होता है, इस लिए इंगलैंड ऐसा करता है। परन्तु सिर्फ पुण्यकर्म मालूम होने से ही क्या लाभ है? अतएव, यह केवल पुण्यकर्म है—इसी लिए नहीं; किन्तु उस पुण्यकर्म को कर दिखलाने का सामर्थ्य भी इंगलैंड के शरीर में है। प्रधानमंत्री मि० लाइड जार्ज को इस बात का निश्चय है और इसी लिए इंगलैंड आगामि वसन्त काल में तथा वसन्त काल के बाद भी पांच सात मास, बड़े जोर शोर से लड़ने के लिए तैयार हुआ है। संधि की बात चीत समाप्त हुई। और इस बात में अब सन्देह नहीं रहा कि युद्ध आगामि नवम्बर-दिसम्बर तक अब फिर भयंकर रूप से होगा। इस अवधि में विजय प्राप्त करने का इंगलैंड को पूर्ण विश्वास है। परन्तु विजय प्राप्त करेगा किसके बल पर? गत वसन्त काल में पूरी पूरी तैयारी भी न थी; और इंगलैंड ने सोम नदी के किनारे जर्मनों को कितने ही सप्ताह बार बार झुकाया था। उस समय इंगलैंड की सेना भी नवीन थी; और अब तो आगामि वसन्तकाल में वही सैन्य लड़ लड़ कर मजबूत हो जायगी; इसके सिवाय परिमाण में भी सवाई ड्योढ़ी हो जायगी। सख्ती से सब को स्वीकार करने के लिए बाध्य करनेवाला नियम भी मि० लाइड जार्ज के हाथ में है; और सबों से चाहे जिस की जेब से धन भी निकाल लेने का अधिकार मि० लाइड जार्ज को देने के लिए इंगलैंड तैयार हुआ है। इसका मतलब यह है कि आगामि मई-जून मास में जर्मनी का पराभव करने के लिए पर्याप्त सेना, काफी गोलाबारूद के साथ, पश्चिमी रणभूमि पर पहुंच जायगी। और पांच छः महीने लगातार प्राणपण से लड़ना प्रारम्भ करेगी। इटली और रूस भी उसी समय अपने बल की पराकाष्ठा दिखलाने में नहीं चूकेंगे। यह स्पष्ट है। इस प्रकार १९१७ में, इंगलैंड के विचार से, जर्मनी का पराभव निश्चित है। यह पराभव टालने के लिए, रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट लेने के बाद, जर्मनी ने संधि की बात चीत प्रारम्भ की। परन्तु अपने बल के विषय में आत्मविश्वास होने के कारण अंगरेज़ों ने इस बात चीत को टाल दिया। रोमानिया लेने से जर्मनी दुर्भिक्ष के पंजे से छूट गया, परन्तु अंगरेज़ी जलसेना के घिराव से उत्पन्न होनेवाले कष्टों से जर्मनी का छुटकारा कभी नहीं हो सकता। आस्ट्रिया, जर्मनी और टर्की के प्रजाजनों का कष्ट दिन पर दिन बढ़ रहा है, और बहुत संभव है कि १९१७ के अन्त तक यह कष्ट वहां के लोग और सह सकेंगे। अर्थात् कष्ट सहने की दृष्टि से १९१७ का साल जर्मनी का अन्तिम साल है। मित्र राष्ट्रों की ओर यदि देखा जाय तो अब कहीं प्रजाजनों के पेट में कष्टों का प्रारम्भ मात्र हुआ है। तब ही कहें तो लोग ऐसे कायल हैं कि मानों महायुद्ध होता रहेगा? कष्टों की दृष्टि से जर्मनी और इंगलैंड में जमीन आसमान का अन्तर है। इंगलैंड की [illegible] सेना का ही यह प्रभाव है। [illegible] दृष्टि से देखा जाय तो भी सन् १९१७ जर्मनी का अन्तिम वर्ष समझना चाहिए; क्योंकि इस साल के अन्त तक टर्की को भी जर्मनी नहीं लड़ा सकेगा। इसका कारण यही है कि तुर्क नवजवानों की संख्या भी अब कम होती आई है। मित्र राष्ट्रों की ओर देखा जाय तो फ्रांस और इटली के लिए भी यह साल अन्तिम ही कहा जायगा;

पर इंगलैंड की सेना अब कहीं पहले पहल [illegible] में आ रही है, और [illegible] इस साल में भी [illegible] कम न करेंगे। और [illegible] [illegible] का [illegible] ही [illegible] [illegible] है; और इस [illegible], [illegible] की [illegible] की दृष्टि से, इस [illegible] और [illegible] महायुद्ध [illegible]

भी इच्छा प्रकट नहीं की; तब तो जर्मनी को मालूम होगया कि विजय सम्पादन कर के जर्मनी के पाप का प्रायश्चित्त जर्मनी को ही दे कर तब फिर इंगलैंड सन्धि का निश्चय करेगा। अच्छा; इंगलैंड को ही ऐसा क्यों करना चाहिए ? क्या सिर्फ मन का हौंसला पूरा करने के लिए ही इंगलैंड ऐसा करता है ? नहीं, इंगलैंड को ऐसा करना पुण्यकर्म मालूम होता है, इस लिए इंगलैंड ऐसा करता है। परन्तु सिर्फ पुण्यकर्म मालूम होने से ही क्या लाभ है ? अतएव, यह केवल पुण्यकर्म है—इसी लिए नहीं; किन्तु उस पुण्यकर्म को कर दिखलाने का सामर्थ्य भी इंगलैंड के शरीर में है। प्रधानमंत्री मि० लाइड जार्ज को इस बात का निश्चय है और इसी लिए इंगलैंड आगामि वसन्त काल में तथा वसन्त काल के बाद भी पांच सात मास, बड़े जोर शोर से लड़ने के लिए तैयार हुआ है। संधि की बात चीत समाप्त हुई। और इस बात में अब सन्देह नहीं रहा कि युद्ध आगामि नवम्बर-दिसम्बर तक अब फिर भयंकर रुप से होगा। इस अवधि में विजय प्राप्त करने का इंगलैंड को पूर्ण विश्वास है। परन्तु विजय प्राप्त करेगा किसके बल पर ? गत वसन्त काल में पूरी पूरी तैयारी भी न थी; और इंगलैंड ने सोम नदी के किनारे जर्मनी को कितने ही सप्ताह बार बार छकाया था। उस समय इंगलैंड की सेना भी नवीन थी; और अब तो आगामि वसन्तकाल में वही सैन्य लड़ लड़ कर मजबूत हो जायगी; इसके सिवाय परिमाण में भी सवाई ड्योढ़ी हो जायगी। सख्ती से सब को स्वीकार करने के लिए बाध्य करनेवाला नियम भी मि० लाइड जार्ज के हाथ में है; और सख्ती से चाहे जिस की जब से धन भी निकाल लेने का अधिकार मि० लाइड जार्ज को देने के लिए इंगलैंड तैयार हुआ है। इसका मतलब यह है कि आगामि मई-जून मास में जर्मनी का पराभव करने के लिए पर्याप्त सेना, काफी गोलाबारूद के साथ, पश्चिमी रणभूमि पर पहुँच जायगी; और पांच छ महीने लगातार प्राणपण से लड़ना प्रारम्भ करेगी। इटली और रूस भी उसी समय अपने बल की पराकाष्ठा दिखलाने में नहीं चूकेंगे। यह स्पष्ट है। इस प्रकार १९१७ में, इंगलैंड के विचार से, जर्मनी का पराभव निश्चित है। यह पराभव टालने के लिए, रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट लेने के बाद, जर्मनी ने संधि की बात चीत प्रारम्भ की। परन्तु अपने बल के विषय में आत्मविश्वास होने के कारण अँगरेजों ने इस बात चीत को टाल दिया। रोमानिया लेने से जर्मनी दुर्भिक्ष के पंजे से छूट गया; परन्तु अँगरेजी जलसेना के घिराव से उत्पन्न होलेवाले कष्टों से जर्मनी का छुटकारा कभी नहीं हो सकता। आस्ट्रिया, जर्मनी और टर्की के प्रजाजनों का कष्ट दिन पर दिन बढ़ रहा है; और बहुत होगा तो १९१७ के अन्त तक यह कष्ट वहां के लोग और सह सकेंगे। अर्थात् कष्ट सहने की दृष्टि से १९१७ की साल जर्मनी का अन्तिम साल है। मित्र राष्ट्रों की ओर यदि देखा जाय तो अब कहीं प्रजाजनों के थोड़े से कष्टों का प्रारम्भ मात्र हुआ है। गत दो वर्ष तो लोग ऐसे आराम में थे कि मानो महायुद्ध होता ही न था ! कष्टों की दृष्टि से जर्मनी और इंगलैंड में जमीन आसमान का अन्तर है। इंगलैंड की शक्तिशालिनी जलसेना का ही यह प्रताप है। सैनिकों की संख्या की दृष्टि से देखा जाय तो भी सन् १९१७ जर्मनी का अन्तिम वर्ष समझना चाहिए; क्योंकि इस साल के अन्त तक तुर्कों को भी जर्मनी नहीं लड़ा सकेगा। इसका कारण यही है कि तुर्क नवजवानों की संख्या भी अब कम होती आई है। मित्र राष्ट्रों की ओर देखा जाय तो फ्रांस और इटली के लिए भी यह साल अन्तिम ही कहा आयगा;

पर इंगलैंड की सेना अब कहीं पहले पहल जवानी में आनेवाली है; और उसकी उतरती उम्र आने में भी चार पांच वर्ष से कम न लगेंगे। और रूस में तो नवीन सेना का स्रोत सदैव ही प्रवाहित बहता रहता है; और इस कारण, अर्थात् सैनिकों की संख्या की दृष्टि से, रूस इस पांच वर्ष तक और भी महायुद्ध चला सकता
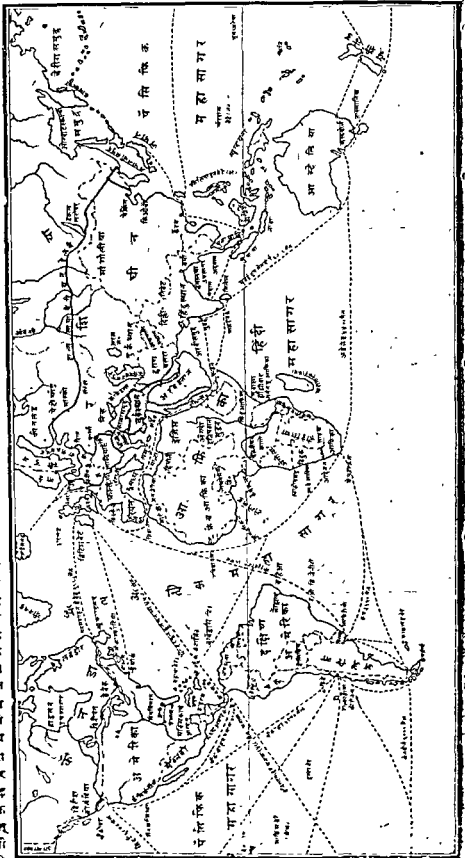
है। वस्तुतः में इस समय जर्मनी के ही सामने यह बड़ा प्रश्न उपस्थित हो रहा है कि प्रजा के कष्टों और सैनिक संख्या की कमी के संकट से किस प्रकार पार हों। अँगरेजों की जलसेना के सामने इसकी कुछ भी नहीं चलती। अर्थात् उसके कष्ट कुछ मिटते नहीं। और इसी लिए वह सोचता है कि जब हमारे ऊपर दुःखों की परम्परा फट रही है तो फिर इँगलैंड को ही सुख से क्यों बैठने देना चाहिए? यदि सरल मार्ग से अँगरेजों के संकट नहीं बढ़ाये जा सकते तो पापी मार्ग से ही उन्हें क्यों न दुःख में डालना चाहिए? यही सोच कर अँगरेजी किनारे के आसपास जर्मनी ने अपनी पनडुब्बी नौकाओं के प्लेग को अनियंत्रित रूप से संचार करने की आज्ञा दे दी है। इधर दो तीन मास से प्रति दिन तीन चार जहाज इस प्लेगदेवता की भेंट होते रहे हैं। परन्तु फरवरी मास से इस प्लेग का संचार चारों ओर बढ़ा दिया गया है और इस कारण जर्मनी समझता है कि अब इस प्लेग की मृत्युसंख्या प्रति दिन लगभग पन्द्रह बीस तक पहुँचेगी। यही नहीं, बल्कि अमेरिका के जर्मन लोग तो यहां तक कह रहे हैं कि हम अँगरेजों के किनारे तक एक भी जहाज पहुँचने नहीं देंगे। फरवरी के प्रारम्भ में जर्मन प्रधान मंत्री ने प्रकट किया है कि अब एक वर्ष से जर्मनी ने नवीन प्रकार की टारपीडो नौकाएं तैयार की हैं; और इन नौकाओं के प्लेग से अँगरेजी समुद्र को अच्छी बाधा पहुँचाई जा सकी है; तथा इँगलैंड को जहां का तहां घेर रखने में जर्मनी खूब समर्थ हुआ है। इस घिराव से अँगरेजी प्रजा के कष्ट असह्य हो जायँगे; गोलाबारूद-बनाने में जिस सामग्री की आवश्यकता होती है वह उसे नहीं मिल सकेगी; तथा फ्रांस और इटली में पत्थर के कोयले का बिलकुल अकाल हो जायगा और ये देश आपत्ति में पड़ेंगे। अर्थात् जर्मनी का कथन है कि पनडुब्बी नौकाओं के जाल के कारण १९१७ के साल में, इँगलैंड, फ्रांस और इटली भी, संकटों की दृष्टि से, जर्मनी की ही पंक्ति में आ बैठेंगे। इसके अतिरिक्त सैनिक संख्या की अधिकता के बारे में उसका कथन है कि गोला-बारूद का सामान ही जब हमारी पनडुब्बियां समुद्र में डुबा देंगी तब केवल सैनिक संख्या क्या कर सकेगी? इस लिए उसका कथन है कि हमारी पनडुब्बियों का प्लेग यदि चार पांच मास ऐसा ही बढ़ता गया तो आगामि जुलाई-अगस्त मास में अँगरेजों की विस्तृत सेना गोलाबारूद की कमी के कारण शक्तिहीन ठहरेगी; और इँगलैंड की सेना की ओर विशेष ध्यान न रख कर आस्ट्रो-जर्मन लोग रूस तथा इटली का अच्छा पीछा कर सकेंगे। बस, इससे हमारे पाठकों को मालूम हो जायगा कि उपर्युक्त सैनिक नीति-सम्बन्धी विचार-शैली के अनुसार ही जर्मनी ने फरवरी मास से, अपनी पनडुब्बियों को पाप पुण्य का कुछ भी विचार न करते हुए, एक तरफ से सब प्रकार के जहाजों को डुबाने का अधिकार दे दिया है, जिससे कि १९१६ के अखीर में उसके चेहरे पर जो विजय का 'रंग' चमकता था वह १९१७ के अन्त तक भी बना रहे। अच्छा कोई जर्मनी से पूछे कि इस प्रकार यदि उदासीन राष्ट्रों के अधिकार पददलित किये जायँगे तो फिर वे क्या मित्रराष्ट्रों से नहीं मिल जायँगे? परन्तु सेनापति हिंडनबर्ग इस विषय में निश्चिन्त हैं। वे कहते हैं कि चाहे कोई भी नवीन राष्ट्र युद्ध में सम्मिलित हो, जर्मन सेना उसकी एक भी न चलने देगी! इधर अमेरिका ने जर्मनी को स्पष्ट रीति से सूचित कर दिया है कि तुम्हारी पनडुब्बियों के प्लेग से हमारे अधिकार पददलित हो रहे हैं। इसके सिवाय अब अमेरिका और जर्मनी से बोलचाल भी बन्द हो गई है। लोगों का अनुमान है कि यदि अमेरिकन जहाजों को भी इस नवीन जर्मन प्लेग से बाधा पहुँचेगी तो वह भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा किये बिना न रहेगा। परन्तु अमेरिका के पास सारी ८२-९० हजार सेना इस समय है और अतःकारणात्, अमेरिका चाहे युद्ध में शामिल भी हो तथापि अगले साल युरप की सैनिक दशा में विशेष अन्तर पड़ नहीं सकता। हालैंड, डेनमार्क और स्विट्ज़रलैंड की सीमा पर जर्मन सेना की बड़ी भारी छावनी पड़ी हुई है; और इधर रोमानिया का उदाहरण बिचारे इन छोटे छोटे राष्ट्रों के सामने अभी ताजा ही उपस्थित है, इस कारण, अँगरेजी समुद्र के जर्मन अत्याचार से उक्त राष्ट्र चाहे असन्तुष्ट भले ही हों, परन्तु मित्रराष्ट्रों में उनके शामिल होने की सम्भावना नहीं है। स्वीडन जर्मनी की ओर झुकता है और इसलिए नार्वे का अँगरेजों की ओर होना न होना बराबर ही है। अर्थात्, यूरप के छोटे छोटे उदासीन राष्ट्र जर्मनी के अत्याचार के विरुद्ध शिकायत अवश्य करेंगे, परन्तु अन्त में अपने जहाज अँगरेजी व्यापार से निकाल लेने के सिवाय उन्हें अन्य कोई मार्ग नहीं है; और फरवरी के प्रारम्भ में ऐसा ही कुछ राष्ट्रों ने किया भी है। अब यह स्पष्ट है कि जब वसन्तकाल के पूर्व के दो तीन मास लड़ाई की दृष्टि से मन्द हैं, तब अब अगले दो तीन महीनों में लोगों का ध्यान इसी ओर विशेष रहेगा कि इन पनडुब्बियों का प्लेग इँगलैंड को कहां तक बाधा पहुँचाता है; और उस बाधा से इँगलैंड कहां तक अपनी रक्षा कर सकता है।

शीतल छाया।

(लेखक—कविवर बा० मैथिलीशरणजी गुप्त।)

(१)

घूम फिरा चिरकाल मनोमृग ! देख मरीचिकारूपिणी माया,
जीवन हाय ! गँवाया वृथा पर पानी का एक भी बूँद न पाया।
सोच अरे, अब भी मन में थक हार थका मरने पर आया,
भागीरथी निकली जिनसे बस देंगे वही पद शीतल छाया॥

(२)

कैसे मनुष्य कहो तुम हो, यदि हो न तुम्हें निज देश की माया ?
जन्म दिया जिस ने तुम को फिर पाला, बराबर अन्न खिलाया।
नाक की नाक तुम्हारे लिए यहीं चन्द्र की चाँदी जो चाँदनी लाया—
और जो अन्त में देगा तुम्हें निज गोद में शान्ति की शीतल छाया॥

(३)

भारत ! मेरे पुरातन भारत ! नूतन भाव से तू मन भाया,
भूतल छान चुके, तुझ सा पर देश कहीं पर दृष्टि न आया !
भाव कि भाषा कि भेस सदा अपना अपना है, पराया पराया,
माता, पिता, सुत, जाया जहाँ बस है वहीं प्रेम की शीतल छाया॥

(४)

वारिदों से अभिषिक्त करा, मध माधुकरों से शरीर पुछाया,
गन्ध भरा मलयानिल से, जगतीतल में यश-सौरभ छाया।
हिम-शृङ्गों पर बैठ गया, हरियाली ने आसन आप बिछाया,
भारत ! तू ने प्रदान की विश्व को शान्ति-स्वराज्य की शीतल छाया॥

आराधना।

(१)

विश्वदेव ! यह देख तुम्हारी दुर्गम चालें,
किससे क्या क्या कहें ? कहां तक आंसू डालें ?
जी होता है,— तुम्हें सँभालें, देखें-भालें,—
'सुनो, सुनो,'—क्या सुनें ?—भुजाएं स्वयं उठा लें।
'लो, सुनो,'—"सफलता आ रही, किन्तु मृत्यु के साथ है;
"बस, उठो, कर्म करने लगो, जीत तुम्हारे हाथ है॥

(२)

"परम पुण्य का पुंज टूटने वाला ही है,
"स्वत्व-सुधा का भाण्ड फूटने वाला ही है;
"सुखद स्वर्ग के द्वार, सदा को, खुलते ही हैं,
"हम-तुम, विधि की धीर-तुला पर, तुलते ही हैं॥"
बस, सुनते ही सन्देश यह, हम लगे साधने साधना;
शिव के समेत करने लगे श्री-शक्ति-चरण आराधना॥

—"एक भारतीय आत्मा"।

लोकमान्य तिलक का दौड़ा।

(कांग्रेस को जाते आते समय के चित्र।)
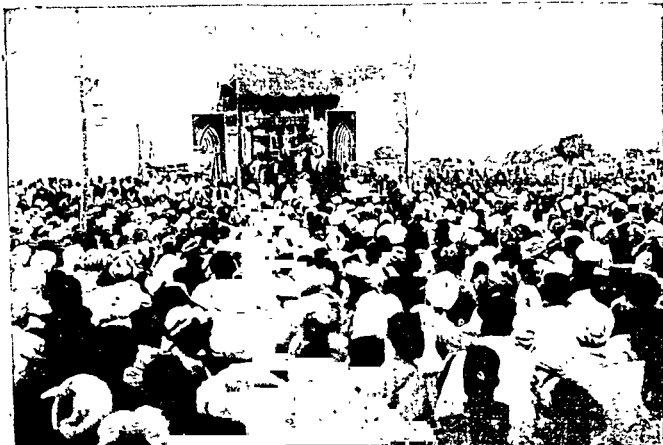
अकोला की सभा में महात्मा तिलक का व्याख्यान।

८ जनवरी को वर्धा स्टेशन पर सिर्फ पांच मिनट में लोकमान्य का स्वागत किया गया।

अकोला में लक्ष्मी-आइल-मिल के कारखाने के सामने लिया हुआ फोटो।

अकोला में लोकमान्य तिलक का जल-विहार।

अखिल भारतीय मादक-द्रव्य-निवारिणी सभा की लखनऊ की बैठक।

बम्बई के इंडियन होमरूल लीग के माननीय कार्यकर्ता।

खड़े हुए—[illegible]।

बैठे हुए—डॉ० [illegible]।
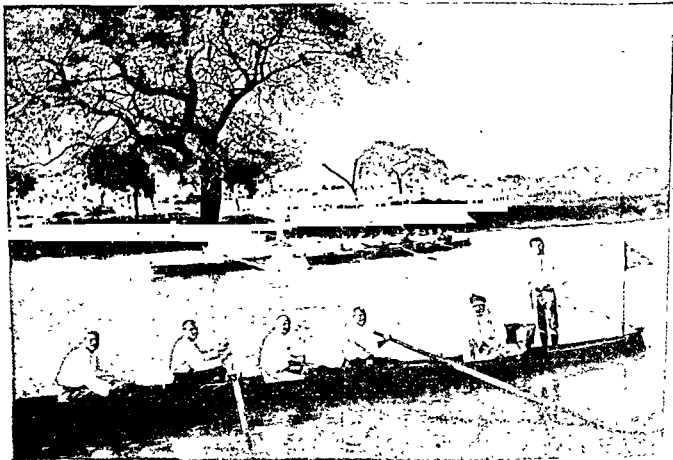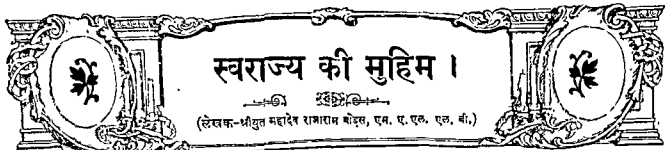
स्वराज्य की मुहिम।

(लेखक—श्रीयुत महादेव राजाराम बोड़स, एम. ए. एल. एल. बी.)

1–Using Lord Hardinge's words—"I hope some day to see India hold a position of equality amongest the Sister nations of which the British Empire is composed."

Lord Chelmsford at Calcutta

2–India must cease to be a dependancy and be raised to the status of Self-Governing as an equal partner with equal rights and responsibilities as an independent unit of the Empire.

Babu A. C. Muzumdar's Presidential Address, Lucknow.

3–Amid the clash of warring interests and the noise of foolish catchwords no cool-headed student of Indian affairs can lose sight of the great obvious truism that *India is in the first and the last resort for the Indians.* Be the time near or distant, the Indian people are bound to attain to their full stature as a Self-Governing nation.

M. A. JINNAH—Presidential Address, All India Moslem League, Lucknow.

गत वर्ष के अन्तिम सप्ताह के, उपर्युक्त तीन महात्माओं के, वचनों की समता यदि देखी जाय तो प्रत्येक को इस बात का आश्चर्य होगा कि एक वर्ष की अवधि में सब प्रकार के लोगों का, स्वराज्य के विषय में, कैसा विचारतादात्म्य हो गया है। यह किसका परिणाम है? समान-संकट के समय लोगों के विचार-प्रवाह एक ही दिशा से बहने लगते हैं। अँगरेजी साम्राज्यनौका महायुद्ध के तूफ़ान में जब गोते खाने लगी तब मार्ग की चट्टानें स्पष्ट दिख पड़ने लगीं। जब तक आनन्दपूर्वक पार लगने का साहस और सामर्थ्य था तब तक इन चट्टानों की कुछ कठिनाई नहीं मालूम हुई, पर तूफ़ान उत्तरोत्तर बढ़ने लगा; और किनारा दूर होने लगा। जो केवट बहुत दिन से शान्त समुद्र में यात्रा करने का आदी हो रहा है उसको यदि एकदम कोई भयंकर प्राणी मार्ग में विघ्न डालता हुआ देख पड़े तो अवश्य ही वह घबड़ा जायगा। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का भी आज कल ऐसा ही कुछ हाल हो रहा है। ढाई वर्ष के महायुद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य की परिस्थिति बिलकुल बदल गई है। सन् १९१६ के शुरू में उस समय के वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने स्पष्ट कह दिया कि स्वराज्य को तुम यदि अपना उद्देश्य मानो तो इसमें कोई हर्ज नहीं; पर हां उसके मिलने की अभी हाल में (Not yet) कोई आशा नहीं। उन्हीं लार्ड हार्डिंज की जगह आये हुए, सैनिक पेशा के वर्तमान वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड, एक वर्ष पूर्ण होने के अन्दर ही कहते हैं, कि वह सुदिन, जब कि भारतवर्ष, साम्राज्यान्तर्गत अन्य राष्ट्रों की बराबरी पर जा बैठेगा, मैं आंखों से देखूंगा! जिस बात के लिए लार्ड हार्डिंज कहते हैं कि, "अभी नहीं" उसी बात के लिए लार्ड चेम्सफोर्ड को विश्वास है कि वे उसको अपनी आंखों से, अर्थात् अपने इसी पंचवार्षिक शासनकाल में, पूर्ण हुई देखेंगे। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि लार्ड चेम्सफोर्ड लार्ड हार्डिंज से अधिक उदार मन के अथवा उच्च विचार के हैं; परन्तु यह कालमहिमा है। १९१६ के ग्रीष्मकाल में जर्मनी पर प्रबल चढ़ाई कर के शत्रु को मिट्टी में मिला देने की जो प्रकट आशा थी सो वर्ष के अन्त में, रोमानिया के निपात से, बिलकुल नष्ट हो गई। एक वर्ष पहले इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ पुरुष ऐसा समझते थे कि यूरोप के शत्रुओं को शीघ्र ही पराजित कर के बाद को फिर ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों और भारतवर्ष की अन्तर्व्यवस्था धीरे धीरे सुभीते के अनुसार सुधारेंगे; और इसी नीति पर आस्किथ-मंत्रि-मंडल अपना राज्यशकट शांति से चला रहा था। परन्तु साल के अखीर में यह छकड़ा उतार पर आ कर एकदम घसरने लगा; और इस कारण लाइड जार्ज के समान मजबूत जवान को, एकदम पहिये में अपना कंधा लगा कर, गाड़ी किसी न किसी तरह, जहां की तहां खड़ी करनी पड़ी। तथापि यह स्थिति बहुत देर टिकनेवाली नहीं है। जान पड़ता है कि इंगलैंड के मुख्य मुख्य राजनीतिज्ञों ने अब यह समझ लिया है कि शत्रु को जीतने के बाद, फ़ुरसत से, दस पांच वर्ष में अपने घर को सम्हालना ठीक न होगा; किन्तु शत्रु के घर पर धावा करने के पहले ही उसे मज़बूत बनाना अपनी रक्षा का उचित उपाय है। अन्यथा, लार्ड चेम्सफोर्ड, भारतवर्ष को, साम्राज्यान्तर्गत सब राष्ट्रों की बराबरी पर बैठाने के लिए जो आज एकदम तैयार होगये हैं, इसकी कुछ भी उपपत्ति नहीं लगती। इसके सिवाय यह भी प्रकट किया गया है कि पहले अपने अकेले बल पर जर्मनी को जित कर के फिर अगली व्यवस्था के विषय में सलाह करने के लिए औपनिवेशिक इंपीरियल कान्फरेंस भी होती रहेगी और उसमें भी उपाध्याय के द्वारा भारत का प्रवेश होता रहेगा; और तदनुसार अब लड़ाई जारी रखने अथवा सन्धि कर लेने का निश्चय करने के लिए, सब उपनिवेशों को और भारत के तीन प्रतिनिधियों को तुरन्त ही बुलाया भी गया है। इससे ज्ञान पड़ता है कि अँगरेज राजनीतिज्ञों को अब यह विश्वास हो गया है कि उपनिवेशों की और भारतवर्ष की सहायता के बिना महायुद्ध में सफलता प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु यह भेदभाव कि, उपनिवेश स्वकीय हैं और भारत देश डिपेंडेन्सी अर्थात् दास है, अभी तक बिलकुल नष्ट नहीं हुई है और इसी कारण, युद्धकौंसिल में भारतीय प्रतिनिधियों का प्रवेश होने पर भी यह शर्त रक्खी गई है कि स्टेट सेक्रेटरी जितना पूछे उतना ही राय उन्हें देनी चाहिये। परन्तु साम्राज्य कौंसिल में भारत के प्रतिनिधियों का सम्मिलित होना भी एक बड़ी बात ही समझना चाहिए। अँगरेज़ी राजनीतिज्ञों ने तब ये जो बातें स्पष्ट-

लार्ड चेम्सफोर्ड।

त की आवश्यकता होती है उस दृढ़ता को प्रत्यक्ष कृति द्वारा
लाना ही राजकीय उन्नति का सच्चा मार्ग है। यह पाठ, लख-
की राष्ट्रीय सभा में, भारतीय नवयुवकों को पहले पहल मिला
और स्वराज्य की मुहिम का यही पहला पाठ है—अतएव अब
देखना है कि इस पाठ के अनुसार कार्य करने में हमारे नवयुवक
कितनी दृढ़ता और तत्परता दिखलाते हैं।

वराज्य की इस मुहिम की पहली मंज़िल यही है कि इँगलैंड से
बात साफ तौर पर कह दी जाय कि वर्तमान महायुद्ध में यदि
ंड देश भारतवर्ष से सहायता चाहता है तो हमें ब्रिटिश
ाज्य में सब प्रकार के समानाधिकार मिलने चाहिएं। साम्राज्य
ाधिकार और उत्तरदायित्व अन्यों के समान ही स्वीकार करने
ध्येय, घटना की पहली धारा में दर्ज है। परन्तु राज्यकर्त्ताओं
ामने उसको स्पष्टता से प्रकट करने का अवसर अब आया
यह आग्रह करने का सुअवसर हमें इतनी शीघ्रता से सौभा-
श ही प्राप्त हुआ है कि साम्राज्यरक्षा का उत्तरदायित्व यदि
अपने सिर पर लेना है तो फिर समानता के अधिकार भी हम
मिलने चाहिएं। अब यह सुअवसर यदि हम ने व्यर्थ ही खो
ा तो फिर यही कहना पड़ेगा कि हमारे समान मूर्ख और
ार में कोई नहीं है। मित्रराष्ट्रों में से सर्विया, बेलजियम, रोमा-
ा नामशेष हो गये। फ्रांस, रूस और इटली हतवीर्य होगये
र जापान तटस्थ है। ऐसी दशा में अगले युद्ध का अधिकांश
र अवश्य ही इँगलैंड के ऊपर आवेगा। यह
र उपनिवेशों और भारतवर्ष की सहायता के
ा इँगलैंड नहीं उठा सकेगा। यह सहायता
ुष्यों की और धन की है। उपनिवेशों से यह
हायता अधिक नहीं मिलेगी सो हम पहले ही
ह चुके हैं। क्योंकि उनकी लोकसंख्या भी कम
और द्रव्यबल भी कम है। हां, भारतवर्ष में
ों, और विशेषकर मनुष्य बहुत हैं। ऐसी
ा में अँगरेजी राजनीतिज्ञ जो यह समझते हैं कि
रत से इस समय साम्राज्य को अच्छी मदद
लेगी सो ठीक ही है। पर भारत ठहरा
डिपेंडेंसी" अर्थात् दास। खुल्लमखुल्ला यदि सहा-
ता की याचना करेंगे तो सिर पर चढ़ेगा और
मानता के अधिकार मांगेगा। अड़ अड़ कर
र, युक्तिप्रयुक्तियों से अभी तक मनुष्य
ा धन एकत्र करने का प्रयत्न किया, पर अब
ागे वह भी फलदायी प्रतीत नहीं होता। तीस
रोड़ लोगों में से दो करोड़ सेना सहज
ी बनाई जा सकेगी; परन्तु इतने लोगों को शस्त्रधारी बनाने पर
भ्यास कैसे रखा जा सके। दो करोड़ काली सेना को कब्ज़े
कंट्रोल) में रखने के लिए, कम से कम उससे आधी, अर्थात् एक
ोड़ गोरी सेना तो अवश्य भारतवर्ष में रखनी चाहिए-यह एक
ारतवर्ष की राज्यशासनप्रणाली का महा सिद्धान्त है। पर इतनी
ोरी सेना लाई कहां से जाय? यह संशयपिशाच जब तक दूर न
ो जाय तब तक भारतवर्ष से पर्याप्त सेना मिलना कठिन है; और
दि मिले नहीं तो चारों ओर से लड़ाई जारी कैसे रखी जाय?
सके लिए उपाय एक ही है और वह-यह कि भारतीय लोगों पर
र्ण विश्वास रख कर और उनको समानता के अधिकार देकर,
नकी प्रसन्नता से, दो चार करोड़ सेना खड़ी की जाय। भारत के
ोगों को जब यह प्रतीति हो जायगी कि ब्रिटिश साम्राज्य के लिए
ड़ने में ही हमारा हित है तब फिर यह बात होने में देर नहीं
गेगी—परन्तु ऐसी प्रतीति कराने के लिए पहले उन्हें समानता के
धिकार देने चाहिएं। हम ऊपर कह चुके हैं कि अँगरेजी राज-
ीतिज्ञों के हृदय में यह बात अच्छी तरह से बैठा देना भारतीय
ताओं का पहला काम है। बीकानेर के महाराज और माननीय
र सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह, ये दो भारतीय सज्जन युद्ध-परिषद के लिए
ुलाये गये हैं। इस समय उनको उपर्युक्त कर्तव्य बजाना चाहिए।
ाज दिन सब प्रकार के भारतीयों की जो मनीषा है, उसे जब ये
" प्रतिनिधि अँगरेजी राजनीतिज्ञों के सामने, निर्भयता से,
ेंगे तब समझा जायगा कि ये दोनों प्रतिनिधि अपने देश-

बीकानेर के महाराज।

बान्धवों की जवाबदारी से मुक्त हुए। केवल अधिकारियों की
खुशामद करने के दिन अब नहीं रहे। अब तो युद्धपरिषद में जाने-
वाले दोनों भारतीय प्रतिनिधियों का कर्तव्य यही है कि वे निर्भी-
कता के साथ यह सूचित करें कि अँगरेजी साम्राज्य की रक्षा और
भारतीय लोगों की उन्नति-ये दोनों बातें किस उपाय से हो सकेंगी।
तथापि इतने से भी काम नहीं चलेगा। यह प्रश्न अभी अलग ही
है कि महायुद्ध में भारतीय लोग यदि सहायता करेंगे तो वह सहा-
यता होगी किस प्रकार की-उसका स्वरूप क्या होगा? केवल
भाड़े की सेना से राज्यरक्षा न कभी हुई है और न हो सकती है।
"मोल के रोने में आंसू और प्रेम नहीं होते।" "ठोंक पीट कर
वैद्यराज" के न्याय से तैयार किये हुए सिपाही उन जर्मनों और
तुर्कों के सामने कैसे टिक सकेंगे जो कि स्वदेश की स्वतंत्रता की
रक्षा के लिए प्राण देने को तैयार हैं? जिन्हें यही नहीं मालूम है
कि हम किस लिए लड़ते हैं-अथवा क्यों प्राण देते हैं उनके शरीर
में-शत्रु के सामने आने पर-वीरश्री कैसे उत्पन्न होगी? बन्दूक
सामने पकड़ी तो सामने ही निशाना मारा और तिरछी पकड़ी तो
निशाना भी वैसा ही उड़ाया—ऐसी यांत्रिक पुतलियों से जर्मनी
के समान बलिष्ठ शत्रु का पराजय होना कदापि सम्भव नहीं है।
इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि जहां मेहनत-मजदूरी करने-
वाले को भी रुपया-बारा आना रोज मिल जाते हैं वहां केवल
ग्यारह रुपये माहवारी पर प्राण देनेवाले मनुष्य कितने मिलेंगे?
काली सेना की नौकरी में मान नहीं, धन नहीं और
स्वदेश के लिए प्राण देने का पुण्य भी नहीं। सुशि-
क्षित लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार स्थान
मिलते नहीं, स्वयंसेवक होने का अधिकार नहीं
और हथियार पकड़ने की आज्ञा नहीं। सहज सी
मुहर्रिरी करने वाले को जब २०-२५ रुपये मिल
जाते हैं तब ११ रु० माहवारी पर नाना प्रकार के
कष्ट और पद पद पर अपमान कौन सहे? अच्छा
सेना में नौकरी ही कर ली और मौका आने पर
बेलजियम या डार्डनेलीज़ के लिए प्राण भी दिये,
पर यदि कोई पूछे कि इससे भारतवर्ष को क्या
लाभ हुआ तो इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं
दिया जा सकता। भारतवर्ष में यथेच्छ सेना न
मिलने के ये जो अनेक कारण हैं, इनको अच्छी
तरह से, युद्धपरिषद के सामने पेश करना यहां से
गये हुए भारतीय प्रतिनिधियों का दूसरा काम है।
इस विषय में उन्हें मुख्य चार बातें मांगनी चाहिएं*
(१) हथियारों का कायदा रद कर के सम्पूर्ण भारतीय प्रजा को शस्त्र

* बम्बई की राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष की हैसियत से भाषण करते समय सर सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह ने ये चार अत्यावश्यक बातें मांगीं.—

"1st We ask for the right to enlist in the regular army, irrespective of race or province of origine but subject only to prescribed tests of physical fitness.

2nd. We ask that the commissioned ranks of the Indian army should be thrown open to all classes of His Majesty's subjects, subject to fair, reasonable and adequate physical and educational tests. We ask that a military college or colleges should be established in India where proper military training can be received by those of our countrymen who will have the good fortune to receive His Majesty's commission.

3rd. We ask that all classes of His Majesty's subjects should be allowed to join as volunteers, subject of course again to such rules and regulations as will ensure proper control and discipline, and

4th. We ask that the invidious distinctions under the Arms Act should be removed."

रखने की आज्ञा दी जाय; (२) स्वदेशरक्षा के लिए स्वयंसेवक बनने की आज्ञा सब भारतीयों को दी जाय; (३) सैन्य में जातिभेद-सम्बन्धी गड़बड़ न रखा जाय; और सब भारतीयों को उनकी योग्यता के अनुसार अफसरों के पद और उनके अनुकूल शिक्षा दी जाय; और (४) गोरे तथा अधगोरे सिपाहियों के समान काले भारतीयों का वेतन और अधिकार भी स्थिर किये जाँय। इन चारों बातों का बीज एक ही है। और वह यही है कि गोरों की समानता का बर्ताव हमारे साथ करो, तो हम भी उनके समान लड़ेंगे। शत्रु की ओर का गोला काले और गोरे का भेद नहीं रखता। इसी तरह सरकार को भी काले गोरे में बिलकुल भेदभाव न रखना चाहिए, इतनी ही हमारी याचना है। साम्राज्य के लिए जब हम प्राण देते हैं तब उस साम्राज्य को भी हमारे साथ समदृष्टि का बर्ताव रखना चाहिए। इधर कुछ दिनों से बंगाली, दक्षिणी और पंजाबी लोगों की विशिष्ट कम्पनियां सरकार ने निकाली हैं, पर शोर यही सुनाई देता है कि उनके लिए पूरे पूरे मनुष्य नहीं मिलते। पर इसका कारण भी क्या कभी किसी ने सोचा है? इन डबल कम्पनियों, और सिपाहियों की अन्य भरती में अन्तर ही क्या है? वेतन वही, दर्जा वही और मान भी वही। अच्छा यदि वेतन का प्रश्न एक ओर रख दिया जाय, तो भी एक भारतीय ग्रेजुएट किसी उद्दण्ड गोरे सार्जेण्ट के अधीन रहना कैसे पसन्द करेगा? अटक के आगे विजयपताका ले जानेवाले मराठे, राजपूत और सिक्ख इस समय भी शौर्यादि गुणों में पीछे नहीं हैं, पर बात यह है कि इतनी निःस्पृहता उनमें नहीं है कि वे रोज प्रत्यक्ष दिख पड़ने वाला जाति-अपमान सह सकें (कहा भी है कि, "यद्यपि जग दारुण दुख नाना। सब से कठिन जाति अपमाना।") वर्तमान महायुद्ध में भारतीय सेना की सहायता यदि चाहिए हो तो यह काले गोरे का जातिभेद एकदम तोड़ कर उपर्युक्त हमारी चारों याचनाएं अंगरेज़ी राज्यकर्ताओं को तत्काल पूर्ण करनी चाहिएं। स्वराज्य की मुहिम की यह दूसरी मंज़िल है। और हमारे भारतीय प्रतिनिधि यदि आगे युद्धपरिषद में ज़ोर दिखलावेंगे तो आशा है कि उपर्युक्त मंज़िल पर शीघ्र ही पहुँच सकेंगे। ७ फरवरी की बड़ी व्यवस्थापक सभा में जब कि वाइसराय ने यह प्रकट ही कर दिया है कि भारतीय लोगों की स्वयंसेवक सेना तैयार की जायगी तब यह आशा रखना कोई अनुचित बात नहीं है कि अन्य अधिकार भी यथावकाश शीघ्र ही मिलेंगे।

इस प्रकार जब स्वराज्य की मुहिम की ये दो मंज़िलें पार हो जायँगी तब फिर अगला मार्ग बहुत ही सहज हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। जब दो तीन करोड़ भारतीय सेना युद्ध तैयारी के साथ रणांगण में पहुँच कर अपना कार्य दिखलावेगी तब भारतीय लोगों की आकांक्षाओं की ओर दुर्लक्ष करना अंगरेज़ी राजनीतिज्ञों के लिए बहुत कठिन हो जायगा। जब यह [illegible] भारतीय सेना अंगरेज़ों के शत्रुओं का विनाश करेगी तब, इसमें शक नहीं, कि वही अंगरेज़ी साम्राज्य की आधारस्तम्भ हो जायगी, और तब फिर भारतीय लोगों की सब आकांक्षाओं को पूर्ण करना [illegible] राजनीतिज्ञों का कर्तव्य हो मालूम होगा। [illegible]

[illegible]

कर्तृत्व से यह दृढ़ता प्राप्त होगी उनकी योग्यता सारे संसार में प्रकट हो जायगी। अंगरेज़ी उपनिवेश तो बिचारे जहां के तहां रह जायँगे; किन्तु जर्मनी और जापान के समान देश, जो आज सारे संसार को भी पादाक्रांत करने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, वे भी तीस करोड़ भारतीयों के सामने सिर नीचा करेंगे। फिर स्टेट-सेक्रेटरी अथवा वाइसराय अथवा इंगलो-इंडियन अधिकारियों की योग्यता भी कितनी रह जायगी? कहने का मतलब यह है कि उपर्युक्त चारों याचनाएं स्वराज्य की याचना के लिए आधारभूत हैं; इस लिए उन्हीं के लिए पहले हमें प्रयत्न करना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी, अपने घर की, अपने कुटुम्ब की और स्वदेश की रक्षा करने का नैसर्गिक अधिकार है। आत्मसंरक्षा के लिए पशुओं को भी परमात्मा ने योग्य साधन दिये हैं। नख, सींग, दांत शारीरिक बल, चपलता, चातुर्य, इत्यादि भिन्न भिन्न साधनों से सब छोटे बड़े प्राणी आत्मसंरक्षा करते हैं। मनुष्य को भी बुद्धि, शक्ति और शस्त्र, इत्यादि रक्षण का सामर्थ्य परमात्मा ने दिया है। हां, भारतीय लोग ही इससे वंचित हैं। भारतीय लोगों के ये नैसर्गिक साधन सरकार ने हरण कर लिये हैं और उनको अति क्षुद्र प्राणियों से भी हीन कर रखा है। भारतीय लोगों के हाथ में स्वयं अपने घर और अपने देश की रक्षा करने का भी अधिकार नहीं रहा। जब गांव में डांकू आवें, अथवा बाघ आ कर संहार करने लगे, तब लोग पुलिस में रिपोर्ट करें, और जब तक पुलिस आ कर उनको बचाने का प्रबन्ध न कर ले, तब तक बाघ अथवा डांकुओं से ठहर जाने के लिए लोग प्रार्थना करें—तब कहीं उनके जानमाल की रक्षा हो! हमारे घर द्वार और जान माल की रक्षा का ठेका राज्यकर्ताओं ने लिया है, और इस कारण तीस करोड़ भारतीय लोग निश्चिंत हो अथवा [illegible] की तरह केवल पालतू जानवर बन गये हैं। अब जब कि स्वयं उन राज्यकर्ताओं की रक्षा करने का ही समय आ गया है तब ये पालतू भेड़ें एकदम कैसे तैयार हों? हमारे नख, सींग, दांत, शस्त्र, अस्त्र, हमारे हाथ से छीन लिये, और हमको अपनी रक्षा करने के योग्य बनाओ, जिससे हम अपनी रक्षा कर के ब्रिटिश साम्राज्य की भी रक्षा करें। बस इतना ही आज हमें सरकार से मांगना है। अब कहीं आ कर कुछ कुछ अंगरेज़ी अधिकारियों के ध्यान में यह बात आने लगी है कि ये तीस करोड़ पालतू भेड़ें रखने की अपेक्षा यदि इनमें से कुछ लाख सेना तैयार हो जाय तो [illegible]

of the Indian states and our desire to see maintained unimpaired our dignity, preveleges and high position."

सचमुच इसमें कोई शंका नहीं कि बीकानेर-महाराज के उपर्युक्त उद्गार बहुत ही उच्च और दूरदर्शिता से पूर्ण हैं, परन्तु उसमें भी उन्होंने, भारतीय राज्यों और ब्रिटिश प्रदेश की पूर्ण एकता करने के विषय में जो इच्छा प्रकट की है, वह बहुत ही महत्त्व की है। भारतीय राजा लोग, उनकी प्रजा, और ब्रिटिश भारत के सब लोग इन सब का यदि अपने भावी ध्येय के विषय में एकमत हो जाय तो भारत में इतनी बड़ी शक्ति उत्पन्न हो जायगी कि अंगरेजी राज्यकर्त्ताओं पर और साम्राज्य के प्रतिस्पर्धियों पर उसका एक समान ही प्रभाव पड़ेगा। भारत की ब्रिटिश प्रजा और रियासतें यद्यपि शासन की दृष्टि से अलग हैं, तथापि उनके परस्पर व्यवहार, हित-सम्बन्ध और अधिकार इतने संलग्न हुए हैं कि वे मानों एक ही नौका में बैठे हुए से हैं। और जब वे एक दूसरे के अधिकारों की रक्षा करेंगे तभी दोनों का कल्याण है। यह बात बीकानेर के महाराज ने सब राजाओं के सन्मुख प्रकट कर दी और उन सब ने इसे स्वीकार भी किया। इससे ज्ञात पड़ता है कि अब भारत में सब प्रकार के लोगों की एकता होने का समय आगया है। यदि स्वराज्य के अधिकार हमें प्राप्त करने हैं तो हम सब को एकचित्त होना चाहिए। हमें भारतवर्ष की सीमा के सब लोगों का एक राष्ट्र बनाना है। ब्रिटिश राज्य और देशी राज्यों का अलग अलग भेद रखने से काम नहीं चलेगा। एक भाई यदि ग्वालियर में है और दूसरा यदि झांसी में है तो क्या दोनों भाइयों में कट-काट थोड़े ही हो सकती है! बाप पूने में स्वराज्य भोगता है और लड़का किसी राजा की रियासत में पड़ा सड़ रहा है—ऐसी स्थिति स्थिर नहीं रह सकती। इसी प्रकार कोई राजा तो पोलिटिकल एजंट के अधीन हो रहा है और उसके भाईबन्द ब्रिटिश राज्य में स्वतंत्रता भोग रहे हैं—यह भी ठीक नहीं दिखाई देता। भारतीय राजाओं की प्रतिष्ठा और ब्रिटिश प्रजा के अधिकार, इन दोनों ही की बराबर रक्षा होनी चाहिए; और इस कार्य में दोनों को परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। भारत में स्वराज्य मांगनेवालों को केवल अपने ही भर के लिए विचार न करना चाहिए—किन्तु स्वराज्य का संगठन ऐसा ही करना चाहिए कि जिसमें सब श्रेणियों और सब वर्णों के लोगों का समावेश हो सके। सारे भारतवर्ष का एक राष्ट्र बनाते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि जिससे साथ साथ के देशी राज्यों का कारोबार पहले सुन्दर रीति से शुरू हो जाय, और वह [illegible] भी शोभा देने लगे। यह कार्य केवल कांग्रेस के प्रस्तावों अथवा स्वराज्यसंघों की हलचल से नहीं हो सकेगा, किन्तु इसका विचार तो हमारे बुद्धिमान राजनीतिज्ञों को करना चाहिए कि जो प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय का हर तरह से सांगोपांग विचार कर सकते हैं। स्वराज्य की मुहिम पर जाने वाले जब उपर्युक्त ध्येय को दृष्टि के सन्मुख रख कर प्रयत्न करेंगे तभी काम में सफलता प्राप्त हो सकती है।

राष्ट्रीय सभा की आकांक्षाओं के दो वर्ग किये जा सकते हैं। एक तो वही हैं कि जिनका उपयोग युद्ध में हो है, और इसलिए, वे अभी की अभी पूर्ण होनी चाहिए; और शेष की, युद्ध के बाद भी यदि मिलें तो कोई हर्ज नहीं। शस्त्र आईन, स्वयंसैनिकता, सैनिक नौकरी, शर्तबन्दी की प्रथा, प्रेसएक्ट, डिफेन्स आफ इंडिया ऐक्ट, और युद्ध-परिषद्विषयक प्रस्ताव पहली श्रेणी में हैं और शेष, अवकाश के अनुसार भी माने जा सकते हैं। पहली श्रेणी के सब विषय लोगों में तात्कालिक असन्तोष उत्पन्न करने वाले हैं, इस कारण जब तक उनका योग्य निराकरण नहीं होगा तब तक, युद्ध के विषय में भारतीय लोगों की जो हार्दिक सहायता चाहिये, वह कदापि नहीं मिल सकती। इस लिए उन शिकायतों को अभी की अभी दूर करने के विषय में यदि हम लोग हठ करें तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं। अब यह समय आ गया है कि हम राज्यकर्त्ताओं से यह बात साफ साफ कह दें कि जब आप काले गोरे का, सब प्रकार का, भेद अभी का अभी एकदम निकाल डालेंगे तभी हम गोरों के साथ ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए खड़े होंगे। ब्रिटिश साम्राज्य हमें चाहिए; परन्तु अछूत जातियों की तरह उसमें रहने के लिए अब हम तैयार नहीं। उपर्युक्त पहली श्रेणी की सारी आकांक्षाओं का तात्पर्य यही है कि जब सब की बराबरी का हमारे साथ भी बर्ताव करोगे तब हम भी साम्राज्यविषयक अपना कर्तव्य पूर्ण करने में किसी से पीछे नहीं रहेंगे। अतएव उपर्युक्त आकांक्षाओं को ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को अच्छी तरह समझा देने के लिए सम्पूर्ण भारतीय राजनैतिक सभाओं को और नेताओं को एकदम प्रबल प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिए। यह प्रयत्न यदि हमारा सफल होगया और युद्ध में हमने सरकार की सहायता की तो समझ लो कि स्वराज्य की मुहिम का आधे से अधिक काम हो चुका। और युद्ध के बाद जो सुधार चाहिए उनका भी प्रायः अधिकांश मार्ग खुल गया। आजकल प्रत्येक विषय में काले गोरे का भेद हमें खलता है—यह भेद एक बार दूर होजाने पर फिर अन्य सुधार जब हम मांगेंगे तब उनके मिलने में कोई बाधा नहीं आवेगी। काले गोरे जब एक बार समान ठहर जावेंगे तब फिर, इस प्रकार के जो अनेक प्रश्न समय समय पर उपस्थित हुआ करते हैं कि, कौंसिल में बहुमत किसका हो, बड़े बड़े स्थान किसको दिये जावें, शासन कार्य किसके हाथ में रहे, सरकारी अमात्यवर्ग किसके मत पर अवलंबित रहे, इन प्रश्नों का फिर विशेष महत्त्व नहीं रहेगा। जब एक बार यह निश्चित हो जायगा कि अंगरेजी साम्राज्य के सब लोग समान ही हैं तब यूरोपियन और भारतीय का भेद नहीं रहेगा और इंग्लैंड को प्रधान तथा भारत को 'डिपेंडेंसी' मानने का भी कोई कारण नहीं रहेगा। भारतवर्ष में कोई भी अधिकारी हो, इस देश के हित के लिए ही काम करेगा; और प्रजा की सम्मति से ही उसे चलना पड़ेगा। फिर आगे और क्या है? काले गोरे का भेद बिलकुल नष्ट करना ही स्वराज्य की इमारत का मुख्य आधार है। भारतवर्ष में आज तक कितने ही राजा बहुत से हो गये, पर [illegible] इस कारण [illegible] नहीं बदी। [illegible] राजा प्रजा का विरोध [illegible] दूर नहीं हो सकता।

सर [illegible]सिंह।

समाज में सावित्री की कथा बांचने से कदाचित् पंडित की ही हँसी होगी; अथवा बहुत होगा तो सेर दो सेर अनाज चढ़ जायगा; पर कथा हवा में ही उड़ जायगी। जो लोग यही नहीं समझते कि व्यवस्थापक सभा में हमारे लोगों का अधिकार होना चाहिए उनके सामने चार-पंचमांश अथवा सात-अष्टमांश के बहुमत की बात निकालने से ही क्या उपयोग होगा? जब ऐसे लोग हमें मिलते हैं जो खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि कौंसिल के भारतीय लोग स्वार्थी होते हैं उनसे तो साहब ही अच्छे होते हैं तब कौंसिल के सुधारों का माहात्म्य उनको कैसे समझाया जाय? इस लिए स्वराज्य के अधिकार मिलने से देश की जो उन्नति होगी उसका सामान्य ज्ञान लोगों को करा देना चाहिए। और इसके लिए गाँव गाँव वक्ताओं को घूमना चाहिए। ईसाई पादड़ियों की तरह-क्रिश्चियन मिशनरियों की तरह-गाँव गाँव जा कर, लोगों में हिलमिल कर, सार्वजनिक व्याख्यान दे कर, और व्यक्तिशः बुद्धिवाद कर के लोगों के मन तैयार करने वाले दृढ़ उपदेशक इस कार्य के लिए हजारों तैयार होने चाहिए और उनके लिए मार्गदर्शक का कार्य मध्यवर्ती नेताओं को करना चाहिए। किसी निश्चित व्याख्यानभवन में निश्चित वक्ताओं के व्याख्यान कराने से उस भवन की दीवारों पर ही चाहे जो प्रभाव हो जाय-परन्तु लोकशिक्षा में इससे कुछ भी मदद नहीं मिलगी। इस लिए गाँव गाँव और लोगों के दरवाजे दरवाजे जा कर उनकी भाषा में व्याख्यान देने चाहिए। घर की खिड़कियों से गोलियां चला कर युद्ध नहीं किया जा सकता-उसके लिए तो समरांगण में ही जा कर शत्रु का मुकाबला करना पड़ता है। स्वराज्य की मुहिम पर जानेवालों को मुँहचोरपन छोड़ कर सामने मैदान में आना चाहिए-सरल बुद्धि से खुले दिल से-लोगों के सामने आ कर उनको अपने पक्ष की ओर झुकाना चाहिए। प्रत्येक सुशिक्षित और अशिक्षित मनुष्य को यह प्रतीति करा देनी चाहिए कि स्वराज्य प्राप्त करना हमारा सब से श्रेष्ठ कर्तव्य-किंबहुना धर्म है। और इस धर्म का पालन करते समय जो विघ्न बाधाएं आवें उनको दूर करने में बारम्बार सहायता करनी चाहिए। धनगर जैसे अपने गिरोह को सम्हालता है उसी प्रकार होमरूल के सभासदों को किसी प्रकार का भी कष्ट न होने देने का जिम्मा नेताओं को लेना चाहिए। लोगों को चेला बना कर संकट के समय गुफा में जा कर छिप जानेवाले गुरू लोगों के उपहासपात्र बनते हैं-यही नहीं किन्तु वे अंगीकृत कार्य का विघात भी करते हैं। इस प्रकार के उदाहरण प्रत्येक देश के इतिहास में पाये जाते हैं। राष्ट्र-कार्य में जो लोग पड़ें उन्हें जान लेना चाहिए कि इसमें बलिदानों की बहुत आवश्यकता रहती है। युद्ध में लक्षावधि सैनिक धारातीर्थ में पतन होते हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश के नाम-निशान भी लोगों को मालूम नहीं होते। परन्तु यह समझ कर कि, चित्रगुप्त के लेखे में छोटे से भी छोटा सत्कार्य आ जाता है, प्रत्येक को राष्ट्रकार्य में अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य भाग लेना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अपने छोटेमोटे परिवार में राष्ट्रकार्य कर सकता है। थोड़ा थोड़ा करने से ही बड़ी भारी संघशक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही राष्ट्रीय प्रयत्नों का रहस्य है। एक गुरू के दस चेलों में से प्रत्येक यदि दस दस चेले तैयार करे तो इस प्रकार परम्परा से थोड़े ही दिनों में सारा राष्ट्र स्वराज्यवादी बन सकता है। पर वास्तव में यह कार्य दृढ़तापूर्वक होना चाहिए। होमरूल-लीगों का मुख्य काम इस समय यही है। कांग्रेस की जंत्री के अनुवाद कर के और उस पर भाष्य लिख कर लोकमत अनुकूल बनाने का सरल और सहज काम कांग्रेसकमेटियां करेंगी; परन्तु गाँव गाँव के अशिक्षित लोगों को उत्कट स्वराज्यवादी बनाने का दुर्घट कार्य होमरूल लीगों को ही करना चाहिए। कई लोगों को यह भय था कि कांग्रेस कमेटियों और होमरूल लीगों में काम के विषय में कहीं स्पर्धा न उत्पन्न हो जाय; परन्तु जैसा कि हमने ऊपर बतलाया है उसके अनुसार यदि कार्यविभाग हो जायगा तो बिगाड़ होने का कोई कारण नहीं रहेगा। ऊंचा-नीचा जमीन साफ़ करके रास्ता तैयार करने का काम होमरूल लीगों को करना चाहिए और उस रास्ते पर पड़े हुए कांकड़ों पर से जाने का काम प्रतिष्ठित कांग्रेस कमेटियों को करना चाहिए। इस प्रकार कार्यविभाग कर देने से कांग्रेस कमेटियां निर्भय रहेंगी और स्वतंत्र स्थापित होनेवाली होमरूल-लीगों के हाथ पैर कांग्रेस की ढकोसलेबाज जंत्री से नहीं जकड़ सकेंगे। स्वराज्य की मुहिम शुरू करते समय भिन्न भिन्न संस्थाओं को, इसी प्रकार कार्य-विभाग करके अपने अपने कार्य का मार्ग निश्चित कर लेना चाहिए, इससे सभी का सुभीता रहेगा।

अस्तु; यहाँ तक स्वराज्य की मुहिम का साधारण दिग्दर्शन कराया गया। सच तो यह है कि इस समय, लोकशिक्षा का जो कार्य करने के लिए राष्ट्रीय सभा की अनुज्ञा दी गई है उतना ही काम यदि अच्छी तरह किया जाय तो बहुत है। इस मुहिम का दूसरा अंग, स्वराज्य के अधिकार प्राप्त करने के लिए विलायत को जा कर प्रयत्न करना है। इसका विचार करना इस समय बहुत ही कठिन है। इस कार्य के वास्तव में तीन भाग होते हैं—(१) गवर्नमेंट आफ इंडिया बिल का ऐसा ठीक ठीक बिल तैयार करना कि जिससे कांग्रेस की जंत्री के अनुसार सारे सुधार अमल में लाये जा सकें; (२) उसके विषय में इंगलैंड में लोकमत अनुकूल करने के लिए नेताओं का डेप्युटेशन भेजना; और (३) वह बिल पार्लमेंट के सामने ला कर पास करा लेना। ये तीनों बातें करने के लिए इस समय युद्ध की बड़ी अड़चन है। इस वर्ष युद्ध अपने पूरे स्वरूप में आनेवाला है, इस कारण अन्य किसी बात की ओर भी विलायत वालों का ध्यान नहीं जा सकता। स्वयं इंगलैंड के साम्राज्य के सुरक्षित रहने के लिए जहां चिन्ता उत्पन्न हो रही है वहां भारत की कौंसिल के सुधारों का कौन विचार करता है? सम्पूर्ण घर में आग लग जाने पर एक आध कोठरी को शृंगारने का विचार कोई नहीं करेगा। इस लिए महायुद्ध के समाप्त होते तक कायदे का सुधार और नेताओं का डिप्युटेशन मन का मन ही में रखना पड़ेगा। इसके सिवाय प्रस्तुत महायुद्ध के निमित्त से भारत की भावी स्थिति में क्रान्ति करनेवाले अनेक नवीन प्रश्नों के उठने की भी सम्भावना है, जर्मनों की अन्तिम संधि में तुर्किस्तान, अरबिस्तान, ईरान, हिन्दुस्तान, और अफगानिस्तान, इन पांचों देशों का कुछ न कुछ प्रबन्ध किया जायगा; इसके अतिरिक्त भारतवर्ष और अँगरेजी उपनिवेशों का परस्पर-सम्बन्ध भी निश्चित करना पड़ेगा; और स्वयं भारतवर्ष में राजा-महाराजा और ब्रिटिश प्रजा का मेल मिलाना पड़ेगा, साम्राज्यरक्षा के लिए यदि नवीन भारतीय सेना तैयार की गई तो उसका भी स्थायी बन्दोबस्त करना पड़ेगा। इसी प्रकार भारत में यदि नवीन-समुद्री सेना तैयार करनी पड़ी तो और भी कितने ही नवीन प्रश्न उठेंगे। मतलब यह है कि वर्तमान महायुद्ध जब तक समाप्त न हो जाय तब तक भारत की भावी राज्यप्रणाली के विषय में निश्चित और पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हां, इतना अवश्य स्पष्ट दिख रहा है कि अब भारत की यह वर्तमान परावलम्बी स्थिति नहीं रहेगी; और, इस युद्ध के बाद, संसार के उन्नतिशील राष्ट्रों में हमें कोई न कोई स्थान अवश्य मिलेगा। अब यह स्थान किस श्रेणी का होगा, ऊपर की श्रेणी का होगा या नीचे की श्रेणी का होगा यह बात भारतीय लोगों के कर्तृत्व और बुद्धिमत्ता पर अवलम्बित रहेगी। सम्पूर्ण देश के हम सब लोग तैयार हो कर, इस साम्राज्य के संकट के समय यदि अपना गौरव स्थापित कर लेंगे तो हमारा नम्बर ऊपर आवेगा अन्यथा नीचे ही पड़े रहेंगे। भारत के भावी इतिहास में यह समय संक्रमणावस्था का, अतएव महत्व का, है। देश की सात आठ व्यवस्थापक सभाओं में अथवा म्युनिसिपैलिटियों में हमें बहुमत मिल जाने का प्रश्न तो इस समय बिलकुल गौण हो रहा है-वास्तविक प्रश्न तो इस समय यही उपस्थित है कि संसार के उन्नतिशील राष्ट्रों में भारत को उच्च स्थान कैसे मिलेगा। अब प्रत्येक भारतीय मनुष्य को इस बात का विचार आरम्भ कर देना चाहिए कि ब्रिटिश साम्राज्य में रह कर जगत् की राजनैतिक हलचल पर हम अपना प्रभाव कैसे डाल सकते हैं। यह ठीक है कि पहले हमें अपने घर की ही उन्नति करना है; पर साथ ही यह न भूलना चाहिए कि घर की उन्नति करते समय भी पड़ोसियों पर अपना प्रभाव जमाना पड़ता है। इस लिए भारत की भावी दशा का विचार करते समय सारे संसार की राजनैतिक घटनाओं और क्रांतियों का भी हमें विचार करना चाहिए। बात यह है कि अब आगे से भारतवर्ष संसार की राजनीति का एक मुख्य केन्द्र होनेवाला है, इस लिए हमारे नेताओं और देश के विचारशील लोगों को, अपने देश के हितसाधन की दृष्टि से, जगत् के अन्य राष्ट्रों की राजनीति का भी विचार आरम्भ कर देना चाहिए। अस्तु। यह एक स्वतंत्र विषय है। इस लिए इस पर फिर कभी विचार करेंगे।

लखनऊ की कांग्रेस के चित्र।

कांग्रेस-मण्डप में प्रवेश करने का मुख्य द्वार।

[illegible]

कांग्रेस मण्डप के द्वार के पास स्वा० का० स० के अध्यक्ष छो० लै० गवर्नर का स्वागत करते हैं।

मुस्लिम लीग का अधिवेशन

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! तेजस्विता दीजिए । देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

भाग ७] फाल्गुन, सं० १९७३ वि०—मार्च, स० १९१७ ई० [संख्या ३

श्रीमद्भगवद्गीता-रहस्य और मेरे स्वतन्त्र विचार।

(लेखक—श्री० पं० घनश्याम जी शर्मा शास्त्री, संस्कृत-प्रोफेसर, सेंट जान्स कालेज, आगरा ।)

हिन्दू-शास्त्रों में "भगवद्गीता" एक अनुपम पुस्तक है, जिसको प्रत्येक हिन्दू वेद वेदान्तों का सारभूत मानता है और जिसको उपदेशरूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है-जब कि वह युद्ध में घबड़ा कर अस्त्र-शस्त्र त्याग कर युद्ध से नितान्त उपरत हो गया था। इस उपदेश को पा कर अर्जुन को यथार्थ ज्ञान का लाभ हुआ। फिर युद्ध कर विजय प्राप्त किया। गीता पर कम से कम २०० या ३०० टीकाएं या भाष्य हैं और अनुवाद भी प्रायः सब ही भाषाओं में हो चुके हैं।

धर्मप्रतिष्ठापनार्थ जो जो पूज्यपाद महानुभाव आचार्य आविर्भूत हुए हैं, उन सभों ने ही इस ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और प्रायः सभों ने ही अपने अपने सिद्धान्तानुसार इसका भाष्य कर के इस पर अधिकार जमा लिया और इसके द्वारा अपने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। इस समय यह कहना उचित नहीं है कि उनमें किस किस का सिद्धान्त सत्य और किस किस का असत्य है। उनमें ही एक गीता रहस्य है जो लोकमान्य तिलक महाराज का लिखा हुआ है।

गीता में मुख्यतः तीन काण्ड हैं—ज्ञान, उपासना और कर्म। हर एक भाष्यकार ने इन तीन में से एक को प्रधानता और शेष दो को अप्रधानता दी है। भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्य जी ने ज्ञान काण्ड को प्रधानता और भगवान् श्रीरामानुजाचार्य जी ने उपासना काण्ड को प्रधानता दी है।

परन्तु अब थोड़े ही समय से, ज्यों ज्यों मनुष्यों में आलस्य और अज्ञान बढ़ता जा रहा है, उस दोष से स्वयं मुक्त होने के लिए, उस दोष को वेदान्त शास्त्र अथवा गीता-शास्त्र के ऊपर आरोपित करते हैं कि—"गीता अथवा वेदान्त, जो ज्ञान काण्ड अथवा उपासना काण्ड को प्रधानता मानता है, और कर्मत्याग की भी शिक्षा देता है, उससे बहुत हानि हुई और होने की सम्भावना है। अतः इसका सिद्धान्त कर्मकाण्ड प्रधान होना चाहिए, जिससे मनुष्य कर्मयोगी बने," इत्यादि इत्यादि।

परन्तु उनकी यह युक्ति तो इसी से खण्डित होती है कि गीता के वक्ता उपदेष्टा भगवान् श्रीकृष्ण, अथवा ज्ञान, उपासना की प्रधानता माननेवाले भगवान् श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य से अधिक कर्मयोगी दूसरे कौन हुए या हैं!

गीता या वेदान्त शास्त्र पर यह दोषारोपण करना कि, कर्मत्याग की शिक्षा से यह आलसी बनाते हैं, नितान्त निर्मूल है। क्योंकि विना ज्ञान काण्ड को प्रधानता दिये कोई भी कर्मयोगी बन नहीं सकता। अस्तु।

इस विषय में जो कुछ मैं ने गुरुउपदेशामृत पान किया है और अपनी आत्मा में विचार कर जो कुछ अनुभव किया है, वह लिखता हूं। मैं जो अपने सिद्धान्त का "स्वतन्त्र विचार" नाम रखता हूं, उसका मुख्य कारण यही भय है कि कदाचित् शास्त्र मेरे सिद्धान्त की पुष्टि न करें और शास्त्रों के माननेवाले मेरे सिद्धान्त का अनादर करें। यदि विद्वानों की सम्मति में मेरा यह सिद्धान्त शास्त्रानुकूल निकला तो मैं इस सिद्धान्त के "स्वतंत्र-विचार" नाम की जगह "शास्त्र सम्मत विचार" नाम रख दूंगा। अस्तु। इन तीनों काण्डों में वस्तुतः कोई भेद नहीं। हां, अवस्था भेद से भेद है। जैसे एक मनुष्य की बाल्य, यौवन और वृद्धत्व यह तीन अवस्थायें होती हैं, ऐसे ही एक वस्तु की ज्ञान, उपासना और कर्म इन नामों से तीन अवस्थायें होती हैं।

जिस वस्तु की यह तीन अवस्थायें हैं, उसकी वस्तुतः सात अवस्थायें हैं। उन सातों में तीन तो यह हैं-शेष चार में से कोई तो इन्हीं तीनों के अन्तर्गत हैं और कोई अनुपयोगी समझ कर छोड़ दी गई हैं। ये सात अवस्थायें क्रमशः यह हैं-१ आत्मा, २ ज्ञान, ३ भाव, ४ इच्छा, ५ कर्म, ६ भोग और ७ फल (सुखदुःख)। आत्मा की ही एक अवस्था ज्ञान है। वह ज्ञान जब वृद्धि तथा स्थिति को प्राप्त होता है तो वही भाव कहलाता है। भाव ही वृद्धि, स्थिति को पहुंच कर इच्छा रूप में परिणत होता है। इसी प्रकार इच्छा-वृद्धि-स्थिति को पा कर कर्मरूप में परिणत होती है और कर्म से भोग (पदार्थ) मिलता है और भोग से फल (सुखदुःख) होते हैं। संसार में मनुष्य इच्छा ही कर काम करता है। जब इस कर्म का फलोदय होता है-और वह फल दुःखरूप होता है तब वह पश्चात्ताप करता है कि मैं ने ऐसा कोई अच्छा कर्म नहीं किया, जिससे फल मुझको सुख होना चाहिये। परन्तु यह उसकी भ्रान्ति है, क्योंकि संसार में धन, स्त्री, पुत्रादि पदार्थ सुख के भी कारण होते हैं और दुःख के भी। कोई इस बात को नहीं कह सकता कि अमुक पदार्थ तो सुख का ही कारण है, दुःख का कारण नहीं।

यह स्पष्ट सिद्ध है कि संसार का जो पदार्थ एक को सुख देता है। वही दूसरे को दुःख दे सकता है। इसका कारण जब हम विचारते हैं तो यही प्रतीत होता है कि [illegible]

पदार्थ जो मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, वे उनके कर्मजन्य हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं-एक सत् दूसरा असत्। सत् कर्म से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वे सुख के कारण होते हैं और जो पदार्थ असत् कर्म से प्राप्त होते हैं, वे दुःख के कारण होते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि आज कल मनुष्यों में अविद्या-देवी का यहाँ तक साम्राज्य हो गया है कि पदार्थ के बाह्यस्वरूप को देख कर ही उनको उत्तम अथवा अनुत्तम बतलाते हैं। प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों में यह शक्ति थी कि पदार्थ के बाह्य-रूप मात्र को देख कर वे कह सकते थे कि अमुक पदार्थ अमुक को सत्कर्म-जन्य होने से सुख का अथवा असत्कर्मजन्य दुःख का कारण होगा। इस कर्म मीमांसा का जानना, अर्थात् पदार्थ के बाह्य-रूप को देख कर उसके कारण कर्म की सत्ता या असत्ता को जानना ही कर्म-योग है। अस्तु।

यह तो सिद्ध हुआ कि सुख-दुःख मनुष्य को पदार्थ द्वारा होते हैं। सत्कर्मजन्य पदार्थ सुख के और असत्कर्म जन्य पदार्थ दुःख के कारण होते हैं। परन्तु कर्म के दो प्रकार होने का क्या कारण? इसका उत्तर यह है कि कर्म इच्छा-जन्य है। सो सदिच्छाजन्य कर्म सत्कर्म और असदिच्छा-जन्य कर्म असत्कर्म होता है। इसी प्रकार इच्छा भावजन्य होती है। सो सद्भाव-जन्य इच्छा सदिच्छा और असद्भाव जन्य इच्छा असदिच्छा होती है।

ऐसे ही भाव होता है—ज्ञान-जन्य। और ज्ञान दो प्रकार का होता है-एक यथार्थ ज्ञान और दूसरा अयथार्थ ज्ञान। विशेष कर शास्त्रों में यथार्थ ज्ञान ही "ज्ञान" पदवाच्य है और अयथार्थ ज्ञान को "अज्ञान" अथवा "विपरीत-ज्ञान" कहते हैं। आज कल यथार्थ और अयथार्थ ज्ञान के भेद को न देख सकने के कारण अयथार्थ ज्ञान को भी ज्ञान में शामिल कर लेते हैं।

अब हमको विचार यह करना है कि कर्म-प्रधानता में गीता का तात्पर्य है अथवा ज्ञान प्रधानता में। तो हम तो यही कहेंगे कि ज्ञान-प्रधानता में। क्योंकि यदि हमको यथार्थ ज्ञान है तो हमारे भाव, इच्छा, कर्म सभी सत् होंगे। और सत् के द्वारा हमको सुख मिलता। और यदि हमारा ज्ञान अयथार्थ हुआ तो हमारे भाव, इच्छा, कर्म सभी असत् होंगे—जो दुःख के कारण हैं।

[illegible] उन्नति नीचे से ऊपर चढ़ने को कहते हैं, न कि नीचे गिरने को। यदि ऊपर से नीचे गिरना भी उन्नति है तो हम उनसे पूछते हैं कि—अवनति किस को कहेंगे? यदि कहो कि नीचे से ऊपर जाना अवनति है, तो अवश्य ही हमारे और उनके ज्ञान में विपरीतता हुई। और यह ज्ञान की विपरीतता सब दुःखों का मूल है।

हाँ यह हो सकता है कि जैसे आज कल पाश्चिमीय शिक्षा से [illegible] उपनिषदों को छोड़ कर भौतिक (पदार्थ-विज्ञान) दर्शन में [illegible] है और [illegible] ही उनके [illegible] नहीं होता। ऐसे लोगों को उपनिषद् पर लाने के लिये ही कर्म-प्रधानता में तात्पर्य बताना आप तो ठीक है, क्योंकि ऊपर चढ़ना क्रमशः सीढ़ी-बसीढ़ी होता है। परन्तु, आश्चर्य इसका है कि भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीशंकराचार्य की बुद्धि "भौतिक काण्ड" तक पहुँची ही नहीं, अतएव उन्होंने कहीं भी भौतिक-काण्ड नहीं माना। और आज कल पाश्चिमीय शिक्षा की कृपा से हमारे भारत में भौतिक काण्ड की उन्नति जोर पकड़ गई है सो न तो प्रयोजन उनको ज्ञान से, और न उपासना तथा कर्म से। हाँ, पदार्थ-प्राप्ति के लिये तो वे पाश्चात्यों से भी अधिक लालायित हैं।

यह दूसरी बात है कि उनको पदार्थ प्राप्त नहीं होते। ऐसे लोगों को कर्म-प्रधानता में तात्पर्य बतलाया जावे तो उचित है। क्योंकि वे इसको मानने में शीघ्र उद्यत हो जावेंगे। वे खूब जानते हैं कि बिना कर्मों के पदार्थ प्राप्त नहीं होंगे; अतएव कर्म करने चाहिएं और कर्म की प्रधानता में ही गीता आदि शास्त्रों का तात्पर्य मानना चाहिए। परन्तु जो ऊपर चढ़ने को उन्नति मानते हैं वे तो कर्म से उपासना पर पहुँचेंगे और उपासना से ज्ञान पर उनको अवश्य जाना होगा। जैसे पदार्थोन्नति के प्रवाह में पड़े हुए मनुष्य कर्म या इच्छा के सत् या असत् होने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार कर्म की प्रधानता माननेवाले भी इच्छा और ज्ञान के सत् अथवा असत् होने की परवाह नहीं करते। हमको यदि कर्म विषय में उन्नति करनी है तो पहिले हमको इच्छाओं की शुद्धि करनी होगी और उससे भी पहिले यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना होगा, और इसी लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

> "इदं ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
> अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि॥"

मैंने तुझ से अति गोप्य ज्ञान कहा, यदि तू अहंकारवश न सुनेगा तो नष्ट हो जावेगा।

स्मरण रहे कि भगवान् ने अर्जुन का अयथार्थ ज्ञान दूर करके यथार्थ ज्ञान का उपदेश दिया है। जब मनुष्य को यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब तो उसके इच्छा, कर्म, पदार्थ आदि सब ही सत् हो जाते हैं। अर्जुन के उत्तर से भी यही स्पष्ट झलकता है कि—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" मेरा मोह नष्ट हुआ, स्मरण आ गया।

आजकल प्रत्येक मनुष्य दैव और ईश्वर पर अनास्था रखते हुए पुरुषार्थ वादी बनना चाहते हैं। परन्तु पुरुषार्थ का लक्षण अभी तक वह स्थिर नहीं कर सके हैं। हमको पुरुषार्थ का लक्षण जिस सूत्र में मिला है, वह यह है—

> "इच्छाविवेकशुद्धिसाधनं पुरुषार्थः।"

इच्छाओं का उदय प्रत्येक प्राणी को होता ही है; परन्तु उन इच्छाओं को पूर्ण करने से पहिले यह विवेक अर्थात् विवेचन करना होगा कि हमारी यह इच्छायें योग्य हैं अथवा अयोग्य। और यदि अयोग्यता हो तो उस अयोग्यतांश को निकाल कर इच्छाओं को पूर्ण करना चाहिए। इसी अभिप्राय का बोधक सूत्र है—इच्छाविवेकशुद्धिसाधनं पुरुषार्थः। इति।

नोटः—[illegible]

स्मृति।

[illegible]

[illegible]

आयुर्वेदीय यंत्र, शस्त्र और शस्त्रक्रिया।

पश्चिमी शिक्षा का इतना अधिक प्रभाव हमारे देश में पड़ा है कि उसके चमकदार प्रकाश के सामने हमारे नवयुवकों की आंखें चौंधा गई हैं; और उनको ऐसा जान पड़ता है कि पश्चिमी सभ्यता के समान श्रेष्ठ सभ्यता धरती की पीठ पर कभी थी ही नहीं। भारत की प्राचीन सभ्यता का इनको कुछ भी अभिमान नहीं होता–किंबहुना इनमें कई नवयुवक तो भारत की प्राचीन सभ्यता को जंगली समझते हैं; और कई कहते हैं कि भारत ने प्राचीन काल में आध्यात्मिक उन्नति चाहे जितनी की हो, पर भौतिक उन्नति उन लोगों को मालूम ही नहीं थी। कई नवयुवक प्राचीन काल में भौतिक विज्ञान का भारत में प्रचार मानते ही नहीं। परन्तु हमारे नवयुवकों का अपने भूतकाल के विषय में जो इतना भ्रम पाया जाता है उसका कारण उनका तत्सम्बन्धी अज्ञान ही है। वर्तमान शिक्षाप्रणाली में पूर्वीय साहित्य का समावेश ही नहीं किया गया है, और पश्चिम का प्रकाश स्वाभाविक ही इस समय आ रहा है; इसी से हमारे नवयुवक चकाचौंध में पड़ गये हैं; और अपना भूतकाल उन्हें अन्धकारमय दिखाई देता है।

कई पश्चिमी सभ्यता के चश्मे से देखने वाले कहते हैं कि "जब तुम कोई पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नतिपूर्ण बात देखते हो तभी उसे अपने प्राचीन ग्रन्थों में खींचतान कर निकालते हो, और अपनी प्राचीन सभ्यता का झूठा अभिमान प्रकट करते हो। वास्तव में भारत की प्राचीन सभ्यता में ऐसी कोई अभिमानयोग्य बात नहीं है जो वर्तमान पश्चिमी सभ्यता से मुकाबला कर सके।" ऐसे लोगों से हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि भारतवर्ष राष्ट्र का उद्धार कदापि हो नहीं सकता, जब तक कि इसकी सन्तान अपने भूतकाल के गौरव का अभिमान, वर्तमान काल के प्रयत्न पर विश्वास और भविष्य काल की आशा पर आधार न रखे। क्योंकि इसका लक्ष्य वर्तमान पश्चिमी सभ्यता नहीं है, किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता ही इसका लक्ष्य है। पूर्व से ही प्रकाश पश्चिम की ओर गया है, और अब वही परावर्तित हो कर फिर पूर्व की ओर आ रहा है; इस प्रकाश की पहचान कर इसको फिर से अपनाना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

अस्तु, आयुर्वेद की शस्त्रक्रिया का वर्तमानसमय में लोप हो जाने के कारण इसके विषय में भी कई लोगों का ऐसा ही विचार है कि आयुर्वेद में शस्त्रक्रिया है ही नहीं। परन्तु यह बिलकुल भ्रम है। सुश्रुत और वाग्भट्ट के देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ढाई हजार वर्ष पहले भारतवर्ष में शस्त्रक्रिया का पूरा पूरा प्रचार था। आयुर्वेद में आत्रेय सम्प्रदाय और धन्वंतरिसम्प्रदाय अलग अलग और बड़े महत्वपूर्ण हैं। पहले सम्प्रदाय के वैद्य औषधों से ही चिकित्सा करते थे, और दूसरे सम्प्रदाय के वैद्यों का विशेष ध्यान शस्त्रक्रिया की ओर था। आयुर्वेद के अष्टांगों में से शल्य (शस्त्रकार्य) एक विशेष अंग है। शस्त्रसाध्य रोगों और औषधिसाध्य रोगों का विवेचन अलग अलग भी इसी कारण किया गया है। धन्वन्तरिसम्प्रदाय के वैद्यों को शस्त्रकर्म कितने महत्व का जान पड़ता था सो सुश्रुतसंहिता के इन वाक्यों से प्रकट हो जायगा:—

[illegible]

वैसा सुश्रुत, स्वस्थपुरुषों की स्वास्थ्यरक्षा करना और रोगियों को रोगमुक्त करना आयुर्वेद का प्रयोजन है। आयुर्वेद का [illegible] है। इस [illegible] का विवेचन [illegible], अनुमान और उपमान प्रमाणों के अनुकूल है। इसका विवेचन [illegible]। आयुर्वेद के [illegible] है कि इसमें [illegible] है।

इस अवतरण से यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि शल्यतंत्र को कितना और किस कारण महत्व दिया गया था। बात यह है कि बौद्धधर्म का प्रचार होने पर जब उस धर्म को राजाश्रय मिल गया तब शवच्छेदादिक क्रियाएं कानून से बन्द कर दी गईं; और ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाने के कारण औषधि से ही सारे रोग अच्छे करने की चाल पड़ गई, तथा शल्यतंत्र का प्रचार बन्द हो गया। तो भी शल्यतंत्रानुसार चिकित्सा करने वाले वैद्य अब भी कहीं कहीं पाये जाते हैं। नासिक के स्वर्गीय वैद्य श्री० गोपालराव थियलकर, गर्भ के अटक जाने पर, अथवा पेट में ही बच्चे के मर जाने पर, शल्यतंत्रोक्त क्रिया से ही स्त्रियों की जान बचाते थे। कहते हैं कि उनके पास सौ वर्ष पहले के, शल्यतंत्रानुसार तैयार किये हुए, शस्त्र मौजूद थे। ढाई हजार वर्ष पूर्व के लिख रखे हुए आयुर्वेदीय यंत्र-शस्त्रों के वर्णन जब हम अपने ग्रन्थों में पढ़ते हैं तब स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वर्तमान पश्चिमी शस्त्रक्रिया में उपयुक्त होने वाले शस्त्र उन्हीं वर्णनों के अनुसार तैयार किये गये हैं; और अनेकों के नाम भी वही बने हुए हैं। इतिहास की दृष्टि से विचार करने पर जान पड़ता है कि आयुर्वेदीय शस्त्रक्रिया का ज्ञान भारतवर्ष से पहले अरब में, और अरब से फिर इजिप्ट और ग्रीस में गया। इसके बाद यूरप के अन्य देशों में उसका प्रचार हुआ। अच्छा, अब हम पहले यंत्र शस्त्रों का ही विचार करते हैं।

आयुर्वेदीय यंत्र।

यंत्र एक सौ एक हैं। पर उनमें शस्त्रक्रिया करने वाले का हाथ ही प्रधान यंत्र है। हाथ ही यदि अच्छा क्रियाकुशल न हो तो सारे यंत्र निरुपयोगी हैं। यंत्रों के ये छै भेद हैं—स्वस्तिक यंत्र, संदंशयंत्र, तालयंत्र, नाडीयंत्र, शलाकायंत्र, और उपयंत्र। ये सब यंत्र अच्छी धातु के तैयार करने चाहिएं। उत्तम फौलाद न मिलने पर उसकी जगह अन्य किसी अच्छे पदार्थ का उपयोग करना चाहिए। इन यंत्रों के मुख भिन्न भिन्न पशुओं अथवा पक्षियों के मुख के समान, अथवा ग्रन्थ में लिखे अनुसार, अथवा अन्य किसी यंत्र के समान अथवा प्रसंगानुसार जैसे उचित हों, बनाने चाहिए; ताकि शरीर के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न कार्य सुलभता से किये जा सकें। इससे यदि कोई यंत्रों के मुख पर उन पशु या पक्षियों के मुख, आंखें या कान बनाने का प्रयत्न करेगा तो हास्यास्पद होगा। सादृश्य सिर्फ मुख के ही आकार का होना चाहिए।

[illegible]

[illegible]

यंत्रों का जो परिमाण बतलाया गया है उससे कम अथवा अधिक परिमाण के यंत्र न होने चाहिएं। उनमें से कुछ तीक्ष्ण मुख के और कुछ चिकने मुंह के रहने चाहिएं। यंत्र अच्छे मजबूत और देखने में भी सुन्दर होने चाहिए और उनकी डंडियां और मूठें ऐसी होनी चाहिए जो अच्छी तरह पकड़ी जा सकें। इस से जाना जा सकता है कि यंत्र तैयार करने में कितनी सावधानी रखी जाती थी।

स्वस्तिकयंत्र।

जिन यंत्रों के दोनों फल × इस चिह्न के समान एक पर एक जुड़े रहते हैं उनको स्वस्तिक यंत्र कहते हैं। स्वस्तिक यंत्रों की लम्बाई १८ अंगुल होनी चाहिए। इनके मुख सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, भालू, चीता, बिल्ली, शृगाल, हरिण, काक, कंक, कुरर, चास, भास, बाज, उल्लू, चील, गृध्र, क्रौंच, भृंगराज, अंजलिकर्ण, अवभंजन और नन्दीमुख के मुख के सदृश होने चाहिएं। इनके दोनों फल [illegible] के समान कील से जकड़े हुए रहने चाहिए; और इनकी डंडियां मूल में अंकुश की तरह मुड़ी हुई रहनी चाहिएं। शरीर में हड्डी, [illegible] अथवा कोई और [illegible] चुभ कर रह

पदार्थ जो मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, वे उनके कर्मजन्य हैं। कर्म दो प्रकार के होते हैं-एक सत् दूसरा असत्। सत् कर्म से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वे सुख के कारण होते हैं और जो पदार्थ असत् कर्म से प्राप्त होते हैं, वे दुःख के कारण होते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि आज कल मनुष्यों में अविद्या-देवी का यहां तक साम्राज्य हो गया है कि पदार्थ के बाह्यस्वरूप को देख कर ही उनको उत्तम अथवा अनुत्तम बतलाते हैं। प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों में यह शक्ति थी कि पदार्थ के बाह्य-रूप मात्र को देख कर वे कह सकते थे कि अमुक पदार्थ अमुक को सत्कर्म-जन्य होने से सुख का अथवा असत्कर्मजन्य दुःख का कारण होगा। इस कर्म-मीमांसा का जानना, अर्थात् पदार्थ के बाह्य-रूप को देख कर उसके कारण कर्म की सत्ता या असत्ता को जानना ही कर्म-योग है। अस्तु।

यह तो सिद्ध हुआ कि सुख-दुःख मनुष्य को पदार्थ द्वारा होते हैं। सत्कर्मजन्य पदार्थ सुख के और असत्कर्म-जन्य पदार्थ दुःख के कारण होते हैं। परन्तु कर्म के दो प्रकार होने का क्या कारण? इसका उत्तर यह है कि कर्म इच्छा-जन्य है। सो सदिच्छाजन्य कर्म सत्कर्म और असदिच्छा-जन्य कर्म असत्कर्म होता है। इसी प्रकार इच्छा भावजन्य होती है। सो सद्भाव-जन्य इच्छा सदिच्छा और असद्भाव-जन्य इच्छा असदिच्छा होती है।

ऐसे ही भाव होता है—ज्ञान-जन्य। और ज्ञान दो प्रकार का होता है-एक यथार्थ ज्ञान और दूसरा अयथार्थ ज्ञान। विशेष कर शास्त्रों में यथार्थ ज्ञान ही "ज्ञान" पदवाच्य है और अयथार्थ ज्ञान को "अज्ञान" अथवा "विपरीत-ज्ञान" कहते हैं। आज कल यथार्थ और अयथार्थ ज्ञान के भेद को न देख सकने के कारण अयथार्थ ज्ञान को भी ज्ञान में शामिल कर लेते हैं।

अब हमको विचार यह करना है कि कर्म-प्रधानता में गीता का तात्पर्य है अथवा ज्ञान-प्रधानता में। तो हम तो यही कहेंगे कि ज्ञान-प्रधानता में। क्योंकि यदि हमको यथार्थ ज्ञान है तो हमारे भाव, इच्छा, कर्म सभी सत् होंगे। और सत् के द्वारा हमको सुख मिलेगा। और यदि हमारा ज्ञान अयथार्थ हुआ तो हमारे भाव, इच्छा, कर्म सभी असत् होंगे-जो दुःख के कारण हैं।

पाठकवृन्द, उन्नति नीचे से ऊपर चढ़ने को कहते हैं; नकि नीचे गिरने को। यदि ऊपर से नीचे गिरना भी उन्नति है तो हम उनसे पूछते हैं कि—अवनति किस को कहेंगे? यदि कहो कि नीचे से ऊपर जाना अवनति है, तो अवश्य ही हमारे और उनके ज्ञान में विपरीतता हुई; और यह ज्ञान की विपरीतता सब दुःखों का मूल है।

हां, यह हो सकता है कि जैसे आज कल पश्चिमीय शिक्षा से सुशिक्षित सभ्य-समाज सब उन्नतियों को छोड़ कर भौतिक (पदार्थ-विषयक) उन्नति में दत्तचित्त तत्पर है और कोई कार्य ही उनके दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐसे लोगों को उन्नति पथ पर लाने के लिये ही कर्म-प्रधानता में तात्पर्य माना जाय तो ठीक है; क्योंकि ऊपर चढ़ना क्रमशः सीढ़ी दर-सीढ़ी होता है। परन्तु, आश्चर्य इसका है कि भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीशंकराचा[र्य] "भौतिक काण्ड" तक पहुँचो ही नहीं, अतएव उ[न्होंने] भौतिक-काण्ड नहीं माना। और आज कल पश्चिमी[य] कृपा से हमारे भारत में भौतिक काण्ड की उन्नति जो है सो न तो प्रयोजन उनको ज्ञान से, और न उपासना [से] हां, पदार्थ-प्राप्ति के लिये तो वे पाश्चात्यों से भी अ[...]यित हैं।

यह दूसरी बात है कि उनको पदार्थ प्राप्त नहीं होते [...] को कर्म-प्रधानता में तात्पर्य बतलाया जावे तो उचित [...] वे इसको मानने में शीघ्र उद्यत हो जावेंगे। वे खूब [...] बिना कर्मों के पदार्थ प्राप्त नहीं होंगे; अतएव कर्म [...] और कर्म की प्रधानता में ही गीता आदि शास्त्रों का [...] चाहिए। परन्तु जो ऊपर चढ़ने को उन्नति मानते हैं वे [...] उपासना पर पहुँचेंगे और उपासना से ज्ञान पर [...] जाना होगा। जैसे पदार्थोन्नति के प्रवाह में पड़े हुए मनु[ष्य] इच्छा के सत् या असत् होने की परवाह नहीं [...] प्रकार कर्म की प्रधानता माननेवाले भी इच्छा और [...] अथवा असत् होने की परवाह नहीं करते। हमको [...] विषय में उन्नति करनी है तो पहिले हमको इच्छा[...] करनी होगी और उससे भी पहिले यथार्थ ज्ञान प्राप्त [...] और इसी लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

> "इदं ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
> अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि॥"

मैंने तुझ से अति गोप्य ज्ञान कहा, यदि तू अहंकार[...] तो नष्ट हो जावेगा।

स्मरण रहे कि भगवान् ने अर्जुन का अयथार्थ ज्ञा[न ...] यथार्थ ज्ञान का उपदेश दिया है। जब मनुष्य को यथ[ार्थ ...] जाता है, तब तो उसके इच्छा, कर्म, पदार्थ आदि स[...] जाते हैं। अर्जुन के उत्तर से भी यही स्पष्ट झलक[ता है] "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" मेरा मोह नष्ट हुआ, स्मरण [...]

आजकल प्रत्येक मनुष्य दैव और ईश्वर पर अनास्था [...] पुरुषार्थवादी बनना चाहते हैं। परन्तु पुरुषार्थ का [...] तक वह स्थिर नहीं कर सके हैं। हमको पुरुषार्थ का [...] सूत्र में मिला है, वह यह है—

> "इच्छाविवेकशुद्धिसाधन पुरुषार्थः।"

इच्छाओं का उदय प्रत्येक प्राणी को होता ही है [...] इच्छाओं को पूर्ण करने से पहिले यह विवेक अर्थात् वि[चार ...] होगा कि हमारी यह इच्छाएं योग्य हैं अथवा अयोग्य [...] अयोग्यता हो तो उस अयोग्यतांश को निकाल कर [...] पूर्ण करना चाहिए। इसी अभिप्राय का बोधक सू[त्र ...] विवेकशुद्धिसाधन पुरुषार्थः। इति।

नोटः—पंडित जी के ये विचार बिलकुल स्वतन्त्र जान पड़ते [...] लो॰ तिलक का गीतारहस्य सावधान विचार-पूर्वक अध्ययन करने [...] परिवर्तन करना पड़ेगा।

स्मृति।

१—देव गुण की [illegible] मेरी [illegible] की यह माल-
[illegible] हारिहैं हम [illegible]।
[illegible]
[illegible]॥
२—[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible]॥
३—[illegible]
[illegible]।

नेत्र जल, अभिलाष चन्दन, मन कुसुम [...]
साजि मंजुल-अमल अंजलि [...]
४—शान्ति में, उत्क्रान्ति में, सुधि बुधि [...]
निरखिहैं मन मुकुर में [...]
दुस्सह दाहनागार में नव विरह [...]
स्वप्न में अवलोकिहैं नव मुख [...]
५—मधुर-प्रणयस्मृति विधुर, उद्गार [...]
[...]कहिहैं नाम जपि, संसार [...]
निपट दीन, मलीन, [...]
दीर्घ-जीवन काटिहैं [...]

आयुर्वेदीय यंत्र, शस्त्र और शस्त्रक्रिया।

पश्चिमी शिक्षा का इतना अधिक प्रभाव हमारे देश में पड़ा है कि उसके चमकदार प्रकाश के सामने हमारे नवयुवकों की आंखें चौंधा गई हैं; और उनको ऐसा जान पड़ता है कि पश्चिमी सभ्यता के समान श्रेष्ठ सभ्यता धरती की पीठ पर कभी थी ही नहीं। भारत की प्राचीन सभ्यता का इनको कुछ भी अभिमान नहीं होता-किंबहुना इनमें कई नवयुवक तो भारत की प्राचीन सभ्यता को जंगली समझते हैं; और कई कहते हैं कि भारत ने प्राचीन काल में आध्यात्मिक उन्नति चाहे जितनी की हो; पर भौतिक उन्नति उन लोगों को मालूम ही नहीं थी। कई नवयुवक प्राचीन काल में भौतिक विज्ञान का भारत में प्रचार मानते ही नहीं। परन्तु हमारे नवयुवकों का अपने भूतकाल के विषय में जो इतना भ्रम पाया जाता है उसका कारण उनका तत्सम्बन्धी अज्ञान ही है। वर्तमान शिक्षाप्रणाली में पूर्वीय साहित्य का समावेश ही नहीं किया गया है, और पश्चिम का प्रकाश स्वाभाविक ही इस समय आ रहा है, इसी से हमारे नवयुवक चकाचौंध में पड़ गये हैं; और अपना भूतकाल उन्हें अन्धकारमय दिखाई देता है।

कई पश्चिमी सभ्यता के चश्मे से देखने वाले कहते हैं कि "जब तुम कोई पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नतिपूर्ण बात देखते हो तभी उसे अपने प्राचीन ग्रन्थों में खींचतान कर निकालते हो, और अपनी प्राचीन सभ्यता का झूठा अभिमान प्रकट करते हो। वास्तव में भारत की प्राचीन सभ्यता में ऐसी कोई अभिमानयोग्य बात नहीं है जो वर्तमान पश्चिमी सभ्यता से मुकाबला कर सके।" ऐसे लोगों से हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि भारतवर्ष राष्ट्र का उद्धार कदापि हो नहीं सकता, जब तक कि इसकी सन्तान अपने भूतकाल के गौरव का अभिमान, वर्तमान काल के प्रयत्न पर विश्वास और भविष्य काल की आशा पर आधार न रखे। क्योंकि इसका लक्ष्य वर्तमान पश्चिमी सभ्यता नहीं है, किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता ही इसका लक्ष्य है। पूर्व से ही प्रकाश पश्चिम की ओर गया है, और अब वही परावर्तित हो कर फिर पूर्व की ओर आ रहा है; इस प्रकाश को पहचान कर इसको फिर से अपनाना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

अस्तु, आयुर्वेद की शस्त्रक्रिया का वर्तमानसमय में लोप हो जाने के कारण इसके विषय में भी कई लोगों का ऐसा ही विचार है कि आयुर्वेद में शस्त्रक्रिया है ही नहीं। परन्तु यह बिलकुल भ्रम है। सुश्रुत और वाग्भट्ट के देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ढाई हजार वर्ष पहले भारतवर्ष में शस्त्रक्रिया का पूरा पूरा प्रचार था। आयुर्वेद में आत्रेय सम्प्रदाय और धन्वंतरिसम्प्रदाय अलग अलग और बड़े महत्वपूर्ण हैं। पहले सम्प्रदाय के वैद्य औषधों से ही चिकित्सा करते थे, और दूसरे सम्प्रदाय के वैद्यों का विशेष ध्यान शस्त्रक्रिया की ओर था। आयुर्वेद के अष्टांगों में से शल्य (शस्त्रकार्य) एक विशेष अंग है। शस्त्रसाध्य रोगों और औषधिसाध्य रोगों का विवेचन अलग अलग भी इसी कारण किया गया है। धन्वन्तरिसम्प्रदाय के वैद्यों को शस्त्रकर्म कितने महत्व का जान पड़ता था सो सुश्रुतसंहिता के इन वाक्यों से प्रकट हो जायगा:—

[illegible]

वैद्य सुश्रुत, आरोग्यपुरुषों की आरोग्यता की रक्षा करना और रोगियों को रोगमुक्त करना आयुर्वेद का उद्देश है। आयुर्वेद का [illegible]

इस अवतरण से यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि शल्यतंत्र को कितना और किस कारण महत्व दिया गया था। बात यह है कि बौद्धधर्म का प्रचार होनेपर जब उस धर्म को राजाश्रय मिल गया तब शवच्छेदादिक क्रियाएं कानून से बन्द कर दी गईं; और ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाने के कारण औषधि से ही सारे रोग अच्छे करने की चाल पड़ गई, तथा शल्यतंत्र का प्रचार बन्द हो गया। तो भी शल्यतंत्रानुसार चिकित्सा करने वाले वैद्य अब भी कहीं कहीं पाये जाते हैं। नासिक के स्वर्गीय वैद्य श्री० गोपालराव विंचलकर, गर्भ के अटक जाने पर, अथवा पेट में ही बच्चे के मर जाने पर, शल्यतंत्रोक्त क्रिया से ही स्त्रियों की जान बचाते थे। कहते हैं कि उनके पास सौ वर्ष पहले के, शल्यतंत्रानुसार तैयार किये हुए, शस्त्र मौजूद थे। ढाई हजार वर्ष पूर्व के लिखे रक्खे हुए आयुर्वेदीय यंत्र-शस्त्रों के वर्णन जब हम अपने ग्रन्थों में पढ़ते हैं तब स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वर्तमान पश्चिमी शस्त्रक्रिया में उपयुक्त होने वाले शस्त्र उन्हीं वर्णनों के अनुसार तैयार किये गये हैं; और अनेकों के नाम भी वही बने हुए हैं। इतिहास की दृष्टि से विचार करने पर जान पड़ता है कि आयुर्वेदीय शस्त्रक्रिया का ज्ञान भारतवर्ष से पहले अरब में, और अरब से फिर इजिप्ट और ग्रीस में गया। इसके बाद यूरप के अन्य देशों में उसका प्रचार हुआ। अच्छा, अब हम पहले यंत्र शस्त्रों का ही विचार करते हैं।

आयुर्वेदीय यंत्र।

यंत्र एक सौ एक हैं। पर उनमें शस्त्रक्रिया करने वाले का हाथ ही प्रधान यंत्र है। हाथ ही यदि अच्छा क्रियाकुशल न हो तो सारे यंत्र निरुपयोगी हैं। यंत्रों के ये छै भेद हैं—स्वस्तिक यंत्र, संदंशयंत्र, तालयंत्र, नाडीयंत्र, शलाकायंत्र, और उपयंत्र। ये सब यंत्र अच्छी धातु के तैयार करने चाहियें। उत्तम फौलाद न मिलने पर उसकी जगह अन्य किसी अच्छे पदार्थ का उपयोग करना चाहिए। इन यंत्रों के मुख भिन्न भिन्न पशुओं अथवा पक्षियों के मुख के समान, अथवा ग्रन्थ में लिखे अनुसार, अथवा अन्य किसी यंत्र के समान अथवा प्रसंगानुसार जैसे उचित हों, बनाने चाहिए, ताकि शरीर के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न कार्य सुलभता से किये जा सकें। इसमें यदि कोई यंत्रों के मुख पर उन पशु या पक्षियों के मुख, आंखें या कान बनाने का प्रयत्न करेगा तो हास्यास्पद होगा। सादृश्य सिर्फ मुख के ही आकार का होना चाहिए।

[illegible]

यंत्रों का जो परिमाण बतलाया गया है उससे कम अथवा अधिक परिमाण के यंत्र न होने चाहियें। उनमें से कुछ तीक्ष्ण मुख के और कुछ चिकने मुंह के रहने चाहिए। यंत्र अच्छे मजबूत और देखने में भी सुन्दर होने चाहियें और उनकी डंडियां और मूठें ऐसी होनी चाहिए जो अच्छी तरह पकड़ी जा सकें। इस से जाना जा सकता है कि यंत्र तैयार करने में कितनी सावधानी रखी जाती थी।

स्वस्तिकयंत्र।

जिन यंत्रों के दोनों [illegible]

सलने लगे तब उसे बाहर निकालने के लिए स्वस्तिक यंत्रों में प्रायः निम्नलिखित दोषों के रह जाने की सम्भावना रहती है। यंत्र अधिक मोटा, अशुद्ध धातु का, बहुत लम्बा अथवा बहुत छोटा, बिगड़े हुए मुख का, अर्थात् पदार्थ न पकड़ने वाला अथवा अधूरा पकड़नेवाला, टेढ़े मुँह का, ढीला, कीला बहुत ऊपर आया हुआ, कमज़ोर कीले का और मुलायम मुँह का, इत्यादि दोष विशेष कर स्वस्तिक यंत्रों में रह जाते हैं। इस लिए इस प्रकार के यंत्रों का उपयोग करते समय पहले इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि उपर्युक्त दोषों में से कोई दोष तो उनमें नहीं है। स्वस्तिक यंत्रों में से पहला यंत्र सिंहमुख यंत्र है। जो शल्य आंखों से दिखता हो उसको निकालने की क्रिया सिंहमुख यंत्र से करनी चाहिए। वर्तमान स्वस्तिक यंत्रों और पहले के स्वस्तिक यंत्रों में अन्तर इतना ही है कि पहले के यंत्र वर्तमान यंत्रों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते थे और उनकी डंडिया झुकी हुई होती थीं। आयुर्वेदीय सिंहमुख और प्रचलित सिंहमुख यंत्रों के नीचे दिये हुए चित्रों से यह भेद सहज ही मालूम हो जायगा।

सुश्रुत तथा अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो में जिसे सिंहमुख यंत्र कहते हैं,

सिंह मुख अर्वाचीन नं १

प्राचीन सिंहमुख

अँगरेज़ी ग्रन्थों में उसी को Lion's Forcep कहते हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यह अँगरेज़ी नाम सिंहमुख शब्द का भाषान्तर ही है। स्वस्तिक यंत्रों की कल्पना ठीक ठीक होने के लिए यहां पर और भी इसी जाति के कुछ यंत्रों के चित्र दिये जाते हैं। इनकी संख्या यद्यपि २४ ही दी है, तथापि यह भी उपदेश दिया गया है कि बुद्धिमान वैद्य, अपनी कल्पना से, आवश्यकतानुसार, और भी यंत्र बना सकता है। प्रचलित यंत्रों में स्वस्तिक यंत्रों की संख्या ४४।४० तक पहुँची है। आज कल के यंत्रों में यह सुधार हुआ है कि यंत्र से शरीर का कोई भाग पकड़ते समय हाथ छोड़ने पर भी यंत्र के स्प्रिंग के कारण अथवा किसी दूसरी विशिष्ट रचना के कारण यंत्र से वह भाग वैसा ही पकड़ा जावे। स्वस्तिक यंत्रों में अत्यन्त महत्व का यंत्र कंकमुखयंत्र है। कंक-पक्षी की चोंच अधिक लम्बी होने के अतिरिक्त कुछ टेढ़ी भी होती है। इस लिए जिस यंत्र का मुँह वैसा होता है उसे कंकमुखयंत्र कहते हैं। यह यंत्र किसी भाग में भी अच्छी तरह भीतर घुसा जाता है और शल्य पकड़ कर उसे अच्छी तरह से बाहर निकाल सकते हैं। इस लिए इस जाति के सब यंत्रों में यही यंत्र श्रेष्ठ माना गया है। भाषान्तरता स्वस्तिक यंत्रों का उपयोग आँखियों के भीतर के शल्य निकालने में किया जाता है। आज कल के स्वस्तिक यंत्रों

तरक्ष्वास्य यंत्र ऋक्षास्य यंत्र काकास्य यंत्र

नं २

कंकमुख यंत्र

नं २

है वह किया जा सके। आज कल के यंत्रों में यह होता है।

संदंशयंत्र।

त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, इत्यादि के शल्य निका यंत्रों का, अर्थात संडसियों या चिमटों का उपयोग है। इसकी लम्बाई १६ अंगुल होती है। सड़सी कीलों से जुड़ी हुई और न जुड़ी हुई, दोनों प्रकार की, होती है। आंखों और नाक के सूक्ष्म शल्य व हानिकारक बाल निकालने के लिए एक छै अंगुल लम्बाई की संडसी बनाई जाती थी। मुचुंडी नामक संडसी छोटे छोटे दांतों वाली और सरल हो

अ निग्रह यंत्र नं ४

घावों का मांस काटने पर बचा निकालने में उस किया जाता था को अँगरेजी में

मुचुंडी यंत्र

नं ५

कहते हैं। स्वस्तिक यंत्रों की तरह इन यंत्रों में भी आजकल आप ही आप पदार्थ पकड़ने योग्य, सुधार हो गया है! इन यंत्रों के चित्र भी यहां दिये जाते हैं।

अर्वाचीन

नं ६

तालयंत्र।

तालयत्र का आकार मछलियों की तरह होता इसकी लम्बाई १२ अंगुल होती के बीच में कुछ जगह भी होती और नाक का शल्य निकालने में योग किया जाता है। तालयंत्र लक और द्वितालक कर के, दो जिस यंत्र के दोनों ओर की प के बीच में खाली जगह रहती है लक यंत्र है।

एकतालक यंत्र

द्वितालक यंत्र

नं ७

नाडीयंत्र।

नाडी यंत्र पोला होता है कार्यों के अनुसार अनेक प्रकार क कुछ नाड़ीयंत्र एक मुँह के होते के शल्य निकालने, रोग परीक्षा करने; शस्त्र, क्षार, इत्या सुलभ रीति से करने और शरीर में पैठा हुआ विष चूस इत्यादि के काम में इन यंत्रों का उपयोग किया जात नाक, कंठ, इत्यादि जिन भागों में इन यंत्रों का उपयोग है उनके स्रोतसों के अनुसार इन नाडीयंत्रों की लम्ब और परिधि होती है। इन यंत्रों का उपयोग भगन्दर in ano) अर्श (Haemorrhoid) अर्बुद (T व्रण (Abscesses) बस्ति और उत्तरबस्ति (Injec the rectum vagina & urethra Hydrocele) दकोदर इत्यादि रोगों में करना चाहिए।
मूत्रवृद्धि, दकोदर इत्यादि रोगों में करना चाहिए।

अर्शोयंत्र।

अर्शरोग देखने के लिए और उस पर शस्त्रक्षारादि के लिए जो यंत्र बनाया जाता है उसे अर्शोयंत्र कहते हैं का लक्षण वाग्भट्ट में इस प्रकार दिया है:—

अर्शसां गोस्तनाकारं यंत्रकं चतुरंगुलम्।
नाहे पंचांगुलं पुंसां प्रमदानां षडंगुलम्॥

अर्शोयंत्र गोस्तनाकार और चार अंगुल लम्बा होना चाहिए। अर्श देखने के लिए जो यंत्र होता है उसमें दो मुख होने चाहिएं.

न ८

और शस्त्रक्षारादि क्रिया के लिए जो यंत्र होता है उसमें एक ही मुँह होना चाहिए। अर्शोयंत्र के मध्यभाग में तीन अंगुल लम्बा और अंगूठे के समान चौड़ा एक छिद्र होना चाहिए। आज कल के यंत्र में यह छिद्र नहीं होता। इसके सिवाय आज कल के यंत्र दो मुखों के अर्थात् आरपार होते हैं। शस्त्रक्षारादि क्रिया के लिए आयुर्वेदीय ग्रन्थों में एकमुखवाला जैसा अर्शोयंत्र होता है वैसा यंत्र प्रचलित यंत्रों में कोई नहीं होता।

शम्यायंत्र।

अर्श के मस्सों को दाबने के लिए शमी नामक नाड़ीयंत्र होता है। यह यंत्र अर्शोयंत्र की ही तरह होता है, पर उसमें बीच का छिद्र नहीं होता।

न ९ न १० न ११

भगंदरयंत्र।

अर्शोयंत्र का ऊपर का सिरा निकाल डालने पर भगंदर यंत्र तैयार होता है।

अंगुलित्राणक यंत्र।

दाँती बैठ जाने पर उसे सहज में खोलने के लिए चार अंगुल लम्बा और दो मुखों का गोस्तनाकार, हाथीदांत अथवा लकड़ी का अंगुलित्राणक यंत्र काम में लाया जाता था।

न १२

योनिव्रणेक्षण यंत्र।

योनिव्रण देखने में जिस यंत्र का उपयोग किया जाता है उसे योनिव्रणेक्षण यंत्र कहते हैं। वाग्भट ने इस प्रकार इसका वर्णन दिया है:—

[illegible]

योनिव्रणेक्षण यंत्र बीच में पोला होता है और उसका आकार कमल की कली के सदृश होता है। लम्बाई इसकी सोलह अंगुल होती है। यह यंत्र चार पंखड़ियों का और चार शलाकाओं से युक्त होता है; और उस पर ऊपर से नीचे को सरकनेवाली एक कड़ी लगी रहती है। इस कड़ी को नीचे सरकाने से यंत्र का मुख खुल जाता है और चारों पंखड़ियां विकस जाने के कारण योनि के अन्तर्भाग का व्रण सहज में देखा जा सकता है। करीब दो हजार वर्ष पहले के योनिव्रणेक्षणयंत्र का उपर्युक्त वर्णन वाग्भट्ट ग्रन्थ का है; परन्तु यह वर्णन प्रचलित शस्त्रक्रिया के Allingham's speculum (आलिंगहेम द्वारा आविष्कृत ईक्षण) यंत्र के वर्णन से इतना मिलता है कि जैसे उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार ही यंत्र बनाया गया हो! ऊपर इस यंत्र का जो चित्र दिया जाता है उस से जान पड़ेगा कि मुख खुले होने और बन्द होने पर इस यंत्र की शकलें कैसी हो जाती हैं।

नाड़ीव्रण धोने के लिए और उसमें तेल छोड़ने के लिए बस्तियंत्र के आकार के समान यंत्र (पिचकारी) बनाये जाते थे। दूषित रक्त शिंगी अथवा तूंबी लगा कर निकाल डाला जाता था।

दकोदर यंत्र।

जलोदर में जो पानी संचित हो जाता है उसे निकालने के लिए दो मुखों के नाड़ीयंत्र की योजना की जाती थी। इस यंत्र को दकोदर यंत्र कहते हैं।

शलाकायंत्र।

अनेक कार्यानुसार शलाका नाम के यंत्र अनेक आकारों के होते थे। उनकी लम्बाई, चौड़ाई और परिघ कार्यानुसार रहती थी। ये यंत्र और प्रचलित यंत्रों में से probes एक ही हैं।

गंडूपदमुख—दो शलाका यंत्रों के मुख दुमुही की तरह होते थे,

न १३

इसी को गण्डूपदमुखशलाका कहते थे। किसी पके हुए गहरे व्रण की गहराई तथा मवाद का परिमाण देखने के लिए इन यंत्रों का उपयोग किया जाता था।

[illegible]—इस शलाका के अतिरिक्त और शलाकाएं भी होती थीं। इसके द्वारा यह देखा जाता था कि जखम में तीर कितनी गड़ गई है और जखम कितना गहरा हो गया है। इन यंत्रों को एषणी (Probes) कहते थे।

शरपुंखमुख—बाण की पूँछ की तरह जिसके मुँह का आकार

शरपुंखमुख न १४ [illegible] न १५

होता था उसे शरपुंखमुखशलाका कहते थे। [illegible]

[illegible]

सतने लगे तब उसे बाहर निकालने के लिए स्वस्तिक यंत्रों में प्रायः निम्नलिखित दोषों के रह जाने की सम्भावना रहती है। यंत्र अधिक मोटा, अशुद्ध धातु का, बहुत लम्बा अथवा बहुत छोटा, बिगड़े हुए मुख का, अर्थात् पदार्थ न पकड़ने वाला अथवा अधूरा पकड़नेवाला, टेढ़े मुंह का, ढीला, कीला बहुत ऊपर आया हुआ, कमज़ोर कील का और मुलायम मुंह का, इत्यादि दोष विशेष कर स्वस्तिक यंत्रों में रह जाते हैं। इस लिए इस प्रकार के यंत्रों का उपयोग करते समय पहले इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि उपर्युक्त दोषों में से कोई दोष तो उनमें नहीं है। स्वस्तिक यंत्रों में से पहला यंत्र सिंहमुख यंत्र है। जो शल्य आंखों से दिखता हो उसको निकालने की क्रिया सिंहमुख यंत्र से करनी चाहिए। वर्तमान स्वस्तिक यंत्रों और पहले के स्वस्तिक यंत्रों में अन्तर इतना ही है कि पहले के यंत्र वर्तमान यंत्रों की अपेक्षा अधिक लम्बे होते थे और उनकी डंडिया झुकी हुई होती थीं। आयुर्वेदीय सिंहमुख और प्रचलित सिंहमुख यंत्रों के नीचे दिये हुए चित्रों से यह भेद सहज ही मालूम हो जायगा।

सुश्रुत तथा अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों में जिसे सिंहमुख यंत्र कहते हैं,

सिंह मुख अर्वाचीन नं १

प्राचीन सिंहमुख

अँगरेज़ी ग्रन्थों में उसी को Lion's Forcep कहते हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यह अँगरेज़ी नाम सिंहमुख शब्द का भाषान्तर ही है। स्वस्तिक यंत्रों की बनावट ठीक ठीक होने के लिए यहां पर और भी इसी जाति के कुछ यंत्रों के चित्र दिये जाते हैं। इनकी संख्या यद्यपि २४ ही दी है, तथापि यह भी उपदेश दिया गया है कि बुद्धिमान वैद्य, अपनी कल्पना से, आवश्यकतानुसार, और भी [illegible] बना सकता है। प्रचलित ग्रन्थों में स्वस्तिक यंत्रों की संख्या ४११२० तक पहुँची है। आज कल के यंत्रों में यह सुधार हुआ है कि यंत्र से शरीर का कोई भाग पकड़ने समय हाथ छोड़ने पर भी यंत्र के गिरने के कारण अथवा [illegible]

नं ३

[illegible]

है यह दिया जा सके। आज कल के यंत्रों में यह कार्य होता है।

संदंशयंत्र।

त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, इत्यादि के शल्य निकालने के [illegible] यंत्रों का, अर्थात् सँडसियों या चिमटों का उपयोग किय[illegible] है। इसकी लम्बाई १६ अंगुल होती है। सडसी कीलों से जुड़ी हुई और न जुड़ी हुई, दोनों प्रकार की, होती है। आंखों और नाक के सूक्ष्म शल्य व हानिकारक बाल निकालने के लिए एक छै अंगुल लम्बाई की सँडसी बनाई जाती थी। मुचुंडी नामक सँडसी छोटे छोटे दांतों वाली और सरल होती थी [illegible] घावों का मांस और [illegible] काटने पर बचा हुआ [illegible] निकालने में उसका [illegible] किया जाता था। [illegible] को अँगरेज़ी में Terri[illegible] कहते हैं। स्वस्तिक यंत्रों की तरह इन यंत्रों में भी आजकल आप ही आप पदार्थ पकड़ने योग्य, सुधार हो गया है। इन यंत्रों के चित्र भी यहां दिये जाते हैं।

[illegible] संदंश यंत्र नं. ४

मुचुंडी यंत्र

नं ५

अर्वाचीन संदंश

नं ६

तालयंत्र।

तालयंत्र का आकार मछलियों की तरह होता है। इसकी लम्बाई १२ अंगुल होती है। [illegible] के बीच में कुछ जगह भी होती है। [illegible] और नाक का शल्य निकालने में इसक[illegible] योग किया जाता है। तालयंत्र के, ए[illegible] लक और द्वितालक कर के, दो भेद होते [illegible] जिस यंत्र के दोनों ओर की पत्तियों के [illegible] के बीच में खाली जगह रहती है वह [illegible] लक यंत्र है।

[illegible]

द्वितालक यंत्र

नं ७

नाड़ीयंत्र।

नाड़ी यंत्र पोला होता है और [illegible] कार्यों के अनुसार अनेक प्रकार का होता [illegible] कुछ नाड़ीयंत्र एक मुंह के होते हैं। [illegible] के शल्य निकालने, रोग परीक्षा करने, शस्त्र, क्षार, इत्यादि की [illegible] सुलभ रीति से करने और शरीर में पैठा हुआ विष चूस [illegible] इत्यादि के काम में इन यंत्रों का उपयोग किया जाता है। [illegible] नाक, कंठ, इत्यादि जिन भागों में इन यंत्रों का उपयोग करना [illegible] है उनके स्रोतसों के अनुसार इन नाड़ीयंत्रों की लम्बाई, [illegible] और परिधि होती है। इन यंत्रों का उपयोग भगन्दर (Fis[illegible] in ano) अर्श (Hæmorrhoid) अर्बुद (Tumour[illegible]) व्रण (Abscesses) बस्ति और उत्तरबस्ति (Injection [illegible] the rectum vagina & urethra Hydrocele) मूत्र[illegible] दकोदर इत्यादि रोगों में करना चाहिए।

मूत्रवृद्धि, दकोदर इत्यादि रोगों में करना चाहिए।

अर्शोयंत्र।

अर्शोरोग देखने के लिए और उस पर शस्त्रक्षारादि [illegible] के लिए जो यंत्र बनाया जाता है उसे अर्शोयंत्र कहते हैं। [illegible] का वर्णन वाग्भट में इस प्रकार दिया है—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्शोयंत्र गोस्तनाकार और चार अंगुल लम्बा होना चाहिए। अर्श देखने के लिए जो यंत्र होता है उसमें दो मुख होने चाहिएं:

और शस्त्रक्षारादि क्रिया के लिए जो यंत्र होता है उसमें एक ही मुँह होना चाहिए। अर्शोयंत्र के मध्यभाग में तीन अंगुल लम्बा और अंगूठे के समान चौड़ा एक छिद्र होना चाहिए। आज कल के यंत्र में यह छिद्र नहीं होता। इसके सिवाय आज कल के यंत्र दो मुखों के अर्थात् आरपार होते हैं। शस्त्रक्षारादि क्रिया के लिए आयुर्वेदीय ग्रन्थों में एकमुखवाला जैसा अर्शोयंत्र होता है वैसा यंत्र प्रचलित यंत्रों में कोई नहीं होता।

शमीयंत्र।

अर्श के मस्सों को दाबने के लिए शमी नामक नाड़ीयंत्र होता है। यह यंत्र अर्शोयंत्र की ही तरह होता है, पर उसमें बीच का छिद्र नहीं होता।

भगंदरयंत्र।

अर्शोयंत्र का ऊपर का सिरा निकाल डालने पर भगंदर यंत्र तैयार होता है।

अंगुलित्राणक यंत्र।

दाँती बैठ जाने पर उसे सहज में खोलने के लिए चार अंगुल लम्बा और दो मुखों का गोस्तनाकार, हाथीदांत अथवा लकड़ी का अंगुलित्राणक यंत्र काम में लाया जाता था।

योनिव्रणेक्षण यंत्र।

योनिव्रण देखने में जिस यंत्र का उपयोग किया जाता है उसे योनिव्रणेक्षण यंत्र कहते हैं। वाग्भट्ट में इस प्रकार इसका वर्णन दिया है:—

[illegible]
[illegible]
[illegible]

योनिव्रणेक्षण यंत्र बीच में पोला होता है और इसका आकार कमल की कली के सदृश होता है। लम्बाई इसकी [illegible]

होती है। यह यंत्र चार पंखड़ियों का और चार शलाकाओं से युक्त होता है; और उस पर ऊपर से नीचे को सरकनेवाली एक कड़ी लगी रहती है। इस कड़ी को नीचे सरकाने से यंत्र का मुख खुल जाता है और चारों पंखड़ियां विकस जाने के कारण योनि के अन्तर्भाग का व्रण सहज में देखा जा सकता है। करीब दो हजार वर्ष पहले के योनिव्रणेक्षणयंत्र का उपर्युक्त वर्णन वाग्भट्ट ग्रन्थ का है; परन्तु यह वर्णन प्रचलित शस्त्रक्रिया के Allingham's speculum (अलिंगहेम द्वारा आविष्कृत ईक्षण) यंत्र के वर्णन से इतना मिलता है कि जैसे उपर्युक्त श्लोकों के अनुसार ही यंत्र बनाया गया हो! ऊपर इस यंत्र का जो चित्र दिया जाता है उस से जान पड़ेगा कि मुख खुले होने और बन्द होने पर इस यंत्र की शकलें कैसी हो जाती हैं।

नाड़ीव्रण धोने के लिए और उसमें तेल छोड़ने के लिए बस्तियंत्र के आकार के समान यंत्र (पिचकारी) बनाये जाते थे। दूषित रक्त शिंगी अथवा तूंबी लगा कर निकाल डाला जाता था।

दकोदर यंत्र।

जलोदर में जो पानी संचित हो जाता है उसे निकालने के लिए दो मुखों के नाड़ीयंत्र की योजना की जाती थी। इस यंत्र को दकोदर यंत्र कहते हैं।

शलाकायंत्र।

अनेक कार्यानुसार शलाका नाम के यंत्र अनेक आकारों के होते थे। उनकी लम्बाई, चौड़ाई और परिध कार्यानुसार रहती थी। ये यंत्र और प्रचलित यंत्रों में से probes एक ही हैं।

गंडूपदमुख—दो शलाका यंत्रों के मुख [illegible] की तरह होते थे,

इसी को गंडूपदमुखाकार कहते थे। किसी पके हुए गहरे व्रण की गहराई तथा मवाद का परिमाण देखने के लिए इन यंत्रों का उपयोग किया जाता था।

एषणी—इन शलाकाओं के अतिरिक्त और शलाकायें भी होती थीं। इनके द्वारा यह देखा जाता था कि जखम में चीज कितनी गड़ गई है और जखम कितना गहरा हो गया है। इनको एषणी (Probes) कहते हैं।

शरपुंखमुख—बाण की पूंछ की तरह जिसके मुँह का आकार

होता था उसे शरपुंखमुखाकार कहते थे। इसकी लम्बाई दस बारह अंगुल [illegible] बाहर निकालने के कार्य में इसका विशेष उपयोग किया जाता था।

[illegible]—[illegible] की तरह जिसका मुख होता था उसे [illegible] कहते थे। [illegible] में इसका उपयोग किया जाता था।

बडिशमुखशलाका—मछली पकड़ने की बंसी के आकार की जो शला-

बडीशमुखशंकु　　नं. १६

कायें होती थीं, उन्हीं को बडिशमुखशलाका कहते थे। शल्य खींचने के काम में इस यंत्र का उपयोग किया जाता था।

गर्भशंकु—शंकु के आकार का आठ अंगुल लम्बा और अग्रभाग ... टेढ़ा यंत्र होता था,

गर्भशंकु

इस का नाम था गर्भशंकु ... स्त्रियों का मूढ़ गर्भ इसीसे निकाला जाता था। अब भी कई जगह इसका उपयोग किया जाता है।

मसूरदलवक्त्रशलाका—स्रोतसों के शल्य निकालने के लिए आठ या नौ अंगुल लम्बाई की और मसूर की दाल के समान मुखवाली दो शलाकायें होती थीं, इसीको मसूरदलवक्त्रशलाका कहते थे। मुँह, नाक, इत्यादि भाग के शल्य निकालने में उनका उपयोग किया जाता था।

सर्पफणायंत्र

नं. १८

सर्पफणायंत्र—सर्प के फन की तरह सिरोंवाला हुआ यंत्र पथरी निकालने में उपयुक्त होता था।

शरपुंखमुख—जिस यंत्र का मुख बाण की पूंछ की तरह होता है उसको शरपुंखमुखयंत्र कहते हैं। इसकी लम्बाई चार अंगुल होती थी; दांत उखाड़ने में इसका विशेष उपयोग होता था।

जाम्बवयंत्र—क्षार लगाने और दागने के लिए जम्बू के आकार

की, कार्यानुसार भिन्न भिन्न परिमाण की शलाकायें होती थीं उनको जाम्बवयंत्र कहते थे।

इनके सिवाय नाक, कान, इत्यादि अंगों में उपयोगी होने वाली और भी भिन्न भिन्न आकार की शलाकायें होती थीं।

पुष्पनेत्र—(catheter) मूत्रमार्ग का शोधन करने के लिए मालती पुष्प की डंडी के अग्रभाग की तरह परिधिवाली शलाका का उपयोग करते थे।

कर्णशोधनयंत्र—कान धोने के लिए कर्णशोधनयंत्र का उपयोग करते थे। इस यंत्र का मुँह यज्ञचमस के समान और आकार पीपल के पत्ते के समान होता था।

उपयंत्र।

लोहचुम्बक, डोरी, वस्त्र, वल्कल, लता, चर्म, पट्टा (Bandages) पत्थर, मोगर, हाथ, पैर, अंगुली, जीभ, दांत, नख, मुँह, बाल, वृक्षशाखा, हर्ष, भय, क्षार, अग्नि और भेषज—ये उपयंत्र हैं। इन उपयंत्रों का उपयोग बड़ी चतुराई से करने के विषय में सूचना दी गई है।

यंत्रों के मुख्य कार्य।

शल्य हिलाना, मथना, तैल इत्यादि से भरना, मार्ग साफ करना, इच्छित जगह रखना, निकाल डालना, बांधना, दाबना, घूमना, ऊपर उठाना, नीचे जमाना, चलाना, मोड़ना, फिराना, और सीधा करना यंत्रों के मुख्य कार्य हैं।

इस प्रकार भिन्न भिन्न आकार के और भिन्न भिन्न कार्य करने वाले १०१ यंत्रों में से कुछ यंत्रों का वर्णन संक्षिप्त रूप से दिया गया है। अब आयुर्वेदीय शस्त्रों का थोड़े में ही विचार किया जायगा।

आयुर्वेदीय शस्त्र।

शस्त्रक्रिया करने के लिए जिन शस्त्रों का उपयोग किया जाता था—मंडलाग्र, करपत्र, वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, अर्धधार, सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अन्तर्मुख, त्रिकूर्चक, कुठारिका, व्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्र, बडिश, दन्तशंकु, एषणी, सर्पमुख, अंगुलिशस्त्र, ... कूर्च, ... और कर्णव्यधन। ये यंत्र कैसे होने चाहिये और कैसे तैयार करने चाहिये—यह देखने पर मालूम हो जाता है कि ये शस्त्र कितनी सावधानी से तैयार किये जाते थे। यंत्रों की तरह शस्त्र भी उत्तम फौलाद के तैयार करने चाहिये।

तानि सुग्रहाणि, सुलोहानि, सुधाराणि, सुरूपाणि, सुसमाहितमुखाग्राणि, अकरालानि चेति शस्त्रगुणाः।

शस्त्रों की मूठें ऐसी होनी चाहिये जो हाथ में अच्छी तरह पकड़ी जा सकें। शस्त्र देखने में भी बहुत सुन्दर होने चाहिये उनकी पत्तियां मूठ में दृढ़ जमी हुई होनी चाहियें; और उनकी धार बहुत तीक्ष्ण न होनी चाहिये।

यदा सुनिशितं शस्त्रं रोमच्छेदि सुसंस्थितम्।
सुगृहीतं प्रमाणेन तदा कर्मसु योजयेत्॥

शस्त्र जब बालों को भी काट सकें, अथवा जब वे बालों पर भी चलने लगें, तब समझना चाहिए कि ये तीक्ष्ण धार के हो गये और शास्त्र में जिस प्रकार पकड़ने को कहा गया है, इस प्रकार पकड़ कर शस्त्रक्रिया में उनका उपयोग करना चाहिए। शस्त्रों की धार भिन्न प्रकार की होनी चाहियें। भेदनशस्त्रों की धार मसूर की तरह पतली होनी चाहिए। लेखनकर्म करने वाले शस्त्रों की धार अर्धमसूर (मसूर की दाल के समान पतली) होनी चाहिए। व्यधन व विस्रावण (रक्तस्राव) करनेवाले शस्त्रों की धार बाल के समान पतली होनी चाहिए और छेदनकर्म करनेवाले शस्त्रों की धार आधे बाल की सी पतली होनी चाहिए। शस्त्रों में धार, शिला पर लानी चाहिए। शस्त्रों में पानी देने का वर्णन विशेष ध्यान में रखने योग्य है। क्षार, उदक और तेल का पानी भिन्न भिन्न शस्त्रों में दिया जाता था। क्षार का पानी दिये हुए शस्त्रों का उपयोग शल्य अथवा अस्थियों का छेदन करने में किया जाता था। सादा पानी दिये हुए शस्त्रों का उपयोग मांस का छेदन, भेदन और पाटन करने में किया जाता था और तेल का पानी दिये हुए शस्त्रों का उपयोग सिरावेध, स्नायुच्छेद, इत्यादि करने में किया जाता था। वर्तमान समय में शस्त्रों में पानी देने की जो क्रिया है उससे प्राचीन काल की क्रिया का मिलान करने से यह नहीं कहा जा सकता कि आज कल इस विषय में कुछ भी उन्नति हुई है। कुंठितत्व, अतितनुत्व, अतिस्थूलत्व, अतिह्रस्वत्व, अतिदीर्घत्व, वक्रत्व और खरधारत्व, इत्यादि शस्त्रों के दोष हैं। इन दोषों से रहित और उपर्युक्त गुणों से युक्त शस्त्रों का उपयोग आयुर्वेद में बतलाया गया है। शस्त्रों का पानी नील कमल के समान होना चाहिए।

मण्डलाग्र—इस शस्त्र का आकार तर्जनी के नख के मूल के भीतर वाले भाग (अन्तर्नख) के समान होना चाहिए। नेत्रों की सूजन और गले की घंटी के लेखन (खुरचना) और छेदन (काटना) में इसका उपयोग किया जाता था।

वृद्धिपत्र—छेदन, भेदन और पाटन कर्म करते समय वृद्धिपत्रशस्त्र

वृद्धिपत्र　　नं. २२

का प्रयोग करना चाहिए। यह दो प्रकार का है। सूजन यदि ऊपर उठ आई हो तो सरल अग्रवाले वृद्धिपत्र का उपयोग करना चाहिए और यदि सूजन नीचे हो और भीतर मवाद हो तो जिस

जिस आशय में सूजन हो उस उस आशय के अनुसार छोटे बड़े लम्बे मुँह का और अग्रभाग किंचित् लचा हुआ वृद्धिपत्र तैयार करके उसका उपयोग करना चाहिए।

अग्रलक्षि और [illegible]—इन दोनों शस्त्रों का उपयोग छेदन और भेदन कर्म में करना चाहिए।

करपत्र नं. २५

[illegible]—हड्डियाँ काटने के लिए बारीक दाँतों की, तीक्ष्ण धार की

नखशस्त्र नं २६

और मजबूत मूठ की आरी होनी चाहिए। इसकी लम्बाई १० अंगुल और चौड़ाई २ अंगुल होनी चाहिए।

नखशस्त्र—यह शस्त्र नौ अंगुल लम्बाई का और दो मुखों का होना चाहिए। एक मुख की धार सरल और दूसरे की टेढ़ी होनी चाहिए। बारीक शल्य निकालना, नख काटना, चीरना, खुरचना, इत्यादि कामों में इसका उपयोग होता है।

अंगुलिशस्त्र—गले का रोग काटने के लिए और फोड़ने के लिये इस शस्त्र की आवश्यकता होती है। इसकी पत्तियां स्थानानुसार और [illegible]सार मंडलाग्र अथवा वृद्धिपत्र शस्त्र की तरह होनी चाहिए और लम्बाई आध अंगुल की होनी चाहिए। तर्जनी की अगली पोर में ठीक ठीक बैठनेवाली एक अंगूठी उसके मुख के पास होनी चाहिए और यह अंगूठी तर्जनी में पहन लेने पर उसे सूत से बांध लेना चाहिये, जिस से हिले नहीं।

शरारीमुख नं २७

[illegible]—शरारी नामक एक लम्बी चोंच का पक्षी होता है। उसी की चोंच की तरह इस शस्त्र का मुख होता है। इसी को कैंची कहते हैं।

त्रिकूर्चक नं. २८

[illegible] मुख और [illegible]—रक्तस्राव करते समय इनका उपयोग किया जाता है।

अंतर्मुख नं. २९

अ[illegible]मुख—इस शस्त्र की पत्ती डेढ़ अंगुल लम्बी और मुख अर्धचन्द्राकार होता है।

कुठारिका नं. ३०

[illegible]—गौ के दाँत के समान, आध अंगुल चौड़ाई की पत्तीवाली कुठारिका (कुल्हाड़ी) नामक शस्त्र हड्डी के ऊपरवाली सिरा का वेध करने में उपयुक्त होता है।

[illegible]मुख

[illegible]

व्रीहिमुख नं. ३१

व्रीहिमुख—धान के आकार के और डेढ़ अंगुल लम्बाई के शस्त्र को व्रीहिमुख कहते थे। सिरावेध और उदरवेध में इसका विशेष उपयोग होता था।

आरा—इस शस्त्र का मुख आध अंगुल गोल और पिछला भाग

आरा नं. ३२

चौधारी होना चाहिए। इस शस्त्र का उपयोग यह देखने में होता है कि सूजन पक गई है या अभी नहीं पकी। सिर्फ गोल भाग ही सूजन में प्रवेश किया जाता है।

बडिश—गले की घंटी और अर्शरोग पकड़ने के लिए जिसका मुख किंचित् टेढ़ा रहता है उस शस्त्र या बंसी को बडिश शस्त्र कहते हैं।

बडीश नं ३३

सूची—घाव सीने के लिए शरीर के भिन्न भिन्न भागों के अनुसार सीधी, टेढ़ी अर्धचन्द्राकार सूइयां होती थीं। इन सूइयों से जख्म सिये जाते थे।

सूची नं. ३४

इस प्रकार, यहां पर हमने मुख्य मुख्य शस्त्रों का कुछ थोड़ा सा वर्णन किया है। इस सब का सारांश यह है कि छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, एषण, आहरण, स्रावण और सीवन, ये आठ प्रकार के कर्म शस्त्रक्रिया में किये जाते थे।

छेदन—(Cutting) शरीर का कोई भाग बिलकुल काट कर अलग कर देना। [illegible] के [illegible]। छेदनकर्म करते समय [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] शस्त्रों का उपयोग किया जाता था।

भेदन—([illegible]) [illegible] का [illegible]। भेदनकर्म में [illegible] शस्त्र उपयोगी होते हैं।

लेखन—([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] कहते हैं।

[illegible]—([illegible]) [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] कहते हैं। [illegible]

व्रीहिमुख, कुठारिका, आरा, वेतसपत्र और सूची का उपयोग करते हैं।

एषण—(Probing) भगन्दर, व्रण, इत्यादि का मवाद देखने के लिए सलाई डालने को एषण कहते हैं।

आहरण—(Extraction by spoon or hook) बडिश और दन्तशंकु शस्त्र से शरीर के शल्य बाहर निकाले जाते थे।

स्रावण—(Letting out pus) सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अन्तर्मुख और त्रिकूर्चक शस्त्रों से गहरे व्रणों का मवाद बाहर निकाला जाता था।

सीवन—(Suturing) भिन्न भिन्न सूचियों से घाव सिले जाते थे।

यंत्रशस्त्रों से शस्त्रक्रिया अच्छी तरह करने के बाद यदि घाव सावधानीपूर्वक बांधा न जायगा तो वह सारी शस्त्रक्रिया व्यर्थ जायगी। इस लिए बंध के विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। स्थान और रोग के अनुसार भिन्न भिन्न बंधों की योजना करनी पड़ती है। आयुर्वेद में १४ बन्ध बतलाये गये हैं।

हाथ की उँगलियों के बांधने का कार्य बहुत कठिन होता है। उँगलियों की पोरें बांधते समय बंध सरकता है, इसके लिए युक्ति का अवलम्बन करना पड़ता है। इस लिए अँगूठे अथवा उँगलियों की पोरों में कोशबन्ध (Capsular bandage) का उपयोग करना चाहिए। सन्धिभाग, कूर्च, भौंहें, कांख, स्तन, कान, इत्यादि स्थानों में स्वस्तिकबंध (Figure of eight bandage) का उपयोग करना चाहिए। हाथ, पैर, इत्यादि शाखाओं की जगह अनुवेल्लितक बंध (Twining bandage) का उपयोग करना चाहिए। अंगुष्ठ, अंगुलि और शिश्न के अग्रभाग में और मूत्रवृद्धि (Hydrocele) पर शस्त्रकर्म करने के बाद स्थगिकाबंध (Suspensory bandage) की योजना करनी चाहिए। ठुड्डी, नाक, ओठ, अंस, बस्ति, इत्यादि की जगह और गुदद्वार के बाहर आ जाने पर गोफणाबन्ध बांधना चाहिए। ठुड्डी यदि जगह पर से टल गई हो; अथवा ऐसा ही और कोई मौका हो तो पंचांगी बन्ध (Five tailed bandage) की योजना करनी चाहिए। इस प्रकार भिन्न भिन्न बन्धों का उपयोग, स्थान और रोग के अनुसार, आयुर्वेद में बतलाया गया है। इसके सिवाय नाक कट जाने पर नाक बना कर उसे फिर लगाने की शस्त्रक्रिया आयुर्वेदग्रन्थों में ही पाई जाती है। अन्य क्रियाओं की तरह इस क्रिया को भी पाश्चात्य शस्त्रकर्मज्ञों ने आयुर्वेद से ही ग्रहण किया है। पाश्चात्य शस्त्रक्रिया में यद्यपि बहुत सुधार हो गया है, तथापि कान बनाने का शस्त्रकर्म अभी तक उनके ग्रन्थों में नहीं पाया जाता, और न वे इस कर्म को जानते ही हैं। परन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कान बनाने की शस्त्रक्रिया का स्पष्ट वर्णन है। शस्त्रकर्म के बाद रोगी के आहार-विहार का भी बहुत अच्छा विवेचन किया गया है। पर विस्तारभय से यहां नहीं दिया जाता।

भारतवर्ष में शस्त्रक्रिया का उत्कर्ष।

उपर्युक्त विवेचन से हमारे पाठकों को मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष में आज से दो ढाई हजार वर्ष पहले बहुत से, अत्यन्त कठिन, शस्त्रकर्म किये जाते थे। इससे यह भी जान पड़ता है कि सब से पहले शस्त्रक्रिया का उत्कर्ष भारतवर्ष में ही हुआ और फिर यहां से अरब, इजिप्ट, ग्रीस, इत्यादि देशों में जा कर यह विद्या यूरप में गई है। उदर अश्मरी (पथरी), अंत्रवृद्धि, अर्श, भगन्दर, इत्यादि रोगों में शस्त्रक्रिया करने की] शस्त्रक्रिया तो बहुत ही सफ निकालने का काम भी बड़ा कुशल का मत है कि मोतियाबिन्दु निक भारतवर्ष में ही निकली। नाक उनको बनाने की शस्त्रक्रिया आयुर्वेद की और पाश्चात्य विद्वानों ने अब उसे है। संस्कृत-साहित्य का इतिहास दीय शस्त्रक्रिया के विषय में इस प्र too the Indians seem to proficiency, and in this de geons might, perhaps even some thing from them, as borrowed from them the op " शस्त्रक्रिया में भी, जान पड़ता है णता सम्पादन की थी। और इस आज भी भारतीय लोगों से कुछ बनाने की शस्त्रक्रिया तो सचमुच ही पाश्चात ही ग्रहण कर ली है।"

डा० हंटर साहब ने भी आयुर्वे प्रशंसा की है। प्रचलित शस्त्रक्रिया ष्कार शस्त्रशोधन (Sterilizatio क्योंकि शस्त्रकर्म चाहे कितनी ही यदि उसमें जन्तु न आने देने की ख में पीब पड़ जाती है और वह ज लिए शस्त्रकर्म करने के पहले सब श शुद्ध कर लेने चाहिए और बाद यह आविष्कार लार्ड लीस्टर ने कि का शोधन होता है। आयुर्वेद में कर, जब वे स्वच्छ हो जायँ तब, उ

अग्निसंतप्त शस्त्रेण

यह सुश्रुत का वाक्य है। हमने लिए नहीं किया है कि आयुर्वेद में भी मतलब नहीं है कि शस्त्रक्रिया में ग्रहण न किया जाय। किन्तु हमारा से विदेशी और अनेक पश्चिमी चश्मे भी, जो यह कहा करते हैं, कि प्राच ही नहीं-सारा शास्त्रीय ज्ञान पश्चि मालूम हो जाना चाहिए कि जिस भाग, और यूरप के ये चमकने वाले ते तभी भारतवर्ष ने शास्त्रीय ज्ञान उन्नति कर ली थी। और वर्तमान स में दिखाई देती है उससे हमें पूर्ण अपने पूर्व-गौरव को अवश्य ही प्राप्त

* इस लेख की सामग्री वैद्यपंचानन पं० लेख से ली गई है, मथुरा के वैद्यसम्मेलन में पर बड़ी योग्यता से व्याख्यान दिया था; और मार ही डाक्टरों के शस्त्रों की बनावट दिखला प्रत्यक्ष दिखलाये थे। स० चि०

आकांक्षा!

(लेखक—श्रीयुत रामदास मिश्र "विजय")

तुम हित भारत के प्रभु! आवें॥

जननी-कष्ट-हरणाहित प्रतिक्षण
माता की महिमा; यश गा कर,

रूसी क्रान्तिदेवता का पहला बलिदान।

रासपुटिन।

(लेखक—श्री० दा० वि० गोखले बी० ए० एल० एल० बी० ।)

अब यह कहने में कोई प्रत्यवाय दिखाई नहीं देता कि रूस में राज्यक्रान्ति हो कर लोकसत्तावादी पक्ष का पूर्ण विजय हुआ। जैसे कोई भयानक ज्वालामुखी पर्वत एकाएक अपने भयंकर मुख से पहले धुआं छोड़ने लगता है, और फिर उसके साथ ही पृथ्वी के पेट से भिन्न भिन्न धातुओं के प्रज्वलित रस छोड़ने लगता है, बस यही हाल राज्यक्रान्ति के समय किसी राष्ट्र का हुआ करता है। सत्रहवीं शताब्दी में इंगलैंड की राज्यक्रांति में वहां के राजा की ही पूर्ण आहुति दी गई और अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जो फ्रांस की राज्यक्रांति* हुई उसके पठनमात्र से ही शरीर पर रोमांच खड़े हो जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्कों ने और चीन के प्रजासत्ताक पक्ष ने सुलतान को और चीन के सम्राट को घर बैठा कर सर्वसाधारण प्रजा की स्थिति का अनुभव उनको अच्छी तरह करा दिया। इस प्रकार आज कई शताब्दियों से संसार में जो बराबर उथलापथल हो रही है उससे राज्यक्रान्ति की व्याप्ति अच्छी तरह दृग्गोचर होती है।

रासपुटिन।

वे धनाढ्य लोग, जो कि अपने बापदादे से बिना परिश्रम न करते हुए अपनी धनसम्पन्नता में आ कर ग़रीबों का धिक्कार करते रहते हैं, एक दिन धूल में मिल जाते हैं। उस कुत्ते के समान--जो कि जूंठन खा कर मोटा ताज़ा होता है, और मालिक के द्वार पर खड़ा रह कर आने जाने वालों पर व्यर्थ के लिए भूंकता रहता है--राजाओं के आश्रित खलों की बात कुत्ता भी नहीं पूछता। अधिकारमद से और राजा बादशाहों के दिये हुए अपने बड़प्पन से मतवाले होने वाले अधिकारियों की आंखें खुल कर उन्हें स्वर्ग सूझने लगता है। कुलुलखोरी कर के देशद्रोह और बन्धुद्रोह करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले लोगों का व्यवसाय नष्ट हो कर, उन्हें भी अपने पापों के भूत सामने आकर डरवाने लगते हैं, और बड़े बड़े राजा, महाराजा और सम्राट, कि जो "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं" समर्थ होते हैं उनके भी सिर का मुकुट किरीट नीचे गिर कर चकनाचूर हो जाता है, और जिनके भृकुटिविलास मात्र से लाखों मनुष्य धूल में मिल जाते थे उनको बात एक कंगाधारी भिखारी भी नहीं पूछता! यह किसका प्रभाव है, यह किसका पराक्रम है—कहना नहीं होगा कि यह उसी राज्यक्रांतिदेवी का पराक्रम है कि जिसने रूस में अभी अपना प्रचण्ड रूप धारण कर के वहां के सम्राट ज़ार को, कि जिनकी शान दुनिया में एक ही थी, बिलकुल दीनहीन बना दिया है!

ऊपर जो हमने राज्यक्रांति के लिए ज्वालामुखी का उदाहरण दिया है उससे किसी को यह न समझना चाहिए कि जैसे ज्वालामुखी एकदम भड़क उठता है उसी प्रकार राज्यक्रांति का भी एकदम स्फोट होता है। नहीं, सच तो यह है कि जैसे ज्वालामुखी का स्फोट होने के पहले बरसों पृथ्वी के पेट में उस प्रकार की भीतर खलबल मची रहती है उसी प्रकार राज्यक्रांति होने के पहले भी देश में [illegible] आंदोलन के साथ साथ असंतोष का लावारस तैयार होता रहता है। राज्यक्रांतिरूपी महावृक्ष की जड़ हज़ारों देशभक्तों के रक्तरूपी पानी से सिंची होती है तब उस वृक्ष के [illegible] हज़ारों देशभक्तों की बलि भी दी हुई होती है। आज कितने ही वर्ष से रूस का क्रांतिकारक दल अपने विजय के लिए [illegible] प्रयत्न कर रहा था। इस प्रयत्न में हज़ारों लोगों को ज़ार की कोपदृष्टि में बलिदान होना पड़ा। और इस सब के प्रताप से ज़ार की प्रचंड एकतंत्री राज्यसत्ता के कोट की जड़ हिल गई थी। परकीय राष्ट्र से युद्ध करने में जब राजसत्ता फँस जाती है तब भी क्रांतिकारक पक्ष को अच्छा मौका मिलता है; और ऐसा मौका रूस-जापान युद्ध के समय रूस के लोगों को मिला था; और उसी के परिणाम में लोकसत्ता के विजय का चिन्हस्वरूप डयूमा सभा की स्थापना हुई, पर ज़ार साहब इस डयूमा सभा की भी परवाह नहीं करते थे! इस लिए प्रचलित महायुद्ध का सुन्दर मौका देख कर क्रांतिकारक पक्ष ने फिर अपना झंडा खड़ा किया; और इस बार पूर्ण सफलता प्राप्त कर के ही छोड़ा। राजसत्ता को उलट कर प्रजासत्ता स्थापित कर दी! क्रांतिकारक पक्ष को केवल ज़ार का ही भय नहीं था, किन्तु ज़ार के अनुषंग से एकतंत्री सत्ता के कारण ही जो सैंकड़ों डयूकस इत्यादि राजवंशी लोग उत्पन्न हो गये थे उनका भी डर था। क्योंकि ये सब लोग एकतंत्री सत्ता के प्रतिबिम्ब हैं, और अत्यन्त सामर्थ्यवान् तथा सत्ताधारी हैं। परन्तु जब क्रांतिपक्ष ने यह देखा कि ये सब लोग युद्ध में फँस गये हैं, और राजधानी से हज़ारों मील दूर चले गये हैं तब उनको बहुत अच्छा मौका मिल गया। ज़ार के पास जो सेना थी उसे उन्होंने बिगाड़ लिया; और ज़ार के आसपास जो अन्य लोग उसके पक्ष के थे उनको रास्ते पर लगाना उन्होंने दो महीने पहले से ही प्रारम्भ कर दिया था; और क्रान्तिकारक पक्ष का एक अत्यन्त प्रबल शत्रु, राजपक्ष का एक बड़ा भारी स्तम्भ, तथा ज़ार और ज़ारीना से लेकर एक बिलकुल क्षुद्र मनुष्य तक अपना प्रभाव जमाने वाला जो रासपुटिन नामक मनुष्य था उसका खून क्रांतिकारक पक्ष ने दिसम्बर के महीने में ही कर डाला था। राज्यक्रांति की रुधिरप्रिय देवता को इस बार रूस में जो पहिला बलिदान दिया गया सो यही था। इस व्यक्ति का चरित्र बहुत ही विचित्र है, इस लिए उसका कुछ वृत्तान्त हम यहां पर देते हैं।

साइबेरिया प्रान्त के टोबोलस्क नामक मुकाम में रासपुटिन का जन्म हुआ। अपने जीवन के पहले तीस वर्ष यह जवान हल जोतता रहा। रासपुटिन में महत्त्वाकांक्षा, धैर्य, बुद्धिमत्ता, इत्यादि सद्गुणों के साथ साथ अनीतियुक्त विषयोपभोगवृत्ति, द्रव्य और सत्ता की अनिवार्य लालसा, इत्यादि दुर्गुण भी उसमें कम नहीं थे ये सारे गुण मिल कर रासपुटिन को चैन नहीं लेने देते थे। हमारे यहां के कुछ ढोंगी गुरुओं की तरह इसके मन में भी एकदम धर्म-जागृति हुई और ये उस मन्दिर से इस मन्दिर में और इस मन्दिर से उस मन्दिर में फिरने लगे और वहां के प्रचलित ईसाई मतों पर मनमाने आक्षेप करने लगे। इस प्रकार रासपुटिन ने चारों ओर शीघ्र ही अपना प्रभाव जमा लिया। बढ़ते बढ़ते यह प्रभाव यहां तक बढ़ा कि धार्मिक दृष्टि से रासपुटिन एक बड़ा भारी प्रसिद्ध पुरुष बन बैठा!

[illegible]

रासपुटिन के मा बाप साइबेरिया के बड़े भारी मज़बूत किसान थे, उनका डीलडौल बड़ा मोटा ताज़ा और ऊँचा पूरा था। इस लिए रासपुटिन भी अपने मा बाप के अनुसार शरीर से बड़ा मस्त दिखता था। उसके सुन्दर चेहरे, चौड़ा ललाट, पानीदार और भेदक नेत्र, [illegible], मूँछें, [illegible] का प्रभाव सब लोगों पर अनूठा पड़ता था। उसके बोलने-चालने में भी एक प्रकार का आकर्षण था। इस प्रकार के अनेक गुणों की सहायता से रासपुटिन [illegible] करने लगा। [illegible] धार्मिक उपदेश [illegible]

* [illegible]

प्रभाव पड़ने लगा। और सम्पूर्ण साइबेरिया में और पेट्रोग्रेड या पहले के सेंटपीटर्सबर्ग तक उसके धार्मिक विचारों की लहरें आ कर टक्कर मारने लगीं। रासपुटिन ने अपने अमोघ वक्तृत्व के द्वारा साइबेरिया के प्राचीन ईसाई धर्माभिमानियों को चकाचौंध में डाल दिया। इस धर्मसुधार के प्रयत्न में रासपुटिन को अपनी एक दूसरी अलौकिक शक्ति से बड़ी सहायता मिली। वह शक्ति थी हिप्नॉटिज़्म अथवा विद्युन्मानसशास्त्र। साधारण लोगों में तो यह बात फैली हुई थी कि रासपुटिन केवल अपने आशीर्वाद से और दृष्टिक्षेप से बड़े बड़े रोगों को दूर कर देता है; और अनेक लोगों का ऐसा ही अनुभव भी आने लगा। इस प्रकार होते होते रासपुटिन, चमत्कार करने वाला एक ईश्वरी साधु माना जाने लगा; और लोग उसकी मानता भी करने लगे। उसके विषय में ऐसी श्रद्धा न केवल भोलेभाले गरीब लोगों को ही थी; किन्तु बड़े बड़े धनवान् सम्पत्तिशाली सरदार घरानों की स्त्रियों का भी ऐसी ही समझ होगई; और इस कारण रासपुटिन की पांचों उँगली घी में हुईं-सब ओर से उसको आनन्द ही आनन्द! रासपुटिन का सामर्थ्य और उसके शिष्यगण यहां तक बढ़े कि उसके धर्ममतों का प्रचार करने के लिए जगह जगह धर्मालय स्थापित हुए। पेट्रोग्रेड राजधानी में भी उसके धर्मालय खूब जोर शोर से चलने लगे। यह उसकी कीर्ति ज़ार और ज़ारीना के कान तक भी पहुँची।

ज़ार और ज़ारीना के कोई पुत्र न होने के कारण वे दोनों बहुत उद्विग्न हो रहे थे। इतने में साधु रासपुटिन के दैवी चमत्कारों का नमकमिर्च मिला हुआ वृत्तान्त ज़ारीना के कानों तक पहुँचते ही— रासपुटिन के कृपा-प्रसाद से ही क्यों न हो-उन्हें अपने पुत्र होने की आशा होने लगी; और अतएव वे रासपुटिन को प्रसन्न करने में तत्पर हुईं। ज़ारीना भक्तिभावपूर्वक रासपुटिन की सेवा में जाने लगीं; और उसके धर्ममतों की अनुयायिनी बन गईं; और संयोगवश ज़ारीना के शीघ्र ही लड़का भी हुआ। चार लड़कियां उनके पहले ही थीं; परन्तु लड़का न था, सो अब उनको पूरी श्रद्धा हो गई कि रासपुटिन के ही प्रसाद और आशीर्वाद से हमारे लड़का हुआ। अब तो ज़ार के मन पर भी इस प्रत्यक्ष प्रमाण का बहुत ही बड़ा प्रभाव पड़ा। इस कारण रासपुटिन दरबार का एक बड़ा भारी आदमी हो गया; और ज़ार पर उसका बड़ा प्रभाव जम गया। ज़ार का युवराज ज़ारविच जन्म से ही व्यंग उत्पन्न हुआ; और रूस के ही नहीं, किन्तु यूरप भर के बड़े बड़े डाक्टर हार गये; पर वह अच्छा न हुआ। तब तो ज़ारीना के आग्रह से फकीर रासपुटिन की स्थापना राजमहलों में ही की गई; और उसके अद्भुत सामर्थ्य से ज़ारविच के पैर का दोष शीघ्र ही नष्ट हो गया और वह चलने भी लगा। ज़ारविच के अच्छे हो जाने पर उसे फिर रासपुटिन से अलग कर लिया गया; पर चमत्कार यह हुआ कि उसके अलग होते ही फिर ज़ारविच का स्वास्थ्य खराब हो गया, अतएव रासपुटिन को फिर राजमहलों में लाना पड़ा। इस प्रकार शीघ्र ही रासपुटिन ज़ार के घर का एक अत्यन्त आवश्यक गृहस्थ बन गया; और ज़ार तथा ज़ारीना की उसके सामर्थ्य पर श्रद्धा थी ही; इस कारण धीरे धीरे ज़ार सब बातों में उसकी सलाह भी लेने लगे। तब तो अत्याचारी अधिकारी लोग भी उसकी इस प्रतिष्ठा से लाभ उठाने लगे; और इस कारण रासपुटिन क्रान्तिकारक दल का एक बड़ा भारी शत्रु बन बैठा।

"सम्पूर्ण रूस का पवित्र ज़ार"—उस पर इस फ़कीर का अधिकार! फिर क्या पूछना है, यह अभी मनमाना अत्याचार करने लगा। इधर उधर से द्रव्य लूटने-खसोटने में ही उसका जुल्म खतम नहीं हुआ। किन्तु, जैसी कि उसकी आदत थी, सुन्दर सुन्दर, गरीब और अनाथ, युवतियों पर स्वच्छन्द अत्याचार भी करने लगा। सैकड़ों स्त्रियां इसने भ्रष्ट कीं। इस कारण यह दुराचारी अब सारी प्रजा की आंखों में कांटे की तरह चुभने लगा। इसको निकाल देने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। पेट्रोग्रेड के धर्माधिकारियों ने भी अपने प्रयत्नों में कोई कसर नहीं रखी; पर यह तो स्वयं ज़ार पर प्रभाव रखता था; तथा सम्पूर्ण अधिकारिवर्ग उसके हाथ में था, अतएव कोई उसे निकाल नहीं सका। उसके धर्मालय में बड़े बड़े मिनिस्टरों से ले कर छोटे छोटे भिखारी तक आते थे। राजघराने की बहुत सी स्त्रियों का अड्डा भी उसके धर्मालय में ही लगने लगा। धनवान्, विषयी और धनवाज़ लोग उसके सा[...] मारने लगे, परन्तु गरीब लोगों और अनाथ स्त्रियों की [...] साथ ही साथ जाने लगी। स्वयं ज़ारविच पर भी लोकाप[वाद के] छींटे उड़ने लगे। और इस लोकापवाद का ज़ोर यहां तक [...] अन्त में रासपुटिन राजधानी से निकाला जाकर अपने मू[ल स्थान] को भेज दिया गया।

रासपुटिन इस प्रकार अपमान सह कर राजधानी से दू[र रहने] वाला मनुष्य नहीं था; उसने ज़ार और ज़ारीना को अपने सामर्थ्य का भय फिर दिखलाया; और सन् १९१३ के अन्त में फि[र इस] बदमाश सामर्थ्यशाली मनुष्य की स्थापना पेट्रोग्रेड राजधानी में [हुई।] इसी समय ड्यूमा सभा में प्रत्यक्ष रीति से कितने ही प्रजा[...] राष्ट्रभक्तों ने उसकी निर्भर्त्सना की; और उसको सदैव के लि[ए देश] से बाहर निकाल देने की सलाह दी गई। परन्तु ज़ार के आ[ग्रह से] उसका देशनिकाला एक असम्भव बात हो गई। तथापि पा[पों का] प्रायश्चित्त तो किसी न किसी रूप में मिलना ही चाहिए। [...] के जुलाई महीने में जुलिया ग्युसेवा नामक स्त्री ने उसके खून के इरादे से उस पर खंजर चलाया; इससे वह मरा तो नहीं [पर] बहुत जखमी हुआ। जुलिया ने अपने मुकदमे में कोर्ट के स[ामने] साफ कह दिया कि रासपुटिन ने अनेक भोलीभाली स्त्रि[यों के] पातिव्रत्य का भंग किया है; और इस कारण इसे देहान्त दण्ड मिलना उचित था; पर इस ज़ुल्मी दरबार से ऐसा न हो सक[ने के] कारण ही मैं ने इसके खून करने का प्रयत्न किया।

जिस समय कि यह उक्त जखम से बीमार था तभी रू[स के] ज़ार ने जर्मनी से युद्धघोषणा की। कहते हैं कि जर्मनी के गुप्त विभाग से इसका सम्बन्ध था; और यदि यह इस समय बीमा[र न] होता तो युद्ध को भी उसने टाल दिया होता। उपर्युक्त खून [का] प्रयत्न सफल न होने से उसे अपने दैवी सामर्थ्य की बड़ाई म[ारने] का और भी अच्छा मौका मिल गया; और उसने कोई दो तीन [...] पहले वहां के "नोव्हे व्हेम्य" नामक पत्र में निर्लज्जतापूर्वक यह [...] प्रकाशित किया था कि उसने कितनी स्त्रियों को अपने अधीन [कर] लिया था। इसके सिवाय उसने यह भी प्रकट कर दिया था [कि] वह रूसी क्रान्तिकारक पक्ष का खुल्लमखुल्ला शत्रु है।

ऐसे प्रबल सामर्थ्यवान्, और अपने को दैवीगुणसम्पन्न प्र[कट] करनेवाले, तथा निर्लज्जता और लापरवाही के साथ भोलेभा[ले] स्त्रीपुरुषों पर अत्याचार करने वाले अनीतिमान् मनुष्य को सब[से] पहले बलिदान देना क्रान्तिकारक पक्ष का मुख्य और प्रथम कर्तव्य हो गया। और तदनुसार रूस के सरदार घराने के छै क्रान्तिकार[क] दलवालों ने यह कार्य अपने ऊपर लिया। उनमें से प्रिन्स फेलिक्स युसुपोव नामक एक सरदार ने उसे अपने महल में महमानी के लिए रात को बुलाया; और भोजनसमारम्भ समाप्त होने पर मद्य-प्राशन विधि हो जाने के बाद उन छै में से एक महाशय ने रासपुटिन के हाथ में एक रिवालवर-पिस्तौल दिया; और स्वयं अपने हाथ से आत्महत्या करने के लिए उससे कहा। यह आज्ञा देने के पहले उसके सब पापकर्मों की उसे याद दिलाई गई; और स्वयं आत्महत्या कर के उन सब पापों की परिसमाप्ति करने के लिए कहा गया। उससे यह स्पष्ट कह दिया गया कि हम में से किसी के भी हाथ से मरने योग्य तेरे कर्म नहीं हैं; इस लिए तू स्वयं ही आत्महत्या कर के अपना छुटकारा कर। रासपुटिन ने वह पिस्तौल ले लिया; पर अपने ऊपर न चलाते हुए, जिसने वह पिस्तौल दिया था उसीके ऊपर चला दिया। परन्तु वह महाशय पहले ही से सावधान था तथा रासपुटिन के क्रूर स्वभाव को भी वे सब पहले ही से जानते थे; इस कारण उक्त महाशय उसकी गोली से बच कर अलग हो गया! इतने में रासपुटिन ज्यों ही भगने लगा त्यों ही उनमें से तीन मनुष्यों ने पिस्तौल चला कर उसका काम तमाम किया!

इस प्रकार रासपुटिन का वध कर के उसके शव को मोटर में डाल कर नीवा नदी के पेट्रोवेस्की पुल पर ले गये। और उसमें कोई बड़ी बड़ी चीज़ें बांध कर उसे पुल पर से नीचे नदी में डाल दिया। परन्तु शव पुल के लोहे के पट्टे में लगा, और धक्के के कारण उसके साथ बँधी हुई चीज़ें अलग हो गईं, और शव वैसा ही नदी में नीचे बहता हुआ, जहां बर्फ जमी हुई थी वहां जा लगा।

इस रीति से इस तामसी ढोंगी गुरुडमाचार्य का अन्त, जैसा चाहिए था वैसा ही, हुआ ! 'रामपुटिन' उसका असली नाम न था; किन्तु यह विशेष का नाम स्वयं उसने आगे चल कर धारण किया था। वास्तव में 'रासपुटिन' शब्द का अर्थ ही "व्यभिचारी अर्नाभिमान" है। देखिये तो यह मनुष्य कितना लापरवाह और निर्लज्ज था कि सब के देखते हुए स्वयं खुल्लमखुल्ला उसने यह नाम धारण किया था ! "दिव्य प्रेम" का पाखंड मचा कर, साधुत्व और वैराग्य के नाम पर, अनीति का साम्राज्य फैलाने वाले ब्रह्मचारी, साधु, सन्यासी, परमहंस हमारे देश में भी कुछ कम नहीं हैं। उनके पापों का घड़ा भर जाने पर उनकी भी अवश्य ही वैसी ही दशा होगी, जैसी रामपुटिन की हुई !

"आत्मसंरक्षा के लिए किया हुआ खून" होने के कारण पुलीस की ओर से इसकी कुछ भी जांच नहीं हो सकी; बस उसी दिन से रूस की राज्यक्रांति का प्रारम्भ हुआ, और दो महीने में स्वयं ज़ार साहब भी पदच्युत हुए !

अस्तु। इससे हमारे पाठकों को मालूम होगा कि दुराचारी पुरुषों के पापों से अथवा वैसे पापों के करने-कराने से राज्य तक डूब जाते हैं। पतिव्रता स्त्रियों और दीन दुखी लोगों के शाप बड़े बड़े राज्यों तक को भस्म कर देते हैं। चाहे रावण का राक्षसी राज्य हो, और चाहे औरंगजेब की जुल्मी राज्यसत्ता हो, अनीति और अन्याय से सभी की ऐसी ही दशा होती है। हां, इसमें कोई शक नहीं कि ऐसे पाप होने में एकतंत्री राज्यपद्धति अधिकांश में कारण होती है। प्रजासत्ताक राज्य की अनेक अच्छी बातों में से एक यह भी है कि उस राज्य में सद्गुणों का परिपोष बहुत अच्छा होता है और दुराचार तथा अत्याचार को विशेष मौका नहीं मिलने पाता। और इसी लिए परम पिता की ऐसी इच्छा जान पड़ती है कि सारे संसार में प्रजासत्ताक राज्य का ही झंडा खड़ा हो जाय। प्रजासत्ताक राज्य का जयजयकार हो !

औद्योगिक प्रदर्शनी बड़ौदा, जनवरी १९१७।

यह सभी लोग जानते हैं कि अपने राज्य की प्रजा में शिक्षा और उद्योग का प्रचार करने के लिए बड़ौदानरेश श्रीसयाजीराव महाराज अनेक प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं। गत जनवरी में इसी [illegible]

[illegible]

[illegible]

श्रीशिवाजीराव भी उपस्थित थे। प्रदर्शिनी-कमेटी के सभापति रायबहादुर गोविन्दभाई हाथीभाई देसाई ने रिपोर्ट पढ़ सुनाया उसमें उन्होंने प्रदर्शिनी के लाभ, बहुत अच्छी तरह, बतलाये और [illegible]

तोषिक नक़द रुपयों के देने की योजना की गई थी। राजकुमार श्री जयसिंहराव ने अपने भाषण में प्रदर्शिनी की सफलता के लिए कमेटी को धन्यवाद दिया; और पारितोषिक पाने वालों का अभिनन्दन किया। आपने अगली प्रदर्शिनी के विषय में लोगों को उत्साहित
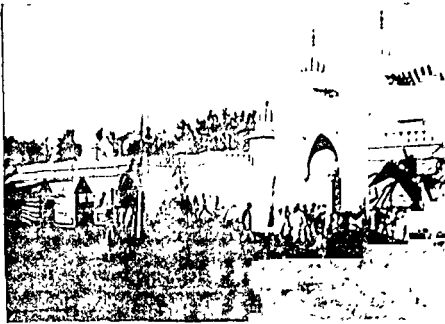
प्रदर्शिनी का मुख्य द्वार।

इस बार का सप्तग्रहणयोग।

यह वर्ष, अर्थात् सन् १९१७ ई०, ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से विशेष संस्मरणीय है। क्योंकि इस वर्ष कुल सात ग्रहण हैं। उनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण हैं। एक वर्ष में पांच ग्रहण अकसर होते हैं, छै तक कभी कभी हो जाते हैं; पर सात ग्रहण होना कपिलाषष्ठी की भांति ही दुर्लभ योग समझा जाता है। इसके पहले ऐसा योग सन् १८०५ में, अर्थात् ११२ वर्ष पहले आया था; और इसके आगे यह योग, आगामि १५० डेढ़ सौ वर्ष में सिर्फ दो बार आवेगा। यह ग्रहणों की संख्या सम्पूर्ण भूगोल की दृष्टि से हिसाब में रखी है। अर्थात् भारतवर्ष में चाहे कोई ग्रहण दिखे, अथवा न दिखे, पृथ्वी पर वह कहीं न कहीं दिखना चाहिए। उसको भी हिसाब में ले कर उपर्युक्त संख्या दी है।

हमें कम से कम इस बात का स्थूल ज्ञान तो अवश्य होना चाहिए कि यह दुर्लभ योग आता कब है। यह तो सभी को मालूम होगा कि ग्रहण कैसी दशा में लगता है। अर्थात् सूर्य, चन्द्र और पृथिवी जब एक सरल रेखा में आजाते हैं तब ग्रहण लगता है। चन्द्र जब बीच में आता है तब सूर्यग्रहण, और पृथिवी जब बीच में आती है तब चन्द्रग्रहण लगता है। सूर्य, चन्द्र और पृथिवी, प्रतिमास दो बार, अर्थात् पौर्णिमा और अमावास्या को एक सरल रेखा में आते हैं। परन्तु प्रत्येक बार ग्रहण नहीं लगता। इसका कारण क्या है? पृथ्वी का सूर्य के आसपास घूमने का मार्ग और चन्द्र का पृथ्वी के आसपास घूमने का मार्ग एक ही सीध में नहीं है[१]; अर्थात् एक कागज पर दो बिन्दु रख कर, उनको यदि सूर्यमंडल का मध्य और पृथ्वी का मध्य माना जाय तो चन्द्र का मध्य उस कागज़ की सीध पर सिर्फ दो ही बार आया हुआ देख पड़ेगा। और अन्य बार वह इस कागज के ऊपर अथवा नीचे रहेगा। इसी को शास्त्रीय भाषा में कहते हैं कि क्रांतिवृत्त और चन्द्रकक्षा दो बिन्दुओं में एक दूसरे को काटते हैं। इन्हीं बिन्दुओं को सम्पात कहते हैं। चन्द्र सम्पातीय होते हुए यदि अमावास्या या पौर्णिमा आवेगी तो ग्रहण लगेगा। यही नहीं, बल्कि पौर्णिमा के चन्द्र और सम्पात में नौ अंश तक चाहे जितना अन्तर हो तो चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा।
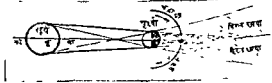
चन्द्रग्रहण।

और यदि नौ से तेरह अंश तक अन्तर होगा तो सिर्फ चन्द्रग्रहण की सम्भावना मात्र रहती है, निश्चय नहीं रहता। इससे अधिक अन्तर रहने पर ग्रहण नहीं लगता। जब ग्रहण नहीं लगता तब सूर्यचन्द्र का पूर्वपश्चिम अन्तर शून्य अथवा १८० अंश होने पर भी उनका दक्षिणोत्तर अन्तर शून्य नहीं होता। इस कारण चन्द्र की छाया पृथ्वी पर नहीं पड़ती अथवा पृथ्वी की छाया में चन्द्र नहीं आता, वह किंचित् बाजू से चला जाता है।

इससे यह स्पष्ट है कि पौर्णिमा की रात्रि में यदि तीनों गोलों का मध्यबिन्दु एक सरल रेखा में आ जाय तो खग्रास चन्द्रग्रहण हो जायगा और यह चन्द्र का मध्य यदि किंचित् बाजू की ओर होगा तो अधूरा चन्द्रग्रहण होगा।

सूर्यग्रहण के समय भी यही नियम रहता है। फर्क इतना ही रहता है कि देखनेवाला इस समय चूंकि पृथ्वी पर रहता है, इस कारण संपातबिन्दु में चन्द्र के रहते समय यदि अमावास्या आवेगी तो सूर्यग्रहण पृथ्वी के मध्यभाग पर अर्थात् विषुववृत्त पर लगा हुआ दिखाई देता है; और चन्द्रमध्य सम्पातबिन्दु से जिस परिमाण से दूर होगा उसी परिमाण से चन्द्र की छाया पृथ्वी पर विषुववृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर पड़ती है। इस कारण उसी भाग में रहनेवाले लोगों को सूर्यग्रहण दिखाई देता है। अन्य लोगों को वह नहीं दिखाई देता।

१ चन्द्रकक्षा और क्रांतिवृत्त में ५ अंश और ८ कलाओं का कोण है।

२ पृथ्वी की छाया साधारण हिसाब से ८५,०००० मील दूर शंक्वाकृति पड़ती है। पृथ्वी सूर्य से पास अथवा दूर, जिस परिमाण से होगी, उसी परिमाण से इस में ३ १४००० मील का अन्तर पड़ सकता है।

क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के दो छेदन बिन्दु हैं; और उनका अन्तर १८० अंश है। अर्थात् एक छेदन-बिन्दु के पास चन्द्र के आने से छै महीने के बाद वह दूसरे छेदन बिन्दु के पास आता है। इस कारण एक छेदन-बिन्दु के पास चन्द्र के रहते समय यदि ग्रहण लगता है तो फिर आगे लगभग छै महीने के बाद वैसे ही दूसरे ग्रहण का योग रहता है। अर्थात् एक वर्ष में दो मौके ग्रहण के आते हैं; और यदि सम्पात बिन्दु स्थिर होता तो प्रति वर्ष यह मौका निश्चित महीने में ही आया होता, परन्तु सम्पात-बिन्दु स्थिर नहीं है। वह बराबर पीछे हटता रहता है; और इस कारण एक मौका आने के बाद दूसरा मौका बराबर छै महीने में न आकर दस दिन पहले आता है। इस कारण जनवरी के प्रारम्भ में यह मौका आने से फिर दूसरा मौका जुलाई के प्रारम्भ में न आ कर जून के तीसरे हफ्ते में आता है; और तीसरा मौका उसी वर्ष के दिसम्बर में आता है। ऐसी दशा में एक ही ईसवी वर्ष में ग्रहण के तीन मौके सधते हैं। इस बार भी ऐसे ही तीन मौके सधने के कारण सात ग्रहण लगने का अवसर आया है।

अच्छा अब इस बात का विचार करते हैं कि एक मौके में कितने ग्रहण लगते हैं। यह पहले बतला चुके हैं कि रविमध्य और भूमध्य को काटनेवाली रेखा सम्पात बिन्दु से जाने पर तेरह दिन में पौर्णिमा आने से चन्द्रग्रहण की सम्भावना रहती है। एक पौर्णिमा चूंकि २९½ दिन में आती है, इस लिए एक के बाद एक, इस प्रकार दो पौर्णिमाओं को चन्द्रग्रहण लगना सम्भव नहीं। इस कारण एक मौके में चन्द्रग्रहण बिलकुल ही नहीं होगा, और यदि हुआ तो एक ही होगा। चन्द्रग्रहण के बिना वर्ष चला जाय; पर सूर्य-ग्रहण प्रति वर्ष होता ही है।

यदि स्थूल रीति से, गणित कर के किसी को यह देखना हो कि ग्रहणों के मौकों का मध्य किस तारीख को है तो १८७७ के १ मार्च और २४ अगस्त को मौकों का मध्य समझ कर प्रति वर्ष १९⅓ दिन के *हिसाब से कम करते जाना चाहिए। ऐसा करने से किसी* साल का भी मध्य आ जाता है। इस तारीख के पहले अथवा अनन्तर ११ दिन में पूर्णिमा आने से चन्द्रग्रहणयोग और १८ दिन में अमावास्या आने से सूर्यग्रहणयोग समझना चाहिए। प्रति वर्ष १९⅓

सूर्यग्रहण।

दिन के हिसाब से मध्यकाल हटने के कारण १८ वर्ष और १०११ दिन में ग्रहणों की पुनरावृत्ति होती है। उदाहरणार्थः—

१८४२, जुलाई ता० ८, खग्रास सूर्यग्रहण
१८६०, „ १८, „
१८७८, „ २९, „ इत्यादि

इसी प्रकार खग्रास सूर्यग्रहण की दूसरी परम्परा—

१८५०, अगस्त ७; १८६८ अगस्त १८,
१८८६, अगस्त २९; १९०४ सितम्बर ९,

इस प्रकार हुई; और प्रति बार खग्रास स्थिति ६ मिनट ठहर
इस उदाहरण से पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि ग्रहण
चक्र कैसा होता है।

[1]मतलब यह है कि चन्द्रग्रहण की अपेक्षा सूर्यग्रहण के योग अ
ज्यादा अधिक आते हैं।[2] क्योंकि चन्द्र के कितने ही भाग से सूर्य
कितना ही भाग पृथ्वी के किसी भी भाग के लोगों को यदि न दि
पड़ने लगा, तो सूर्यग्रहण हो जाता है। परन्तु चन्द्रग्रहण में सूर्य
सब किरण, चन्द्र के किसी न किसी भाग के लिए, पूर्णतया अट
होने पड़ते हैं। इस कारण चन्द्रग्रहण के लिए जैसे तेरह दिन
मर्यादा नियत कर दी गई है वैसी ही सूर्यग्रहण की मर्यादा १
दिन की है। अर्थात् भूमध्य और रविमध्य को काटने वाली रे
सम्पातबिन्दु से पौर्णिमा के दिन जाने से उसकी पिछली औ
अगली अमावास्या को मिला कर दो सूर्यग्रहण आ सकते हैं। औ
जब कि इस प्रकार दो सूर्यग्रहण एक के बाद एक आते हैं त
अवश्य ही वे खग्रास नहीं हो सकते। और उनमें से एक उ
गोलार्ध में तथा दूसरा दक्षिण गोलार्ध में दिखाई देता है। अर्थ
ऐसी दशा में पौर्णिमा ग्रहण के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है, ।
कारण खग्रास चन्द्रग्रहण होता है। अतएव ऐसे एक मौके में ती
ग्रहण लगते हैं। इस बार ऐसा ही योग आया है। अर्थात् पह
मौके में तीन ग्रहण हैं। वे इस प्रकारः—

पहला, सूर्यग्रहण २४ दिसम्बर १९१६
दूसरा, खग्रास चन्द्रग्रहण ७ जनवरी १९१७[2]
तीसरा, सूर्यग्रहण, २३ जनवरी १९१७

और दूसरे मौके में भी तीन ग्रहण इस प्रकार हैं:—

पहला, सूर्यग्रहण, १९ जून १९१७
दूसरा, खग्रास चन्द्रग्रहण ४ जुलाई १९१७
तीसरा, सूर्यग्रहण, १८ जुलाई १९१७

तीसरे मौके में दो ग्रहण इस प्रकार हैं:—

पहला, कंकणाकृति सूर्यग्रहण १४ दिसम्बर १९१७
दूसरा, खग्रास चन्द्रग्रहण २८ दिसम्बर १९१७

ये कुल आठ ग्रहण हुए; परन्तु इनमें से पहला ग्रहण (२४ दिस
म्बर १९१६ का) *इस वर्ष में नहीं लिया जाता।* इस कारण १९१
में ४ सूर्यग्रहण और ३ चन्द्रग्रहण, इस प्रकार कुल सात ग्रह
हुए।

१ उन्नीस वर्षात्मक चक्र के पहले १८ वर्ष में ग्रहण का चक्र पूर्ण होता है
अर्थात् चक्र के प्रथम वर्ष में जो ग्रहण आते हैं वे ही, अर्थात् उतने ही भाग के ग्रह
उन्नीसवें वर्ष में आते हैं। साम्पातिक वर्ष अर्थात् ग्रहणोपयोगी वर्ष ३४६-६२ दि
का है। ऐसे उन्नीस वर्ष में आर्यपद्धति के २३५ महीने होते हैं। वान आपोल्ज़
(Von Oppolzer) कृत "ग्रहण-विषयक नियम" (Canon der finsternisse) पुस्तक में ईसा के पहले १२०७ वर्ष से ई० सन २१६२ तक,
अर्थात् ३३६९ वर्ष में होनेवाले १३२०० ग्रहणों के काल बतलाये हैं।

२ यह ग्रहण भारत में देख पड़ेगा।

विधवा-आरत-नाद।

(१)

हे हे दयामय! हे जनार्दन! प्रणत-पालन-हार हे!
हे नाथ! हे यदुवंश-भूषण! भ्रमन-नाशन-हार हे!
हे देव! हे रघु-कुल-तिलक! संकट-निवारणहार हे!
हे दीन भारत के सुरक्षक और तारनहार हे!

(२)

हे नाथ! भारतवर्ष में हम दुःख कैसे पा रहीं।
जननी जनक के प्रेम से हा नाथ! वंचित हो रहीं।
हे ईश! हमने कौन से अपराध हैं ऐसे किये?
जिस घोर कारण नाथ! भीषण क्लेश हम को हैं दिये?

(३)

हम जानतीं हैं नाथ! यह हम मानतीं हैं सर्वथा,
मत-जन्म-कृत-अघ-हेतु ही हम पा रहीं हैं व्यथा।
अब तक रहेंगे प्राण हा! इस नर-शरीरागार में,
पातीं रहेंगी यातनाएँ नाथ! इस संसार में।

(४)

हे ईश! जो गत जन्म में अपराध हो हमने किया,
निज धर्म-पथ को त्याग कर हो पाप-पथ में मन दिया,
तो नाथ! उन सब दुष्कर्मों को क्षमा अब कीजिये,
संसार को इस यातना से शीघ्र उद्धार कीजिये।

—[illegible]

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का मार्च मास।

रूस की राज्यक्रांति और युद्ध पर उसका प्रभाव।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए० ।)

मार्च मास की सब से बड़ी घटना रूस की राज्यक्रांति है। मार्च के पहले सप्ताह में रूस की राजधानी पेट्रोग्राड में बहुत महँगी होगई और अन्न के लिए लोग रास्ते में फिरने लगे तथा चारों ओर लूट मच गई। उन भुखमरे लोगों की भीड़ पर सरकार ने पुलीस छोड़ दी; दुष्ट पुलीस ने लोगों पर बन्दूकें चलाईं, सैकड़ों लोगों की जान गई। स्वाभाविक ही लोगों ने समझा कि घर में भाग कर जाने से वहां रोटी तो मिलेगी नहीं, भूखों ही मरना पड़ेगा; इससे यही अच्छा कि सिपाहियों की गोली खा कर ही क्यों न मर जांय। सम्पूर्ण मार्ग लोगों से रुक गये। पुलीस की गोली से भी दंगा नहीं मिटा। इसी समय के लगभग रूस की डयूमा सभा की बैठक भी पेट्रोग्राड में होने वाली थी। इस लिए डयूमा सभा के निमित्त जो प्रतिनिधि एकत्र हुए थे उन्होंने बिगड़े हुए लोगों का (बलवाइयों का) नायकत्व अपने ऊपर ले लिया; और राजधानी को अपने अधिकार में लेने का प्रयत्न, बड़े बन्दोबस्त के साथ, प्रारम्भ किया। इधर ज़ार साहब ने यह हुक्म जारी किया कि डयूमा सभा होने न पावे। पर इस हुक्म की कुछ भी परवा न कर के डयूमा सभा का अधिवेशन हुआ; और सभा की ओर से यह प्रकट किया गया कि सम्पूर्ण सत्ता पर हमारा अधिकार हो गया है। इधर पुलीस के अत्याचार भी जारी ही थे। पर लोगों के सौभाग्य से पुलीस के पास कारतूस अधिक नहीं थे; और इस कारण पुलीस अधिक लोगों का खून नहीं कर सकी। मतलब यह कि पुलीस ने इस मौके पर अपनी अमानुषिक निर्दयता और निर्लज्जतापूर्ण अत्याचारों की कोई बात उठा नहीं रखी, तथापि कोई वश नहीं चला। तब लोगों ने भी पुलीस की खूब ही खबर ली, पुलिसवालों के आफिस, कागज़-पत्र, और यहां तक कि उनके घर-द्वार भी जला डाले, सब जेलखानों को खोल दिया; और राजनैतिक कैदियों को एकदम छोड़ दिया। ज़ार साहब ने जब देखा कि अब राजधानी डयूमा सभा के हाथ में जाती ही है तब उन्होंने अपने विश्वास के, चुने हुए, बीस हजार सैनिक राजधानी की रक्षा के लिए भेजे। इस सेना के पेट्रोग्राड में आते ही लोगों ने घुटने टेक दिये; और प्रार्थना कर के कहा कि देशोद्धार करने वाले देशबान्धवों को अब आप चाहे तारिये, चाहे मारिये। अब सारी बात आप के हाथ में है। अवश्य ही सैनिक लोग साधारणतया उदारमनस्क होते हैं—पुलीस का स्वीकार किया हुआ नीच वृत्ति का मार्ग उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इन ज़ार के विश्वासपात्र सैनिकों ने भी लोगों को अभय-वरदान दिया; और तुरन्त ही डयूमा सभा के पास जाकर उसकी सत्ता को स्वीकार किया! सभा की आज्ञा से राजमहल का बादशाही निशान नीचे गिरा दिया गया; और सम्पूर्ण राजधानी में डयूमा सभा के निशान चारों ओर फड़कने लगे! पहले का मंत्रिमंडल डयूमा सभा ने कैद कर लिया, और डयूमा सभा के नेताओं का नवीन मंत्रिमंडल नियुक्त किया गया। स्थान स्थान के मुख्य मुख्य सेनापतियों ने और रूस के बड़े बड़े शहरों ने इस राज्यक्रांति के लिए अपनी सम्मति प्रदर्शित की। जब यहां तक नौबत आगई तब ज़ार ने, लाचार हो कर, अपने बादशाही अधिकार के छोड़ने का लेख डयूमा सभा को लिख दिया। और इस समय रूस की राजसत्ता डयूमा सभा के मंत्रिमंडल के हाथ में है। इस मंत्रिमंडल ने यह घोषणा की है कि पहले की सरकार ने परराष्ट्रों से जो प्रतिज्ञाएं कर रक्खी हैं वे सम्पूर्ण नूतन रूस की ओर से यथातथ्य पाली जांयगी और वर्तमान महायुद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए उसकी ओर से कोई भी बात उठा न रक्खी जायगी। इस घोषणा के बाद नूतन रूस के कार्यक्रम में निम्नलिखित बातें प्रकाशित की गई हैं। (१) डयूमा सभा बहुत जल्द एक ऐसा बड़ी सोकसभा करने वाली है जिसमें रूस के प्रत्येक मनुष्य को अपना स्वतंत्र मत देने के सिद्धान्त का प्रतिपालन किया

यही बृहत् लोकसभा रूस की राजसभा का स्वरूप

निश्चित करेगी। तथापि यह एक प्रकार से निश्चित ही
चाहिए कि नवीन रूस अब प्रजासत्ताक ही रहेगा। इस
के अनुसार रूस के सम्पूर्ण पूर्व-राजवंशज स्त्री पुरुषों को
करने का क्रम शुरू कर दिया गया है। (२) अमीरउमरा
दार, जागीरदार, माफीदार, इत्यादि पहले के सब हक़
जमीनजुमले ले कर सर्वसाधारण लोगों को वे बांट दिये
(३) रूस के धार्मिक तथा अन्य निर्बन्ध तोड़ दिये जायें
स्त्रियों को भी, मुख्य प्रधान होने तक के, पुरुषों के सब अ
पूरे पूरे, दिये जायेंगे। रूस की यह राज्यक्रान्ति बहुत ही
काल में, बहुत ही थोड़े रक्तपात से, और अत्यन्त शान्ति से
सम्पूर्ण हुई है। स्पष्ट ही है कि इस विलक्षण राज्यक्रान्ति का
सब देशों और सब श्रेणियों के लोगों के आचारविचारों प
ही विलक्षण रूप से, पड़े बिना नहीं रहेगा। अच्छा, रूस की
क्रान्ति के इस व्यापक स्वरूप को एक ओर रख कर अब इ
बात का विचार करेंगे कि महायुद्ध के मित्रराष्ट्रों और अ
की सैनिक नीति तथा सैनिक दांवपेचों पर इस राज्यक्रा
क्या प्रभाव पड़ेगा।

अच्छा, यूरप की सैनिक परिस्थिति का विचार करते हुए
हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि रूस की इस
क्रान्ति के कारण स्वयं रूस की सैनिक शक्ति बढ़ेगी, अथवा
अवस्था को प्राप्त होगी। रूसी लोगों में नवीन रूसी सरक
प्रतिष्ठा, पुरानी सरकार से अधिक बढ़ी है, इसमें सन्देह
नवीन सरकार मानों साधारण जनसमूह का आत्मा ही है।
दशा में यह स्पष्ट है कि सर्वसाधारण जनसमूह इस आ
इच्छा के अनुसार ही हिले-डुलेगा और लड़ेगा। अर्थात्
की संख्या की दृष्टि से विचार करने पर नवीन सरकार अधिक
शाली निश्चित होती है। पर वास्तव में केवल सेना की सं
सम्पूर्ण सैनिक शक्ति नहीं कही जा सकती। अधिक संख्
सेना को फौजी दृष्टि से शक्तिशाली होने के लिए गोलाबारू
तोपों की बखूबी पूर्ति होनी चाहिए, होशियार सेनानायक
धुरीणत्व चाहिए; और शत्रु से दृढ़तापूर्वक लड़ने का हौसला च
इस लिए अब हम इसी बात का विचार करेंगे कि प्रस्तुत रा
का इन तीन बातों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। नवीन सरकार
बारूद और तोपों की क्या बखूबी पूर्ति कर सकेगी? पहले की
कार के कार्य से तुलना करने पर तो यही कहना पड़ता है कि
सरकार कम से कम चार छै महीने तो अवश्य ही बहुत क
रहेगी। इसका कारण यही है कि पुरानी सरकार के अन्तिम
दो महीने में रूस की रेलगाड़ियों के कारोबार में बड़ी गड़बड़
गई थी। रोमानिया के पराभव के कारण उस समय यही ड
रहा था कि सेनापति हिंडनबर्ग रूस की दक्षिणी सेना कहीं
कर के फेंक न दें; और इसी डर का निराकरण करने के लिए
सरकार, ठीक जाड़े के दिनों में, बड़ी जल्दी जल्दी से, सब स
और सेना रोमानिया की ओर ढकेलती हुई ले गई थी। क
रेलों का बल इस कार्य में इतना खर्च हुआ कि उनका सारा
कराया पहले का बन्दोबस्त नष्ट हो गया। रोमानियन पराभ
कारण न सिर्फ रूस की रेलगाड़ियों का ही दम उखड़ गया,
राजमंडल के कर्तृत्व के विषय में सेना का जो विश्वास बँधा
भी उड़ गया; और स्वयं राजमंडल के विचार भी, आगे इस
युद्ध के चलाने के विषय में, डगमगाने लगे। राजमंडल में औ
यह कहता था कि, हमारी सेना का दो बार बड़ा भारी पराभ
चुका, अब आगे युद्ध चलाने में हित नहीं, यह पक्ष प्रबल होने
तथा धीरे धीरे रूसी सम्राट भी सन्धि के लिए अनुकूल होने
राजमंडल की इस मानसिक स्थिति के कारण नवीन तैयारी
ओर से ध्यान हट गया; अव्यवस्था को ठीक करने की ओर

को ध्यान न रहा, यही नहीं बल्कि अव्यवस्था के कारण लोगों के दंगा करने पर, उस दंगे का निमित्त दिखला कर, पुराना रूसी राजमंडल, इँगलैंड से यह स्पष्ट प्रकट करने का मौका देख रहा था कि हम से अब युद्ध नहीं किया जाता और अब सन्धि किये बिना गति नहीं है! दिसम्बर और जनवरी में जर्मनी ने जो सन्धिवार्ता शुरू की थी उसे ज़ार के राजमंडल ने आनन्द से मान लिया होता; परन्तु इँगलैंड के नवीन प्रधान मंत्री मि० लाइड जार्ज ने जो दृढ़तापूर्वक इँगलैंड की तैयारी प्रारम्भ की उसे देख कर ज़ार का राजमंडल लज्जावश यह नहीं स्वीकार कर सका कि अब उसका दम उखड़ आया है। लोगों के दंगे-फ़िसाद की तो वे रास्ता ही देखते थे, सो यह मौका उनको आ कर मिल गया। परन्तु रूस के सौभाग्य से ज़ार की निर्घृण पुलीस यह दंगा नहीं शान्त कर सकी, और दंगे के कारण महायुद्ध की परिसमाप्ति तो हुई नहीं; किन्तु ज़ार की नादिरशाही सत्ता की परिसमाप्ति अवश्य हो गई! नूतन रूसी सरकार का जब अस्तित्व हुआ तब पुरानी रूसी सरकार का दम उखड़ आया था; और उस सरकार की जिह्वा के सिरे पर यह जतलाने वाले शब्द आ गये थे कि एक बार सन्धि होने पर इस झगड़े से छूट जायेंगे। परन्तु, ज़ार के राजमंडल का दम उखड़ आया था, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि उसके मन में आस्ट्रो-जर्मनों पर प्रेम उत्पन्न हो गया था। वास्तव में आस्ट्रो जर्मनों के विषय में उनका द्वेष कम न हुआ था, कान्स्टेंटिनोपल लेने की उनकी महत्वाकांक्षा भी निर्जीव न हुई थी; और उनके हृदय में यह शल्य पहले ही की तरह टोंच रहा था कि यूरप में हमारा जो महत्व है उसमें आस्ट्रोजर्मन अब विघ्न डाल रहे हैं। ज़ार के राजमंडल में कुछ ऐसी वृत्ति नहीं उत्पन्न हुई थी कि ऐंगलो मित्रों ने नाहक के लिए हमें बहका दिया; और इसी कारण हम इस झगड़े में फँस गये। किन्तु मित्रराष्ट्रों के उद्देश्य की सत्यता पर उनका पूर्ण विश्वास था। फिर उनका दम उखड़ आया था, इसका मतलब क्या है? वास्तव में वे इस बात का अनुभव करने लगे थे कि यद्यपि सत्पक्ष हमारा ही है, तथापि वह निबल है। जबरदस्त के सामने सत्पक्ष को भी बारम्बार सिर नीचा करना पड़ता है—ऐसा ही यह अवसर मित्रराष्ट्रों पर आया हुआ है। ऐसी दशा में "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः" के न्याय से जैसी बने वैसी सन्धि करने के विचार में वे थे। चूंकि उनके मन का पूर्ण विश्वास था कि हमारा ही पक्ष सत्पक्ष है। इसी लिए उन्होंने समझा कि अब हमारा भाग्य कहना है कि हम ज़ोर शोर से लड़ने को तैयार हैं तब फिर हमें इनकार कैसे करें? अपने पक्ष की सत्यता का मन में जो ज़ोर था वही ज़ोर वे शब्द नहीं निकलने देता था कि, "सन्धि कर लो।" किन्तु निर्बलता के विषय में जो नवीन अनुभव हो रहा था वह अवश्य ही उपर्युक्त अपमानास्पद शब्द कहने के लिए जीभ को उत्तेजित कर रहा था। मतलब यह है कि पूर्वराजमंडल के विचार से रूस पर निर्बलता की छाप मार दी थी। अस्तु। अब प्रश्न यह है कि वह लांछन मिटाने के लिए नवीन सरकार कहां तक समर्थ है? ज़ार का राजमंडल चूंकि घृणित विलासों में और पूर्ण अनीति की चैनबाजी में लोटने वाला था; और इसी कारण रोमानिया का पराभव होते ही उसका दम उखड़ आया। अनीति में पूर्ण डूबे हुए लोगों के हाथ से अधिकार गया। दुर्जनों के हाथ की सत्ता सज्जनों के हाथ में आई। पिछली मन की दुर्बलता नष्ट हुई। नवीन सज्जन मत के जबरदस्त हैं अवश्य; पर चूंकि पुरानी गन्दगी के वे शत्रु हैं, इस कारण सैनिक शक्ति उत्पन्न करने के साथ साथ उन पर उस पुरानी गन्दगी को दूर करने का भी भार आ पड़ा है। अतएव इस दुहरे काम को वे कहां तक झेल सकते हैं, इस विषय में उनकी मित्रमंडली को आज जो शंका हो रही है वह अनुचित कैसे कही जा सकती है? इसके सिवाय इसका भी कुछ पता नहीं कि यह पुरानी गन्दगी रूस में कहां कहां घुसी पड़ी है। ऐसी गन्दगी को दूर करके देश को स्वच्छ करने में एक दो पीढ़ियां सहज ही लग जाती हैं। और कम से कम दो तीन वर्ष तो इस कार्य के लिए अवश्य चाहिए कि यह गन्दगी कहीं कष्टदायक और रोगोत्पादक न बन बैठे। रूस के बड़े बड़े सैनिक अधिकारी इस गन्दगी से भरे हुए वायुमण्डल में ही बढ़े हुए थे; और इस कारण अब उनको दूर कर के उनकी जगह नवीन सैनिक अधिकारीवर्ग उत्पन्न करने में ही दो चार मास सहज ही लग जायेंगे। चूंकि सेना का अधिकारीवर्ग इस समय तितरबितर हो रहा है; पूर्व सरकार सेना पर दम उखड़ने की छाप मार चुकी है; और नवीन सरकार को सैनिक सुधार के साथ ही साथ अन्तस्थ स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना है—इस सम्पूर्ण परिस्थिति पर ध्यान रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि, समरांगण में लड़ने की दृष्टि से, नवीन सरकार, इसी १९१७ के साल में ही, पुरानी सरकार से अधिक सुदृढ़ हो जायगी। इसके सिवाय सज्जनता और देशाभिमान के कारण उत्पन्न होने वाले बल में, नवीन रूस ने एक प्रकार का प्रतिबन्ध भी लगा लिया है—अर्थात् नवीन रूस ने यह आघोषित किया है कि हम को अपने देश की सीमा के बाहर की भूमि की बिलकुल ही अभिलाषा नहीं है। नूतन रूस, पोलैंड को भी, उसके इच्छानुसार ही पूर्ण स्वातंत्र्य देने को तैयार है—अर्थात् वह कहता है कि हम पोलैंड को भी, वह जिस प्रणाली का राज्य चाहे, दे सकते हैं। रूस अब तुर्कों की भूमि नहीं चाहता, तुर्कों के कान्स्टेंटिनोपल पर अब उसकी दाढ़ नहीं है, तुर्कों के आर्मीनिया प्रान्त को हड़प कर के उसपर ईसाइयों की सत्ता स्थापित करने की भी अब उसे महत्वाकांक्षा नहीं है, तब फिर रूस आगे युद्ध ही क्यों करेगा? सच तो यह है कि रूस के इस नवीन घोषणापत्र से युद्ध करने का उद्देश्य ही नष्ट हो गया है। रूस को अब आगे युद्ध कर के अपना निज का कोई लाभ नहीं प्राप्त करना है। तब तो भी क्योंकि रूस ने तुर्कों के कान्स्टेंटिनोपल पर अपनी दाढ़ रक्खी; और इस महायुद्ध में ईंगलैंड ने रूस को यह वचन भी दिया कि हम तुम्हें कान्स्टेंटिनोपल प्राप्त करा देंगे। इस प्रकार यह

पूर्व-इतिहास रहते हुए भी नवीन रूस ने, पुराने रूस की महत्वाकांक्षा का ध्येय, एक घोषणापत्र निकाल कर फेंक दिया! इससे तो सम्पूर्ण संसार के सामने एक प्रकार से यही प्रकट किया गया कि नूतन रूस का युद्धोत्साह उतना जाज्वल्य नहीं है। नूतन रूस के कार्यक्रम में एक भाग यह भी है कि बड़े बड़े जागीरदारों की रियासतें सर्वसाधारण जनसमूह को बाँट दी जायँगी। इस लिये जब यह मालूम होगा कि अब हमारी सरकार को शत्रु का मुल्क तो जीतना नहीं है; और हमारे देश में ही रियासतें तथा जमीनें बांटी जा रही हैं, तब संग्राम का ऐसा कौन सा साधारण सैनिक होगा जो जमीनों और खेतों की इस बटनी के समय स्वयं अपने घर पर आकर उपस्थित होने के लिए आतुर न हो? रूस की नवीन सरकार का कार्यक्रम साधारण सैनिकों के युद्धविषयक उत्साह को मारनेवाला है। अब यदि वे उत्सुकता से लड़ेंगे तो सिर्फ एक बात के लिए-और वह बात है नूतन सरकार की स्थिरस्थापना। रूस के सैनिक यदि यह समझेंगे कि नूतन सरकार के काम में विघ्न डालने वाला शत्रु है तो वे प्राणों की कुछ भी परवा न करते हुए लड़ेंगे। नूतन रूस के सैनिक मन की यह परिस्थिति पहचान कर ही कावेबाज आस्ट्रो-जर्मन सरकार ने मार्च मास के अन्त में नवीन रूस के विषय में अपना प्रेम प्रकट किया है और नूतन रूस को उन्होंने यह वचन दिया है कि आस्ट्रो-जर्मनों की ओर से अब फिर रूस में जार की बादशाही सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं होगा। इसके सिवाय आस्ट्रो-जर्मन सरकार ने यह भी प्रकट किया है कि रूस का हमको कुछ लेना नहीं है और रूस को हमारा भी कुछ लेना नहीं है; ऐसी दशा में अब दोनों में लड़ाई जारी रहने का कोई कारण ही नहीं रहता, इस लिए हम ऐसी सन्धि करने को तैयार हैं कि जिस से अन्य देशों की किसी प्रकार की मानहानि न हो। साथ ही साथ आस्ट्रो-जर्मन सरकार ने यह भी सूचित किया है कि अब इस सन्धि का स्वरूप क्या होगा सो प्रकट करने के लिए रूस सरकार को आगे बढ़ना चाहिए। यह तो सब ठीक है; पर प्रश्न यह है कि क्या नवीन रूस, इंग्लैंड और फ्रांस की सम्मति के बिना, सन्धि की बातचीत करने के लिए आगे बढ़ेगा? नूतन रूस के अन्तस्थ शत्रु अभी और भी कई वर्ष बहुत रहेंगे। यह स्पष्ट है। ऐसी दशा में इंगलैंड और फ्रांस को खतरे में डाल कर केवल अपने स्वास्थ्य के लिए यदि नूतन रूस सन्धि कर लेगा तो यह बदनामी नूतन रूस की स्थिरता में न्यूनता लाये बिना न रहेगी। मतलब यह है कि सन्धि जब करेंगे तब सब मिलकर ही करेंगे; और यदि जर्मनी की सन्धि की शर्तें अँगरेजों और फ्रेंचों को स्वीकार न होंगी तो नूतन रूस अकेला, आस्ट्रो-जर्मनों से स्वतंत्र सन्धि कदापि न करेगा। वास्तव में नूतन रूस की सैनिक दशा यह हो रही है कि उसे स्वयं तो लड़ने का कुछ विशेष उत्साह नहीं है; और इधर हथियार नीचे रखना भी स्नेहियों के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। अर्थात् १९१७ के साल में बड़े जोर शोर से आस्ट्रो-जर्मनों पर हमला करने का बल रूस में नहीं दिखाई देता; तथापि, यदि आस्ट्रो-जर्मन पेट्रोग्राड राजधानी पर ही धावा करेंगे; अथवा बादशाही सत्ता रूस में फिर स्थापित करनेवाले—रूसी देशद्रोहियों को सहायता मिलने योग्य यदि कोई सैनिक हलचल आस्ट्रो-जर्मन करेंगे तो सम्पूर्ण रूसी राष्ट्र प्राणों की भी परवाह न करके आस्ट्रो-जर्मनों का चकनाचूर किये बिना कदापि न रहेगा। जब तक ऐसा कोई मौका नहीं आवेगा तब तक नूतन रूसी सरकार, रूस के सैनिक और सर्वसाधारण जनसमूह लड़ने की अपेक्षा अन्तस्थ नवीन रचना की ही ओर विशेष ध्यान देंगे। यह स्पष्ट है।

महायुद्ध की सैनिक अवस्था की दृष्टि से रूस की राज्यक्रांति एक बड़ी भारी महत्वपूर्ण घटना हुई; परन्तु इसी प्रकार की एक और महत्वपूर्ण घटना एप्रिल के पहले सप्ताह में घटित हुई है; और वह घटना यही है कि ५ एप्रिल को अमेरिका ने भी जर्मनी के साथ युद्धघोषणा कर दी है। इस युद्ध में भाग लेने का कारण बतलाते हुए प्रेसिडेन्ट विलसन ने अमेरिका की कांग्रेस को जो सन्देश दिया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। स्वयं की विजयलालसा से प्रेरित हो कर अमेरिका लड़ाई में नहीं पड़ा; किसी की पृथ्वी हरण करने की बुद्धि अमेरिका के पास नहीं फटकी; और महायुद्ध में जय प्राप्त करने के बाद भी युद्धव्यय के तौर पर अथवा अगर कोई कारण दिखला कर जर्मनी से इसका बद... लालच भी अमेरिका को बिलकुल नहीं है। जर्मनी ... और आपस के शान्तिप्रिय लोगों के अधिकार पैरों के... रहा है और स्वार्थी जहाज़ डुबाने का "समुद्री ... प्रारम्भ किया है। सब इसी प्रकार के कुमार्गों से ... भूल करने की पवित्र और शान्तिक इच्छा से ही ... पार निकाली है। गुप्त षड्यंत्र कर के कुमार्ग से ... राजसत्ताओं की गोद में ही तिरने की इच्छा रखनेवाली एकमुखी ... द्वारा सिद्ध की जा सकती है और इसी कारण ... अब तक, एक के बाद एक, भयंकर संकटों का सामना ... है। ऐसी दशा में प्रेसिडेंट विलसन का मत है कि ... एकतंत्री राजसत्ताओं का संसार से समूलनाश न कि... और ऐसे जुल्मी राजाओं के सिंहासनों के स्थान पर, ... करण और शान्तिक बुद्धि से, उनमें से बैठ कर; रा... वाला, लोगों का खुला दरबार न स्थापित किया जाय ... संसार की सर्वसाधारण जनता को शान्ति और सुख ... मिल सकेगा। इस लिए प्रेसिडेंट विलसन कांग्रेस को ... हुए कहते हैं कि उपर्युक्त उत्तम उद्देश्यों को कार्यरूप में प... के लिए इन उद्देश्यों को चाहने वाले इंग्लैंड, फ्रांस ... बहुजनसमाज के द्वारा चलाये हुए युद्ध में पूर्णतया ... अमेरिका को मित्रता के साथ [illegible] का ग्रहण करा... इस प्रकार अपना आशय प्रकट कर के प्रेसिडेंट विलसन ... घोषणा करने और युद्ध के लिए दस लाख नवीन सेना ... के, सब तरह से, मित्रराष्ट्रों को सहायता देने की इजा... से मांगी। ५ एप्रिल को यह इजाजत कांग्रेस ने दे दी; ... इजाजत के मिलते ही अमेरिका ने जर्मनी से युद्ध करने... षणा कर दी। मित्रराष्ट्रों का उज्वल मस्तक प्रेसिडेंट ... अधिक देदीप्यमान कर दिया और इस कारण मित्रराष्ट्... प्रजाजनों में खूब आनन्दोत्सव हुए। फ्रांस के प्रेसिडेंट, ... वर्तमान और भूतपूर्व प्रधान मंत्री, इत्यादि सब ने प्रेसिडेन्... के भाषण की प्रशंसा करके अमेरिका का अभिनन्दन कि... फ्रांस और रूस के समाचारपत्रों ने यह कह कर कि... विलसन का भाषण मानों यूरप के बहुजन-समाज को ... एक प्रकार का नवीन, स्वतंत्रता का सार्टिफिकेट ही ... आनन्द व्यक्त किया। इसके सिवाय उन्हों ने यह भ... भी प्रकट की कि इससे आस्ट्रिया और जर्मनी के बादश... उलट जायँगे; और वर्तमान महायुद्ध का अन्त ऐसा ही ... जिससे आस्ट्रिया तथा जर्मनी की प्रजा को भी लोकनियंत्रि... सुख चखने को मिलेगा। रूस की राज्यक्रांति को अमेरि... अपनी क्रांति से पुष्टि दी है; इससे अब सम्पूर्ण संसार ... मालूम होने लगा है कि वर्तमान महायुद्ध मानों एकतंत्री ... और लोकनियंत्रित राजसत्ता का ही एक प्रकार का भ... अमेरिका के युद्ध में सम्मिलित होने से इंग्लैंड, फ्रांस, इ... रूस, इन चारों राष्ट्रों में एक प्रकार का नवीन उत्साह ... गया है। और अभी तक महायुद्ध के भविष्य के विषय... हृदय में जो एक प्रकार की शंका सी थी सो अब बिलकु... गई है, और सब के मन को प्रसन्नता मालूम होने लगी है ...

अच्छा, अब हम इस बात का विचार करते हैं कि रण... सैनिक अवस्था पर इस सुदशा का क्या प्रभाव पड़ेगा। ... दस लाख नवीन सेना तैयार करनेवाला है अवश्य, पर ... अमेरिका के पास सेना नहीं है। बहुत होगा तो महीने ... में दस-बीस हजार सेना भेज कर ही अमेरिका यूरप की ... पर अपना झंडा फहरानेवाला है। और यूरप की सब र... का इस समय यही हाल है कि यह बीस हजार सेना ... "शाकाय वा लवणाय वा" ही समझी जायगी ... रणभूमि पर अमेरिका के इस नोन का उपयोग १९१८ ... बहुत ही कम होगा, तथापि अमेरिका का यह नमक इंग्ल... फ्रांस की सेना के अलोनेपन को दूर करने के लिए ... होगा। इधर इंग्लैंड और फ्रांस को धन की जो ... भासने लगी थी सो भी दूर हो गई—अर्थात् अब अ... की विस्तृत सम्पत्ति मित्रराष्ट्रों की सेवा में हाजिर ...

उपस्थित रहेगी; अमेरिका के मध्य कारखाने मित्रराष्ट्रों के लिए गोलाबारूद अव्याहत रूप से पहुँचावेंगे और अमेरिका के व्यापारी जहाज अमेरिका की जलसेना की संरक्षा से पनडुब्बियों के प्लेग में हरताल लगावेंगे। अवश्य ही पनडुब्बियों के प्लेग से १९१७ के आगे महायुद्ध जारी रखना इंगलैंड के लिए कठिन था; पर अब १९१७ ही क्या—१८, १९ और २० तक भी यदि महायुद्ध जारी रहे तो भी हमारे मुख्यप्रधान मि० लायड जार्ज की प्रति दिन की निद्रा में, युद्ध की चिन्ता से, यत्किञ्चित् भी व्याघात होने की सम्भावना नहीं। अमेरिका यदि इस समय लड़ाई के मैदान में न आया होता तो १९१७ में ही इंगलैंड को फ्रांस की रणभूमि में जर्मनी को पीटपाट कर महायुद्ध की परिसमाप्ति कर लेनी पड़ती। न्यायालय में न्यायाधीश के सामने जब दो पक्ष मुकदमे में खड़े होते हैं तब नियमानुसार किसी न किसी एक पक्ष पर प्रमाण देने का भार होता है। जिस पक्ष पर यह भार होता है वह यदि यथेष्ट प्रमाण दे कर अपने पक्ष को सत्य नहीं सिद्ध कर पाता तो दूसरे पक्ष को आप ही आप, बिना कुछ किये ही, विजय प्राप्त हो जाता है। बस यही न्याय रणभूमि के लिए भी लगता है। रणभूमि पर जब दो दल लड़ने के लिए एक दूसरे के सामने खड़े होते हैं तब आसपास की परिस्थिति कुछ ऐसी बन जाती है कि उन दो दलों में से किसी न किसी एक दल पर दूसरे दल पर धावा करने का बोझा आप ही आप आ पड़ता है; और यह बोझा परिस्थिति जिस दल पर डालती है वह यदि अपने विपक्षी दल को पूर्णतया पराजित नहीं कर पाता तो विपक्षी दल के गले में विजयश्री जयमाल डाल देती है। राज्यक्रान्ति के कारण रूस का दम एक प्रकार से उखड़ ही चुका था, सर्बिया और रोमानिया को गिलंकृत कर के आस्ट्रो-जर्मन कृतकार्य हो चुके थे; और पनडुब्बियों का प्लेग शुरू कर के १९१८-१९१९ में इंगलैंड का जोश भीतर ही भीतर ढीला कर देने का प्रयत्न भी हो चुका था—इस परिस्थिति से १९१७ में फ्रांस की रणभूमि में आस्ट्रो-जर्मनों पर धावा कर के उनकी हड्डी नरम करने का बोझा ऐंग्लो-फ्रेंचों पर डाला था। परन्तु अब चूंकि अमेरिका युद्ध में शामिल हो गया है, इस लिए अब यह दशा नहीं रही कि १९१७ में ही फ्रांस की रणभूमि में जर्मनी को परास्त करना चाहिए, अन्यथा मित्रराष्ट्रों का अपजय होगा। अमेरिका ने रूस का लँगड़ापन कम कर दिया है, पनडुब्बियों का डर भी अब तीन चार वर्ष के लिए भग गया, और १९१८-१९ में दस पन्द्रह लाख नवीन रक्त के और नवीन जोश के जवानों की सहायता अमेरिका से आवेगी। यह सहायता आ पहुँचने के पहले, इंगलैंड को जब तक अच्छी तरह यह न मालूम हो जाय, कि अवश्य ही जीत हमारी होगी, तब तक वही खुद १९१७ में अन्तिम फैसला कराने वाली लड़ाई क्यों लड़े? क्योंकि अब इंगलैंड भी १९१८ के वसन्त काल तक खुशी से राह देख सकता है। मतलब यह है कि अभी तक धावा करने का भार जो इंगलैंड पर था उसे अमेरिका ने अब जर्मनी के सिर पर उठा कर रख दिया है।

सम्पूर्ण मार्च महीना भर ऐंग्लो-फ्रेंच सेना के आगे पश्चिम रणभूमि में आरास से पेरन नहीं तक जर्मनी पीछे हट रहा था। कहीं पांच मील, कहीं सात मील, कहीं बारह मील, के हिसाब से जर्मनी पीछे हटा। पीछे हटते समय जर्मनी ने सारा देश उजाड़ कर दिया। वृक्ष काट डाले, घर-द्वार गिरा कर मैदान कर दिया और सारी भूमि पर तृण का डंठल भी नहीं रखा। तरुण स्त्री-पुरुषों को पकड़ लिया और बूढ़ों तथा बच्चों के लिए पांच सात दिन के लिए खाने-पीने को रख कर दस पांच गांवों के मनुष्यों को एक गांव में बांध कर पीछे छोड़ दिया; जगह जगह के पुल और सड़कों का विध्वंस कर दिया गया। इस रीति से उजाड़-उजाड़ कर सत्यानाश करते हुए जर्मनी ने यह प्रदेश छोड़ा है। मार्च के अन्त और एप्रिल के प्रारम्भ में जर्मनी का पीछे हटना कुछ बन्द हुआ है और सेंट क्वेंटीन के आसपास बड़े जोर शोर की लड़ाई आरम्भ हुई है। अनुमान किया जाता है कि एप्रिल के दूसरे हफ्ते में सेंट क्वेंटीन [illegible] फ्रेंचों के हाथ लगेगा। जर्मनी यह पीछे क्यों हटा? कहते हैं कि इस बारह मील पीछे हटे हुए स्थान में जर्मनी ने अपना [illegible] मोर्चा तैयार किया है। और यह स्थान पहले से भी अधिक [illegible] है। इसके सिवाय [illegible] [illegible] के कारण यह भी सम्भावना है कि ऐंग्लो-फ्रेंचों के [illegible]

जर्मनी के तोपखानों की मार के नीचे आ जावें। छोड़ दी हुई जगह जर्मनी की श्रेणी में साफ मैदान के तौर पर आ पड़ी है, इस कारण इस सौ सवा सौ मील के मैदान में जर्मनी की श्रेणी अब सरल रेखा के रूप में हो गई है। ऐसी दशा में इस नवीन जगह की रक्षा करने के लिए पहले से कम लोगों से ही काम चल जायगा। सैनिकों की यह किफायत क्यों की गई? कहते हैं कि जर्मनी का इस विषय में ऐसा अनुमान है कि इस प्रकार पश्चिम रणभूमि में किफायत करने के बाद जो सेना बाकी बचेगी वह ऐंग्लो-फ्रेंचों के भारी हमले के समय जगह जगह की कमी पूरी करने के काम आयेगी। इसके सिवाय गत हेमन्त काल में बेलजियम, फ्रांस, पोलैंड और रोमानिया के जीते हुए लोगों को बेगारी पकड़ कर जर्मनी के भिन्न भिन्न कारखानों में उनको काम पर रक्खा गया है; और उद्योग-धंधे में लगे हुए लोगों की नौ दस लाख सेना सेनापति हिंडनबर्ग के सिपुर्द की गई है; और यह प्रकट हुआ है कि ये एप्रिल मई मास से प्रत्येक रणभूमि की सेनाओं की खबर बड़े जोर शोर से लेनेवाले हैं। इस नवीन दस लाख सेना की गदा किस पर चलाई जायगी? कोई कहते हैं, पेट्रोग्राड शहर पर से० हिंडनबर्ग चढ़ाई करनेवाले हैं, कोई कहते हैं, ओडेसा और कीव प्रान्तों पर ही उनकी डाढ़ है; और कोई कहते हैं, इटली के सर पर यह गदा पटकी जायगी। जो लोग यह कहते हैं कि इटली पर ही चढ़ाई होगी वे इस बात पर विशेष आधार रखते हैं कि इटली की रणभूमि फ्रेंच रणभूमि के निकट होने के कारण, एक ओर की सेना दूसरी ओर शीघ्रता से ले जा सकते हैं। यह हम भी मानते हैं कि इटली पर चढ़ाई करते समय यदि ऐंग्लो-फ्रेंच विशेष ज़ोर बांधेंगे तो इटली की ओर की सेना पश्चिम रणभूमि की ओर तुरन्त ही घुमाई जा सकेगी; परन्तु इसके साथ ही एक यह भी बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इटली की कुछ भी हार होते ही जहां यह देखा गया कि अब इटली अकेले से काम नहीं चलता वहीं ऐंग्लो-फ्रेंच सेना भी फ्रांस से इटली की मदद के लिए सहज ही दौड़ जायगी। इसके सिवाय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इंगलैंड, फ्रांस और इटली तीनों की सेना और तीनों का तोपखाना उस तरफ की आस्ट्रो-जर्मन सेना से और सेनापति हिंडनबर्ग की नवीन दस लाख सेना से अधिक है। इसका मतलब यह है कि यदि पहले एक दो हफ्तों में ही दल को फोड़ कर एकदम भीतर घुस सके तब तो ठीक है; नहीं तो इटली की चढ़ाई भी गत वर्ष की वर्डून की चढ़ाई की "सुधार कर बढ़ाई हुई दूसरी आवृत्ति" हो जायगी। इसके सिवाय चूंकि अमेरिका भी युद्ध में सम्मिलित हो चुका है, इस लिए अब यह भी कोई अचरज नहीं रहा कि १९१७ में ऐंग्लो-फ्रेंचों को फ्रांस का जर्मन-दल तोड़ना ही चाहिए। इटली और सेलिनीका की ओर अपना दल मजबूत कर के तब फ्रांस की बड़ी चढ़ाई का प्रारम्भ होगा। जब कि पश्चिम रणभूमि की सैनिक अवस्था ऐसी हो रही है तब सेनापति हिंडनबर्ग को पश्चिम की अपेक्षा पूर्व ही अधिक श्रेयस्कर मालूम होने की सम्भावना है। इधर रूस की राज्यक्रांति के कारण कभी सिलसिला का अभाव भी तितर बितर हो गया होगा। एप्रिल मई मास में रूस पर चढ़ाई करते समय जर्मनी के राजकर्त्ताओं और सेनानायकों को इस मत के रहने की भी सम्भावना है कि रूस की राजसत्ता चूंकि अब राष्ट्र-मुखी हो गई है, अतएव रूस का यदि अब फिर कहीं एक बार पराभव हुआ तो सारा राष्ट्र एकदम भड़क उठेगा, इससे दूसरा ही [illegible] करने का उद्योग करने लगेंगे। [illegible] जब कि अमेरिका महायुद्ध में सम्मिलित हो चुका है तब इस [illegible] जर्मनी के लिए कोई विशेष कारण नहीं रहता। क्योंकि राष्ट्रमुखी सत्ता के जर्मनी में भी स्थापित होने का डर, पूर्व की अपेक्षा पश्चिम की ही ओर से [illegible] चाहिए। [illegible] [illegible]

भारी विजय सम्पादन कर के प्रत्यक्ष रणभूमि पर यह न सिद्ध कर दें कि राष्ट्रमुखी सत्ता सैनिक सामर्थ्य की दृष्टि से पंगु होती है तब तक उनके लिए और कोई चारा नहीं है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह तर्क निकलता है कि सेनापति हिंडनबर्ग पश्चिम रणभूमि, इटली और सेलिनोका की चढ़ाई तो एंग्लो-फ्रेंच और इटालियन सेना को ही सौंप कर आप रूस की तरफ झुकेंगे; और इस तरफ ओडेसा तथा कीव के मैदान की सीध में उनकी चढ़ाई होगी। पेट्रोग्राड की ओर नवीन रूसी सरकार को विशेष सहारा है, रूस की दक्षिणी सेना में बादशाही सत्ता के पक्षपाती अधिक हैं: इसके सिवाय ओडेसा और कीव प्रान्तों के ले लेने से काले समुद्र पर भी आस्ट्रो-जर्मनों की विशेष सत्ता हो जायगी; और इससे तुर्किस्तान को एक प्रकार से मदद मिल सकेगी। इधर मार्च महीने में अँगरेजों ने बुगदाद के उस तरफ तीस चालीस मील तक तुर्कों को खदेड़ा और एप्रिल के प्रारम्भ में ईरान की पश्चिमी सीमा पर, उत्तर की ओर नीचे उतरी हुई रूसी सेना का अँगरेजी सेना से मिलाप हुआ; इजिप्ट की ओर स्वेज नहर की अँगरेजी सेना ने तुर्की के पेलिस्टाइन प्रान्त पर हमला कर के बीस हजार तुर्की सेना को पूर्ण रूप से पराजित किया। ऐसी दशा में पेट्रोग्राड की चढ़ाई का अथवा तुर्कों को एक प्रकार से सहायता करनेवाली ओडेसा की ही चढ़ाई सेनापति हिंडनबर्ग को अधिक इष्ट जान पड़ने की सम्भावना है।

नवम महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन।

यह सम्मेलन इस वर्ष ९ से ११ मार्च तक इन्दौर में हुआ। अध्यक्ष पूनानिवासी रावबहादुर आगाशे महाशय (गद्य-पद्य के मार्मिक अनुभवी विद्वान्) थे। आपने अपने भाषण में पहले यह

मराठी-साहित्य-सम्मेलन के प्रारम्भ-समय का दृश्य।

बतला कर कि, महाराष्ट्र के विद्वानों को महत्साहित्य का आश्रय कर के भाषाभिवृद्धि किस प्रकार करनी चाहिए, फिर लेखक और

[illegible]

विवेचक [illegible] के विषय में अपना विस्तृत [illegible] प्रकट किया। आपने बतलाया कि [illegible] दृष्टि से विवेचक [illegible] में [illegible] प्रकार का [illegible] नहीं है, [illegible]

साहित्य में स्थान प्राप्त करा देने का अद्वितीय बुद्धिवैभव जिसे परमेश्वर ने दिया हो उसी को इसका प्रयत्न करना चाहिए। इसके सिवाय आगाशे महाशय ने अपने भाषण में वर्तमान मराठी साहित्य की गद्यरचना के सुधार तथा आधुनिक नाटक, उपन्यासों, के गुण दोषों का विवेचन संक्षेप में किया। वास्तव में आपका भाषण

स० समाप्त होने पर श्री० महाराजा [illegible] जा रहे हैं।

आपकी विद्वत्ता और अनुभव को शोभा देने योग्य था।

इस वर्ष महाराष्ट्र साहित्यसम्मेलन में साहित्यकार्य की उन्नति के लिए द्रव्य भी अच्छा एकत्र हुआ। १० हजार रुपया [illegible]

इन्दौर-नरेश ने दिये। महाराजा साहब ने स्वयं सम्मेलन का प्रारम्भ कराया; और उत्साहपूर्ण भाषण भी पढ़ सुनाया; जिसमें आपने मराठी के साथ साथ हिन्दी की उन्नति की अभिलाषा का भी उल्लेख किया। श्रीमान् इन्दौर-नरेश के साहित्यप्रेम की जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। इन्दौर के दीवान मेजर रामप्रसाद दुबे महाशय ने भी मराठीसम्मेलन में बड़े उत्साह से भाग लि[या।]

सम्मेलन के भिन्न भिन्न अवसरों के अनेक फोटो लिये गये, जि[न]में कुछ चित्र यहाँ पर हिन्दी चित्रमयजगत् के पाठकों के मनोरंज[न]

सम्मेलन में उपस्थित गद्य-लेखकगण।

नीचे पर बैठे हुए—१ श्री० आठोले, २ श्री० देशपांडे, ३ श्री० मुले, ४ श्री० कानिटकर, ५ श्री० लेले।

कुर्सी पर बैठे हुए—१ श्री० नवलकर, २ श्री० पालवणकर, ३ श्री० ओक, ४ श्री० वाळेकर, ५ श्री० आगाशे (अध्यक्ष), ६ श्री० केलकर (केसरी-मराठा सम्पादक) ७ श्री० डॉ० तावे, ८ श्री० बा० गो० आपटे, ९ श्री० कानिटकर।

खड़े हुए—१ श्री० राजपुरकर, २ श्री० पंतदर, ३ श्री० द० मी० कुलकर्णी, ४ श्री० मोरमकर, ५ श्री० निरात, ६ श्री० भागवत।

सम्मेलन में उपस्थित मराठी कविमण्डल।

नीचे बैठे हुए—१ श्री० [illegible], २ श्री० [illegible], ३ श्री० [illegible], ४ श्री० [illegible], ५ श्री० [illegible]।

कुर्सी पर बैठे हुए—१ श्री० [illegible], २ श्री० [illegible], ३ श्री० [illegible], ४ श्री० [illegible], ५ श्री० [illegible] (अध्यक्ष), ६ श्री० [illegible], ७ श्री० [illegible] ८ श्री० [illegible], ९ श्री० [illegible],

खड़े हुए—१ श्री० [illegible], २ श्री० [illegible], ३ श्री० [illegible], ४ श्री० [illegible], ५ श्री० [illegible], ६ श्री० [illegible]।

रूस की राज्यक्रांति और ड्यूमासभा।

किसी किसी वृक्ष का बीज वायुवेग से उड़ कर अथवा समुद्र की लहरों से बह कर सैकड़ों मील दूर जा पहुँचता है; और वहां, कालान्तर से, उसमें अंकुर फूट कर, बड़ा सुन्दर वृक्ष खड़ा हुआ दिखाई देता है। मानवी विचारों का भी बहुधा ऐसा ही हाल होता है। स्वतंत्रता, समता और बन्धुभाव के सुन्दर विचारों का मनोहर वृक्ष फ्रांस के तत्ववेत्ताओं के परिश्रम से फलद्रूप हुआ। परन्तु इस फल का माधुर्य संसार के सामने लाने और उसका बीज फ्रांस से सैकड़ों मील दूर रूस के समान दूसरे देश में पहुँचाने का श्रेय नेपोलियन की महत्वाकांक्षा को ही देना चाहिए। रूस को पादाक्रान्त करने की इच्छा से नेपोलियन ने जो सुप्रसिद्ध चढ़ाई की उससे चाहे नेपोलियन के अधःपात का प्रारम्भ भले ही हुआ हो, रूस के अनेक शहर जलाये गये हों; पर उस जली हुई भूमि में ही आधुनिक सुधार का बीज पहले पहल पड़ा; और आज जिस रूसी राज्यक्रांति के वृहद् वृक्ष की ओर देख कर सारा संसार आश्चर्यित हो रहा है उस क्रान्ति के विचार निःसन्देह उसी समय जम चुके थे। नेपोलियन की चढ़ाई के समय पड़ा हुआ यह बीज जब तक आज के वर्तमान स्वरूप में आवे आवे तब तक इसे अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। इस अवधि में कितने ही लोग कष्ट सहते हुए प्राणों से हाथ धो बैठे, सैकड़ों वंश नामशेष हो गये, और ज़ार से ले कर एक मामूली सिपाही तक, छोटे बड़े अनेक मनुष्यों के खून हुए; और अन्त में जब वर्तमान महायुद्ध की भयंकर आपत्ति आ पहुँची तब भूख और शीत से हज़ारों मनुष्य मृत्युमुख में पड़े। इनमें से किन संकटों से लोकसत्ता की वृद्धि में सहायता हुई और किन से उसमें विघ्न आया, इसका निर्णय कालान्तर से होगा। इसका विस्तृत वर्णन आज हमें नहीं देना है; किन्तु आज हम सिर्फ इतना ही बतलाना चाहते हैं कि रूस में इस महायुद्ध के कारण लोकसभा की (ड्यूमा की) सत्ता कैसे बढ़ती गई। क्योंकि इधर रूस में जो एकदम उथलपथल हो गई, और ज़ार तथा उसके अनुयायियों को चुपके से अधिकार छोड़ कर विरोधियों के अधीन होना पड़ा, उसका रहस्य समझने के लिए रूसी लोकसभा ड्यूमा का कुछ पिछला वृत्तान्त अवश्य जान लेना चाहिए। महायुद्ध के कारण रूस में एक बड़ा महत्वपूर्ण परिणाम हुआ; और वह यह कि ड्यूमा सभा के पक्षभेद एकदम नष्ट हो गये; तथा प्रोग्रेसिव (प्रागतिक या उन्नतिशील) ऑक्टोब्रिस्ट और कितने ही राजपक्षीय सभासद भी लोकसत्तावादी बन गये। महायुद्ध प्रारम्भ होने के बाद ड्यूमा के अनेक सभासद रणांगण की परिस्थिति देखने को गये थे। वहां उन्हें जो भद्दा दृश्य दिखाई दिया और ब्यूरोक्रसी के अर्थात् अधिकारी वर्ग के, हाथ से व्यवस्थित कारवाई न हो सकने के कारण सिपाहियों और जनता के जो कष्ट उनकी दृष्टि पड़े उनसे उनके विचार बिलकुल बदल गये। और उनको इस बात की पूरी पूरी प्रतीति हो गई कि अधिकारीवर्ग प्रजा को सुखीसन्तुष्ट रखने में बिलकुल असमर्थ तथा अयोग्य है; इस लिए जब तक राज्यव्यवस्था, लोगों के ही हाथ में नहीं आवेगी तब तक प्रजा के दुखदर्द दूर होने का और कोई मार्ग नहीं है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी सभासद इस प्रकार एकदम पूर्णतया उदारमतवादी बन गये, तथापि कम से कम तीन-चतुर्थांश सभासद तो अवश्य ही लोकपक्ष के अनुकूल हो गये।

सेज़ोनाफ।
(परराष्ट्रीय मंत्री, जुलाई १९१६)

मि० स्टर्मर।
(रूस के मंत्री, १९१७ जनवरी)

जनरल सुखोम्लिनॉफ।
युद्ध में मिल जाने के कारण कैद किया गया।

इस प्रकार जिन के मतों में बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया उन सभासदों में पुरिश्केविच का नाम विशेष ध्यान में रखने लायक है। यह बेसारेबिया प्रान्त की ओर से ड्यूमा सभा का एक प्रसिद्ध सभासद महायुद्ध के पहले अधिकारीपक्ष का और प्रतिगामी नीति का सर्वथा बड़े ज़ोर शोर से समर्थन करनेवाला था; यह मिल्युकोव और अन्य लोकसत्तावादी सभासदों का हृदय से द्वेष करता था; और उनको भरी सभा में गालियां देने तथा उन पर कठोर टीकाटिप्पणी करने का कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देता था। महायुद्ध के पहले, एक बार जब कि मिल्युकोव ड्यूमासभा में भाषण कर रहा था, पुरिश्केविच बीच ही में बड़े ज़ोर से चिल्ला कर बोला, "यह क्या बक बक मचा रहा है? तेरे विषय में तिरस्कार व्यक्त करने के लिए मैं तेरे मुँह पर थूकनेवाला था; पर क्या करूं, वैसा कर नहीं सकता, इसी लिए चुप बैठा हूं।" युद्ध प्रारम्भ होने पर पुरिश्केविच लोड्ज़ पर परिस्थिति देखने के लिए, घायलों की सेवा करने वाले रेडक्रास दल के साथ, गया था। वहां सिपाहियों की यातनाएं और अधिकारीवर्ग की लापरवाही, दोनों बातें उसे साथ ही साथ देखने को मिलीं; इधर ज़ेमस्टवों के समान लोक पक्षानुयायी दलों की सेवा, अधिकारी वर्ग के कर्तव्य की अपेक्षा उसे इतनी उत्तम जान पड़ी कि अगली बार जब फिर वह ड्यूमा में आकर बैठा तब उसके मन पहले से बिलकुल ही भिन्न बन गये थे। उसकी नरमगर्मी तो वैसी ही कायम रही; पर उसके कठोर शब्दप्रहार लोकपक्ष के विरुद्ध न हो कर अधिकारी वर्ग के विरुद्ध होने लगे। उसने भरी सभा में एक बार

रोगली विटाफ।
(राज्य परिषद के अध्यक्ष)

जनरल रूज़्स्की।
(रूस के [illegible])

यहां तक कहा कि, "यदि रूस की जनता स्वयं अपनी ओर से कुछ प्रबन्ध न करती और ज़ेमस्टवो के समान उपयुक्त दलों के द्वारा जख़मी लोगों की सेवाशुश्रूषा का प्रबन्ध न होता तो रूसी सेना इतनी दृढ़ता के साथ शत्रु से कदापि न लड़ सकती।"

ख्रोस्टोव नामक राजपक्षीय सभासद ने भी इसी प्रकार के वचन भरी सभा में निकाले। उसने कहा, "इस युद्ध से मेरे मन में परिवर्तन हो गया है, यह मैं स्वीकार करता हूं। अब मुझे यह प्रतीति हो गई है कि यदि अपने राष्ट्र का सच्चा हित करना है तो लोकतंत्र से ही सारी राज्यव्यवस्था चलाये बिना काम नहीं चलेगा।"

सरकारी पक्ष छोड़ कर लोकपक्ष में आ मिलने के ऐसे ही और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। महायुद्ध के पहले ड्यूमा सभा के चार सौ उन्तालीस सभासदों में से तीन सौ से अधिक सभासद अधिकारीपक्ष के थे। पर डेढ़ वर्ष युद्ध जारी रहने पर यह परिस्थिति बिलकुल बदल गई और सरकारी पक्ष के सिर्फ़ एक सौ चालीस सभासद रह गये। और इन नवीन तीन सौ सभासदों के संयुक्त पक्ष ने प्रागतिक संघ (Progressive bloc) नाम धारण किया। मिल्युकोव ने चौथी ड्यूमासभा में जो यह भविष्यवाणी कही थी कि, प्रागतिक संघ का जन्म रूस के इतिहास में चिरस्मरणीय होगा, सो यह भविष्यवाणी, इस राज्यक्रान्ति के होने से बिलकुल सच सिद्ध हुई है।

इस प्रागतिक संघ के कारण ड्यूमा सभा सचमुच ही एक लोकमतानुदर्शक सभा बन गई; और उसकी एकता के आगे अधिकारीवर्ग का प्रभाव दिन पर दिन कम होने लगा। इस परिस्थिति को देख कर यदि अधिकारीवर्ग ने अपना बर्ताव बदल दिया होता तो आंशिक रूप से कुछ अधिकारसूत्र उसके हाथ में भी बने रहते। पर लोकमत की परवा न करते हुए मनमाना अधिकार चलाने की जो उसकी आदत प्रारम्भ से ही पड़ी हुई थी सो अब एकदम छूट ही कैसे सकती थी? लोकमत दिन दिन प्रबल होता गया; और तीन चार मास पूर्व ही यह जान पड़ने लगा था कि इस उत्तरोत्तर बढ़ने वाले तूफ़ान में यदि अधिकारीवर्ग ऐसा ही हठ किये रहेगा तो वह धूल में मिले बिना नहीं रहेगा। और अन्त में वही हुआ भी। रूसी ब्यूराक्रसी लोकपक्ष से मेल करने को तैयार नहीं हुई; और इस कारण अन्त में उसका जड़ से ही नाश करना पड़ा!

जनरल ट्रेपाफ़।

प्रागतिक संघ के उत्पन्न हो जाने पर संघ के सभासद एक स्थान पर एकत्र हुए और वादविवाद कर के सुधारों का ख़र्रा तैयार किया। इस ख़र्रे में इस प्रकार के विषय थेः—पोलैंड को पूर्ण स्वराज्य दिया जाय, फ़िनलैंड में लोकमतानुवर्ती राज्यव्यवस्था प्रारम्भ की जाय, राजनैतिक और धार्मिक क़ैदियों को बिलकुल छोड़ दिया जाय; ज्यू लोगों को सताना बन्द किया जाय, व्यापार में प्रतिबन्ध न होने पावे, सहकारी सभाओं को उत्तेजित किया जाय; और सर्वसाधारण लोग अपने हित के जिन उपायों की योजना करना चाहें उनमें किसी प्रकार की अड़चन न आने पावे, इत्यादि, इत्यादि।

यह ख़र्रा देख कर अधिकारीवर्ग का मस्तक एकदम भड़क उठा। गोरेमिकिन नामक मंत्री ने संघ के नेताओं को यह साफ़ तौर पर सूचित कर दिया कि, "तुम्हारा मसविदा सभा के सामने विचारार्थ भी उपस्थित नहीं होने दिया जायगा।" पर संघ के नेता इस धमकी की परवा कब करनेवाले थे! तब यह निश्चित कर के वह तुरन्त ही बादशाह के पास गया कि, ड्यूमा सभा ही क्यों न तोड़ दी जाय कि जिससे यह सुधारों की व्याधि टल जाय। थोड़े ही

दिनों में उस मंत्री की सलाह के मुताबिक़ ज़ार के ... यह घोषणापत्र प्रकाशित हुआ कि "ड्यूमा सभा बरख़ास्त ... और १४ नवम्बर को सभा फिर होगी।" इस आज्ञापत्र ... कारण नेताओं के मन के विचार जहां के तहां ही रह ग... कि उपायों से सुधार होने की आशा नष्ट होगई। जग... तालें और दंगे-फ़िसाद शुरू हो गये। पर नेता लोग ... और गम्भीर स्वभाव के थे, अतएव उन्होंने इस प्रस... प्रताप डाल कर लोगों को शान्त किया। इस कारण ... नेताओं पर दृढ़ विश्वास हो ही गया, पर साथ ही ... रियों को भी यह मालूम हो गया कि लोकनेताओं का ... प्रबल है। इस मौके का लाभ उठा कर, ड्यूमासभा ... करने के पांचवें दिन मास्को नगर में सब नेताओं ने ... बड़ी भारी सभा की; और ज़ार के पास भेजने के लिए ... पास किया—"महायुद्ध में अन्ततः विजय प्राप्त करने ... उत्कट इच्छा है; परन्तु इसके लिए ड्यूमासभा का ... करना चाहिए, ताकि लोगों में उत्साह बढ़ाने का ... और वर्तमान मंत्रिमंडल भी बदलना चाहिए।"

परन्तु जब इस प्रस्ताव ... की टोकरी में ही स्थान ... ड्यूमासभा का कोई ... होने पाया तब तो लोग ... और ७ दिसम्बर १९१५ ... सन्तप्त लोकमत के भयंकर ... आने का लक्षण दिखाई ... ज़ार ने लाचार होकर ए... निकाला, जिसमें यह क... "अगले साल का बजट ... तैयार करते ही ड्यूमास... वेशन किया जायगा।" ... बजट का बहाना बिलकु... क्योंकि ज़ार की इच्छा ... कमेटी सिर्फ़ चार दिन में ... सकती थी। परन्तु लोग ... कर कि हमारे आन्दोल... तो फल हुआ, कुछ दि... रहे। पर दस पांच दिन ... में फिर असन्तोष की ... लगी। दिसम्बर १९१५ के ... ने समझा कि अब यदि ... ध्यान न दिया जायगा तो ... भयंकर परिणाम की स... तब उन्होंने लोकसभा ड... से जारी करने का निश्चय किया, और लोकक्षोभ शान्त ... प्रधानमंत्री गोरेमिकिन को अलग कर के उसकी जगह स्टर्मर ... जर्मनवंश के अधिकारी को नियुक्त किया। स्टर्मर लोक... था ही नहीं; हां, लोग उसके स्वभाव से अच्छी तरह ... थे, इस कारण गोरेमिकिन की तरह वह लोगों को ... अप्रिय नहीं जान पड़ा। अस्तु। जनवरी में ड्यूमा स... वेशन हुआ और उसमें, प्रागतिक संघ को ख़ुश करने ... साहब स्वयं उपस्थित हुए। इस उपाय से ज़ार साह... सभासदों ने जयजयकार किया सही, पर कुछ उनका ... नहीं हुआ; क्योंकि राज्यव्यवस्था में किसी प्रकार ... करना सरकार को इष्ट नहीं है—यह बात उन्हें पक्की ... थी। इसके सिवाय नवीन मंत्री ने भी अपना यह हुक्म ... कि, "सभा में निरुपयोगी वादविवाद करने को ... मिलेगा," अपनी प्रतिगामी नीति लोगों पर प्रकट क... पर भी सरकारी पक्ष के समाचारपत्रों ने प्रागतिक ... टीका टिप्पणी की वर्षा शुरू की; इस कारण तो लोकप... को और भी अधिक संताप हुआ। सरकारी पक्ष के ... ने तो यहां तक लिखना आरम्भ कर दिया कि, "ज़ेम... लबोर्ड), म्युनिसिपेलिटियां, और प्रागतिक, इत्यादि ...

करने वाले सारे दल और कुछ नहीं हैं—केवल राजद्रोहियों के जारी किये हुए षड्यंत्र हैं। और ये सब, सार्वजनिक आन्दोलन के बहाने से, बड़ी भयंकर राज्यक्रान्ति उपस्थित करना चाहते हैं।" और नवीन मंत्री भी चूंकि इसी मत का निकला सो उसने भी चारों ओर से दबोचा-दबोची की नीति जारी की।

ऐसी दशा में लोग खुल्लमखुल्ला कहने लगे कि ये अधिकारी लोग बहुत ही अंधाधुंधी से राज्य कर रहे हैं; और सैनिक विभाग के पर्दे में ये अपना स्वार्थ भर साध रहे हैं; प्रजा के सुखदुख की इन्हें कुछ परवा नहीं। जब इस प्रकार लोग चिल्लाने लगे तब कुछ अधिकारियों की बदलियां भी की गईं। पर ये बदलियां क्या थीं, एक प्रकार का फार्स था। एक अधिकारी गया, उसकी जगह दूसरा आया, दूसरा गया, तीसरा आया; पर थे सब एक ही थैली के चट्टेबट्टे! कोई ज़रा कटु बोलता तो कोई कुछ मीठा बोलता; बस फर्क इतना ही—और बाकी नीति सब की एक ही! तब तो नेताओं ने साफ साफ कह दिया कि अधिकारी कोई भी हो, किसी व्यक्ति के विरुद्ध हमारी शिकायत नहीं है—हमें यह राज्यप्रणाली ही पसन्द नहीं है; और इस समय जो यह धूर्तता की जा रही है सो इससे हमारा सन्तोष नहीं होने का! इसके सिवाय बहुत लोगों को यह भी सन्देह हुआ कि स्टर्मर भीतर भीतर जर्मनी से मिला हुआ है, और इसी कारण युद्ध के काम में यह जान बूझ कर ढिलाई करता है। इस सन्देह के कारण तो लोकमत और भी अधिक क्षुब्ध हो उठा। स्वाभाविक ही लोक-सभा में इन्हीं विचारों का अधिक प्रतिबिम्ब पड़ने लगा, और अत-एव नवीन मंत्री को भी सभा का बन्द कर देना ही इष्ट जान पड़ने लगा। स्टर्मर समझता था कि सभा में चूंकि लोकपक्ष के सब सभासद एकत्र हो कर बैठते हैं, और इस कारण उनका गुट्ट हो जाता है; इस लिए यदि सभा ही बन्द कर दी जायगी तो कम से कम थोड़े दिन के लिए तो अवश्य इनमें फूटफाट हो जायगी; और इससे इनका गुट्ट भी टूट जायगा। इस लिए उसने बीच में दो बार सभा बन्द करने और फिर कुछ दिन बाद जारी करने का उपाय किया। परन्तु प्रागतिक दल के नेता कुछ इतने अबोध नहीं थे कि ऐसे बालिश उपायों से उनमें फूट पड़ जाती। उन्होंने सरकार की इस नीति को लोगों के सामने खोल कर रख दिया; और बड़े कठोर शब्दों में उसका निषेध किया। इसके बाद उन्होंने यह निश्चय किया कि "सरकारी कायदे से सभा जारी हो अथवा न हो, अपने राष्ट्र का प्रश्न हल करने के लिए बराबर प्रयत्न करते रहना ही हमारा कर्तव्य है। इसके विरुद्ध, अधिकारी वर्ग दिन दिन मदान्ध होते जाने के कारण उसके हाथ से और भी भयंकर भूलें होती गईं।

अन्त में ज़ार ने नवीन नीति स्वीकार करने का बहाना दि-खाया। प्रोटोपोपाफ नाम के, ड्यूमा सभा के एक सभासद की प्रधानमंडल में नियुक्ति की। चूंकि यह प्रागतिक दल का सभासद था, इस लिए इसकी नियुक्ति पर लोगों को कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि यह मनुष्य यद्यपि निजी तौर पर है सज्जन; परन्तु अधिकारी-मंडल के बीच में बैठते ही उसका भी रंगरूप पलट जाता है। इसकी नियुक्ति होने के थोड़े ही दिन बाद एक समाचारपत्र के सम्वाददाता ने उससे पूछा था कि, "आप किस नीति का अवलम्बन करेंगे?" इस पर उसने उत्तर दिया, "रूस की राज्यप्रणाली जब कि पक्षभेद के सिद्धान्त पर नहीं चलती तब फिर मंत्रिमंडल के मन में जो नीति निश्चित होगी उसी का अवलम्बन मुझे भी करना पड़ेगा। अपने विभाग में सुधार करने का कुछ अवसर मुझे मिलेगा सही; परन्तु प्रधान मंत्री जब तक मेरे काम का स्वरूप निश्चित न कर दें तब तक मैं अपनी नीति निश्चित नहीं कर सकता।" इस उत्तर से लोगों को मालूम हो गया कि ये महाशय मंत्रिमंडल में जा कर क्या उजेला करेंगे! फिर भी लोग यह समझ कर शान्त रहे कि शायद कम बोल कर अधिक काम करने की ही इनकी इच्छा हो। इसके बाद कुछ ही दिन में प्रोटोपोपाफ की ज़ार से भेंट हुई; और उस समय ज़ार ने इन महाशय के मस्तक पर वरदहस्त रख कर यह गुरुमंत्र दे दिया कि अधिकारी को लोगों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए! यह दीक्षा लेने के बाद मास्को शहर में समाचारपत्र-सम्पादकों से वार्तालाप करते समय प्रोटोपोपाफ ने कहा कि, "मैं अपनी नीति आज स्पष्ट रूप से बतला नहीं सकता पर इतना अवश्य कह सकता हूं कि सम्पूर्ण मंत्रिमंडल की जो नीति निश्चित होगी वही मैं स्वीकार करूंगा; और वह नीति क्या होगी सो शीघ्र ही प्रधान मंत्री ड्यूमा सभा के सामने पेश करेंगे बस जो उनकी नीति वही मेरी नीति—उसमें कुछ अन्तर नहीं। यह वार्तालाप प्रकट होने पर प्रोटोपोपाफ के द्वारा जो लोकहित साधन की आशा थी सो बिलकुल ही नष्ट हो गई; पर अधिकारी लोगों को इतना हर्ष हुआ कि जिस की कुछ सीमा नहीं रही।

जब इस प्रकार अपने विश्वास का मनुष्य ही अन्त में नालायक ठहर गया तब एक सिद्धान्त स्पष्टतया लोगों के अनुभव में आ गया; और वह यह कि राज्यव्यवस्था जब तक लोकतन्त्र से नहीं चलती तब तक चाहे कितना ही अच्छा मनुष्य अधिकारारूढ़ हो, उससे कुछ कल्याण नहीं हो सकता। उनको विश्वास हो गया कि देश का हितसाधन तभी हो सकता है जब कि राज्ययंत्र लोकमतानुयायी हो। ऐसे समय में देश की परिस्थिति भयंकर हो जाने के कारण लोगों का यह असन्तोष संताप का स्वरूप धारण करने लगा। जाड़े का प्रारम्भ होते ही रूस के राज्य में जगह जगह खाद्य पदार्थों और ईंधन की चिल्लाहट शुरू हो गई। इसका यह मतलब नहीं कि देश में फसल नहीं हुई थी या ईंधन का बिलकुल अभाव हो गया था। वास्तव में खाद्य पदार्थों और ईंधन की विपुलता ही थी; परन्तु इन पदार्थों को सम्पूर्ण प्रजा में पहुँचाने के जो साधन थे वे सरकार के हाथ में चले गये थे और इसी कारण लोग बड़े संकट में पड़े। इसके सिवाय सरकार ने जो नियम बनाये थे भी लोगों के लिए सुभीते के न थे; किन्तु उलटे उनको कष्टदायक थे। उदाहरणार्थ—कई प्रान्तों में यद्यपि फसल अच्छी हुई थी; परन्तु वहां के व्यापारियों को अपने प्रान्त के पदार्थ दूसरे प्रान्तों में ले जा कर बेचने की सख्त मनाई कर दी गई थी; अथवा कहीं कहीं ऐसे व्यापार पर भारी कर लगा दिये गये थे। इस अप्रबन्ध का परिणाम यह हुआ कि यदि किसी प्रान्त में अन्न, इत्यादि पदार्थ बहुत सस्ते थे तो पास ही दूसरे प्रान्त में लोग बिलकुल भूखों मरते थे। इस दशा को सुधारने के लिए अधिकारियों ने बाजारभाव सरकारी रीति से निश्चित कर दिया। सरकार का निश्चित किया हुआ बाजारभाव यदि व्यापारी लोग स्वीकार करके अन्न पहुँचाने लगते तो गरीबों का भूखों मरना किसी अंश में कम हो जाता; परन्तु यह भाव व्यापारियों को हद से ज्यादा सस्ता जान पड़ा और इस कारण उन्हों ने माल बेचने से बिलकुल इन्कार कर दिया। इस कारण, सस्ता अन्न मिलना तो एक ओर रहा, जो कुछ थोड़ा बहुत पहले मिलता था सो भी बाज़ार में आना बन्द हो गया। अब तो स्वाभाविक ही लोक भूख से व्याकुल हो कर मनमाने भयंकर कर्म करने पर उतारू हो गये—सभी लोगों के सामने केवल एक यही विचार रहा कि अपने प्राण किसी तरह बचने चाहिए—"बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।"

ईंधनलकड़ी की कमी रूस के लोगों को अन्न से कुछ कम नहीं खलती है; क्योंकि जाड़े का मौसिम आते ही वहां लोग शीत के कारण धड़ाधड़ मरने लगते हैं। ड्यूमा सभा के लोकपक्षवाले नेताओं ने यह बात एक वर्ष पहले ही सरकार को समझा रखी थी। उन्होंने अधिकारियों से प्रकट कर दिया था कि जाड़े से प्रजा की रक्षा होने के लिए कम से कम दस बीस लाख टन पत्थर का कोयला संग्रह करने की फ़िक्र सरकार को करनी चाहिए। पर यहां सुनता कौन है! अधिकारमद से मतवाले सत्ताधारियों के कान में दीन-दुःखी प्रजा की इस पुकार की भनक भी नहीं पड़ी! इस बात के लिए उन्हें अवकाश ही कहां! इस कारण १९१६ के शीतकाल में कितने ही प्रान्त के लोग ईंधन के अभाव से, जाड़े के मारे बहुत ही कष्टित हुए। रेलवे के द्वारा निकटवर्ती प्रान्तों से लकड़ी इत्यादि लाई जा सकती थी। पर रेलवे का प्रबन्ध तो सेनाओं को ले आने-लेजाने तथा उनके सामान इत्यादि के ढोने भर को ही काफी न था; फिर लोगों के लिए उसका उपयोग कैसे हो सकता था। घोड़ों के द्वारा लकड़ी की ढोवाई का काम हो सकता था, पर घोड़े भी सेना के ही कार्य में घटते थे; और जो कुछ बचे भी थे उनका कृषि-कार्य में उपयोग हो रहा था, अतएव इस कार्य में घोड़ों से भी

कोई काम नहीं निकला। अन्त में अधिकारी लोगों को जब प्रतीत हुआ कि कीव नामक शहर में इसी दुर्भिक्ष के कारण दंगा होनेवाला है तब उन्होंने आस्ट्राखां प्रान्त से तीन सौ ऊंट ढोआई के काम के लिए मँगवाये; पर यह प्रबन्ध भी बहुत थोड़ी जगहों में हो सका। अधिकांश स्थानों के लोग भूख और ठंढ की यातना से तड़पते ही रहे। १९१६ के अक्टूबर नवम्बर महीने में ये सब प्रकार से संतप्त लोग, अपने प्राण बचाने के लिए, कोई न कोई अन्तिम प्रयत्न करने के लिए अपने अपने घर से निकल पड़े। मिल्युकोव नामक लोकप्रिय नेता ने उनकी अध्यक्षता स्वीकार कर के ज़ार और उसके अनुयायी लोगों से खुल्लमखुल्ला सामना प्रारम्भ किया। इस बलवे का पूरा पूरा वृत्तान्त अभी हमें मालूम नहीं हुआ है; पर चूंकि ज़ार को विश्वास था कि युद्धविभाग और जलसेनाविभाग के मंत्री लोकपक्ष में मिले हुए हैं और सम्पूर्ण फौज की सहानुभूति भी उसीकी ओर है, इस कारण उसे भगना पड़ा। स्टर्मर को निकाल कर उसने ट्रेपाफ की नियुक्ति की। तब लोगों को कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु ग्रहदशा विपरीत होने के कारण ज़ार के हाथ से विलक्षण भूलें होती गईं। रासपुटिन नामक एक नीच व्यक्ति, जो ज़ार और ज़ारीना को बहुत प्यारा था, उसका लोगों ने खून किया; इस कारण ज़ार का मस्तक एकदम भड़क उठा; और चूंकि ज़ार ने समझा कि इस खून में नवीन मंत्री का भी हाथ है; इस लिए मंत्री ट्रेपाफ पर वे बहुत क्रुद्ध हुए; और उसकी सम्मति न लेते हुए उन्होंने प्रोटोपोपाफ को मंत्रिमंडल [illegible] एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया। ट्रेपाफ ने इस विषय में एत[illegible] किया; तब तो वह भी निकाला गया; और गोलीजिन नामक [illegible] राजवंशीय पुरुष को प्रधान मंत्री बनाया। गोलीजिन "दबो[illegible] दबोचो" की नीति का प्रसिद्ध पक्षपाती था। उसने अधिकार[illegible] होते ही यह प्रकट किया कि "मैं बादशाह का नौकर हूं, ड्यू[illegible] सभा का नहीं हूं।" इस के सिवाय लोकसभा ड्यूमा से उसने [illegible] धड़ल्ले के साथ यह भी प्रकट किया कि, "इस समय हमा[illegible] सारा ध्यान युद्ध में विजय प्राप्त करने की तरफ है। और [illegible] कारण भीतरी सुधार के विषय में हम कुछ भी विचार नहीं [illegible] सकते। युद्ध के समाप्त होने पर जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

इस प्रकार रूस की प्रजा अनेक आपत्तियों से ग्रस्त हो रही [illegible] और लोकसभा ड्यूमा के नेता प्रजा के संकटों का पूरा पूरा [illegible] भव करते थे। सब वर्तमान राज्य-प्रणाली से त्रस्त हो कर [illegible] निराश हो गये थे। ऐसी दशा में, रूसी "ब्यूरोक्रसी," अ[illegible] एकतंत्री राज्यव्यवस्था, को यदि उन्हों ने उलट दिया तो इसमें [illegible] आश्चर्य नहीं। यह राज्यक्रांति किस प्रकार सफल हुई, और [illegible] क्या क्या घटनाएं हुईं, इसका वृत्तान्त 'चित्रमयजगत्' के [illegible] अंक में युद्ध-विषयक लेख में दिया हुआ है। उससे पाठकों [illegible] मालूम होगा कि ड्यूमा सभा ने किस बुद्धिमानी से ज़ार को [illegible] च्युत कर के रूस में प्रजासत्ताक राज्य की घोषणा की है।

स्वर्गीय विष्णुशास्त्री चिपलूनकर।

हमारे मित्र पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री की (जिन्हों ने कि उक्त शास्त्री जी के कुछ निबन्धों का अनुवाद हिन्दी में किया है) कृपा से इन महात्मा का नाम हिन्दी-भाषियों को भी ज्ञात हो चुका है। ये वही महात्मा हैं कि जिन्हों ने महाराष्ट्र साहित्य के प्रवाह को एकदम बदल दिया, अपने थोड़े ही दिनों की साहित्य-सेवा के द्वारा मराठी भाषा में नूतन जीवन का संचार कर दिया, अपने तेजस्वी निबन्धों के द्वारा मराठीभाषियों में स्वदेशाभिमान और स्वदेशप्रेम की रूह फूंक दी। यही नहीं कि उन्होंने केवल साहित्य के ही द्वारा अपने देश की सेवा की हो, किन्तु महाराष्ट्र में स्वावलम्बन के बल पर शिक्षाप्रचार का द्वार इन्होंने खोला। देशी भाषा के द्वारा शिक्षा देने की भावना इन्होंने महाराष्ट्र में जागृत की। पूना में नूतन-मराठी विद्यालय, न्यू इंग्लिश स्कूल, इत्यादि इन्हीं के उद्योग के फल हैं। जिन समितियों के हाथ में अब वे स्कूल हैं वे अब अपना अपना कालेज भी चला रही हैं। केसरी और 'मराठा' समाचारपत्रों की स्थापना भी इन्हीं के उद्योग का फल है, और यह संस्था भी महात्मा तिलक तथा उनके अनुयायियों के द्वारा सफलतापूर्वक चल रही है। मराठी साहित्य के प्रचार के लिए "[illegible]" नामक [illegible] पुस्तकों की एक बड़ी भारी दुकान भी इन्होंने स्थापित की। [illegible] [illegible]! आप को यह [illegible] इन महात्मा के विषय में [illegible] होगी कि [illegible] हिन्दी चित्रमयजगत् [illegible] "चित्रशाला" में [illegible] है वह "चित्रशाला" भी इन्हीं महात्मा [illegible] की हुई है और जिस समय कि भारत-वर्ष में रंगीन चित्रकला का बिलकुल ही प्रचार नहीं था उस सम[illegible] शास्त्री जी ने इसे स्थापित किया, तब से अब तक इस "चि[illegible] शाला" ने अपने उद्देश्य में बड़ी सफलता और यश प्राप्त कि[illegible] और अब यह "चित्रशाला" केवल "चित्रशाला" ही है, कि[illegible] "स्टीम प्रेस" के साथ मिल [illegible] मराठी और हिन्दी साहित्य [illegible] अपूर्व सेवा भी कर रही है। [illegible] प्रकार इस महात्मा की सारी संस्था[illegible] पूर्ण रूप से सफलतापूर्वक देश [illegible] उद्धार में भाग ले रही हैं। लो[illegible] मान्य तिलक के समान महाराष्ट्र [illegible] बड़े बड़े नेता जो आज देशोद्धार [illegible] प्रयत्न कर रहे हैं उन पर इ[illegible] महात्मा के चरित्र और विचा[illegible] का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा हुआ है।

पाठकवृन्द! आप को यह [illegible] कर बड़ा आश्चर्य होगा कि स्वर्गीय विष्णुशास्त्री २० मई १८५० को [illegible] संसार में आकर १७ मार्च १८८२ को इसका त्याग कर गये—सिर्फ ३१-३[illegible] वर्ष जीवित रहे। इसमें से लगभग २४-२५ वर्ष की उम्र तक तो उनके बी० ए० पास करने [illegible] तीन साल शिक्षक का कार्य करने में ही लग गये—सिर्फ पांच [illegible] वर्ष में ही उन्होंने महाराष्ट्र प्रान्त [illegible] जीवन को, साहित्य और शिक्षा [illegible] द्वारा, परिवर्तित कर दिया! [illegible] थोड़े समय में इतना बड़ा कार्य! सचमुच ही यह ईश्वरीय दिव्य शक्ति का प्रभाव है! कौन नहीं कहेगा कि विष्णुशास्त्री एक अलौकिक ईश्वरीय विभूति थे! [illegible] दिन इस विभूति की जयन्ती महाराष्ट्र के बड़े बड़े नगरों में शान[illegible] से मनाई गई। जिस महाराष्ट्र—जिस भारतीय महाराष्ट्र—[illegible] ऐसी विभूति नसीब हुई उसको धन्य है! धन्य है!!

महाविद्यालय (ज्वालापुर) के आचार्य परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज।

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातु,
स्पर्शश्चेत्तत्रकल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम्।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये,
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वालौकिकोऽपि॥
यद्वच्छ्रीखण्डवृक्ष प्रसृत परिमलेनाभितोऽन्येऽपि वृक्षा,
शाश्वन्नीगन्ध्यभाजोऽप्यतनुतनुभृतां तापमुन्मूलयन्ति।
आचार्यान्यद्बोधा अपि विधिवशात सन्निधौ संस्थितानाम्,
प्रेष्ठा तारं च पारं स्वकरुणहृदया स्वोक्तिभिः क्षालयन्ति॥

निःसन्देह महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य श्री ६ गुरुवर पण्डित गंगादत्त जी शास्त्री इसी कोटि के (उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित) गुरुओं में हैं। आज कल विज्ञापन युग है। इस विचित्र युग में सब प्रकार की एषणाओं से दूर रह कर, कर्तव्य को कर्तव्य-बुद्धि से करने वाले, निन्दास्तुति के चक्र में समबुद्धि रखने वाले, अपकार करनेवालों के साथ भी उपकारपरायण पुरुष विरले ही देखे जाते हैं—ऐसे ही विरल पुरुषों में श्री ६ महाराज की गणना करनी चाहिये, आपका कार्यक्षेत्र प्रायः आर्यसमाज ही रहा है। लगातार तीन वर्ष तक आर्यसमाज में संस्कृत विद्याप्रचार का कार्य कर अब आपने अपने अवस्थानुरूप संन्यास आश्रम की दीक्षा ली है। गोवर्द्धन मठ के शंकराचार्य श्री १०८ मधुसूदनतीर्थ के प्रमुख शिष्य श्री १०८ स्वा० शंकरप्रज्ञान् देवतीर्थ जी से आपने संन्यास ग्रहण किया है। अब आपका शुभ नाम श्रीशुद्धबोधतीर्थ है। श्री गुरुजी महाराज का जन्मस्थान बेलोन है—यह स्थान जि० बुलन्दशहर में राजघाट के समीप है। गोवर्धन मठ के श्री १०८ शंकराचार्य जी की जन्मभूमि भी बेलोन ही है—एक ही ग्राम के दो व्यक्तियों ने घर से निकल कर भिन्न २ क्षेत्रों में कैसे काम किया और फिर अन्त में गुरुशिष्यभाव में किस प्रकार आबद्ध होगये-यह एक मनोरञ्जक इतिहास है।

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज।

श्री ६ गुरुजी महाराज के बाल्यजीवन के विषय में एक बात अवश्य उल्लेख योग्य है। जबकि वे ११ वर्ष के थे तब गुरुजी से ज्योतिष पढ़ा करते थे। अब इनका किस प्रकार जाना हुआ और बलोन पहुँच जाते। एक बार इन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहा कि मैं भाष्य पढ़ना चाहता हूं। भाई जी नाराज होकर बोले कि "जहर महाभाष्य और वह शास्त्र पढ़ कर आयगा"। इतना सुनना था कि हमारे महाराज जी का क्रोध भड़का और वह चल कर घर से चल दिये कि अब सब पढ़ कर ही घर लौटूंगा। महाराज जी स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी थे। इसीलिये सब इनको रिसीजी कहते थे। ये सीधे काशी पहुँचे, लगातार ८-९ वर्ष वहां रह कर सचमुच सबकुछ पढ़ कर ही आये और तब से वहां के (बेलोन के) लोग इनको 'ऋषिजी' ही कहते हैं। बेलोन रामघाट की ओर जाने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। बच्चा २ ऋषिजी को मानता है। अस्तु। श्री ६ गुरुवर काशीनाथ शास्त्रीजी महाराज से व्याकरण तथा न्याय, श्री ६ पं० हरनामदत्तजी भाष्याचार्य जी से महाभाष्य तथा अन्य गुरुजनों से आपने वेदान्तादि शास्त्रों का अध्ययन किया। नवीन तथा प्राचीन दोनों प्रकार के ग्रन्थों से आपने परिचय प्राप्त किया। अध्यापन कार्य में तो ऐसे निपुण थे कि छात्रावस्था में भी काशी में इनसे सौ २ छात्र नित्य प्रति पढ़ने आते थे। आर्यसामाजिक लोग प्रायः अपनी ओर मनुष्यों को खींचने में प्रवीण होते हैं। श्री० ला० मुन्शीरामजी की प्रेरणा से श्री० परलोकवासी स्वा० दर्शनानन्दजी इनको जालंधर ले आये और वहां वैदिकआश्रम की स्थापना हुई। आर्यसमाज के प्रायः बड़े २ उपदेशक तथा अध्यापक आपके ही शिष्यवर्गों में से हैं। वैदिकाश्रम के मुख्याध्यापक, गुरुकुल गुजरानवाला के आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य, महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य इत्यादि हैसियतों से आपने जो अभूतपूर्व कार्य किया है वह आर्यसमाज के इतिहास में संस्मरणीय रहेगा। आपके सहस्रों शिष्य-उपशिष्य-प्रशिष्य आपकी कीर्ति को समुज्ज्वलित करते रहेंगे। अक्षर पढ़ाने वाले गुरु तो बहुत देखे जाते हैं, परन्तु अक्षरों के साथ २ छात्रों की मानसिक तथा आत्मिक दशा को उन्नत करनेवाले गुरु विरले ही होते हैं। उनको सच्चा मनुष्य बना कर लोकसाधना में प्राण संचार कराने वाले आचार्य कम ही देखे गये हैं। श्री ६ महाराज के साथ रहते हुए इस लेखक को लगभग आज अठारह वर्ष होते हैं। और लेखक जो कुछ भी चार अक्षर जानता है, जो कुछ थोड़ी बहुत समाज-सेवा कर सका है, उसका सर्व श्रेय श्री ६ महाराज को ही है। यद्यपि महाराज ने संन्यास लिया है, तथापि अध्यापनकार्य के कार्य में अब भी पूर्ववत् ही रत हैं और आशा है कि अब निश्चिन्त कार्यक्षेत्र में भाग लेवेंगे। वह समाज को, वहां २ हिन्दूमात्र को, अमूल्य लाभ पहुंचा सकेंगे। ऐसे समय में जिस गुरुशिष्यता के [illegible] में [illegible] दिखाकर [illegible] हैं [illegible], [illegible] ही शान है।

[illegible] का एक तुच्छ शिष्य
[illegible] शर्मा।

निखिलशास्त्रपारंगत गुरुवर श्री ६ काशीनाथ शास्त्री जी महाराज।

हम प्राचीन उपनिषदों में या ऐतिहासिक पुस्तकों में प्रायः ऋषि-मुनियों का वृत्तान्त पढ़ते हैं, पर वे किस प्रकार के होते होंगे, इसका कुछ अनुभव करना हो तो श्री ६ काशीनाथजी महाराज के दर्शन करने चाहिये। लगभग ४० वर्ष से आप अनवरत संस्कृत विद्या के अध्ययनाध्यापन में संलग्न हैं। आपके लोकोत्तर शम तथा तितिक्षा शतमुख से प्रशंसा करने योग्य हैं। आपने निष्पक्ष हो कर जिस प्रकार विद्यादान किया है वैसा आज तक किसी पण्डित ने ही किया होगा। काशी में सदर थाला की पाठशाला में १० वर्ष, मैथिलस्वामी की पाठशाला में ५ वर्ष, कांगड़ी में १० वर्ष, ज्वालापुर में ४ वर्ष जो काम किया है उस अनुपम कार्य को कौन भुला सकता है? साधु संन्यासी, ब्राह्मण क्षत्रियों में आपके सहस्रों शिष्य हैं। उत्तरीय भारत में शायद विरला ही कोई संस्कृतज्ञ पण्डित या विज्ञ साधु होगा जिसने महाराज जी से कुछ न कुछ न पढ़ा हो। काशीधाम के परलोकवासी प्रसिद्ध सीतारामशास्त्री नैयायिक, स्वा० श्री० १०८ ब्रह्मानन्दजी महाराज तथा पूज्यपाद श्री माधवाचार्यजी आपके प्रमुख गुरुजनों में थे। प्रसिद्ध मीमांसक श्यामशास्त्री जी आपके मीमांसा के गुरु थे। महाराजजी छाता जि० बलिया के रहने वाले हैं। इस समय आपकी आयु लगभग ६५ के है, पर अध्यापन कार्य में आप अपने जैसे एक ही हैं। किसी समय पुस्तक ले कर पहुँचिये कभी निषेध नहीं करेंगे। एक बड़ी विचित्रता यह है कि लघुकौमुदी से लेकर समाप्य षड्दर्शन तथा अन्य आकर ग्रन्थों को आप पुस्तक को हाथ में लिये बिना ही पढ़ाते हैं। सरस्वती के ऐसे कट्टर भक्तों के दर्शन दुर्लभ हैं। बड़े २ विद्वान् आपको 'चलता फिरता कोष' कहते हैं। अंगरेजी के विज्ञों ने आपका नाम 'Walking encyclopedia' रक्खा है। "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति" इत्यादि वचनों को सार्थक कर के दिखलाने वाले इस समय के ऋषितुल्य इस गुरुवर्य के विषय में जितना लिखें उतना ही थोड़ा होगा।

पं० काशीनाथ शास्त्रीजी महाराज।

नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ।

सम्पादकीय समालोचन।

१—कविता की प्रवृत्ति।

इधर कुछ समय से हमारे नवयुवकों में कविता की प्रवृत्ति बहुत दिखाई दे रही है; खड़ी बोली में कविता लिखना कुछ सहज-सी बात समझ कर जिसे देखिये वही कविता करने पर उतारू हो जाता है। कुछ समाचारपत्रों ने तो प्रति सप्ताह कविता छापना अपने लिए अनिवार्य सा बना रखा है; और जैसी कविता उनके हाथ आती है, बस छाप सिद्ध! फिर चाहे कविता के कोई गुण उसमें हों या न हों—गुण जाने दीजिए—छन्दोभंग इत्यादि अनेक दूषणों से भरी हुई कविताएं भी धड़ाधड़ छापने रहते हैं। स्वाभाविक ही अपना नाम हो जाने के विचार से नवयुवकगण "तुकबन्दियां" छपने के लिए भेज दिया करते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दी में कविता करना और छापना एक प्रकार का विनयवाद हो रहा है। पढ़नेवाले भी विचारों की दृष्टि से पढ़ते हैं, परन्तु 'कविता' का जो उच्च भाव है वह लोगों के मन से दूर हो रहा है। यह हम मानते हैं कि इन कविताओं में—तुकबन्दियों में—विचार अच्छे होते हैं, पर केवल विचार तो गद्य में भी प्रकट किये जा सकते हैं, फिर यहां बोली की तुकबन्दी का जामा पहना देने से क्या शोभा आ जाती है? इन तुकबन्दी की भरमार के कारण, हम देखते हैं, कई नाम के भूखे नवयुवक, थोड़े से पुराने पत्रों से किसी न किसी की कविता [illegible] करके अपने नाम से छपवा देते हैं। सम्पादक कुछ जानते तो हैं नहीं, वे भी छाप देते हैं। 'चित्रमयजगत्' में भी [illegible] ऐसी कुछ [illegible] कविता [illegible] आने की घटनाएं [illegible] हैं। हम अपने नवयुवकों से निवेदन करते हैं कि वे इस प्रकार की [illegible] —[illegible] अपने गौरव के लिए [illegible] है, किन्तु साहित्यसेवियों की दृष्टि में भी घृणा[illegible] है। हमारा यह कहना नहीं है कि नवयुवक कविता की ओर न झुकें, अथवा कविता करना बन्द कर दें। नहीं कविता राष्ट्रोद्धारक साहित्य के लिए आवश्यक है; परन्तु उसके रचने की योग्यता आने के लिए—दूसरे शब्दों में, कवि बनने के लिए—पहले तपस्या की आवश्यकता है; सरस्वती की सेवा करके उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने की आवश्यकता है। सरस्वती की सेवा है—मननपूर्वक अध्ययन या "स्वाध्याय" करना। नवयुवको! यदि आपको कवि बनना है तो पहले स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य का धारण करके। अर्वाचीन और प्राचीन महाकवियों के ग्रन्थों का एकान्त में मनन करो; और अपने विचारों को प्रगल्भ बनाओ; साथ ही साथ कविता के बाह्य नियमों का ज्ञान करने के लिए छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, इत्यादि के ग्रन्थों का अध्ययन करो। [illegible] कविता, लोकहितार्थ—स्वदेशोद्धारार्थ—लिखो, नाम की आकांक्षा छोड़ो। 'कवि' नाम श्रेष्ठ, परमात्मा का है। इसको कलंकित न करो। आप यदि कवि की सच्ची योग्यता प्राप्त करके देश के हितार्थ कविता लिखेंगे तो आपके साहित्य, आपके देश का गौरव होगा; और पीछे से आप का भी नाम होगा। [illegible] रवीन्द्रनाथ टाकुर का अनुकरण आप कीजिए; व्यास, वाल्मीकि का अनुकरण आप कीजिए; "पाठक," "शंकर," "पूर्ण," "हरिऔध," "भारतीय आत्मा," का अनुकरण आप कीजिए; सूर, तुलसी, भूषण, केशव, मतिराम, का अनुकरण आप कीजिए; कालिदास, श्रीहर्ष, बाण, माघ, भवभूति, दण्डी, भास, की [illegible] सरस्वती की प्रसन्नता सम्पादन कीजिए। फिर देखिये आप का कैसा मुख उज्वल होता है!

२—विज्ञानपरिषद्।

विज्ञान के द्वारा आज पश्चिमी देशों में क्या क्या [illegible] हो रहे हैं सो भारत के पढ़े लिखे लोगों से छिपे नहीं हैं। [illegible] पदार्थों तथा प्राकृतिक शक्तियों की [illegible] प्राप्ति के [illegible]

यथायोग्य रीति से उपयुक्त करने के लिए वैज्ञानिक शिक्षा की हमारे देश को बड़ी आवश्यकता है । भारत प्राकृतिक समृद्धि का भांडार है; और भारतीयों की बुद्धि भी स्वाभाविक ही सूक्ष्म तथा ज्ञानग्राहक है; फिर भी उस प्राकृतिक भांडार से भारतीय लोग अपने उपकार के लिए कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते, इसका क्या कारण है ? वही एक मात्र वैज्ञानिक शिक्षा का अभाव। ऐसा नहीं है कि हमारे सरकारी स्कूल कालेजों में वैज्ञानिक शिक्षा न दी जाती हो--बी० एससी०, एम० एससी० लोगों की भी अब भरमार होने लगी है; पर क्या ये वैज्ञानिक ब्रह्मचारी देश की प्राकृतिक समृद्धि से अपने ज्ञान द्वारा कुछ भी लाभ उठा सकते हैं ? कदापि नहीं। इनमें वह मौलिकता कहां है-वह आविष्करणशक्ति कहां है ? ये बिचारे तो केवल परीक्षा पास करने के लिए वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त किया करते हैं ! बाद को फिर उस ज्ञान का सच्चा कोई उपयोग नहीं होता—यह नहीं होता कि उस ज्ञान के द्वारा यूरप या अमेरिका के वैज्ञानिकों की भांति अपने देश का ये कुछ उपकार कर सकें। परीक्षा पास करने के बाद यदि किसी कालेज में साइंस के प्रोफेसर हो गये तो फिर वही चर्वितचर्वण ! मतलब यह कि उनकी कालेज की वैज्ञानिक शिक्षा कालेज की ही चहार-दीवारी में रहती है। बहुत से वैज्ञानिक परीक्षा पास लोग विकालत ही करने लगते हैं ! सारांश यह है कि सरकारी विद्यालयों में कार्यकारी वैज्ञानिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि स्वतन्त्र रूप से वैज्ञानिक संस्थाएं देश में स्थापित हों। ऐसी ही एक संस्था "विज्ञानपरिषद" के नाम से प्रयाग के उत्साही सज्जनों ने आज कई वर्ष से वहां स्थापित कर रखी है। हमें यह देख कर बड़ा हर्ष होता है कि यह संस्था वैज्ञानिक शिक्षा का अच्छा प्रचार कर रही है। परिषद की ओर से "विज्ञान" नामक एक मासिक पत्र प्रतिमास नियमित रूप से निकलता है। इसमें विज्ञानविषयक उपयुक्त विषयों पर सचित्र लेख निकलते हैं, वार्षिक मूल्य ३) है। इसके प्रचार में सहायता करना प्रत्येक हिन्दीहितैषी और देशभक्त का परम पवित्र कर्तव्य है। परिषद की ओर से वैज्ञानिक पुस्तकों की एक सीरीज़ भी निकलती है, जिसमें अभी तक प्रारम्भिक विज्ञान की कई पुस्तकें निकल चुकी हैं; मूल्य भी सुलभ है। अब परिषद ने प्रयाग में "वैज्ञानिक व्याख्यान माला" भी प्रारम्भ की है, जिसमें विद्वान सज्जन उपयोगी वैज्ञानिक विषयों पर सप्रयोग व्याख्यान दिया करते हैं। इस परिषद के स्वार्थत्यागी कार्यकर्त्ताओं का सब प्रकार से उत्साह बढ़ाना प्रत्येक राष्ट्रहितचिंतक का पवित्र कर्तव्य है, विज्ञानप्रेमी लक्ष्मीपुत्रों को धनद्वारा, विज्ञानविशारदों को अपने ज्ञान द्वारा इस परिषद की सहायता करनी चाहिए। परिषदसम्बन्धी विशेष ज्ञातव्य बातें "मन्त्री विज्ञान परिषद प्रयाग" के पते पर पत्र लिख कर पूछना चाहिए।

३–स्वदेशसेवा और स्वार्थ।

वर्तमान जगत् का धर्म स्वदेशसेवा है। आप संसार के किसी देश की ओर देखिये, वहां के निवासी स्वदेशसेवा ही को धर्म समझ कर मर रहे हैं। एक देश के लोग दूसरे देशों में जो धर्म-प्रचार के नाम पर जाते हैं उनका भी आन्तरिक हेतु स्वदेशसेवा ही रहता है। स्वधर्म प्रचार के आवरण में स्वदेशसेवा का पवित्र स्वार्थ छिपा रहता है। भारतवासियों के लिए भी स्वदेशसेवा कोई नवीन बात नहीं है। भारतीय लोग बहुत प्राचीन काल से इस "सेवाधर्म" का महत्त्व जानते हैं। स्वदेशसेवा ही नहीं; किन्तु संसार की सेवा, संसार का उपकार, विश्वप्रेम, "वसुधैव कुटुम्बकम्" (यूनिवर्सल ब्रदरहुड) का तत्व इस वृद्ध भारत से ही अन्य लोगों ने लिया है। लिया है सही, परन्तु यह "विश्वबन्धुत्व" का नाम ही नाम सिर्फ उनकी जिह्वा पर रहता है। मरते हैं सब स्वदेश के ही लिये। अवश्य ही ऐसे "स्वदेशजीवन कलह" में भारतवासी भी यदि अपना "वसुधैव कुटुम्बकम्' लिये बैठे रहें तो उनका निर्वाह कैसे हो सकता है ? तब "स्वदेश के लिए जिओ, स्वदेश के लिए मरो" का सिद्धान्त हमको भी धारण करना ही चाहिए; और यह शुभ लक्षण है कि हम ने यह जगत्प्रसिद्ध धर्म धारण कर लिया है। अब भारत में भी स्वदेशसेवा की लहरें चारों ओर उठ रही हैं। परन्तु इस स्वदेशसेवारूप धर्म में विघ्न डालनेवाला एक शत्रु है, और वह शत्रु है स्वार्थ। स्वार्थ, यानी केवल अपने लिए या अपने कुटुम्ब के लिए ही मरना। स्वदेश चाहे रसातल को जावे, पर हमें घी-मलीदा मिलना चाहिए ! यह स्वार्थ घातक है; परन्तु हमारे देश में तो तीस करोड़ लोगों में से "स्वदेश" का भाव ही बहुत थोड़े लोगों में उत्पन्न हुआ है। सारा देश अभी मूढ़ावस्था में ही है। बाबा तुलसीदास के कथनानुसार--

सब ते भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगति।

यह मूढ़ता व्यक्ति व्यक्ति के लिए भली भले ही हो; परन्तु देश के लिए अत्यन्त घातक है। क्योंकि इसी मूढ़ता का मौका पा कर संसार के अन्य लोग हमारे देश से लाभ उठा रहे हैं; और हम स्वयं मूढ़ के मूढ़ ही बने हैं। यही मूढ़ता हमें वैयक्तिक स्वार्थों के आगे नहीं बढ़ने देती। हमारा भी कोई 'स्वदेश' है-यह भाव ही जागृत नहीं होने देती। यही तत्व समझ कर माननीय गोखले ने सार्वजनिक शिक्षाप्रचार की आवाज उठाई थी। सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। ऐसी दशा में "भारत-सेवकसमिति" के प्रत्येक सदस्य तथा भारत के भिन्न भिन्न सेवकों या नेताओं का यह परम पवित्र कर्तव्य है कि वे तीसकोटि भारतीयों में से अधिकांश में शिक्षाप्रचार का पूरा पूरा प्रयत्न करें। जब वैयक्तिक मूढ़ता का नाश हो कर भारत का एक एक बच्चा साक्षर और शिक्षित होगा तभी "स्वदेश" का भाव जागृत हो कर इस देश का अभ्युदय होगा। परन्तु मूढ़ता के नाश हो जाने पर भी 'स्वार्थ' का शत्रु स्वदेशसेवा में विघ्न डालता है। आज इस देश में प्रायः यह गति देखी जाती है कि अधिकांश सुशिक्षितों में भी "स्वदेश" या "स्वदेशसेवा" का भाव नहीं है-वे बिलकुल स्वार्थमय जीवन व्यतीत करते हैं-अपने घी-मलीदा उड़ाने के लिए गरीब स्वदेशभाइयों का गला काटते हैं-लानत है ऐसे सुशिक्षितों को ! यह सुशिक्षा नहीं है-क़ातिल ज़हर है-हलाहल विष है ! वास्तव में शिक्षा ऐसी मिलनी चाहिए कि जो वैयक्तिक स्वार्थ को भी स्वदेशसेवा का रूप दे देवे। जब प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लगे कि मैं अपने स्वार्थ का भी जो कार्य करता हूं, उस कार्य के अन्दर भी स्वदेशसेवा का अन्तर्भाव होना चाहिए, तभी समझो कि वह व्यक्ति सुशिक्षित है। महात्मा रानडे हाईकोर्ट के जज थे-वे जजी की नौकरी भी इसी दृष्टि से करते थे कि वे अपने देशभाइयों का सच्चा न्याय कर के इस रूप में भी उनकी सेवा कर सकें। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह सरकारी नौकर हो, या निजी व्यवसाय करता हो—अपने व्यवसाय या नौकरी को स्वदेशसेवा की दृष्टि से जब करने लगे—स्वार्थ को स्वदेशसेवार्थ समझे; और स्वदेशसेवा को स्वार्थहित समझे—तब समझो देश के भले दिन आये। केवल अपने व्यवसाय को ही स्वदेशसेवा न बनाये; किन्तु अपने कुटुम्ब के लोगों को भी स्वदेशसेवक बनाना चाहिए। अपने घर के स्त्री-लड़की-बच्चों में स्वदेशसेवा का भाव भरना चाहिए। अपनी पत्नी, अपने भाई बहन, अपनी सन्तान, सब का पालन पोषण-शिक्षण स्वदेशसेवार्थ ही करना चाहिए—अपने घर में मनोरंजन के लिए भी यदि कोई बात करना चाहिए तो वह स्वदेश की ही ! इस प्रकार जब भीतर बाहर के सब भाव "स्वदेशी" बन जायें तब कल्याण हो। जैसा महात्माओं का कथन है कि सब जगह ईश्वर को देखो; भीतर बाहर वही भरा है-अपने सब कर्म ईश्वर को अर्पण करो—कोई भी कर्म ऐसा न करो जो ईश्वर को अप्रिय हो—बस, इसी भांति जो कुछ करो सब स्वदेश को अर्पण करो—ऐसा कोई भी कर्म न करो जो स्वदेशहित का विघातक हो।

साहित्यचर्चा ।

ग्रन्थसाहित्य ।

१ जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश—जेम्स एलन महाशय अँगरेजी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपकी आध्यात्मिक तथा सदाचार-सम्बन्धी पुस्तकों का अँगरेजी में बड़ा मान है। हिन्दी में भी आपकी कई पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अब उनकी "लाइट आन लाइफ्स डिफिकल्टीज़" नामक पुस्तक का यह अनुवाद श्रीयुत उदयलाल काशलीवाल जी ने प्रकाशित किया है। अनुवादक हैं श्रीयुत सूबचन्द सोधिया बी० ए० एल० टी०। पुस्तक में नीतिविषयक कई उत्तमोत्तम निबन्ध हैं; जिनमें जीवन के कई महत्व-पूर्ण प्रश्नों का अच्छा विवेचन किया गया है। नवयुवकों के चरित्र-संगठन में इस पुस्तक का बहुत अच्छा उपयोग होगा। मूल्य ॥) है; और मिलने का पता अध्यक्ष श्रीहिन्दीगौरवग्रन्थकार्यालय, चन्दावाड़ी; पो० गिरिगाँव, बम्बई है।

२ श्रीरामनामामृत—पुस्तक बड़ी है। आधी पुस्तक में "श्रीराम" "श्रीराम" लिखा हुआ है, और आधी में रामोपासना के भजन हैं—मूल्य है "सदुपयाग;" संग्रहकर्ता हैं श्री० हरसुखराय डावलरिया; और मिलने का पता श्री० द्वारकादास केदारबक्स भगत नं० ४चीनापट्टी, कलकत्ता।

३ भारतवर्ष के लिए स्वराज्य—माननीय मि० वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री अध्यक्ष सर्वेन्ट्स् आफ इंडिया सोसायटी की अँगरेजी पुस्तक का अनुवाद। प्रकाशक मंत्री भारत-सेवक-समिति, ६ बैंकरोड प्रयाग। मूल्य ।=) इस समिति ने हिन्दी में राजनैतिक पुस्तकों के निकालने का प्रशंसनीय उद्योग आरम्भ किया है। हिन्दी में राज-नीतिक पुस्तकों का अभी तक बिलकुल ही अभाव था; अब आशा है, समिति के उद्योग से यह अभाव अंशतः शीघ्र ही पूर्ण होगा। यह पहली पुस्तक बहुत ही मार्के की निकली है। इसमें भिन्न भिन्न पहलुओं को लेकर इस बात का पूरा पूरा विवेचन किया गया है कि भारत-वर्ष स्वराज्य के लिए सब प्रकार से योग्य है; जो लोग भारत को स्वराज्य के अयोग्य बतलाते हैं उनको मुँहतोड़ उत्तर दिया गया है; भिन्न भिन्न अँगरेज राजनीतिज्ञों ने भारतवासियों की राजनैतिक कर्तृत्वशक्ति पर समय समय में जो वचन कहे हैं उनको उद्धृत करके यह सिद्ध किया है कि राज्यशासन के कार्य में भारतवासी अगरेज़ों से किसी बात में कम नहीं हैं। पुस्तक राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिए।

४ जातिभेद—बा० गंगाप्रसाद जी एम० ए० डिप्टीकलेक्टर आगरा की अँगरेजी पुस्तक का अनुवाद बाबू रघुनन्दनशरण दुबलिस एम० ए० कृत। मूल्य ॥) मिलने का पता—मंत्री श्री आर्यप्रतिनिधि सभा, बुलन्दशहर। गुणकर्मस्वभावानुसार "जातिभेद" का विवेचन किया गया है। पुस्तक खोज के साथ लिखी गई है। अनुवाद अच्छा है।

५ [illegible] का गुरुकुल—शिक्षा और ईश्वरविषय पर अनेक विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख निकले हैं, कविताएं देशभक्ति की पढ़नीय हैं।

६ [illegible]—लेखक पं० [illegible] जी वैद्यरत्न वैद्यभूषण [illegible] (पंजाब) मूल्य =)। अनेक प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर [illegible] प्रकार सिद्ध किया है।

७ [illegible]—बा० [illegible] गुप्त के बंगाली निबन्ध का अनुवादक पं० रामदेव विशारद। मूल्य =) मिलने का पता पं० [illegible] एण्ड ब्रादर्स [illegible], [illegible], लखनऊ। स्वदे-[illegible] पर यह अच्छा निबन्ध है।

८ [illegible]—लेखक श्रीयुत [illegible] अल्मोड़ा मूल्य -)॥ विषय नाम ही से प्रकट है। ऐसे ट्रेक्टों का खूब प्रचार होना चाहिए।

९ [illegible]—(१) आर्यों की [illegible] -) (२) पंच महायज्ञों की विधि -) (३) [illegible] संध्याविधि =) (४) [illegible] और [illegible] =) (५) ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज =) (६) वेद और आर्यसमाज =) (७) भाषा का उद्धार (भागलपुर सम्मेलन की वक्तृता =) (८) [illegible] मत और वैदिक धर्म =) सामाजिक तथा धार्मिक पुरुषों को इन का प्रचार करना चाहिए। मिलने का पता-प्रबन्धकर्त्ता [illegible] पुस्तक-भांडार गुरुकुल कांगड़ी, जिला बिजनौर।

१० पं० सुंदरलाल शर्मा त्रिवेदी की पुस्तकें—(१) प्रह्लाद नाटक (२) श्रीकरुणापच्चीसी (भगवान् से ढिठाई के उलहने,) -)॥ श्रीरघुराजगुणकीर्तन (भूतपूर्व रीवाँनरेश की प्रशंसा) =)। विक्टोरियावियोग और ब्रिटिशराज्यप्रशंसा ≡)। चारों [illegible] भगवद्भक्तों और राजभक्तों को अवश्य पढ़नी चाहिएं। मिलने का पता पं० नीलमणि शर्मा जमींदार चन्द्रसूर, पो० राजिम, ज़ि० [illegible]

११ विनृवत की संहति—लेखक और प्रकाशक लाला [illegible] खन्नी नं० ४०२ अपरचितपुर रोड, कलकत्ता। मूल्य ।) [illegible] नाम ही से प्रकट है। आर्यसमाज के विरुद्ध सनातनधर्म [illegible] विषय का प्रतिपादन किया गया है।

मासिक साहित्य ।

१ नवजीवन—जब से श्रीयुत द्वारकाप्रसाद जी सेवक (इमा[illegible] प० स०) इसे काशी से इन्दौर लाये तब से नवजीवन ने [illegible] जीवन में काफ़ी उन्नति की है। अब इसका स्वामित्व प्रता[illegible] स्टार प्रेस के अध्यक्ष के० सी० भल्ला महाशय ने अपने हाथ ले लिया है। इस लिए अब इसमें उन्नति की और भी आशा [illegible] तथा अब प्रति मास नियमित निकालने का प्रबन्ध भी भल्ला म[हा]शय कर सकेंगे। सम्पादक पूर्ववत् "सेवक" जी ही रहेंगे। [illegible] नवजीवन की, हृदय से उन्नति चाहते हैं।

इन्दु—डा० अम्बिकाप्रसाद गुप्त ने काशी के इस मासिक को [illegible] उन्नतावस्था पर पहुँचा दिया था; पर प्रेस की अड़चनों के कारण [illegible] चल कर इन्दु को डगमगाता हुआ देख कर आपने एक लिमि[टेड] कम्पनी के हाथ में इसे दे दिया। यह कम्पनी २५००० के पूँजी से स्थापित हो रही है; प्रत्येक हिस्सा १०) का रहेगा। कम्पनी के डायरेक्टरों में माननीय बा० मोतीचन्द के समान कई प्रति[ष्ठित] सज्जन हैं। साहित्यव्यवसाय से प्रेम रखनेवाले महाशयों को [इस] कार्य में भाग ले कर 'इन्दु' को स्थायी करने में सहायता [देनी] चाहिए। नियमादि मंत्री पं० बटुकप्रसाद मिश्र, मारवाड़ी [illegible] आफिस, काशी से मँगाना चाहिए।

प्रतिभा—लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद से यह नवीन मा[सिक] पत्रिका पं० ज्वालादत्त जी शर्मा के सम्पादकत्व में निकलने [लगी] है। वार्षिक मूल्य २) और एक संख्या का चार आना। इसका पहला अंक हमारे सामने है। इसमें "शंकरा[illegible]" कविता, ले० प० नाथूराम शंकर शर्मा, 'भारत की [illegible] हीनता,' ले० सरस्वतीसम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्वि[वेदी], महाकविमाघ,' ले० पं० पद्मसिंह शर्मा, 'विनय,' कवि[ता] पं० बदरीनाथ भट्ट, इत्यादि १५ सुपाठ्य गद्यपद्य लेख हैं। अपनी इस नवीन भगिनी का सहर्ष स्वागत करते हैं।

समाज—इस नाम का एक नवीन मासिक पत्र पं० [illegible] शास्त्री, (शारदासम्पादक दारागंज, प्रयाग) की सम्पाद[कता में] निकलने लगा है। वा० मू० २) है। इसके दो अंक [illegible] हमें मिले हैं। इस पत्र की बड़ी आवश्यकता थी। [illegible] सामाजिक दशा वर्तमान समय में कैसी गिरी हुई है, [illegible] विचारशील मनुष्य से छिपी नहीं है। समाज की [illegible] करने के लिए शांत समालोचनात्मक लेखों की बहुत [illegible] है। किसी प्रकार का पक्षपात न कर के समाज के [illegible] कल्याणकारक जान पड़े वही निर्भयता से प्रकट करना [illegible] की नीति होनी चाहिए। आशा है, समाजहितचिन्तक [illegible] अपने विचारपूर्ण लेखों द्वारा तथा अन्य महाशय [illegible] कर के शास्त्री जी के उद्देश में सहायक होंगे।

मातृभाषा के द्वारा माध्यमिक शिक्षा देने की आवश्यकता*

लेखक—श्री० रामचन्द्र रघुनाथ सरवटे, शिक्षक सरकारी हाईस्कूल, छिंदवाड़ा (म० प्र०)।

शिक्षा के सामान्यतः तीन भाग माने जाते हैं। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च। इनमें से केवल प्राथमिक शिक्षा ही मातृभाषा के द्वारा दी जाती है; और माध्यमिक और उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। इस लेख में हमें इस बात का विचार करना है कि माध्यमिक शिक्षा अंग्रेजी के द्वारा दी जाने से पढ़नेवालों को किस प्रकार की कितनी हानियाँ हो रही हैं और इसी शिक्षा को मातृभाषा के द्वारा देने की कितनी आवश्यकता है।

इस लेख में हम उच्च शिक्षा का विचार नहीं करते। क्योंकि यह बात—उच्च शिक्षा का मातृभाषा के द्वारा दिया जाना—हमें साम्प्रत काल में प्रायः असंभव सा जान पड़ता है। तथापि लेख के अंत में इस बात पर भी अपने विचारों को प्रकट करके हम यह बतलानेवाले हैं कि इस संबंध में हमें किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

आज कल की स्थिति का कारण।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने के पहले हमारे देश में शिक्षा की किसी भी प्रकार की संस्थाएँ न थीं। मुसलमानी आक्रमणों के आरंभ से लगा कर पेशवाई के अन्त तक जो काल व्यतीत हुआ, उसी से हमारा मतलब है। केवल उतने ही समय तक के लिए हम उपर्युक्त विधान करते हैं। इसके पहले की दशा जानने के लिए अधिक साधन उपलब्ध नहीं हैं। इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि अत्यंत प्राचीन काल में नालंद, तक्षशिला इत्यादि स्थानों में बड़े बड़े विद्यालय थे और उनमें कई हज़ार विद्यार्थी विद्यार्जन किया करते थे। यह स्पष्ट है कि ये विद्यालय उच्च शिक्षा के लिए ही रहे होंगे। जब उच्च शिक्षा के लिए उस समय इतना अच्छा प्रबंध था, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा की भी कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य ही की गई होगी। पर यह केवल अन्दाजिया हिसाब है। प्रत्येक प्रकार के शिक्षा-क्रम में कौन से विषयों का समावेश किया जाता था, शिक्षा किस भाषा में दी जाती थी, क्या शिक्षा की सारी संस्थाएँ सरकारी ही थीं—इत्यादि अनेक बातों के बारे में हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते।

मुसलमानों के शासन-काल में मुसलमानों के लड़कों को कुरान आदि पढ़ाने के लिए उस उस काल के बादशाह सरकारी धन से मदरसे खोला करते थे, परन्तु संख्या में मुसलमानों की अपेक्षा अधिक होने पर भी हिन्दुओं के लिए उन राज्यकर्ताओं की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता था। श्रीयुत सरदेसाई महाशय ने अपने मुसलमानी रियासत नामक मराठी ग्रंथ में इस विषय का विवेचन किया है। मराठों के राज्य-काल में 'वर्षासन,' पारितोषिक और विशेषतः श्रावण मास में वितरण की जानेवाली धार्मिक दक्षिणाएँ आदि अनेक उपायों से विद्या की अभिवृद्धि के लिए उत्तेजन मिला करता था। परन्तु इस समय भी यह नहीं मालूम होता कि सरकारी धन की सहायता से शिक्षा के लिए सार्वजनिक संस्थाएँ खोली गई होंगी। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि तत्कालीन राज्यकर्ताओं का बहुत सा समय लड़ाई-झगड़ों में ही व्यतीत होकर उन्हें सार्वजनिक संस्थाएँ निर्माण करने के लिए समय ही न मिला।

जिस समय से इस देश में ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई है उस समय से यहां की शिक्षा को व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त हो गया है। इस देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न समय अंग्रेज़-सरकार की सत्ता स्थापित हुई और इतिहास से हमें मालूम होता है कि किसी भी भाग में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के बाद थोड़े ही दिनों में, उस भाग में व्यवस्थित रीति से शिक्षा देने का प्रबंध भी हो गया था। सरकार ने बंगाल प्रान्त को दूसरे प्रान्तों से प्रथम ही हस्तगत कर लिया था और लॉर्ड वेंटिङ्क के शासन-काल में यहां स्थान स्थान पर पाठशालाएँ स्थापित हो कर शि[illegible] व्यवस्थित स्वरूप दिया गया। पेशवाई का अंत होने के थोड़े ही वर्षों में बंबई अहाते में भी इसी तरह का [illegible] शुरू हुआ।

इस प्रकार प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा दे[illegible] संस्थाएँ स्थापित की गईं। यद्यपि विश्वविद्यालय की स्थापना [illegible] को हुई, तथापि उसके पहले भी उच्च शिक्षा की संस्थाएँ अस्ति[illegible] थीं। परलोकवासी बालशास्त्री जांभेकर, प० विश्वनाथ ना[illegible] मांडलिक, प० केरूनाना छत्रे इत्यादि जो विद्वद्रत्न महा[illegible] हो चुके हैं, उनका विद्याभ्यास बंबई के एलफ़िन्स्टन इ[illegible] स्टयूशन में, विश्वविद्यालय की सृष्टि के पहले ही हो चुका [illegible] जान पड़ता है कि दूसरे प्रान्तों का भी यही हाल रहा है[illegible] प्रान्त के मुख्य नगर में ही बहुधा उच्च शिक्षा की संस्था[illegible] करती थी। माध्यमिक शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ अधिक थीं [illegible] प्राथमिक शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ उनसे भी अधिक थीं।

उस समय हमारी सरकार के सामने यह एक बड़ा भा[illegible] प्रश्न उपस्थित हो गया था कि भारतवासियों को प्राचीन [illegible] और शास्त्र सिखाये जायँ या उन्हें अर्वाचीन विषय और श[illegible] की शिक्षा दी जाय? इस समय मेकाले साहब हिंदुस्थान स[illegible] के प्रधान सचिव थे। उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि [illegible] मिक और उच्च शिक्षाओं में अर्वाचीन विषय और शास्त्र[illegible] ही प्रमुखता से समावेश किया जावे। सरकार को उनका म[illegible] गया और फल यह हुआ कि उस तरह का प्रबंध भी कर [illegible] गया। प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन के लिए सरकार ने कहीं [illegible] थोड़ी बहुत संस्थाएँ स्थापित की थीं। पेशवाई का अन्त हो[illegible] पश्चात् थोड़े ही दिनों में पूना में एक संस्कृत पाठशाला [illegible] गई। प्रसिद्ध विद्वान परलोकवासी कृष्णशास्त्री चिपलूनकर ने [illegible] संस्था में संस्कृत का विद्याभ्यास किया था। आगे चल कर [illegible] पाठशाला में अंग्रेज़ी की कक्षा जोड़ दी गई और क्रमशः उ[illegible] रूपान्तर हो गया। काशी और कलकत्ते में सरकार की ओ[illegible] खोली गई संस्कृत पाठशालाएँ अभी तक जारी हैं। परन्तु[illegible] काल में प्राचीन शास्त्रों में निष्णात लोगों को समाज में जो [illegible] प्रकार का सम्मान मिला करता था वह धीरे धीरे कम होकर [illegible] प्रतिष्ठापूर्वक उपजीविका चलाने के लाले पड़ गये। इस [illegible] प्राचीन शास्त्र क्रमशः पीछे पड़ने लगे। आज कल सरकार [illegible] यह मालूम होने लगा है कि प्राचीन विद्याओं के अध्ययन [illegible] प्राचीन प्रणाली के अनुसार ही व्यवस्था की जाय और इस [illegible] पर पुनः चर्चा चल रही है।

प्रस्तुत निबंध में इन सब बातों के उल्लेख करने का कारण [illegible] है कि, अर्वाचीन विषयों और शास्त्रों के साथ ही साथ अं[illegible] भाषा को भी माध्यमिक और उच्च शिक्षा में अग्रस्थान प्राप्त [illegible] गया। इसका पहला कारण यह है कि उस समय हिन्दी म[illegible] बंगला आदि देशी भाषाओं में अर्वाचीन विषयों और शास्त्रों [illegible] ग्रन्थ बिलकुल ही न थे। इस लिए सब लोगों की स्वभावत[illegible] समझ हो गई थी कि ये विषय देशी भाषाओं के द्वारा नहीं प[illegible] जा सकते। देशी भाषाएँ अपूर्ण हैं। उनमें भिन्न भिन्न वि[illegible] और उनके सूक्ष्म भेद व्यक्त करने के लिए आवश्यक शब्द[illegible] और वाक्य रचना की प्रणाली नहीं है। सारांश, उनकी समझ [illegible] ये सब बातें केवल अंग्रेज़ी के द्वारा ही पढ़ाई जा सकती हैं।

इसका कारण यह है कि उस समय के शिक्षक बहुधा अं[illegible] महाशय—मिशनरी अथवा सरकारी कर्मचारी—हुआ करते [illegible] ये लोग देशी भाषाओं का अध्ययन करके उनमें थोड़ा बहुत [illegible] ज्ञान प्राप्त कर लिया करते थे। कोई कोई महाशय तो इनमें

* [illegible]

पारंगत भी हो जाते थे। यद्यपि यह बात थी, तथापि बहुतेरे महाशयों का देशी भाषाओं का ज्ञान साधारण ही रहा करता था और वे भिन्न भिन्न विषयों को देशी भाषाओं के द्वारा पढ़ाने का साहस करते थे। इस लिए अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा शिक्षा देने की परिपाटी पड़ गई होगी।

अंग्रेज़ी को प्रधानता प्राप्त होने का तीसरा कारण यह है कि वह राज्य-कर्त्ताओं की भाषा है। जिसे इस भाषा का ज्ञान होता था वह बड़ा सम्मान पाता था। अंग्रेज़ी की दो चार कक्षायें पढ़े लिखे मनुष्यों को भी बड़े वेतनों की सरकारी नौकरियां मिला करती थीं, जिससे समाज में उनका बड़ा आदर होता था। यही कारण है कि सर्व साधारण मनुष्यों को भी अपनी मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी ही अधिक महत्त्वपूर्ण मालूम होने लगी।

इन तीन कारणों से माध्यमिक और उच्च शिक्षा अंग्रेज़ी के द्वारा दी जाने की जो एक बार प्रथा चल पड़ी, वह अभी तक कायम है। यह प्रणाली विद्यार्थियों के लिए बड़ी हानिकारक है और देशी भाषाओं के उन्नति पथ पर यह एक बड़ी भारी बाधा है, इत्यादि विचार अब कहीं कुछ विचारशाली मनुष्यों के मन में उत्पन्न होने लगे हैं। जिन लोगों को अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा माध्यमिक और उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है, उनमें से कई एकों को अभी तक इस बात की बिलकुल कल्पना तक नहीं है कि इस प्रणाली से कितना नुकसान हो रहा है। इस प्रणाली से विद्यार्थियों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का तथा उनके समय का किस तरह अपव्यय हो रहा है, इससे देशी भाषाओं की प्रगति में किस तरह बाधा उपस्थित होती है और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा देशी भाषाओं के द्वारा दी जा सकती है या नहीं—इत्यादि बातों का प्रस्तुत लेख में विचार करना है। यद्यपि लेखक की मातृभाषा मराठी है, तथापि उसे पूरा विश्वास है कि यह विवेचन हिंदी, बंगला और गुजराती जैसी प्रगल्भ भाषाओं को भी पूरी तौर से लागू होगा।

अच्छा प्रथम इस बात का विचार करें कि आज कल की प्रचलित प्रणाली से क्या क्या हानियाँ होती हैं—

१ विद्यार्थियों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपव्यय होता है।

२ समय का अपव्यय होता है।

३ किसी भी प्रकार के विषय का मर्म न समझ कर केवल शाब्दिक ज्ञान बढ़ता है।

४ किसी भी विषय में स्वतंत्रतापूर्वक विचार करके उसमें नये आविष्कार करना प्रायः असंभव सा हो जाता है।

५ मिश्र भाषा बोलने की आदत पड़ जाती है।

६ मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी की महत्ता अधिक मालूम होने लगती है।

मातृभाषा के प्रति हृदय में जो आदर रहता है, वह लुप्त हो जाता है, जिससे मातृभाषा की उन्नति को धक्का पहुँचता है।

अब इन बातों का क्रम क्रम से विचार करें।

शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपव्यय।

शरीर और मन दोनों का मज्जामंडल के द्वारा अत्यंत निकट-संबंध रहता है। शरीर को कष्ट होने से मन को कष्ट पहुँचता है। उदाहरणार्थ, यदि मनुष्य कोई शारीरिक श्रम करे, उसे भूख-प्यास से व्यथित होना पड़े अथवा किसी भी प्रकार की बीमारी से उसकी शारीरिक सामर्थ्य नष्ट हो जावे, तो उसके मानसिक व्यापार भी ठीक तौर पर नहीं चलते। इसी प्रकार, यदि मनुष्य के कुछ दिन बड़ी भारी चिंता में व्यतीत हुए हों अथवा अन्य कारणों से उसे बहुत सा मानसिक श्रम करना पड़ा हो तो उसका परिणाम एकदम उसके शरीर पर हो जाता है। आज कल हिन्दी की चार कक्षायें पढ़ चुकने पर लड़के अंग्रेज़ी पढ़ना आरंभ कर देते हैं। बहुधा अंग्रेज़ी की तीसरी दर्जे से ही शिक्षक विद्यार्थियों को सारे विषय अंग्रेज़ी के द्वारा पढ़ाने की कोशिश किया करते हैं। परन्तु यह बात असंभव मालूम होती है, इस लिए गणित आदि विषय मातृभाषा के द्वारा ही पढ़ाना पड़ते हैं। दूसरी भाषा होने के कारण विद्यार्थी विषय को अच्छी तरह से नहीं समझ सकते। शिक्षक कहीं अंग्रेज़ी और कहीं हिंदी इस तरह की मिश्र-भाषा में विषय को समझाने का प्रयत्न करते हैं। बहुत समय तक कोशिश करने के बाद जब शिक्षक विद्यार्थियों से यह पूँछते हैं कि "क्यों जी, तुम समझ गये?" तो विद्यार्थी 'हां' तो कह देते हैं, पर एकदम यह पूँछ बैठते हैं कि "सर, इसे अंग्रेज़ी में किस तरह 'एक्सप्रेस' करें?" फिर, शिक्षक उसी बात को अंग्रेज़ी में बतलाते हैं। और विद्यार्थी उसे तुरन्त अपनी नोटबुकों में लिख लेते हैं। घर आने पर उन्हें रट डालते हैं। दूसरे दिन, जब शिक्षक विद्यार्थियों से पिछले पाठ पर कुछ सवाल करते हैं, तो वे रटे रटाये वाक्यों को बक कर उस आफत से बरी हो जाते हैं। शिक्षकों को भी विद्यार्थियों से उसी विषय पर भिन्न भिन्न प्रकार से प्रश्न पूछने का समय नहीं रहता, जिससे वे इस बात का निश्चय-पूर्वक निर्णय नहीं कर सकते कि यह विषय उनके छात्रों की समझ में भली भांति आ गया है अथवा नहीं। क्योंकि, उन्हें नियमित समय में विषय का नियमित भाग पूरा पढ़ाना पड़ता है। यदि यह न हो सका, तो शाला-निरीक्षक उन पर रुष्ट हो जाते हैं। गणित, इतिहास, भूगोल, शास्त्र इत्यादि विषय इसी प्रणाली के द्वारा पढ़ाये जाने के कारण इन सब विषयों के पाठ नीरस और व्यर्थ होते हैं। स्कूल में चार पांच घंटे इस तरह के नीरस और व्यर्थ काम में व्यय करके घर आने पर शिक्षक के मुहँ से निकले हुए तथा पाठ्य पुस्तकों के वाक्यों को कंठाग्र करने से, कोमल अवस्था के विद्यार्थियों को काफ़ी से ज़ियादा मानसिक श्रम करने पड़ते हैं। और इन मानसिक श्रमों का उनकी शरीरप्रकृति पर अनिष्ट परिणाम होता है। आज कल बहुत से लोगों के ध्यान में यह बात आने लगी है कि भारतीय विद्यार्थियों को व्यायाम करने किंवा स्वच्छ हवा में खेल खेलने की रुचि नहीं होती और इन बातों के संबंध में उनके मन में प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। दस बीस साल के बाद इन प्रयत्नों का फल मालूम होगा। क्योंकि, आज कल की सुशिक्षित पीढ़ी की अपेक्षा यदि भावी पीढ़ी की आयुर्मर्यादा अधिक होती हुई दीख पड़ेगी तो हम कह सकेंगे कि रोग की जाँच और चिकित्सा बिलकुल ठीक हुई। परन्तु हमें तो यह जान पड़ता है कि किसी ने अभी तक इस बात का विचार ही नहीं किया है कि विद्यार्थियों में शारीरिक परिश्रम करने और खेल खेलने की रुचि होती क्यों नहीं? क्या कारण है कि वे इस संबंध में इतने उदासीन हैं? प्रत्येक मनुष्य की जीव शक्ति (Vital Power) नियमित होती है। और शारीरिक तथा मानसिक श्रम करते समय उसका व्यय होता रहता है। एक प्रकार का मानसिक श्रम करने में यदि इस शक्ति का काफ़ी से ज़ियादा व्यय हुआ, तो दूसरे प्रकार का शारीरिक श्रम करने के लिए आवश्यक शक्ति शेष नहीं रहती। बालकों में स्वभाव ही से खेल खेलने की रुचि होती है और इस बात में उन्हें उत्तेजन देने के लिए कृत्रिम उपायों की वास्तविक कोई आवश्यकता नहीं होती। परन्तु आजकल की सदोष प्रणाली के कारण विद्यार्थियों को काफ़ी से ज़ियादा मानसिक श्रम करने पड़ते हैं जिससे उनमें शारीरिक श्रम करने का उत्साह ही नहीं रहता। ऐसी दशा में—मानसिक श्रमों का अतिरेक होते हुए—कृत्रिम उपायों से उनसे शारीरिक श्रम कराना कहाँ तक हितकारी हो सकता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। डाक्टर महाशयों का धर्म है कि वे इस विषय पर अवश्य विचार करें। पर खेद से कहना पड़ता है कि वे अपने व्यवसाय के द्वारा धनोपार्जन करने में इतने मग्न रहते हैं कि उन्हें इस महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिए फ़ुरसत ही नहीं मिलती!

२ समय का अपव्यय।

माध्यमिक चौथी कक्षा सम्पूर्ण करने पर इन्ट्रेंस तक मंज़िल मारने के लिए, साधारण विद्यार्थी को—यदि वह बराबर पास होता रहा तो—पूरे सात साल लगते हैं। इतने साल मिहनत करने पर जितना ज्ञान प्राप्त होता है यदि इस बात का विचार किया जाय तो हमारी राय यह है कि समय के हिसाब से प्राप्त हुआ ज्ञान बहुत ही कम रहता है। पूना के ट्रेनिंग कालेज में जो शिक्षाक्रम प्रचलित है, वह प्रायः इन्ट्रेंस के बराबर है। इन्ट्रेंस पास विद्यार्थी को यदि अंग्रेज़ी का ज्ञान होता है, तो ट्रेनिंग पास विद्यार्थी को मातृभाषा का उत्तम ज्ञान रहता है। गणित, इतिहास, भूगोल,

शीशे का ज्योतिर्बिन्दु।

(लेखक—श्रीयुत वेंकटराय जी।)

श्रीकृष्ण भगवान् के लड़कपन का एक दिव्य कौतुक अभी तक समस्त भारत के छोटे बड़े स्त्री पुरुष बड़े प्रेम से याद करते हैं। एक दिन सायंकाल के समय, पूर्णिमा के दिन, जब नन्दरानी यशोदा अपने कन्हैया को गोद में लिये हुए आंगन में खड़ी थीं तब अचानक बालक कृष्ण की दृष्टि ऊपर आकाश की ओर गई और वे यशोदा-माता से चन्द्र की ओर उँगली उठा कर बोले कि "माता मुझे यह चन्द्र खेलने के लिए चाहिए"। भक्त शिरोमणि सूरदास ने इस पर एक पद ही बना डाला है:—

"मैया मोकों चन्द्र खिलौना ला दे"

माता कहती है कि तू पगला है! उतनी दूर आकाश का चन्द्र तुझे खेलने के लिए कैसे मिल सकता है? बालक मचल जाता है। उस समय वहां उपस्थित ग्वालपुत्री राधा को एक अच्छी युक्ति सूझ जाती है। बालक को मचला हुआ देख कर वह चट पास आती है; और एक शीशा श्रीकृष्ण के सामने कर देती है; शीशे के चन्द्रबिम्ब में श्रीकृष्ण आनन्दपूर्वक खेलने लगते हैं, और इस तरह मचला हुआ बालक बहक जाता है।

वर्तमान सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद लोग भी आकाश की ज्योतियों का अवलोकन करने के लिए राधा की ही उपर्युक्त युक्ति का अवलम्बन करते हैं। यह बात शायद हमारे पाठकों को सच भी न मालूम होगी; पर इसके लिए हम क्या करें!

आकाश के दिव्य गोलक और ज्योतिर्बिन्दु देखने के लिए जिन दूरबीनों का उपयोग किया जाता है उनकी रचना का सूक्ष्म रीति से अवलोकन करने पर यह बात अच्छी तरह ध्यान में आ जाती है। परन्तु हमारे देश में ज्ञान-प्रचार की गति अत्यन्त मन्द है, अथवा यह कहिये कि आध्यात्मिक आनन्द के सामने प्राकृतिक आनन्द को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति अभी हममें बनी हुई है, इसी प्रकार के कारणों से दूरबीन हम लोगों में प्रायः एक दुर्लभ वस्तु है। बड़े बड़े विद्यालयों के विद्यार्थियों में से कुछ के पास दूरबीन रहती है, अथवा ज्योतिष शास्त्र के प्रेमी कुछ विद्वानों के पास वह देखी जाती है—शेष लोगों को तो आजन्म दूरबीन से आकाशस्थ ज्योतियों की ओर देखने का शायद ही कभी मौका आता हो! परन्तु विज्ञान-प्रधान देशों का यह हाल नहीं है। वहां छोटी दूरबीन तो साधारण वस्तु है। किन्तु वहां के मुख्य मुख्य नगरों के अजायबघरों और बागीचों में बड़ी बड़ी दूरबीनें रखी रहती हैं कि जिनके द्वारा, आना दो आना पैसा दे कर चाहे जो आकाशस्थ तेजो गोलकों का रमणीय दृश्य देख सकता है। और

श्रीमान् चित्रमयजगत्-सम्पादक महाशय,

मैं आपके इस सुप्रतिष्ठित पत्र के द्वारा प्रतिज्ञा करता हूं कि इस प्रान्त का कोई श्रीमान् सरस्वतीप्रिय पुरुष अथवा कोई धर्मधुरंधर राजमहाराज यदि मुझे एक उत्तम दूरबीन देगा तो मैं भी अपना समय दे कर नियम के साथ कुछ लोगों को आकाशस्थ ज्योतियों का अद्भुत दर्शन कराता रहूंगा।

पूना
श्रीरामकवर्मा,
सं० ११७४ }

दूरबीनें दो प्रकार की होती हैं—एक वर्तीभवनात्मक और दूसरी परावर्तनात्मक। इनमें से वर्तीभवनात्मक दूरबीनों का विशेष प्रचार है। ऐसी दूरबीनों का सब से साधारण और छोटा नमूना गेलियो की दूरबीन है। आकृति १ में गेलेलियो की दूरबीन
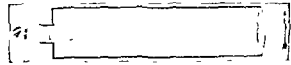
गेलेलियो की दूरबीन (सन १६०९ ई०)
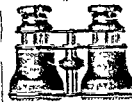
साधारण दूर के दृश्य देखने की दूरबीन।

एक छेद दिखलाया गया है। नाट देखनेवाले शौकीन लोग जो छो दुचश्मी दूरबीन रखते हैं उस शीशों की रचना ऐसी ही हो है। जहां पर आंख लगाई जाती उस कांच को नेत्रलोलक (e glass) और बाहर की द वस्तु की ओर से प्रकाशकि पहले जिस कांच पर पड़ते हैं उस वस्तुलोलक (object-glass कह सकते हैं। गेलेलियो की दूरबीन का वस्तुलोलक कांच दो ओर बहिर्गोल होता है; और नेत्रलोलक कांच दोनों ओर अन्तर्गो होता है। दृश्य वस्तु की ओर से आनेवाले किरणों के वस लोलक पर पड़ने के बाद, फिर उसके आगे जाते समय उन वर्तीभवन होता है, और बाद को फिर केन्द्रबिन्दु में एकत्र हो व वे फैलते हैं और नेत्रलोलक पर जा पहुँचते हैं। नेत्रों में प्रवि होने के पहले वे किरण वक्रीभूत होते हैं, और दृश्य वस्तु का प्रति बिम्ब इस कांच के दोनों ओर उमड़ आता है। इस प्रकार व दूरबीनों की अन्तर्रचना अच्छी तरह समझने के लिए प्रकाशशास्त्र का कुछ ज्ञान होना चाहिए, परन्तु इन दूरबीनों के द्वारा जानेवा प्रकाशकिरणों को यत्र तत्र वक्री होना पड़ता है, इस लिए इनक वर्तीभवनात्मक दूरबीन कहते हैं। आकाशस्थ गोलकों की ओर दू बीन लगाने का आद्यप्रवर्तक गेलिलियो ही है। उपर्युक्त छोट दूरबीन के द्वारा ही वह चन्द्रलोक के पर्वत, बृहस्पति के उपग्र और सूर्य के दाग देख सका।

परावर्तनात्मक दूरबीन में दृश्यवस्तु से आनेवाले प्रकाशकिरण प अन्तर्गोल शीशे पर पहले पड़ते हैं। वहां से फिर वे परावृत्त होक पीछे लौटते हैं और उस शीशे के केन्द्र में एकत्र होते हैं। इ केन्द्र के पास जब हम अपना नेत्र लाते हैं तब दृश्य वस्तु क प्रतिबिम्ब हमको दिखाई देता है; परन्तु इस प्रकार जब दृश्य वस् और शीशे के बीच में हमारा नेत्र आ जाता है तब प्रकाश किरणों के मार्ग में रुकावट आती है। इस कारण ऐसी दूरबीन में यह प्रबन्ध रहता है कि पहले शीशे पर से परावृत्त होनेवाले किरण उसके सामने लगे हुए एक दूसरे शीशे पर पड़ते हैं। इस दूसरे शीशे पर से परावृत्त होनेवाले किरण उसके केन्द्र बिन्दु में एकत्र हो कर दूरबीन के एक छोटे गवाक्षद्वार से बाहर आते हैं। इस गवाक्ष में एक नेत्रलोलक लगा रहता है, इस कारण दृश्यवस्तु का प्रतिबिम्ब बड़ा होकर स्पष्ट दिखाई देता है। आकृति २ में ऐसी ही एक दूरबीन का छेद दिखलाया गया है। पहला शीशा इस वर्तीभवनात्मक दूरबीन के वस्तुलोलक का काम निबाहता है। इस प्रकार की दूरबीनों के कांचों की और शीशों की योजना पहले प्रकार की दूरबीनों के समान ही बड़ी पेचदार की है। परन्तु उसकी विलक्षणता का रहस्य समझने के लिए इतना वर्णन काफ़ी है। इस दूसरे प्रकार की दूरबीन के शीशों—

पास ही रहता है कि जिससे वह अपनी इच्छा के अनुसार भिन्न भिन्न भागों को घुमा सके। इन दूरबीनों के मुख्य शीशे के बनाने का काम भी बहुत मुशकिल है; क्योंकि उनकी अन्तर्वक्रता एक विशिष्ट अंश के समान होनी चाहिए। उपर्युक्त दूरबीनों के शीशे की मुटाई १२ इंच और वज़न४१०० पौंड तक होगा।

ज्योतिर्विद लोग ऐसी बृहद् दूरबीनों का अनेक प्रकार से उपयोग कर सकते हैं। अतिशय धुंधले ज्योतिर्बिन्दुओं के वेध और वर्णलेख लेने में इस समय इनका विशेष उपयोग किया जाता है। तेजोमेघ (Nebulæ) नामक जो एक भाग इन आकाशस्थ ज्योतिरात्माओं का है उनमें से कुछ के विषय में जब से यह मालूम हुआ है कि उनमें आवर्तरूप, अर्थात् चक्राकार गति है तब से उनके स्वरूप के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्योतिषी लोग बराबर प्रयत्न कर रहे हैं। क्योंकि अब यह मत दिन पर दिन दृढ़ता पकड़ता जाता है कि सम्पूर्ण [illegible] के मूल में इन [illegible] की [illegible] रहती है।

लॉर्ड रास नामक प्रसिद्ध पुरुष की बनाई हुई परावर्तक दूरबीन।
इसका व्यास छः फीट है। परावर्तक के शीशे का क्षेत्रफल ४०७१ वर्ग इंच है। सम्पूर्ण दूरबीन का वजन १५टन है, और लम्बाई ५६ फीट है।

बृहस्पति के गोले पर जो एक प्रकार का लाल रंग का दाग दिखाई देता है उससे अब यह भी एक प्रश्न उपस्थित हुआ है कि क्या यह अपने उपग्रहों को [illegible] और कुछ नवीन उपग्रह भी नहीं लिये आता है। गुरु और शनि के उपग्रहों की गति का सूक्ष्म निरीक्षण करने के लिए दूरबीन एक उत्तम साधन है।

अभी तक ऐसा समझा जाता था कि चन्द्र के बिम्ब पर सभी कुछ शून्य या स्तब्ध हो गया है, उसमें कुछ हिलना-डुलना नहीं है। परन्तु अब यह विचार भी डगमगाने लगा है।

इस प्रकार के अनेक, ज्योतिर्विषयक विकट प्रश्नों का सन्तोषजनक खुलासा करने के लिए ऐसी बृहद् दूरबीनों का उपयोग होना ही चाहिए, यह स्पष्ट है।

परन्तु ज्योतिषशास्त्र और अन्य सब आधिभौतिक शास्त्रों में एक बड़ा भारी फर्क है; और वह यह है कि अन्य शास्त्रों के किसी आविष्कार अथवा सिद्धान्त से जिस प्रकार सांसारिक व्यवहार में, आर्थिक दृष्टि से कोई न कोई लाभ हुआ करता है वैसा कोई भी लाभ ज्योतिष शास्त्र के किसी भी आविष्कार से आज तक नहीं हुआ; और न आगे होने की सम्भावना ही है।

[illegible] के विशाल [illegible] वेधशाला है वहां रखने के लिए जो [illegible] दूरबीन तैयार हो रही है उसका दृश्य।

[illegible] वेधशाला का लोहे का ढांचा; और दूरबीन रखने के लिए ऊपर की [illegible]। [illegible]

यद्यपि किसी [illegible] के उच्च शिखर पर से एकान्त में रात्रि के शान्तिपूर्ण समय में, [illegible] ज्योतिषी से जब हम यह छोटीसी दूरबीन के द्वारा प्रेमवार्ता करने रहते हैं, और इस भावना की जागृति में आ कर, कि हम [illegible] ज्योतिषी की तरह हम भी इस [illegible] विश्वविस्तार के एक [illegible] हैं, जब हम इस [illegible] आश्चर्य का अनुभव करते हैं—इस समय के [illegible] आनन्द का वर्णन कौन कर सकता है? एक बार दूरबीन से चन्द्र के समान किसी ज्योतिर्मण्डल को देखिये तो सही!

बम्बई का शेल का कारखाना ।

भारतीय कर्मचारी युद्ध के लिए शेल-गोला तैयार कर रहे हैं ।
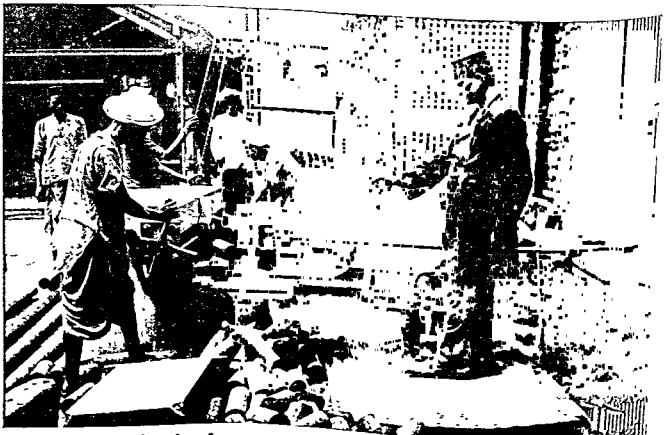
बम्बई के रेलवे वर्कशाप के कारीगर बहादुरखां हिंगनखां शायड्रालीक प्रेस में शेल-गोले दबा कर निकालते हैं।

मलबद्धता ।

लेखक—श्रीयुत सीता-कान्त ।

भिन्न भिन्न रोगियों की प्रकृति को अच्छी तरह जांच करने पर यही जान पड़ता है कि उनमें से ६० फीसदी से भी अधिक रोगी पचनेन्द्रिय के विकार के कारण ही अपनी आरोग्यता खो बैठे हैं। भिन्न भिन्न व्यक्तियों की भिन्न भिन्न प्रकृति के अनुसार उनके रोग के बाह्य लक्षण भी भिन्न ही होते हैं। पचनेन्द्रिय के विकारों में मलबद्धता का रोग इस समय बहुत बढ़ा हुआ है। जिसे देखिये वही पाखाने की शिकायत करता है। मलबद्धता के लक्षण अनेक प्रकार के हैं—यहां तक कि किसी के रोग के कुछ बाह्य दृश्य अथवा अदृश्य लक्षणों पर से ही यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि उसके रोग का कारण मलबद्धता नहीं है। तथापि मलबद्धता के कुछ साधारण और कुछ विशेष लक्षण बतलाना यहां आवश्यक है। मलबद्धता का साधारण अर्थ, ठीक समय पर और सहज गति से मलोत्सर्ग न होना है। ठीक समय पर मलोत्सर्ग न होना और कभी कभी मलोत्सर्ग होना, इन मुख्य लक्षणों के सिवाय कई लोगों को शौचशुद्धि अथवा जुलाब की औषधि लिये बिना अथवा बस्तीकर्म किये बिना पेट साफ ही नहीं होता; और जब कभी शौच होता भी है तब कृष्णवर्ण, और सूखा तथा गाढ़ा और छोटे छोटे गुटकों या एक ही बड़े गुटके के रूप में होता है। कभी कभी ऐसे बद्ध और रुक्ष मल का उत्सर्ग होते ही पीछे से जुलाब भी होते हैं। कभी कभी मलबद्धता इतने तीव्र स्वरूप की होती है कि मलद्वार में जमा हुआ मल बाहर नहीं निकलता और उसी से जुलाब हो जाते हैं।

मलबद्धता के कारण त्वचा निस्तेज और रूक्ष हो जाती है और अकसर त्वचा में अनेक प्रकार की गिलटियां और चट्टे भी पड़ जाते हैं। नेत्रों के नीचे का भाग काला पड़ जाता है। जीभ में मैल बैठ जाता है; और श्वास दुर्गन्धयुक्त निकलती है। मूत्र का रंग कुछ काला और पीलापन लिए हुए तथा गन्ध बहुत तीव्र होती है। प्रत्येक हालत में जीभ का स्वाद बिगड़ता भी नहीं—कभी कभी ठीक भी बना रहता है। परन्तु भोजन के बाद पेट अवश्य भारी जान पड़ता है। अपानद्वार से और मुखमार्ग से वायु निकलती है। श्वासोच्छ्वास ठीक ठीक नहीं होता। कभी कभी श्वासोच्छ्वास करते समय कष्ट भी जान पड़ता है। मलबद्धता के कारण उत्पन्न होनेवाले रोगों का विस्तृत वृत्तान्त देना प्रायः असम्भव और अनावश्यक भी है। तथापि मुख्य मुख्य व्याधियों का यहां पर हम कुछ विचार करेंगे।

अपचन के कारण उत्पन्न होनेवाला सब से मुख्य दोष विषैले द्रव्य रक्त में फैलना अथवा रक्तदुष्टीकरण है। मलाशय में अन्न संचित हो कर धीरे धीरे सड़ने लगता है और इस कारण वहां विषैले द्रव्य रासायनिक क्रिया से निर्माण होते हैं; और फिर वही रक्त में मिल करके सारे शरीर में फैल जाते हैं। शरीर के ज्ञानतन्तु-जाला पर भी इस विष का प्रभाव हो कर शरीर की स्फूर्ति और उत्साह नष्ट हो जाता है तथा सदैव शरीर शिथिल सा जान पड़ता है, इसके संसर्ग से त्वचा मूत्राशय, इत्यादि मलोत्सर्ग करने वाली इन्द्रियों की शक्ति भी कम होने लगती है; और अन्त में ये सब मलोत्सर्ग करनेवाली इन्द्रियां स्वयं निर्जीव और स्वकार्यपरांमुख हो कर, श्रेणी के किसी बदमाश लड़के की तरह औरों को भी अपना काम ठीक ठीक तौर से करने नहीं देतीं।

इस प्रकार जब मलोत्सर्ग प्रति दिन ठीक ठीक नहीं होता तब प्रायः देखा जाता है कि लोग अपने निज के अथवा डाक्टर-वैद्यों के विचार से जुलाब अथवा शौचशुद्धि की औषधियों का उपयोग करने लगते हैं। परन्तु यह प्रणाली अन्त में कुछ हितकारक सिद्ध नहीं होती। यह समझ कर कि, जुलाब की औषधियां शरीर-घटना में प्रविष्ट होनेवाले अनिष्ट द्रव्य हैं, उन्हें बाहर निकालने के लिए मलाशय में एक प्रकार की क्रिया शुरू होती है। मलाशय में बहुत सा द्रवरूप द्रव्य निर्माण होकर यह इन औषधिरूपी अनिष्ट द्रव्यों को बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। उसके साथ ही साथ भीतर का बहुत सा मल भी बाहर निकलता है सही, परन्तु इस काम में शरीर का बहुत सा द्रव पदार्थ खर्च हो जाने के कारण जठर और मलाशय तुरन्त ही शुष्क हो जाता है; और इस कारण भीतर का मल भी जम जाता है। तथा फिर भी मलबद्धता की औषधियां लेने की आवश्यकता बनी ही रहती है। इसी कारण यह जुलाब की रीति सदोष सिद्ध होती है। परन्तु उसके बदले दूसरी कोई निर्दोष उपचारप्रणाली बतलाने के पहले

इन फलों का ही ग्रहण करना विशेष लाभदायक हो सकता है। काले सूखे द्राक्ष भी अच्छे होते हैं। शाम को सोने के पहले २० से ३० तक द्राक्ष खा लेने चाहिएं।

प्रति दिन भोजन हलका और तुला हुआ करना चाहिए। अधिक और कई प्रकार का भोजन एक ही बार में न करना चाहिए।

अदरख, निम्बू, आंवला, कढी, पुराना गुड, मूली, अजवाइन, हींग, इत्यादि पदार्थ स्वाभाविक ही रेचक और इस लिए लाभदायक हैं। ईख का रस, खीर, केला, सुपारी, बेर, गूलर, इत्यादि पदार्थ मलबद्धता उत्पन्न करनेवाले हैं।

इस प्रकार, मलबद्धता के परिणाम, उसके कारण, और तदंगभूत प्रतिबन्धक उपाय और अन्य रोगनाशक उपायों का उल्लेख किया गया। अब सिर्फ सर्वश्रेष्ठ, स्वयंसिद्ध, प्रतिबन्धक और निवारक, तथा न सिर्फ यही व्याधि दूर करनेवाला; किन्तु सम्पूर्ण शरीर में जोश और स्फूर्ति लानेवाला एक ही उपाय बतलाना है। हमारी इस शब्दयोजना को देख कर शायद कोई पाठक यह समझेंगे कि हम लेख नहीं लिख रहे हैं; बल्कि कोई विज्ञापन दे रहे हैं। परन्तु हम कोई पाक या गोलियां लेने के लिए तो पाठकों से कहते नहीं–सिर्फ यही कहते हैं कि आप सब काम छोड़ कर, "व्यायाम करें"! इससे अधिक लाभदायक तथा सहज और कोई दवा नहीं है।

अब, चूंकि ऊपर का विवेचन बहुत बढ गया है; इस कारण यहां तात्विक और शास्त्रीय रीति से यह न दे कर कि व्यायाम से मलबद्धता का रोग कैसे दूर होता है, सिर्फ व्यायामप्रणालियों का ही उल्लेख कर दिया जाता है।

व्यायाम नं० १––(आकृति नं० १ और २) जैसा कि आ० नं० १ में दिखलाया गया है, शरीर का अधिकांश भाग दाहने नितम्ब पर ले जाकर बायां पैर दाहने पैर पर घुमा लाना चाहिए; और पैर, जैसा कि आकृति नं० १ में दिखलाया गया है, किसी न किसी पदार्थ के नीचे अटकाना चाहिए; नं० २ की आकृति में जैसा कि दिखलाया है उसके अनुसार, जितना हो सके, एक ओर झुकना चाहिए; और जब तक बिलकुल थक न जाय तब तक बराबर उसी अवस्था में बना रहना चाहिए; बाद को फिर पूर्वावस्था में आ जाना चाहिए। इसके बाद दूसरी तरफ से यही व्यायाम करना चाहिए। पहले पहल यह व्यायाम १०–५ बार कर के फिर आगे चल कर २५ ३० बार तक करने लगना चाहिए।

व्यायाम नं० २—(आ० नं० ३) खूब अकड़ा हुआ उताना पड़ कर पैर न उठाते हुए और न लचाते हुए उठ कर बैठ जाना चाहिए। पैर उठाये बिना यदि उठा न जा सके तो पैर किसी आधार के नीचे अटका रखना चाहिए। ऐसा करने से यह व्यायाम अधिक ज़ोर से और अधिक समय तक किया जा सकेगा, हाथ गर्दन के नीचे रखने से यह व्यायाम अधिक कठिन और पैरों पर रखने से अधिक सुलभ होगा।

व्यायाम नंबर ३—(आ० नं० ४) पीठ, जितनी हो सके, भीतर की ओर लचा कर, गर्दन और कंधे भी, जितने हो सकें, पीछे ले जाने चाहिए। थोड़ी देर उसी हालत में रह कर पीठ और भी भीतर लचाने का दो तीन बार प्रयत्न करना चाहिए। हाथ नीचे की ओर न झुकाते हुए तनेने ऊपर उठा कर फिर एकदम, जितना हो सके, पीछे ले जाकर, पीठ अन्दर की ओर झुकाने का व्यायाम बहुत कठिन होता है। शरीर का ऊपरी भाग पीछे खींचने के पहले दीर्घश्वसन यदि कर लिया जाय तो बहुत अच्छा।

व्यायाम नं० ४—(आ० नं० ५) सीधा उताना पड़ कर हाथ ऊपर ले जाना और हाथों से बिछौना अथवा और कोई स्थिर डंडा पकड़ कर, आवश्यकता हो तो मजबूती से पकड़ कर, पैर न लचाते हुए, धीरे धीरे सीधे तनेने करना चाहिए। और नाभि के नीचे का पेट का भाग जब तक खूब थक न जाय तब तक यह व्यायाम करना चाहिए।

व्यायाम नं० ५––(आ० नं० ६ और ७) जैसा कि आ० नं० ५ अ में दिखलाया गया है, किसी कुर्सी पर बैठ कर, पैर किसी न किसी स्थिर आधार के नीचे अटकाना चाहिए और आ० नं० ५ ब के अनुसार शरीर का ऊपरी भाग पीछे झुका कर, यदि हो सके तो मस्तक नीचे जमीन में लगाना चाहिए; और फिर आ० नं० ५ अ के अनुसार पूर्वावस्था में आजाना चाहिए।

अन्तिम चारों व्यायामों में बार बार स्नायुओं पर ज़ोर पड़ते रहने के कारण, प्रत्येक व्यायाम के बाद, बीच में थोड़ा सा विश्राम ले कर, तब आगे के व्यायाम का आरम्भ करना चाहिए। इन व्यायामों के साथ यदि कुछ ऐसे व्यायाम किये जा सकें कि जिनमें बार बार उन्हीं स्नायुओं का उपयोग न हो तो बहुत ही अच्छा।

हरीपुर के साइकिलवालों की, हरीपुर से, सांगली-मार्ग के द्वारा, बीजापुर तक यात्रा।
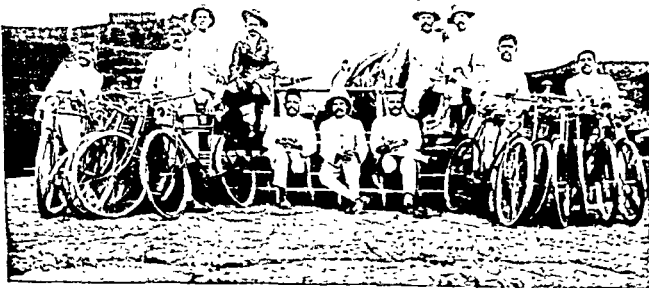
दौड़ की बहुत बड़ी बाज़ी ।

महाराष्ट्र में जमखिंडी एक रियासत है। वहां के "श्रीमन्त रामचन्द्रराव आप्पासाहब क्लब" के द्वितीय वार्षिकोत्सव के समय, अर्थात् गत पहली जनवरी को, शूटिंग, टेनिस, बैडमिंटन, बाइसिकिल की दौड़, इत्यादि के खेल और बाज़ियां क्लब के मेम्बरों के लिए निश्चित की गई थीं; और अन्य लोगों के लिए "लॉंग रनिंग रेस," अर्थात् ३० मील दौड़ने की बाज़ी निश्चित की गई थी। इस बाज़ी का विज्ञापन छै मास पूर्व "जमखिंडी गज़ट" में दिया गया था। अतएव अन्य स्थानों के बहुत से लोग भी बाज़ी में शामिल होने के लिए आये थे। आज तक सम्पूर्ण भारतवर्ष भर में दौड़ की इतनी बड़ी बाज़ी और कहीं नहीं हुई थी। इस रेस में १०।१२ मनुष्य शामिल हुए थे। उन सब में तीन मनुष्यों ने दौड़ने में अपनी अद्भुत निपुणता दिखला कर सब लोगों को चकित कर दिया। इन तीनों के चित्र यहां पर दिये जाते हैं। इनमें से पहला मनुष्य धुलेना महरखिंडी है, जिसको कि ३० मील दौड़ने में केवल ३ घंटे, १६ मिनट और ४५ सेकंड लगे। दूसरा व्यक्ति "रामा पुजारी" है, इसको ३ घंटे १७ मिनट ल[गे] अर्थात् यह पहले से सिर्फ १५ सेकंड पीछे र[हा।] कहते हैं कि यूरप के बड़े बड़े दौड़नेवालों को ३० मील की दौड़ में इन दोनों से अधिक सम[य] लगा है। इतना ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जगत [में] इन दोनों व्यक्तियों के समान दौड़नेवाले अभी त[क] नहीं निकले। अर्थात् संसार भर में इन दोनों [का] पहला और दूसरा ही नम्बर है। तीसरे न[म्बर] का मनुष्य "बाल्हू माने" है—इसे तीस मी[ल] दौड़ने में ३ घंटे, २१ मिनट और ३० सेकंड लगे। और लोग सब इनसे पीछे रहे। नम्बर १ और [२] श्रीमान् जमखिंडीनरेश के नौकर हैं; और नम्बर [३] का व्यक्ति जमखिंडी के पास कड़पट्टी गांव [का] रहनेवाला है। इन तीनों दौड़बाज़ों को श्रीमान् [की] ओर से क्रमेशः १२०, ९० और ६० रु० पुरस्कार मि[ले।]

श्रीमन्त जमखिंडी नरेश
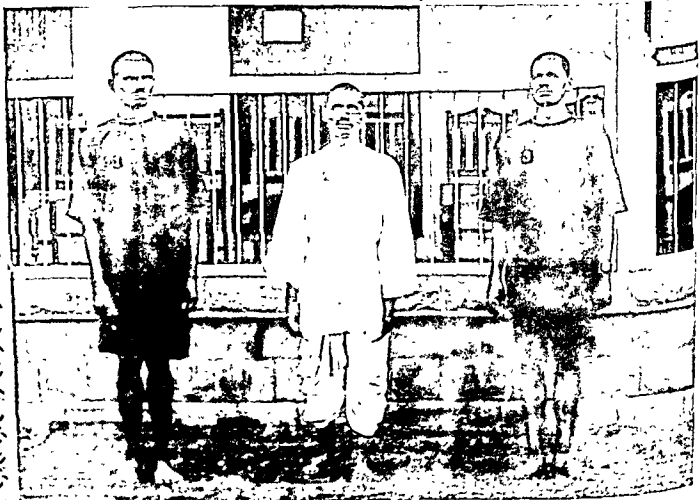
धुलेना महरखिंडी. रामा पुजारी. बाल्हू माने.

चीनी-जापानी अनबन ।

इस समय चीन के सामने सब से बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित हो रहा है कि वहां की लोकसत्ताक राज्यप्रणाली को सुव्यवस्थित स्वरूप कैसे दिया जाय; और ऐसे अवसर पर, परकीयों की सत्ता जो अपने सिर पर बैठना चाहती है उससे अपनी रक्षा कैसे की जाय। इस प्रकार अन्तस्थ "राजकारण" और परराष्ट्रीय सम्बन्ध सम्हाल कर चीनी राजनीतिज्ञों को अपना राज्यशकट चलाना पड़ता है। योरोपियन राष्ट्रधुरीणों को अन्तस्थ राजकारण की कुछ बहुत चिन्ता नहीं करनी पड़ती; और इसी कारण परराष्ट्रीय राजकारण में ही अपनी सारी बुद्धि खर्च करने का उनको यथेच्छ समय मिलता रहता है। यही कारण है कि दूसरे लोगों को वे खूब नीचा दिखा सकते हैं। परन्तु चीन की दशा, एक हाथ से रथचक्र सम्हालते हुए दूसरे हाथ से युद्धचापल्य दिखलाने वाले कर्ण की सी हो रही है। कर्ण की उस युद्धनिपुणता से यद्यपि प्रतिपक्ष पर उसे विजय नहीं मिला, तथापि, जिस प्रकार वीर पुरुषों में उसकी योग्यता कम नहीं ठहर सकती उसी प्रकार चीनी राजनीतिज्ञ यद्यपि आज परराष्ट्रीय राजकारण में अन्यों को नीचा नहीं दिखला सकते, तथापि इतने ही से यह नहीं कहा जा सकता कि राजनीतिज्ञता में वे किसी से कुछ कम है।

यदि केवल पसन्दी-नापसन्दी की ही दृष्टि से देखा जाय तो चीनी राजनीतिज्ञों को स्वाभाविक ही, परराष्ट्रीय राजकारण की अपेक्षा अन्तस्थ राजकारण में ही मन लगाना विशेष पसन्द आता है; परन्तु जब परकीय लोग बीच में हस्तक्षेप करते हैं तब बहुधा उक्त पसन्दी को एक ओर रख कर बाह्य घटनाओं से टक्कर लगानी पड़ती है। इस प्रकार के परराष्ट्रीय राजकारण को चीन में, जो देश विशेष महत्व दे रहे हैं उन देशों में जापान की गणना मुख्य है। जापान ने जब से रूस के समान बलवान् राष्ट्र को जीता तब से उसके मन में ऐसी महत्वाकांक्षा उत्पन्न हो गई है कि सम्पूर्ण एशिया का-और विशेषतः चीन का राजकारण तो अवश्य ही हमारे तंत्र से चलना चाहिए। इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने में जापान को पहले अनेक विघ्नों से सामना करना पड़ा। क्योंकि उसकी यह महत्वाकांक्षा यूरोपियन राष्ट्रों के उद्देश्य में बाधा डालनेवाली थी। और जर्मनी ने क्यौचो, जापान के देखते ही देखते, ले लिया; तथा चीन का बहुत बड़ा भाग यूरोपियन राष्ट्रों ने "अपनी सत्ता के नीचे का मैदान" मान लिया। यह भी जापान को चुपके से सहन करना पड़ा। परन्तु योरोपियन महायुद्ध के कारण यह सारी दशा बदल गई। अब तक जो विचार जापान मन में ही रखता था वे अब वह स्पष्ट प्रकट करने लगा।

लिआंग चिचाउ।
(वर्तमान राज्यप्रणाली का एक आधारस्तम्भ)

निस्सन्देह इस महायुद्ध के कारण जापान को लाभ हुआ, परन्तु चीन पर इसके कारण बहुत कठिन अवसर आ पड़ा है। चीनी लोग परकीयों को "पिशाच" कह कर सम्बोधन करते हैं; और सचमुच गत चालीस पचास वर्ष से इन परकीय लोगों ने चीन को पिशाच की भांति ही तंग कर रखा है। बाक्सर के बलवे से चीनी सरकार का कुछ भी सम्बन्ध न था, तथापि केवल इसी कारण कि वहां कुछ मिशनरी मारे गये, परकीय राष्ट्रों ने चीनी सरकार से करोड़ों रुपये का दंड वसूल किया। चीन के कितने ही अच्छे बन्दरों को हड़प कर लिया तथा उसका बहुत बड़ा भाग आपस में बांट लेने की तैयारी प्रारम्भ की। चीन इन बातों का यद्यपि प्रत्यक्ष प्रतीकार नहीं कर सका; तथापि उसको उस समय की हलचल से यह मालूम होता है कि इस परकीय पिशाच से अपनी रक्षा कर लेने का मंत्र चीन को अवगत था। योरोपियन राष्ट्रों के परस्पर मत्सर का लाभ उठा कर चीन आज तक किसी न किसी तरह अपनी रक्षा करता रहा। इधर महायुद्ध के कारण योरोपियन राष्ट्रों को चीनी राजकारण की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं रहा, इस प्रकरण का लाभ उठा कर जापान ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया; और चूंकि उसका कोई प्रतिस्पर्धी वहां नहीं था; इस कारण चीन का संदेह का मंत्र कुछ काम नहीं दे सका। ७ मई १९१५ को जापान ने चीन के पास जो खरीता भेजा उसकी मुख्य मुख्य धारायें यहां दी जाती हैं; इन से हमारे पाठकों को यह मालूम होगा कि जापान चीन के साथ जो बर्ताव कर रहा है उसका स्वरूप क्या है।

१. शांटंग प्रान्त में (अर्थात् जिस प्रान्त में क्यौचो बन्दर है) जर्मनी के सब हक और रेलवे बनाने का अधिकार तथा अन्य किसी भी राष्ट्र के प्रतिबन्ध करने का अधिकार जापान को होना चाहिए।

२ दक्षिण मंगोलिया और पूर्व मंचूरिया में अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा जापान को विशेष अधिकार रहने चाहिएं।

३. हानपिंग प्रान्त की सब लोहे की खानें, अन्य राष्ट्रों के अधिकार में न देकर, केवल जापान के अधिकार में देनी चाहिए।

४. चीन के किनारे का कोई भी टापू या बन्दर अन्य किसी राष्ट्र के भी अधिकार में न देना चाहिए।

५. चीन में राजकीय, लगान-मालगुजारी और फौजी विषयों में महत्वपूर्ण अवसरों पर सलाह देने के लिए जापानी महाशयों की नियुक्ति करनी चाहिए।

६. चीन में कितने ही शहरों की शान्तिरक्षा का काम जापान को सौंपा जाय।

७ चीन सरकार अपने लिए आवश्यक गोला-बारूद जापान से मोल लेवे।

इन सब धाराओं का तात्पर्य इतना ही जान पड़ता है कि चीन जापान का संरक्षित राज्य बने; और चीन में जापान को छोड़ कर और किसी राष्ट्र का प्रवेश न होने पावे। यही जापान का उद्देश्य है।

इतना महत्वपूर्ण खरीता चीन ने जापान के पास भेज कर ऊपर से यह धमकी भी दी थी कि, "इसका सन्तोषजनक उत्तर अड़तालीस घंटे में देना चाहिए।" साथ ही साथ चीन में जापानी सेना भेज कर उसने अपनी धमकी सार्थक कर दिखलाने की तैयारी भी कर रखी थी।

अवश्य ही चीन ने इस खरीते को स्वीकार नहीं किया, और उसने उसका निषेध कर के यूरोपियन राष्ट्रों को तथा अमेरिका को इस विषय में सूचना दी। इस पर अमेरिका ने जापान को स्पष्ट रीति से सूचित किया कि यदि तुम चीन से ऐसी कोई भी शर्तें करोगे कि जिनसे अमेरिका और चीन के सम्बन्ध में अथवा चीन की स्वतंत्रता में बाधा आवेगी तो अमेरिकन सरकार यह बात कभी स्वीकार नहीं करेगी। यूरोपियन राष्ट्रों की ओर से भी जापान के पास ऐसी ही सूचनायें गई। इस कारण उस समय जापान को अपना हाथ समेटना पड़ा; परन्तु उसकी दशा, मानहानि से चिढ़े हुए नागिन की सी हो गई है; और तब से वह चीन पर अपनी सत्ता स्थापित करने का पूरा पूरा प्रयत्न कर रहा है। वह यह भी जानता है कि अमेरिका इस विषय में उसका पूरा पूरा विरोधी है, तथापि उसके साथ भी दो चार हाथ दिखलाने में जापान त्रुटि न करेगा।

इस विषय में कई जापानी लोग यह कहा करते हैं कि "चीन का राज्यकार्य यदि हमारे तंत्र से चलने लगेगा तो इसमें चीन का ही लाभ है और इसी सदिच्छा से चीन के विषय में हम ऐसी कठोरता दिखलाते हैं। उदाहरणार्थ कोरिया की ओर देखिये। यह प्रान्त जब से हमारे अधिकार में आया तब से वहां के लोगों की साम्पत्तिक, औद्योगिक, सामाजिक दशा में बहुत सुधार हुआ है।" यह नहीं कहा जा सकता कि जापानियों के इस कथन में कुछ सत्यांश नहीं है। परन्तु यह इस प्रश्न का एक पहलू हुआ। दूसरा पहलू जब आप देखेंगे तब आपको मालूम होगा कि इससे चीन की स्वाभाविक स्वतंत्रता में बाधा आती है। चीन कहता है-हमें अपने देश के सुधार का स्वयं ही पूरा पूरा अधिकार है; दूसरे के अधीन हो कर यदि सुधार भी होता होगा तो ऐसा सुधार हमें नहीं चाहिए। और सब राष्ट्रों की तरह यह प्रकट करने का हमें अधिकार भी है। फिर हम यह भी नहीं कहते कि हम को सुधार चाहिये ही नहीं। हमने स्वयं अपनी शक्ति के अनुसार इधर कुछ दिनों से सुधार किया भी है, तथा और भी कर रहे हैं। तिस पर भी यदि कोई जबरदस्ती हमारे ऊपर सुधार लादेगा तो न तो यह हमें पचेगा और न रुचेगा ही।"

× × × ×

चीन की साधारण दशा।

यहां तक चीनी राजनीतिज्ञों के परराष्ट्रीय राजकारण की चर्चा हुई। अब यह देखना चाहिए कि चीनी जनता का सामान्य स्वरूप क्या है। भारतीय और चीनी मनुष्य में मुख्य अन्तर यह है कि भारतीय मनुष्य ऐहिक दृश्य जगत् भूल कर अदृश्य और गूढ़ स्वरूप वाले आत्मा के विचार में आनन्द मानता है, पर चीनी मनुष्य का स्वभाव इससे बिलकुल विरुद्ध है। वह वेदान्त नहीं जानता। आत्मानात्मविचार नहीं जानता। संसार द्वैत पर खड़ा है, अथवा सब कुछ ब्रह्म है-इत्यादि प्रश्नों के झगड़े में चीनी मनुष्य कभी नहीं पड़ता। वह यह मानता है कि जो कुछ दिखाई देता है,

पेकिंग मे परराष्ट्रीय राजकारण की कचेरी।

बस वही सब है-अर्थात् वह पूर्णतया जड़वादी है; इस कारण उसके मन में सदैव एक ही विचार रहता है, और वह यह कि इन सांसारिक व्यवहारों में हम सफलता किस प्रकार प्राप्त करें। इस बात का कल्पनाचित्र अपने मन के सामने रखने में उसका मन नहीं रमता कि हजारों वर्ष पहले संसार की क्या दशा थी और भविष्य काल में उसकी क्या हालत होगी। बस वह इसी प्रश्न का हल करने में अपनी सारी बुद्धि खर्च करता रहता है कि आज भर के लिए खाने को किस प्रकार प्राप्त किया जावे। और बस इसी एक काम के लिए वह प्रातःकाल से सायंकाल तक चींटी की तरह उद्योग करने में किसी प्रकार की भी त्रुटि नहीं करता। चीनी मनुष्य को उद्योग का मूर्तिमन्त स्वरूप समझना चाहिए। आलस्य का तो वह नाम भी नहीं जानता।

साधारणतया लोगों का ऐसा ख़याल है कि चीन की आबादी चालीस करोड़ है, पर वास्तव में यह ख़याल कुछ ग़लत सा जान पड़ता है। लोगों की समझ थी कि चांगशा शहर की लोकसंख्या [illegible] लाख तक होगी; पर अब [illegible] तरह से गणना की [illegible] सिर्फ ३,००००० निकली। बस यही हाल सारे देश का समझिये। [illegible] का मत है कि [illegible] [illegible]। इसी प्रकार चीन के विषय में [illegible] दिखाई देती है। और [illegible] है कि [illegible] कहते हैं कि चीन की [illegible] बहुत [illegible] है।

चीन में वन-विभाग का कार्य यदि सुव्यवस्थित रूप से हो; लकड़ी मिलने का सुबीता हो तो बस्ती के लिए चीन में अभी बहुत सा प्रदेश निकाला जा सकता है। चीन में दरिद्री लोग बहुत हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि वहां बस्ती घनी है। यदि पुतलीघर और कारखाने जारी किये जांय, रेलवे, सड़कें, नहरें निकाली जांय, तथा खानों से उपयोगी द्रव्य बाहर निकालने का सुप्रबन्ध किया जाय तो लाखों आदमियों को काम मिल सकता है; और अब से डेढ़गुनी लोकसंख्या का भी चरितार्थ आराम से चल सकता है। चीनी किसानों की भी अपनी परम्परागत पुरानी जानकारी कुछ कम नहीं है; पर आधुनिक आविष्कारों और कृषि-विषयक नवीन साधनों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। मतलब यह है कि चीन में आधुनिक शिक्षा का प्रचार होना आवश्यक है।

चीनी लोग भारतीयों की भांति ही दरिद्री हैं। चांगशा शहर की लोकसंख्या २,७०,६०४ है। परन्तु इसमें से ५२७४४ लोग ऐसी दरिद्रावस्था में हैं कि कोई खाने को दे देवे तब तो वे जी सकते हैं अन्यथा उनको मरा हुआ ही समझना चाहिए। इसके सिवा ६७८७ लोग साधारण गरीबी में, अर्थात् समय-कुसमय सरकार की मदद पा कर जीते हैं। एवंच ४४ फीसदी लोग सदा इसी चिन्ता में रहते हैं कि उनके जीवन की रक्षा कैसे हो। यह हालत चांगशा के समान सुधरे हुए धनवान् नगर की है। इससे हमारे पाठक इस बात का अच्छी तरह से अनुमान कर सकते हैं कि गवांर गांव के लोग कितनी दारिद्रता में होंगे।

इसके सिवाय डाक, तार और अखबार, इत्यादि साधनों का प्रचार न होने के कारण एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से कोई सम्बन्ध ही नहीं आता। इसका परिणाम यह होता है कि यदि किसी प्रान्त में फसल अच्छी भी हुई तो कोई दूसरा प्रान्त उससे लाभ नहीं उठा सकता। देश में उद्यम-व्यवसाय और कारखाने न होने के कारण मजदूरी की शरह भी बहुत ही कम है। चीन में कलों की अपेक्षा मजदूरों से काम लेना अधिक सुभीते की बात समझी जाती है। इसका कारण यही है कि लोगों के लिए व्यवसाय ही नहीं है। इसका एक विरुद्ध परिणाम यह भी होता है कि देश में कल कारखानों का प्रचार नहीं होने पाता। क्योंकि कलों से काम लेना महँगा पड़ता है। इसके सिवाय प्रान्त प्रान्त में सिक्का, माप, तौल, इत्यादि भिन्न भिन्न होने के कारण व्यापार में अनेक अड़चनें आती हैं और रोगों की वृद्धि, दंगाफिसाद, बलवा, इत्यादि आपत्तियों के कारण लोगों को अपनी जान माल की रक्षा के विषय में विश्वास नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जिसे देखिये, वही इस चिन्ता में निमग्न दिखाई देता है कि ईश्वर, आज का दिन कैसा बीत जाता है! इस प्रकार चारों ओर दुःखदर्द और चिन्ता [illegible] कारण जिसे जो सूझता है वही वह कर गुजरता है। आज कहीं [illegible] के लिए कोई मुसलमान हो रहा है तो कोई नौकरी मिलने के लिए ईसाई ही बन रहा है—बस यही हाल चारों ओर दिखाई देता है।

मध्यम स्थिति के लोग।

यह वर्णन बिलकुल नीचे दर्जे के लोगों का हुआ। अब, इसके ऊपर श्रेणी के जो लोग हैं; और जिनके घर में खानेपीने का कुछ [illegible] है, वे संसार की कुछ परवा नहीं करते। उनको यह भी [illegible] मालूम है कि इस समय संसार में हो क्या रहा है। उनके देश [illegible] दशा सुधारने की महत्वाकांक्षा ही नहीं है। आज की [illegible] आगे उनकी दृष्टि ही नहीं पहुँचती। वे नहीं समझते कि [illegible] कर के इससे भी अच्छी दशा प्राप्त की जा सकती है। इस

आप कभी भी देखिये, उनकी दिनचर्या एक ही समान रहती है। उसमें कभी नवीनता दिखाई नहीं देती। ऐसी दशा में लोगों में भूतप्रेत पूजने तथा अज्ञानतापूर्ण कल्पनाओं में फँसने की जो चाल पड़ जाय तो इसमें कौन सा आश्चर्य है? किसी की थोड़ीसी भी तबीयत खराब हुई कि चट वे पंचाहारी, अर्थात् झाड़ने फूँकनेवाले के पास दौड़ते हैं। कहीं बाहर जाना हुआ तो पहले यह प्रश्न उठता ही है कि शकुन और समय अच्छा है या नहीं। घर बनवाना होता है तो जहां तक हो सकता है, टेढ़े-मेढ़े रास्ते में बनवाते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि भूत केवल सरल मार्ग से ही जा सकता है, और यदि मार्ग अड़चन का होता है; अथवा बीच में गड्ढे आदि होते हैं तो भूत को जाने में कठिनाई होती है। प्रत्येक घर के द्वार पर दोनों ओर राक्षसों के चित्र होते हैं; क्योंकि इससे भूत घर के भीतर जाने में डरता है। नौका में रंगबिरंगी आंखें बनानी ही चाहिएं; अन्यथा समुद्र में चलते समय उसे मार्ग कैसे दिखाई देगा? घर में जब कोई मर जाता है तब, शुभ समय और शुभ स्थल जब तक मिल न जाय, तब तक मुर्दे को गाड़ते नहीं। कभी कभी ऐसा योग मिलने में वर्ष के वर्ष लग जाते हैं! इस लिए एक लकड़ी के कट्ठे को भीतर से खोल कर उसी के अन्दर मुर्दा रखने की जगह की जाती है, उसमें मुर्दा रख कर शेष जगह चूने से भर देते हैं, और ऊपर से लकड़ी की खपच्चियाँ को लगा कर रन्ध्र बन्द कर देते हैं। मतलब यह कि यह शवपेटिका कई वर्षों तक लोगों को उठने बैठने और सोने तक का काम देती रहती है। प्रत्येक बस्ती की सीमा पर कम से कम एक मन्दिर अवश्य होता है; पर वह मन्दिर ऐसा भी नहीं होता कि बरसात में उसमें कोई खड़ा हो कर अपने को भीगने से भी बचा सके। पत्थर पर पत्थर रख कर कब्रिस्तान तैयार किया जाता है।

"दो ढाई वर्ष पहले की बात है, हंकाऊ शहर में विमान उड़ाने का प्रयोग होनेवाला था; पर उस प्रान्त के गवर्नर ने समझा कि विमान को देख कर लोग घबड़ायँगे; और कदाचित् दंगाफिसाद भी कहीं न हो जावे; इस लिए उसको इस आशय का एक विज्ञापनपत्र निकालना पड़ा कि, यह राक्षस नहीं है, और कोई भूतप्रेत भी नहीं है; न इससे कोई कष्ट होगा; इस लिए कोई डरने की आवश्यकता नहीं।"

श्मशानयात्रा की चाल भी ऐसी ही बड़ी विचित्र है। मुर्दों के साथ घरों, पशुओं और अन्य प्राणियों के लकड़ी के तथा कागज के अनेक चित्र ले कर चलते हैं, और श्मशान में पहुँच कर पहले उन चित्रों को जलाते हैं; बाद को उनकी राख मुर्दे के साथ गाड़ देते हैं। चीनी लोग समझते हैं कि ऐसा करने से मृत प्राणी को घर की अथवा पशुओं इत्यादि की कमी नहीं रहेगी। परन्तु ऐसी बातों के लिए चीनियों को किसी को हँसना नहीं चाहिए; क्योंकि संसार में इसी प्रकार की कुछ न कुछ विचित्र चालें सब जगह पाई जाती हैं। ईसाई लोगों की शवयात्रा जिन्होंने देखी होगी वे जान सकते हैं कि ईसाई लोग भी ऐसी ही कुछ विचित्र चालों और रूढ़ियों के गुलाम बन रहे हैं।

× × × ×

चीनी स्वभाव।

चीनी लोगों के धार्मिक तथा सामाजिक विचारों की चर्चा करने का यह स्थल नहीं है; परन्तु प्रसंगवश यहां इस विषय में दो चार बातें बतला दी गई हैं। चीनी लोगों के स्वभाव के विषय में यदि साधारणतया बतलाना हो तो कहा जा सकता है कि, "वे शान्तिप्रिय हैं, युद्धप्रिय नहीं हैं।" उनकी परम्परागत यही समझ है कि सिपाहीगीरी करने की अपेक्षा खेती अथवा मुहर्रिरी करना अच्छा है। दीर्घोद्योग, कष्टसहिष्णुता और बुद्धि में चीनी मनुष्य यूरोपियनों से कम नहीं है। परन्तु लड़ने के समय में वह बहुत पीछे रहता है। लड़ कर मरने में कोई बड़ा पुरुषार्थ है, यह वह नहीं समझता। युआनशिकाई के समान पुरुषों के प्रयत्न से यह दशा धीरे धीरे पलट रही है, पर लोगों की आदत और विचार बदलने में बहुत देर लगती है।

चीनी लोग रास्ते में अक्सर झगड़ते हुए देखे जाते हैं; पर सिर्फ बातों बातों—हां, हाथों से चेष्टा करते जाते हैं। पर मारपीट का नाम भी नहीं। यह युद्धपराङ्मुखता उन्हें बहुत पसन्द आती है। कुछ वर्ष पहले चीन में जब बलवा हुआ तब बलवे वाले सरकारी सेना पर चढ़ धाये। सरकारी सेना की छावनी अच्छी जगह पर थी, दोनों ओर टेकड़ियां थीं; और उनके पास शस्त्र इत्यादि खूब थे। यह स्थिति देख कर बलवाइयों ने पीछे से जा कर आक्रमण किया। बस तुरन्त ही सरकारी सेनापति ने हथियार रख दिये; और शरण में चला गया; क्योंकि उसने समझा कि आगे से न लड़ कर धूर्तता से पीछे जा कर लड़नेवाला शत्रु धर्मयुद्ध करनेवाला नहीं है; और ऐसे शत्रु से युद्ध करने में कोई लाभ नहीं!

यह शिथिलता उनके निजी व्यवहार में भी देखी जाती है। यूरोपियनों ने लिखा है कि जो बड़ी तेजी से डांट के साथ बोलता है उसके कहने के अनुसार चीनी नौकर चुपके से बर्ताव करता है। एक लेखक कहता है कि, "जब मेरा नौकर कोई ग़लती करता तब मैं ए० बी० सी० डी० से लेकर ज़ेड० तक अँगरेजी वर्णों का उच्चार बड़े ज़ोर से कर के घूंसे और चपत मारने की चेष्टा करता था। इस कारण मेरे नौकर मुझे बहुत डरते थे। क्योंकि वे समझते थे कि मैं उनको कोई बड़ी गालियां देता हूं।"

नेता।

परन्तु साधारण जनता के इसी प्रकार के स्वभाववर्णनों पर से देश की भावी दशा का निश्चय करना भूल की बात होगी। किसी राष्ट्र की सर्वसाधारण जनता के मामूली व्यवहारों पर से उस राष्ट्र के भावी जीवन-मरण के विषय में कुछ भी निश्चय करना वैसी ही मूर्खता होगी जैसे कि किसी नदी की साधारण गहराई ऊपर ऊपर से देख कर उसको पार करने की कोई इच्छा रखता हो। वास्तव में किसी भी राष्ट्र की भावी दशा यह देख कर निश्चित करनी चाहिए कि उस राष्ट्र के नेता देशाभिमानी, प्रतिभावान् और धैर्यशाली हैं अथवा नहीं। सारे शरीर को देखते हुए नेत्र बहुत छोटे होते हैं; और बहुत थोड़ी जगह घेरते हैं; परन्तु यदि वे अपनी ठीक हालत पर और तेजस्वी होते हैं तो सारे शरीर को ठीक मार्ग पर ले चलने में समर्थ होते हैं; उसको गड्ढे में नहीं गिरने देते। बस यही हाल नेताओं का और जनता का भी समझिये। इस दृष्टि से, जब हम चीनी नेताओं के जीवनक्रम पर विचार करते हैं तब हमें यही कहना पड़ता है कि चीन की भावी दशा के विषय में निराश होने का कोई कारण नहीं। चीन के नेताओं को यह अच्छी तरह से मालूम है कि चीनी जनता में कौन से दोष भरे हुए हैं; और इन दोषों को दूर करने के लिए तथा देश में सुविचारों का प्रचार करने के लिए वे प्रयत्नशील भी हो रहे हैं। "अफीम के व्यापार की इतिश्री" करने में चीनी जनता और अधिकारियों ने किस दृढ़ता का परिचय दिया है सो हमारे पाठकों को मालूम ही हो चुका है; और इससे जान पड़ता है कि चीनी नेताओं के प्रयत्न शीघ्र ही सफल होंगे। चीन में इतनी तेज़ी से सुधार हो रहा है कि पांच वर्ष पहले चीनी जनता के स्वभाव का जो वर्णन किया गया था वह आज दिन बहुत कुछ बदलना पड़ेगा। यह सच है कि जापान को देखते हुए चीन की शक्ति इस समय चाहे कुछ कम हो; पर इससे कुछ यह नहीं दिखाई देता कि चीनी अधिकारी जापान की कोई मांग चुपके से कबूल कर लेते हों। वे इस समय अपने देश में शान्ति चाहते हैं। तथापि उनकी यह नीति कदापि नहीं है कि अपमान सह कर अथवा सदैव के लिए देश की हानि कर के अथवा किसी की अन्यायपूर्ण आकांक्षा पूर्ण कर के वे अपना जीव बचाते रहें। चीन के वर्तमान राष्ट्रपति (प्रेसिडेंट) लीयुआन हंग, सेनापति तुआनची-जुई, डा० वू तिंग-फैंग, सेनापति त्साई-आऊ, इत्यादि चीनी राजनीतिज्ञ, राजकारण करने में, यूरप अथवा जापान के राजनीतिज्ञों से किसी बात में कम नहीं हैं। तथापि जापान के सामने इस समय उन्हें जो कुछ नीचा देखना पड़ रहा है; इसका कारण यह है कि जापान में प्राचीन काल से सिपाहीगीरी का बड़ा आदर चला आता है; और गत पचास वर्षों में वहां जो अधिक सुधार हुआ है उसका भी यही अर्थ समझना चाहिए कि वहां सैनिक पेशा का मान और भी अधिक बढ़ गया है, तथा सेना को आधुनिक शस्त्रसाधन भी खूब मिल गये हैं। इस कारण जापान में सैनिकता का प्रभाव इस समय खूब बढ़ा हुआ है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि प्रजाहितैषिता और स्वतन्त्रता के भावों में जापान किसी भी अन्य राष्ट्र से हार माननेवाला नहीं है।

शिक्षा, कलाकौशल, साहित्य, दर्शनशास्त्र, इत्यादि विषयों में उसने बहुत ही कम उन्नति की है; और यही कारण है कि जापान के निकट होते हुए भी चीन उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। सैनिक विषय में चीन की उन्नति जापान स्वयं ही नहीं चाहता। और अन्य विषयों में जापान के पास कुछ विशेष ज्ञान है ही नहीं। इस कारण चीन उससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। मतलब यह है कि चीन को हर एक प्रकार की शिक्षा के लिए यूरप या अमेरिका का ही मुंह ताकना पड़ता है। अर्थात् चीन के गुरुस्थान में बैठने का जापान को अधिकार नहीं है। सिर्फ हाथ में छड़ी पकड़ लेने ही से जैसे कोई मनुष्य सच्चा शिक्षक नहीं हो सकता उसी प्रकार केवल वीरता या साम्रतेज धारण करने से ही कोई राष्ट्र आगे बढ़ने योग्य नहीं हो सकता। ऐसी दशा में, जापान जो यह नादिरशाही हुक्म देता है कि "हमारे मतानुसार चीन का राज्य कार्य होना चाहिए और प्रत्येक विषय में सम्मति देने के लिए जापानी अधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए"—सो चीन कभी नहीं मान सकता।

युद्धकला के अतिरिक्त अन्य विषयों में जापान चीन का गुरु नहीं बन सकता, यह तो निर्विवाद है ही—पर एक बात में तो चीन जापान से भी आगे बढ़ा हुआ है; और वह इस प्रकार है—आधुनिक सुधार और आधुनिक राज्यप्रणाली देश में प्रस्थापित करने का प्रयत्न जापान में हुआ; और चीन में अभी हो रहा है—पर वैसा प्रयत्न करने की प्रेरणा जापान में सत्ताधारियों को हुई; और चीन में सत्ताधारियों के विरोध को दूर हटा कर जनता के नेता लोग इस प्रेरणा को आगे बढ़ा रहे हैं। जापान में अधिकारियों ने सुधार की योजना निश्चित की; और जनता के स्वीकार करने पर वह अमल में लाई गई; परन्तु चीन में, इसके विरुद्ध, लोगों के हृदय में देशाभिमान की ज्योति जगी; उस ज्योति को बुझाने का प्रयत्न वहां की राजसत्ता ने किया, परन्तु उस ज्योति की प्रखरता इतनी ठहरी कि स्वयं राजसत्ता ही उसके कारण भस्म होगई। मतलब यह है कि जापान की उन्नति में भीतर के कोई विघ्न नहीं आये; किन्तु अनुकूलता ही रही; इस कारण उसकी उन्नति शीघ्रता से होगई; पर चीन को अनेक विघ्नों से सामना पड़ा है; और इसी कारण अभी तक उसकी उन्नति ऐसी नहीं दिखाई देती जो कि संसार के अन्य राष्ट्रों के सामने जँच सके। लेकिन, चाहे संसार के राष्ट्रों को वह जँचे चाहे न जँचे—परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि चीन के भीतर का अंकुर बिलकुल ही कमज़ोर है। इसके विरुद्ध, अनेक विघ्नबाधाओं को दूर हटाते हुए जब कि वह अंकुर बराबर ऊपर ही को उठता आ रहा है, तब यही कहा जा सकता है कि आगे उसकी उन्नति बड़े ज़ोर शोर से होगी। सारांश यह है कि चीन जो सुधार करना चाहता है वह जापान से अधिक दृढ़ नींव पर खड़ा हुआ है; और अनेक संकटों से पार हो कर चीन की सुधार-विषयक इच्छा और भी अधिक दृढ़ हो गई है।

चेंगचियाटंग-प्रकरण।

चेंगचियाटंग के मामले से यह भली भांति मालूम हो जाता है कि बिलकुल मामूली कारण से भी चीन और जापान में कितनी अनबन बढ़ रही है। मंचूरिया और मंगोलिया की सीमा पर चेंगचियाटंग नामक एक २२ हज़ार की लोकसंख्या का व्यापारी शहर है। वहां १३ अगस्त १९१६ को एक जापानी फेरीवाले और चीनी पुलिस वाले से बातों बातों में झगड़ा हो गया; और मारपीट तक नौबत आगई। इस मामले का सच्चा वृत्तान्त क्या है सो मालूम नहीं हुआ। जापान का कहना है कि फेरीवाला औषधियां बेचते हुए घूमता था सो चीनी सिपाहियों ने उसको तंग कर के मारपीट शुरू कर दी; इधर चीन का कहना है कि यह बना हुआ फेरीवाला मंगोलिया के बलवाइयों को छिप कर के शस्त्र पहुँचा रहा था; और इसी कारण पुलिसवालों ने जब उसे रोका तब अन्त में मारपीट हो गई। जो हो, वह फेरीवाला उस नगर के जापानी वकील के पास गया; और उसने २० जापानी सिपाहियों का एक गिरोह एक मध्यस्थान नायक के हाथ में दे कर उस जगह भेज दिया जहां मारपीट हुई थी। वह नायक सीधा चीनी पुलिसवालों की बारीक में ही घुस गया; और चीनी कर्नल के आफिस में जाकर लड़ाई शुरू कर दी। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ जापानी सिपाही मारे गये; और कुछ घायल हुए। बाकी बचे जापानी सिपाही लौट गये; परन्तु जाते समय यह कहते गये कि इसका बदला लिये बिना दाँए न रहेंगे। इसके बाद तीन सितम्बर को जापान की ओर ...ता चीन के पास आया। उसमें इस प्रकार की बातें थीं—

१ इस मारपीट में जिन चीनी सिपाहियों ने ... उन ... की कम्पनी के मुख्य अधिकारी को दण्ड मिलना ...

२ मारपीट में जिन्होंने भाग लिया था उनको निकाल दे...

३ आगे से दक्षिण मंचूरिया और पूर्व मंगोलिया में जा... वालों के साथ चीनी सिपाहियों को नम्रता का ... चाहिए। इस प्रकार का गोपनीय निकाल कर इस ... लिए चीन को प्रकटरूप से माफ़ी मांगना चाहिए; और

४ दक्षिण मंचूरिया तथा पूर्व मंगोलिया में जापानी ... थाने स्थापन करने चाहिए।

इसके सिवाय, इन प्रान्तों में जापानी फ़ौजी सलाह... नियुक्त होनी चाहिए, चीन के सैनिक स्कूलों में जापानी ... की योजना होनी चाहिए, चेंगचियाटंग की लड़ाई में ... सिपाही मारे गये हैं उनके कुटुम्ब को चीन से पेंशन मिलनी ... और मुकदेन के फ़ौजी सेनापति को स्पष्ट रीति से माफ़ी ... चाहिए, इत्यादि बातें भी जापानी मसौदे में थीं।

कई लोगों ने समझा था कि इस मसौदे के कारण ची... में लड़ाई छिड़ जायगी। चीन के एक ब्रिटिश समाचारप... ओर से लिखा था कि चेंगचियाटंग में जापानी सिपाही ... कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि इन सिपाहियों को क... झगड़ा मचाये बिना चैन ही नहीं पड़ता। अस्तु। अन्... मामला कुशलतापूर्वक तै हो गया। चीन ने इस मामले ... सैनिक अधिकारियों को समझा देने, जापानी लोगों से स... बर्ताव करने के लिए चितावनी देने, और मृत जापानी ... के, कुटुम्ब को पेंशन देने के लिए स्वीकार कर लिया है... जापानी मंत्री कौंट तरौची ने इस मामले को इतने ही से ... लिया, इस पर उनकी शांतिप्रियता की कई लोग प्रशंसा कर...

जापान और चीन में इस प्रकार स्वाभाविक और परि... अनुसार अनेक विषयों में भेदभाव होने के कारण उनमें वैम... रहा है, यह स्पष्ट है। इस वैमनस्य को जगह यदि ये दोनों रा... से चलेंगे तो बड़ा कल्याण होगा। कई जापानी महाशयों ने चीन... में मैत्री करा देने की इच्छा भी प्रकट की है। उनका मत है ... यह कार्य हो जायगा तो एशिया के सारे झगड़े एकदम मि...

"निचिनिची" नामक एक जापानी समाचारपत्र ने यह ... की है कि इस मैत्रीभाव का प्रारम्भ जापानी विद्यालयों ... चाहिए। जापान में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने वाले ... विद्यार्थियों से जापानी विद्यार्थी इतनी मनहूसी का बर्ताव ... कि चीनी विद्यार्थी जब स्वदेश को लौट कर जाते हैं तब वे ... के शत्रु बन जाते हैं। जापानी विद्यार्थियों में, बड़े होने पर ... कीयों के विषय में—और विशेषतः चीन के विषय में—ति... व्यक्त करने की बुद्धि कायम रहती है। यह दशा बदलनी ... अभीष्ट हो तो चीनी लोगों के विषय में अनादरव्यक करनेवाले ... र्थियों को दण्ड मिलना चाहिये। यह सूचना करनेवालों के ... शत्रुमित्रभाव हृदय में प्रविष्ट होने का समय विद्यार्थिदशा है ... समय मन में जो भावनाएं प्रतिबिम्बित हो जाती हैं उन्हीं का ... रण बड़े होने पर प्रकट होता है। यह उपपत्ति और विच... तात्विक दृष्टि से ठीक भी है। परन्तु जापानी राष्ट्र को ज... पसन्द आजाय और उसके अनुसार वहां के लोग आच... करने लगें तभी समझिये।

पंचतंत्र में जैसी कि कहावत है, यह भक्ष्य और भक्षक की मै... पहले तो ऐसी मैत्री हो ही नहीं सकती; और यदि हो भी, ... उसका टिकना मुश्किल होता है। बात यह है, कि जर्मनी ... जापान भी अपना साम्राज्य बढ़ाने की महत्वाकांक्षा रखता है ... इस कारण चीन पर अपनी सत्ता स्थापित किये बिना उसे चै... पड़ सकती। इसके सिवाय चीन भी जापान के बर्ताव से ... बहुत हैरान हो चुका है; और इस कारण जापान यदि मैत्री ... लाने के लिए आगे बढ़े भी, तो भी चीन को उस पर विश्वास ... सकता। दूध से जला हुआ मनुष्य मठा भी फूँक फूँक कर पी... इसी भांति चीन जापान के बर्ताव के विषय में सदैव शंकित ... साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि यूरोपियन और अमेरिक... जापान की सत्ता को निष्कंटक नहीं देखना चाहते। इन राष्ट्रों ... पूरा पूरा विश्वास है कि यदि चीन और जापान एक हो ... "पीतातंक" का संकट अवश्य ही आवेगा। इस कारण यूरोपि... अमेरिकन लोग चीन और जापान की मैत्री में विघ्न डाले बिना ... न रहेंगे। मतलब यह है कि इस समय चीन और जापान की ... होना प्रायः दुस्तर ही है।

शेखावाटी-खेतड़ी के वर्तमान अधीश्वर और उनका शुभ विवाह।

(लेखक—पण्डित झाबरमल्ल शर्मा)

'शेखावाटी' जयपुर के मण्डलवर्ती प्रदेश का नाम है। महाराज उदयकरणजी ने १८ वर्ष आमेर के राज्य-सिंहासन की शोभा बढ़ाई। विक्रमीय संवत् १४४५ में उनका देहावसान होने पर महाराज नरसिंहजी आमेर की गद्दी पर विराजे और उनके सहोदर महाराज बरसिंहजी एवं बालाजी को 'मोजाद' और 'बरवाड़ा' नामक गांव जागीर में दिये गये। इन्हीं महाराज बरसिंहजी के वंश-प्रदीप अलवर, उनियारा, लावा आदि के अधीश्वर हैं और महाराज बालाजी के कुलगौरव शेखावाटी प्रान्त के स्वामी। महाराज बालाजी के प्रबल प्रतापी पौत्र महाराव शेखाजी के नाम से ही इस प्रान्त का 'शेखावाटी' और उनके वंशजों का 'शेखावत' नाम प्रसिद्ध है। वीरवर शेखाजी ने तलवार के बल से अपने राज्य की सीमा बढ़ाई थी। शेखावतों की वीरता इतिहास प्रसिद्ध है। वे मुसलमानों के शासन-समय में अपनी वीरता के कारण बराबर उच्च राज्य-सम्मान लाभ करते रहे हैं।*

शेखावाटी प्रान्त का रकबा ४५०० वर्ग मील है। भूमि यहां की रेतीली होने पर मारवाड़ की तरह निर्जल नहीं, सजल और उपजाऊ है। कहीं कहीं आकाश से बात करने वाली पर्वत श्रेणियां हैं। भारत के विभिन्न स्थानों में यहां के निवासी सेठ साहूकारों की व्यापारी कोठियां हैं। विलायत तक व्यवसाय फैला हुआ है। अन्न की शाख यहां दोनों होती हैं। शिक्षाप्रचार की ओर भी आज कल कुछ ध्यान दिया जाने लगा है। सेठों द्वारा संस्थापित संस्कृत पाठशालाओं की संख्या ३०-३५ है जिनमें विद्यार्थियों के लिए भोजनादि की भी व्यवस्था है। परन्तु पाठ्यक्रम अनिश्चित होने के कारण विशेष विद्योन्नति नहीं है। गत कई वर्षों से काशी और जयपुर की परीक्षाओं में छात्रों को भेजने का शौक पैदा हुआ है। यह शुभ लक्षण है। शेखावाटी के शहरों में यात्रियों के आराम के लिये बड़ी विशाल धर्मशालाएं बनी हुई हैं।

शाहपुर, मनोहरपुर, खंडेला, खेतड़ी, सीकर, बिसाऊ, नवलगढ़, मंडावा, सूरजगढ़, गुढ़ा, [illegible], अलसीसर, मलसीसर, उड़ीका, पदमगढ़, सुलताना प्रभृति शेखावाटी के ठिकाने हैं जिनमें खेतड़ी और सीकर में फौजदारी और दीवानी अदालतें भी हैं।

सं० १८१६ में भोपालसिंहजी ने खेतड़ी पर अपना कब्ज़ा किया और वहां की पर्वत-श्रेणी को ऊंची और उपयुक्त समझ कर उस पर सं० १८१६ में कोटकी नींव लगाई। यह किला अब भी भोपालगढ़ के नाम से मशहूर है। उनके अनन्तर योग्य बाघसिंहजी, अभयसिंहजी, बख्तावरसिंहजी, शिवनाथसिंहजी, फतहसिंहजी, अजितसिंहजी, और जयसिंहजी ने खेतड़ी के राज्यसिंहासन की शोभा बढ़ाई। श्रीमान् राजा फतहसिंहजी एवं राजा अजितसिंहजी की विद्यानुरागिता आदि गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। श्रीमान् राजा अजितसिंहजी बहादुर ने योरप की यात्रा भी की थी।

* [illegible]

जिन स्वामी विवेकानन्द ने समुद्रों पार पहुँच कर हिन्दू धर्म का झंडा फहराया, उनके आश्रय-स्थल श्रीमान् राजा अजितसिंहजी बहादुर ही थे। स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया ने अपने करकमलों से पदक प्रदान कर के आपको सम्मानित किया था। आगरे में अकस्मात ताजबीबी के रौजे पर से गिर जाने के कारण आपका देहत्याग हुआ। आपके विचक्षण मंत्री मुन्शी जगमोहनलाल जी ने आपके शव को मथुरा ले जाकर वहां अन्त्येष्टि क्रिया कराई।

श्रीमान् राजा जयसिंहजी ने पठनावस्था में ही इहलीला संवरण की। उनकी प्रेममयी प्रतिभा को उनसे एकबार मिलनेवाला भूल नहीं सकता। मेयो कॉलेज की दीवाल पर लगा हुआ एक पत्थर आज भी उनकी सौम्यमयी मूर्ति को आंखों के सामने लाकर खड़ा कर देता है। अब तक भी उनके अध्यापकों के हृदय भग्न हो रहे हैं। ओ हो।

श्री१०८ राजा अमरसिंहजी बहादुर खेतड़ी-नरेश।
(वर वेश या विवाह की पोशाक में)

सम्प्रति खेतड़ी के अधीश्वर श्री १०८ राजा अमरसिंहजी बहादुर हैं। आप मेयो कालेज अजमेर में शिक्षा पा रहे हैं। आपके ट्यूटर पं० विश्वेश्वरनाथ चौबे बी० ए० हैं। गत फा० शु० ८ को जयपुर में श्रीमान् का शुभ विवाह समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह से तीन दिन पहले ही महफिल और प्रीति-भोज आरम्भ हो गया था। विवाह में चौमू, उनियारा, खंडेला, उड़ीका, पदमगढ़, नवलगढ़, मीजगढ़, धूला, अलसीसर प्रभृति ठिकानों के अधीश्वर, शाहपुरा के राजाधिराज-कुमार एवं जयपुर के प्रधानामात्य माननीय नवाबबहादुर आदि गण्यमान्य सज्जन सम्मिलित हुए थे। निकासी (घुड़चढ़ी) के समय का दृश्य विशेष मनोहर एवं दर्शनीय था। वैवाहिक पोशाक धारण किये हुए श्रीमान् राजाजी साहब हाथी पर विराजमान थे। आगे आगे ताज़ीमी सरदारों और समागत सज्जनों का समूह चल रहा था। गाजे बाजे पूरे धमाके और आतिशबाजी की छटा के साथ चल कर यह जलूस आमेर की घाटी? चौपड़ का चक्कर काट कर यथा स्थान पहुँचा। इस मौके पर श्रीमान् रेजिडेन्ट साहब भी सम्मिलित पधारे थे। साथ में रेजिडेंसी के वकील पं० हरिनारायणजी बी० ए० थे। बरात पुरोहित पं० रामचन्द्रजी साहब के महल में ठहराई गई थी। वधू-पक्ष की ओर से श्रीमान् ठाकुर साहब मोखाड़ विशेष उत्साह दिखा रहे थे। विवाह की सब रस्में अदा होने पर बिदाई हुई। जितने मन्दिर रास्ते में आये, उनकी भेट पांच पांच रु० से की गई। और स्थानीय महाराज-विद्यालय, कन्यापाठशाला, [illegible] पाठशाला, ब्रह्मचर्याश्रम-विद्यालय आदि के सहायतार्थ पचास पचास रु० दिये गये एवं अजमेर की सावित्री-पाठशाला को १००) प्रदान किये गये।

विवाह की सारी व्यवस्था खेतड़ी राज्य के सुयोग्य मुसाहिब पं० [illegible]जी तिवाड़ी महोदय ने बड़ी उत्तमता से की। जिसके लिये उनकी व्यवस्था-निपुणता, कार्यदक्षता की प्रशंसा करनी पड़ती है। मुसाहिब साहब वयोवृद्ध हैं, अनुभववृद्ध हैं, केवल वयः नहीं, पूर्ण कर्त्तव्यपरायण भी हैं। उनके [illegible] कार्यकर्ताओं [illegible]

अखिलेश्वर का उपहास

(१)

(२)

(३)

(४)

किया अखिलेश्वर का उपहास।

लेडी हार्डिंज वार हास्पिटल बम्बई ।

इमारत का दर्शनीय पहलू ।

अस्पताल के डाक्टर और नर्सेस ।

जखमी लोगों का वार्ड ।

को भी अपना पराभव टालने के लिए तोपों की संख्या कुछ न कुछ बढ़ानी ही चाहिए। फ्रांस में यदि सेना बढ़ाई जायगी और तोपें बढ़ाई जायँगी तो फिर पूर्व की ओर जय प्राप्त करने के लिए सेना और तोपें बाकी कहां रहेंगी? नवीन तोपें बनाने और नवीन सेना खड़ी करने में इँगलैंड जर्मनी से बहुत आगे बढ़ गया है; और सिर्फ तोपों की संख्या अथवा सेना की संख्या देख कर ही यदि महायुद्ध के जय-पराजय का निर्णय करना हो तो आज ही यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि जर्मनी पराजित हो गया। परन्तु केवल संख्या पर ही जय-पराजय अवलम्बित नहीं रहता। सैन्य संचालन करने की युक्ति चाहिए। संख्या जब बहुत ही अधिक होती है तब युक्ति की भी कुछ नहीं चलती। एंग्लो-फ्रेंचों की संख्या इस समय जर्मनी से बहुत बड़ी है; पर इतनी बड़ी भी नहीं है कि युक्ति काम ही न दे सके। और जान पड़ता है कि जर्मनी ने अपनी पनडुब्बियों के अनियंत्रित संचार को इसी लिए आज्ञा भी दे रखी है कि जिससे १९१८ में भी इस संख्या को वैसा भयंकर स्वरूप प्राप्त न हो। सेनापति हिंडनबर्ग समझते हैं कि १९१७ में यह संख्या चाहे जितनी बड़ी रहे, तथापि युक्ति के बल पर हम एंग्लो-फ्रेंचों का कार्य विफल करेंगे; और रूस को ज़ेर करेंगे। यह युक्ति कौन सी है? फ्रांस में, एंग्लो फ्रेंचों की सेना और तोपों के हिसाब से, जितनी भी कम जर्मन सेना अटकाई जा सके उतनी ही अटकाना इस युक्ति का सार है। थोड़े लोगों पर ही अधिक काम निकाल लेने की यह युक्ति है। अच्छा अब यह देखना चाहिए कि इस दृष्टि से विचार करने पर मार्च मास की जर्मनों की पिछलाहट और एप्रिल मास के घनघोर संग्राम की संगति ठीक ठीक जमती है या नहीं। नकशे की ओर देखने से यह मालूम होगा कि सोम और एंकर नदियों के किनारे जर्मन चक्रव्यूह का जो पेट आगे आया था वह पेट मार्च मास में पीछे खींच लिया गया। इस योग से चक्रव्यूहों की लम्बाई कम हो गई, अर्थात् चक्रव्यूहों की रक्षा करने के लिए जितने लोग आवश्यक थे उनकी संख्या कम हो गई। यही नहीं हुआ, बल्कि आगे बढ़े हुए पेट का विध्वंस करने के लिए एंग्लो फ्रेंचों ने जो तोपों का बड़ा भारी जमाव, उचित जगह में मोर्चा बांध कर, किया था सो भी विफल हुआ। इधर जर्मनों ने पीछे हटते हुए सारा प्रदेश उध्वस्त कर के वृक्ष इत्यादि भी मैदान पर नहीं रहने दिये। इस कारण नवीन जगह में मोर्चा बना कर नवीन चक्रव्यूह पर निशाना लगा कर फिर तोपें खड़ी करने का काम कठिन होगया, तोपों के मोर्चे तैयार होने में, ऐसी दशा में, कम से कम दो तीन महीने अवश्य लगेंगे। शत्रु अब पहले के मोर्चों की मार के बाहर निकल गया। नवीन मोर्चे खुले मैदानों पर शत्रु की दृष्टि के सामने और शत्रु के तोपखाने की मार के भीतर बांधने चाहिएं। इस अड़चन के कारण सोमनदी के किनारे की तोपें दो तीन महीने के लिए बिलकुल बेकाम हो गईं। फ्रांस और बेलजियम की रणभूमि के साधारणतया तीन भाग किये जा सकते हैं। पहला भाग बेलजियम के किनारे से आरास तक, दूसरा भाग, जो पेट के समान आगे बढ़ा था, आरास से रीम्स तक और तीसरा रीम्स से स्विट्ज़रलैंड की हद तक का भाग। इन तीन भागों में से रीम्स से लेकर स्विट्ज़रलैंड की सीमा तक के भाग में गत वर्ष वर्डुन की बड़ी लड़ाई के लिए जर्मनी और फ्रांस की तोपें जमा हुई थीं। इस बार भी वे वहीं होनी चाहिए। इसके सिवा फ्रांस का मनुष्यबल इस बार गत वर्ष की अपेक्षा अधिक नहीं हुआ। फ्रांस के मनुष्यबल की चरम सीमा गत वर्ष हो चुकी। इस बार विलक्षण रीति से जो मनुष्यबल बढ़ा सो अँगरेजों का बढ़ा, फ्रांस का नहीं बढ़ा। इस बार विलक्षण वृद्धि जो तोपों की हुई सो भी अँगरेजों की, फ्रांस की नहीं। अतएव जर्मनी का सिर तोड़ने के लिए अँगरेजी सेना और अँगरेजी तोपखाना ही तयार हुआ है; फ्रांस की सेना और फ्रांस का तोपखाना नहीं। मुख्य काम अँगरेजों का [illegible] है, फ्रांस उसका मददगार है। गत वर्ष सोमनदी के किनारे की लड़ाई के समय अँगरेजों ने प्रथम [illegible] और फ्रांस ने [illegible] से मिले हुए उसके भाग में [illegible] मदद की। फ्रांस [illegible] कर सकता था, इस कारण इंगलैंड का [illegible] आगे बढ़ने पर उसी प्रकार, उसी मदद, [illegible] फ्रांस का [illegible] में अँगरेजों के हमले को मदद दी। फ्रांस का [illegible] बढ़ता, तत्काल अँगरेजों के आसपास का पेंच ढीला होता और तुरन्त ही अँगरेज चार कदम की एकदम छलांग भरते। इसी प्रकार गत वर्ष सोमनदी के किनारे की लड़ाई अन्योन्याश्रय से हुई। हाथ से हाथ मिला कर और कंधे से कंधा भिड़ा कर अँगरेज और फ्रेंच इस समय आगे बढ़े, पर इस बार चूंकि से० हिंडनबर्ग ने सोमनदी के किनारे का पेट अपनी पीठ से मिला लिया है, इस लिए सोम और अंकर नदियों के किनारे की रणभूमि दो तीन महीने घनघोर लड़ाई के योग्य नहीं रही; और इस कारण अँगरेज और फ्रेंचों की अन्योन्याश्रय की शृंखला भंग हो गई है। एक के हाथ का उपयोग दूसरे को तत्काल नहीं हो सकता। एक का आगे जाने का वेग दूसरे को भी आगे खींच ले आने में, सहज रीति से उपयोग में लाना, असम्भव हो गया। प्रत्यक्ष सम्बन्ध से आप ही आप मिलनेवाले फायदे नष्ट हो गये। इस प्रकार से० हिंडनबर्ग ने फ्रांस की सेना को अँगरेजी सेना से अलग कर दिया। सोमनदी के किनारे का अँगरेजों का बड़ा तोपखाना कुछ काल तक के लिए विफल हो गया और एंग्लो फ्रेंचों की शृंखला टूट गई-यही दो लाभ, सोमनदी पर इस समय पीछे हटने से जर्मनी को नहीं हुए; किन्तु एक तीसरा लाभ भी उसे हुआ। वह इस प्रकार-अर्थात् जर्मनी मार्च में ही यह निश्चित कर सका कि बेलजियम के किनारे से सोमनदी तक के भागों में से आरास से सोम नदी तक वास्तविक युद्ध न होते हुए आरास के आस पास चालीस पचास मील तक ही घनघोर युद्ध, एप्रिल की अँगरेजों की चढ़ाई के समय होगा। बेलजियम के रणक्षेत्रों में से बहुत सा भाग, अर्थात् इप्रेस से किनारे तक का भाग, समुद्र के बांध तोड़ कर पानी में डुबा दिया गया है। दोनों दल वहां पानी की तटबन्दी के भीतर खड़े हैं। ऐसी दशा में वह मैदान तोपों की जंगी चढ़ाई के लिए अयोग्य है। इस लिए शेष रहा हुआ इप्रेस से आरास तक का भाग ही अँगरेजों की चढ़ाई के योग्य है। इसी मैदान में एप्रिल महीने में अँगरेजों की जंगी चढ़ाई का प्रारम्भ हुआ। आरास के उत्तर की ओर चालीस पचास मील के बीच में ही एप्रिल को तोपों का [illegible] हो गई; और फिर चार पांच दिन के बाद अँगरेजी सेना ने हमले करने शुरू किये। सम्पूर्ण एप्रिल महीने भर सारी तोपें बराबर उड़ रही थीं; और अँगरेजी सेना जान पर खेल कर अत्यन्त वेग से युद्ध कर रही थी। एक महीना बराबर ऐसा तुमुल युद्ध होता रहा कि इस युद्ध ने वर्डुन के युद्ध को भी पीछे हटा दिया। [illegible] के [illegible] और [illegible] प्रान्त में [illegible] पराकाष्ठा कर दी। [illegible] "न भूतो न भविष्यति" इस प्रकार लड़ाई बराबर होती रही। महायुद्ध के पौने तीन वर्ष के इतिहास में इतने बड़े तोपों के [illegible] हाथ के [illegible] और [illegible] बराबर लड़ते रहने का और इतने [illegible] तोपों के शत्रु के सामने [illegible] लड़ते रहने का और कोई उदाहरण नहीं मिलता। एप्रिल महीने का यह युद्ध संसार के इतिहास में अत्यन्त भयंकर युद्ध बतलाया गया है। मई मास के प्रारम्भ में यह युद्ध कुछ ठंडा हुआ; परन्तु तुरन्त ही मई के दूसरे सप्ताह में फिर इसका उभाड़ हुआ है। [illegible] ही मई मास [illegible] यह युद्ध ऐसा ही चलता रहेगा, पर [illegible] है कि इस का मुख्य भाग एप्रिल में समाप्त हो चुका है। एप्रिल की लड़ाई में अँगरेजों ने बारह हजार जर्मन कैद किये हैं, और [illegible] भी [illegible] प्राप्त की हैं। फ्रेंचों ने भी इसी प्रकार जर्मनों से कुछ [illegible] और बहुत सी तोपें प्राप्त की हैं। इसके सिवाय अँगरेज और फ्रेंच [illegible] आगे [illegible] भी सके हैं। [illegible]

भारतीय सिपाही और आधुनिक शास्त्रीय साधन।

टैग्रिस नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर [illegible] की सहायता से सन्देश भेजने का काम एक भारतीय सिपाही कर रहा है।

भावनगरनरेश का सिंह का शिकार।
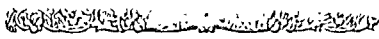
सम्पादकीय समालोचन।

१—क्या इन कालेजों की अब भी आवश्यकता है?

हम देखते हैं कि एक ओर तो वर्तमान शिक्षाप्रणाली की चारों ओर निन्दा हो रही है, और दूसरी ओर इसी शिक्षाप्रणाली के पोषक कालेज और स्कूल दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। और हमारे ही लोग लाखों रुपये इस कार्य में दे रहे हैं। यह हम मानते हैं कि शिक्षा-प्रचार की हमारे देश में बड़ी जरूरत है; और जितनी भी शिक्षण-संस्थाएं नवीन नवीन खुलें, सब थोड़ी हैं; परन्तु जिस प्रणाली की शिक्षण संस्थाएं सरासर निकम्मी सिद्ध हो रही हैं उन्हीं की संख्या बढ़ाते जाने से देश को क्या लाभ हो सकता है? बस यही परावलम्बी जीव इन कालेज और स्कूलों से तैयार होते रहेंगे जो अभी तक तैयार होते रहे हैं। परन्तु अब ऐसे प्राणियों की आवश्यकता भारतवर्ष को नहीं है—अब तो स्वावलम्बनशील पुरुष इसे चाहिए। ऐसी दशा में शिक्षण-संस्थाएं भी अब यहां ऐसी ही खुलनी चाहिएं कि जो स्वावलम्बन की शिक्षा दे सकें। दूसरे शब्दों में यही बात यों कही जा सकती है कि अब भारत को राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा वह है कि जो वैयक्तिक स्वार्थ के भाव को दूर करके देश के विद्यार्थियों—देश के भावी नागरिकों में—राष्ट्रीयता का भाव भरे, जो नवजवानों के अन्दर स्वदेशाभिमान की ज्योति जागृत करे। भारत में अब ऐसे ही विद्यालय और महाविद्यालय खुलने चाहिएं जो परमुखापेक्षी मनुष्य न तैयार करके अपने पैरों के बल खड़े होनेवाले नागरिक तैयार करें। ऐसे विद्यालय दो तीन प्रकार के हो सकते हैं। जैसे कृषि और वाणिज्य की शिक्षा देनेवाले विद्यालय; नवीन पश्चिमी ढंग से कारखाने खोल कर शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा देनेवाले विद्यालय, आधुनिक विज्ञान की सप्रयोग शिक्षा देनेवाले विद्यालय; आयुर्वेद और ओषधि-प्रयोग की शिक्षा देनेवाले विद्यालय; इसी भांति की शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता है। जिस विषय की शिक्षा दी जाय उस विषय के मूर्त साधन शिक्षणालय में होने चाहिएं—अर्थात् न सिर्फ शाब्दिक या पुस्तकी ज्ञान कराया जाय, किन्तु प्रयोग के साथ विषयों का ज्ञान कराया जावे, ताकि उन संस्थाओं के विद्यार्थी बाहर निकल कर देश की साम्पत्तिक दशा सुधारने में पूरा पूरा भाग ले सकें। इसके सिवाय, भिन्न भिन्न देशों की राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, साहित्यशास्त्र, इत्यादि विषयों का साधारण ज्ञान विद्यार्थियों को होना चाहिए; परन्तु जो कुछ उन्हें सिखाया जाय उसमें यह दृष्टि अवश्य रखनी चाहिए कि विद्यार्थी स्वदेशाभिमान और स्वावलम्बन का कर्तृत्वपूर्ण भाव ले कर विद्यालय से निकलें; आज कल की तरह स्वदेश के भाव से शून्य और "आध सेर आटे की परवरिश" चाहने वाले "योर्स मोस्ट ओबिडियेन्ट सर्वेंटों" की जरूरत अब भारतवर्ष को नहीं है। हमारे देशी शिक्षाप्रेमी भाई जो नवीन नवीन कालेज और स्कूल खोलने में अपनी शक्ति और द्रव्य का व्यय कर रहे हैं वही यदि प्रारम्भिक शिक्षा को अधिक तादाद में फैलाने में व्यय करें तो देश को अधिक लाभ पहुँच सकता है। अथवा प्रेम-महाविद्यालय के समान औद्योगिक शिक्षणालय खोलने में वह द्रव्य और शक्ति लगावें तो भी लाभ हो सकता है। कानपुर में दो नवीन कालेज खुल रहे हैं। एक थियासफीवालों की ओर से; और दूसरा आर्यसमाजवालों की तरफ से। आर्यसमाज तो पहले ही से राष्ट्रीय शिक्षा और स्वावलम्बनपूर्ण शिक्षा की आवाज उठाता रहा है; इधर कुछ दिनों से थियासफीवाले भी राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा की पुकार मचा रहे हैं; पिछले दिनों थियासफी के एक स्तम्भ मि० अरुंडेल ने बड़े जोर शोर से राष्ट्रीय शिक्षा पर व्याख्यान दिये थे। परन्तु कार्य दोनों ही का राष्ट्रीय शिक्षा के विरुद्ध दिखाई दे रहा है।

२—हिन्दी-साहित्य की वर्तमान गति।

हिन्दी साहित्य की वृद्धि इस समय बड़े वेग के साथ हो रही है। कुछ वर्ष पहले के हिन्दी-साहित्य की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तब हमें देख पड़ता है कि वेंकटेश्वर प्रेस, खड्गविलास प्रेस, मुं० नवलकिशोर प्रेस, इत्यादि से कुछ हिन्दी की पुस्तकें निकलती रहती थीं, और काशी से बहुत से उपन्यास निकलते हुए दिखाई देते थे; पर इधर दस पन्द्रह वर्ष से साहित्य के भिन्न भिन्न विषयों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इतिहास, जीवनचरित, भ्रमण, विज्ञान, राजनीति, कला-कौशल, उद्योग, नाटक, उपन्यास, प्रहसन, कोश, व्याकरण, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इत्यादि अनेक अंग साहित्य के हैं। इन में से कई विषयों में हिन्दी साहित्य अब कुछ न कुछ उन्नति कर रहा है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी-साहित्य की वर्तमान गति सब प्रकार से सन्तोषजनक ही है। क्योंकि इस समय हिन्दी-साहित्य की सारी वृद्धि 'अनुवाद' पर ही निर्भर हो रही है। अनुवाद की ओर लोग इतने झुके हुए हैं कि बहुधा एक ही एक पुस्तक के अनुवाद दो दो जगहों से निकल आते हैं। लेखक और प्रकाशक या साहित्य का गम्भीरता के साथ परिशीलन नहीं करते; कई लेखक और प्रकाशक टके सीधे करने के लिए ही पुस्तक का प्रकाशन करते रहते हैं। परन्तु ऐसी पुस्तकों से साहित्य का कुछ भी गौरव नहीं होता। सच तो यह है कि हिन्दी में अभी चिन्ताशील मौलिक लेखक उत्पन्न ही नहीं हुए हैं। इस विषय में पंजाबी हिन्दी लेखकों की हम प्रशंसा करेंगे कि वे लोग जितना कुछ लिखते हैं, अनुवाद ही नहीं करते। गुरुकुल कांगड़ी के कई अध्यापकों ने कुछ विषयों का परिशीलन कर के मौलिक ग्रन्थ लिखने की ... की है। परन्तु जैसा कि हम अन्य भाषाओं के लेखकों को दे... है कि वे अपने एक मनोनीत विषय को लेकर ही उस पर अ... सारी प्रतिभा खर्च करके लेखन-व्यवसाय जारी रखते हैं, ... अभी तक हिन्दी में नहीं देखा गया। उदाहरणार्थ मराठी लेखकों को लीजिए—पं० हरि नारायण आपटे का विषय है ऐ... हासिक और सामाजिक उपन्यास लिखना; पं० कृष्णाजी प्रभा... खाडिलकर आज कल नाटक लिखने में प्रसिद्ध हो रहे हैं; श्री वासुदेव गोविन्द आपटे ने बालकोपयोगी साहित्य अपने लिए ... लिया है; सरदेसाई, राजवाड़े, पारसनीस, खरेशास्त्री, तथा ... लेखक ऐतिहासिक हैं; नाना पावगी ने भारत की प्राचीन सभ्य... और कि... पर जो अमूल्य साहित्य तैयार किया है वैसा साहित्य ... भाषा में नहीं मिल सकता। इसी प्रकार बंगाली लेखकों के ... उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिन का अपना अपना कोई वि... है; और उन्हों ने उसी विषय पर अमूल्य ग्रन्थ रचना करके अ... साहित्य का गौरव बढ़ाया है। हम अनेक बार यह प्रकट ... चुके हैं कि जब तक हमारे हिन्दी बोलनेवाले ऊंचे मार्तण्ड ... महाशय, अपने स्वार्थ के लिए धन कमाने में ही अपनी ... विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता खर्च करते रहेंगे; तथा अपने साहित्य ... ओर कुछ भी ध्यान न देंगे—तब तक हिन्दी साहित्य की यह शिथि... यत दूर नहीं हो सकती।

३—गावों में स्वराज्य का आन्दोलन।

भारतवर्ष के बड़े बड़े नगरों में स्वराज्य की चर्चा इस समय ... रही है। कहीं स्वराज्यसंघों के सभासद बनाये जा रहे हैं तो कहीं ... स्वराज्यविषयक अधिकारों को दिखलानेवाली पुस्तिकाओं ... प्रचार किया जा रहा है। कहीं स्वराज्य विषय पर व्याख्यान दि... जा रहे हैं तो कहीं जिलासभाओं के द्वारा स्वराज्य की मांग प्र... की जा रही है, परन्तु भारतवर्ष के विस्तार और जनसंख्या की ...
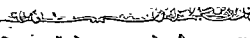
हुए, यह जो आन्दोलन हो रहा है, बहुत ही संकुचित स्थल में हो रहा है। मुख्य मुख्य और बड़े बड़े नगरों को छोड़ कर छोटे छोटे नगरों और कस्बों तक में अभी स्वराज्य की आवाज बिलकुल ही नहीं पहुँची है; और देहात के लोगों को तो इस विषय में कुछ भी मालूम नहीं है। गावों के किसान, रईस और जमींदार, जो देश के मुख्य अंग हैं, उनको अपने राजकीय अधिकारों के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसका कारण क्या है? यही कि उनमें एक तो शिक्षा का प्रचार नहीं है; और दूसरे हमारे सुशिक्षित लोगों से उनका ३६ छत्तीस के आंकड़े का सा सम्बन्ध है। शिक्षित और नेता लोग सिर्फ बड़े बड़े नगरों में रह कर अपनी धुआंधार स्पीचें सुशिक्षितों के सन्मुख ही उड़ाया करते हैं, परन्तु गावों और कस्बों में जा कर अज्ञान लोगों को कुछ उपदेश करने में मानों वे अपनी हतक सी समझते हैं। परन्तु यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि जब तक हमारे सुशिक्षित और नेता लोग सर्व साधारण जनता में ही अपने अस्तित्व को नहीं मिला देंगे तब तक देश में जागृति उत्पन्न होना आकाश-कुसुमवत् है। हम देखते हैं कि जब कभी किसी गाँव में कोई सुशिक्षित सफेदपोश "बाबू" निकलता है तब वह गाँव के बिचारे किसानों से अपने को एक बहुत ऊंचा समझने का अभिमान रखता है तथा उनको नीची नज़र से देखता है; ऐसी दशा में उन बिचारे देहातियों के लिए भी यह चश्माधारी बाबू यदि एक "विलक्षण जन्तु" सा जान पड़ता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सर्व साधारण जनता और सुशिक्षित श्रेणी का यह अलगाव देश के लिए बहुत ही हानिकारक है। इस विषय में हमारे नेताओं को महात्मा गान्धी का अनुकरण करना चाहिए। महात्माजी आज कल बिहार प्रान्त के गावों में निलहे गोरों के अत्याचार के विषय में जांच करते हुए घूम रहे हैं; और वहां की अशिक्षित तथा भोली भाली अज्ञान जनता में उसके अधिकारों के विषय में जागृति उत्पन्न कर रहे हैं। इधर महात्मा तिलक भी अभी हाल में बेलगाँव जिला की परिषद्, जो कि चिकोड़ी गाँव में हुई थी, उसमें शामिल होते हुए कुछ गावों में गये थे; और वहां अपने उपदेश से लोगों में जागृति उत्पन्न की थी। क्या देश के भिन्न भिन्न नगरों के नेता-गण देहातों में जा कर इन बेचारे किसानों और देहातियों को कृतार्थ न करेंगे? ये लोग देवता की तरह नेताओं की पूजा करते हैं; और सिर्फ इसी भाव में आ कर आनन्द मानते हैं कि हमारा भी कोई वाली हमारे देश में है। अपने एक सुशिक्षित भाई को —ने में देख कर उनके नेत्र जुड़ा जाते हैं! परन्तु खेद तो यही है हमारे अधिकांश नेताओं ने देश के लिए अपने को पूर्णतया —र्पित नहीं किया है। डाक्टरी, विकालत, बैरिस्टरी, इत्यादि —उनके व्यवसायों से उन्हें छुट्टी कहां है जो वे देहात में दौड़ा करें। —भी गर्मियों में ठंडे बंगलों में आरामकुर्सी पर लेटे हुए भी तो —हें चैन नहीं आती! ऐसे आरामतलब लोग इस भारत देश के —द्धार के लिए कहां तक योग्य हैं सो पाठकों को सोचना चाहिए। —रत को तो महात्मा गान्धी के समान कष्टसहिष्णु नेता चाहिए, —जिन्होंने कि स्वदेश के लिए अपने सारे सुखों को तिलांजलि दे दी —। अस्तु। देहातों में स्वराज्य के आन्दोलन की कुछ कुछ आवाज —पहुँचाने के लिए दक्षिण तथा सी० पी० और बरार के नेताओं ने —एक अच्छी युक्ति निकाली है; और वह युक्ति यही है कि वे लोग —अपना-परिषद् जिले के मुख्य नगर में न कर के देहात के किसी केन्द्री-—भूत कस्बे में करने लगे हैं, जहां कि जिले के देहातों के लोग सहज —में आ सकते हैं। भारत के सम्पूर्ण भागों के नेता लोग यदि इसी —युक्ति से काम लेवें तो देहाती लोगों में स्वराज्य की थोड़ी बहुत चर्चा —हो सकती है। इसके सिवाय हमारे कालेज और स्कूलों में पढ़नेवाले —नवयुवक विद्यार्थी भी, जो कि आज कल छुट्टी पर हैं, यदि चाहें तो —देहातियों को अक्षर सिखाने, उनको समाचारपत्र पढ़ कर सुनाने, —तथा स्वराज्य के आन्दोलन पत्रों तथा पुस्तिकाओं के प्रचार करने —का कार्य कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कष्टसहिष्णुता और —स्वार्थत्याग के साथ सब ओर से कार्य होने की आवश्यकता है।

४—दान और 'धर्मादाय'।

दान करने में भारतवर्ष प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध है। अब भी लाखों रुपया प्रति वर्ष इस देश में दान होता है। बड़े बड़े व्यापारियों के यहां "धर्मादाय" नाम का एक खाता ही खुला होता है। परन्तु दान की जो प्रणाली पहले एक बार पड़ चुकी है अधिकांश में वही अब तक चली आती है। सुशिक्षित लोगों ने अवश्य कुछ सुधार उस दानप्रणाली में किया है; परन्तु सुशिक्षित लोग दान देते ही बहुत कम हैं; उनको अपने ही खर्चों से बचत नहीं होती; दान कहां से दें? दान देनेवाले भाविक धनाढ्य अशिक्षित हैं; और वे लोग अभी तक पुरानी प्रणाली को छोड़ने के लिए तैयार नहीं। इन लोगों के यहां से अब भी यद्यपि दान बहुत होता है; परन्तु उसमें देशकालपात्र का कुछ भी विचार नहीं रहता। और इसी कारण उनके दान से विशेषतः देश का कुछ भी उपकार न होकर, इसके विरुद्ध अपकार ही होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि जो दान दिया जाय, बदला पाने की इच्छा से न दिया जाय, निष्काम दान दिया जाय, और दान देते समय देशकालपात्र का विचार रखा जाय। देश की दशा क्या है, उसकी आवश्यकता क्या है, काल कैसा वर्तमान है; ऐसे काल में कैसा दान उचित होगा; और जिस पात्र को दान दिया जाता है वह उस दान का उपयोग कैसा करेगा; वह जो उपयोग करेगा उससे केवल उसी का पिंडपोषण होगा, अथवा देश के अन्य लोगों को भी उस उपयोग से कोई लाभ होगा, इत्यादि अनेक बातों का विचार दान देते समय दाता को करना चाहिए। खेद है कि हमारे देश के धनी-मानी, सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा, दान करते समय इन बातों का बहुत कम, या बिलकुल विचार नहीं करते। इस समय देश में ऐसे दान की जरूरत है कि जिससे देश में शिक्षा का प्रचार हो, देश की औद्योगिक शक्ति बढ़े। महाराष्ट्र में पैसाफंडनामक एक संस्था है; जिसमें एक एक पैसा एकत्र कर के करीब एक लाख की पूंजी एकत्र की गई; इसके द्वारा एक कांच का कारखाना खोला गया; इस कारखाने में यद्यपि अब तक घाटा ही रहा है—यहां तक कि अब पूंजी भी घट कर आधी ही के लगभग रह गई है, तथापि इस कारखाने में सैकड़ों लोगों को काम मिला है; और बीसियों लोगों ने कांच की वस्तुएं बनाने की जानकारी प्राप्त की है। ऐसी औद्योगिक संस्थाएं यदि दान के धन से खोली जाया करें तो देश को बहुत लाभ हो सकता है। कलाकौशल के छोटे *छोटे सार्वजनिक कार्य* भी थोड़ी पूंजी से जगह जगह खोले जा सकते हैं। सब से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जो धनसम्पन्न सेठसाहूकार समय समय पर दान दिया करते हैं उनके पास जा कर निस्पृह साधु उनको दान का सच्चा मार्ग बतलाया करें और उनकी पुरानी प्रवृत्ति को बदल कर देश-कालपात्रानुसार दान देने की ओर उनको प्रेरित करें। बम्बई में श्रीमान् स्वामी सच्चिदानन्द नामक एक सन्यासी इस विषय में प्रयत्न कर रहे हैं। जगह जगह ऐसे प्रयत्न होने चाहिएं।

५—आर्यकन्यापाठशाला प्रयाग।

उत्तर भारत में आर्यसमाज की ओर से शिक्षाप्रचार का जो कार्य हो रहा है उसमें स्त्रीशिक्षा का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उत्तर भारत में आर्यसमाज ही की ओर से नहीं, किन्तु जितनी भी निजी कन्यापाठशालाएं हैं उनमें प्रयाग की आर्यकन्यापाठशाला स्त्रीशिक्षा के प्रचार में अनुपम भाग ले रही है। इसमें कोई ३०० के लगभग कन्याएं शिक्षा प्राप्त कर रही हैं; और वर्नाक्युलर फाइनल परीक्षा तक पढ़ाई होती है। प्रति वर्ष कई लड़कियां हिन्दी मिडिल पास कर के इस पाठशाला से निकलती हैं। इसमें अध्यापिकाएं बहुत ही सुयोग्य चुन कर रखी गई हैं। मुख्याध्यापिका श्रीमती यशोदा-देवी जी प्रौढ़ गम्भीर और एक सुयोग्य अध्यापिका हैं। द्वितीय अध्यापिका श्रीमती कुंदनदेवी जी भी इसी पाठशाला से मिडिल पास कर के फिर लखनऊ से नार्मल पास किया है। गत वर्ष इन दोनों देवियों ने साहित्यसम्मेलन की प्रथमा परीक्षा बड़ी योग्यता से पास की है। सब अध्यापिकाओं के सुयोग्य होने से इस पाठशाला की पढ़ाई भी बहुत ही उत्तम है। मनोरंजक और हर्षदायक अभ्या-सात्मक खेल, शारीरिक व्यायाम अर्थात् ड्रिल के खेल, हाथ का काम, गायन, प्रार्थना, संध्या, इत्यादि और भी कई बातों की शिक्षा लड़कियों की मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिए दी जाती है। ऊंचे दर्जे की लड़कियों के लिए साहित्यसम्मेलन की परीक्षाओं के कोर्स की भी पढ़ाई का प्रबन्ध इस पाठशाला में है। सर गुरुदास बाबू के समान उच्च शिक्षाधिकारी महानुभावों ने इस

पाठशाला का निरीक्षण कर के इसकी प्रशंसा की है और कहा है कि ऐसी सुप्रबन्धपूर्ण पाठशालाएं कलकत्ते में भी नहीं पाई जातीं। इसके प्रबन्धकर्त्ताओं में बा० लक्ष्मीनारायण जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि जो तनमनधन से इसका प्रबन्ध करने में अपना बहुत सा समय और शक्ति व्यय करते हैं। म्युनिसिपैलिटी की ओर से इसको अभी तक ६०) मासिक सहायता मिलती थी; पर अब सुना गया है कि जहांगीराबादी प्रस्ताव के कारण प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी में मुसल्मानों की अधिकता हो जाने से सब हिन्दू संस्थाओं की सहायता बन्द की जा रही है; और इस खर्च की बचत से किसी मुसल्मान संस्था के चलाने में सहायता दी जायगी। यदि यह बात सच है तो अनर्थ की बात है। यु० पी० और विशेष कर प्रयाग के हिन्दू नेताओं को इस विषय में घोर आन्दोलन

करना चाहिए। अस्तु। हमें [illegible]
सहायता बन्द भी कर दी तो उ[illegible]
के खर्च में किसी प्रकार की [illegible]
आर्यकन्यापाठशाला सब प्रका[illegible]
द्रव्यद्वारा इसकी सहायता क[illegible]
चाहिए। वास्तव में ऐसी [illegible]
पात्रानुसार दान देना है। प्रय[illegible]
के तनमनधन से इस पाठशा[illegible]
सब प्रकार से उत्साह बढ़ा[illegible]
कानपुर से पूने आते समय हम[illegible]
के साथ इस पाठशाला का नि[illegible]
अध्यापिकाओं की सज्जनता [illegible]
सुप्रबन्ध देख कर प्रसन्नता प्राप्त[illegible]

साहित्यचर्चा।

१ स्वराज्य—लेखक प्रो० बालकृष्ण एम० ए०, प्रकाशक श्रीयुत के० सी० भल्ला, स्टारप्रेस, प्रयाग। मूल्य १।) यह बड़े आनन्द की बात है कि अब हमें प्रतिमास किसी न किसी महत्वपूर्ण राजनैतिक पुस्तक के विषय में चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। इस "स्वराज्य" नामक पुस्तक में संसार के बड़े बड़े राष्ट्रों की राज्यप्रणाली संक्षिप्त रूप से, परन्तु खुलासेवार, दी हुई है। आज कल, जब कि भारत में, स्वराज्यस्थापन की चर्चा चल रही है, इस पुस्तक से हिन्दी जाननेवालों को यह भली भांति मालूम हो जायगा कि जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड, जापान, अमेरिका, इत्यादि उन्नतिशील राष्ट्रों में किस किस प्रणाली से राज्यशासन किया जाता है। यह पुस्तक हिन्दी के राजनैतिक साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान पाने योग्य है। प्रो० बालकृष्ण जी ने स्वतंत्र रीति से अनेक ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है। हिन्दीप्रेमियों को इस पुस्तक का प्रचार कर के आप के परिश्रम को सफल करना चाहिए।

२ जनरल जार्ज वाशिंगटन—लेखक पं० रामप्रसाद जी त्रिपाठी एम० ए०, प्रकाशक बाबू मनोहरदास प्रोप्राइटर शारदा बुकडिपो, कालभैरव, काशी। मूल्य सजिल्द १) अजिल्द ॥) अमेरिका को दासत्वपंक से छुड़ा कर स्वातंत्र्यसुख दिखानेवाले इस महावीर देशभक्त का नाम कौन नहीं जानता? इसका जीवनचरित पढ़ने से साहस, कष्टसहिष्णुता, वीरता, देशभक्ति, स्वातंत्र्यप्रियता, इत्यादि अनेक बातों का आदर्श सामने खड़ा होता है।

३ [illegible] में [illegible]—प्रकाशक भारत-सेवकसमिति ६ बैंक रोड, प्रयाग। मूल्य ।)। स्वराज्य के प्रस्ताव पर भिन्न भिन्न नेताओं की जो वक्तृताएं इस कांग्रेस में हुईं उन्हीं का संग्रह है। देशदशा और स्वराज्य की मांग के विषय में भिन्न भिन्न देशभक्तों के विचार जानने का अच्छा साधन है।

४ सर्विया का इतिहास—लेखक श्रीमान् राजराना भवानीसिंह जी बहादुर झालावाड़नरेश। प्रकाशक श्रीयुत मंत्री राजपुताना हिन्दी-साहित्यसभा झालरापाटन। मूल्य ।-)। सर्विया के इतिहास पर कुछ राजा साहब ने जो व्याख्यान दिया उसीको पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। सर्विया के समान छोटे राष्ट्र का यह छोटासा इतिहास हिन्दी में प्रकाशित होना बड़े आनन्द की बात है। राजासाहब की विवेचनशैली स्पष्ट और आलोचनात्मक होने से पुस्तक के पढ़ने में पूरा ऐतिहासिक आनन्द आता है, राजासाहब की विद्या-

[illegible] व्यास बहार कार्यालय, काश[illegible]
ग्रन्थमाला की १४ वीं संख्या[illegible]
होते हैं सो हिन्दी-प्रेमियों को [illegible]
आपके प्रायः सभी उपन्यासों [illegible]
यह 'सीताराम' उपन्यास [illegible]
नाओं से पूर्ण है। ॥) प्रवेशफी[illegible]
को इस माला के सब उपन्यास[illegible]

६ सुमतिकुमतिमोहअधकारनाटक—[illegible]
स० पं० द्वारकादास। मिलने[illegible]
पेंड कम्पनी शिकोहाबाद। [illegible]
प्रद है।

७ 'विद्यार्थी' का विशेषांक—[illegible]
का चैत्र का अंक विशेष उपयो[illegible]
भारतीय आत्मा, पं० अयोध्या[illegible]
ए०, प्रो० महेशचरणसिंह, पं०[illegible]
गुरु, इत्यादि अनेक गद्यपद्यले[illegible]
निकले हैं। "उन्नति का मू[illegible]
भी उपहार में दी गई है। [illegible]
और विशेष कर विद्यार्थीसम[illegible]
वार्षिक मूल्य २) और मिलने [illegible]

८ 'हिन्दीसमाचार' का विशेषांक[illegible]
चनापूर्ण लेख निकले हैं। [illegible]
समाचारपत्र दिल्ली राजधानी [illegible]
न होने से इसके बन्द होने की[illegible]
तथा संचालन एक कमेटी के [illegible]
बन्द नहीं हो सकता, तथापि[illegible]
भी बढ़ने ही चाहिए। "हम [illegible]
राजधानी के इस एकमात्र [illegible]
त्रुटि न करेंगे।

९ पं० [illegible] की और तीन पु[illegible]
इनमें से पहिली है मूल्य डाई [illegible]
जी के स्फुट पद्यों का संग्रह [illegible]
[illegible]—दुर्गासप्तशती भाषा [illegible]
कर्त्ता का चित्र भी है। मूल्य [illegible]

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो! तेजस्विता दीजिए। देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से॥

भाग ७] वैशाख, सं० १९७४ वि०—मई, स० १९१७ ई० [संख्या ५

कला।

(लेखक—श्रीयुत गुलाबराय जी एम्० ए०।)

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥

—भर्तृहरि।

संसार में बहुत सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनको कृतबुद्धि लोग निरर्थक समझा करते हैं। बहुत से लोगों की समझ में नहीं आता कि समाज को बड़े बड़े मन्दिरों से क्या लाभ है। ऐसे लोग किसी वस्तु को सुन्दर बनाने के लिये विशेष धन व्यय नहीं करना चाहते। हर्बर्ट स्पेन्सर साहिब ने तो सौन्दर्य का आधार उपयोगिता ही में निश्चय किया है। उन्हीं महानुभाव का यह भी कथन है कि हमारे स्कूल और कालिजों में प्राचीन साहित्य के पढ़ने और पढ़ाने में जो परिश्रम किया जाता है वह निष्प्रयोजन है। वह लोग सुन्दरता की ओर नहीं जाते, उपयोगिता ही इनका परम लक्ष्य है। किसी वस्तु के ऊपर फूल पत्ती अंकित कर देने से उसमें चिरस्थायित्व नहीं आजाता। "शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे" इसके स्थान में "नीरस तरुवर विलसत्यग्रे" कह देने से वृक्ष हरा नहीं हो जाता। ऐसे लोगों की दृष्टि में कवि लोग पागल नहीं, तो भंड अवश्य ही हैं।

संसार में ऐसे विचारवाले लोगों के वर्तमान होते हुए भी समाज में असंख्य धन इन्हीं निरर्थक बातों पर व्यय किया जाता है। एक एक चित्र के ऊपर दस दस हज़ार रुपये पारितोषिक दिया गया है। राजा लोगों ने कवियों की पालकी के नीचे कंधा लगाया है। एक एक शेर के ऊपर एक एक अशर्फी इनाम दी गई है। एक एक नाटक के अभिनय में लाखों रुपया खर्च कर दिया जाता है। किसी किसी मकान के सजाने में बीस बीस हज़ार रुपया खर्च किया जाता है। कवि लोग एक एक समस्या की पूर्ति में बिना सोचे हुए हाथी दिला देते हैं। क्या यह सब व्यय वास्तव में निरर्थक है। यदि ऐसा है तो जितना ही शीघ्र समाज की इस उन्मत्तता का अन्त कर दिया जावे उतना ही अच्छा है। नहीं, यह कलाकौशलविषयक प्रेम लोगों की उन्मत्तता अथवा प्रयोजनशून्य नहीं है। यह सब चीज़ें हमारे जीवन को सरस बनाती हैं। इनके बिना हम पुच्छविषाणहीन पशु ही हैं। यदि प्राचीन साहित्य की शिक्षा निष्फल है तो विज्ञान का भी अध्ययन शुष्क और नीरस है। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं। उपयोगिता के संकुचित आधार पर मनुष्यसमाज का संकीर्ण संगठन चिरकाल तक स्थापित नहीं रह सकता। मनुष्यसमाज की स्थिति भावों की दृढ़ता में है, न कि वैज्ञानिक विचारों के विकास में। विज्ञान हमको अपने जीवन के निर्वाह करने में सुलभता होती है। किन्तु यदि हमारा जीवन भावशून्य है तो ऐसे जीवन ही से क्या लाभ? इस जीवन को भावपूर्ण और सरस बनाने ही के अर्थ संसार में कलाओं की स्थिति है।

कलाएं अनेक हैं। कहीं सात कलाएं मानी गई हैं, कहीं चौदह और कहीं चौंसठ। क्या यह सब कलाएं किसी एक सूत्र में बांधी जा सकती हैं? विद्वानों ने 'कला' की कई प्रकार से परिभाषा की है। कोई कोई लोग कहते हैं कि संसार में सौन्दर्य उत्पादन करने के अर्थ जो जो क्रियाएं की जाती हैं वह सब कला के नाम से पुकारी जा सकती हैं। विकासवादी विद्वानों का मत है कि काम और क्रीड़ा की इच्छा को तृप्त करने के अर्थ जो क्रियाएं की जाती हैं उनको हम कला कह सकते हैं। कई पंडितों का मत है कि प्रसन्नता अथवा हर्ष उत्पादन के अर्थ जो क्रियाएं की जाती हैं वही कला हैं। कोई यह भी कहते हैं कि कला का कार्य प्रकृति की प्रतिलिपि बनाना है। इसी प्रकार कलाओं की अनेकानेक परिभाषाएं हैं। किन्तु सब ही, अव्याप्ति, अतिव्याप्ति आदि दोषों से पूर्ण हैं। पहिली परिभाषा में बहुत कुछ सत्य का अंश है। किन्तु सौन्दर्य के विषय में लोगों का विशेष मतभेद होने के कारण यह परिभाषा अस्पष्ट है। इसी कारण यह दूषित ठहराई गई है।

इस चक्कर में न पड़ कर यदि हम कला के प्रयोजन की ओर ध्यान दें तो शायद हम कोई ठीक परिभाषा निश्चित कर सकें। ऊपर कहा गया है कि जीवन को सरस एवं भावपूर्ण बना कर समाज की संस्थिति को सुदृढ़ बनाने के अर्थ ही संसार में कलाओं की स्थिति है। कौनसी वस्तु जीवन को सरस और भावपूर्ण बना सकती है? वही वस्तु हमारे जीवन को सरस और भावपूर्ण बना सकती है जिसका उदय रस में हो और जिसका परिणाम भी रस में हो। जिस प्रकार कलाएं भावों की कार्यरूपा हैं उसी प्रकार वे भावों की कारणरूपिणी हैं। जिस कविता का उदय करुणापूर्ण हृदय से हुआ है वह कविता पाठकों के भी हृदय में उसी भाव की स्थापना करेगी। ऐसी ही कविताओं के विषय में कहा जाता है कि "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्"—फिर मनुष्यों का कहना ही क्या? कला ही भावों की भाषा है। इसी का विकास अथवा भावों के आविष्करण को ही कला कहते हैं। "भावाभिव्यक्तिः कला"।

इसी परिभाषा से कलाओं की श्रेष्ठता की जांच हो सकती है। भावों के प्राबल्य एवं विषय की सुष्ठता के आधार पर ही कलाएं श्रेणीबद्ध की जा सकती हैं। अच्छी कला के लिये दोनों ही बातें आवश्यक हैं। विषय अच्छा होना चाहिये, किन्तु यदि भावों में शिथिलता है तो विषय के अच्छे होने से कुछ लाभ नहीं। महात्मा तुलसीदास के राम-चरित मानस की श्रेष्ठता इसी बात में है कि उस काव्य का विषय स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी हैं और महात्मा तुलसीदासजी भक्ति की साक्षात् मूर्ति हैं।

हमारा देश निर्धन है और कलाओं की स्थिति भावों की दृढ़ता के लिये परमावश्यक है। इसीलिये प्रत्येक भारतवासी का धर्म है कि इस बात को देखे कि हमारे देश में जिन कलाओं के ऊपर रुपया व्यय किया जाता है वह कहाँ तक हमारे संशोधन और दृढ़ता में योग दे सकती है। हमको यह भी देखना चाहिये कि जो कलाएं हमारे यहाँ वर्तमान हैं उनको कहाँ तक जातीय कह सकते हैं। जो कला जातीय नहीं वह हम सब लोगों के लाभ की नहीं हो सकती। कला भावनाओं के ही पोषण की वस्तु नहीं, वरन वह भावहीन पुरुषों में भी रसास्वादन करने के लिए उत्तेजन रखती है। जो कला सार्वजनिक नहीं वह कला की कोटि में आने योग्य नहीं। केवल अनुकरण करने को कला नहीं कहते। और न केवल प्रकाश डालना ही कला का मुख्य उद्देश्य है। कला में रचना भी होनी है। मर्यादता कला का प्रधान अंग है। कलाओं की उन्नति में ध्यान देना हमारा कर्तव्य है। किन्तु उसके साथ हमको अपनी विवेकबुद्धि को भी काम में लाना चाहिये। प्रत्येक कविता रचना का स्थान के योग्य नहीं, छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन कर देने से ही किसी को कवि की पदवी नहीं देना चाहिये। प्रत्येक नाटक खेलने योग्य नहीं और न प्रत्येक चित्र प्रशंसा योग्य है। सबहीं में त्रुटियाँ हैं। इन्हीं गुणदोषों को देख कर चित्र अथवा नाटक की प्रशंसा करना चाहिए। प्रशंसनीय वस्तु की निन्दा और निन्दनीय वस्तु की प्रशंसा करने से समाज की बड़ी हानि पहुँचती है। जो लोग अपनी विवेकबुद्धि को काम में नहीं लाते वह अवश्य इस हानि के लिये उत्तरदायी ठहराये जायेंगे।

मातृभाषा के द्वारा माध्यमिक शिक्षा देने की आवश्यकता।

लेखक—श्री॰ रामचन्द्र रघुनाथ सरंटे शिक्षा सदस्य हाईस्कूल, छिंदवाड़ा (म॰ प्र॰)।

(गतांक की पूर्ति)

इस अस्वाभाविक प्रणाली के कारण ही किताबों या बाज़ार भिन्न भिन्न विषय की फालतू मार्गदर्शक पुस्तकों से यानी Guides, keys and Notes से गर्म हो रहा है। अच्छी पुस्तकों की एक आवृत्ति का खप होने के लिए जहां दस किंवा बीस साल लगते हैं वहां ऐसी रद्दी पुस्तकों की बीस बीस तीस तीस आवृत्तियां हाथों हाथ बिक जाती हैं। पुस्तक के रचयिता महापुरुष भी निःशंकता से यह लिखते हैं कि "गत वर्ष अमुक अमुक परीक्षा में हमारी पुस्तक में दिये गये प्रश्न ही पूछे गये थे।" ऐसी अवस्था में विद्यार्थियों को रटन्त विद्या के सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं सूझ पड़ता। आज कल रटन्त विद्या के विरुद्ध चर्चा सुनाई पड़ती है। पर समालोचना करने वाले महाशय इसका सारा दोष शिक्षकों के सिर पर मढ़ कर मुक्त हो जाते हैं। उनका कहना यह है कि आज कल शिक्षक लोग बड़े आलसी होगये हैं। इसलिए कुछ पढ़ाते तो हैं ही नहीं, किन्तु बालकों से खूब रटाते हैं। परन्तु, ध्यान रहे कि शिक्षकों को मातृभाषा से बिलकुल ही जुदा ऐसी एक दूसरी ही भाषा के द्वारा शिक्षा देनी पड़ती है, जिससे विद्यार्थियों के द्वारा थोड़ा बहुत रटन्त विद्या का उपयोग कराना उनके लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि अपरिहार्य हो जाता है। कालेज उच्च शिक्षा की संस्था है, ऊपरी तौर से विचार करने पर यही मालूम होता है कि वहां घुटन्त देवी के उपासकों का एकदम अभाव होगा। पर यह समझ ग़लत है। वहां भी परभाषा अपनी प्रभुता बतलाती है। इस संस्था के कई विद्यार्थी भी विषय के मर्म को समझ लेने की अपेक्षा नोटर्स लेने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। परभाषा के द्वारा अध्ययन करना तथा कराना हम लोगों के स्वभाव का एक मुख्य विषय बन बैठा है। यही कारण है कि कई एकों को अभी तक इस बात की कल्पना तक नहीं होती कि ये बातें अस्वाभाविक हैं। अंग्रेजों में यह कल्पना होती है और समय आने पर वे उसे अपने व्याख्यानों में व्यक्त भी कर देते हैं। जब रेंगलर परांजपे केम्ब्रिज की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तब वहां के भारतीय विद्यार्थियों ने एक सभा करके उनका अभिनन्दन किया था। उस सभा में उस कालेज के मुख्य अध्यापक भी उपस्थित थे। उनमें से एक ने यह कहा था कि, "मैं समझता हूं कि रेंगलर परांजपे अपने सहपाठी की अपेक्षा अधिक योग्य हैं। क्योंकि उन्हें दूसरी भाषा में परीक्षा देनी थी। यदि उनके मार्ग में यह बाधा न होती तो वे अपने सहपाठी की अपेक्षा अधिक नंबर प्राप्त कर सकते थे।" टुक विचार करने पर ज्ञात होगा कि इस छोटे से कथन में बड़ा भारी अर्थ भरा पड़ा है।

४. स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने की सामर्थ्य का अभाव।

कई बार यह सुना गया है कि हमारी सुशिक्षित मंडली में से किसी भी विषय पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर उसमें नये आविष्कार करनेवाले विद्वान उत्पन्न ही नहीं होते। यह बात अधिकांश में सत्य भी है। परन्तु इस दशा का कारण क्या है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके और भी कई दूसरे कारण होंगे, पर हमारा तो यह ख़याल है कि आज कल की अस्वाभाविक शिक्षा-प्रणाली भी इसका एक ज़बरदस्त कारण है। हम ऊपर कह चुके हैं कि इस प्रणाली के कारण विषय के मूलतत्वों को समझना दुष्कर प्रतीत होता है। फिर मूलतत्वों का यथोचित रीति से मनन किये बिना किसी भी विषय में स्वतंत्रता पूर्वक विचार करना क्यों कर सम्भव हो सकता है? इस पर कोई कदाचित् यह आक्षेप करे कि कालेज में अंग्रेज़ी के द्वारा विषय को समझ लेने में कठिनाई नहीं पड़ती। परन्तु जिन्हें कालेज की अवस्था का अनुभव प्राप्त हो चुका है उन्हें यह बात स्वीकार करनी होगी कि वहां भी कुंजियों के सहारे विद्यार्थी परीक्षारूपी सागर पार करते हैं। विश्वविद्यालय के ज्यों ही भिन्न विषयों के परीक्षक निर्वाचित किये त्यों ही जिस विषय का जो परीक्षक होता है, उस अध्यापक की उस विषय पर लिखी गई मार्ग-दर्शक पुस्तकों की तलाश में विद्यार्थियों का बहुत सा समय व्यतीत होता है। इन मार्ग-दर्शक पुस्तकों के प्राप्त कर लेने पर उस विषय की पाठ्य पुस्तक से अध्ययन करने की किंवा विषय को सचमुच में अच्छी तरह से समझ लेने की इच्छा की अधिक परवा नहीं रहती। कई लोग डा॰ बोस, प्रो॰ राय अथवा परलोकवासी महात्मा रानडे की ओर अँगुली उठा कर शायद यह कहें कि अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा शिक्षा देने से हम लोगों में स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने वाले उत्पन्न ही नहीं होते-यह आक्षेप ही नितान्त निराधार है। इस पर हमारा कहना यह है कि कलकत्ता, बंबई और मद्रास के विश्वविद्यालयों को स्थापित हुए क़रीब पचास साल हो चुके हैं। इतनी अवधि में उपरोक्त महाशय-किंवा इने गिने दो चार और भी महाशयों के सिवाय—यदि अभी तक विशेष उल्लेखनीय महात्मा पैदा नहीं हुए तो हमें हमारा ही सिद्धांत सत्य जान पड़ता है। उपर्युक्त महाशयों में विशेष बुद्धिसामर्थ्य होने के कारण उन्होंने प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपने अपने विषयों में पूर्ण प्रवीणता सम्पादन कर समस्त संसार को अपनी अगाध निपुणता का परिचय दिया है। परन्तु विचार करने पर यही ज्ञात होगा कि दूसरों के मार्ग में परभाषा द्वारा शिक्षा दिया जाना ही बड़ी भारी बाधा है। ऊपर किये गये विवेचन से हमारा यह मतलब नहीं है कि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देने का प्रबंध होते ही हमारे देश में एकदम इंग्लैंड और जर्मनी के समान नये आविष्कारकर्ता उत्पन्न हो जायँगे। इन बातों के लिए दूसरे कई साधनों की अनुकूलता भी एक आवश्यक बात है। परन्तु यह निःसन्देह बिलकुल सच है कि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा प्राप्त होने से विद्यार्थी अपने विषय के मर्म को अच्छी तरह से समझ सकेंगे और उस विषय में स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने की शक्ति उनमें उत्पन्न होगी।

५. मिश्र भाषा बोलने की आदत।

प्रचलित प्रणाली का पांचवां दोष यह है कि हमें विद्यार्थी-दशा से ही खिचड़ी भाषा बोलने की आदत पड़ जाती है और यह हमारे जीवन के अन्त तक कायम रहती है। इस विषय पर कलम उठाने का जरा डर ही मालूम होता है। क्योंकि, सुशिक्षित कहलानेवालों में भी खिचड़ी भाषा बोलने की इतनी प्रथा चल पड़ी है कि उनमें कई लोगों को इस बात की कल्पना तक नहीं होती कि इस भाषा का व्यवहार करने से भविष्य में हमारी मातृभाषा का क्या हाल होगा। क्या हाईस्कूल के विद्यार्थी, क्या वकील, क्या डाक्टर, क्या अन्य धन्धे करने वालों में थोड़ी बहुत अंगरेजी जानने वाले—सभी जरा जरा से घरेलू कामों तक में बिना कुछ सोचे-समझे इस खिचड़ी भाषा का उपयोग किया करते हैं। एक दिन एक मित्र इस लेखक से वार्तालाप करते हुए बोले कि "हमारी वाइफ डिलीवरी के लिये गई है।" किसी बीमार मनुष्य के विषय में चर्चा करते हुए एक मनुष्य दूसरे से पूछता है कि "क्योंजी, क्या उसका टेंपरेचर आज नार्मल है?" खिचड़ी भाषा बोलने की आदत हम सब पढ़े लिखे लोगों की रगों रगों में भरी हुई है। एक बार एक मित्र से इस विषय पर बातचीत करते हुए इस बात की विचित्रता उसके ध्यान में जम गई और वह सहसा बोल उठा कि "बस, आज से प्यूर (Pure) हिन्दी ही बोलेंगे।" दूसरे ने जवाब दिया कि "लैंगवेज यानी आईडियाज़ एक्सप्रेस करने का साधन। फिर इस तरह की भाषा बोलने में हर्ज ही क्या है?" आज कल के कई पढ़े-लिखे लोग इसी मत के अवलम्बी मालूम होते हैं। यह दशा प्राप्त होने का कारण बिलकुल स्पष्ट है। माध्यमिक शिक्षा देते समय शुरू से आखिर तक--आदि से अन्त तक शिक्षक मिश्र-भाषा का उपयोग करते हैं और विद्यार्थी भी उसी प्रकार की भाषा में उत्तर देते हैं। जहाँ बिलकुल अंगरेजी में ही बोलना पड़ता है वहाँ केवल शुद्ध अंगरेजी का उपयोग किया जाता है। दूसरे समय--स्कूल में या घर पर--सभी ठौर विद्यार्थियों के कानों में यही खिचड़ी भाषा भिनभिनाया करती है। हम लोगों के यहां स्त्रियों में अभी तक अंगरेजी शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ है, इसलिए उनसे भाषण करते समय हमें शुद्ध हिन्दी में ही बोलना पड़ता है, किंवा उनका शुद्ध हिन्दी में भाषण श्रवण करना पड़ता है। परन्तु भाग्यवश दो चार क्लासें अंगरेजी पढ़ी हुई विदुषियों से वार्तालाप करने का अवसर आने पर शुद्ध हिन्दी में बोलने की अड़चन दूर हो जाती है और मिश्र भाषा का ही बेधड़क उपयोग होता है। आज कल स्त्रियों को भी पुरुषों के समान माध्यमिक शिक्षा दी जाने लगी है और वह भी अंगरेजी के द्वारा दी जाती है। जैसे जैसे इस शिक्षा का प्रचार अधिक होता जायगा वैसे वैसे स्त्रियों में भी मिश्रभाषा का फैलाव होगा और सदासर्वदा इस मिश्र भाषा को सुनते रहने से सुशिक्षित मां बाप के नन्हें नन्हें बच्चे भी शुद्ध हिन्दी बोलना छोड़ कर स्वभावतः इसी भाषा का स्वीकार करेंगे। हा शोक! क्या हमारी प्यारी मातृभाषा की इस तरह अधोगति हो? क्या वह आगे चलकर इस तरह मटियामेट हो जाय? क्या वह विपन्नावस्था के अन्धेरे कूप में अधःपतन पाकर दुख और निराशा की आहें भरा करे? हे भगवान्! वह दिन न देखना पड़े। प्यारे पाठको, सावधान हो जाओ! कमर कस लो! और अपना प्रथम कर्तव्य समझ कर इस बात पर अवश्य विचार करो! अन्यथा यहां एक ऐसी घटना हो जायगी जैसी आज तक पृथ्वी के पृष्ठ पर कहीं नहीं हुई है!

६. अंग्रेज़ी का अधिक महत्त्व मालूम होना।

प्रचलित प्रणाली के कारण सुशिक्षित लोगों को अंग्रेज़ी का आवश्यकता से अधिक महत्त्व मालूम होने लगता है और उनकी यह समझ हो जाती है कि जितनी जल्दी हमारा लड़का (किंवा लड़की भी) अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ कर दे उतना अच्छा ही है। चौदी कक्षा पूरी करते ही वह अंग्रेजी स्कूल में भरती कर दिया जाता है और उस समय से उसे अपनी मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी ही अधिक महत्वपूर्ण मालूम होने लगती है। अंग्रेजी राज्य के आरंभ में उस समय की परिस्थिति के कारण अंग्रेजी को विशेष महत्ता प्राप्त थी। इसीलिए अंग्रेज़ी का थोड़ासा भी ज्ञान रखनेवाले मनुष्य को अच्छा वेतन मिला करता था और समाज में वह मनुष्य बड़ा आदर पाता था। परन्तु अब वे दिन गये। ज़माने ने पलटा खाया है। अब अंग्रेज़ीदां की उस तरह दाल नहीं गलती। इतना होने पर भी माध्यमिक और उच्च शिक्षा अंग्रेज़ी के द्वारा ही दी जाती है। इसलिए इस परिपाटी के कारण एक बार अंग्रेज़ी को जो महत्ता प्राप्त हो चुकी है, वह विशेष कम नहीं हुई। हमारा कहना यह नहीं है कि अंग्रेज़ी से आप एकदम मुँह फेर लें–उस से बिलकुल बहिष्कार कर दें। नहीं। आप अंग्रेज़ी अवश्य पढ़ें। उसे पढ़ना ही चाहिए क्योंकि आज कल के जमाने में अंग्रेजी हमारे लिए तीन तरह से उपयोगी है। वह हमारे राज्यकर्त्ताओं की भाषा है, इस लिए अपने विचारों को उन पर प्रकट करना तथा उनके विचार हमें मालूम होना दोनों के लिए लाभदायक है। राजा और प्रजा दोनों में यदि कुछ नासमझी पैदा हो गई तो उसमें दोनों का नुकसान है। इस दृष्टि से विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश में इस भाषा का जितना अधिक प्रचार हो उतना अच्छा ही है। यही कारण है कि मुसलमानों के शासन-काल में फ़ारसी का इतना ज़ियादा बोलबाला अथवा आज कल गोवा में पोर्तगीज़ भाषा को और पांडुचेरी में फ़रासीसी भाषा को इतनी महत्ता प्राप्त है।

ऊपर कहे गये कारणों से देश के भिन्न भिन्न भाग के लोगों का न्यूनाधिक परिमाण पर अंग्रेजी पढ़ना विचार-विनिमय का एक बड़ा भारी साधन हो गया है। देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं, भाषा और उपभाषाओं की संख्या बहुत बड़ी है। इनमें दस बारह मुख्य हैं। इन सब भाषाओं का इतना ज्ञान प्राप्त कर लेना, जिससे उनके द्वारा उत्तम प्रकार से विचार-विनिमय किया जा सके, साधारण बुद्धि के मनुष्य की सामर्थ्य के परे है। भारत को एक राष्ट्र बनाने के लिए परस्पर में व्यवहार और विचार-विनिमय होना चाहिए और इसलिए ऐसी एक भाषा की बड़ी भारी आवश्यकता है जिसे समस्त भारतवासी अच्छी तरह से समझ सकें। कई लोग यह प्रतिपादन करते हैं कि जब तक भारत की एक मातृभाषा न हो जायगी तब तक यह देश एक राष्ट्र न बन सकेगा। यह आदर हिन्दी को दिया जाय या अंग्रेज़ी को–इस विषय पर कभी कभी चर्चा चलती है। यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर सब ओर से विचार करने के लिए एक स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है। इस समय हमें केवल इतना ही कहना है कि अंग्रेजी राज्यकर्त्ताओं की भाषा होने के कारण उसका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर विचारविनिमय का आपही आप सुभीता हो जाता है। अंग्रेजी भाषा का तीसरा उपयोग यह है कि पाश्चात्य शास्त्रों और कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यही भाषा एक साधन है। देश की साम्प्रत दशा में हमें इस ज्ञान की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इस विषय का इतना विस्तारपूर्वक वर्णन करने का प्रयोजन केवल इतना ही है कि इस लेख से कहीं आप यह न समझ बैठें कि हम अंग्रेज़ी भाषा का बहिष्कार कर रहे हैं। हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी भाषा की बड़ी महत्ता है और जिन पर लक्ष्मी की कृपा है वे इसका अवश्य अध्ययन करें। पर अंग्रेज़ी के लिए मातृभाषा की दुर्दशा करना–यह बात हम कदापि स्वीकार न करेंगे। क्योंकि हमारी राय तो यह है कि अंग्रेज़ी की अपेक्षा हमें अपनी मातृभाषा ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम आशा करते हैं कि सब विचारशील पाठक हम से सहमत होंगे।

७. मातृभाषा का अनादर और उसकी उन्नति में बाधा।

हमारे यहां के सुशिक्षित लोग दस साल की अवस्था से ही मातृभाषा से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ देते हैं। उनका मन अंग्रेज़ी के द्वारा बढ़ता है और स्वभावतः उसी भाषा की ओर वे आकृष्ट हो जाते हैं। इन में जो स्वयं विचारवान होते हैं वे मातृभाषा की महत्ता को पहचानने लगते हैं और उस पर प्यार करने लगते हैं। पर उनके मन में भी वह प्रेम उतना अधिक नहीं रहता जितना कि होना चाहिए। इस का कारण भी बिलकुल स्पष्ट है। जिस उमर में शिक्षा के द्वारा बुद्धि की बाढ़ होती है, उसी उमर में यदि मनुष्य मातृभाषा से परिचय रहे और यह भी इच्छा कि मातृभाषा का व्याकरण, केवल यही नहीं, किन्तु मातृभाषा की उसकी संस्कृत भाषा का व्याकरण, भी अंग्रेज़ी में पढ़ाया जाय, तो सुशिक्षितों का अंग्रेज़ी की ओर झुकाव रहना कोई विचित्र बात नहीं है। इस का मुख्य कारण यह

जिस तरह बालक अपनी माता की अपेक्षा दाई पर ही अधिक प्रेम करता है ठीक उसी तरह आज हम पढ़े-लिखों की दशा है। बालक, बड़े होने पर जिस तरह माता के प्रेम के मर्म को जानने लगता है उसी तरह सुशिक्षित लोग भी समझ आने पर अपनी भाषा के मर्म को पहुँचानने लगते हैं। देशी भाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों का जनता में कितना आदर होता है, इस बात का यदि विचार किया जाय तो यही कहना पड़ता है कि दशा अत्यंत ही शोचनीय है। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां प्रकाशकों को अपनी पुस्तकों का प्रसार करने के लिए घर घर जूतियां चटकानी पड़ती हैं। जिसे ग्रन्थ प्रकाशित करना हो वह १००० रुपये पर तिलांजली देने के लिए तैयार रहे और फिर इस काम में हाथ लगाये। शिक्षित लोगों की इस उदासीनता के कारण भाषा की प्रगति में बड़ी भारी बाधा पहुँचती है। किसी भी भाषा में उत्तमोत्तम ग्रन्थ तैयार होने के लिए ग्रन्थकारों को किसी के आश्रय की आवश्यकता होती है। अत्यन्त प्राचीन काल में विक्रम तथा भोज जैसे गुणग्राही राजा कई विद्वानों को अपने दरबार में आश्रय देकर उनसे कई विषयों पर नानाप्रकार के ग्रंथ लिखवाते थे। वे ग्रंथकारों के चरितार्थ का उत्तम प्रबंध कर दिया करते थे, जिससे उन्हें ग्रंथ पढ़ने और लिखने के लिए खूब समय मिला करता था। सूरदास, तुलसीदास, आदि कवि विरक्त संत थे। उन्होंने राजाश्रय किंवा लोकाश्रय की ज़रा भी परवा न कर के ग्रंथरचना की थी। परन्तु आज कल के ग्रंथकारों की दशा बड़ी अजीब है। प्राचीन काल के समान उन्हें राजाश्रय नहीं है और न वह इन दिनों में मिल सकता है। मध्यकालीन कवियों की नाईं वे विरक्त संत भी नहीं हैं। उनके पीछे गृहस्थी लगी है और कुल समाज की नाईं उन्हें रहना पड़ता है। इसलिए अन्य मनुष्यों की नाईं उन्हें भी द्रव्य की दरकार होती है। इसलिए मनुष्य कितना भी विद्वान् क्यों न हो, उसे अपनी मातृभाषा की सेवा करने की कितनी भी उत्कट इच्छा क्यों न हो, तिस पर भी वह अपना सारा समय इस काम में व्यतीत नहीं कर सकता। अपना धंधा सम्हाल कर ही उसे यह काम करना पड़ता है, जिससे वह इस काम को अच्छी तरह से नहीं कर सकता। पाश्चात्य ग्रंथकारों की भी इस संबंध में बड़ी स्पृहणीय दशा है। उन्हें भी आजकल राजाश्रय नहीं है। परन्तु उनकी यह कमी लोकाश्रय से पूरी हो जाती है। जिससे वे अपना सारा समय ग्रंथलेखन और ग्रंथवाचन में व्यतीत कर सकते हैं। उत्तम समाचारपत्रों के सम्पादकों और कितने ही पुस्तककर्त्ताओं की वार्षिक आय ५०००० रु० अथवा इस से भी अधिक रहती है। हमने कहीं पढ़ा है कि प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ग्लेडस्टन के चरित्रकार लार्ड मोर्ले को इस चरित्र के बदले दस हज़ार पौंड यानी एक लाख, पचास हज़ार रुपये मिले थे। यह दशा होने के कारण वहाँ एक महीने में जितने ग्रंथ प्रकाशित होते हैं, उतने यहाँ एक साल भर में भी नहीं होते। इसका कारण यही है कि हम लोग अपनी मातृभाषा के संबंध में बहुत उदासीन रहते हैं। जिन्हें अंग्रेजी भाषा आती है, वे किसी भी विषय की अंग्रेजी पुस्तक ही पसन्द करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि अंगरेज़ी भाषा के ग्रंथ देशी भाषाओं के ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अच्छे होते हैं। परन्तु अच्छे ग्रंथों का जन्म इस समय लोकाश्रय पर ही निर्भर है। इसलिए, यदि मातृभाषा के लेखकों को इस तरह का लोकाश्रय प्राप्त होवे, तो उत्तम ग्रंथ भी निर्माण होंगे। जब लोगों के अन्तःकरण में स्वभाषा के प्रति प्रेम और उत्साह जागृत होगा, तभी उन्हें अपनी भाषा के ग्रंथों को आश्रय देने की इच्छा होगी। स्वभाषा के प्रति-प्रेम उत्पन्न करने के लिए उस भाषा के द्वारा शिक्षा देना ही एक मात्र सुगम उपाय है।

यहाँ तक हमने यह बतला दिया कि अंगरेज़ी के द्वारा माध्यमिक और उच्च शिक्षा देने से क्या क्या हानियां होती हैं? अब हमारे मत के विरुद्ध जो जो आक्षेप पेश किये जाते हैं, उनका विचार करेंगे। यहाँ हम केवल माध्यमिक शिक्षा की बात कह रहे हैं। भिन्न भिन्न मत के लोग निम्नलिखित कारणों को पेश कर यह समझते हैं कि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देना असंभव है।

उनके आक्षेप ये हैंः—

१. अंगरेज़ी का ज्ञान कच्चा रहेगा।

देशी भाषाओं में भिन्न भिन्न विषयों पर पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं।

३. देशी भाषाएं उन्नत न होने के कारण उनके द्वारा शिक्षा देना अशक्य है।

अब इन तीनों आक्षेपों का क्रम क्रम से विचार करें।

(१) कई लोगों को यह डर मालूम होता है कि यदि माध्यमिक शिक्षा देशी भाषा के द्वारा दी जायगी तो विद्यार्थियों का अंगरेज़ी का ज्ञान कच्चा रहेगा। इंट्रेन्स माध्यमिक शिक्षा की अन्तिम परीक्षा है। इस परीक्षा का सार्टिफिकट हस्तगत कर लेने पर सरकारी नौकरी जल्दी मिल जाती है। कालेज में प्रवेश करने पर सब विषय अंगरेज़ी के द्वारा ही पढ़ाये जाते हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष है कि विद्यार्थियों को, माध्यमिक पाठशालाओं में, अंगरेज़ी का जितना अधिक ज्ञान हो उतना अच्छा ही है। कालेज में तथा नौकरी बजाते हुए भी उन्हें अँगरेज़ी का ज्ञान पद पद पर उपयोगी होनेवाला है। देशी भाषा के द्वारा माध्यमिक शिक्षा दी जाने से यदि विद्यार्थियों का अँगरेज़ी का ज्ञान आजकल की अपेक्षा कम रहेगा, तो कई लोगों को इसीलिए नया प्रबन्ध पसन्द न पड़ेगा। इसलिए हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि देशी भाषा के द्वारा शिक्षा देने से क्या सचमुच विद्यार्थियों का अँगरेज़ी का ज्ञान आजकल की अपेक्षा कम हो जायगा? इतिहास, गणित, विज्ञान और संस्कृत इत्यादि विषयों को अँगरेज़ी के द्वारा—यदि सच पूछा जाय तो मिश्र भाषा के द्वारा—पढ़ाने से अँगरेज़ी का ज्ञान-भांडार कितना बढ़ता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। नीचे की कक्षाओं में तो मिश्र भाषा का उपयोग होता ही है, परन्तु ऊँचे दर्जे की कक्षाओं में भी उसी का प्रयोग होता है। किसी भी बात को एक बार भाषा के द्वारा समझा देने पर, उसे पुनः अँगरेज़ी में बतला[ना] पड़ता है। इधर, विद्यार्थी शिक्षकों के वाक्य किंवा 'नो[ट्स]' में [दि]ये हुए सारांशों को तोते के समान रट डालते हैं। इस तरह वाक्यों का तोते की नाईं याद होना और परीक्षा में उन्हें टूटी [फूटी] अँगरेज़ी में लिखना क्या उत्तम भाषा-ज्ञान कहा जा सकता [है?] कालेज के अध्यापक बहुधा यह शिकायत किया करते हैं कि [उनके] पास विद्यार्थी अंग्रेज़ी में बहुत कच्चे रहते हैं। इससे, कहना [ही] होगा, कि आजकल की प्रणाली से भी अँगरेज़ी का ज्ञान कच्चा रहता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि माध्यमिक शिक्षाक्रम के, [अंग]रेज़ी को छोड़ कर, यदि सब विषय देशी भाषा के द्वारा प[ढ़ाये] जायँगे तो विद्यार्थियों का बहुत सा समय बचेगा। इस बचे समय को अँगरेज़ी के अध्ययन में खर्च करने पर विद्यार्थियों [को] उस भाषा का आजकल की अपेक्षा अधिक ज्ञान प्राप्त हो[गा।] आजकल पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल में इस प्रयोग का प्र[योग] किया जा रहा है। उस पाठशाला का निरीक्षण करने वालों ने [यह] प्रकट किया है कि जिस कक्षा में इस नये तरीके से शिक्षा [दी] जाती है, उस कक्षा के विद्यार्थियों का अँगरेज़ी का ज्ञान प्रच[लित] प्रणाली से शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अच्छा होता [है।] दूसरे कई निरीक्षकों का यह कहना है कि अँगरेज़ी में दोनों [का] ज्ञान समान ही रहता है। इस से यह कहना अनुचित न होगा [कि] तात्विक दृष्टि से तथा प्रत्यक्ष अनुभव से भी यह सिद्ध हो चुका [है] कि देशी भाषा के द्वारा माध्यमिक शिक्षा देने से विद्यार्थियों [का] अँगरेज़ी का जितना ज्ञान आज प्राप्त होता है, वह उतने से कभी कम नहीं होगा।

कुछ लोगों का कहना यह है कि देशी भाषाओं में भिन्न भि[न्न] विषयों पर पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं। यह आक्षेप बहुत कुछ सच है। पर इस दशा का मुख्य कारण यही है कि देशी भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों की जनता में मांग ही नहीं है—उनका बिलकुल खप ही नहीं होता।

मेकमिलन तथा लांगमन एन्ड ग्रीन आदि अंगरेज़ी प्रकाशि[कों] के सूचीपत्र पर दृष्टिपात करने से यही दीख पड़ता है कि वे हम[ारे] यहाँ स्कूलों तथा कालेजों में पढ़ाई जानेवाली भिन्न भिन्न पुस्तकें हर साल प्रकाशित करती रहती हैं। जब ये कम्पनियां यह देखती हैं कि इस देश में अमुक पुस्तक के प्रचार होने की अधिक संभावना है तब वे उसी समय उसे किसी अच्छे ग्रंथकार से लिखा कर प्रका[शित] कर देती हैं। ऐसी पुस्तकों का प्रसार करने के लिए [उन्हें] कोई भी विशेष उपाय की अपेक्षा नहीं होती। जैसे जैसे [मांग] होती जाती है वैसे वैसे पुस्तकें भी प्रकाशित होती [जाती हैं।]

ज्यों ही देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा दी जाने लगेगी त्यों ही उस भाषा में चाहे जितनी पुस्तकें थोड़े ही समय में तैयार होंगी। परन्तु माँग के पहले देशी भाषाओं में पुस्तकों का लिखा जाना तथा उन्हें छपाकर प्रकाशित करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। कई ग्रन्थकारों तथा प्रकाशकों को इस बात का अंशतः अनुभव हो चुका है।

तीसरे आक्षेप के विषय में हमारा यह निवेदन है कि यदि केवल माध्यमिक शिक्षा का ही विचार किया जाय तो इस आक्षेप में कुछ भी अर्थ नहीं है। हम ऊपर कह चुके हैं कि पूना के ट्रेनिंग कालेज का और हाईस्कूल का शिक्षा-क्रम अधिकांश में एकसा ही है। यदि पूना के ट्रेनिंग कालेज में सब विषय देशी भाषा के द्वारा पढ़ाये जा सकते हैं तो हम नहीं समझ सकते कि इन्हीं विषयों को हाई स्कूल में देशी भाषाओं के द्वारा पढ़ाने में क्यों कर कठिनाई हो सकती है। मुख्य कारण यह है कि दस साल की उमर से लेकर विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षा पास करने तक हमारे यहाँ के पदवीधारियों का अपनी भाषा से तनिक भी परिचय नहीं रहता। इसलिए किसी भी विषय को अपनी मातृभाषा के द्वारा पढ़ाना उन्हें बड़ा अटपटासा जान पड़ता है। जब हम अपने यहाँ किसी ग्रेजुएट से हिन्दी में व्याख्यान देने के लिए निवेदन करते हैं, तो वे कहते हैं कि, Sorry, मैं हिन्दी में न बोल सकूँगा, यदि बन सका तो दो चार बातें इंग्लिश में ही कह दूँगा। इस से वक्ता की मातृभाषा हिन्दी, श्रोताजनों में सैकड़ा पीछे निन्यानबे की भी मातृभाषा हिन्दी हो, पर व्याख्यान की भाषा अंगरेजी-इस तरह की हिन्दुस्थान के सिवा और किसी भी देश में न दिखाई पड़नेवाली—विचित्रता कई बार हमारे दृष्टिगोचर होती है। इस आक्षेप के पक्षपातियों को चाहिए कि वे पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल का निरीक्षण करें। इस संस्था के संचालकों ने यह सिद्ध कर के दिखला दिया है कि देशी भाषा के द्वारा शिक्षा दी जा सकती है। किम्बहुना, यह अनेकदृष्टि से आज कल की शिक्षा-प्रणाली से कहीं अधिक लाभदायक है। एक ऐसे महाशय ने, जो इस संस्था में कुछ दिनों तक काम कर चुके थे, हम से यह कहा था कि इस संस्था के लिए यदि कोई एक बड़ी भारी बाधा है तो यह यही है कि उन्हें योग्य उत्साही तथा मराठी के द्वारा शिक्षा दे सकनेवाले लोग ही नहीं मिलते। प्यारे पाठक, तनिक सोचिये तो सही! यह कितनी लज्जा की बात है! अस्तु।

अब तक इस बात का विवेचन हो चुका कि प्रचलित प्रणाली किस तरह हानिकारक है और नवीन प्रणाली पर कौन कौन से आक्षेप किये जाते हैं। अब हम इस बात का विचार करते हैं कि नई प्रणाली का प्रचार होने में कौन कौनसी बाधाएँ हैं तथा वे किस तरह दूर की जा सकती हैं। इस मार्ग में मुख्य बाधा यह बतलाई जाती है कि माध्यमिक शिक्षा में उपयोगी होनेवाली पाठ्य पुस्तकें देशी भाषा में प्राप्त नहीं हैं। पर इस संबंध में हम पहले ही विचार कर चुके हैं।

हमारे यहां की कई पाठशालाएं या तो सरकारी होती हैं या सरकार से सहायता लेने वाली यानी अर्ध-सरकारी होती हैं। अर्ध-सरकारी पाठशालाओं को शर्तों के अनुसार सरकारी पाठशालाओं में प्रचलित शिक्षा-क्रम का ही अनुसरण करना पड़ता है। जो पाठ्य पुस्तकें सरकारी पाठशालाओं में पढ़ाई जाती हैं, वे ही पुस्तकें सरकार के नियमानुसार दूसरी पाठशालाओं में भी पढ़ाना पड़ती हैं। परन्तु बम्बई के शिक्षा-विभाग ने यह प्रकट किया है कि यदि माध्यमिक पाठशालाओं में कुछ विषय मातृभाषा के द्वारा पढ़ाये जाँय तो कोई आपत्ति नहीं है। इस से साफ़ मालूम होता है कि हमारी दयालु सरकार इस अत्यंत इष्ट सुधार का कदापि विरोध न करेगी।

यदि यह निश्चित हो जाय कि अँगरेजी को छोड़ कर सब विषय मातृभाषा के द्वारा पढ़ाये जायँ तो यह स्पष्ट ही है कि उनकी परीक्षा भी मातृभाषा के द्वारा ही ली जावे। बम्बई अहाते में यह बात नहीं है। इस लिए वहां उपर्युक्त नियम का कोई विशेष उपयोग नहीं करता। शिक्षकों का वक्तव्य है कि जब तक यह नियम न कर दिया जाय कि भिन्न भिन्न विषयों की परीक्षाएं मातृभाषा के द्वारा ही ली जायँगी तब तक मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देना इष्ट नहीं। क्योंकि ऐसा करने से अंगरेजी का ज्ञान कम रहेगा और 'एक्ज़ामिनेशन' में 'बुआयज़' अपने 'आइडियाज़' को 'इंग्लिश' में 'एक्सप्रेस' न कर सकेंगे जिससे उनके 'फ़ेल' होने का डर है। ऊपर किये गये विवेचन से पाठकों को मालूम हो जायगा कि यह आक्षेप बिलकुल निराधार है।

जब तक ऊपर कही गई व्यवस्था न कर दी जायगी तब तक बहुजन समाज तथा सुशिक्षित लोग इस सुधार का विरोध करेंगे। क्योंकि, अभी ऐसे कई लोग विद्यमान हैं जो परीक्षा पास कर लेने में ही शिक्षा की सार्थकता समझते हैं। परीक्षा का सर्टिफिकेट नौकरी प्राप्त करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन होने के कारण बहुजन समाज तथा सुशिक्षित लोग भी ऐसी किसी भी प्रकार की व्यवस्था का विरोध ही करेंगे जिससे परीक्षा उत्तीर्ण होने में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित होने की सम्भावना हो। प्रचलित सदोष प्रणाली से होने वाली हानियों को ध्यान में रख कर सरकार ने यह नियम बना दिया है कि कुछ विषयों के उत्तर मातृभाषा में दिये जा सकते हैं। अंग्रेज़ी के सिवा सारे विषय मातृभाषा के द्वारा ही पढ़ाये जाँय और परीक्षा के समय में उसी भाषा के द्वारा उत्तर दिये जाँय-यह सुधार सरकार स्वयं-स्फूर्ति से कर देगी-यह सोचना ठीक नहीं है। परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि जब सब लोग मिल कर सरकार से इस संबंध में प्रार्थना करेंगे तो हमारी दयालु सरकार हमारे विनीत तथा अत्यंत आवश्यक निवेदन पर ज़रूर ध्यान देगी। इसी लिये यदि आप लोगों को इस अत्यंत इष्ट सुधार के प्राप्त कर लेने की इच्छा है तो इस संबंध में प्रथम लोकमत जागृत कीजिए। भाषाओं की उन्नति के लिए बहुधा हर साल साहित्य-सम्मेलनों के अधिवेशन हुआ करते हैं। इन सम्मेलनों का प्रथम एवं मुख्य कर्तव्य है कि वे इस विषय को हाथ में लें। संतोष की बात है कि सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में इस विषय पर चर्चा छिड़ी थी। भाषा की उन्नति के लिए एक मात्र उपाय यही है कि उसके द्वारा शिक्षा दी जाय। यदि यह उपाय न किया जाय तो दूसरे उपायों से विशेष लाभ होने की संभावना नहीं है। हमें तो यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण मालूम होता है कि इस संबंध में लोकमत जागृत करने के लिए गांव गाँव में व्याख्यानदाता भेजे जाँय।

इस निबंध से यदि कोई यह समझ बैठे कि हमारी राय यह है कि माध्यमिक शिक्षा ही मातृभाषा के द्वारा दी जाय और उच्च शिक्षा को अंग्रेज़ी में देने से कोई हर्ज़ नहीं है। पर यह समझ भूल की है। हमें पूरा विश्वास है कि यदि उच्च शिक्षा भी मातृभाषा के द्वारा दी जायगी, तो उस से बड़े भारी लाभ की संभावना है। पर विश्वविद्यालय सब लोगों के लिए हैं और प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न भाषाभाषियों के लिए जब तक भिन्न भिन्न विश्वविद्यालय स्थापित नहीं हुए हैं, तब तक इस प्रकार की व्यवस्था होना असंभव सा ही जान पड़ता है। इस लिए इस लेख में हमने केवल यही प्रतिपादन किया है कि माध्यमिक शिक्षा तो ज़रूर ही देशी भाषा के द्वारा दी जाय। सच पूछा जाय तो मातृभाषा के द्वारा शिक्षा का दिया जाना ही हमारा शिक्षा-संबंधी ध्येय होना चाहिए और उसे सिद्ध करने के लिए हमें अविश्रांत परिश्रम करना चाहिए। इस लिए जिन्हें अपनी मातृभाषा के प्रति अभिमान मालूम होता है, जिन्हें अपनी मातृभाषा को उन्नति-गिरि के अत्यंत उत्तुंग शृंग पर आरूढ़ करने की प्रबल लालसा है, उन्हें चाहिए कि वे इस विषय का ध्यानपूर्वक मनन करें। बस, यही इस लेखक का नम्र निवेदन है।
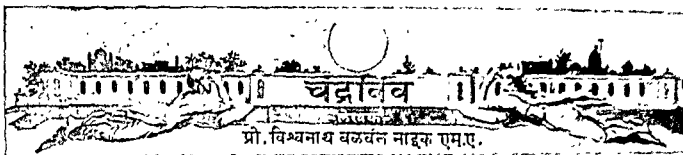
पीयूषं वपुरोऽस्य हेतुरुदयो विश्वस्य नेत्रोत्सवः
प्लुष्टं भानुकरैरिदं त्रिभुवनं ज्योत्स्नाभरैः सिंचति।
सर्वाशाप्रतिरोधकान्धतमसध्वंसाय यद्रोद्यमः
धिग्धातारमिहापि लक्ष्म लिखितुं यस्य प्रवृत्तं मनः॥

"इसका शरीर तो अमृत का बना हुआ है। इसके उदय होते ही प्राणिमात्र के नेत्रों में आनन्द छा जाता है। सूर्य के प्रखर ताप से तपे हुए त्रिभुवन पर यह शीतल चांदनी का खूब छिड़काव करता है। और चारों ओर छाये हुए घोर अन्धकार को दूर करने के लिए यह सदैव उद्यत रहता है। इसके भी कपाल में लांछन लगाने की बुद्धि जिस विधाता को हुई उसे धिक्कार है।"

सुन्दर पदार्थों के लिए उपमा देने को जिन वस्तुओं का हम सदैव उल्लेख करते हैं उनमें चन्द्रबिम्ब अवश्य आता है। आकृति और कान्ति, इन्हीं दोनों बातों पर सौन्दर्य अवलम्बित रहता है। और चन्द्रबिम्ब में सुन्दर आकृति और सुवर्ण कांति, दोनों बातें हैं।

चित्र नं० १
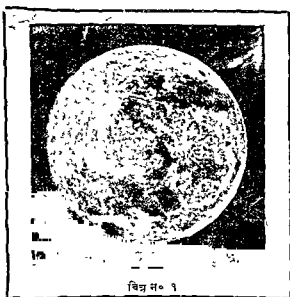
सूर्य की आकृति सुन्दर जरूर है; पर उसकी कांति प्रखर है। अतएव उसकी आकृति का कोई महत्त्व नहीं रहा है। बल्कि उसके प्रकाश की ही ओर देख कर आंखों को कष्ट होता है। और संध्याकाल में विश्रान्ति के लिए योग्य स्थल आंखें देखने लगती हैं। ऐसे समय में चन्द्र की सौम्य कांति आंखों पर मानो अमृत की वर्षा ही करने लगती है। ऐसी दशा में इसका सुधांशु नाम उचित ही है; क्योंकि सुधा में सुख देने का जो धर्म है वह चन्द्रकिरणों में मौजूद है। सूर्यास्त के बाद पृथ्वी का पृष्ठभाग धीरे धीरे ठंढा होता है; इस लिए शीतल वायु बहने लगती है। इधर सन्धिप्रकाश कम होते जाने के कारण चन्द्रतेज अधिक खुलने लगता है। इससे जान पड़ता है कि चन्द्र के किरणों में ही शीतलता है और ऐसी दशा में उसका हिमांशु नाम बिलकुल सार्थक है। परन्तु चन्द्र, जिस की आकृति चित्ताकर्षक है और जिसकी कांति सौम्य शीतल है, उसमें भी दो दोष मौजूद हैं। लोग कहते हैं कि चन्द्र को क्षयरोग की व्यथा है; क्योंकि कुछ दिन तो यह बिलकुल कृश होता जाता है और बाद को फिर वृद्धि पाता रहता है। ऐसा ही सदैव होता रहता है। परन्तु जो लोग चन्द्र के पक्षपाती हैं उनकी दृष्टि से इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। इसके विरुद्ध जैसा कि कालिदास ने वर्णन किया है, दुष्यन्त की स्थिति की भांति, "संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते"—हीरा हुआ माणिक जिस प्रकार पतला होने पर भी सुन्दर दिखाई देता है उसी प्रकार क्षीणावस्था में यह अधिक ही सुन्दर दिखाई [...] अमावस्या के दिन छिपे हुए चन्द्र को, प्रतिपदा अथवा [...] ओर देखने के लिए लोग जो उत्सुक रहते हैं सो यों ही [...] इस दिन देख पड़नेवाली चन्द्रकला की महिमा ही ऐसी [...] की सुन्दरता में दूसरा दोष यह बतलाया जाता है कि [...] लांछन लगा है जो कभी मिटता ही नहीं। सुन्दरों में [...] शय मनोहर, मन को सुखप्रद वस्तु में भी ऐसा दोष देख [...] तब सचमुच ही बड़ा खेद होता है। प्रति दिन एक [...] बढ़ते जानेवाले चन्द्र का पूर्ण स्वरूप देखने को जो लो[...] रहते हैं उनको पौर्णिमा के दिन सर्वत्र चन्द्रिका का [...] दिखाई देता है; परन्तु स्वयं चन्द्र की ओर जब वे देख[...] उसका मुखमंडल लांछनयुक्त दिखाई देता है। यह क्या [...]

अङ्कं केऽपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे
सारङ्गं कतिचिच्च संजगदिरे भूच्छायमैच्छन् परे।
इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्महे॥

"कुछ लोगों को यह शंका होती है कि फूटे हुए इन्द्र[...] के टुकड़े पर जो काली प्रभा दिखाई देती है उसी प्रका[...] चन्द्रबिम्ब पर दिखलाई पड़नेवाला दाग भी होगा। कुछ लो[...]

चित्र नं० २
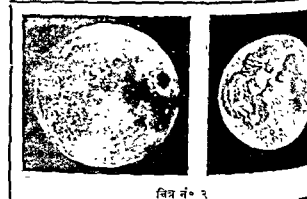
हैं कि समुद्र से बाहर निकलते समय चन्द्र पर उड़ा हुआ [...] का छींटा होगा। कोई कहते हैं यह चन्द्र पर हरिण [...] खेल रहा है। और कुछ लोगों को ऐसा जान पड़ता है [...] चन्द्र पर पृथ्वी की छाया पड़ रही है। परन्तु हम से [...] हम तो यही कहेंगे कि यह रात्रि का सघन अन्धकार जो [...] ने निगल लिया है वही उसके पेट में जमा हुआ बैठा है, [...] है।" और निस्सन्देह यह अन्तिम कारण चन्द्र के बाह्य [...] को, परोपकार के लिए अपने को दुःख में डालनेवाले औदा[...] अन्तःसौन्दर्य से मेल कर देता है।

चन्द्र की सभी बातें निस्सन्देह कवियों की प्रतिभा को [...] न्मुख करनेवाली हैं। चन्द्र के कलंक का भिन्न भिन्न प्रकार [...] वर्णन सब देशों के प्रायः सभी कवियों ने किया है। [...] कवियों की दृष्टि से चन्द्र के न्यूनाधिक विश्व विचित्र भाग [...] प्रेमयुक्त स्त्रीपुरुषों का चुम्बन चित्रित हुआ है। यहां पर [...] चित्र दिये जाते हैं उनसे मालूम होगा कि यह कल्पना वास्त[...] स्थिति से कितनी सुसंगत है। इन दो चित्रों में से एक में [...] दिखलाया है कि पौर्णिमा को चन्द्र वास्तव में कैसा दिखा[...] है और दूसरे में यह दिखलाया है कि उपर्युक्त कल्पना उसमें [...] दृग्गोचर होती है। किंचित् इसी प्रकार की कल्पना हमारे [...] कवि ने भी इस पद्य में वर्णन की है:—

" अमुष्येयं मन्ये विगलदमृतस्यन्दशिशिरे
रतिश्रान्ता शेते रजनिरमणी गाढमुरसि ॥

" जान पड़ता है विलास कर के थकी हुई रजनी, अमृतधारों से शीतल होनेवाले इसके वक्षस्थल पर विश्राम कर रही है। "

चन्द्रप्रकाश, चन्द्रकला और चन्द्रकलंक, ये बातें जिस प्रकार

पृथिव्या इव मानदंडः " पूर्व और पश्चिम समुद्र के बीच में आड़ा पड़ कर पृथ्वी का मानो मानदण्ड हो रहा है, उस हिमालय को भी छोटा साबित करनेवाले पर्वत और हड़प कर जानेवाले दरें तथा समुद्र चन्द्र में हैं।

सागर और कलहसागर के पश्चिम में विस्तृत शान्तिसागर दिखाई देता है। नं० २ के चित्र में जो नवयुवक दिखलाया गया है उसके कान के पीछे जो बालों का समूह है वही अमृतसागर है। और सिर पर जो बाल हैं वही शान्तिसागर है और मस्तक पर जो बालों का समूह है वही प्रसादसागर है। प्रसादसागर दशम्यन्त के चन्द्र कोर में शान्तिसागर के किंचित् उत्तर की ओर दिखाई देता है। तथा उसी चित्र की तरुण स्त्री का केशकलाप वृष्टिसागर, हृदय-प्रदेश क्षोभसागर और पुरुष की ठुड्डी के नीचे का काला भाग मेघसागर है।

पूर्णचन्द्र को देखते ही जैसे कुछ श्यामल प्रदेश दिखाई देते हैं वैसे ही कुछ अधिक चमकनेवाले प्रदेश भी दिखाई देते हैं। उनमें विशेषतः जिनसे चारों ओर किरण फैल रहे हैं वे तीन प्रदेश, चन्द्रबिम्ब में दिखलाये हुए तरुण के गले के माणिक और तरुण स्त्री के बाहु के दो हीरे हैं। चन्द्र में दिखलाई हुई इस जोड़ी को यदि ज्योतिःशास्त्र और वेधकला माना जाय तो प्रसिद्ध ज्योतिषियों को उनके गले का हार और शरीर के भूषण मानना चाहिए। और इसी लिए मानो इन तीन तेजस्वी भागों को टायको, कोपर्निकस और केप्लर नाम योरोपीय ज्योतिषियों ने दिये हैं। अब जब तक हमारे यहां के ज्योतिषी वेधकला में प्रवीणता सम्पादन कर के चन्द्रादिक ग्रह और तारकासमूह के विषय में नवीन नवीन खोज नहीं करते तब तक उपर्युक्त नामों की जगह अपने यहां के ज्योतिषियों के नाम रख कर उपर्युक्त तीन अन्वेषकों का बिना कारण अपमान करने का हमें साहस नहीं होता। ऐसी दशा में हम भी इन्हीं नामों से इन प्रदेशों का उल्लेख करेंगे। अब तक जो पता लगा है उससे यही कहा जाता है कि ये तीनों प्रदेश ज्वालामुखी पर्वतों के विवर हैं। क्योंकि उनके आकार और रचना की पृथ्वी के ज्वालामुखियों के विवरों से बहुत समता है। इनमें से टायको (पूर्णचन्द्र के दक्षिणभाग में) वलयाकार है। इस वलय का व्यास ५० मील और गहराई १३००० फीट है। इसके मध्यभाग में एक ६००० फीट ऊंची टेकड़ी है। कोपर्निकस वृष्टिसागर, क्षोभसागर और मेघसागर से घिरा हुआ है। इसका व्यास भी ४६ मील है और इसके किनारे पर एक ११००० फीट ऊंचाई का शिखर है। यह दशम्यन्त के चन्द्र में प्रकाशसीमा पर बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इसी प्रकाशरेखा पर और भी बहुत से विवर दिखाई देते हैं। उन सब के भी नाम हैं, जिनको बतलाने की यहां जरूरत नहीं। चन्द्रबिम्ब में जब कि प्रकाशसीमा आगे सरकती रहती है तब भिन्न भिन्न विवर जिधर से प्रकाश आता है उधर तो प्रकाशित रहते हैं, और उसके विरुद्ध ओर अप्रकाशित रहते हैं, इसलिए उनका नक्शा स्पष्ट तरह मालूम हो जाता है। उनका काला भाग छाया का है, इस कारण विवरों की दीवाल की छाया नापने से उनकी ऊंचाई मालूम हो जाती है और इसी रीति से चन्द्र के भिन्न भिन्न भागों की ऊंचाई अथवा गहराई निश्चित की गई है।

पूर्णचन्द्र की (अथवा चन्द्रबिम्ब की स्त्री के मस्तक के केशकलाप की) [illegible] है। यह दशम्यन्त चन्द्र में [illegible] दिखाई देता है। [illegible] कोपर्निकस के [illegible] है।

चन्द्रबिम्ब के बिलकुल दक्षिण ओर जिस जगह दशम्यन्त के चन्द्र का निचला शृंग दिखाई देता है उस जगह बहुत भारी लाइब्निट्स पर्वत है। उसमें ३०००० फीट ऊंचे कितने ही शिखर हैं; एक तो ३६००० फीट ऊंचा है—अर्थात् हिमालय पर्वत का गौरीशंकर शिखर, जो २९००० फीट ऊंचा है उससे भी इस पर्वत का शिखर ७००० फीट अधिक ऊंचा है! इसके सिवाय अमावास्या से ले कर पौर्णिमा तक और पौर्णिमा से ले कर अमावास्या तक इसका शिखर सर्वकाल देदीप्यमान रहता है; क्योंकि सदैव सूर्य का प्रकाश उस पर पड़ने में बीच में कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता। ऐसी दशा में यही कहना चाहिए कि इस पर्वत पर प्रकाश का निरन्तर साम्राज्य है।

दशमी के चन्द्र में प्रकाशसीमा पर कोपर्निकस उत्तर भाग में और टायको दक्षिण भाग में दृग्गोचर होते हैं। इनमें से टायको के पास दूरबीन से बहुत ही मनोहर दृश्य दिखाई देता है। जैसे किसी तेजस्वी हीरे के किरण चारों ओर फैल जाते हैं वैसे ही टायको से सर्वत्र दूर दूर किरण फैले हुए दिखाई देते हैं। उनमें से कोई कोई तो चन्द्र-परिधि के तीसरे हिस्से के समान, अर्थात् लगभग तीन हजार मील दूर तक फैले हुए हैं। इनको यदि प्रकाश के किरण कहा जाय तो टायको के अंधेरे में रहते हुए भी वे दिखाई देते रहते हैं। यदि कहा जाय कि ये चन्द्र पर दरें होंगे तो ये पर्वतों, विवरों, समुद्रों और अन्य दरों पर तिहृत गये [illegible] देते हैं। मतल[illegible] कि ये रेखाएं किरण क्या हैं पता नहीं चलता।

चन्द्र पर जो [illegible] नीय दृश्य दिखा[illegible] उनमें सूर्य समु[illegible] याकार गहरे और मैदान,—जिनको विवर नाम दि[illegible] है,—अत्युच्च पर्[illegible] विवरों से बा[illegible] फैलनेवाली रेखाएं दरें, इत्यादि हु[illegible]

चित्र नं० ६

इस बात की कल्पना करने के लिए कि, जो चन्द्र[illegible] सपाट दिखाई देता है। वह वास्तव में गोलाकार है [illegible] देता होगा, यहां पर पूर्णचन्द्र के दो चित्र पास [illegible] जाते हैं। ये चित्र बिलकुल समान ही नहीं हैं। [illegible] स्कोप से देखने के लिए जैसे किसी दृश्य के [illegible] से दो फोटो पास पास लेते हैं वैसे ही ये हैं। [illegible] के जो फोटो लिये जाते हैं उनमें से एक फोटो में [illegible] एक ओर का अधिक भाग और दूसरी ओर का कम [illegible] है। हम जब कभी बाईं आंख मूंद कर दाहनी आंख से [illegible] की ओर देखते हैं तब हमको केवल बाईं आंख से [illegible] ओर का भाग जितना दिखाई देता है उससे अधिक [illegible] आंख से दिखाई देता है। और बाईं ओर का भाग [illegible] देता है। इसी कारण पदार्थ की ओर दोनों आंखों से [illegible] उसकी मुटाई का हम अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। [illegible] ऐसे दो फोटो लेना वास्तव में असम्भव है। परन्तु [illegible] के सूक्ष्म परिवर्तन के कारण हम को कभी उसकी [illegible] और कभी बाईं ओर का भाग अधिक दिखाई देता है। [illegible] ऐसे दोनों तरफ के फोटो ले कर उनको पास पास [illegible] और स्टीरियोस्कोप से देखने पर चन्द्र बिलकुल [illegible] समान दिखाई देता है। इस प्रकार के दो चित्र [illegible] उनसे ज्ञात पड़ेगा कि चन्द्र का गोल [illegible] वास्तव में स्टीरियोस्कोप की भी आवश्यकता नहीं है, [illegible] से हम इस प्रकार देख सकते हैं कि हम को [illegible] वस्तुएं देख पड़ें। थोड़े अभ्यास से ही ऐसा हो सकता है। [illegible] चित्र में दिखलाये हुए दो पूर्णचन्द्रों के [illegible]

लगें तब दो चन्द्र एक दूसरे पर रख कर दृष्टि को स्थिर करना चाहिए। ऐसा करने से गोलाकार चन्द्र आंखों के सामने खड़ा हो जायगा। और चन्द्र के पृष्ठभाग का बहुत कुछ अनुमान हो सकेगा।

ऊपर जो चन्द्रपृष्ठ की चार विशेषताएं बतलाई उनकी उपपत्ति लगाने का अनेक अन्वेषक लोग प्रयत्न कर रहे हैं; पर अभी तक ठीक ठीक उपपत्ति नहीं लगती। उनमें से बहुत सी बातें सादी दूरबीन से देखी जा सकती हैं। और उपपत्ति लगाने के लिए केवल तर्क पर ही विशेष आधार रखना पड़ता है, इस लिए जिन लोगों को चन्द्रबिम्ब का रहस्य प्रकट करने की इच्छा हो उनके लिए कुछ ऐसे प्रश्न संक्षिप्त रूप से नीचे दिये जाते हैं कि जिनके उत्तर प्रकट करने की आवश्यकता है।

१. चन्द्र पर जो समुद्र अथवा गहरे मैदान से दिखाई देते हैं वे वास्तव में क्या हैं? उनमें क्या कभी पानी था? यदि था तो अब क्या हुआ? चन्द्र पर वायुमंडल न होने और समुद्र में पानी होने अथवा न होने में विसंगतता अथवा सुसंगतता क्या है?

२. क्या चन्द्र के पर्वतों और पृथ्वी के पर्वतों की उत्पत्ति समान ही कारणों से हुई है? क्या चन्द्र के पेट की उष्णता से चन्द्रपृष्ठ पर कम्प हो कर इन पर्वतों की उत्पत्ति हुई है? अथवा चन्द्र के आकुंचन से उसके पृष्ठभाग पर ये झुकड़े पड़ गये हैं?

३. क्या चन्द्र के विवर और पृथ्वी के ज्वालामुखी पर्वतों के विवर एक ही प्रकार के हैं? यदि ऐसा है तो इतने बड़े ज्वालामुखी चन्द्र पर क्यों होने चाहिएं? इसके सिवाय चन्द्र के विवर बड़े बड़े हजारों मील क्षेत्रफल के मैदान हैं और उस हिसाब से उनके कगार कुछ बहुत ऊंचे नहीं हैं। अधिक क्यों, उनको विवर नाम देना भी योग्य नहीं; ऐसी दशा में यह क्यों कहना चाहिए कि ये ज्वालामुखी होंगे? इस प्रकार के वलयाकार गहरे मैदान होने के लिए आकाश में क्या बातें हो सकती हैं?

४. चन्द्र के दरें अथवा किरणप्राय रेखाएं अथवा दरारें किस प्रकार पड़ी होनी चाहिएं? शरीर के सिर के समान ऊंचे भाग से वे जाती हैं और कहीं भी रुकती नहीं, इसका कारण क्या हो चाहिए?

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर देने के लिए जिस प्रकार प्रतिभासम्पन्न की आवश्यकता है उसी प्रकार सूक्ष्म निरीक्षण की भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ, तीसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए अन्वेषकों कैसे प्रयत्न किये हैं, सो देखिये।

वर्षा का बून्द टप से सूखी मिट्टी पर पड़ने से उस मिट्टी का जैस आकार हो जाता है वैसा ही इन विवरों का आकार दूरबीन दिखाई देता है। ऐसी दशा में, आकाश में संचार करनेवाले ब बड़े उल्काओं के चन्द्र पर टकराने से तो इस आकार के गहरे मैदा न बन गये होंगे? इस अनुमान से, ऐसी जगहों के फोटो ले क अन्वेषक लोग चन्द्र के फोटुओं से तुलना करते हैं, कि जहां पर वर के छोटे बड़े बून्द टपकते हैं। इसके सिवाय वे ऐसी जगह होने वाले भिन्न भिन्न आकार-विशेषों का परीक्षण भी करते हैं कि जब घन पदार्थ पतले अथवा स्निग्ध पदार्थ में पड़ता है।

इसी भांति चौथे प्रश्न के उत्तर देने के लिए ऐसा अनुमान किय जा सकता है कि जैसे किसी कांच के ढक्कन पर पत्थर मारने कांच में अनेक दरारें पड़ जाती हैं वैसे ही क्या चन्द्रपृष्ठ कुछ ऐस है कि जिसमें कुछ न कुछ कांच के से गुणधर्म हों? इस लिए कां कैसे फूटता है, इसका सूक्ष्म परीक्षण और चन्द्र की दरारों तथ चन्द्र के पृष्ठभाग के घटकों का सूक्ष्म परीक्षण करना चाहिए। उक्त अनुमान निकालने में कौशल की आवश्यकता होती है; परन साधक बाधक प्रमाणों से उसका खंडन अथवा मंडन करने में परि श्रम की जरूरत होती है। कौशल और श्रम दोनों का ज मिलाप होगा तभी किसी के द्वारा चन्द्र के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों क प्रकाश होगा। इन रहस्यों का प्रकाशित करना कोई निठल्लेपन क काम नहीं है; क्योंकि सूर्यमाला के ग्रहादिकों की उत्पत्ति के विष में आज तक जिन सिद्धान्तों का स्थापन किया गया है उनकी सचा अथवा झुठाई भी अधिकांश में इसी पर अवलम्बित है।

देशदशा।

(लेखक—कविकुमार श्रीयुत महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य।)

(१)
जगदीश! दयामय! देवविभो!। सब-विश्व-विधायक नाथ! प्रभो! ॥
यह भारतभूमि भई विवशा। अब तो लखिये यह देशदशा ॥

(२)
अवसन्न, विपन्न, विलीन हुए। सब भांति बल-द्युति-हीन हुए ॥
दुख दारुण दाहक घोर बसा। इतनी बिगड़ी अह! देशदशा ॥

(३)
सब आप परस्पर प्रेम करें। कटुवाद विरोध विषाद हरें ॥
पुरुषार्थकला करिये प्रबला। सुधरे तब दुर्गत देशदशा ॥

(४)
मतवाद विभिन्न विचार तजो। गुण गौरव प्रेम समेत भजो ॥
विवशा कमला फिर हो स्ववशा। सुखदायक हो कुछ देशदशा ॥

(५)
नित से सब भांति प्रधान रहा। गुण-वर्णित भूति-निधान रहा ॥
जिसमें सुख वैभव भूरि बसा। यह क्या वह है अब देशदशा! ॥

(६)
प विक्रम राम समान कभी। उपजे वर वीर विचित्र सभी ॥
वह भारत-भूमि भई विवशा। सुधरे फिर क्यों कर देशदशा! ॥

(७)
तब फूट यहां कुल फैल रही। मन में सब के जम मैल रही ॥
रताग अनुपम प्राह प्रसा। बिगड़ी कितनी अब देशदशा ॥

(८)
ह कान्ति अलौकिक अस्त हुई। शुभ शक्ति विभक्त समस्त हुई ॥
रता हरसाल अकाल बसा। सब भांति विलक्षण देशदशा ॥

(९)
इसमें धन अन्न रहा इतना। नव यज्ञ विधान किया जितना ॥
सुरसा वह आज रसा विरसा। अति दारुण दुःखद देशदशा।

(१०)
तज दो अब नींद विनिद्र जगो। पुरुषार्थ करो स्थिरचित्त लगो ॥
तुम को लख के सब विश्व हँसा। बिगड़ी जब से यह देशदशा ॥

(११)
निज शक्ति विभूति विचार करो। फिर निर्भय हो यम से न डरो ॥
जननाहित में मन हो हुलसा। बिगड़ी सुधरे फिर देशदशा ॥

(१२)
कहते सब हैं करते न तथा। मन मे उपजी इतनी न व्यथा ॥
कितना उसको सब भांति कसा। बिगड़ी जिस से यह देशदशा ॥

(१३)
सुत हो जननीहित जो न करो। फिर व्यर्थ मनुष्य शरीर धरो ॥
अब तो तज दो सब गूढ़ नशा। सुधरे जिससे यह देशदशा ॥

(१४)
सब साधुचरित्र पवित्र बनें। बल तेज विशाल प्रभृति जनें ॥
सब शक्ति कला कर लें स्ववशा। सुधरे तब भारत-देशदशा ॥

(१५)
अज अव्यय ईश दयामय हो। सब विश्वनिरीक्षक निर्भय हो ॥
सहते हम कर्कश कष्ट कशा। दुख है न तुम्हें लख देशदशा ॥

(१६)
अब तो करुणाकर दृष्टि करो। सब पै सुख की नव वृष्टि करो ॥
जब से तब प्रेम घना विनशा। कितनी बिगड़ी अह! देशदशा ॥

(१७)
अब तो अपराध क्षमा करिये। मनमध्य "महेश" रमा करिये ॥
कविराज कानन हो विकसा। सुधरे फिर भारत-देशदशा ॥

चीन और जापान।

चीनी अफीम और योरोपियन व्यापारी—चीनी राष्ट्र के अफीम के व्यसन [से] मुक्त होने के लिए प्रति वर्ष एक-दशांश के हिसाब से अफीम की [आ]मद कम कर के १९१७ के मार्च मास के अन्त में अफीम का [व्य]पार चीन में बिलकुल बन्द कर देने का निश्चय किया गया। उस [सम]य चीन सरकार ने सम्पूर्ण देश में जो हस्तपत्रक वितीर्ण किये [उन]में तीन बातें कही गई थीं। १ सितम्बर १९१६ से ले कर नवम्बर [तक], अर्थात् तीन मास में, चीन में अफीम की पैदावार के साधनों [को] बिलकुल नष्ट करना है; और इस तीसरी मार्च से जून तक के [चा]र महीनों में अफीम पीने का व्यसन देश से बिलकुल निकाल देना [है]। यह निश्चय जब अत्यन्त कठोरता से कार्यरूप में परिणत किया [जा]ने लगा तब अफीम के योरोपियन व्यापारी झगड़ा करने लगे। [सन्] १९१५ के मई मास में इन व्यापारियों से चीनी सरकार ने साफ [तौ]र पर कह दिया कि, "हम १९१७ के मार्च के बाद अफीम का [व्य]पार बन्द करनेवाले हैं; तब तक आप अपना माल क्यांगसू, [क्य]ांगसी, और कांगटंग प्रान्तों में खपाओ, इसमें हम प्रतिबन्ध नहीं [क]रेंगे"। परन्तु इस अवधि में जब बाकी अफीम की खपत होती हुई [न]हीं देख पड़ी तब योरोपियन व्यापारियों ने कहा, "कांगटंग प्रान्त [में] छिपे तौर पर अफीम का व्यापार हो रहा है और कैंटन के बल-[वा]इयों के कारण इस प्रान्त में शान्ति नहीं है, इस कारण हमारा [मा]ल नहीं खपता, इसकी जवाबदारी चीनी सरकार पर है। इस [लि]ए हमारे परवाने की अवधि बढ़ानी चाहिए।" परन्तु चीनी [स]रकार ने अवधि बढ़ाने से साफ इन्कार कर दिया। तब ठेके-[वा]ले व्यापारियों ने कहा कि, "हम १९१५ से ठेके की रकम भरते [आ]ये हैं। ऐसी दशा में हमारी शेष अफीम की बिक्री करने की [ज]वाबदारी चीनी सरकार पर है।" इसका विचार करने के लिए [ची]नी सरकार ने एक कमीशन नियत किया। कमीशन ने सब बातों [प]र विचार कर के यह निश्चय किया कि मार्च अखीर तक ठेके-[वा]लों के पास जो अफीम बाकी रहे वो यह सब (अर्थात् लग-[भ]ग दो हजार बक्स) चीनी सरकार को मोल ले लेना चाहिए; [औ]र उसकी बिक्री औषधि के काम में ही करना चाहिए। इस [नि]श्चय के अनुसार प्रति बक्स ८२०० टेल (टेल=४॥ रु०) के [हि]साब से भाव ठहरा है। इसका मतलब यह है कि इन व्यापा-[रि]यों को डेढ़ करोड़ रुपया चीनी सरकार देवे। यह रकम चुकाने [के] लिए उसने प्रति वर्ष ६ सैकड़ा के हिसाब से कर्ज लिया है। [य]ह कर्ज चीनी सरकार दस वर्ष में चुकावेगी। इस प्रकार चीनी [स]रकार ने, कुछ दब कर ही क्यों न हो, पर बड़ी चतुरता से, अव-[श्य] इन योरोपियन व्यापारियों को सन्तुष्ट किया और अपने राष्ट्र को [व्य]सनमुक्त किया। इसके लिए उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, [थ]ोड़ी है। अवश्य ही चीनी सरकार को जब इस एक कार्य में सफ-[ल]ता प्राप्त हुई तब चीनी नवयुवकों का आत्मविश्वास बढ़ा और [न]वीन महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लेने का साहस उनमें उत्पन्न हुआ। [कि]सी कार्य में सफलता प्राप्त होने पर नवीन कार्य करने का उत्साह [स्व]ाभाविक ही बढ़ता है। यह अनुभव सब जगह देखा जाता है।

[illegible]—पिछले अंक में हमने यह वृत्तान्त दिया है [क]ि एक जापानी कोरियावासी और चीनी पुलिसवालों में मारपीट हो [क]र [illegible] में पांच छः जापानी सिपाही किस प्रकार मारे गये। इस [म]ारपीट का मौका साध कर जापान ने चीन के पास इस प्रकार का [illegible] भेजा था कि, "इस प्रकरण में चीनी सिपाहियों ने जापान [क]ी मानहानि की है, अतएव चीन सरकार को माफी मांगना [च]ाहिए, [illegible] चीनी सिपाहियों को नौकरी से अलग [करना] चाहिए, और मृत जापानी सिपाहियों के कुटुम्ब को [illegible] देना चाहिए, कुछ स्थानों में [illegible] के लिए जापानी सिपाही रखना चाहिए, [illegible] फौजी अधिकारियों की नियुक्ति भी [illegible] चाहिए, [illegible] चाहिए।" वस्तुतः इस विषय में [illegible] [illegible]

जापान का संरक्षित राज्य बनना है। परन्तु जापानी समाचारपत्र यही चिल्ला रहे हैं कि इस विषय में जापान ही दब गया है।

जापान और अमेरिका का झगड़ा—जापानी वकील ने अभी हाल ही में प्रकट किया है कि चीनी मामले में जापान और अमेरिका का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण है। यही नहीं, बल्कि चीन में रेलवे और व्यापार की वृद्धि करने के लिए चीनी सरकार जो कर्ज लेनेवाली है वह जापान और अमेरिका दोनों मिल कर सहकारी सिद्धान्त पर [दे]ंगे। परन्तु यह सहकार्य करने की प्रवृत्ति टिकाऊ नहीं जान पड़ती। जापानी लोगों को अमेरिका में समानता की हैसियत से नहीं रखा जाता; किन्तु उन्हें एशियाटिक कह कर नीचे दर्जे का समझा जाता है, इस लिए जापानी राष्ट्र सदैव अमेरिका से क्रोधित रहता है। कुछ दिनों से कितनी ही अमेरिकन रियासतों में जापानी लोगों [के] लिए प्रतिबन्धकारक कानून बनने लगे हैं। इस से जापानी समाचारपत्र अत्यन्त कुपित हुए हैं। एक पत्र कहता है, "जर्मनी और संयुक्त रियासतों में जैसा वितुष्ट उत्पन्न हो गया है वैसा ही अमेरिका और जापान में भी उत्पन्न हो जाने की बहुत सम्भावना है। जापानी लोगों के विरुद्ध जो कानून अमेरिका में पास हो रहे हैं वे उसी स्वरूप के हैं जैसा कि जर्मनी ने अमेरिका के विरुद्ध बर्ताव किया है। अतएव ऐसी दशा में यदि जापान और अमेरिका में कोई अनिष्ट प्रसंग आ खड़ा होगा तो उसकी जवाबदारी अमेरिका पर ही आवेगी। क्योंकि अब जापान ऐसी बातों को सहन नहीं कर सकता"। इन वाक्यों से इस बात का अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि हवा का रुख किस तरफ है।

जापानी व्यापार की विलक्षण वृद्धि—महायुद्ध के कारण जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है उसका मौका साध कर अपने उद्यम-व्यवसाय बढ़ाने का और अपना माल परदेश में खूब खपाने का जो उत्साह जापान ने दिखलाया है वह प्रशंसनीय है। जापानी सरकार ने एक व्यापारी कमीशन इस बात की जांच के लिए नियत किया है कि इस महायुद्ध के समय में और इसके बाद जापान देश का व्यापार किस प्रकार बढ़ेगा और स्थायी होगा। यह कमीशन चीन, इंडो-चायना, भारत, श्याम, फिलिपाइन, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण आफ्रिका, कनाडा, संयुक्त राज्य, रूस, मध्ययूरप, और नार्वे इत्यादि देशों में घूम कर औद्योगिक जानकारी प्राप्त करेगा। लेकिन, सिर्फ कमीशन नियुक्त कर के ही जापान चुप नहीं रहा; किन्तु माल उत्पन्न करने में भी वह खूब प्रयत्न कर रहा है। उदाहरणार्थ, जब से महायुद्ध शुरू हुआ, जापान ने लगभग डेढ़ लाख टन के [illegible] जहाज तैयार कर इंगलैंड, नार्वे और स्पेन के हाथ बेचे हैं। इसके सिवाय, मोजे, बनियान, इत्यादि प्रकार का—अर्थात् जिसे अंगरेजी में 'होजरी' (Hosiery) कहते हैं, उस जाति का—माल जापान ने गत वर्ष पहले से तिगुना उत्पन्न किया! युद्ध के पहले जापान का यह माल केवल भारत में ही खपता था। पर जब से युद्ध शुरू हुआ, इसकी खपत इंगलैंड तक में होने लगी है। पहले इंगलैंड में यह माल जर्मनी से आता था, अतएव लड़ाई के कारण वहां से इस माल का आना बन्द होगया। जापान ने इस कमी को पूर्ण करना स्वीकार किया और अपने कारखाने बढ़ा कर [illegible] का काम तैयार करना शुरू किया। पर गत वर्ष इंगलैंड ने एकाएक इस माल का आना बन्द कर दिया। तब तो जापानी व्यापारी [बहु]त घबराये। उनकी ओर से जापानी वकीलों ने बहुत कुछ [illegible] की; इस लिए अब फिर एक बार इस विषय में विचार करने का वचन इंगलैंड ने दिया है; और इस लिए जापानी समाचारपत्र इंगलैंड के सौजन्य की प्रशंसा करते हैं, पर इस घटना से इन लोगों को यह शंका अवश्य हो गई है कि अब न जाने युद्ध बन्द होने पर हमारे माल को इंगलैंड का ग्राहक मिलेगा या नहीं। इस लिए जापानी व्यापारी कहते हैं कि भारत और चीन [illegible] के ग्राहकों को खूब मजबूती से पकड़ना चाहिए। [illegible] मोजे और बनियान, इत्यादि हमारे देश के [illegible] है कि बहुत उत्तम, अर्थात् योरोपियन ढंग का माल [illegible] [illegible]

स्वर्गीय श्रीयुत सीताराम विश्वनाथ पटवर्धन।

रावबहादुर सीताराम विश्वनाथ पटवर्धन पूने के सुप्रतिष्ठित रईसों में से थे। गत १२ एप्रिल को आपका ७७ वर्ष की अवस्था में देहान्त होगया। इनका जन्म ३० मार्च सन् १८४० को एक बहुत ही गरीब ब्राह्मण के घर में हुआ था। ये उन लोगों में से एक थे जो कि अपनी योग्यता और उद्योग से ही अत्यन्त दरिद्रता से एक ऊंची स्थिति प्राप्त करते हैं। इनका चरित्र सर्वसाधारण लोगों के लिए बहुत ही आदरणीय और उपदेशप्रद है।

१५ वर्ष की उम्र तक राजापुर नामक अपने गाँव की पाठशाला में इन्होंने मराठी का अध्ययन किया। १६ वें वर्ष शिक्षक की परीक्षा दे कर नौकरी करना चाहते थे; पर कोई अच्छी जगह न मिलने के कारण ये आगे विद्याध्ययन करने के लिए पूने चले आये। पूना गरीब विद्यार्थियों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का एक अच्छा स्थान है। यहां किसी न किसी धर्मात्मा की ओर से विद्यार्थी को कुछ न कुछ आश्रय मिल ही जाता है। इसके सिवाय 'मधुकरी' (पका पकाया अन्न) भिक्षा मांग कर उसी से भोजन-निर्वाह चलाने की भी प्रणाली यहां विद्यार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रही है। तदनुसार विचार कर के सीताराम महाशय अपने गाँव से पूना को आने के लिए तैयार हुए। तैयार तो हुए; परन्तु उनके गाँव राजापुर से पूना कई मंज़िल दूर था; और पास में पैसा नहीं था। ऐसी दशा में परमात्मा की कृपा से पंढरपुर जानेवाले एक सज्जन का साथ हो गया। उसके साथ सितारा ज़िले तक आप आये; अब आगे बढ़ना आपके लिए बहुत कठिन था; तथापि किसी न किसी तरह, अनेक कष्ट सहते हुए, आप पूने आ ही तो पहुँचे। पूने आ कर आप एक सज्जन के आश्रय से रहने लगे; और मधुकरी वृत्ति से अपने भोजन का निर्वाह कर के विद्याध्ययन करने लगे। पूना ट्रेनिंग कालेज की प्रवेशपरीक्षा उन्होंने दी; पर छात्रवृत्ति नहीं मिली। अतएव सन् १८५९ में, १९ वर्ष की अवस्था में, उन्होंने, उसी प्रकार भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करते हुए पूना हाईस्कूल में अंगरेज़ी पढ़ना प्रारम्भ किया। उस समय रे० गालब्रेथ पूना हाईस्कूल के हेड मास्टर थे। सीताराम महाशय की गणितशास्त्रविषयक निपुणता देख कर ये बड़े खुश हुए और उन्होंने उन्हें आठ रुपये की छात्रवृत्ति प्रदान की। सन् १८६५ में, वे इन्ट्रेन्स पास हुए; और एलफिन्स्टन कालेज में जाकर भरती हुए। यहां उन्हें दो वर्ष तक २०) मासिक छात्रवृत्ति मिलती रही। बी० ए० में सीताराम जी दो वर्ष फेल हुए, पर अन्त में मराठी ऐच्छिक विषय ले कर वे पहली श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। परन्तु बी० ए० होने के पहले ही सीताराम जी को ५०) मासिक की, डिप्टी इन्स्पेक्टर की, जगह मिल चुकी थी। पूना और शोलापुर ज़िले में कुछ काल डिप्टीइन्स्पेक्टर का कार्य करने के बाद १८७४ में वे पूना ट्रेनिंगकालेज के प्रिंसिपाल हुए। ३ वर्ष बाद १८७८ में उन्हें दक्षिण विभाग के इन्स्पेक्टर की कायम-मुकामी जगह मिली। आगे १८८४ में वे इसी जगह पर स्थायी हो गये। यह स्थान यूरोपियनों के लिए था, सीताराम जी पहले ही देशी महाशय थे, जिन्होंने इसे प्राप्त किया। सन् १८८४ में वे बरार प्रान्त के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर हुए। इस श्रेष्ठ पद पर वे १८९९ तक रहे। बीच में सन् १८९७ में सरकार ने उनकी कार्यवाही से सन्तुष्ट हो कर रावबहादुर की उपाधि से विभूषित किया। सन् १८९९ में आप पेंशन ले कर पूने में आ रहे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सीताराम महाशय, अपने निज के गुणों से, उद्योग और कर्तव्यशीलता से ही इतने उच्च पद तक पहुँचे। बम्बई सरकार ने समय समय पर इनकी कर्तव्यदक्षता की प्रशंसा की है। आपकी अनेक पुस्तकें पाठशालाओं में प्रचलित हैं। जिनसे आपको हजारों रुपये का लाभ हुआ है; अब भी हो रहा है।

सीताराम महाशय को वेतन बहुत ऊंचा मिलता था और व्यय परिमित तथा अत्यन्त व्यवस्थित था; इस कारण सम्पत्ति इनके पास बहुत सी एकत्र हो गई। दुर्भाग्यवश उनकी स्त्री, नवजवान और विवाहित दो लड़के और बाद को एक लड़की भी मर गई। इस प्रकार कुटुम्ब में उनका निज का प्यारा कोई मनुष्य नहीं रहा। परन्तु दैवी आपत्तियों से घबड़ा कर और निराश हो कर उन्होंने अपनी व्यवसायशीलता नहीं छोड़ी। अनेक प्रकार के उद्योग और व्यवसाय कर के अन्त तक वे अपनी सम्पत्ति को बढ़ाते ही रहे। सीताराम जी में कुलाभिमान और जात्याभिमान बहुत था। उन्होंने अपने माबाप, स्त्री और लड़कों के स्मरणार्थ जगह जगह दान दिये हैं; और संस्थाएं खोली हैं। जैसे उनकी जन्मभूमि राजापुर में उनके पिता के नाम पर विश्वविद्यालय जारी है। उनके बड़े लड़के स्वर्गवासी प्रल्हादराव के नाम पर, यूनिवर्सिटी के द्वारा "प्रल्हादसीतारामस्कालरशिप" नामक छात्रवृत्ति जारी है। उसी प्रकार दूसरे लड़के स्वर्गीय गंगाधरराव के नाम से भी कालेज आफ इंजिनियरिंग में छात्रवृत्ति दी जाती है और यहां के फीमेलहाईस्कूल में सीताराम जी की पत्नी स्वर्गीया श्री० जानकी बाई के नाम से भी कुछ सम्पत्ति दी हुई है। अपनी माता सरस्वतीबाई के स्मरणार्थ यहां शहर में एक बड़ा मकान खरीद कर "सरस्वती मन्दिर" के नाम से सीताराम जी ने यहां की प्राज्ञपाठशाला को दान किया है। इसके सिवाय पूना हाईस्कूल, एलफिन्स्टन-कालेज, फर्गुसनकालेज, नूतनमराठीविद्यालय, न्यू इंगलिशस्कूल, नेटिवइन्स्टिट्यूशन, इत्यादि अनेक शिक्षणसंस्थाओं को भी सीताराम महाशय ने समय समय पर अच्छा दान दिया है। गोखले महाशय की भारतसेवकसमिति को पांच हजार रुपये दिये हैं। इसके सिवाय डेक्कन जीमखाना, हिन्दू जीमखाना, इत्यादि व्यायामशालाओं को भी आप से सहायता मिली है। डेक्कनबैंक, लक्ष्मीबैंक, मर्चेंटाइलबैंक, इत्यादि बैंकों से इनका सम्बन्ध रहा है। डेक्कनक्लब, भारतविज्ञान-

संशोधकमंडल, नेटिव-जनरल-लाइब्रेरी, डेक्कनवर्नाक्युलर सोसायटी, इत्यादि संस्थाओं के सीताराम जी समासद थे। ट्रस्टी की हैसियत में इन्होंने भिन्न भिन्न संस्थाओं में जो कार्य किया है वह बहुत प्रशंसनीय है।

सीताराम महाशय में अनेक ऐसे गुण थे जो धनवान् और रईस लोगों के लिए अनुकरणीय हैं। निर्व्यसनता, दृढ़ता, प्रबन्धशक्ति, कार्यतत्परता, इत्यादि गुणों के साथ साथ सादगी भी उनमें थी। मितव्ययिता का गुण उनमें बहुत था। रहनसहन सादी, भोजन नियमित और सुधा हुआ था। शिक्षाविभाग के सर्वोच्च अधिकार पर रहते हुए भी उन्होंने अपना कर्तव्य बहुत ही उत्तम प्रकार से बजाया। सरकार की खुशामद कर के उन्होंने यह उन्नति प्राप्त नहीं की; किन्तु अपनी कर्तव्यदक्षता और दृढ़ता के बल पर उन्होंने शिक्षा विभाग के सर्वोच्च पद को प्राप्त किया। उनके आचरण की दृढ़ता के विषय में उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। सन् १९१४ में जब लोकमान्य तिलक मंडाले की जेल से छूट कर पूने आये तब सीताराम महाशय उनसे मिलने गये थे। उस समय, सरकार के शत्रु से प्रेमभाव रखने के पातक पर, उनको 'वार्निंग' (चेतावनी) भी मिला था। सीताराम महाशय यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कभी किसी राजनैतिक हलचल में भाग नहीं लेते थे, तथापि हमारे पाठकों को ऊपर के वृत्तान्त से मालूम ही हो गया होगा कि अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से उनका सम्बन्ध था; और धन की सहायता के अतिरिक्त तन और मन से भी वे संस्था, समय समय पर, उनको उचित सहायता दिया करते थे।

सीताराम महाशय ने यद्यपि अपनी लड़कियां सुधारक लोगों से ब्याही थीं, परन्तु वे सर्व प्राचीन परम्परा के ही अनुसार बर्ताव करते थे। पूजापाठ, श्रेवदैवपूजन, इत्यादि धार्मिक नित्यकृत्य वे नियमानुसार करते थे। कुलाचार के पालन क[...] ध्यान था। और कुलाचार कभी भंग न हो[...] उन्होंने हाल में दत्तक पुत्र भी ग्रहण किया—ऐस[...] पेंशन लेने के बाद उन्होंने तीर्थयात्रा भी खूब की। [...] में वे काशी की यात्रा को गये थे। वहां से लौट[...] में अपने भाई श्रीयुत केशवराव पटवर्धन वकील [...] और वहीं साधारण ज्वर से गत १२ एप्रिल को [...] अपनी जीवनयात्रा का अन्तिम दिन उन्होंने अपन[...] कर रखा था। और आश्चर्य की बात है कि [...] इत्यादि सब ठीक निकला; परन्तु तिथि में चार [...] गया। अपने निश्चित किये हुए मृत्यु-दिन पर पूना में [...] त्याग करने वाले थे; और इसी कारण काशी[...] उन्होंने शीघ्रता भी की थी; पर कुछ दिनों का [...] बीच ही में उनका अन्त हो गया! कहते हैं कि[...] यदि जीवित रहते तो उनके द्वारा और भी [...] सहायता मिलने की सम्भावना थी।

अस्तु। सीताराम महाशय का उपर्युक्त च[...] पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि साहस [...] सहिष्णुता, कर्तव्यदक्षता, दृढ़ता, मितव्ययिता, [...] विद्याप्रियता, इत्यादि गुणों से मनुष्य किस प्रक[...] स्थिति से ऊपर उठ कर धन, मान और कीर्ति प्रा[...] में अपना नाम छोड़ जाता है।

हां, यह बतलाना रह गया कि, श्रीमान् सीत[...] हमारी काशीनागरीप्रचारिणीसभा के स्थायी स[...] हिन्दीभाषा तथा नागरी अक्षरों के सार्वत्रिक प्र[...] पाती थे।

काव्यचन्द्रिका श्रीमती राधाबाई आपटे।

अंगरेज़ों का मशहूर "टैंक" नामक ग[...]

शान्ति-निकेतन।

(लेखक—श्रीयुत प० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, आसाम।)
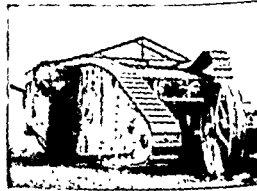
वसन्त की सुन्दर-सन्ध्या में इस एकान्त स्थान में अकेली योगासन से बैठी क्या कर रही हूं? यही पूछते हो!—क्या तुम्हारे आंखें नहीं हैं? देख नहीं पड़ता कि देवी-पूजा कर रही हूं? पंडितगण कह गये हैं कि नर्क द्वार और विष स्त्री ही है। किन्तु मेरे जीवन की सुधा और पवित्रता भी एक स्त्री ही है। उसी नारी की, साक्षात् देवी की, पूजा कर के उसकी चिता पुष्प मालाओं से विभूषित कर के इस घृणित-जीवन को धन्य कर रही हूं।

क्या कहते हो? मुझे देख कर मुग्ध हुए हो? अपना हृदय एक क्षणार्ध ही में मुझे सौंप दिया? अपने हृदय की पूजा, प्राणों का प्रेम, धन, रत्न, समस्त मेरे चरणों में समर्पण करने के लिये प्रस्तुत हो गये? प्राणों का प्रेम! हा! हा! पुरुषों के प्राणों का प्रेम किसको कहते हैं, क्या तुम लोग (पुरुष) जानते हो? तुम लोग जानते हो—केवल शठता, नीचता, प्रवंचना, प्रतारणा, नारी-हृदय लेकर क्षण-मात्र का खेल, मोह-वश दो दिन के लिये उसे सप्तमस्वर्ग में चढ़ा देना और फिर दो दिन बाद अवसाद, पदाघात से नारी हृदय चूर्ण चूर्ण कर के, गर्वपूर्ण विजय-पताका उड़ाते हुए आनंद करना! यही तो तुम लोगों का प्रेम है? छिः छि!

वह अटल, गंभीर-प्रेम, हृदय प्रशस्तकारी, हृदय-हारी-प्रेम, निजस्व भूल कर *सर्वस्व-दानकारी-प्रेम, किसे कहते हैं? जानते हो? जो प्रेम* भला बुरा नहीं जानता, पाप, पुण्य नहीं पहचानता, जो प्रेम प्रेमास्पद का विचार नहीं जानता, जो प्रेम केवल जानता है—"मैं जान से अधिक चाहता हूं"—उस प्रेम का अर्थ जानते हो?

हां, आज तुम मुझे सर्वस्व दान करने के लिये प्रस्तुत हो अवश्य! आज मुझे हृदय में सर्वोच्च-स्थान देने के लिए तुम्हारा हृदय उत्सुक है! किन्तु कल? कल यदि मैं भग्न-हृदय हो कर, तुम्हारे पैरों के नीचे धूल में भी लोट कर रोऊं, तब भी क्या तुम मेरी ओर फिर कर देखोगे? अथवा रण-विजयी वीर की भांति, विजय-पताका उड़ाते हुए कोई दूसरा हृदय जय करने के लिये, महा समारोह के साथ, कहीं अन्यत्र यात्रा करोगे?

पुरुषों का प्रेम क्या है—यह मेरी नस नस में लिखा हुआ है। इस [illegible] वर्ष की आयु में, मैं क्यों योगिनी हुई—यह तुम्हारी ही तरह एक पुरुष के झूठे प्रेम का फल है। उसने भी एक दिन अपने हृदय की पूजा, प्राणों का प्रेम मेरे चरणों में समर्पण कर दिया था। केवल एक ही चीज़ उसने नहीं सौंपी थी—श्रद्धा।

(२)

मेरी जीवन-कहानी सुनना चाहते हो! अच्छा, सुनो! वृथा [illegible] में अधिक समय नष्ट करने का मुझे अवसर नहीं। सुतरां संक्षेप ही में कहानी कहूंगी। कुछ उधर हट कर बैठिये, जिससे [illegible] छाया भी देवी की मूर्ति को न स्पर्श करे। सुनिये।

मैं एक किसान की बेटी थी। हैं! चौंक क्यों पड़े? किसान-कन्या इतनी रूपवान्, यह सोच कर? और एक आदमी ने भी एक दिन इसी बात पर आश्चर्य प्रगट किया था। मेरी माता मेरे लड़कपन ही मर चुकी थीं। पिता मुझ पर बहुत प्रसन्न रहते थे। पत्नी-शोक [illegible] कर वे मेरे लालन पालन में मग्न रहा करते। बहुत छोटेपन [illegible] बातें तो याद नहीं, किन्तु जहां तक स्मरण है, वे नित्य प्रातः उठ कर भोजन बना मुझे खिला देते, और तब स्वयं खाकर [illegible] को जाया करते, साथ साथ मैं भी जाती। संध्या समय घर आकर पिता पुनः भोजन बनाते और मुझे खिला देते, तब खाते। खाने, पीने के बाद सिर उनकी गोद में रक्खे हुए, उनके मुख से कहानियां सुनते सुनते, मैं कब सो जाती, नहीं कह सकती। पिता के अधिक स्नेह के कारण, माता का अभाव मुझे नहीं मालूम होने पाया।

मेरी १३ वर्ष की आयु में, पिता वात-व्याधि से ऐसे बीमार हुए कि उठने बैठने की शक्ति भी जाती रही। घर में जो कुछ सामान्य धन-धान्य था, उसी से निर्वाह होता रहा। व्याधि भयंकर होने पर वैद्य के बुलाने का विचार हुआ। किसी ने कहा कि कानपुर से एक बाबू यहां आये हुए हैं, वे डाक्टरी भी जानते हैं। एक लड़के को भेज कर उन्हें बुलवा भेजा। किस कुसाइत में उनको बुलवाया था—नहीं जानती! उनका आना ही मेरे सर्वनाश का कारण हुआ।

वे नित्य पिता को देखने आते। घर में और किसी के न होने के कारण, मुझे ही पिता की शय्या के पास उपस्थित रह कर डाक्टर बाबू से आवश्यक बातें करनी पड़तीं। अपरिचित पुरुष के साथ यही मेरी पहिली बात-चीत थी। डाक्टर के सुन्दर चेहरे और सुशीलता पर मैं कुछ मुग्ध सी होगई। वे भी प्रयोजन से, एवं अप्रयोजन से भी, मुझे बुला कर बातचीत करते। पिता की व्याधि क्रमशः बढ़ती ही गई। वे भी समझ गये कि अब बचना कठिन है। एक दिन पथ्य ले कर पिता की कोठरी को जा रही थी कि द्वार पर पहुंच कर क्या सुनती हूं कि, पिता कह रहे हैं—"डाक्टर बाबू! अब मेरे बचने की आशा नहीं! मुझे अपनी प्रिय-कन्या के लिये बहुत चिंता है। उसका विवाह कर के मरता, तो कोई चिंता न रहती।" *पिता का कण्ठ-स्वर दुःख एवं नैराश्यपूर्ण था। उत्तर में डाक्टर की* बातें सुन कर मेरा शरीर कांपने लगा। उन्होंने पिता से कहा कि मेरे रूप और गुण से वे मुग्ध हैं और पिता की सम्मति पाने पर वे मेरा पाणि-ग्रहण करने को प्रस्तुत हैं। पिता ने सविस्मय कहा—आप बाबू, बड़े आदमी! किसान की कन्या से विवाह करेंगे? तदुत्तर में उन्होंने पिता से कहा—"मैं भी तो देहाती ही किसान का लड़का हूं। मेरे भी कोई नहीं है। इसी गांव में रह कर डाक्टरी करूंगा। आप किसी प्रकार का संदेह न कीजिये।" आनंदवश विह्वल हो कर पिता ने कहा—"परमात्मा आप का भला करे।" मैं फिर कोठरी के भीतर नहीं जा सकी। साबूदाना की कटोरी फेंक कर अपनी कोठरी में जा कर चारपाई पर लेट रही। हर्ष-विषाद दोनों ने इकट्ठा आकर मेरे हृदय में एक तूफान सा पैदा कर दिया। दुर्बल शरीर अत्यंत आनंद सह न कर सका। रात्रि में सहसा पिता की अवस्था बहुत ही ख़राब हो उठी। दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे हृदय के देवता को मुझे सौंप कर, हम दोनों को आशीर्वाद देते हुए, पिता जी चल बसे। मृतक-संस्कार के बाद शुभ दिन में उन्होंने मेरा पाणि-ग्रहण कर लिया। विवाह किस को कहते हैं, नहीं जानती थी, न कभी देखा ही था। एक दिन एक पंडित को लिवा ला कर वे कहने लगे—"आज विवाह होगा।" पंडित ने मेरा हाथ उनके हाथ में दे कर शुभ मंत्र पढ़े। विवाह हो गया। दो वर्ष सुख से कट गये। इन्हीं दो वर्ष में कुछ कुछ लिखना पढ़ना भी उन्होंने मुझे सिखा दिया। किसान की कन्या, भले आदमी के घर में रहने योग्य बन गई। दूसरे वर्ष के अन्त में मैंने प्रथम पुत्र प्रसव किया। तीसरे वर्ष के मध्य में उन्होंने एक दिन कहा—"विशेष प्रयोजनवश मुझे आज कानपुर जाना होगा। वहां का काम समाप्त कर, कुछ दवाइयां लेकर एक मास के भीतर ही लौट आऊंगा।" विवाह होने के बाद से आज तक एक दिन का भी विच्छेद नहीं हुआ था। अतः आसन्नविरह की कल्पनावश मैं बहुत कातर हो उठी। उन्होंने मुझे गोद में बिठा कर बहुत आदर-प्यार किया, एवं निद्रित पुत्र का मुख चुम्बन कर के उसी रात कानपुर चले गये। वही उनका अन्तिम दर्शन है। छै महीने तक कोई सम्वाद नहीं मिला। ठिकाना अज्ञात होने के कारण मैं भी कोई पत्र नहीं भेज सकी। दुःख एवं चिंतावश जर्जरित होकर मैं

शय्या-शायी होगई। छै महीने बाद एक दिन एक पत्र मिला। आनंद से अधीर हो कर पत्र खोला। पढ़ते ही वज्राहत सी हो गई। मैं उनकी परिणीता-पत्नी नहीं हूं! जिसने विवाह कराया था वह भी पंडित नहीं था—उन्हीं का एक मित्र था। वह विवाह नहीं, एक खेल हुआ था। वे पहिले ही एक जमींदार-कन्या के साथ विवाह कर चुके थे और वहीं ससुराल में रहते थे। ससुर के साथ मनोमालिन्य हो जाने के कारण, दो वर्ष से अज्ञात-वास में थे। किसी सम्वादपत्र में ससुर का मृत्यु-सम्वाद पढ़ कर, पुनः ससुराल को गये हैं। पत्र में उन्होंने यह भी जनाया है कि वे मुझे एकबारगी नहीं त्याग देंगे; बीच बीच दर्शन भी देंगे। एवं हम दोनों (माता, पुत्र) के भरण, पोषण का व्यय भी देंगे। पत्र पढ़ कर बड़ा दुःख हुआ। मेरा सब गर्व, आनंद, समस्त आशा, भरोसा एक क्षण में मिट्टी में मिल गया। क्या ऊब उठे? धैर्य-पूर्वक सुन सकोगे? अच्छा सुनिये—पत्र पढ़ कर, रोष और क्षोभवश पागल सी हो उठी। उन्हें और उनकी पत्नी को भी गाली और शाप दे कर उसी क्षण पत्रोत्तर भेज दिया। उनका भेजा हुआ मनीआर्डर भी वापस कर के लिख दिया कि अब भविष्य में कोई पत्र या मनीआर्डर भेज कर अथवा मेरे घर पर आकर वे मेरा अपमान न करें।

(३)

दो मास बीत गये। शरद् के एक निर्मल-प्रभात में एक शुभ्रवसना करुणमयी रमणी-मूर्ति ने आ कर मेरी कुटीर में प्रवेश किया। हम दोनों (माता, पुत्र) उस समय रोग-शय्या में पड़े हुए थे। जीवन की कोई आशा नहीं थी। उसी करुणमयी ने अपनी समस्त करुणा से हमारी सेवा करनी आरम्भ कर दी। मैं ने विस्मित हो कर कहा—"दीदी! तुम कोई भी क्यों न हो, इस घृणित की जीवन-रक्षा करने की चेष्टा न करिये। मृत्यु ही हमें श्रेय है।" मेरे दोनों हाथ थाम कर कोमल करुण-कण्ठ से उन्हों ने कहा—"बहिन! मृत्यु-कामना करना महापाप है। दयामय के इस विपुल-विश्व में किसी का भी जीवन घृणित नहीं। हृदय भर कर उन्हें पुकारने से वे सभी को अपनी शांतिमय शीतल गोद में स्थान देते हैं।"

यह दैवी भाषा पहली मैंने सुनी! सब शरीर और मन शीतल हो गया! पापी, तापी, सभी को वे जब अपनी शीतल गोद में स्थान देते हैं, तब मृत्युकामना क्यों करूं! फिर उन से प्रश्न किया—"दीदी! तुम हो कौन? साक्षात् देवी-मूर्ति इस अभागिनी की कुटीर में कहां से आ गई हो?" मुख नीचा कर उदासीन वदन से उन्हों ने कहा—"देवी नहीं, तुम्हारी ही तरह दुर्भागिनी ना[illegible] भी हूं। जाने के पहिले परिचय दे कर जाऊंगी, आज नहीं।"

हमारे आरोग्य होने पर जिस दिन उन्होंने बिदा मांगी मैंने [illegible]कता से पूछा—"दीदी! परिचय देने को आपने कहा था!" उ[illegible] सजल-नेत्रों को वस्त्रांचल से पोंछते पोंछते कहा—"बहिन! तु[illegible]ही पुत्र के पिता की मैं भी दासी थी"। उनके मन की भ[illegible] उस समय वर्णनातीत थी। नारी-हृदय इतना महान्! वे कि[illegible] ऊंचे और मैं कितनी नीचे! जिसके चरणों की धूल के भी [illegible] नहीं, उसे शाप दिया था। मेरे ही अभिशाप के कारण आज [illegible]मयी शुभ्रवसनाधारिणी हैं। मैं जिसे क्षमा नहीं कर सकी, उ[illegible] अपराधी स्वामी को तो उन्होंने क्षमा कर दिया है। केवल [illegible] नहीं, स्वामी के अपराध का भार अपने कंधों पर लिये फिरती [illegible] मैंने उनके पैरों पर लोट कर कहा—"देवी! देवी! मुझे भी [illegible] साथ ले चलिये! जीवन भर तुम्हारी सेवा कर के पाप का प्राय[illegible]श्चित्त करूंगी"

(४)

अपने घर ले जा कर उन्होंने मुझे भगिनी के स्थान पर प्रति[illegible] किया। पुण्यात्मा सती लक्ष्मी इस पापमयी पृथ्वी में अधिक [illegible] नहीं रहा करती! एक वर्ष बीतते बीतते वैधव्य-यंत्रणा भोग [illegible] मुझे अकेली छोड़ उन्होंने स्वर्गारोहण किया। लो! हो चुकी मेरी जीवन-कहानी। अब जाइये। मेरे पूजन में व्याघात हो रहा है। जिसने कभी पुरुषों के प्रेम को नहीं पहिचाना, उसे जाकर भ[illegible] प्रेम और हृदय की पूजा समर्पण करो! मैं अर्प की भी [illegible] नहीं हूं। यह जो दास-दासी-परिपूर्ण बृहत् अट्टालिका, फल-फूल-शोभित सुन्दर उद्यान, एवं पुष्प-वृक्ष-वेष्ठित, मर्मर वेदी शोभित, [illegible]हर तड़ाग देख रहे हो, यह समस्त मेरा और मेरे पुत्र का है। [illegible] सब अपनी सुख-सम्पत्ति हम को दान कर गई हैं। किन्तु [illegible] ऐश्वर्य मुझे सुखदान देने में असमर्थ है।

यह जो स्वर्ण-मूर्ति देख रहे हो, यह उन्हीं देवी की स्वर्ण-मूर्ति उनके चिता पार्श्व में स्थापन की है। नित्य संध्या, सवेरे [illegible] की पूजा कर के, यह चिता-स्थान पुष्प-मालाओं से विभूषित [illegible] के, परम शांति लाभ करती हूं। और यह जो कुछ [illegible] हो-यही मेरा "*शांति-निकेतन" है!

* श्रीऊर्मिलादेवी-लिखित "भारती" की "शांति-निकेतन" [illegible] अनुवाद।

बुढ़ापे की रोक।

लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी गोविन्द [illegible]।

इस संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है, और जो नाशवान हैं [illegible] हैं—बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य। अवश्य ही [illegible] बुढ़ापा अथवा वार्धक्य भी [illegible] है। पर [illegible] समय पर जो नाश होता है [illegible] है। चाहे बुढ़ापा हो, चाहे मृत्यु हो, [illegible] किन्तु [illegible] मृत्यु [illegible] है।

[illegible]

तक चलता है। परमेश्वर, अथवा उसे आप चाहे [illegible], कभी अपनी ओर से किसी को मारता नहीं। परमेश्वर [illegible] समय हमें जन्म देता है उस समय उसका उद्देश्य यही [illegible] कि मनुष्य अपने शरीर की अच्छी तरह रक्षा करे, बहुत [illegible] इस संसार में रहे, सब पुरुषार्थों को सिद्ध करे और जीवन [illegible] कृतकृत्य हो कर, देह का विसर्जन करे। और इसी लिए [illegible] शरीर में ऐसे सब गुण बीजरूप से रख दिये हैं कि [illegible] अवस्था इससे अधिक समय तक चलने में होती है। [illegible] की सम्पूर्ण आज्ञाओं को ताक में रख देते हैं, और [illegible] स्वार्थ के साथ इस शरीर के द्वारा मनमानी [illegible] हैं। अवश्य ही इसके बुरे परिणाम भी हम को भोगने पड़ते हैं।

दीर्घायु होना यदि मनुष्य के हाथ की बात है [illegible] देना भी उसके हाथ में होना चाहिए [illegible] शरीर में [illegible] न रहना, किसी काम में जी न लगना, [illegible] शिथिल पड़ना, अथवा बुढ़ापे के [illegible] लक्षण हैं। ये लक्षण जिनके देख [illegible] किस रूप में दिखता हो क्यों न हो, [illegible] बुढ़ापे ने घेर लिया। इस [illegible]

सभी को, इधर कुछ दिनों से बुढ़ापा बहुत जल्द घेरने लगा है। यही नहीं; किन्तु हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि आज कल हम में सभी नवजवानों का कहीं पता ही नहीं है। जिनके मुखमंडल निस्तेज हो गये हैं; आँखें बैठ गई हैं और सुझाई नहीं पड़ता; पचन-क्रिया मन्द हो रही है; कब्ज या मलावरोध की शिकायत रोज रहती है—इस प्रकार के, उम्र में छोटे; परन्तु वास्तव में बूढ़े, लोगों को देखने से विचारवान् मनुष्य का हृदय फट जाता है; और इस चिन्ता से चित्त व्याकुल हो जाता है कि ऐसे लोगों की आगे चल कर क्या दशा होगी। जिस प्रकार बाल्यकाल निश्चित है वैसे ही तारुण्यकाल भी निश्चित है। इन दोनों के आगे और बुढ़ापा के पहले एक प्रौढ़ावस्था नामक अवस्था आती है। हां, उसकी अवधि अथवा मर्यादा अवश्य ही कुछ निश्चित नहीं है। लोग कहते हैं कि साठ वर्ष की अवस्था होने पर बुद्धि सठिया जाती है; परन्तु यह बात हम बहुधा सुना करते हैं कि हमारे यहां पहले ८०।९० वर्ष तक की अवस्था के लोग बड़े उत्साही और कार्यक्षम होते थे; और अब भी कहीं कहीं ऐसा देखा जाता है। पाश्चात्य देशों में तो आज भी अनेक ऐसे उदाहरण मौजूद हैं। फिर हमारे ही समाज में यह कीड़ा क्यों लग गया है; हमने ऐसे कौन से पाप किये हैं और करते हैं, यह विचार करने का क्या अभी तक समय ही नहीं आया है? घर जल जाने पर फिर कुआं खोदने से क्या लाभ होगा? अस्तु।

हम समझते हैं कि जन्म होते ही काल पीछे लगता है; और यम के द्वार पर ले गये बिना यह हमारा पीछा नहीं छोड़ता। पर वास्तव में देखा जाय तो यह विचार कुछ उतना सत्य नहीं है, जितना कि हम मानते हैं। कर्म करने से जब मनुष्य नर का नारायण तक बन सकता है तब फिर काल की क्या कथा? क्या वह नारायण से भी बलवान् है? एक अमेरिकन डाक्टर कहता है—"दिन और रात्रि की माप लगा कर गणितज्ञों ने काल को उत्पन्न किया है। त्रैराशिक और मृत्यु का जितना सम्बन्ध है उतना ही काल और मृत्यु का भी है। काल मनुष्य को कभी नहीं मारता, रोगजन्तु ही उसे मारने का श्रेय ग्रहण करते हैं। बुढ़ापा और मरण, काल का हाथ पकड़ कर कभी नहीं आते। उसके दूत दूसरे ही हैं। वही सब खराबी करते हैं। यदि मनुष्य पहले ही से ऐसा प्रबन्ध कर रक्खे कि उन दूतों के सारे उपाय निष्फल हों, यदि मनुष्य यह निश्चय कर ले कि हम उनके जाल में नहीं फँसेंगे और इस निश्चय का बराबर यह पालन भी करता रहे, तो उन दूतों की कुछ भी दाल नहीं गलेगी। मतलब यह है कि यदि मनुष्य सदैव ऐसी सावधानी रक्खे कि जिससे उसकी शरीरभूमिका बिलकुल निर्मल रहे, उसका प्रत्येक परमाणु निर्विकार और दृढ़ रहे, उसका उत्तम प्रकार से पालन हो, उसे बहुत श्रम न पड़ने पावे, भीतर अथवा बाहर से उसे किसी की बाधा न होने पावे, और रोगजन्तुओं का प्रतीकार करने की शक्ति उसमें बनी रहे, तो काल के टुकड़े भी आप ही आप टूट जायँगे"। इससे हमारे पाठकों के ध्यान में यह बात भली भाँति आ जायगी कि काल के विषय में उक्त डाक्टर का यह कथन कैसा सत्य है।

अस्तु, अब इस बात का विचार करना चाहिए कि बुढ़ापे को रोकने के लिए कौन कौन से उपाय करने चाहिए। पहले तो इस विषय में सुप्रजोत्पादन का महत्व बहुत है। जन्म से ही जिसका शरीर निर्दोष होता है, सुदृढ़ होता है, उसके रोग आदि बातें सहज ही में [illegible] दीर्घायु प्राप्त होने की सम्भावना विशेष रहती है। परन्तु [illegible] बातों व दुराचार [illegible] मनुष्य की प्रकृति पर होता [illegible] है। ये [illegible] होने [illegible] रोकने को [illegible] प्रकृति [illegible] है। उस [illegible] का [illegible] होता [illegible] पर [illegible] रहता है। [illegible] मनुष्य के [illegible] होना [illegible] होगा। पर मनुष्य का [illegible] रहता। एक दिन वह [illegible] है तो, दूसरे दिन [illegible] है, एक दिन [illegible] है तो दूसरे दिन [illegible] करता है, [illegible] दूर [illegible] बुढ़ापा [illegible] है। [illegible] यह है कि [illegible] नहीं। [illegible] दिन [illegible] है, [illegible] करता है, [illegible]

कि विश्राम का नाम नहीं। इस विषम आचरण का स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। संसार में किसी बात का भी जो प्रभाव होता है वह किसी एक ही कारण से नहीं होता। उसके लिए अनेक कारण होते हैं। उनमें कुछ सहज निवार्य होते हैं, कुछ कष्टनिवार्य होते हैं; और कुछ अनिवार्य होते हैं। मनुष्य की प्रकृति के विषय में भी यही नियम उपयुक्त होता है। हमारी प्रकृति बिगाड़नेवाले कारणों में से सहज निवार्य और कष्टनिवार्य कारण निवारे जा सकते हैं। उन्हीं के निवारण का यदि हम प्रयत्न करें तो भी बहुत सा कार्य हो सकता है। रबर यद्यपि खींचने से बढ़ता है, तथापि उसके बढ़ने की भी मर्यादा होती है। मर्यादा से अधिक यदि वह बढ़ाया जायगा तो टूटे बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार मर्यादा के बाहर यदि परिश्रम किया जायगा तो शरीर पर उसका अनिष्ट परिणाम हुए बिना नहीं रहेगा। इस लिए मनुष्य को प्रति दिन कुछ न कुछ समय आनन्द में और हँसने खेलने में व्यतीत करना चाहिए। इस से मानसिक शक्तियां फिर ताज़ी और प्रसन्न होती हैं। मन की प्रसन्नता का शरीर पर बिलकुल जादू का सा प्रभाव पड़ता है। मन की प्रसन्नता में विश्रान्ति अथवा खेल से सहायता मिलती है अवश्य; परन्तु आध्यात्मिक विचारों का इस विषय में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इससे मनुष्य में यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि हमें केवल कर्त्तव्य करने का अधिकार है, फलाफल के हम मालिक नहीं हैं। इस प्रकार विचार उत्पन्न हो जाने पर फिर मनुष्य को सुखदुःख के चक्कर में नहीं पड़ना होता। अर्थात् उसकी शांति सर्वदा स्थिर रहती है। मन को शान्ति मिलने पर फिर शरीर का स्वास्थ्य खराब नहीं होता। इस लिए अपने आचरण की अस्थिरता मनुष्य को पहले छोड़ देनी चाहिए। अपनी दिनचर्या नियत कर के उसके अनुसार नियमितपन से बर्ताव करना चाहिए। बुढ़ापा शीघ्र न आने देने का पहला उपाय यही है।

साधुसन्तों का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है। आध्यात्मिक उन्नति से उत्पन्न होनेवाली मानसिक शान्ति ही इसका कारण है। अनेक साधु ऐसे होते हैं कि जिनकी अवस्था ही बतलाई नहीं जा सकती। प्रायः कितने ही वर्षों से हम उन्हें एकही सा देख रहे हैं। उनके ऊपर बुढ़ापे की छाया बिलकुल नहीं दिखाई देती। इस प्रकार की बातें अक्सर सुनाई देती हैं। यह दीर्घ तारुण्य उन्हें कैसे प्राप्त होता है, इसका विचार हमें करना चाहिए। इसके सिवाय सत्पुरुषों की वृत्ति बालकों के समान सदैव आनन्दित रहती है, यह भी न भूलना चाहिए। मनुष्य चाहे जितना बड़ा हो, उसे प्रति दिन कुछ समय लड़कों के साथ खेलना चाहिए। मनुष्य जैसे रहता है वैसा ही हो जाता है। यदि तरुण की तरह रहेगा तो उसकी तरुणावस्था ही कायम रहेगी। यदि बूढ़े की तरह रहने लगता है, इसी लिए बुढ़ापा उसे पछाड़ता है। बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि पति बूढ़ा हो जाता है, तथापि पत्नी उतनी बूढ़ी नहीं दिखाई देती। इसका कारण यही होता है कि उसके दिन के कई घंटे लड़कों की संगति में, अतएव आनन्द में, व्यतीत होते हैं। और पति का सारा दिन गम्भीर विचार में और चिन्ता में व्यतीत होता है। इससे उसका रक्त सूखता जाता है। चिन्ता से कहीं [illegible] हुए होते हैं!

[illegible] के सम्पूर्ण [illegible] का [illegible] मनुष्य को कर लेना चाहिए। इन [illegible] के [illegible] ही हमें चलना चाहिए। [illegible] चाहिए। इन [illegible] का [illegible] करने से शरीर की [illegible] ही [illegible] रहती है। शारीरिक [illegible] की [illegible] है। [illegible] का, [illegible] का, [illegible] का और [illegible] मनुष्य के [illegible] है। [illegible] चाहिए। [illegible] दिन [illegible] में [illegible] है। [illegible] शरीर है। इस लिए [illegible] चाहिए कि [illegible] है और [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

वाला अपनेवाले ऐसे अनेक व्यसनों के दास बने रहते हैं कि जो शरीर के लिए हानिकारक हैं! नानाप्रकार के दुष्ट खाद्य-पेयों के वे केवल दास होते हैं। इस प्रकार अनेक वर्ष तक वे अपने शरीर में रोगों की जड़ जमाने देते हैं; और जब वही रोगों की जड़ें वृक्षरूप में हो कर फैलने लगती हैं तब वैद्य या डाक्टर के पास दौड़ते हैं; और बड़ी दीनता से प्रार्थना करते हैं कि हमें अब इन रोगों से जल्दी मुक्त कीजिए। उस दशा में वैद्य भी क्या कर सकता है? यह तो मानों अपने घर में आप ही आग लगा कर चिल्लाते फिरना है। खान पान का अतिरेक न करने के विषय में दूसरों के चितावनी देने पर जो उनका उपहास करता है उसी को आगे फिर रोग-पीड़ित हो कर यातना भोगने की नौबत आती है।

आरोग्य सम्पादन करने के लिए बहुत बड़े आत्मनिग्रह की जरूरत रहती है। इन्द्रियों को और वासनाओं को वश में करना पड़ता है। अर्थात् एक प्रकार का वैराग्य स्वीकार करना पड़ता है। अनेक लोगों का कथन है कि वैसा करना बहुत कठिन होता है-कष्टदायक होता है, उसमें आनन्द नहीं आता। कहना सच है। पर विवेकवान् पुरुष के लिए शोभा नहीं देता। पशु को शोभा देगा। सच्चा सुख यों ही नहीं मिल जाता। उसके लिए लोहे के चने चाबने पड़ते हैं। नरक-प्राप्ति में भी श्रम पड़ता है; फिर स्वर्ग-प्राप्ति में तो अत्यधिक कष्ट होना ही चाहिए। कहां शरीरस्वास्थ्य का अखंड आनन्द और कहां इन्द्रियलोलुपता का क्षणिक आनन्द! स्वर्ग और नरक में जो अन्तर है वही इन दोनों आनन्दों में भी है।

किसी बात का भी अतिरेक अच्छा नहीं। वही मनुष्य को बुढ़ापे की ओर खींचता है। आहार, विहार, उद्योग, विश्रान्ति, इत्यादि बातों में अतिरेक होने से ही बुढ़ापा धर दबाता है। इस लिए "अति सर्वत्र वर्जयेत्।" मद्यसेवन से बुढ़ाई बहुत जल्दी आती है। मद्य का एक बूंद भी कोई न कोई हानि किये बिना नहीं छोड़ता; फिर जो लोग बोतलें की बोतलें ढकोलते रहते हैं उनकी बात ही क्या पूछना है? आज कल हम लोगों में कहीं कहीं चाय पीने का बहुत प्रचार हो रहा है, इसको भी मद्य का छोटा भाई ही समझना चाहिए। यह अग्नि को मन्द कर देता है; वीर्य को पतला करता है, और भी कई प्रकार से हानि पहुँचाता है। अस्तु। जो लोग जल्दी बुढ़ापा न बुलाना चाहते हों उनको इन नियमों का पालन करना चाहिए:—आहार सात्विक और परिमित होना चाहिए। जल्दी जल्दी भोजन कभी न करना चाहिए। भोजन खूब चबा चबा कर करना चाहिए। जो व्यायाम अपने लिए उचित जान पड़े उसका निश्चय कर के, बिना नागा उसे करते रहना चाहिए। उद्योग, विश्रान्ति और नींद, इत्यादि कार्य उचित रीति से नियमानुसार करना चाहिए। थोड़ा किन्तु नियमित आहार रखना चाहिए; भूख खूब लगने पर ही कुछ खाना चाहिए। यों ही हमेशा कुछ न कुछ खाते रहना चाहिए। दांत और नाक स्वच्छ रखना चाहिए। मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। चाहे जैसा समय आ जाय, मन की समता न भंग होने देना चाहिए। स्वदारनिरत रहते हुए [illegible] हो कर वीर्यरक्षा सदैव करते रहना चाहिए। ये सारे नि[illegible] साधारण और नित्य के परिचित हैं; परन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्य द्वारा इनका आचरण सदैव ही कठिन होता है; परन्तु कठिन [illegible] सहज किये बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस के सिवाय एक बात और भी है, कि आचरण में कठिनाई चाहे जितनी हो परन्तु अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।

अब इस विषय में, कि बुढ़ापे के आने का कारण क्या है, एक फ्रेंच सज्जन की सम्मति दे कर इस लेख को समाप्त करेंगे। उन सज्जन का नाम मेकनीकाफ था। वह अब जीवित नहीं है। वह बहत्तर वर्ष का हो कर मरा। उसने यह सिद्धान्त किया था पचनेन्द्रिय में जन्तुओं का प्रवेश होने से बुढ़ापा आता है। [illegible] नहीं तो अधिकांश में तो अवश्य ही ये जन्तु बुढ़ापा आने के [illegible] होते हैं। उसका कथन है कि भोजन के साथ ही उन जन्तुओं का हमारे शरीर में प्रवेश होता है; और यदि उन्हें वहां प्रतिकार नहीं मिलते तो वे जोर पकड़ते हैं। अपने इसी सिद्धांत के [illegible] सार वह हरा अथवा कच्चा कोई भी पदार्थ पेट में जाने नहीं [illegible] था। जो पदार्थ अच्छा पका हुआ होता था वही वह खाता [illegible] इसमें उसका उद्देश्य यह था कि जहां तक हो सके, हमारे पेट [illegible] जन्तुओं का प्रवेश कम हो; और भूल चूक से जो जन्तु पेट में [illegible] जाते थे उनका संहार करने के लिए वह सदैव तक्र (मठा) सेवन किया करता था। उसका मत था कि मठे में ऐसे जन्तु [illegible] हैं जो कि अपकारक जन्तुओं को मार डालते हैं। मृत्यु के [illegible] पहले से उसका यही क्रम जारी था। बहत्तर वर्ष की अवस्था [illegible] उसकी मृत्यु तो जरूर हुई; परन्तु उस समय भी उसके शरीर [illegible] बुढ़ापे का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता था, वह हृदय के विकार से मरा [illegible] उसे यह मालूम भी था कि मेरी मृत्यु इसी रोग से होगी। [illegible] उसका हृदय कमज़ोर था। उसके शिष्य भी बहुत थे। उस [illegible] अपने चेलों से वचन ले लिया था कि मरने के बाद वे उसके शरीर को चीर कर देखेंगे। तदनुसार चेलों ने उसके शव को [illegible] और परीक्षा के बाद उन्हों ने क्या देखा कि उस [illegible] के अन्य लोगों की अपेक्षा उसकी अन्तरिन्द्रियां बहुत [illegible] मज़बूत थीं।

कुछ यह बात नहीं है कि इस महाशय के सिद्धांत सभी [illegible] को मान्य हुए हों। परन्तु इस विषय में वहां के लोगों का [illegible] नहीं है कि उसकी प्रणाली से दीर्घायु होने में बहुत कुछ [illegible] मिल सकती है। भोजन का हमारे शरीर पर बहुत [illegible] पड़ता है, यहां तक कि साधारण मनुष्य उसकी कल्पना [illegible] कर सकता। पथ्यकारक और सात्विक भोजन करने [illegible] मनुष्य करेगा वह निस्सन्देह दीर्घायु हो सकेगा।

विनय।

(लेखक—[illegible])

प्रभो! अब दीजे यह वरदान।

[illegible]

हिन्दी को धर ध्यान॥
हिन्दी के हित अर्पण कर दें,
तन, जीवन, धन, प्राण॥
गावें नित-गीत हिन्दी के,
हों हिन्दी [illegible]॥
'[illegible]' हिन्दी की [illegible],
हिन्दी भाषा-राष्ट्र बनावें॥
हिन्दी की जय [illegible] करें,
[illegible]॥

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का मई मास ।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए० ।)

एप्रिल मास की तरह मई मास में भी फ्रान्स की रणभूमि में भयंकर लड़ाइयां हुईं। इन लड़ाइयों में एंग्लो-फ्रेञ्च सेना का कदम कुछ आगे बढ़ा। पर एप्रिल मास के हिसाब से आगे बढ़ने की यह गति बहुत मन्द हुई है। एप्रिल के अन्त में जर्मनों के उलटे हमले शुरू हुए, और मई मास में जर्मनों ने एंग्लो-फ्रेञ्चों के इतने ही हमले किये; और जर्मन हलचल में, शांपेन प्रान्त में, फ्रेञ्चों पर ही उलटे चढ़ाई करने का रंग दिखाई देने लगा। जर्मनों की यह हलचल मई मास में कदाचित् विशेष प्रबल हुई होती, परन्तु इसी के लगभग इटली ने अपनी पूर्व सरहद पर उत्तरी सिरे से नीचे ट्रिस्टी तक आस्ट्रिया पर प्रबल हमले कर के ट्रिस्टी की ओर आस्ट्रिया को कुछ मील पीछे हटाया। इस लिए फ्रांस में जर्मनी का जोर कम हो गया। और इटालियन रणभूमि ने ही सब का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। पहले हमले में तो इटली की अच्छी जीत हुई, और जान पड़ा कि ट्रिस्टी की ओर इटली की मुहिम को अब सफलता अवश्य प्राप्त होगी। यह सन्तोष की बात है कि इस काम में अँगरेजी तोपों ने इटली को अच्छी सहायता दी। इटली के पास मनुष्यबल पूरा पूरा है। पर गत वर्ष तोपों की बड़ी कमी थी; और इसी कारण ट्रेंटिनो प्रान्त में इटली को नीचा देखना पड़ा था, पर इस वर्ष तोपों की कमी अँगरेजों के दीर्घोद्योग से पूर्ण होगई और इस लिए गत वर्ष की अपेक्षा इटली आज विशेष शक्तिशाली है। मई मास में इटली ने यह अपनी नवीन शक्ति बहुत कुछ प्रकट की है। पर चूंकि रूस की ओर सब जगह सुनसान ही रही, इस लिए आस्ट्रिया अपनी सेना और तोपें इटली की ओर भेज सका; और एक ही दो सप्ताह में इटली को अपना [illegible] लेने का [illegible] रोकना पड़ा। सम्पूर्ण मई मास भर फ्रांस की रणभूमि की जो दशा रही वही दशा मई के अखीर में और जून के शुरू में इटली की रणभूमि की भी हुई। जून के प्रारम्भ में एंग्लो-फ्रेञ्च और इटालियन सेना आस्ट्रो-जर्मनों को दिन पर दिन बड़ी प्रबलता से लड़ रही है। दोनों दल एक दूसरे पर समान ही प्रबल हमले कर रहे हैं। अब यह दशा नहीं रही कि एंग्लो-फ्रेञ्च और इटालियन लोग हमले करें, और जर्मन केवल बचाव के युद्ध में लिप्त रहें। उलटे हमले करने का काम आस्ट्रो-जर्मनों ने भी [illegible] से प्रारम्भ किया है। और जर्मनों का यह [illegible] देख पड़ने लगा है कि एंग्लो-फ्रेञ्च तथा इटालियन सेना को शान्ति नहीं लेने देंगे। एप्रिल और मई के दो महीनों में फ्रांस और इटली की रणभूमि में लगभग एक लाख जर्मन सेना कैद कर ली गई है और [illegible]

ली गई हैं! तिस पर भी जून के प्रारम्भ में जर्मनी नवीन तोपें लाया; और हठ से प्रबल हमले करने में उसने कुछ भी शिथिलता नहीं दिखलाई। अँगरेजों ने भी मई के अन्त में नवीन प्रबल चढ़ाई की है; और जून के प्रारम्भ में तोपों की भयंकर मार शुरू की है। इन सब चिन्हों से यह कहने में कोई प्रत्यवाय नहीं जान पड़ता कि जून और जुलाई मास में फ्रांस की रणभूमि में ही घनघोर युद्ध होगा, और इटली की रणभूमि भी खूब जगी रहेगी। मार्च, एप्रिल और मई के तीन महीनों में जो लड़ाइयां फ्रांस में प्रबलता से जारी रही हैं वे आगे और भी दो तीन मास वैसी ही प्रबलता से अवश्य जारी रहेंगी। यह घनघोर युद्ध जो छै महीने चलनेवाला है, उसका मध्य जून मास ही है; और इस लिए कदाचित् इस मास में पिछले महीनों से भी अधिक जनसंहार होगा। जून और जुलाई के महीनों में दोनों दलों का हठ अपनी सीमा को पार कर जायगा। युद्ध का अन्त कर लेने के इरादे से, और कई मौकों पर फौजी नीति भी एक ओर रख कर तथा हानि लाभ को मन में न ला कर, और संहार का खून जोश में आने के कारण, खूब लापरवाही के साथ, इन दिनों युद्ध होगा, और फ्रांस तथा इटली की रणभूमि में रक्त की नदियां बह निकलेंगी। क्योंकि जून और जुलाई के दो महीने भी एप्रिल और मई मास की भांति ही महायुद्ध के इतिहास में बड़े महत्व के गिने जायँगे। एप्रिल और मई मास में फ्रांस में ऐसी लड़ाइयां हुई हैं कि जो, जिन्हें की दृष्टि से न सही तो, जनसंहार की दृष्टि से तो अवश्य ही प्रथम श्रेणी की कही जायँगी। इतना बड़ा जनसंहार इन दो महीनों में हुआ है। ऐसे उदाहरण प्राय युद्धों में भी बहुत ही कम मिलेंगे। करीब करीब एक लाख जर्मन सेना कैद की गई। अवश्य ही हताहत लोगों की संख्या चार-पांच लाख लोगों से अधिक होनी चाहिए। इन दो महीनों में आक्रमण करने का कार्य एंग्लो-फ्रेञ्चों के ऊपर था। आक्रमण के युद्ध में आक्रमण करनेवालों की हानि विरुद्ध दल से तिगुनी चौगुनी अधिक होती है। इस नियम के अनुसार हिसाब करने से ऐसा अनुमान निकलता है कि एंग्लो-फ्रेञ्चों की हानि दस [illegible] लाख से अधिक होनी चाहिए। पर वास्तव में वैसी हानि नहीं हुई। इस [illegible] अंगरेजों के [illegible] की [illegible] बहुत बढ़ी हुई है। [illegible]

आरास की रणभूमि।

... अंगरेज़ों का अधिक नुकसान नहीं हुआ है। दूसरी ओर से यह कहा जाता है कि अंगरेज़ों की तोपों की जंगी तैयारी चूंकि जर्मन लोग जानते हैं; इस लिए उन्होंने इस समय फ्रांस में खन्दकों का प्रबन्ध बिलकुल ही भिन्न प्रकार का किया है। सामने से लड़नेवाले खन्दकों के पीछे दूर तक तिरछे जानेवाले खन्दकों की श्रेणियां तैयार कर रखी जाती हैं; और जब तोपों की मार शुरू होती है तब सामनेवाले खन्दक के लोग पीछे वाले खंदकों में जा कर छिप बैठते हैं, और जहां शत्रु की पैदल सेना चलने लगी कि फिर इशारा पाते ही सामनेवाले खंदक में शत्रु के पहुँचने के पहले ही जा बैठते हैं। इससे क्या होता है कि दो दो तीन तीन दिन तोपों के गोलों की वृष्टि, साधारणतया खाली खन्दकों पर ही होती रहती है। अर्थात् यह इस प्रकार का प्रबन्ध रहता है कि तोपों की लड़ाई के समय खन्दक खाली रखे जाते हैं; और जहां पैदल सेना ने धावा किया कि बस फिर खन्दक भर जाते हैं; और इसी लिए जर्मनों का यह कहना है कि, इस प्रबन्ध के होने से हमारा बहुत ही कम नुकसान हुआ है, तथा अँगरेज़ों की तोपों के गोले व्यर्थ गये हैं। कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि एप्रिल और मई मास में घनघोर युद्ध होने पर भी कुछ निपटारा नहीं हुआ; और जब दो महीने भयंकर संहार होने पर भी रणदेवता ने कोई फैसला नहीं दिया तब फिर बार बार उसी जगह और उसी प्रकार रणभूमि को रक्तरंजित करने में क्या पुरुषार्थ है? और जून-जुलाई महीनों में अंगरेज़ों ही को जर्मनों पर धावा क्यों करना चाहिए? अच्छा, और यदि अंगरेज़ों के हमले हो जांय तो जर्मनों को ही उलटे हमले क्यों करने चाहिएं? गत तीन महीनों की लड़ाइयों ने कम से कम इतना तो अवश्य ही सिद्ध कर दिया है कि फ्रांस की रणभूमि में इस वर्ष कुछ भी फ़ैसला नहीं हो सकता। जानकार लोग अब यह भविष्यद्वाणी करने लगे हैं कि अगले साल के वसन्तकाल में शायद इसका फ़ैसला होगा। फ्रांस में भी अब यही लोकमत प्रकट हो रहा है कि एप्रिल और मई मास की लड़ाइयां कम से कम फ्रांस के लिए तो संतोषजनक नहीं हुई हैं; और इस क्षुब्ध होनेवाले लोक-मत को शान्त करने के लिए [illegible] सरकार को मुख्य सेनापति भी बद-लना पड़ा है। इसके सिवाय यह भी आश्वासन दिया गया है कि [illegible] जब फ्रांस में आ जायगी [illegible] अनुकूल हो जायगी। [illegible]

[illegible]

चांपेन की रणभूमि।

रूस की अन्तस्थ दशा अब कुछ कुछ शान्त होने लगी है। रूस की राज्यक्रान्ति के लिए डयूमा सभा की बुद्धिमत्ता जिस प्रकार कारणीभूत हुई उसी प्रकार पेट्रोग्राड की, कर्मचारियों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की कमेटी भी कारणीभूत हुई। राज्यक्रान्ति करने वाला शारीरिक बल इसी ने उत्पन्न किया। जब सेनापति अलेक्ज़ेव के समान प्रमुख सेनानायकों की सहानुभूति भी इस राज्यक्रान्ति को प्राप्त हो गई तब ज़ार के हाथ का शारीरिक बल भी उनके लिए निरुपयोगी होगया। यही नहीं, किन्तु वह उलटे क्रान्तिवालों में मिल गया। कर्मचारियों की कमेटी का शारीरिक बल, डयूमा सभा, अर्थात् रूस के मध्यम श्रेणीवालों की बुद्धिमत्ता और सेनानायकों की सहानुभूति-इस त्रिवेणीसंगम ने ही रूस में राज्यक्रान्ति कर डाली। राज्यक्रान्ति हो जाने के बाद, इन तीनों शक्तियों का पूर्ण मिलाप होते हुए, ये तीनों नदियां फिर विभक्त हो कर बहने लगीं। कर्मचारियों की कमेटी का कथन यह ठहरा कि जब कि हमारे निश्चित किये पैरों ने यह राज्यक्रांति की है तब फिर हमारे [illegible] मार्ग से ही रूस का राज्यकार्य होना चाहिए। यह महायुद्ध बड़े सरदारों और कोट्याधीशों के स्वार्थ के लिए, उनकी [illegible] और प्रतिष्ठा के लिए हो रहा है। सर्वसाधारण लोगों का कुछ भी हित नहीं है। वैभव बढ़ता है ऊपर के थोड़े से लोगों का और मरने की नौबत आती है नीचे के सर्वसाधारण लोगों की। यह स्थिति हमें बिलकुल ही स्वीकार नहीं है। किसी दूसरे का राज्य न जीतना चाहिए; और न आस पास के राज्यों [illegible]

[illegible] में कुछ भी हस्तक्षेप न करना चाहिए। [illegible] कर्मचारियों की कमेटी [illegible] मतों से प्रेरित होकर कर्मचारियों के [illegible] के हुक्म रूसी सेना और रूसी लोगों के [illegible] कमेटी ने [illegible] प्रारम्भ किया। रूसी सेना से इस कमेटी ने [illegible] अधिकारियों को [illegible] के समय में नियत किये गये अधिकारियों की [illegible] मिलने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम अपने [illegible] चुनो। और यदि जर्मनी इस शर्त पर, कि कोई [illegible] गान न करेगा, सुलह करने को तैयार हो, तो [illegible] और से सन्धि भी कर लो। कर्मचारियों की [illegible] के हुक्म जब रूसी सेना में पढ़े गये तब सेना [illegible] स्वयं सेना में एकदम फूट पड़ गई। [illegible] सुभाव डयूमा सभा के बुद्धिमान [illegible] कमेटी की [illegible] और सैनिकों की [illegible] करते [illegible] [illegible]

परिषद् के निश्चय के अनुसार नहीं चलेगा। क्योंकि जर्मनी का सोशियालिस्ट पक्ष कुछ जर्मन सरकार नहीं है। इस समय स्टाकहोम में जो रूसी सोशियालिस्ट एकत्र हुए हैं, और जुलाई में जो एकत्र होनेवाले हैं, वे यद्यपि रूस के निवासी अवश्य हैं, तथापि नवीन रूसी सरकार के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं। इनको भी स्वयंभू प्रतिनिधि ही कहना चाहिए। पेट्रोग्राड की नवीन सरकार का इनको कुछ भी सहारा नहीं दिखाई देता। पेट्रोग्राड की कर्मचारी और सैनिक कमेटी में, इस स्टाकहोम की परिषद के विषय में परस्पर बहुत मतभेद होगया है और कर्मचारीपक्ष में फूट पड़ गई है। इस फूट में से एक पक्ष यह कहता है कि सन्धि शीघ्र होना चाहिए, और यदि आवश्यकता जान पड़े तो स्वतंत्र सन्धि करने में भी कोई हर्ज नहीं, और दूसरा पक्ष मित्रराष्ट्रों के संग से चलने में रूस के नवीन मंत्रिमंडल का सहायता करनेवाला है। इस प्रकार इस समय रूस में एक दल सन्धि के पक्ष में है; और दूसरा दल विग्रह या युद्ध के पक्ष में है। सन्धिवालों का केन्द्रस्थान इस समय पेट्रोग्राड में नहीं है; किन्तु फिनलैंड की खाड़ी में रूस की जलसेना के मुख्यस्थान क्रूनस्टैड बन्दर में है। क्रूनस्टैड का सारा ज़िला सन्धिवालों के पक्ष में हो गया है; और बाल्टिक समुद्र की रूस की जलसेना भी एक प्रकार से उनमें मिल चुकी है। इन सन्धि पक्षवालों ने जून के प्रारम्भ में पेट्रोग्राड की सरकार को यह धमकी दी है कि तुम यदि हमारे कार्यक्रम के लिए सम्मति न दोगे तो हमारे खलासी पेट्रोग्राड में आ कर, उक्त शहर को हस्तगत किये बिना नहीं रहेंगे। पेट्रोग्राड के मंत्रिमंडल ने इस धमकी की कुछ भी परवा न करते हुए धैर्य और गम्भीरता के साथ काम करने का निश्चय किया है। रूस की सेना पर भी क्रूनस्टैड के इस बलवे का बुरा प्रभाव पड़ रहा है, और सेनापति आलेक्ज़िफ ने, यह समझ कर हो, कि सेना की बिगड़ी हुई व्यवस्था फिर सुधारने की शक्ति हम में नहीं है, जून के प्रारम्भ में, अपनी जगह से इस्तीफा दे दिया है। अब जे० बुसिलाफ मुख्य सेनानायक हुए हैं; और ऐसी आशा की जाती है कि इनके नेतृत्व में रूसी फौज फिर भी जर्मनी का सामना करने योग्य बन जायगी। कुछ भी हो, अभी दो तीन महीने और भी रूस जर्मनी पर चढ़ाई करने योग्य नहीं हो सकता। इस अवधि में यदि रूस के सन्धिवालों की चिल्लाहट ही बन्द होगई तो भी मित्रराष्ट्रों का बहुत बड़ा काम हो जायगा। मित्रराष्ट्र रूस से कुछ यह सहायता नहीं चाहते कि रूस जर्मनी पर उलटे चढ़ाई कर के जर्मनों का पूर्ण पराभव करे, तथापि रूस यदि ऐसा करेगा तो अच्छी ही बात है, परन्तु इससे यह समझना चाहिए कि मित्रराष्ट्रों के अन्तिम विजय में कुछ बाधा आवेगी। स्वतंत्र सन्धि न करते हुए रूस यदि अपनी रणभूमि की आस्ट्रो-जर्मन सेना को ही और वर्ष दो वर्ष फँसाये रखे तो भी अगले वसन्तकाल में, अमेरिका की पाँच छै लाख सेना की सहायता से, मित्रराष्ट्र जर्मनी की हड्डी नरम किये बिना नहीं रहेंगे। एप्रिल मास के अन्त में जर्मनी की पनडुब्बियों का जितना भय मालूम होता था उतना मई महीने के अन्त में नहीं रहा। मई महीने में एप्रिल से आधे व्यापारी जहाज़ों का संहार जर्मन पनडुब्बियों ने किया, अब कहते हैं कि यह परिमाण उत्तरोत्तर कम ही होता जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि पनडुब्बियों के कारण इँगलैंड को बड़ा कष्ट सहना पड़ता है, अन्नपान में विशेष दिक्कत उठानी पड़ती है, पर इससे यह कदापि नहीं हो सकता कि इँगलैंड इतना भूखों मरने लगे कि जिसके कारण जर्मनी की सन्धि की शर्तें उसे स्वीकार करनी पड़ें। रूस की राज्यक्रांति के कारण इस साल यद्यपि जर्मनी का पराभव टल गया है, तथापि अगले वर्ष वह कदापि टल नहीं सकता। हां, इसके लिए रूस की सन्धिविषयक चिल्लाहट अवश्य बन्द होनी चाहिए। और इस चिल्लाहट की दृष्टि से जून-जुलाई के दो मास विशेष झंझट के और महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं। अब यह स्पष्ट है कि इस समय एंग्लो-फ्रेंच और इटालियन सेना आस्ट्रो जर्मनों पर एकदम टूट पड़ेगी; जिसमें कि रूस के सन्धिवालों का प्रभाव रूसी सेना पर न [होने] पावे।

हिन्दी भाषा और ना[गरी] लिपि का प्रचार।

(लेखक—श्री० महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँ[धी])

हिन्दी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की [सामान्य भाषा] हो सकती है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है। कैसे ... केवल यहीं विचार करना है। जिस स्थान को आज ... भाषा लेने का प्रयत्न कर रही है, पर जिस का लेना असम्भव है, वही स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए। ... पर हिन्दी का पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेजी ... सकता है, क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमा[रे लिये] कठिन है। अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी का सीखना ... है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या प्रायः ६½ करोड़ ... बिहारी, उड़िया, मराठी गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी ... हिन्दी की बहिनें हैं। उक्त भाषाओं के बोलने वाले ... हिन्दी समझ तथा बोल लेते हैं। इन सब का मिला[कर] प्रायः २२ करोड़ हो जाती है। जिस भाषा का इतना प्रच[ार है उसकी] बराबरी करने के लिए अंग्रेजी, जिसे एक लाख भी हिन्[दुस्तानी] ठीक नहीं बोल सकते हैं, क्यों कर समर्थ हो सकती है? ... हमारा देशी काम और व्यवहार हिन्दी में नहीं होने लग[ा, इसका] कारण हमारी भीरुता, अश्रद्धा और हिन्दी भाषा के गौरव ... है। यदि हम भीरुता छोड़ दें, श्रद्धावान् बनें, हिन्दी का ... लें, तो हमारी राष्ट्रीय और प्रान्तिक परिषद तथा सर... सभा का भी व्यापार हिन्दी में चलने लगेगा। आरम्भ ... राष्ट्रीय मण्डलों में होना आवश्यक है। इस कार्य में ... कठिनता भी है तो यह प्रायः तामिलादि, द्राविड़ भाषा ... लिये है, पर इसकी भी औषधि हमारे हाथ में है। उप... मिक स्वभाषाभिमानी हिन्दी के जोशीले पुरुषों को ... हिन्दी की शिक्षा देने के लिए मद्रासादि प्रान्तों में भेजना ... वे हिन्दी के प्रचारक बन जायँ तो अल्प ही काल में ... प्रान्तों के शिक्षित वर्ग हिन्दी सीख लेंगे। यदि हमारे में ... हो तो इस प्रश्न का उत्तर केवल त्रैराशिक पर ही रहता ... अधिक शिक्षक भेजे जायँ उतना ही शीघ्र हिन्दी का ... जावेगा। शिक्षकों के भेजने के साथ ही साथ स्वयं शिक्षक ... बनानी चाहियें। इन पुस्तकों का प्रचार बिना मूल्य होना ... हैं। भाषा सीखने की आवश्यकता बतलाने के लिए प्रतिष्ठि[त] ... का भेजना भी आवश्यक है।

जैसा प्रचार, द्रविड़ देश में करना आवश्यक है वैसा ... मुम्बई आदि प्रदेशों में भी उचित है। मराठी, गुजराती ... भाषियों के लिये भी हिन्दी पुस्तकें तैयार करनी चाहियें ... प्रदेशों में भी प्रचारक भेजे जाने चाहियें।

इस कार्य में द्रव्य की आवश्यकता है। हमारे धनाढ्य ... को यह कार्य बोझ रूप न समझना चाहिए; उनका यह ... कि इस बृहत्कार्य में सहायता दें।

प्रबन्ध करने के लिये एक छोटी सी समिति बनाने की ... कता है। इतना ध्यान रखना उचित है कि इस समिति में काम ... करने वाले ही चुने जाँय।

इस निवेदन में एक गर्भित बात आ जाती है। वह यह ... हिन्दी और उर्दू के बीच में भेद नहीं रक्खा गया है। वास्त[व में] ... लिपि के भेद से भिन्न हैं। वे बहुत अंश में एक हैं। लिपि के ... हम अपने इस्लामी भाइयों से क्यों झगड़ें? वे उर्दू लिपि में ... में से थोड़े लोग उर्दू लिपि भी जानते हैं। तथा और अधिक ... सीख लेंगे। जब तक इस्लामी भाई देवनागरी लिपि नहीं ... तब तक हमारे राष्ट्रीय कार्य दोनों लिपियों में हुआ करें ... क्यों न हो, इस प्रश्न का निपटारा हम इस्लामी भाइयों के साथ ... भाव से कर सकते हैं। अब तो उक्त लिपि से सारे भारत[वर्ष में] ... भाषा का प्रचार करना एक मुख्य कर्तव्य है।

नासिक की प्रान्तीय परिषद।

संसार के सभ्यदेशों में भारतवर्ष की जनता अपने राजनैतिक अधिकारों से जितनी अनभिज्ञ है उतनी शायद ही और किसी देश की हो। इस देश में जितना भी राजनीतिक आन्दोलन हो उतना ही थोड़ा है। प्रत्येक वर्ष दिसम्बर में भारत के किसी मुख्य नगर में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन हुआ करता है; उससे भारत की सर्वसाधारण जनता कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकती। इसी लिए, जनता में आन्दोलन करने के लिए, प्रान्तिक और जिला-परिषद की सृष्टि हुई। परन्तु भारतीय लोगों की स्वाभाविक उदासीनता के कारण इन परिषदों से अभी तक कोई विशेष आन्दोलन नहीं हो सका। जिला परिषद के अधिवेशन जो कि प्रत्येक जिले जिले में होने चाहिएं, प्राय बहुत कम या बिलकुल ही नहीं होते। प्रान्तिक परिषदें कहीं कहीं होती हैं। पर इनसे सर्वसाधारण जनता विशेष लाभ नहीं उठा सकती; क्योंकि इनका भी कार्यक्रम प्रायः विदेशी भाषा में होता है। परन्तु हमारे पाठकों को यह जान कर सन्तोष होगा कि इस वर्ष बम्बई प्रान्त की, नासिक की परिषद ने, जनता में बहुत अच्छी जागृति की। इसका बहुत सा कार्यक्रम देशी भाषा में ही हुआ। परिषद के अध्यक्ष श्रीमान् श्रीनिवासशास्त्री ने, जो कि गोखले महाशय की भारत-सेवकसमिति के अध्यक्ष हैं, अपने व्याख्यान में 'स्वराज्य' के अधिकारों का बहुत ही निर्भीकता के साथ मंडन किया। आपके व्याख्यान की बड़ी प्रशंसा हुई है। लोकमान्य महात्मा तिलक के परिषद में उपस्थित होने के कारण जनता में अपूर्व उत्साह दिखाई दिया। आपने इस दौरे में भी कई गावों की यात्रा कर के वहां जागृति उत्पन्न की। नासिक की जनता ने आपको मानपत्र भी दिया। मानपत्र में कविकुलगुरु कालिदास का

अध्यक्ष मा० श्रीनिवासशास्त्री के मंडप में जाने के समय का चित्र।

[illegible] तिलक 'स्वराज्य' विषय पर व्याख्यान दे रहे हैं।
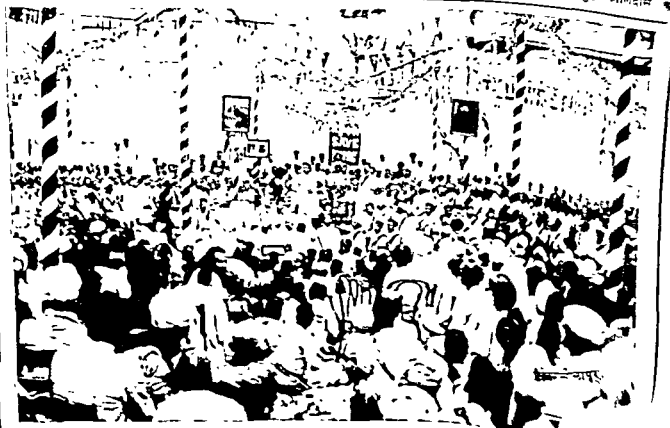
यह श्लोक लोकमान्य के विषय में क्या ही यथार्थ कहा गया:—
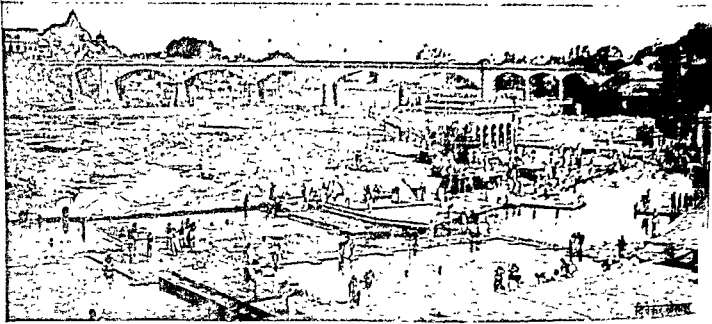
नासिक में गोदावरी का पुल और स्नान का घाट।
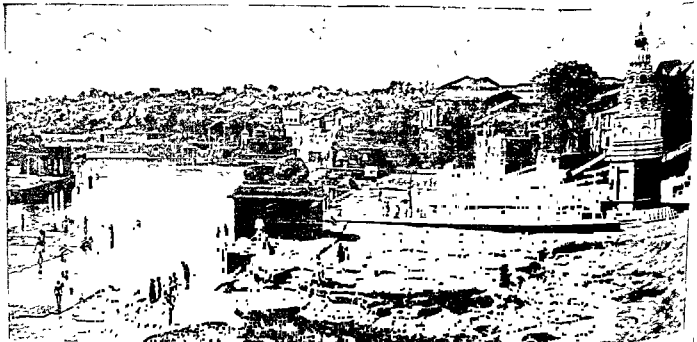
श्रीयशवन्तराव महाराज के मन्दिर के सामने का मैदान, यहीं रात को व्याख्यान होते रहते थे।

" स्वसुखनिरभिलाष खिद्यसे लोकहेतो
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवविधेव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परिताप छायया संश्रितानाम् ॥ "

अहा! उन महात्माओं को धन्य है जो कि अपने सुख की परवा न करते हुए संसार के उपकार के लिए नाना प्रकार के संकट स[हते] रहते हैं। देखिये, वृक्ष ग्रीष्म, वर्षा, इत्यादि की तीव्रता अ[पने] सिर पर झेलते हुए भी अपने आश्रित को छाया से आ[राम] पहुँचाते रहते हैं। इस प्रकार की वृत्तिवाले देशोपकारी महात्मा[ओं] से ही इस जगत् का धारण होता है।

सर वाल्टर स्काट।

इंगलैंड में यह बड़ा प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हो गया है। एक दिन, जब कि वह घोड़े पर बैठ कर हवा खाने के लिए गया था, एक फुलवाड़ी के फाटक के पास पहुँचा। फाटक बन्द था; इस लिए वह स्वयं घोड़े से उतर कर फाटक खोलने ही वाला था, कि इतने में एक भिखारी ने, जो कि पास ही था, आगे बढ़ कर उस फाटक को खोल दिया। उसकी यह भलमनसाहत देख कर सर वाल्टर ने उसे कुछ देना चाहा। परन्तु जेब में हाथ डाल कर देखता है तो कोई छोटा सिक्का नहीं है। सिर्फ शिलिंग (अधेली) मात्र था। इस लिए वह शिलिंग ही उसकी ओर बढ़ा कर वाल्टर स्काट बोला, "भलमानस, यह शिलिंग ले! पर इसके सिर्फ छै (चार आने) मेरे हैं! बाकी उधार के तौर पर अपने पास दे।" यह सुन कर उस भिखारी ने स्काट को सलाम किया बोला, "महाराज, परमात्मा की दया से आप सुखी रहें; और जब तक मैं इन्हें वापस देऊं तब तक परमात्मा आप को आयुदान देवे!!"

लिखे हुए की प्रतीति।

एक क़ाज़ी ने एक दिन रात को एक पुस्तक में क्या पढ़ा, [कि] जिसका सिर छोटा और दाढ़ी बड़ी होती है वह महामूर्ख [होता] है। यह बात क़ाज़ी के दिल में बहुत चुभी; और उन्हों ने सो[चा] कि हमारा सिर बहुत छोटा है, इसका क्या उपाय किया जा[य]। लेकिन तुरन्त ही उनके मन में यह विचार आया, कि लाओ दा[ढ़ी] छोटी कर लें, तो पुस्तक की बात हमारे ऊपर घटित न होगी! इ[स] सोच कर क़ाज़ी जी कैंची ढूँढ़ने लगे, पर वह मिली नहीं। [तब] उन्हों ने सोचा कि यह दाढ़ी दिया की ज्योति से आधी जला [दें] तो ठीक हो जाय। यह सोच कर, आधी दाढ़ी हाथ से प[कड़] कर, क़ाज़ी जी उसको दिया के पास ले गये, इतने में वह पू[री] जल उठी; और हाथ पर आंच आई। इस पर ज्यों ही उन्हों[ने] दाढ़ी से हाथ निकाला, त्योंही एकदम सारी दाढ़ी जल गई। इ[स] प्रकार क़ाज़ी जी को पुस्तक में लिखी हुई बात की [illegible] हो गई।

चित्रमय जगत

हे अज्ञाननमोविनाशक विभो ! तेजस्विता दीजिए । देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

भाग ७] ज्येष्ठ, सं० १९७४ वि०—जून, स० १९१७ ई० [संख्या ६

जय गीते !

(श्रीमद्भगवद्गीता-रहस्य की आरती*)
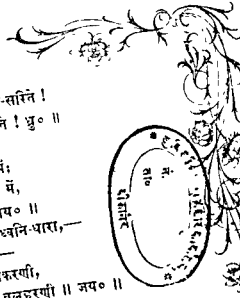
जय गीते ! जय गीते ! जय सुख-सुर-सरिते !
कर्म-तरंग प्रचारिणि, मंगल-मय-चरिते ! ध्रु० ॥
पाप पंक-मति डूबी, मोह निशा तम में,
'धर्म'-सु-मर्म न जाना, फांसा मन भ्रम में;
स्वत्वों की 'स्मृति' भूले, स्थैर्य न जीवन में,
अम्बे ! तू अवतारी, ऐसे दुर्दिन में ॥ जय० ॥
श्री-पति-भारत-हिमगिरि-मुख की ध्वनि-धारा,—
श्रीकृष्णद्वैपायन भागीरथ-द्वारा;—
प्रगटी भू-मण्डल पर, सुर-मण्डनकरणी,
मोह-महारिपु-मर्दिनि, खल-दल बलहरणी ॥ जय० ॥
जय अघ-ओघ-निकन्दिनि, स्वधर्मसंजीवनी,
कार्य स्मृति-प्रवाहिनि, जय जग की जननी;
तव-पद-रमण करे, जो, तेरा मनन करे,
दृढकर्मी विजयी हो, विश्वोद्धार करे ॥ जय० ॥
"ज्ञानी हो मत रुकना, शुभकर्मी होना,
अकर्मण्य मत बनना, व्यर्थ न वय खोना;
भक्ति-युक्त जन-संग्रह, ज्ञानी शीघ्र करे,"
देवी ! 'कर्म'-'रहस्य' सदा यों बोध करे ॥ जय० ॥
यही रहस्य बना था अर्जुन-तम-हारी,—
कर्म-क्षेत्र-प्रवर्तक, महा-समर-कारी;
सो रहस्य श्रीगीते ! पुण्य-पुरी-वासी,
'तिलक' जगत से कहता कर्मी संन्यासी ॥ जय गीते, जय० ॥

—'एक भक्तीय आत्मा।'

---

* श्री० पूजनीय संत्रजी की अनुरोध पूर्ण आज्ञा से। —अनुवादी।

इस प्रकार लगभग २० से २७ तक भिन्न भिन्न भाग अथवा टुकड़े एकत्र जोड़ने से लालटेन तैयार होती है।

लालटेन के कारखाने के लिए मुख्य यंत्र-सामग्री।

लालटेन पर एक नज़र डालने से यह सहज ही ध्यान में आ जाता है कि उसका बहुत सा भाग यांत्रिक दाब से, अर्थात् 'प्रेस' से तयार किया गया है। और कुछ भाग एक जोड़ का है। यंत्र की सहायता से दाब दे कर एक जोड़ का बर्तन बनाना परदेशीय युक्ति है। इस एक यंत्र से, अर्थात् भिन्न भिन्न (Dies) दे कर नाना प्रकार के बर्तन बनाये जा सकते हैं; और नक़्क़ाशी भी हो जाती है। इस यंत्र के भिन्न भिन्न दो प्रकार हैं—एक देशी और दूसरे विलायती। इनमें से पहले देशी यंत्र (Press) का छाया चित्र यहां दिखलाया जाता है।

थोड़ी पूंजी के कारखानेवालों के लिए यह प्रेस बड़ा उपयोगी है। इसके चलाने में तीन मनुष्यों की आवश्यकता होती है। चित्र में यह दिखलाया गया है कि दो मनुष्य यंत्र के ऊपर का बड़ा चाक एक ही जगह खड़े हो कर घुमा रहे हैं। उस चाक को जितनी तेज़ गति मिलेगी उतनी ही अधिक दाब बैठेगी। तीसरा मनुष्य "ग" स्थान पर बैठ कर और पत्तर का टुकड़ा डाल कर इच्छित वस्तु दाब कर निकालता है।

यंत्र का वर्णन।

यंत्र का नाम—Hand Screw Press.

मिलने का स्थान—ग्रांट रोड बम्बई के अथवा अन्य किसी लोहे की ढलाई का काम करनेवाले कारखाने में।

मूल्य—लगभग २०० से ३०० रु० तक।
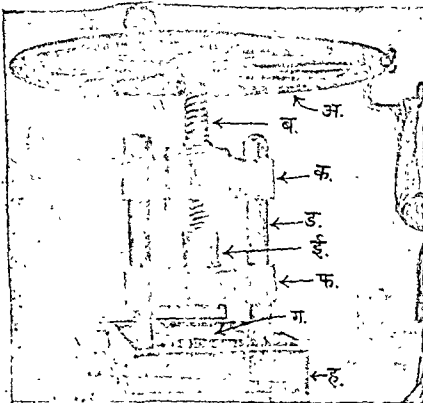
अब हम चित्र में दिखलाये हुए इस यंत्र के मुख्य मुख्य भागों का वर्णन करते हैं।

अ—यह एक बड़ा चाक है। इसको हाथ से फिराने के लिए इसमें आमने सामने दो छोटे तिरछे डंडे लगे हुए हैं। इस चाक की जगह डंबेल्स के आकार का वजनी डंडा भी लगाने की चाल पाई जाती है। 'अ' भाग बहुत वजनदार है। यह जितने जोर से गोलाकार गति दे कर घुमाया जायगा उतनी ही अधिक दाब बैठेगी।

ब—यह एक ठोस गरारीदार डंडा स्क्रू की तरह लगा हुआ है। ... के चाक को गति देने पर यह नीचे ऊपर आता रहता है।

... समान भागों को जोड़ कर तैयार किया हुआ ढलवां ... । इस के ठीक बीचों बीच में उपर्युक्त स्क्रू आता है। परन्तु उसके ठीक और पर घूमने के लिए स्क्रू और ... के ... ब्रास सिलेंडर (Brass Cylinder) और पुली (Pulley) लगी रहती है।

ड—ये आमने सामने लगे हुए लोहे के ठोस खम्भे हैं। 'क' के सिर पर ये स्क्रू से खूब मज़बूत जमे रहते हैं। और इसी 'ह' बैठक के नीचे के प्लेट में भी ये जमे रहते हैं।

ई—यह लोहे अथवा पीतल का चौकोन लगभग ... टुकड़ा है। इसके ऊपर के भाग में 'ब' स्क्रू और नीचे ... इच्छित वस्तु की दाब (Die) लगी रहती है।

फ—यह भी 'क' के समान दो बराबर भागों को जोड़ बनाया हुआ प्लेट है। इसके बीच में 'ई' नट (Nut) ऊपर सरकता रहता है।

ग—इस जगह कटा हुआ पत्र का टुकड़ा रखते हैं। ... दाब (Punch) से पत्तर के नीचे लगी हुई अधखुली दाब ... जाता है; और इस से पत्र को इच्छित वस्तु का आकार ... जाता है।

ह—यह एक वज़नी सपाट लोहे की बैठक है। व्यवस्थित रीति से चलने के लिए प्रेस इसी बैठक में जमा होता है। ... बैठक ज़मीन में गाड़ कर बैठाई जाती है।

सूचना—यह प्रेस और उसके दाब (Dies) तैयार ... कारीगर अत्यन्त कुशल होना चाहिए। नहीं तो यंत्र से ... निकाली हुई वस्तु चूर चूर हो कर निकलेगी। वस्तु का ... आकार यंत्र की दाब से एक ही बार में तैयार नहीं होता। ... लिए एक ही वस्तु को ३।४ बार दाब दे कर आकार ... है। अर्थात् प्रत्येक बार भिन्न भिन्न दाब (Die) उपयोग में ... हैं। देशी प्रेस की तरह विलायती प्रेस का एक ही ... नहीं होता, किन्तु भिन्न भिन्न आकार और शक्तियों ... मिलते हैं। तथापि विलायती प्रेस का अनुमान करने ... लिए यहां उसका एक छाया चित्र दिया जाता है।
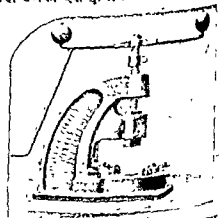
इसकी उँचाई पांच फीट है। इसमें गोलाकार ... १२ इंच तक के व्यास का पत्तर दाबा जाता है।

मिलने का पता:—Taylor & Challen Ltd ... Engineer; Birmingham ...

इसका नम्बर ६०४ है और कीमत ४१ पौंड है। ... इस प्रेस पर दो मनुष्यों की सहायता से काम ... सकता है।

इच्छित वस्तु को आकार जिसके द्वारा प्राप्त होता है ... (Die) कैसा होता है, सो नीचे दिये हुए चित्र से ... होगा। उसके (Blanks) पत्र के टुकड़े हैं। पंच (Punch ...) इच्छित वस्तु को आकार देनेवाला ऊपर का दाब है। (... Punch) ये जिस समय एक दूसरे में घुमते हैं उसी समय ... को आकार प्राप्त होता है। ब्लैंक होल्डर (Blank Holder) ... एक ऐसा कड़ा है जो यंत्र की दाब बैठते समय पत्तर को ... रखता है, जिससे वह हिलने न पावे। यह (Die) के ... पर लगा होता है। (Extractor in die) यह ... में तैयार होनेवाले बर्तन को ऊपर उठा कर बाहर ... में सहायता करता है। और यह Die के ... रहता है।

...ल और दामने वाले लोग टिकटों के काटने अथवा उनमें छेद क...
...के लिए जिस चिमटी का उपयोग करते हैं, उन चिमटियों तथा
...यंत्रों को जिन लोगों ने देखा है वे लोग इस बात का अनुमान सहज
...ही कर सकते हैं कि इन धातु के पतरों में दाब वाले यंत्र में छेद
किस प्रकार किये जाते हैं। प्रेस की सहायता से छिद्र करने में
जिस दाब (Die) का उपयोग किया जाता है उसकी रचना एक
जोड़ के बर्तन के दाब (Die) से भिन्न रहती है, और छिद्र करने
के इस दाब को प्रत्यक्ष देखे बिना उसका अनुमान ठीक ठीक नहीं
किया जा सकता। तथापि छिद्र करने के दाब (Die) का एक
छायाचित्र यहां पर हम देते हैं, इसमें यह दिखलाया गया है कि
किसी प्रकार के भी पतले पत्तर पर एक बार में तीन छिद्र इस दाब
(Die) की सहायता से किये जा सकते हैं।
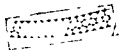
छिद्रों का दाब। (Piercing Die) — काम का नमूना।

लालटेन के लिए जिस यंत्रसामग्री की आवश्यकता होती है
उसका संक्षिप्त वृत्तान्त हमने ऊपर दिया है। परन्तु जिन्होंने किसी
प्रकार के भी कारखाने इसके पहले नहीं देखे होंगे उनको इस थोड़े
से वृत्तान्त से पूरी पूरी जानकारी नहीं हो सकती। इस लिए हम
अपने पाठकों से इतनी ही प्रार्थना करेंगे कि ऊपर जिन, प्रेस
(Press), दाब (Die), गोल पत्तर काटने की मशीन (Cricle
Shearing Machines) नलियां झुकाने की मशीन (Pipe
Bending Machine), लेथ (Lathe), इत्यादि, यंत्रों का वर्णन
किया गया है, उनको प्रत्यक्ष देखना चाहिए। हुबली, अजमेर,
माटुंगा (बम्बई), झांसी, खरगपुर, इत्यादि रेलवे के कारखानों में ये
यंत्र, काम करते हुए, मुफ्त में देखने को मिल जाते हैं। जो लोग
नवीन कारखाने खोलना चाहते हैं उनको पहले दूसरे कारखाने
अनेक बार देखने से बड़ा लाभ होगा।

लालटेन के कारखाने के विषय में व्यापारी सूचना।

यहां तक इस लेख के दो भागों में लालटेन के भिन्न भिन्न अंगों
और यंत्रसामग्री का वर्णन किया गया है। अब, इसके बाद, लाल-
टेन तैयार करने में जिस माल-मसाले की जरूरत होती है उसका,
अर्थात् पत्तर इत्यादि का, वृत्तान्त इस तीसरे भाग में दिया जाता है।
लोहा, टीन, डबल टीन, तांबा, पीतल, अल्युमिनियम, जस्ता,
इत्यादि धातुओं के मोटे और पतले तथा नियमित आकार के पत्रे
विपुलता के साथ परदेश से यहां बिक्री के लिए आया करते हैं।
इनमें से लालटेन के लिए सिर्फ टीन, डबल टीन और पीतल के पत्रे
ही उपयोगी हो सकते हैं। यहां पर माल के विषय में जो वृत्तान्त
दिया जाता है वह वर्तमान महायुद्ध के प्रारम्भ से पहले का है।
क्योंकि इस समय बाज़ार में कौन माल किस भाव से मिल सकता
है, इसका कुछ ठीक नहीं है।

(१) पत्रा—पीतल का, नम्बर १० और १२ इत्यादि,
नमूना—साधारण मिट्टी के तेल के डब्बे के समान पतला नं० १०
किस्म—भिन्न भिन्न मुटाई के नरम और कठोर।
बनानेवाला—जर्मनी और ब्रह्मा, इत्यादि।
प्रत्येक पत्रे की तोल—नं० १० पौनेतीन पौंड, नं० १२ साढ़ेतीन पौंड।
भाव—नं० १० का ४२) और १२ का ४१) रु० हंडरवेट।
आकार—४ फीट लम्बा और १४ इंच चौड़ा।
मिलने का स्थान—बम्बई में तांबाकांटा, मुम्बादेवी और कासार-
देवी के बीच में।
बम्बई में इस पत्रे को शिलिंग पत्रा भी कहते हैं।

(२) पत्तर—डबल टिन आयरन शीट्स्।
नमूना—पीतल के १० नम्बर के पत्रे के समान पतला और
उससे चाहे जितना मोटा।

पत्र का आकार ... लम्बे और २१ इंच चौड़े १० पत्रों
१ गड्डा और ६ फीट लम्बे तथा २१ इंच चौड़े २० पत्रों का।
होता है।
भाव—१३॥) हंडरवेट।
गड्डे की तोल—१॥। हंडरवेट और १६ पौंड कम से कम।
मिलने का स्थान—कर्नाक बन्दर पुल के नीचे, बम्बई।
(असली विलायती पैकिंग एक लकड़ी के खोखे में ...
होता है।)

(३) पत्तर—टीन का सादा (चित्रों के फ्रेम वाली चौखटें ...
इसी को लगाते हैं अथवा मिट्टी के तेल के कनस्टर इसी के ...)
रंग—बिलकुल सफेद।
नमूना—भिन्न भिन्न निश्चित आकार के; परन्तु छोटे ...
पतले होते हैं, और बड़े आकार के मोटे होते हैं।
किस्म—चाहे जितना पतला और मोटा।
बनानेवाला—इंगलैंड।
एक पत्रे की तोल—२॥ पौंड और गड्डा ५० पत्रों का।
भाव—२८ इंच लम्बे और २० इंच चौड़े एक गड्डे का
१४॥) और गड्डे की तोल ६२ सेर।
मिलने का स्थान—बम्बई में अब्दुल रहिमान स्ट्रीट ...
मर्चेन्टों के पास।

लालटेन तैयार करने के लिए ऊपर जिन तीन पत्रों का ...
दिया है उनमें से पीतल और सादे टीन की लालटेन बनानी ...
सुभीते और फायदे की बात होगी। संसार में व्यापारी ...
पैदाइश अधिकाधिक होने लगने के कारण एक प्रकार ...
ऊपरी उत्पन्न हो गई है, और कारखानेवालों के मन में ...
नहीं रही कि ग्राहकों को टिकाऊ माल मिले। इस कारण ...
माल तैयार करने की ओर व्यापारियों की प्रवृत्ति विशेष ...
है, भारतवर्ष को भी इस बात से लाभ उठा लेना चाहिए ...
पहले पहल सादे टीन की ही हरीकेन लालटेन तैयार करना ...
'डीज़' कम्पनी की ये सादे टीन की लालटेनें दो ...
कीमत की नहीं बिकतीं। और खेद की बात है कि ...
टेन के विषय में व्यापारी प्रतियोगिता या चढ़ाऊपरी ...
भारतवर्ष में चूँकि एक भी कारखाना नहीं है; इस कारण ...
"डीज़" की लालटेनें बहुत ही खराब आने लगी हैं। ...
जाता है कि कम्पनियां पहले पहल अच्छा माल भेजकर ...
अपना नाम कर लेती हैं; और फिर "नामी साहु कमाय ...
अथवा "ऊंची दुकान के फीके पकवान"—के न्याय ...
माल भेजकर वे खूब धन बटोरा करती हैं। हमारा ...
है कि जैसा माल आजकल 'डीज़' का आता है ...
माल भारत में एक उत्साही और होनहार कारखाने ...
कर सकता है। पीतल की यदि उत्तम 'स्वदेशी' ला...
की जायगी तो लोग अधिक दाम देकर भी उत्सा...
आगे लिखी हुई सूचनाओं पर अवश्य ध्यान देना ...

(१) अपनी निज की जगह यदि होगी तो इस धं...
से कम १०००० रुपया पूँजी अवश्य चाहिए; इसमें ...
की यंत्रसामग्री ३००० रुपये नक़द चलती हुई पूंजी ...
पत्तरों, विज्ञापनों इत्यादि में लगाने होंगे।

(२) इसमें स्वयं कारखानेवाले को २० प्रति सैक...
मिलेगा; और करीब १५ मनुष्यों को जीविका ...
जा सकेगा।

(३) कारखाने में उत्पन्न होनेवाला माल पहले ...
के द्वारा बेचना बहुत सुभीते की बात होगी।

(४) हरीकेन लालटेन का स्वतंत्र कारखाना ...
यदि कोई ऐसे महाशय यह कारखाना खोलें ...
का कोई न कोई व्यापार पहले ही से होता ...
उनके लिए बहुत ही सुभीते का और लाभदा...

(५) ठीक ठीक पता लगाने से मालूम होता ...
होने के पहले बाज़ार में हरीकेन लालटेन १०...

इन्दौर में स्त्रियों के कलाकौशल की प्रदर्शिनी।

(यह प्रदर्शिनी ११ से २५ मार्च तक समाजसेवा-संघ की तरफ से इन्दौर के एडवर्ड-टाउन-हाल में खुली रही थी।)

प्रदर्शनी की वस्तुओं का दृश्य।

समुद्र का ज्वार।
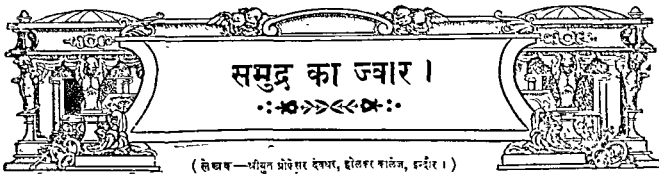
(लेखक—श्रीयुत प्रोफेसर देवधर, होलकर कालेज, इन्दौर।)

साधारणतया मानवसमाज की यह विचित्र प्रवृत्ति देखी जाती है कि जिन बातों से हमारा घनिष्ट सम्बन्ध होता है, अर्थात् जिन जिन वस्तुओं से हमारा अति परिचय होता है उन उन वस्तुओं और उन उन बातों के विषय में हम बहुत ही कम विचार करते हैं। काश्मीर, नर्मदा, बदरी-केदार, इत्यादि के समान अत्युत्तम सृष्टिसौन्दर्यपरिप्लुत स्थान हमारे यहां मौजूद हैं, पर तब भी देखा जाता है कि हमारे अनेक भाई इन विचित्र और पवित्र स्थानों के विषय में कुछ भी जानने की इच्छा नहीं रखते, और स्विट्ज़रलैंड की ओर दौड़ते हैं! इस बात का जब हम सूक्ष्म विचार करने लगते हैं कि जिन आंखों से हम देखते हैं और जिनके बिना कि सारा संसार केवल अन्धकारमय है, ये आंखें इच्छानुसार भिन्न भिन्न अन्तर पर के पदार्थ देखने में कैसे तत्पर रहती हैं, तब हमें नाना प्रकार के ईश्वरी सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। इस विषय में प्रयोग करने से, कि कर्णेन्द्रिय से सुनने की क्रिया होने के लिए अन्तस्थरचना की क्या दशा है, टेलीफोन और फोनोग्राफ के समान उपयुक्त और मनोरंजन के यंत्र हमको प्राप्त हुए हैं—इतना ही नहीं, किन्तु इससे बहुत प्रकार के कर्णरोगों के कारण भी जाने गये हैं! आकाशमंडल में वायु बहना, बिजली चमकना, मेघ एकत्र होकर पानी बरसना, इत्यादि सब बातें किसी न किसी विशिष्ट हेतु से कार्य कर रही हैं। ऐसी अनेक बातों में से चाहे कोई एक बात बिलकुल साधारण ही क्यों न हो, तथापि उसके विषय में विचार करते करते कोई न कोई आश्चर्यपूर्ण भविष्य हमें मालूम हो जाता है।

उपर्युक्त अनेक बातों में से यहां पर समुद्री ज्वार भाटे के विषय में कुछ वैज्ञानिक विचार करना प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है। मान लीजिए कि हम प्रति दिन समुद्र किनारे घूमने के लिए जाया करते हैं; अब ऐसी दशा में यह उचित है कि समुद्र के ज्वार-भाटे के विषय में जो जो कुछ वहां हमें देखने को मिले उसे हम 'नोट' कर लिया करें। क्योंकि किसी विषय का निरीक्षण करके उसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न बातों को नोट कर लिये बिना उसके कार्य-कारणभाव का ठीक ठीक खुलासा नहीं हो सकता।

पहली बात यह है कि समुद्र का पानी किनारे पर कुछ अन्तर तक बढ़ता हुआ ऊपर आता है और बाद को फिर कुछ अन्तर तक पीछे लौट जाता है, और लगभग चौबीस घंटे में यह हाल दो बार होता है। ऊपर बढ़नेवाले और पीछे लौटनेवाले पानी के दृश्य को हम क्रमशः ज्वार-भाटा कहते हैं।

दूसरी बात यह है कि प्रति दिन आनेवाले ज्वार की ओर यदि हम देखें तो मालूम होगा कि पहले ज्वार का पानी दूसरे ज्वार के पानी की अपेक्षा न्यूनाधिक परिमाण से बढ़ता है।

तीसरी बात यह है कि सूक्ष्मता के लिए यदि हम प्रति दिन आनेवाले ज्वारों में से किसी न किसी एक ज्वार की ओर ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि उस ज्वार का पानी कुछ दिनों तक धीरे धीरे अधिकाधिक बढ़ता जाता है, और बाद को कुछ दिन तक कम होता जाता है; और फिर अधिकाधिक बढ़ने का क्रम शुरू होता है। इस प्रकार यह ज्वार भाटा का कार्य किसी बड़ी घड़ी की पेंडी के आन्दोलन की तरह जारी रहता है। अवश्य ही इस आन्दोलन में लगभग बारह घंटे लगते हैं और ये सिलसिलेवार कुछ दिन तक बढ़ते जाते हैं, और निश्चित मर्यादा पर पहुंचने पर फिर कम होने लगते हैं। ऐसा ही यह क्रम जारी है।

चौथी बात यह है कि किसी ज्वार के पानी के प्रतिदिन के चढ़ाव की न्यूनाधिकता की ओर ध्यान न देते हुए यदि प्रति दिन होनेवाले ज्वार के समय की ही ओर ध्यान दिया जाय तो मालूम होता है कि वही ज्वार प्रति दिन देर से होने लगता है, अर्थात् एक ही प्रकार के दो ज्वारों का कालान्तर चौबीस घंटे की अपेक्षा अधिक होते होते लगभग साढ़े पचीस घंटे तक बढ़ जाता है, और बाद को फिर कम होने लगता है; और लगभग पन्द्रह दिन में ज्वार असली समय पर आ जाता है।

इस प्रकार हमने अपने निरीक्षण आपके समक्ष रखे। इससे आपको सहज ही मालूम हो जायगा कि ज्वार और भाटा, समुद्र की एक के बाद एक आनेवाली बड़ी बड़ी लहरें हैं। लहर का अत्यन्त उच्च शिखर ज्वार है; और उसका अत्यन्त गहरा भाग भाटा है; यह बात हम ऊपर बतला ही चुके हैं कि ऊंचे भाग के बाद नीचे भाग के आने में साधारणतया बारह घंटे लगते हैं। इस प्रकार लगभग चौबीस घंटे में उपर्युक्त दो लहरें उत्पन्न होती हैं, और जब कि हमारी इस पृथ्वी को अपनी कीली के आसपास घूमने में चौबीस घंटे लगते हैं तब यह अनुमान निकलता है कि पृथ्वी के भ्रमण का ज्वार और भाटे से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए। परन्तु हम यह भी देखते हैं कि दो ज्वारों के बीच की अवधि चौबीस घंटे से अधिक भी होती है, इससे जान पड़ता है कि पृथ्वी के सिवाय और भी किसी न किसी का सम्बन्ध ज्वार-भाटे से होना चाहिए। उपर्युक्त अवधि न्यूनाधिक होती है, और फिर पूर्वस्थिति आने में लगभग १५ दिन लगते हैं। अर्थात् यह हाल लगभग ३० दिन में दो बार होता है। अब चन्द्र को पृथ्वी के आसपास घूमने में लगभग २८ दिन अर्थात् करीब करीब एक महीना लगता है, और जब कि पृथ्वी और चन्द्र एक दूसरे को परस्पर आकर्षण करते रहते हैं तब यह जान पड़ना स्वाभाविक है कि पृथ्वी पर समुद्र का जो यह विस्तृत पानी फैला हुआ है उसे ऊपर उठाने का कार्य चन्द्र महाराज करते होंगे। और पौर्णिमा तथा अमावस्या को ज्वार का जोर सब से अधिक रहता है; और कृष्ण तथा शुक्लपक्ष की अष्टमी के लगभग यह सब से कम रहता है। इस बात को जब हम ध्यान में लाते हैं तब उपर्युक्त कल्पना और भी अधिक दृढ़ हो जाती है।

यहां तक तो साधारण विचार हुआ। अब इसके आगे कुछ सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जायगा। मान लीजिए, पृथ्वी एक गोला है और इस गोले पर आसपास समान गहराई का एक पानी का पर्त है। आकृति पहली देखिये। इसमें "अ" स्थान का पानी चन्द्र की ओर खिंचेगा और वे आकर्षित होगा उसी ओर से "ब" स्थान की पृथ्वी, अधिक अन्तर होने के कारण, आकर्षित नहीं होगी। इसी भांति 'ब' स्थान की पृथ्वी 'ड' स्थान के पानी की अपेक्षा अधिक आकर्षित होगी,

चि० नं० १

और इसी प्रकार दूर रहते है, इसलिए यह 'अ' और 'ड' स्थानों में ऊपर उठेगा, और इसी का स्थान। (चि० नं० १) के अनुसार न रहते हुए यह

(चि० नं० २) के अनुसार हो जायगी ।

उपर्युक्त विवेचन से यह मालूम हो जायगा कि केवल आकर्षण के कारण पानी में ज्वार-भाटा किस प्रकार आता है; अब यह देखना चाहिए कि पृथ्वी के २४ घंटे के भ्रमण के कारण क्या क्या परिवर्तन उपस्थित होते हैं। जैसा कि यहां दिखलाया गया है उस भांति पृथ्वी के घूमते हुए 'ब' विन्दु क्रमशः 'य', 'क' और 'ग' इन भिन्न भिन्न स्थानों से जायगा; और इस लिए २४ घंटे में दो बार ज्वार और दो बार भाटा होगा।

चि० नं० २

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि एक ही प्रकार के दो ज्वारों में सदैव ही समय २४ घंटे नहीं लगता; किन्तु वह २५½ घंटे तक बढ़ जाता है; और फिर धीरे धीरे २४ घंटे पर आ जाता है। इस लिए और कुछ बातों का विचार किये बिना काम नहीं चलेगा। यह तो आप जानते ही हैं कि लगभग २८ दिन में चन्द्र पृथिवी के आसपास एक बार घूमता है। इस लिए 'ब' विन्दु जब मूल स्थान पर आवेगा तब चन्द्र की जगह पहले से भिन्न होकर वह कुछ दाहनी ओर सिरकी आ जायगी। (चित्र नं० ३ देखिये)। इस लिए ज्वार की जगह अब 'ब' न रहेगी, किन्तु 'ब'' हो जायगी और इस कारण 'ब'' तक गये बिना ज्वार नहीं आवेगा। इससे हमारे पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि एक ही प्रकार के दो ज्वारों के बीच का कालान्तर २४ घंटे से अधिक कैसे हो जाता है। अस्तु। यहां तक यह विचार किया गया कि ज्वार से चन्द्र का क्या सम्बन्ध है, लेकिन हमारी पृथ्वी सूर्य के आसपास फिरा करती है, इस लिए यह भी देखना चाहिए कि सूर्य की शक्ति का समुद्र के ज्वार से कहां तक सम्बन्ध आता है। और यद्यपि पहले पहल ऐसा जान पड़ता है कि सूर्य के बहुत भारी होने के कारण उसका प्रभाव विशेष पड़ता होगा, परन्तु बात ऐसी नहीं है; क्योंकि

चि० नं० ३

सूर्य पृथ्वी से, चन्द्र की अपेक्षा, [illegible] गुना अधिक दूर है, और इस कारण चन्द्र से सूर्य का आकर्षण पानी पर बहुत ही कम पड़ता है। तथापि इस आकर्षण का थोड़ा बहुत प्रभाव तो अवश्य ही होगा। इस लिए हमें चन्द्र सूर्य दोनों के मिश्रित प्रभाव का विचार करना चाहिए। जब पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य, सब एक ही रेखा में होंगे तब दोनों का जोर एक ही दिशा में पड़ेगा और पानी में बड़ा भारी ज्वार आवेगा। ऐसे ज्वार को "उधान" (स्प्रिंग टाइड) कहते हैं। परन्तु चन्द्र की गति बहुत ही तेज होने के कारण, यह देखा [illegible] कि उसके एक-चतुर्थांश मार्ग पार करने पर चन्द्र और सूर्य [illegible] में आ जायेंगे; इससे [illegible] ज्वार के स्थान 'प' और 'ग' होंगे। सूर्य का जोर इस समय [illegible] नहीं होगा, इस कारण लहरों में [illegible] और बाधा आवेगी; और इसी कारण कृष्ण की [illegible] पक्ष की अष्टमी को ज्वार बहुत [illegible] होता है। इस [illegible] के अनुसार [illegible] है। (चि० नं० ४) चन्द्र [illegible] सूर्य और पृथ्वी की [illegible] में एक

ओर को जाने लगता है त्यों त्यों सूर्य का ज़ोर विरुद्ध दिशा में पड़ने के कारण ज्वार का समय अधिकाधिक होता जाता है। अष्टमी के बाद कोन ९०° से अधिक होने पर गतिशास्त्र के नियम से ज्वार का समय शीघ्र शीघ्र आने लगता है; और पौर्णिमा होने पर यही हाल फिर होता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न दिनों में ज्वार के समय का फेरबदल कैसा होता है, इसका स्पष्टीकरण उपर्युक्त विवेचन से हो जायगा।

चि० नं० ४

इन सर्वसाधारण विचारों के अतिरिक्त और भी बहुत सी सूक्ष्म विचार करने योग्य बातें हैं; और उन बातों का प्रत्येक ज्वार पर प्रभाव पड़ता रहता है, परन्तु मुख्य मीमांसा उपर्युक्त विवेचन के अनुसार ही रहेगी। पृथ्वी बिलकुल गोल नहीं है, दोनों ओर कुछ कुछ चपटी है। पानी का पर्त एक समान मोटा नहीं है; किन्तु वह न्यूनाधिक है; सूर्य के आसपास पृथ्वी वृत्तमार्ग से नहीं घूमती, किन्तु अंडाकार घूमती है; इस कारण सूर्य और चन्द्र कभी बिलकुल पास आ जाते हैं और कभी बहुत दूर भी हो जाते हैं; और तदनुसार ज्वार का जोर न्यूनाधिक हो जाता है।

चि० नं० ४

इस ज्वार-भाटे के दृश्य से शास्त्रीय सिद्धान्त और अनुभव का ऐसा अच्छा मेल खा जाता है कि जिसे देख कर बड़ा आनन्द होता है। इस ज्वार के दृश्य से हमें एक विचित्र भविष्य मालूम होता है। उस भविष्य को ठीक ठीक समझने के लिए हम यहां एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिए कि एक चक्र अपनी कीली के आसपास फिर रहा है, अब उसके किनारे यदि हम धीरे धीरे हाथ लगाते जायँ तो उस चक्र की गति क्रमशः कम होती जायगी। इसी प्रकार पृथ्वी के घूमते समय उसके पानी को आकर्षण के द्वारा चन्द्र पकड़ रखता है, और इसी कारण ज्वार आता है। यह आपको मालूम ही है। परन्तु यह स्पष्ट है कि पानी को पकड़ रखने से पृथ्वी के भ्रमण में बाधा उत्पन्न होगी। इस बाधा के कारण पृथ्वी को अपने आसपास घूमने में अधिकाधिक समय लगेगा। और इस प्रकार पृथ्वी को अपने आसपास घूमने में उतना ही समय लगने लगेगा, जितना चन्द्र को पृथ्वी के आसपास घूमने में लगता है। अर्थात् इस समय जो २४ घंटे का हमारा दिन है वह फिर २८ दिन का एक दिन हो जायगा। अर्थात् ऐसी दशा में १४ दिन की रात और १४ दिन का दिन होने की नौबत आ जायगी। ऐसी दशा आने में चाहे समय अधिक भले ही लगे, पर आवेगी अवश्य! इसमें कुछ भी शंका नहीं! ऐसी दशा में सब प्रकार के प्राणी और वनस्पति नाश को प्राप्त हो जायँगे और [illegible] का सब पानी वाष्परूप बन कर उड़ जायगा। यह दशा कैसी विचित्र आवेगी, इस की कल्पना पाठकों को ही करनी चाहिए! [illegible] वैज्ञानिकों ने तो यह अनुमान किया है कि यह हमारा [illegible] चन्द्र इस प्रकार के सब परिवर्तनों को पार कर चुका है।

समुद्र की लहरों के विषय में जब हम विचार करते हैं तब [illegible] होता है कि उनसे हमें बहुत ही विलक्षण और आश्चर्यजनक [illegible] का उपदेश मिलता है। हमारी यह पृथ्वी बराबर भ्रमण कर रही है और उसे दिन पर दिन वृद्धावस्था प्राप्त हो रही है, [illegible] बुढ़ापे के कारण उसमें क्रमशः शिथिलता आ रही है। [illegible] बाद सर्व का भार पृथ्वी पर बहुत देर [illegible] पहाड़ों में भयंकर तोड़-फोड़ हो जायगी। इस प्रकार के [illegible] से भरे आगे [illegible] प्रकार [illegible] रही है; पर [illegible] इस प्रस्ताव में [illegible] इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देंगे।

बम्बई के श्रीबाबुलनाथ मन्दिर के दृश्य।

(एक महोत्सव के समय लिए हुए फोटो)

मन्दिर का मुख्य द्वार।

भाविक जन एक ओर से दर्शन को जा रहे हैं और दूसरी ओर से लौट रहे हैं।

बम्बई में सम्मान टेकड़ी पर से चौपाटी पर का दृश्य।

दर्शन से लौटते हुए भाविक लोग कंगलों को दान धर्म करते जाते हैं।

श्रीमान् दानवीर रायबहादुर सेठ हुकमचन्द साहब, इन्दौर।

आप इन्दौर के कोट्याधीश व्यापारी हैं। बम्बई और कलकत्ता इत्यादि बड़े बड़े नगरों में भी आपकी दुकानें चल रही हैं। सब से बड़ा गुण आप में यह है कि धनवान् होकर भी आप सरल और निरभिमान हैं। अपने द्रव्य का सदुपयोग करना भी आप जानते हैं। अभी तक भिन्न भिन्न लोकोपकारी संस्थाओं को आपने कुल १२ लाख ५० हजार का दान दिया है। जब से एक करोड़ रुपये का पुण्यदान आपने किया है तब से आप सम्पूर्ण भारतवर्ष में विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। हम सेठ साहब से आशा रखते हैं कि आपके द्वारा भारतीय राष्ट्र-हित के कार्यों में मुक्तहस्त से सदैव सहायता मिलती रहेगी। इस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी आपही के नगर में होनेवाला है इसकी ओर हम आपका ध्यान विशेषरूप से आकर्षित करते हैं।

(चि० नं० २) के अनुसार हो जायगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह मालूम हो जायगा कि केवल आकर्षण के कारण पानी में ज्वार-भाटा किस प्रकार आता है; अब यह देखना चाहिए कि पृथ्वी के २४ घंटे के भ्रमण के कारण क्या क्या परिवर्तन उपस्थित होते हैं। जैसा कि यहाँ दिखलाया गया है उस भाँति पृथ्वी के घूमते हुए 'ब' बिन्दु क्रमशः 'घ', 'क' और 'ग' इन भिन्न भिन्न स्थानों से जायगा; और इस लिए २४ घंटे में दो बार ज्वार और दो बार भाटा होगा।

चि० नं० २

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि एक ही प्रकार के दो ज्वारों में सदैव ही समय २४ घंटे नहीं लगता; किन्तु वह २४½ घंटे तक बढ़ जाता है; और फिर धीरे धीरे २४ घंटे पर आ जाता है। इस लिए और कुछ बातों का विचार किये बिना काम नहीं चलेगा। यह तो आप जानते ही हैं कि लगभग २८ दिन में चन्द्र पृथिवी के आसपास एक बार घूमता है। इस लिए 'ब' बिन्दु जब मूल स्थान पर आवेगा तब चन्द्र की जगह पहले से भिन्न होकर वह कुछ दाहनी ओर तिरछी आ जायगी। (चित्र नं० ३ देखिये)। इस लिए ज्वार की जगह अब 'ब' न रहेगी; किन्तु 'ब'' हो जायगी और इस कारण 'ब'' तक गये बिना ज्वार नहीं आवेगा। इससे हमारे पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि एक ही प्रकार के दो ज्वारों के बीच का कालान्तर २४ घंटे से अधिक कैसे हो जाता है। अस्तु। यहाँ तक यह विचार किया गया कि ज्वार से चन्द्र का क्या सम्बन्ध है; लेकिन हमारी पृथ्वी सूर्य के आसपास फिरा करती है; इस लिए यह भी देखना चाहिए कि सूर्य की शक्ति का समुद्र के ज्वार से कहाँ तक सम्बन्ध आता है। और यद्यपि पहले पहल ऐसा जान पड़ता है कि सूर्य के बहुत भारी होने के कारण उसका प्रभाव विशेष पड़ता होगा, परन्तु बात ऐसी नहीं है; क्योंकि सूर्य पृथ्वी से, चन्द्र की अपेक्षा, चारसौगुना अधिक दूर है; और इस कारण चन्द्र से सूर्य का आकर्षण पानी पर बहुत ही कम पड़ता है। तथापि इस आकर्षण का थोड़ा बहुत प्रभाव तो अवश्य ही होगा। इस लिए हमें चन्द्र सूर्य दोनों के मिश्रित प्रभाव का विचार करना चाहिए। जब पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य, सब एक ही रेखा में होंगे तब दोनों का जोर एक ही दिशा से पड़ेगा और पानी में बड़ा भारी ज्वार आवेगा। ऐसे ज्वार को "उधान" (स्प्रिंग टाइड्) कहते हैं। परन्तु चन्द्र की गति बहुत ही तेज़ होने के कारण, वह रेखा छोड़ कर उसके एक-चतुर्थांश मार्ग पार करने पर चन्द्र और सूर्य साधारणतया कटे हुए कोने में आ जायेंगे; इससे अवश्य ही ज्वार के स्थान 'घ' और 'ग' होंगे। सूर्य का जोर इस समय सहायता नहीं करेगा; इस कारण ज्वारों में थोड़ी सी बाधा आवेगी; और इसी कारण कृष्ण और शुक्ल पक्ष की अष्टमी का ज्वार बहुत ही छोटा होता है। इस ज्वार को नीपज्वार (नीप टाइड) कहते हैं। (चि० नं० ४ देखिये) चन्द्र ज्यों ज्यों सूर्य और पृथ्वी की रेखाओं से एक ओर को जाने लगता है त्यों त्यों सूर्य का ज़ोर विरुद्ध पड़ने के कारण ज्वार का समय अधिकाधिक होता जाता है।

चि० नं० ३

अष्टमी के बाद कोन ९०° से अधिक होने पर गतिशास्त्र के नियम से ज्वार का समय शीघ्र शीघ्र आने लगता है; और पौर्णिमा होने पर यही हाल फिर होता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न दिनों में ज्वार के समय का फेरबदल कैसा होता है, इसका स्पष्टीकरण उपर्युक्त विवेचन से हो जायगा।

सू. चं. ग पृ. स्प्रिंग

चि० नं० ४

इन सर्वसाधारण विचारों के अतिरिक्त और भी बहुत सी सूक्ष्म विचार करने योग्य बातें हैं; और उन बातों का प्रत्येक ज्वार पर प्रभाव पड़ता रहता है, परन्तु मुख्य मीमांसा उपर्युक्त विवेचन के अनुसार ही रहेगी। पृथ्वी बिलकुल गोल नहीं है, किं[तु] दोनों ओर कुछ कुछ चपटी है। पानी का पर्त एक समान मोटा नहीं है; किन्तु वह न्यूनाधिक है; सूर्य के आसपास पृथ्वी वृत्तमार्ग से नहीं घूमती; किन्तु अंडाकार घूमती है; इस कारण सूर्य और चन्द्र कभी बिलकुल पास आ जाते हैं और कभी बहुत दूर भी हो जाते हैं; और तदनुसार ज्वार का जोर न्यूनाधिक हो जाता है।

सू. ग. पृ. चं. नीप.

चि० नं० ४

इस ज्वार-भाटे के दृश्य से शास्त्रीय सिद्धान्त और अनुमान का ऐसा अच्छा मेल खा जाता है कि जिसे देख कर बड़ा आनन्द होता है। इस ज्वार के दृश्य से हमें एक विचित्र भविष्य मालूम होता है। उस भविष्य को ठीक ठीक समझने के लिए हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिए कि एक चक्र अपनी कीलों के आस पास फिर रहा है, अब उसके किनारे यदि हम धीरे धीरे हाथ लगाते जायँ तो उस चक्र की गति क्रमशः कम होती जायगी। इसी प्रकार पृथ्वी के घूमते समय उसके पानी को आकर्षण के जोर से चन्द्र पकड़ रखता है; और इसी कारण ज्वार आता है; यह आपको मालूम ही है। परन्तु यह स्पष्ट है कि पानी को पकड़ रखने से पृथ्वी के भ्रमण में बाधा उत्पन्न होगी। इस बाधा के कारण पृथ्वी को अपने आसपास घूमने में अधिकाधिक समय लगने लगेगा। और इस प्रकार पृथ्वी को अपने आसपास घूमने में उतना ही समय लगने लगेगा, जितना चन्द्र को पृथ्वी के आसपास घूमने में लगता है। अर्थात् इस समय जो २४ घंटे का हमारा दिन है वह फिर २८ दिन का एक दिन हो जायगा; अर्थात् उस दशा में १४ दिन की रात और १४ दिन का दिन होने का मौका आ जायगी! ऐसी दशा आने में चाहे समय अधिक लगे पर आवेगी अवश्य! इसमें कुछ भी शंका नहीं! वैसी दशा में सब प्रकार के प्राणी और वनस्पति नाश को प्राप्त हो जायँगे और पृथ्वी का सब पानी बाष्परूप बन कर उड़ जायगा। यह दशा कैसी विचित्र आवेगी, इस की कल्पना पाठकों को ही करनी चाहिए। हमारे वैज्ञानिकों ने तो यह अनुमान किया है कि यह हमारा चन्द्र इस प्रकार के सब परिवर्तनों को पार कर चुका है!

समुद्र की लहरों के विषय में जब हम विचार करते हैं तब मालूम होता है कि उनसे हमें बहुत ही विलक्षण और आश्चर्य… का उपदेश मिलता है। हमारी यह पृथ्वी बराबर प्रगत है और उसे दिन पर दिन वृद्धावस्था प्राप्त हो रही है, बुढ़ापे के कारण उसमें क्रमशः शिथिलता आ रही है। बाद सूर्य का ताप पृथ्वी पर बहुत देर रहने लगेगा। पदार्थों में भयंकर उलट-पलट हो जायगा। इस प्रकार की ये लहरें अपने शब्द से प्रकट कर रही हैं; पर … हम अज्ञान में रह कर इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं
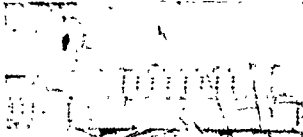
बम्बई के श्रीबाबुलनाथ मन्दिर के दृश्य ।

(एक महोत्सव के समय लिए हुए फोटो)

मन्दिर का मुख्य द्वार ।

भाविक जन एक ओर से दर्शन को जा रहे हैं और दूसरी ओर से लौट रहे हैं ।

बम्बई में खम्बाला टेकड़ी पर से चौपाटी तक का दृश्य ।

दर्शन से लौटते हुए भाविक लोग कंगालों को दान धर्म करते जाते हैं ।

श्रीमान् दानवीर रायबहादुर सेठ हुकमचन्द साहब, इन्दौर ।

आप इन्दौर के कोट्याधीश व्यापारी हैं। बम्बई और कलकत्ता इत्यादि बड़े बड़े नगरों में भी आपकी दुकानें चल रही हैं। सब से बड़ा गुण आप में यह है कि धनवान् होकर भी आप सरल और निरभिमान हैं। अपने द्रव्य का सदुपयोग करना भी आप जानते हैं। अभी तक भिन्न भिन्न लोकोपकारी संस्थाओं को आपने कुल १३ लाख ५० हजार का दान किया है। जब से एक करोड़ रुपये का युद्धऋण आपने खरीदा है तब से आप सम्पूर्ण भारतवर्ष में विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। हम सेठ साहब से आशा रखते हैं कि आपके द्वारा भारतीय राष्ट्रोद्धार के कार्यों में मुक्तहस्त से सदैव सहायता मिलती रहेगी। इस वर्ष हिन्दी-साहित्य सम्मेलन भी आपही के नगर में होनेवाला है उसकी ओर हम आपका ध्यान विशेषरूप से आकर्षित करते हैं।

थाना--कायस्थ-प्रभु मांगलक्लब की प्रदर्शिनी दिसम्बर १९१६।

रूस की राज्यक्रान्ति और उसके परिणाम।

(लेखक—श्रीयुत सीताराम केशव दामले बी॰ ए॰ एल॰ एल॰ बी॰ ।)

सन् १९१४ में जर्मनी के महायुद्ध प्रारम्भ करने पर जब रूस के ज़ार ने जर्मनी के विरुद्ध इंगलैंड और फ्रांस की ओर से लड़ने का निश्चय प्रकट किया तब ज़ार अथवा उसके कुटुम्बियों को स्वप्न में भी यह कल्पना न होगी कि महायुद्ध की परिसमाप्ति के पहले ही हमारा राजमुकुट और हमारा सिंहासन डगमगा उठेगा; और हमें जबरदस्ती से अपने राजपद से त्यागपत्र देना पड़ेगा; हमारे हाथ से ज़ारशाही चली जायगी, और "निकोलस ज़ार आफ आल दि रशिया" की पदवी से हम वंचित कर दिये जायँगे। यही नहीं; परन्तु केवल 'निकोलस रोमेनाफ' के साधारण नाम से हम एक मामूली व्यक्ति बन कर अपने ही देश के प्रजासत्ताक शासन के नीचे रहने वाले बन कर रहेंगे। परन्तु विधिघटना अतर्क्य है। इस महायुद्ध के कारण ही बेलजियम, सर्विया, मांटिनिग्रो और रोमानिया के राजाओं को शत्रु ने उनकी राजधानियों से निकाल दिया। रूस के ज़ार को इस प्रकार निकालना शत्रु के लिए कठिन किंवा असम्भव था। परन्तु बेलजियम, सर्विया, इत्यादि देशों के राजाओं को, इस युद्ध के अन्त में, जब अँग्रेज़ों का पूर्ण विजय और जर्मनी का पूर्ण पराजय हो जायगा तब, अपने अपने सिंहासन फिर मिलने की कुछ न कुछ आशा है; परन्तु रूस के ज़ार को तो, उसके सिंहासन और राजमहल से स्वयं उसकी प्रजा ने ही हटाया है; इस लिए चाहे जर्मनी बिलकुल पराजित हो जाय; और इंगलैंड, फ्रांस तथा रूस ही का पूरा पूरा विजय हो, तो भी ज़ार और उसके कुटुम्ब की राजगद्दी, जो एक बार उससे छीन ली गई है, सो अब फिर कदापि उसे मिलने की सम्भावना नहीं है।

डयूमां सभा की बैठक।

रूस की यह राज्यक्रान्ति वैसी ही समझनी चाहिए जैसी कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस में एक बड़ी भारी राज्यक्रान्ति हुई थी। परन्तु वर्तमान महायुद्ध की धूमधाम में, सम्पूर्ण यूरपखंड में बड़ी बड़ी भयंकर क्रान्तियां हो रही हैं, और यहां वहां पर अनेक राजकीय विप्लव हो रहे हैं, इस कारण इस रूस की राज्यक्रान्ति के विषय में कुछ बहुत शोर-गुल सुनाई ही नहीं दिया। जैसे किसी अधिकारी को कोई बड़ी सरकार उसके पद से अलग कर दे उसी भांति सम्राट् ज़ार को उसकी प्रजा ने सिंहासन से उतार दिया! बिचारे ज़ार का त्यागपत्र तो [illegible] में एक रेलगाड़ी के डब्बे में, एक तार के फ़ार्म की कोरी पीठ पर, लिखवा लिया! और ज़ार साहब को फिर अपने राजमहल और राजवैभव का दर्शन भी नहीं हुआ। इतनी अनपेक्षित रीति से और अचानक घटना से रूस की राज्यक्रान्ति घटित हुई। यह राज्यक्रान्ति क्यों और किस प्रकार हुई; और महायुद्ध पर तथा यूरप की सम्पूर्ण [illegible] परिस्थिति पर इससे किस किस प्रकार के परिणाम होंगे [illegible] विचार, रूस के पूर्वापर इतिहास के अनुरोध से, हम करते हैं। आशा है कि यह विषय पाठकों को अत्यन्त उपयोगी, मनोरंजक भी, होगा।

आज, अथवा कम से कम युद्ध के पहले, संसार में जो तीन चार [illegible] बड़े [illegible], विस्तीर्ण और बृहद् साम्राज्य थे उनमें रूस के साम्राज्य का दर्जा बहुत ही बड़ा था। और लोग कहते थे कि संसार में एकतंत्री राजसत्ता यदि कहीं अत्यन्त तीव्रस्वरूप की है तो वह पेट्रोग्राड की ज़ार की ही है। लोग समझते थे कि एकतंत्री सत्ता का सब से बड़ा अड्डा अथवा दुर्भेद्य दुर्ग पेट्रोग्राड का 'विंटसर पेलेस' अथवा 'ज़ारकोसेलो' नामक ज़ार का राजमहल है, और लोगों की यह समझ सार्थ और साधार थी। जर्मनी का कैसर भी कुछ कम एकतंत्री सम्राट् नहीं है; और आस्ट्रिया का बादशाह भी बड़ा प्रबल राजपुरुष है; तथापि, जर्मनी, आस्ट्रिया और इंगलैंड के सम्राटों की सत्ता किसी न किसी तरह से मर्यादित और नाना प्रकार के संघटनों से नियंत्रित है; वहां पार्लिमेन्टें हैं, मंत्रिमंडल हैं, राइखस्टाग सभाएं हैं, वार-कौंसिलें हैं—इस प्रकार की हजारों भिन्न भिन्न योजनाएं उपयोजनाएं वहां की सुधरी हुई संघटनात्मक राज्यघटना में, बड़े बड़े दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने कर रखी हैं, कि जिससे कोई एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों का एक छोटा सा गुट, राजकीय सत्ता का दुरुपयोग अथवा ज़ुल्मी उपयोग न कर सके। परन्तु रूस में यद्यपि नाममात्र के लिए डयूमा सभा थी, तथापि ज़ार और ज़ार के आसपास के दो चार ग्रांड डयूक अथवा ज़ार के ही घराने के नातेगोते के दो चार मनुष्य जो कुछ करते थे वही प्रमाण माना जाता था; ये लोग यदि आम को इमली और इमली को आम कह देते थे तो वही लोगों को स्वीकार करना पड़ता था। इस प्रकार सर्वथैव एकतंत्री बादशाही शासन, रूस साम्राज्य के विस्तीर्ण और बृहद् देश पर और रूस की १३-१५ कोटि प्रजा पर आज तक पेट्रोग्राड राजधानी से हो रहा था। परन्तु यह बादशाही सत्ता, जो कि आज अनेक शताब्दियों से पेट्रोग्राड में दृढ़ और केन्द्रीभूत हो रही थी, उसे इस महायुद्ध से उपस्थित होनेवाली विलक्षण परिस्थिति की शक्ति ने बात की बात में लौट दिया।

जिस समय यह योरोपीय महाभारत प्रारम्भ हुआ उस समय लोगों ने समझा कि सब जगत् पर यह एक बड़ी भारी आपत्ति ही आकर फट पड़ी है; और यह समझ एक दृष्टि से सच ही थी, इसमें सन्देह नहीं। तथापि इसमें भी सन्देह नहीं कि इतनी बड़ी आपत्तियां जो इतने बड़े बड़े राष्ट्रों पर आती हैं सो कुछ ईश्वरी इच्छा, किंबहुना उसकी नियति के अनुसार ही आती हैं। रूस के उन्नतिप्रिय लोगों ने, सोशल-डेमोक्रेट पंथ के अनुयायियों ने, बड़े बड़े विचारवान् और प्रतिभाशाली लेखकों ने, मैक्सिम गोर्की के समान उपन्यासलेखकों ने इस बात के लिए अनेक प्रयत्न किये कि रूस में लोकसत्ताक राज्यपद्धति अमल में लाई जाय, और एकमेव बादशाही सत्ता को रोका जाय। परन्तु शान्ति के समय बादशाही सत्ताधारी व्यक्तियों के पूर्ण शासन में सशस्त्र भारी सेना रहती थी, इस कारण लोकपक्ष की ओर से [illegible] लेखकों की और [illegible] के कुचल डालने में ज़ार के साथियों को कुछ बहुत परिश्रम नहीं पड़ता था। रूस के लोगों ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पेट्रोग्राड की बड़ी बड़ी सड़कों पर और चौकों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परन्तु अब जर्मनी से युद्ध छिड़ जाने पर रूस के बादशाही [illegible] [illegible]

* [illegible]

जगह अनेक भिन्न भिन्न देशों और राष्ट्रों से मिली हुई है। स्वीडन से रूस की सीमा मिली है; जर्मनी, आस्ट्रिया, रोमानिया, तुर्किस्तान से रूस की हद मिली हुई है; ईरान के पास अफगानिस्तान और भारतवर्ष के उत्तर ओर रूसी साम्राज्य की सीमा मिली हुई है। चीन और जापान के राज्यों के पास रूस की सीमा जा भिड़ी है। और बहिरंग की खाड़ी के पश्चिमी किनारे पर रूस का शासन है; और उक्त खाड़ी के पूर्व ओर अलास्का द्वीपकल्प में अमेरिका के लोकसत्ताक राज्य की सीमा सामने आई है। रूस ने बाल्टिक समुद्र से लेकर पासिफिक महासागर तक रेलवे मार्ग बना कर लोहशृंखला से इतने विस्तृत भूपृष्ठभाग को अपनी सत्ता के नीचे जकड़ डाला है। रूस के शासन में जो प्रजा है वह सब एक धर्म अथवा एक जात की भी नहीं है। रूसी लोगों को साधारणतया 'स्लेव' वंश का समझा जाता है। परन्तु रूसी साम्राज्य में नाना प्रकार के वंशों और धर्मों के लोग हैं। स्लेव वंश के लोग और ईसाई धर्म माननेवाले लोग विशेषतः यूरोपियन रूस में हैं। 'रूसी' कहलानेवाले लोगों में भी तीन भेद माने जाते हैं (Great Russian, Little Russian, and white Russian) बड़े रूसी, छोटे रूसी और गोरे रूसी। बड़े रूसी बहुत मिश्र अथवा संकरयुक्त रूसी हैं। जानकार लोगों की राय है कि उनमें फिनलैंड के फिन लोगों के विशिष्ट गुणधर्म और वर्णसादृश्य दिखाई देते हैं। छोटे रूसी अवश्य ही अधिकांश में शुद्ध स्लेव वंश के अर्थात् सच्चे रूसी हैं। तीसरा भाग जो गोरे रूसियों का है वह लिथुएनियन वंश का समझा जाता है। इन तीन मुख्य रूसी विभागों के अतिरिक्त रूस में जर्मन लोग लगभग २० लाख हैं। इनके सिवाय ईरानी अर्थात् परसियन, स्वीड, डेन्स, डच, आर्मेनियन, नार्वेजियन, लेट्स, लिथोनियन्स, ताजिक, इत्यादि नाना देशों के लोग रूस की प्रजा में हैं। धर्मभिन्नता की दृष्टि से देखा जाय तो पुराने ईसाई पंथ के, नवीन ईसाई पंथ के, प्रोटेस्टेंट मतवादी, इत्यादि भेद रूस में पाये जाते हैं। इनके सिवाय कुल संख्या के हिसाब से ४ फीसदी, अर्थात् १५ करोड़ में ६० लाख ज्यू लोग हैं। ११ फी सदी, अर्थात् १ करोड़ पैंसठ लाख मुसल्मान हैं। ड्यूमा सभा का मेम्बर और "माडर्न रशिया" पुस्तक का रचयिता ग्रेगार अलोक्ज़ांस्की यह भी कहता है कि रूस में बुद्ध-धर्मानुयायी तथा कहीं कहीं हिन्दूधर्म के लोग भी हैं। कदाचित् कोई प्रश्न करेंगे कि इतना सूक्ष्म वृत्तान्त देने की यहां क्या आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान के राजनैतिक अधिकारों का जब सवाल निकलता है तब कुछ स्वार्थी लोग यह तर्क निकालते हैं कि जिस देश में अनेक धर्मों के, भिन्न भिन्न जातियों के, लोग रहते हैं वह देश स्वराज्य के लिए पात्र नहीं होता। इस लिए यहां पर यह बात पाठकों को विशेष तौर पर ध्यान में रखना आवश्यक है कि यद्यपि रूस में धर्मभेद और जातिभेद की कमी नहीं है, तथापि वहां भी बादशाही और ब्यूरोक्रेसी की सत्ता नष्ट हो कर लोकसत्ताक स्वराज्यस्थापना की जा सकती है; और इस प्रकार का लोकसत्ताक राज्य स्थापन करनेवाले रूसी नेताओं की पीठ ठोकना इंगलैंड के राजनीतिज्ञों को भी श्रेयस्कर जान पड़ता है। रूस का राजकीय शासन, ज़ार साहब के हाथ में, मिश्रस्वरूप का था। वहीं सत्ता ज़ारशाही की, अर्थात् बादशाही अथवा सुलतानी जैसी एकतंत्री स्वरूप की थी। और इस बादशाही सत्ता के नीचे, राज्यशासन का नित्य व्यवहार और हुकूमत चलानेवाला सत्ताधारी-मण्डल (Bureaucracy) था। अर्थात् (Autocracy) और (Bureaucracy) के दुहरे स्वरूप की रूसी राज्यपद्धति थी। इस प्रकार दुतर्फी हिकमती की ओट में बैठ कर रूस का सत्ताधारी-मण्डल और रूसी ज़ार अपनी अनियंत्रित सत्ता सर्वसाधारण प्रजा के सिर पर चलाते थे। (In Russia there are really two Governments; one official consisting of the Cabinet and the bureaucracy; the other non official consisting of the Court Camarilla. This Camarilla holds the threads of all foreign as well as Home Politics *Modern Russia p. 175*) मंत्रिमण्डल और मंत्रिमंडल की हुकूमत के नीचे चलनेवाली ब्यूरोक्रेसी (अधिकारी-मण्डल), इन दोनों पर ज़ार के आसपास के कुटमंडल (Camarilla) की अबाधित सत्ता चलती थी। इतने बड़े मुल्क और विस्तृत प्रजा पर, अनेक शताब्दियों तक अनियंत्रित और अबाधित बादशाही सत्ता चलने के लिए उस बादशाह के हाथ में द्रव्यबल की भी बहुत आवश्यकता होती है। तदनुसार रूस में ज़ार की सत्ता दृढ़ करने के लिए स्वयं ज़ार और उसके घराने के ग्रैंड ड्यूकों के हाथ में बहुत बड़ी स्थावर जायदाद रहती थी। (Rossiyskii imperatorkii Dom) अर्थात् रूसी राजघराने के वैभव के लिए १ करोड़ १० लाख एकड़ अत्यन्त उपजाऊ भूमि सैबेरिया में केवल ज़ार के स्वामित्व में रखी गई थी। इसके सिवाय १५०० पुतलीघर, ८५० व्यापारी संस्थाएं और १०० यांत्रिक कारखाने (Workshops) तथा अंगूरों के ऐसे अनेक बाग, कि जिन से उत्तमोत्तम मद्य तैयार होते हैं, इत्यादि बहुत बड़ी संपत्तियां प्राप्त करा देनेवाली कामधेनुएं रूसी राजघराने ने अपने लिए नियत कर रखी थीं। रूसी राजघराना भी बहुत विस्तृत था। ज़ार और उसके आप्तसम्बन्धी ग्रैंड ड्यूक इत्यादि सब मिल कर राजकुलीन लोग कोई ६०।७० थे। उन सब के बादशाही ठाटबाट, ऐश्वर्य, चैन, खुशी-आनन्द में रहने के लिए, स्थावर सम्पत्ति के पांच करोड़ पौंड के उत्पन्न के अतिरिक्त, साम्राज्य के खजाने से प्रति वर्ष राजघराने को १६ लाख पौंड अर्पण किये जाते थे। इसके अतिरिक्त राजघराने के सब पुरुष सेना में, अथवा अन्य विभागों में, बड़े बड़े ओहदों पर रहते थे और उन ओहदों की बड़ी बड़ी तनखाहें थे जो उड़ाते रहते थे उनसे कुछ मतलब ही नहीं। इस प्रकार बड़ी भारी विस्तृत सम्पत्ति के बल पर ज़ार और उसका राजघराना अपनी हुकूमत सारे रूसी साम्राज्य पर निर्भयरूप से चलाया करता था। (*Council of the Empire*) साम्राज्यसमिति नाम की एक सभा थी। उसके सब सभासद ज़ार के ही चुने हुए होते थे। चुनाव के सिद्धान्त का उसमें ज़रा भी प्रवेश नहीं होता था। सन् १९०६ में पहली ड्यूमा सभा हुई। तथापि उस ड्यूमा सभा का केवल इतना ही मतलब था कि हलचल करनेवाले लोगों के हाथ में एक खिलौना मात्र दे दिया जाय। प्रधान मंत्री और अन्य ऊंचे सत्ताधारियों के केवल ज़ार की मर्ज़ी से चुनने की ही रीति थी, और ड्यूमा सभा चाहे जो प्रस्ताव पास किया करे, तथापि उनको रद्दी की टोकरी में डाल देने के लिए ज़ार बिलकुल स्वतंत्र था। इसके सिवाय ज़ार चाहे जब यह हुक्म भी दे सकता था कि अमुक मुद्दत तक ड्यूमा सभा बिलकुल बन्द ही रहे। १९०६ के बाद कौंसिल आफ दि एम्पायर में कुछ प्रतिनिधि म्युनिसिपैलिटियों और ज़ेमस्टेवाओं के लिये जाने लगे। परन्तु सम्पूर्ण कौंसिल के अधिकांश सभासद ज़ार के तंत्र के अनुसार ही अपना मत देते थे और ड्यूमा लोकसभा की ओर से यदि कोई ऐसा कार्य किया जाता, कि जिस से लोगों के स्वराज्य के हक़ बढ़ते, तो ये सभासद सदैव ऐसे कार्य में कुठाराघात करने को तैयार रहते थे।

ग्रैंड ड्यूक मायकेल।

रूसी लोगों में क्या लोकसत्ताक स्वराज्य की योग्यता है?

यह प्रश्न यदि एक दो वर्ष पहले ज़ार और उसके मंत्रिमण्डल अथवा रूसी ब्यूरोक्रेसी के अधिकार चलाने में मग्न रहनेवाले बड़े बड़े ओहदेदारों से किसी ने किया होता तो उन्होंने यही उत्तर दिया होता कि रूसी लोग लोकसत्ताक स्वराज्य चलाने के लिए पूर्ण अयोग्य हैं। अधिक दूर क्यों जांयगे—वर्ष छः महीने पहले यूरप, अमेरिका अथवा भारतवर्ष के इतिहासज्ञों से, अंग्रेज़ों से, कौंसिल के माननीय लोगों से, अथवा इंगलैंड की पार्लिमेंट के विमल उदाहरण और उद्योगशील सभासदों से, यदि किसी से पूछा होता कि क्या वर्ष छः मास में रूस में लोकसत्ताक स्वराज्य की स्थापना होना सम्भव है, तो उनमें से भी अनेकों ने इस बात को असम्भव ही बतलाया होता। बीकानेर के महाराज अथवा भारत-

चित्रमयजगत

बड़े लोगों को, अथवा सत्ताधारियों को, भारतीय
र स्वराज्य के लिए अयोग्य मालूम होते हैं उसी
बड़े बड़े लोगों को सदैव रूसी लोग स्वराज्य के
ी मालूम होते रहे। क्योंकि रूस में ८५ फीसदी
हैं, रूस में निचली जाति के लोग हैं, रूस में नाना
ाग हैं और रूस के किसान तथा ग्रामीण लोग इतने
अपने राजा, अर्थात् ज़ार को, प्रत्यक्ष ईश्वर मानते रहे
वर्ष पहले चीन के मांचू राजघराने के लोगों से यदि
होता कि क्या चीन लोकसत्ताक राजपद्धति के योग्य
होता कि क्या चीन लोकसत्ताक राजपद्धति के योग्य
भी अपना यही अभिप्राय दिया होता कि चीनी लोग
दान हैं; और लोकसत्ताक राज्य चलाने के लिए बिल-
क हैं। कोई कहते हैं कि एक धर्म हुए बिना राष्ट्र
क हैं। कोई कहते हैं कि एक धर्म हुए बिना राष्ट्र
यथा लोकसत्ताक राज्य के योग्य नहीं होता, कोई कहते
शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार हुए बिना किसी को स्वराज्य
चाहिए; कोई कहते हैं, जब तक परस्पर के झगड़े बखेड़े
न दूर कर ली जाय तब तक स्वराज्य की ओर राष्ट्र की
क ठीक नहीं होती, कोई कहते हैं, देश में जब तक
(Depressed classes) के लोगों की दशा अच्छी नहीं
क राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। इस प्रकार देशोन्नति
में भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रकार के आक्षेप करते रहते
ी प्रकार यदि किसी ने यह प्रश्न किया होता कि रूसी लोगों
जारशाही सत्ता है वह नष्ट हो कर उसकी जगह क्या
त्ताक राज्यपद्धति प्रस्थापित हो सकती है; तो इस प्रश्न का
वर्ष छै महीने पहले ९० फीसदी पंडितों, राजनीतिविशारदों,
सज्ञों, इत्यादि ने यही दिया होता कि यह बात बिलकुल
भव है। परन्तु महायुद्ध के प्रारम्भ होते समय रूस के ज़ार
उसके आसपास के कामरिला (कूटमंडल) के जो अनुमान थे
व मिथ्या हुए; और युद्ध की सफल अथवा निष्फल इतिश्री
के पहले ही ज़ारशाही की अवश्य ही पूर्ण इतिश्री होगई।
त् रूसी लोगों की दृष्टि से यदि देखा जाय तो यह महायुद्ध
के लिए एक ईश्वरी वरदान ही होगया। क्योंकि जर्मनी के
मान बलाढ्य शत्रु से सामना आ पड़ने पर इन दो ढाई वर्षों में यह
लकुल निश्चित हो गया कि ज़ार और उसके यंत्र से चलनेवाला
रवारी कूटमंडल रूस के समान विस्तृत साम्राज्य की सैनिक प्रतिष्ठा
थिर रखने में और युद्ध के समय में अपने देश की अन्तर्व्यवस्था ठीक
ठीक रखने में बिलकुल नालायक है। जो लोग यह प्रश्न करते हैं कि
क्या रूसी लोग लोकसत्ताक राज्यपद्धति चलाने योग्य हैं, उनको
एक दूसरा प्रश्न भी अवश्य पूछना चाहिए और वह यह कि, क्या
ज़ार और उनके बड़े ग्रैंड ड्यूक लोग संकट के समय रूस के समान
विस्तृत साम्राज्य का शकट चलाने योग्य थे? इस प्रश्न का स्पष्ट
उत्तर घटनाचक्र ने ही दे दिया है कि ज़ार, ज़ारीना, बड़े बड़े ग्रैंड
ड्यूक और उनके आसपास का कूटमंडल, युद्धविषयक नीति और
अपनी प्रतिष्ठा रख कर, युद्ध के समान विकट प्रसंग में रूस की
प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट रखने में सर्वथा नालायक था। रूसी
सैनिक सिपाही प्रांडील, शूरवीर और साहसी योद्धा थे। रूस का
सैन्यसागर भी बहुत विस्तृत था। रूस की सेना पर ग्रैंड ड्यूक
निकोलस, जनरल सेमसनाफ, जन०यानाफ, ब्रुसिलाफ, रेनेन्काम्फ, जन०
रस्की और जनरल कुरोपटकिन के समान प्रसिद्ध प्रसिद्ध सेनापति थे।
परन्तु लाखों की तादादवाली सेना को समय पर गोलाबारूद पहुँ-
चाना, भरपूर तोपें-बन्दूकें पहुँचाना, उनके खानेपीने की रसद, समय
पर, और जहां सेना हो वहां दूर दूर, पहुँचाना और इसके अतिरिक्त
सर्वसाधारण प्रजा के लिए धान्य इत्यादि एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त
में पहुँचाना, इत्यादि प्रबन्ध बादशाही सत्ताधारी लोग समय पर
और ठीक ठीक नहीं कर सके। पहले पहल युद्ध के प्रारम्भ होने
पर रूस बड़े ज़ोर-शोर से लड़ा; परन्तु वर्ष डेढ़ वर्ष बराबर लड़ाई
जारी रहने पर रूस में रूस की तोपखाना, गोला-बारूद और
बन्दूकों की कमी पड़ने लगी। इसके सिवाय बाल्टिक समुद्र पर
सर्वदैव जर्मनों का अधिकार रहने के कारण उस ओर से रूस विल-
कुल घिरा रहा, और इंग्लैंड तथा फ्रांस से रूस को आवश्यक
सामान पहुँचने का कोई मार्ग नहीं रहा। जापान से युद्ध
[illegible] आया। तथापि जापान से जो

सामान लाया जाता था वह तीन चार हज़ार मील दूर से एक
रेलवे के द्वारा लाया जाता था, अतएव उसके आने में बहुत
समय लग जाता था। इधर युद्ध वर्ष डेढ़ वर्ष चलते रहने पर
और गेलेशिया तथा पोलैंड से रूस के बिलकुल भगाये
उसको युद्ध का परिणाम अच्छी तरह मालूम हुआ। गत
रोमानिया को अपनी ओर से उठा कर रूस ने यह देखने का प्रयत्न
किया कि बिगड़ा हुआ हाल देखें कुछ दुरुस्त होता है या नहीं।
परन्तु यह प्रयत्न भी सफल नहीं हुआ। तब रूस के लोगों, सोचने
और विचारवान् तथा जानकार राजनीतिज्ञों और नेताओं को यह
विश्वास हो गया कि इस युद्ध के समय शत्रु से मुकाबला
देश की प्रजा को अन्नसामुग्री पहुँचा कर, सेना के लिए आवश्
सामान तथा सैनिकों के लिए खाने पीने का सामान इत्यादि
में ज़ारशाही बिलकुल असमर्थ और नालायक है। रूसी लोग
सत्ताक स्वराज्य चलाने के योग्य हों, चाहे न हों, परन्तु यह
अवश्य ही प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुभव से सिद्ध हो गई कि
के समान विकट अवसर पर रूस का राज्यप्रबन्ध चलाने में ज़ारशा
और उसकी ब्यूरोक्रेसी सर्वथैव नालायक, असमर्थ
तदनुसार ज़ार, ज़ारीना और उनके आसपास के कामरिला (कूटमंडल
इत्यादि सब बड़े नालायकों (Notables) को रूसी राष्ट्र ने
दम उनके बड़े अधिकारपद से निकाल बाहर किया। शान्ति
समय में, १९०४ से १९०८ तक, रूसी लोकपक्ष के नेताओं ने
प्रकार की प्रातिनिधिक राज्यपद्धति प्रस्थापित करने का बड़े
बड़े ज़ोरशोर से प्रयत्न किया कि जिससे ज़ारशाही की
और सुलतानी सत्ता बन्द हो और वह राज्यपद्धति लोगों के
चले, तथा बहुजन-समाज की सुखाभिवृद्धि के लिए वास्तव में
हो। परन्तु उस समय ज़ारशाही के हाथ में सेना थी, और ज़ार
शाही के सत्ताधारी लोग उस सेना का उपयोग लोकपक्ष
नेताओं को कुचलने में किया करते थे। ज़ारशाही की सेना
बन्दूकों की फ़ैर, लोकपक्ष की ओर से झगड़नेवाले पेट्रोग्राड
आन्दोलन-कर्ताओं पर, आम रास्ते पर हुआ करती थी और
शाही की पुलीस आन्दोलनकर्ताओं को, क्रांतिकारक लेखकों को
ज़ारशाही के विरुद्ध बड़बड़ करनेवाले पाठकों को पकड़ कर सा
बेरिया में भेज देने और क़ैदखाने में डाल देने के लिए समर्थ थी।
रूस के जेलखानों में इस प्रकार के लाखों क़ैदी थे। १९०५-६-
लोकपक्ष ने अपने आन्दोलन की हद कर दी और ज़ारशाही
तख्ता लौट देने का अनेक लोगों ने प्रयत्न किया। उस
आन्दोलन करनेवालों को रूस के अधिकारियों ने कैसे कैसे
दिये हैं, जिनका वृत्तान्त पढ़ कर शरीर पर रोंगटे खड़े हो आते हैं।
१९०५-०६ में जब राजनैतिक सुधार के लिए वहां के लोगों ने
कर आन्दोलन किया, तथा खूब अशान्ति मची, तब रूस की सरकार
ने (Order first reform afterwards) " पहले शांति और
फिर सुधार " इस मंत्र का जप प्रारम्भ किया, और जो
लनकर्त्ता लोग राजकीय सुधार के लिए शोर मचा रहे थे उनको
पहले कुचल और पीस डालने का कार्य प्रारम्भ किया। उस
रूस के हाकिमों ने किस प्रकार के क्रूर और अमानुष उपायों का
अवलम्बन किया है, उनके अनेक दृष्टान्त ग्रन्थकारों ने लिख रखे हैं,
उनमें से एक ही वाक्य यहां दिया जाता है.—

The report of the session of the Duma of 19
April 1907 (published by the State Printing Pre
mentions how the police used to extinguish ciga
ttes on the bodies of the persons, they had tortu
kicked the prisoners, tore cut their eyes, filled pa
wounds with salt, scorched the feet of prisone
the fire and how to destroy all trace of torture,
used to kill their victims naturally without trial

Alexinsky's Modern Russ
P. 231.

(१० एप्रिल १९०७ की ड्यूमासभा की बैठक के रि
वान का पूरा पूरा वर्णन दिया हुआ है कि पुलिस क़ैदियों
पर सुलगते हुए सिगरेट कुच कर किस प्रकार बुझाती
लान के लोगों को किस प्रकार लातों से कुचलती थी, उ

में नमक किस प्रकार भरती थी; उनके पैर अंगारों पर रखवा कर किस प्रकार जलाती थी-यहां तक कि, कष्ट देने के कारण कैदियों के शरीर पर जो चिन्ह बन जाते थे उनको छिपाने के लिए, मुकदमे के पहले ही यह उनको किस प्रकार बिलकुल जान से मार डालती थी।)

इस प्रकार के अमानुष और जबरदस्ती के उपायों से युद्ध के पहले क्रांतिकारक विचारों के लोगों को ज़ारशाही ने नष्ट कर डाला। क्योंकि ज़ारशाही हुकूमत की सेना और पुलीस को उस समय किसी परकीय शत्रु के विरुद्ध लड़ना तो था नहीं। ज़ारशाही सत्ता अपनी उन्नतिशील प्रजा को ही अपना शत्रु समझती थी। सेना और सशस्त्र पुलीस की मार के आगे क्रांतिकारक आन्दोलनकर्त्ता लोग भी बिचारे क्या करते? ज़ारशाही सेना और पुलीस के अधिकारियों ने अपने ही देश के राजकीय सुधारवादियों पर विजय प्राप्त किया। अपने ही देश के सभ्य और निःशस्त्र लोगों पर गोली चलाने का हुक्म देने, और अपनी ही दुर्बल प्रजा से लड़ कर जबरदस्ती से आन्दोलनकर्त्ताओं को कालेपानी भेजने, जेल में ठूंसने, इत्यादि में रूसी सैनिक अधिकारी बड़े कुशल और दक्ष सिद्ध हुए। परन्तु वर्तमान महायुद्ध शुरू होने पर जब जर्मनी के समान प्रबल परकीय शत्रु से समरांगण में सामना आपड़ा तब ज़ार और उनके अत्याचारी अनुयायियों को यह नहीं सूझ पड़ा कि अब इस बलवान् शत्रु को समरांगण में नीचा कैसे दिखाया जाय। मैक्ज़िम गोर्की नामक, क्रांतिकारक विचारों की पुस्तकें अथवा उपन्यास लिखनेवाले कलमशूर को देश से निकाल देने में, अथवा कालेपानी भेज देने में, अथवा किसी क्रांतिकारक विचारों वाली तरुण स्त्री को पकड़ कर साइबेरिया के निर्जन प्रदेश में ले जा कर छोड़ने अथवा जेल में बांध देने में, अथवा दीनहीन प्रजा के लोगों के, ज़ार के राजमहल के सामने, जमा होकर न्याय मांगने पर, उन पर गोली चला कर उनके मुर्दे सड़कों पर गिराने में जिन ज़ारशाही अधिकारियों की बहादुरी दिखलाई देती थी वही ज़ार के प्रेमपात्र ग्रैंड ड्यूक निकोलस अथवा अन्य सेनाधिकारी ग्रैंड ड्यूक तथा सरदार, हिंडनबर्ग की, बाल्टिक प्रान्त पर रीगा तक चढ़ाई होने पर अथवा मैकेन्सन के पोलैंड पर चढ़ धाने पर, अपनी श्रेष्ठ रणविद्या का यह ज्ञान बिलकुल ही नहीं दिखला सके कि अब जर्मन सेनानियों का प्रतीकार किस प्रकार किया जाय अथवा कौन से सैनिक दावँ-पेंच लड़ाकर जर्मन धावे को पराभूत किया जाय। अपने राज्य की दीन हीन और निःशस्त्र प्रजा पर अधिकारमद से, और सशस्त्र सेना के बल पर, मनमाने अन्यायपूर्ण अत्याचार करनेवाले ज़ारशाही के नालायक अधिकारियों की बहादुरी जबरदस्त जर्मन सेना के सामने उसी प्रकार बेकार साबित हुई जैसे अपने घर में स्त्रियों में अपनी डींग हांकनेवाले विराटपुत्र उत्तर की शूरवीरता व्यर्थ सिद्ध हुई थी, दीन दुबली प्रजा पर फौजी सामर्थ्य के ज़ोर पर सुलतानी सत्ता चलानेवाले मदान्ध और उन्मत्त अधिकारसम्पन्न लोगों का जब जबरदस्त पर शत्रु से सामना आ पड़ता है तब भी उनको सदैव की अत्याचार की, और अविचार तथा मदान्धता के साथ मनमाना हुक्म छोड़ने की, आदत बनी रहती है; और यदि शत्रु, पूर्ण विचार से, चतुराई से और दक्षता से लड़नेवाला होता है तो ज़ारशाही के समान केवल बादशाही अत्याचार के ज़ोर पर अनियमित लड़नेवाले घराऊ वीरों का सारा नकशा ही समरांगण में उतर जाता है।

इसी प्रकार जर्मनी के समान शत्रु से ढाई वर्ष टक्कर मारते मारते ज़ारशाही हतवीर्य होगई; और अंगरेज तथा फ्रैंचों से की हुई अपनी शर्तों को भूल कर जर्मनों से अलग सुलह करने की चर्चा ज़ार, ज़ारीना और स्टर्मर के समान ज़ारशाही के नादान दोस्त करने लगे। जिस ज़ार को अपने ही प्रजाजनों को सताते हुए कुछ भी खेद नहीं हुआ उसी ज़ार को और उसके सलाहियों को जर्मनों की मार सहन नहीं हुई; और इंगलैंड तथा फ्रांस के समान जबरदस्त सहायक होते हुए उन्हें बीच में ही छोड़ कर ज़ारशाही ने जर्मनों से मनमानी अलग सुलह करने की कारवाई प्रारम्भ की। इस प्रकार जब यह निश्चित हो गया कि इस महायुद्ध के अवसर पर ज़ार और उसके ज़ारशाही सलाही रूसी राष्ट्र का सम्पूर्ण पर-राष्ट्रीय व्यवहार इस प्रकार से चलाने में सर्वथा नालायक हैं कि जो रूसी राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए शोभा देवे तब रूसी सेना की अधिकांश पलटनें ज़ारशाही पर बिगड़ उठीं। तंगी से सताये हुए और भूखों मरनेवाले, पेट्रोग्राड और मास्को के नागरिक भी ज़ारशाही पर रुष्ट हो गये और इन नादान बड़े नालायकों को पदच्युत करने के लिए कोई भी रोकटोक नहीं रही। ज़ारशाही पूर्णतया सेना पर निर्भर थी। परन्तु जब उन्हीं सैनिक लोगों को ढाई वर्ष के अनुभव से यह अच्छी तरह मालूम होगया कि रूसी सिपाही यद्यपि बड़ा धैर्यशाली योद्धा है, तथापि ज़ारशाही के नादान बड़े अधिकारियों की निर्बुद्धिपूर्ण सैनिक नीति के कारण उसे शत्रु के आगे व्यर्थ के लिए हार खानी पड़ती है, तब सब रूसी सैनिक योद्धाओं ने यह समझ लिया कि अब इस नादान ज़ारशाही की इतिश्री ही होनी चाहिए, और ज़ारशाही का बड़ा आधार जो सेना थी वही जब लोकपक्ष की ओर होगई तब वह अत्यन्त प्रबल एकतंत्री ज़ारशाही, कि जिसका आतंक सारे संसार में छाया हुआ था, बात की बात में, आठ ही दस दिन के अन्दर पदभ्रष्ट हो कर नामशेष हो गई। (Within a week a politica transformation had been wrought that might, throug normal processes of refom, have required anothe century to achieve.

American Review of—
Reviews April No

(शान्तिकाल के, राजकीय सुधारों के मार्ग से जिस घटना के लिए एक आध शताब्दी की दरकार थी वही विलक्षण राजकीय घटना अथवा राजकीय क्रांति इस महायुद्ध की धूमधाम की अश्रुत पूर्व परिस्थिति में सिर्फ एक सप्ताह में घटित हो गई।)

अर्थात् जैसे किसी नाटक में, रंगभूमि पर पहले बाग का दृश्य दिखाई देता है; परन्तु ट्रांसफर-सीन की रचना से जिस प्रकार एकदम उस बाग का राजमहल के दृश्य में परिवर्तन हो जाता है उसी भांति एकदम ज़ारशाही सुलतानी शासन का परिवर्तन लोकसत्ताक राज्यव्यवस्था के रूप में हो गया। जैसे कोई बाजीगर अपनी हाथ की सफाई से, अज्ञ प्रेक्षकों को चकित कर देनेवाली कोई परिवर्तित स्थिति उपस्थित कर देवे उसी भांति रूस की राजकीय व्यवस्था में विद्युत्शक्ति के वेग से एकदम क्रांति उपस्थित हो गई, जिसे देख कर बड़े बड़े पुस्तकी पंडितों और सुज्ञ इतिहास को भी क्षण भर यही विस्मय हुआ कि हम जो कुछ सुन रहे हैं या देख रहे हैं यह कोई भ्रांतिकृत चमत्कार है या सचमुच ज़ारशाही का अन्त ही हो गया है!

रूस युद्ध में शामिल क्यों हुआ?

युद्ध प्रायः किसी देश के भी बहुजनसमाज को प्रिय नहीं होता निस्सन्देह राष्ट्र पर जब कोई भयंकर अरिष्ट अथवा संकट आने को होता है तब उसे टालने के लिए युद्ध में शामिल होने की आवश्यकता होती है; परन्तु यों ही किसी महायुद्ध में शामिल होने के लिए विचारवान् और सच्चे देशहितैषी राजनीतिज्ञ कभी सम्मति नहीं देते। सन् १९१४ में जब सर्विया के विरुद्ध आस्ट्रिया और जर्मनी ने युद्ध आयोजित किया तब सर्विया के समान छोटे देश का पक्ष लेना रूसी राजनीतिज्ञों को आवश्यक जान पड़ा; और जर्मनों ने यह अनुमान कर के कि रूस सर्विया का पक्ष लेगा, उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ऐसी दशा में रूस को जर्मनों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करना आवश्यक हो होगया। परन्तु यदि ज़ार अथवा उसके निकट सलाहियों में किसी ने यह भविष्यद्वाणी कही होती कि महायुद्ध में शामिल होने से तीन वर्ष के भीतर ही उनकी सत्ता अथवा सम्पूर्ण ज़ारशाही का नाश हो जायगा और उनकी प्रजा के लोग ही उसे पदभ्रष्ट कर देंगे तो इसमें सन्देह ही है कि ज़ार इस महा युद्ध में सम्मिलित होने के लिए तैयार हुआ होता या नहीं। ज़ार और उसके आसपास का सैनिकमंडल, अर्थात् ग्रैंड ड्यूक निकोलस इत्यादि लोगों ने समझा कि जापानी युद्ध में रूस की सैनिक कीर्ति में जो कालिमा लग गई है उसे मिटाने का यह अच्छा अवसर हाथ लगा है-इस अवसर को साध कर यूरप के बड़े बड़े राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने से यदि हमें विजय प्राप्त हो जायगा तो यूरप में एक बार फिर हमारा आतंक जम जायगा और जापानी युद्ध से रूस की कीर्ति जो कम हो गई है वह फिर जैसी की तैसी हो जायगी। इसमें ज़ार अथवा उसके सलाहियों का यह मन-

तब नहीं था कि रूसी लोगों की उन्नति हो। महायुद्ध में रूस की हार न होते हुए यदि उसकी बराबर जीत ही होती जाती तो ज़ार-शाही ही पहले से अधिक बलवान हो गई होती। परन्तु यद्यपि एक वर्ष तक रूस ने अच्छा युद्ध किया, तथापि बाद को फिर जो उसकी हार शुरू हुई सो बराबर जारी रही। युद्ध के प्रारम्भ से ही रूस के श्रेष्ठ अधिकारीमंडल में युद्ध के विषय में मतभेद था, रूसी राजदरबार में जर्मनों की ओर के कुछ लोग थे। परन्तु रूसी सेना के मुख्य सेनापति ग्रेंड ड्यूक निकोलस और अन्य अनेक सेनापति जर्मनों के विरुद्ध युद्ध करने के ही पक्ष में थे। वर्तमान पदच्युत ज़ार निकोलस स्वयं बड़े दृढ़ अथवा कार्यक्षम पुरुष नहीं हैं। वे रूसी लोगों को देखते हुए बहुत ही छोटे और दुर्बल हैं। उनकी ऊँचाई साढ़े पांच फीट के भीतर ही है। और डीलडौल बहुत ही साधारण है। स्वयं उनके राजमहल में ज़ार द्वितीय निकोलस की अपेक्षा उनकी पत्नी ज़ारीना की ही प्रबलता विशेष रहती थी। सैनिक विषयों में ज़ार के चाचा ग्रेंड ड्यूक निकोलस की ही सत्ता विशेष रहती थी; और दरबार की कारखाइयों में ज़ारीना की ही विशेष प्रबलता रहती थी। मंत्रिमंडल में जो चुनाव होते थे वे भी ज़ारीना के कृपापात्र पुरुषों में से ही होते थे। ज़ारीना का मैका किसी जर्मन घराने में है। इसलिए उसका झुकाव विशेष कर जर्मनी ही की ओर था। युद्ध के प्रारम्भ से ही रूस का प्रधान मंत्री जनरल सुखोमिलनाफ़ पूरे तौर पर जर्मनों का पक्षपाती था, और वह गुप्तरूप से रूसी फौजों का सब हाल और रूस के युद्धमंत्रियों के आफिस की नियत की हुई युद्धसम्बन्धी योजनाएं, इत्यादि वृत्तान्त जर्मनों को पहुँचाया करता था। अन्त में जब यह बात खुल गई तब यह प्रधान युद्धमंत्री के पद से अलग कर दिया गया। इस लिए इस बात पर जब हम ध्यान देते हैं कि उपर्युक्त प्रकार के घरभेदिया-पन से रूस के सम्पूर्ण सैनिक प्रबन्ध और दांवपेंच का लदा (शकट) पहले से ही टूटा हुआ था तब इस बात का खुलासा सहज ही हो जाता है कि आगे चल कर रणांगण पर रूस बराबर क्यों हारता गया। रणांगण में प्रत्यक्ष उपस्थित हो कर युद्ध करने वाले शत्रु की अपेक्षा घर के अन्तस्थ और आत्मघातकी प्रच्छन्न वैरियों के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र अथवा देश की अत्यन्त हानि होती है। ऐसे प्रच्छन्न वैरी सल्तनतों और बादशाही दरबार में बहुत होते हैं। क्योंकि ऐसे दरबारों की सब कारखाइयां पातालयंत्री बनकर होती रहती हैं। रूस के महायुद्ध में शामिल होते ही इंगलैंड और फ्रांस के साथ उसकी जो विशेष शर्तें हुई थे यद्यपि सार्वजनिक रीति से प्रकाशित नहीं हुईं; तथापि भिन्न भिन्न बांधव राष्ट्रों के जवाबदार मंत्रियों और राजनीतिज्ञों ने इस एक महत्वपूर्ण शर्त का अनेक बार खुल्लमखुल्ला उल्लेख किया है कि मित्रराष्ट्रमंडल में से कोई भी एक राष्ट्र, शत्रु से, अर्थात् जर्मनों से, सब मित्रों की एकमत से लड़ाई समाप्त होने के पहले, अलग सुलह नहीं करेगा और सब मित्रों की सम्मति के बिना बीच में युद्ध से अलग नहीं होगा। इस प्रकार की शर्त पर इंगलैंड और फ्रांस को सब प्रकार की सहायता रूस के लिए करनी थी। रूस की सेना बहुत बड़ी थी, देश बहुत विस्तृत था, लोकसंख्या भी काफी थी, ऐसी दशा में यह कदापि सम्भव न था कि रूस को लड़नेवाले लोगों की कमी पड़ती। परन्तु रूस का राज्य यद्यपि विस्तीर्ण है, तथापि यूरोपियन रूस के कुछ प्रान्त और नगर यदि छोड़ दिये जांय, तो शेष राज्य बिलकुल पिछला हुआ और अप्रबन्ध में पड़ा हुआ है। शस्त्रों और यांत्रिक आयुधों के कारखानों के विषय में भी रूस पिछड़ा हुआ ही है। हां, लाखों की तादाद में सेना यदि रणांगण में काम आ जाय तो नवीन लाखों सैनिक फिर से खड़े करने के लिए रूस के पास मनुष्यबल काफी है। तथापि इस महायुद्ध में जिस विस्तृत परिमाण में गोलाबारूद खर्च होता है वैसा ही यदि वर्षों तक खर्च होते रहे तो बड़े परिमाण पर अधिक गोलाबारूद तैयार करने के लिए जितने कारखाने और आधुनिक यंत्रसामग्री चाहिए उतनी रूस के पास नहीं थी। ऐसी दशा में युद्धोपयोगी सामान अर्थात् गोलाबारूद और शस्त्रास्त्र काफी तौर पर रूस को पहुँचाने की जवाबदारी इंगलैंड, फ्रांस और जापान ने ली थी, और रूस को द्रव्य की कमी होने पर चाहे जितना धन कर्ज़ के तौर पर देने के लिए इंगलैंड समर्थ था। इंगलैंड ने युद्ध के प्रारम्भ से करोड़ों पौंड की सहायता रूस को मुक्तहस्त हो कर की है। और जापान ने रूस से काफी कीमत ले कर सब प्रकार का युद्धोपयोगी सामान उसे पहुँचाया है। इंगलैंड का धन, जापान का माल अथवा तोपें बन्दूकें और रूस के योद्धा सेनानी, इस तीन प्रकार के बल पर रूस ने जर्मनी और आस्ट्रिया के विरुद्ध दो ढाई वर्ष तक खूब जोरों से युद्ध किया; और जान पड़ता था कि अन्त तक रूस की जारशाही इसी प्रकार युद्ध जारी रखेगी; परन्तु रूस के दरबार में ज़ारीना के आसपास जो कूटमंडल था उसने धीरे धीरे एक निराला ही हथकंडा चलाने का प्रारम्भ किया।

अपूर्ण।

ब्रह्मीभूत श्रीनित्यानन्द स्वामी महाराज।

(गोपालमठाधिपति, उमरखेड़ बरार।)

मि० शमसुल सिद्दीक़ हक़ उर्फ़ दूसरे राममूर्ति।

[illegible]
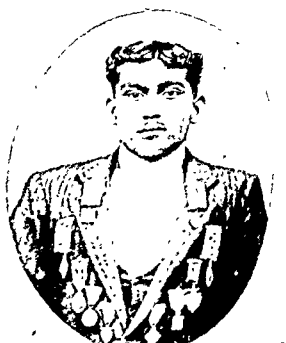
शुक्ल यजुःशाखीय ब्रह्मवृन्दों का चातुर्मास्य यज्ञ।
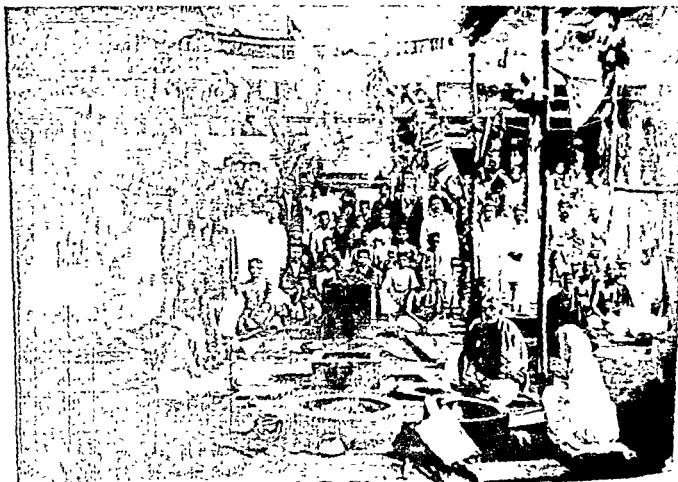
यज्ञ का दृश्य।
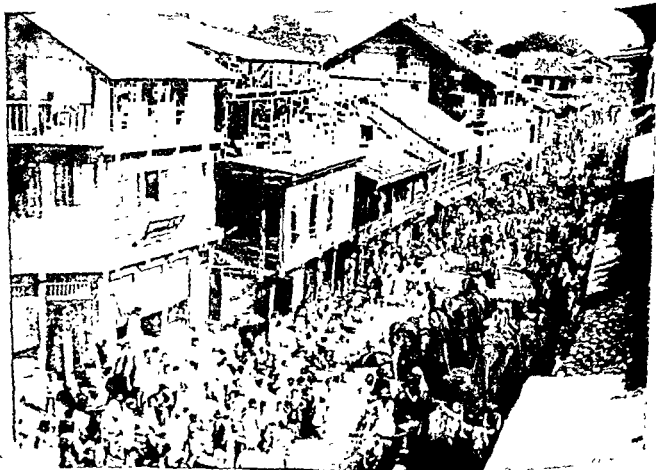
जलूस का दृश्य।

प्राचीन काल में इस पवित्र आर्यावर्त में प्रत्येक ऋतु के आरम्भ में सार्वजनिक यज्ञ हुआ करते थे, जिनसे प्रजा में सब प्रकार

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का जून मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०।)

बेलजियम फ्रांस और इटली के मैदानों में यद्यपि जून मास की लड़ाइयां एप्रिल और मई की तरह रक्तपात की दृष्टि से बहुत भयंकर नहीं हुईं; तथापि राजकीय वायुमंडल की दृष्टि से बहुत ही महत्व की हुईं। एप्रिल, मई और जून इन तीन महीनों की लड़ाइयों ने पश्चिमी रणभूमि के विषय में, अर्थात् फ्रांस और इटली के मैदानों के विषय में, अब यह सिद्ध कर दिया है कि कम से कम इस वर्ष तो अवश्य ही, सैनिक नीति की दृष्टि से, उधर बहुत बड़ा कार्य किसी पक्ष के भी हाथ से होने के चिन्ह दिखाई नहीं देंगे। इंगलैंड ने जून मास के प्रारम्भ में इप्रेस के दक्षिण में मेसीनी मुकाम पर बड़ा भारी विजय सम्पादन किया। मेसीनी की टेकड़ी पर खड़े हो कर जर्मनी इप्रेस की ओर की अँगरेज़ी सेना की हलचल पर नज़र रख सकता था। इप्रेस और आर्मेंटरीज की सेनाओं के बीच में मेसीनी का मुकाम जर्मनी के हाथ में था। इस मुकाम को जर्मनी से छीन लिये बिना फ़्लैंडर्स की ओर की अँगरेज़ी सेना को चैन नहीं पड़ सकता था। इसी स्थान को प्राप्त करने के लिए अँगरेज गत वर्ष से तैयारी कर रहे थे। मेसीनी की टेकड़ी के नीचे प्रचंड सुरंगें तैयार कर रखी गई थीं। ये सब सुरंगें एकदम उड़ाई गईं, और उसी समय सैकड़ों तोपों से रातदिन मेसीनी पर इतनी भयंकर गोलावृष्टि की गई कि दोनों ओर के दलों को ऐसा भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा कि जैसे पृथ्वी के पेट से निकलनेवाले और आकाश से गिरनेवाले विलक्षण आग के गोलों का तुमुल युद्ध ही भूपृष्ठ पर हो रहा हो! इन आग के गोलों से अकस्मात पृथ्वी का मंथन हो गया, टेकड़ियों के मैदान बन गये; और मैदानों के तालाब बन गये। नदी, नालों और पुराने वृक्षों का तो उतनी दूर पर पता ही नहीं रहा! उस जगह की पृथ्वी का सौ दो सौ वर्ष का आकार एक दिन में बदल गया। इस प्रकार का भयानक पृथ्वीमंथन जारी होने पर अँगरेज़ी सैनिकों ने बात की बात में मेसीनी का मुकाम हस्तगत कर लिया। सात आठ हज़ार जर्मन कैदी और कितनी ही तोपें अँगरेज़ों के हाथ लगीं, और अँगरेज़ों की शक्ति की बहुत बड़ी धाक जर्मनों के सामने जम गई। इसमें सन्देह नहीं, मेसीनी की जीत बड़ी भारी हुई; परन्तु आखिर वह ठहरी स्थानिक स्वरूप की ही। क्योंकि मेसीनी के पूर्व ओर, इस विजय के बाद, दो चार दिन लड़ने पर भी अँगरेज लोग जर्मनी का दल फोड़ नहीं सके। मेसीनी के इस विजय को बेकाम कर देने के लिए जर्मनों ने इप्रेस से बेलजियम के किनारे तक बड़ी खटपट की। दूर दूर तक खबर लेनेवाली तोपों से डंकन बन्दर पर गोले फेंके; पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। बेलजि- और फ्रांस के किनारे के पास पश्चिमी रणक्षेत्र का भाग फ्रांस इतने दिन अपने हाथ में रखा था। फ्रांस ने इस भावना से ऐसा था कि अपने किनारे पर परराष्ट्र की सेना का अमल नहीं ...। पर उस भावना को भी दूर कर के फ्रांस ने इधर कुछ ... से यह मैदान अँगरेज़ों के सिपुर्द कर दिया। इस परिवर्तन के कारण, इस आशा से कि अब दोनों ओर आक्रमण करने का अच्छा ... है, जर्मनी ने उस ओर अनेक हमले किये; पर सब व्यर्थ गये। ... के प्रचण्ड उद्योग के बाद सैनिक जानकार लोगों की यह ... पड़ी कि इस वर्ष जर्मनी का दल फोड़ने का साहस करने ... अपेक्षा, अगले वसन्तकाल में, अमेरिका की पांचसात लाख की ... मदद आ पहुँचने पर, उस साहस के लिए प्रवृत्त होना उचित होगा। तथापि जून के उत्तरार्ध में अँगरेज़ी सेना चुप नहीं बैठी। जर्मन सेना को प्रति दिन घिस घिस कर क्षिया डालने का क्रम सेनाध्यक्ष हेग साहब ने बराबर जारी रखा। लेन्स शहर के उत्तर और दक्षिण ओर अँगरेज़ों ने जर्मनों को थोड़ा थोड़ा पीछे हटाया; और पश्चिम तथा दक्षिण ओर से लेन्स शहर को घेर लिया। उत्तर फ्रान्स की मौल्यवान् खानियों के प्रदेशों का लेन्स से प्रारम्भ होता है; और उनके कितने ही उद्योगधंधों का केन्द्रस्थान उक्त शहर ही है। इस शहर के मौल्यवान् पदार्थ जर्मन ले गये हैं; और सैनिक दृष्टि से भी कोई काम का पदार्थ उन्होंने वहां नहीं रखा। मौका आ पड़ने पर पलायन करने की सारी तैयारी जर्मनों ने कर रखी है। इस लिए जानकारों का अनुमान है कि यह पका हुआ फल शीघ्र ही अँगरेज़ों के हाथ में टपक पड़ेगा। तथापि जर्मनी का यह दृढ़ निश्चय जान पड़ता है कि इस शहर के रास्तों में खन्दक खोद कर और बड़ी बड़ी इमारतों को किलों का स्वरूप दे कर, प्रत्येक गली और प्रत्येक मुहल्ले को लड़ा कर, तब फिर लेन्स शहर अँगरेज़ों के हाथ में जाने दिया जाय। मतलब यह है कि जिससे अँगरेज़ों की तोपों से फ्रैंचों की सुन्दर हवेलियां और बड़े बड़े कारखाने मिट्टी में मिल जाँय; और यह कहने का मौका आवे कि फ्रैंचों की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति पर अँगरेज़ों ने गधों का हल चलाया! लेंस शहर को दृढ़तापूर्वक पकड़ बैठने पर जर्मन समाचारपत्रों में उपर्युक्त प्रकार का ही चोरों का उलटा शोर शुरू हो गया है। अँगरेज अथवा फ्रैंच इस चिल्लाहट की बिलकुल परवा करनेवाले नहीं हैं, इस लिए यह स्पष्ट है कि अँगरेज लेंस को हस्तगत करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं उसमें जुलाई मास में बिलकुल शिथिलता नहीं आवेगी। जून मास में अँगरेज़ों की ओर जैसी लड़ाइयां हो रही थीं वैसी लड़ाइयां फ्रैंचों की ओर भी हो रही थीं। इस ओर जर्मनों ने फ्रैंचों से अधिक हमले किये। किंबहुना जून के अन्त में तो ऐसा जान पड़ने लगा कि जैसे जर्मन वर्डून के हमले की पुनरावृत्ति करने के उद्योग में ही इस ओर हों। इस समय फ्रैंचों का सारा राष्ट्र का राष्ट्र रणभूमि पर खड़ा है। ऐसा एक भी पुरुष नहीं बचा है जो लड़ाई करने योग्य हो। ऐसी दशा में फ्रैंचों पर असह्य भार डाल कर फ्रांस के सर्व-साधारण जनसमूह को भी यदि यह भास कराने का उद्योग जर्मन लोग करें, कि लड़ाई के झगड़े में अब न पड़ना चाहिए, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। एप्रिल और मई के महीनों में फ्रैंचों ने जो भारी चढ़ाई शुरू की उसका परिणाम फ्रांस की अटकल के अनुसार नहीं हुआ। सर्वसाधारण जनसमूह कुछ सन्तुष्ट हुआ और फ्रैंच पार्लिमेंट में सेनापतियों के कार्य पर सख्त टीका-टिप्पणी की गई। इस टीका का उत्तर देते हुए फ्रैंच मंत्रिमंडल ने कहा कि लोगों ने निष्कारण मनमानी आकांक्षाएं उत्पन्न होने दीं; और इसी कारण यह बुरा लगने का मौका आया। तथापि फ्रांस के मुख्य सेनापति में परिवर्तन किया गया; और वह क्षुब्ध लोकमत शान्त हुआ। परन्तु जर्मनी ने जून मास में अपनी मुख्य गोला वृष्टि फ्रैंच सेना पर ही प्रारम्भ की कि जिससे लोकमत की वह क्षुब्धता कायम रहे और फ्रांस, फ्रैंच मंत्रिमंडल की तरह, सुलह के लिए नाखुश न रहे। रीम्स और वर्डून के मैदान में म्यूज नदी की बाईं ओर के भाग में जर्मनों ने कुछ जगह अचानक हमले करके फुटकल जय प्राप्त किया। परन्तु यह जय क्षुद्र और स्थानिक स्वरूप का ठहरा और जर्मन मुर्दों से रणभूमि भर आच्छादित हो गई। जर्मनों को कोई बड़ा विजय प्राप्त नहीं हुआ और न फ्रैंचों का दल फूटा। तथापि, इसमें सन्देह नहीं कि जून के अन्त में फ्रैंचों की हानि बहुत हुई। जून महीने में फ्रैंच रणभूमि की तरह इटली की रणभूमि को भी आस्ट्रो-जर्मनों ने बहुत कष्ट दिया, मई के अन्त में इटली ने ट्रिस्टी की सीध में बड़ा भारी जय प्राप्त किया, और ऐसा जान पड़ने लगा कि ट्रिस्टी बन्दर दो चार सप्ताह में इटली के हाथ में अवश्य आ जायगा। परन्तु जून मास में यह दशा बदल गई; और आस्ट्रिया की दाब धैर्य से सहने की नौबत इटली पर आ गई। कार्सो के मैदान में आस्ट्रिया को ऐसे विजय मिलने लगे जो कि वास्तव में थे तो क्षुद्र और स्थानिक स्वरूप के; पर थे इटली को कुछ पीछे हटानेवाले अवश्य थे। इसके सिवाय ट्रेंटिनो के मैदान में, गत साल की रणभूमि में एक दो घाटों से इटली को अपने लोग हटा लेने पड़े। यह सच है कि गत वर्ष की तरह जून महीने में इटली पर दाब नहीं पड़ी, तथापि ऐसी भीति उत्पन्न हुई कि जैसे आस्ट्रो-जर्मन ऐसा सैनिक दाँव पेंच खेलते हैं कि फ्रांस की सेना

।, जो कि एकदम दौड़ आकर इटली की मदद करती है, बराबर
स्त दशा में रख कर इटली की दाब और भी अधिक बढ़ा दी जाय।
ांस-इटली की ओर की जून महीने की आस्ट्रो-जर्मनों की हलचल से
सी सैनिक नीति दृग्गोचर होने लगी कि रूस की तरह इटली को भी
ंधि के विषय में उत्सुक किया जाय और वैसा करने पर भी जुलाई
हीने की सन्धिचर्चा यदि जर्मनी के अनुकूल न हो तो इटली की
ाव एकदम विलक्षण ज़ोर से बढ़ा कर हेमन्त के पहले मित्रराष्ट्रों
ा एक पैर लँगड़ा कर रखा जाय। फ्रांस
ी तरह इटली के भी सर्वसाधारण प्रजा-
न जून मास में अशान्त होने लगे। जून
: अन्त में इटली की पार्लिमेंट की गुप्त
ठक आठ दिन तक होती रही और
न्धिचर्चा तथा सैनिक नीति के विषय में
हुत कुछ वादविवाद होता रहा। अन्त
 मंत्रिमंडल का किया हुआ खुलासा
टली की पार्लिमेंट को स्वीकार हुआ और
त्रिमंडल पर विश्वास रखने की सूचना
ार्लिमेंट में खुल्लमखुल्ला पास हुई। तथापि
ून के अन्त में आस्ट्रो-जर्मनों की दाब के
ारण इटली कुछ चिन्ताक्रान्त हुआ।
रन्तु जून मास में यह दाब इतनी ज़ोर
ी नहीं थी कि जो गत वर्ष के समान
चिन्ता करने योग्य हो, तथापि इटली को
ह डर मालूम होने लगा कि यदि यह
िद्ध हो गया कि रूस का गड़बड़ ऐसा
ी बना रहेगा और रूस वर्ष भर निश्चित-
न से चुप ही रहेगा तो रूस की ओर का
पना सैन्य-गौरव निकाल ले कर, फ्रांस
ो सदैव त्रस्त दशा में रख कर, इटली
ो तोड़ने का विचार कार्यरूप में परिणत
रने के लिए दीर्घोद्योग किये बिना सेo
हेंडनबर्ग हेमन्त नहीं देखेंगे। गत वर्ष
ूसी सेनापति ब्रुसेलाफ ने इटली के ऐसे
ंकटसमय में गेलेशिया पर एकदम प्रबल
ढ़ाई शुरू की, और आस्ट्रिया का बड़ा
ारी पराभव कर के इटली की रणभूमि
ा स्वरूप एकदम पलट दिया। इस बार
ूस से ऐसी सहायता मिलने की आशा
ी थी, यही नहीं, किन्तु यह भी डर
ालूम होने लगा था कि कहीं ऐसा न हो
क रूस की गड़बड़ और बढ़ जाय, और
ह अपनी सन्धिवार्ता अन्य मित्रराष्ट्रों के
ले में न बांध दे। परन्तु जून के अन्त में
ौर जुलाई के आरम्भ में रूस की गेले-
शिया की सेना ने टार्नपूल के पश्चिम ओर
फिर धावा किया है। इस धावे में उसने
आस्ट्रिया और टर्की की सेना को भगा
कर कितनी ही तोपों के साथ पन्द्रह तीन
हज़ार सेना कैद की। गेलेशिया में रूसी
सेनापति ब्रुसिलाफ ने तीन चार लाख
नवीन सेना एकत्र की है, और इस सेना
को, रूसी राज्यक्रान्ति के पहले के दिनों
से अधिक दृढ़ सहायता सैबीरियन लोगों से और [illegible] से की है।
ज़िलेट नदी से बुकोविना तक सब रूसी रणभूमि जागृत हुई है। और
जुलाई के आरम्भ में टार्नपूल के पश्चिम के [illegible] के महत्वपूर्ण मुकाम
को उसने और [illegible] से रूस ने ले लिया है। इस चढ़ाई की खबरों से
ऐसी सुखप्रद आशा होने लगी थी कि गत वर्ष की रूस की [illegible] की
तरह इस वर्ष भी सेनापति [illegible] बड़ा भारी विजय सम्पादन
करेंगे, परन्तु जुलाई के मध्य [illegible] में आई हुई खबरें इतनी
आशाप्रद नहीं हैं, और यह भी प्रकाशित हुआ है कि जर्मनों ने
दूसरे [illegible] ज़िलेट नदी के ऊपर और नियस्टर के मैदान में आस्ट्रो-
[illegible] के रूस पर धावे आरम्भ कर दिये हैं। यदि रूस का [illegible]

किया हुआ विजय गत वर्ष के समान बड़ा न हो, तथापि रूस की
वर्तमान स्थिति में यही बात क्या कम महत्व की है कि दक्षिण ओर
की रूसी सेना ने फिर धावा आरम्भ कर दिया है और आ
जर्मनों को कुछ पीछे भी हटाया है। यह सुन कर कि रूस फि
लड़ने लगा है, मित्रराष्ट्रों को बड़ा आनन्द हुआ है। इसके सि
अब यह भय भी दूर होने लगा है कि रूस निद्रित हो कर
सब के गले में सन्धि का ढोलना न बांध देवे। रूस के इस उ

रूस की रणभूमि।

से फ्रांस और इटली की दाब हलकी होगी। यही नहीं, [illegible]
रूस की गड़बड़ भी शान्त होने लगेगी और राज्यक्रान्ति [illegible]
की नवीन सरकार सैनिक दृष्टि से अधिक कार्यक्षम होगी। [illegible]
इस नवीन चढ़ाई का प्रभाव न सिर्फ महायुद्ध की स्थिति [illegible]
पर पड़ेगा, किन्तु रूसी राज्यक्रान्ति ने जो राजनैतिक [illegible]
उत्पन्न कर दी है उस पर भी इसका गहरा प्रभाव होगा। [illegible]
लिए अब उस राजनैतिक परिस्थिति के विवेचन की [illegible]
उचित है।

रूस में राज्यक्रान्ति होने के बाद यद्यपि नवीन मंत्रिमंडल [illegible]
किया गया, और उस मंत्रिमंडल को रूस की नवीन [illegible]

संज्ञा प्राप्त हुई। तथापि सच्ची सत्ता, अर्थात् मनुष्यबल की सत्ता, सैनिक और कर्मचारियों के हाथ में ही रही। अर्थात् इससे नवीन सरकार के हुक्मों की तामील नहीं होती थी। यही नहीं, बल्कि कमेटी के निकाले हुए घोषणापत्र सेना की व्यवस्था के लिए विघातक हुए और लड़ाई के काम में रूसी सेना नालायक होने लगी। इस प्रकार जब कमेटी, डयूमासभा और नवीन सरकार, तीनों का परस्पर मेल न बैठने लगा तब कमेटी के प्रमुख लोगों को मंत्रिमंडल में ही स्थान दिये गये। और इस प्रकार मंत्रिमंडल तथा कमेटी का मेल बैठाया गया। युद्धविभाग और परराष्ट्रीय विभाग सोशियालिस्ट पक्ष के हाथ में चले जाने पर सेना में फिर व्यवस्था उत्पन्न करने का प्रारम्भ हुआ। सोशियालिस्ट पक्ष के लोग जिस समय मंत्रिमंडल में आये उस समय उनकी बहुत सी शर्तें नवीन सरकार को स्वीकार करनी पड़ीं। इन नूतन शर्तों में दो तीन शर्तें मुख्य हैं। इस इकरारनामे में एक ऐसी शर्त है कि "न मुल्क और न कर" इस सिद्धान्त के अनुसार सब राष्ट्रों की सम्मिलित संधि कराने के लिए रूसी सरकार को खुल्लमखुल्ला प्रयत्न करना चाहिए। इसके सिवाय दूसरी शर्त यह है कि सारी जलसेना और स्थलसेना बड़े लोगों के अधिकार में न रहते हुए सैनिकों और खलासियों के चुने हुए अधिकारियों के ही हाथ में रहनी चाहिए। और तीसरी शर्त यह है कि रूस की भावी राजसत्ता का स्वरूप निश्चित करने के लिए नवीन बड़ी पार्लिमेन्ट शीघ्र ही खोलनी चाहिए। अर्थात् सन्धि, सैन्य-रचना और राजसत्ता के स्वरूप के विषय में शर्तें करके सोशियालिस्ट पक्ष के लोग मंत्रि मंडल में प्रविष्ट हुए हैं। यद्यपि ये शर्तें हुईं और सोशियालिस्ट पक्ष के हाथ में बहुत सी सत्ता चली गई, तथापि रूस की अस्वस्थता जून मास में कम नहीं हुई। रूस की राजधानी पेट्रोग्राड के पासवाले क्रुनस्टैड बन्दर की कमेटी ने अपने प्रान्त का शासन स्वतंत्रता से करना प्रारम्भ किया। और जून मास में फिनलैंड की खाड़ी के मुख्य बन्दरों ने क्रुनस्टैड का ही अनुकरण किया। फिनलैंड की कांग्रेस ने यह निश्चित किया कि फिनलैंड का स्वतंत्र रिपब्लिक (प्रजासत्ताक) होना चाहिए। उत्तर की ओर अर्थात् रीगा की ओर की सेना और मध्य पर अर्थात् पोलैंड की ओर की सेना ने अपने अपने अधिकारियों का चुनना प्रारम्भ करके सेना में गड़बड़ी उत्पन्न की। कज़ाक जाति के सैनिकों की कांग्रेस ने यदि यह प्रस्ताव किया कि जर्मन लोग जब तक रूस से निकल न जावें तब तक लड़ना ही चाहिए तो सोशियालिस्ट पक्ष ने यह शोर मचाया कि कुछ सैनिक लोग ज़ार की सत्ता फिर से स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किसानों की कांग्रेस, दक्षिणी प्रान्त की कांग्रेस, सैनिकों की कांग्रेस, इत्यादि अनेक सभाएँ नई और जून मास में रूस में हुईं। इन सभाओं में यह दशा देखी गई कि प्रत्येक सभा ने कोई न कोई अपना नवीन ही सिद्धान्त प्रकट किया। रूसी भाषा जिसे कहते हैं वही भाषा यद्यपि राजदरबार की भाषा है, तथापि अन्य कई भाषाएं भी रूस में जारी हैं। धर्म के विषय में भी एकता नहीं है, किन्तु एक ईसाईधर्म के ही अनेक पंथ बन गये हैं; और इस प्रकार धर्मबंधन की भी अनेक सूरतें हो गई हैं। यदि कुछ लोगों का यह कथन है कि भाषा के अनुरोध से रूस के भाग कर के, उन सब भागों को स्वतंत्र रिपब्लिक के अधिकार दे कर भाषास्वातंत्र्य पूर्णतया अमल में लाया जाय और इन रिपब्लिकों को एक सूत्र में बांधनेवाली एक लोकसभा पेट्रोग्राड में स्थापित कर के केवल उसका कारबार रूसी भाषा में हो, तो कुछ लोग यह कहते हैं कि धर्मपंथानुसार रूस के विभाग कर के प्रत्येक विभाग स्वतंत्र ही लोकसत्ताक राज्य बनाया जाय। नवीन राजसत्ता और उसकी संघटना के विषय में ऐसे अनेक प्रकार के मत रूस में इस समय संचार कर रहे हैं। सेना की ओर यदि हम दृष्टि डालते हैं तो काले समुद्र की रूस की जलसेना और गेलेशिया की ओर की अर्थात् दक्षिण ओर की सेना ही उपर्युक्त नाना प्रकार के मतों की बाधा से अलिप्त है। से० आलेक्ज़ीफ़ उत्तर ओर के सेनापति थे और जनरल ब्रुसेलाफ़ दक्षिण के सेनापति थे। उत्तर की सेना व्यवस्था की लगाम से मुक्त होने पर नवीन व्यवस्था जारी करने में से० आलेक्ज़ीफ़ असमर्थ हो गये। रणांगण में कहीं न कहीं युद्ध कर दिखाने की शक्ति उसमें नहीं रही। क्योंकि उत्तर और मध्य की सेना ने इतने नवीन अधिकारी स्वयं चुने और पहले के इतने अधिकारी निकाल डाले कि मुख्य सेनापति आलेक्ज़ीफ़ को यह समझने में ही कठिनाई पड़ने लगी कि कौन किस कार्य के योग्य है और किसको हुक्म देने से कार्य सिद्ध होगा। वे किसको और कैसा हुक्म देवें? सारी ही सैनिक सृष्टि नवीन बन गई! पहले की पहचान तक नहीं रही। इस लिए जब देखा गया कि मुख्य सेनापति आलेक्ज़ीफ़ इस प्रकार पंगु होगये तब उनको उस पद से अलग कर दिया गया, और उनकी जगह सेनापति ब्रुसेलाफ़ की नियुक्ति की गई। गेलेशिया की ओर की सेना में गत वर्ष सेनापति ब्रुसेलाफ ने बड़ा भारी विजय सम्पादन कर दिया है-अर्थात् दक्षिण की सेना में उनका गौरव और प्रतिष्ठा खूब है। और इस सेना के अधिकारी भी उनके बड़े भक्त हैं। इस लिए से० ब्रुसेलाफ ने जब यह देखा कि दक्षिण की सेना हमारे हाथ में है तब उन्होंने इस सेना में जून मास में नवीन उत्साह उत्पन्न किया। और उत्तर तथा मध्य की सेना की तैयारी होने के पहले ही जून के अन्त में और जुलाई के प्रारम्भ में नवीन रूस की नवीन चढ़ाई का प्रारम्भ हुआ। जुलाई के पहले सप्ताह में उत्तर की ओर इस प्रकार की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की गई है कि मध्य और उत्तर की सेना और फिनलैंड की खाड़ी की जलसेना को दक्षिण ओर की सेना का अनुकरण कर के रूस को कृतकृत्य करना चाहिए। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि उत्तर की तैयारी होने के पहले ही से० ब्रुसेलाफ ने अपने हाथ का यह दक्षिण का बाण क्यों छोड़ दिया? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें रूस की सन्धिचर्चा की ओर ध्यान देना होगा। जर्मनी के सोशियालिस्ट पक्ष के द्वारा जर्मनी ने रूस से सन्धि की बातचीत चलाई है। रूस को नाना प्रकार की सुविधाएं दे कर जर्मनी ने द्रव्यसहायता करने का भी आश्वासन दिया; और मित्रराष्ट्रों को छोड़ कर स्वतंत्र सन्धि करने के लिए बहुत आग्रह किया; पर रूस के सब पक्षों ने स्वतंत्र सन्धि को अस्वीकार किया। रूस की राज्यक्रान्ति के बाद रूस में जो नाना प्रकार के मत प्रकट हुए उनमें एक ऐसा भी मत था कि जो यह आग्रह करता था कि राजाओं और सम्राटों ने जो यह महायुद्ध जारी कर रखा है उसका साफ़ तौर से निषेध कर के और यह युद्ध एकदम बन्द करना चाहिए। पेट्रोग्राड के सैनिकों और कर्मचारियों की कमेटी पर पहले पहल इस मत का प्रभाव पड़ा, और इस कारण रूस की उत्तरी सेना को भी इस मत से कुछ बाधा हुई; परन्तु नवीन रूसी सरकार पूर्णतया मित्रराष्ट्रों के पक्ष में थी, इस कारण डयूमा सभा में जर्मनों से भिड़ने का ही बहुमत रहा; और रूस को फोड़ने का जो दाँव जर्मनी ने चलाया था सो निष्फल हुआ। तथापि गत मई महीने में कमेटी के सभासद जिस समय रूसी मंत्रिमंडल में शामिल हुए उस समय "न राज्य और न कर" के मंत्र के अनुसार सब की सम्मिलित सन्धि कराने के लिए नवीन रूसी सरकार प्रयत्नशील हुई। "न मुल्क और न कर" का मंत्र पेट्रोग्राड की कमेटी के उच्चारण करते ही आस्ट्रिया ने नाराजी प्रकट की और जर्मनी ने अस्पष्ट सम्मति दी। इंगलैंड, फ्रांस और इटली ने उक्त मंत्र के साधारण सिद्धान्त स्वीकार किये सही, पर यह बात उन्होंने साफ तौर पर सारे संसार के सामने प्रकट कर दी कि ऐसे सिद्धान्तों का बहाना कर के जर्मनी किस प्रकार अपना पराजय टाल रहा है। रूस में राज्यक्रांति हुई, और इस कारण यद्यपि रूस युद्ध के लिए असमर्थ होगया, तथापि शेष तीन मित्रराष्ट्रों ने ही मिल कर आस्ट्रो-जर्मनों को खूब पीछे हटाया, और जर्मनी इन तीनों में से किसी का कुछ भी नहीं कर सका। अर्थात् मनुष्यबल की दृष्टि से तुलना करने पर मालूम होता है कि जर्मनी, आस्ट्रिया, बल्गेरिया और टर्की, चारों के वज़न के समान आज इंगलैंड, फ्रांस और इटली, इन तीन का वज़न है। इसके सिवाय इंगलैंड का वज़न बढ़ने में अभी बहुत गुंजाइश है। परन्तु आस्ट्रो-जर्मनों की वृद्धि अब बिलकुल कुंठित हो गई है। ऐसी दशा में रूस यदि फिर थोड़ी सी हलचल दिखलावेगा तो आगामि वर्ष, जब कि अमेरिका की पूरी पूरी मदद आ पहुंचेगी, जर्मनी खूब पिटेगा, और फिर उसे सन्धि की भिक्षा मांगे बिना और कोई मार्ग ही न रहेगा। अब जर्मनी के सेनापतियों का यह अभिमान नहीं रहा कि हम सारे राष्ट्रों को जीत लेंगे। यद्यपि यह सत्य है कि जर्मनी को जो कुछ चाहिए था वह उसने जीत लिया है

और महायुद्ध का जर्मनी का साध्य आज ही सिद्ध हो गया है; तथापि मित्रराष्ट्र कहते हैं कि उन निगले हुए रत्नों को पचाने की ताकत जर्मनी में नहीं है; और इस वर्ष की सैनिक तैयारी से अपने मत की सत्यता भी मित्रराष्ट्रों ने संसार के सामने सिद्ध कर दिखलाई है। मित्रराष्ट्रों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए जर्मनी ने मित्रराष्ट्रों पर अपनी पनडुब्बियों को छोड़ दिया है। और जर्मनी अब खुले तौर पर यह बढ़ाई मारने लगा है कि पनडुब्बियों के संहार से इँगलैंड को अत्यन्त कष्ट होंगे; और स्वयं इँगलैंड ही दांतों में तिनका दबा कर जर्मनी के सामने सन्धियाचना करेगा। इस दर्पोक्ति का यदि हम अच्छी तरह विचार करें तो हम को मालूम हो जायगा कि गत वर्ष रोमानियन सेना को जर्मनी ने जिस प्रकार हराया उस प्रकार इस वर्ष किसी को भी हराने के लिए जर्मनी के पास सेना मौजूद नहीं है; और जीते हुए प्रदेश की रक्षा करने के अतिरिक्त जर्मनी आज कुछ भी करने के लिए समर्थ नहीं है। रूस को नीचा दिखाने के लिए सेनापति हिंडनवर्ग ने आठ दस लाख सेना तैयार कर रखी थी सही, परन्तु मार्च, एप्रिल और मई—इन तीन महीनों की एँगलों-फ्रेंचों की चढ़ाई ने सेनापति हिंडनवर्ग के सारे विचारों को धूल में मिला दिया है; और रूस को एक प्रकार से निर्भय कर दिया है। अब जर्मनी का सारा आधार पनडुब्बियों के संहार पर रह गया है। मई मास में इन पनडुब्बियों ने जितने जहाज डुबाये उतने ही करीब करीब जून में भी डुबाये। जान पड़ता है कि प्रति सप्ताह इँगलैंड के बीस पचीस और अन्यों के दस पन्द्रह जहाज डुबाने का सिलसिला आगे भी वैसा ही जारी रहेगा। परन्तु इँगलैंड के राजनीतिज्ञों का यह निश्चित मत है कि चाहे इन पनडुब्बियों का संहार वैसा ही जारी रहे, तथापि भूखों मर कर अथवा गोला-बारूद की कमी से इँगलैंड के लड़ने में कदापि न्यूनता नहीं आवेगी। एँगलो-फ्रेंचों को यह पूर्ण विश्वास होगया है कि जर्मनी अब संग्रामभूमि में निर्बल हो रहा है और अगले साल, जब कि रूस और अमेरिका की मदद हम को आ मिलेगी तब हम लोग जर्मनी को खूब ही मार देंगे। जून मास में एक और भी ऐसी बात हुई कि जिससे सिद्ध होता है कि जर्मनी निर्बल होगया है। ग्रीस में एँगलो फ्रेंचों की सेना उतरी और ग्रीस के राजा कांस्टॅंटाइन को, उसके बड़े लड़के सहित, ग्रीस से बाहर निकाल दिया। उसके छोटे लड़के को गद्दी दी गई और सेलिनोका की ओर जर्मनी के विरुद्ध लड़नेवाले भूतपूर्व प्रधान मंत्री विनिज़िलास के हाथ में सारी सत्ता चली गई; और ग्रीस का नवीन भाग्य सेलिनोका की सेना को मिला और सम्पूर्ण ग्रीस का एक नवीन शत्रु जर्मनी के लिए उत्पन्न हुआ। इस प्रकार जर्मनी का मित्र और रिश्तेदार ग्रीस का राजा कान्स्टॅंटाइन पदच्युत हुआ और तिस पर भी जर्मनी ने सेलिनोका की ओर बिलकुल हाथ पैर नहीं हिलाया। इस से, कुछ लोग कहते हैं कि, रणांगण पर जर्मनी की निर्बलता सिद्ध होती है। दूसरी ओर से ऐसा प्रतिपादन किया जाता है कि जर्मनी रूस की कारवाई में फँसा हुआ है, और वह यह देखता है कि यदि संधिवार्ता का कुछ फल न निकले तो रूस पर ही फिर अच्छी तरह चढ़ाई कर के वहां की [illegible] में और भी अधिक गड़बड़ी उपस्थित की जाय। जर्मनी की यह सैनिक नीति सत्य हो या मिथ्या—परन्तु मित्रराष्ट्रों को यह विश्वास है कि यदि हम धैर्य के साथ अपनी सारी शक्ति का पूर्ण उपयोग करेंगे तो, न इस वर्ष ही, अगले वर्ष अवश्य ही—अमेरिका की सहायता से जर्मनी को चारों खाने चित कर देंगे। इससे जान पड़ता है कि "न गुरुक और न कर" के अनुसार सन्धि करने के लिए इँगलैंड बिलकुल तैयार नहीं है। इँगलैंड और फ्रांस के ये [illegible] सरकार को और पेट्रोग्राड की कमेटी को अच्छी तरह समझा दिये गये। तथापि कमेटी के [illegible] प्रमुख महाशय [illegible] के साथ सन्धिचर्चा करने के लिए जून के अन्त में [illegible] के [illegible] में गये और जुलाई के आरम्भ में उन्होंने जर्मनी के [illegible] से सन्धिचर्चा भी आरम्भ की। [illegible] से चर्चा [illegible] कर के वे लोग इँगलैंड, फ्रांस और इटली में आ कर वहां की [illegible] के साथ सन्धि के विषय में विचार करनेवाले हैं। इससे जान [illegible] कि [illegible] इस सन्धिचर्चा में ही जायगा। [illegible] के लोगों और [illegible] को [illegible] [illegible]

विषय में इन लोगों की सलाह एँगलो फ्रेंचों को पसन्द [illegible] तो ठीक है, अन्यथा क्या होगा? रूस के जो लोग [illegible] शामिल हैं वे कुछ रूसी सरकार की ओर के लोग नहीं [illegible] पेट्रोग्राड की कमेटी के प्रतिनिधि हैं। इस कमेटी के हाथ [illegible] सच्ची सत्ता है जरूर, तथापि इस कमेटी के विरुद्ध भी [illegible] वान् पक्ष इस समय रूस में आगे बढ़ रहा है; और यह [illegible] राष्ट्रों की सलाह को मानने के लिए पूरे तौर पर तैयार है [illegible] के मुखिया स्वयं सेनापति जनरल ब्रुसेलाफ हैं; और ड[illegible] का इस पक्ष को आधार है। जून के अन्त में डयूमासभा [illegible] की आज्ञा पेट्रोग्राड की कमेटी ने दी, और उसने यह [illegible] किया है कि ३० सितम्बर को रूस की नवीन लोकसभा [illegible] हो; और अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में लोकसभा का अधिवे[शन] [illegible] जुलाई के प्रारम्भ में डयूमासभा ने कमेटी की, सभा [illegible] आज्ञा अस्वीकार की; और जब कि कमेटी के लोग [illegible] सन्धिचर्चा के लिए गये तभी इधर से० ब्रुसेलाफ की दक्षि[ण] [illegible] चढ़ाई को प्रारम्भ कर दिया। ऐसी दशा में यह कहने की आ[वश्यकता] नहीं कि जुलाई मास में पाठकों को इसी ओर विशेष ध्या[न] [illegible] चाहिए कि इस मास में सन्धिचर्चा को कौन सा स्वरूप प्राप्त [illegible] कमेटी के प्रतिनिधियों और कमेटी के लोगों का मतभेद [illegible] में होता है; और कमेटी का महत्व कम करने में जनरल [illegible] की चढ़ाई का कहां तक उपयोग होता है।

ले० क० कीर्तिकर।

गत ९ मई को लेफ्टिनेंट कर्नल कीर्तिकर महाशय का [illegible] होगया। आपने अपने जीवन चरित्र से यह सिद्ध कर [illegible] सरकारी नौकरी करते हुए भी एक भारतीय, सार्वजनिक सेवा [illegible] प्रकार कर सकता है। इनकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। [illegible] में आपने भारतवर्ष और विलायत में अनेक परीक्षाओं में [illegible] योग्यता दिखला कर पारितोषिक प्राप्त किये। आपने सिवि[ल] [illegible] के नाते से, दूसरे अफगान युद्ध के समय फौजी डाक्टर [illegible] और ग्रँड मेडिकल कालेज में प्रोफेसर के नाते से अपना [illegible] योग्यता से दिखला कर सरकार से आदर और मान प्राप्त [illegible] प्रकार वनस्पतिशास्त्र पर आपने बड़े बड़े ग्रन्थ लिख कर [illegible] पाया। आपके इन ग्रन्थों को देख कर जर्मनी के [illegible] आपकी प्रशंसा की। मराठी भाषा के आप कवि [illegible] मराठी साहित्यसम्मेलन के सभापति भी आप हुए [illegible] [illegible] के सभापति भी आप ही थे। महात्मा [illegible] कमिटी में मराठीभाषा के प्रवेश के लिए जब प्रथम [illegible] आपने उसका बड़ा साथ दिया था। कीर्तिकर महाशय [illegible] और ऊंचे पद पर रहते हुए भी सर्वसाधारण से बड़ा [illegible] आपने अपनी विद्वत्ता और योग्यता से द्रव्य के साथ [illegible] और यश भी अच्छा कमाया। परमात्मा आपकी आत्मा [को] शांति प्रदान करें।

स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी।

गत ३० जून को ९२ वर्ष की अवस्था में भारत के पितामह ऋषि-कल्प दादाभाई नौरोजी का स्वर्गवास हो गया। आपने पचास साठ वर्ष अविश्रान्त परिश्रम कर के अपनी कुशाग्रबुद्धि, वक्तृता, निस्स्वार्थता और दृढ़ आशापूर्ण स्वभाव के बल पर भारतीय लोगों को पश्चिमीय प्रणाली से राजनैतिक आन्दोलन करना सिखलाया। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि उनका उपदेश भारतीय लोगों के हृदय में पूर्णतया जम गया है; और इसी लिए उनको दृढ़ विश्वास था कि उसके उत्तम फल अवश्य ही सारे राष्ट्र को चखने को मिलेंगे। अब भारतीय राष्ट्र पर यह सिद्ध कर दिखलाने की जवाबदारी आ पड़ी है कि उनका उपर्युक्त विश्वास बहुत ही उचित और योग्य था। उन्होंने दीर्घउद्योग, निस्स्वार्थबुद्धि और देशहित का जो मार्ग हमको दिखला दिया है उस पर उचित रीति से चलना ही हमारा कर्तव्य है। उनका चरित्र ऐसा गम्भीर और व्यापक है कि उससे आबाल-वृद्ध सभी प्रकार के लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। उनके पदचिन्हों पर चल कर स्वदेश की सेवा करना ही उनका उचित स्मारक है; और इसीसे परलोक में उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। उनकी अन्तिम आशा यही थी कि भारत को शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त हो। इस लिए उस पवित्र आत्मा का आशीर्वाद प्राप्त करने और अपने जीवन को सफल करने के लिए उनकी उपर्युक्त आशा को पूर्ण करने के हेतु हमें अनवरत परिश्रम और अटूट प्रयत्न करना चाहिए।

भारतीय जनता के मन में दादाभाई के विषय में जो आदरभाव बसता है उसका एक प्रमाण यह भी है कि उसने दादाभाई को 'ग्रैंड ओल्ड मैन" अर्थात् "भारत के पितामह" की पदवी दे रखी थी। भारतवर्ष में दादाभाई के समान अथवा उनसे कुछ अधिक अवस्था के लोग भी थोड़े बहुत होंगे, पर उन्हें कोई "भारत के पितामह" नहीं कहता। इसका कारण यही है कि दादाभाई न सिर्फ उम्र में ही बड़े थे, किन्तु विद्याबुद्धि में भी वे सब से श्रेष्ठ थे-यही नहीं-बल्कि भारतमाता की सेवा में ही उन्होंने अपने इतने लम्बे जीवन को व्यतीत किया, और इसी कारण उनको "भारत के पितामह" कहने में विशेष शोभा आती है। इस विषय में दादाभाई अपने "आत्मचरित्र" मे स्वयं लिखते हैं:—

"मेरे देशभाइयों की मेरे विषय में जो ममता और प्रेम है वह उन बीजों का फल है जो कि कुदरत से बोये गये हैं। मुझे अपने को 'ग्रैंड ओल्ड मैन आफ़ इंडिया"-कहलाने में बड़ा आनन्द होता है; यदि कोई कहे कि यह पृथाभिमान है तो मैं कहूंगा, नहीं, क्योंकि मैं चाहे इस नाम का पात्र होऊं या न होऊं; परन्तु मेरे देशभाई मुझ पर जो ममता रखते हैं वह अवश्य ही उपर्युक्त पदवी से, जो उन्होंने मुझे दी है, भली भांति प्रकट होती है। और मैं समझता हूं कि, मैंने जो जन्म भर प्रयत्न और उद्योग किया है उसका यह पदवी बहुत अच्छा पारितोषिक है।"

स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी।

इस पदवी के अलावा, एक और भी बड़ा भारी प्रमाण है। जिससे यह मालूम होता है कि भारतीय राष्ट्र के हृदय में दादाभ के विषय में कितना आदर था। वह यह है कि वे भारतीय राष्ट्री सभा के अध्यक्ष तीन बार चुने गये-१८८६, १८९३ और १९०६।

तीनों बार जो भाषण उन्होंने किया वह साधार, निर्भयताप और आवेशपूर्ण था। उनके भाषण और लेखों में अनुभवपूर्ण जा कारी भरी रहती थी। शब्दाडम्बर से उन्हें पूर्ण विरक्ति थी सन् १९०१ में उन्होंने "पावर्टी एण्ड अन्‌ब्रिटिश रूल इन इंडिया नामक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ भारत की दरिद्र और भारतीय वर्तमान राजनीति के सप्रमाण सिद्धान्तों से भ हुआ है। भारत की वर्तमान राजनीति विद्यार्थी को यह ग्रन्थ अध्ययन करना चाहिए। सन् १८९७ में वेल्बी कमीशन सामने जो साक्षी उन्हों ने दी वह स्पष्टोक्तियों से भरी हुई है। वे स्पष्टव थे; पर सरकार के मन में भी उनके विष में आदरभाव था, क्योंकि वे अपने हृद के सच्चे और निर्भय थे। सन् १८९५ भारतवर्ष के सरकारी खर्च के विषय जांच करने के लिए जो रायल कमीश नियत किया गया था उसमें दादाभा नौरोजी भी नियुक्त किये गये थे। गत व सन् १९१६ में, बम्बई यूनिवर्सिटी ने उ एलएल० डी० की पदवी अर्पण की। इ बातों से जान पड़ता है कि सरकार उनके विषय में आदरभाव रखती थी भारतीय राजनीति की तरह यूरोपी राजनीति में भी उनका नाम संस्मरणी है। क्योंकि १८९२ में ब्रिटिश पार्लिमेंट वे समासद थे। दादाभाई ने केवल पुस्तक ज्ञान पर यह योग्यता प्राप्त नहीं की थी किन्तु प्रोफेसर, बड़ोदा के दीवान, बम्ब म्युनिसिपल कौंसिल के सभासद, राष्ट्री सभा की ब्रिटिश कमेटी के सभासद, इत्यादि अनेक हैसियतों से भिन्न भिन्न परिस्थितियों में प्रत्यक्ष कार्य करके, और अनुभव प्राप्त करके, यह योग्यता प्राप्त की थी। इस कारण मनुष्यस्वभाव व तथा संसार की कार्यप्रणाली का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया था।

दादाभाई के स्वभाव में दृढ़ता और धैर्य भी बहुत भारी था। और एक लोकनेता के लिए इन गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। एक बार वे जिस बात का निश्चय कर लेते थे उसका वे बराबर पालन करते जाते थे। उन्हों ने अपने आत्मचरित में एक जगह लिखा है, "मैं जब पन्द्रह वर्ष का था तब मेरी आत्मजागृति का प्रारम्भ हुआ। उसी समय मैं ने इस बात का निश्चय किया कि मैं अपने भाषण में अश्लील और ग्राम्य शब्दों का व्यवहार न किया करूंगा, इस प्रतिज्ञा का मैं ने जन्म भर पालन किया। इसके बाद ज्यों ज्यों मेरा मन सुशिक्षित होता गया त्यों त्यों मैं इसीप्रकार प्रति-ज्ञाएं और संकल्प करता गया; और मेरा मन मुझको कहता रहा है, कि मैं ने बराबर अपनी उन प्रतिज्ञाओं और संकल्पों का पालन

है "। दादाभाई के इस वाक्य में बहुत बड़ा उपदेश भरा है। क्योंकि क्षणिक वैराग्य में आ कर तत्काल किसी बात तिज्ञा बहुत लोग कर बैठते हैं; परन्तु थोड़े ही दिन के बाद देखा जाय तो उस प्रतिज्ञा की उन्हें याद भी नहीं रहती, फिर अनुसार आचरण करने की तो बात ही जाने दीजिए!

दाभाई नौरोजी ने सन् १९०६ को राष्ट्रीय सभा में 'स्वराज्य' ध्येय स्पष्टरूप से भारतीय जनता के सामने उपस्थित किया; र ही इस ध्येय के सिद्ध होने तक वे जीवित नहीं रहे इसमें भी शक नहीं कि उनके जीवनकाल में 'स्वराज्य' की ल वैध रूप से खूब तीव्रता के साथ प्रारम्भ हो गई, जिसे देख दादाभाई को अवश्य ही आनन्द हुआ होगा। ऐसी दशा में गी "केसरी" के अनुसार हमें यह कहने में कुछ भी अति क्ति नहीं मालूम होती कि अब महर्षि दादाभाई, इस लोक में ज्य की हलचल का प्रारम्भ कर के, उसके सिद्ध्यर्थ परलोक में ल करने के लिए गये हैं। इस लिए हमें विश्वास रखना ए कि हम उन भीष्मपितामह के राजनीति-धर्म के उपदेशा र यदि दृढ़ता और धैर्य के साथ स्वराज्य के लिए प्रयत्न करते तो उसके सिद्ध होने में अब विलम्ब नहीं लगेगा।

दादाभाई नौरोजी 'स्वराज्य' के आगे मोक्षसुख को भी तुच्छ समझते थे। एक बार उनके एक मित्र ने उनसे पूछा कि "क्या आपको फिर ऐसा ही जन्म पसन्द आवेगा?" आपने कहा "अवश्य, हम ऐसा ही जन्म चाहते हैं।" क्या हमारे शुष्क मोक्षवादी दादाभाई के इस कर्ममय जीवन से कुछ उपदेश ग्रहण न करेंगे?

दादाभाई का जन्म एक पारसी धर्मप्रवर्तक के कुल में हुआ था, और जब हम उनकी सत्यनिष्ठा, निस्स्वार्थबुद्धि, सात्विक प्रकृति और उनके स्वाभाविक धैर्य, इत्यादि गुणों की ओर ध्यान देते हैं तब साफ मालूम होता है कि दादाभाई असली धार्मिक, कर्मयोगी पुरुष थे— ऐसी दशा में उनको भारत का भीष्माचार्य कहना बिलकुल उचित है।

दादाभाई ने अपने आत्मचरित्र में एक और बात लिखी है, वह बड़े महत्व की है। आप लिखते हैं—"जब मैं छोटा ही था, तब मेरे पिता का देहान्त हो गया; परन्तु मेरी माता उसके बाद आजन्म विधवा बनी रहीं; और मेरा पालनपोषण करना ही उनके जन्म का एकमात्र कर्तव्य हो गया। आज मैं जिस दशा में हूं, उसे प्राप्त होने में सर्वथैव मेरी माता ही कारण है।" इससे मातृपद की महिमा सहज ही पाठकों के ध्यान में आ सकती है।

गंधर्वनाटकमंडली का पांचवां वार्षिकोत्सव।

हाराष्ट्र में जो नाटकमंडलियां इस समय कर रही हैं उनमें "गंधर्वनाटकमंडली" त होने पर भी अच्छी उन्नति कर रही है। सचालक श्रीयुत नारायणराव राजहंस लगंधर्व) और श्रीयुत गणपतरावजी बोडस

चित्रकार श्री० सदाशिवराव पिंपलखरे से तैयार करवा कर प्रदान किये। इसके सिवाय श्री० बालगंधर्व को एक रौप्यकरंडक और मंडली के मैनेजर श्रीयुत बालासाहब पंडित को एक रौप्य प्याला भी अर्पण किया गया। यह उत्सव

श्रीयुत गणपतराव बोडस।

[illegible]

श्रीयुत रा० ब० मोडक।

श्रीयुत बालासाहेब पंडित।

श्रीयुत नारायणराव राजहंस उर्फ बालगंधर्व।

किर्लोस्कर नाटकगृह में " [illegible] " नाटक के अभिनय के समय माननीय [illegible] साहब के द्वारा सुशोभित [illegible] गया। इस अवसर पर पूना के [illegible] के श्रीमान् राजा [illegible] श्री० [illegible] चिन्तामणि [illegible], श्रीयुत [illegible] नारायण आपटे इत्यादि [illegible] है। रावबहादुर [illegible] ने [illegible] भी दिया था। इससे [illegible] कि महाराष्ट्र में नाटककला ने कितनी प्रतिष्ठा [illegible] है। [illegible] है।

लाशों के नाश को उठाना किया। जिन्होंने लोगों को समझाया और सेवा की इच्छा से सहायता पर यह घोषणा कर दी कि प्लेग में कोई न घबड़ावें, सेवा समिति के स्वयंसेवक हर प्रकार की सेवा करने, औषधि देने और मुर्दों को उठाने और उनके धर्मानुसार, अन्त्येष्टि करने को तैयार हैं। लोगों ने पहिले इन को लड़कों का खेल समझा, क्षुद्र बुद्धि वालों ने अनेक प्रकार की मिथ्या खबरें फैलाईं, परन्तु जब जनता ने इन कर्मवीरों को अपनी जान जोखू में डाल, एक नहीं, दो नहीं, दश नहीं, किन्तु आज तक सैकड़ों लाशों का यहां तक कि भंगियों की लाशों तक को निर्भयता से ऐसे ऐसे स्थानों से ले जाते हुए देखा जहां मनुष्य जाते हुए भय खाते हैं, तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रही और वे मुक्त कंठ से प्रशंसा करने और धन्यवाद देने लगे। कर्मगति कुछ विचित्र है, कि यही लोग जो इस नेक कार्य में सहायता देने के बाधक होते थे, अन्त में इसी सेवासमिति द्वारा जलाये गये। इस समय सारा नगर सेवासमिति के कार्य से गद्गद हो रहा है और ईश्वर से इन नवयुवकों की रक्षा की प्रार्थना कर रहा है, जो इसे सहायता दे रहे हैं।

सेवासमिति ने सैकड़ों रुपये लावारिस मुर्दों के जलाने, बीमारों के खान-पान और देख-भाल में खर्च कर दिये हैं। बीसों बीमार अच्छे किये हैं; और अपनी शक्ति भर उद्योग कर रही है। ईश्वर इनको विशेष बल दे और राम की शुभ कामना प्राणिमात्र के हृदय में विकास करती हुई शरद्-भाल से पोषकारी सर्व-हितकारी कन्हैया के कुंज में गूंजती हुई सहायता के पुंज लगाती रहे और अंत में हवन यज्ञ द्वारा शुद्धि कर के नगर में शान्ति फैला दे।

"एक हिन्दी।"

सम्पादकीय समालोचन।

१—पैसाफंड क्या है ?

यह बात हमारे अनेक पाठकों को विदित होगी, कि महाराष्ट्र में आज ११।१२ वर्ष से पैसाफंड नामक एक संस्था काम कर रही है, परन्तु इस पैसाफंड का सच्चा स्वरूप क्या है, सो बहुत थोड़े सज्जनों को विदित होगा। ऊपर जो हमने शीर्षक दिया है उसी प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा तिलक ने, कुछ दिन हुए, अपने व्याख्यान में कहा था:—"एक एक पैसा एकत्र कर के जो 'निधि' स्थापित किया है वही 'पैसा फंड' है। यह 'मध्यमपदलोपी समास' है। यह बीच का पद आप न भूलें, तभी पैसाफंड की शक्ति और उसका उपयोग आपके ध्यान में आयेगा।" इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि महात्मा तिलक एक एक पैसा एकत्र करने की रीति को ही विशेष महत्व देते हैं। हमारे पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि महाराष्ट्र के उत्साही स्वयंसेवकों ने आज दस बारह वर्ष की अवधि में इसी प्रकार एक एक पैसा कर के एक लाख रुपये के लगभग फंड एकत्र किया है। इस संस्था का संगठन बहुत अच्छा है। इसके सब कार्यकर्ता अवैतनिक हैं। सैकड़ों विद्यार्थी और सर्वसाधारण स्वयंसेवक जगह जगह इस फंड के लिए द्रव्य एकत्र करते रहते हैं। नाटकों में, सर्कसों में, मेलों में, सभाओं में, निजी जलसों में, रेल के स्टेशनों पर, चलती हुई रेलगाड़ी के डब्बों में स्वयंसेवक लोग, पेटियां खड़खड़ाते हुए "पैसाफंड पैसाफंड" की आवाज लगाते हुए, हमें दिखाई देते हैं। इस प्रकार जगह जगह पैसाफंड का द्रव्य एकत्र कर के, तीन तीन महीने में या छै छै महीने में, स्थानिक कोषाध्यक्ष मुख्य कोषाध्यक्ष के पास भेजते रहते

महात्मा तिलक बम्बई में, १०।१२ हजार की उपस्थिति में, मा० सेठ मनमोहनदास की अध्यक्षता में पैसाफंड पर व्याख्यान दे रहे हैं।

साधकों के नाश को उद्यत किया। जिन्होंने लोगों को ललकारा और केवल की शरण में सहायता पर यह घोषणा कर दी कि प्लेग में कोई न घबराये, सेवा-समिति के स्वयंसेवक हर प्रकार की सेवा करने, औषधि देने और मुर्दों को उठाने और उनके धर्मानुसार, अन्त्येष्टि करने को तैयार हैं। लोगों ने पहिले इन को बच्चों का खेल समझा, द्वेष-बुद्धि वालों ने अनेक प्रकार की मिथ्या खबरें फैलाईं, परन्तु जब जनता ने इन कर्मवीरों को अपनी जान जोखूं में डाल, एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं, किन्तु आज तक सैकड़ों लाशों को यहां तक कि भंगियों की लाशों तक को निर्भयता से ऐसे ऐसे स्थानों से ले जाते हुए देखा जहां मनुष्य जाते हुए भय खाते हैं, तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रही और वे मुक्त कंठ से प्रशंसा करने और धन्यवाद देने लगे। कर्मगति कुछ विचित्र है, कि वही लोग जो इस नेक कार्य में सहायता देने के बाधक होते थे, अन्त में इसी सेवासमिति द्वारा जलाये गये। इस समय सारा नगर सेवासमिति के कार्य से गद्गद हो रहा है और ईश्वर से इन नवयुवकों की रक्षा की प्रार्थना कर रहा है, जो इसे सहायता दे रहे हैं।

सेवासमिति ने सैकड़ों रुपये लावारिस मुर्दों के जलाने, बीमारों के खान-पान और देख-भाल में खर्च कर दिये हैं। बीसों बीमार अच्छे किये हैं; और अपनी शक्ति भर उद्योग कर रही है। ईश्वर इनको विशेष बल दे और रात की शुभ कामना प्राणिमात्र के हृदय में विलास करती हुई शारद-भवन से परोपकारी सर्व-हितकारी कन्हैया के कुंज में गूंजती हुई सहायता के पुंज लगाती रहे और अन्त में हवन यज्ञ द्वारा शुद्धि कर के नगर में शान्ति फैला दे।

"एक हितैषी।"

१—पैसाफंड क्या है?

यह बात हमारे अनेक पाठकों को विदित होगी, कि महाराष्ट्र में प्राय ११।१२ वर्ष से पैसाफंड नामक एक संस्था काम कर रही है, परन्तु इस पैसाफंड का सच्चा स्वरूप क्या है, सो बहुत थोड़े सज्जनों को विदित होगा। ऊपर जो हमने शीर्षक दिया है उसी प्रश्न को विशेष महत्व देते हैं। हमारे पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि महाराष्ट्र के उत्साही स्वयंसेवकों ने आज दस बारह वर्ष की अवधि में इसी प्रकार एक एक पैसा कर के एक लाख रुपये के लगभग फंड एकत्र किया है। इस संस्था का संगठन बहुत अच्छा है। इसके सब कार्यकर्ता अवैतनिक हैं। सैकड़ों विद्यार्थी और सर्वसाधारण स्वयंसेवक जगह जगह इस फंड के लिए द्रव्य एकत्र
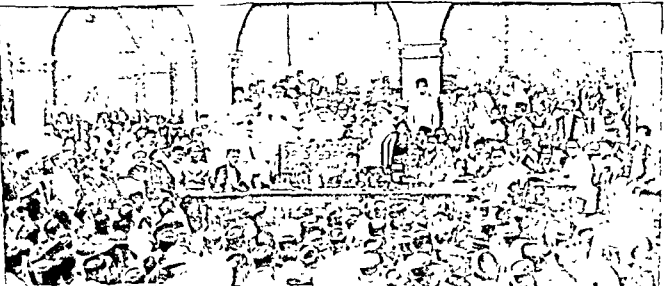
लगानेवाले सहस्रावधि लोगों की यहां आवश्यकता है। सेवा का काम स्त्रियां और नवयुवक बहुत अच्छी तरह से कर सकते हैं। भारतवर्ष में विधवाएं बहुत हैं, जिनका समय बड़ी बुरी तरह से कटता है। स्थान स्थान पर विधवाश्रम खोल कर यदि उन्हें रोगीसेवा या परिचर्या का काम सिखलाया जाय तो उनका जीवन अच्छे कार्य में लग सकता है। नवयुवकगण देश की सेवा अनेक मार्गों से कर सकते हैं। जैसे कि भिन्न भिन्न मेलों के अवसर पर भूले भटकों को मार्ग पर लगाना, दुष्टों से स्त्रियों की रक्षा करना; हैज़ा, प्लेग, इत्यादि के अवसर पर रोगियों के दवा-दारू का प्रबन्ध करना, गरीब और अनाथों के मरने पर उनके अंतिम संस्कार का बन्दोबस्त करना, रात्रिपाठशालाएं खोल कर, अपने अपना थोड़ा थोड़ा समय दे कर, निरक्षरों में अक्षर का प्रचार करना, सभा-समाजों और धार्मिक उत्सवों पर सब प्रकार का प्रबन्ध करना, इत्यादि अनेक कार्य हैं, जिनके लिए स्वयंसेवकों की

रहते हैं। ऐसे [illegible] कोई रोगी मर जाये तो हो-हल्ले तो रहते ही हैं काम। ऐसे अनेक 'यमराजसहोदर' "वैद्यराजमहापुरुषों" को जा कर खूब आनन्द चैन करते हैं। समाचारपत्रों का कर्तव्य लोकोपकार करना है—इस लोकोपकार की आड़ में वह लोकसंहार भी छिपा रहता है। परन्तु प्रश्न यह है कि समाचारपत्रों के संचालकों को यह मालूम कैसे हो कि ये विज्ञापनदाता वैद्यराज सच्चे वैद्यराज हैं या "नीम हकीम खतरए-जान" अर्थात् 'यमराज-सहोदर' हैं। तथापि साधारणतया उनकी जांच कर के विज्ञापन लेना पत्र-संचालकों का कर्तव्य अवश्य है। अब, इन विज्ञापनों की भरमार में हम देखते हैं कि [illegible] हानि होती है। समाचारपत्रों में पुस्तकों के विज्ञापन [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] विज्ञापन रहते हैं, पर दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकों के विज्ञापन नहीं रहते। जिससे उत्तम उत्तम पुस्तकों के बिकने का पता नहीं चलता।

प्रकाशगण समाचारपत्रों में विज्ञापन देते नहीं; क्योंकि पत्रप्रबन्धक उनसे वही चार्ज करना चाहते हैं जो वैद्यराजों के विज्ञापनों का चार्ज करते हैं। अच्छा, यदि अधिक चार्ज दे कर कोई पुस्तक-प्रकाशक विज्ञापन देवे भी, तो हिन्दी के लम्बकाय समाचारपत्रों के औषधीय विज्ञापनों के कारण उन साहित्य के विज्ञापनों पर पाठक की दृष्टि पड़ना मुशकिल है, इससे प्रकाशक को कोई लाभ नहीं होता। हम देखते हैं कि मराठी भाषा में जहां कोई उत्तम नवीन पुस्तक प्रकाशित हुई कि उसका विज्ञापन 'केसरी' के पहले पेज के बीचोंबीच आजाता है; और तमाम मराठी संसार को उसके निकलने की सूचना मिल जाती है। क्या हिन्दी के वेंकटेश्वर, बंगवासी, भारतमित्र, इत्यादि समाचारपत्र इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं कर सकते? हिन्दी के समाचारपत्र भी यदि अपने अपने विज्ञापन-विभाग में साहित्य के लिए कालम नियत करदें तो साहित्यप्रचार में बड़ा सुभीता हो। आशा है कि अन्य सहयोगी हमारी इस सूचना पर अपनी अपनी सम्मति प्रकट करेंगे।

६—पं० श्रीधर पाठक की कविता।

हिन्दी के सिद्ध और प्रसिद्ध कवियों में पंडित श्रीधर जी पाठक का आसन बहुत ऊंचा है। पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन" और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जिस समय हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं की अमृतवर्षा कर रहे थे उसी समय से पंडित श्रीधर पाठक की प्रतिभा अपना चमत्कार हम को दिखलाती आती है। अब उपर्युक्त त्रिमूर्ति में से केवल "प्रेमघन" जी रह गये हैं; परन्तु वृद्धपन की शिथिलता के कारण अब "अपूरब घन" की गर्जना होते हुए भी आपका 'मन मोर' नहीं नाचता; तथापि पं० श्रीधर पाठक जी अब भी, जब कि बीमारी के कारण आप कुछ शिथिल भी हो गये हैं, अपनी प्रतिभारूप विद्युत् की चमक से समय समय पर, हिन्दी-संसार को आलोकित करते रहते हैं। प्रतिवर्ष आप कुछ न कुछ नवीन रचना करते ही रहते हैं। आपकी कविता बहुत ही सरस और प्रासादिक होती है। शब्दच्छटा बहुत ही मधुर और ओजस्विनी होती है। प्राकृतिक वर्णन आपका बहुत ही अनूठा रहता है। कल्पनाएं बहुत उच्च होती हैं। स्वदेशाभिमान, स्वदेशमहिमा, जातिसुधार और प्रकृतिवर्णन आपके मुख्य विषय हैं। निदान कोई भी विषय हो, आप बहुत ही चित्ताकर्षक रूप से, मनोहर शब्दों द्वारा, उसका वर्णन करते हैं। आप खड़ी बोली में जिस प्रकार विशुद्ध रचना करते हैं; उसी प्रकार ब्रजभाषा में भी करते हैं। संस्कृत और अंग्रेजी के पद्य भी आपके बड़े मनोहर होते हैं। रमणीयता का जो यह लक्षण विद्वानों ने बतलाया है कि, क्षण क्षण में जो नवीनता प्रकट करे वही रमणीयता है, सो आपकी कविता के लिए पूर्णतया घटित होता है। आपकी रचना बार बार पढ़ने को चित्त चाहता है। पाठकजी की फुटकर कविता का "मनोविनोद" नामक ग्रन्थ अभी हमें मिला है। इस ग्रन्थ के पहले तीन चार भाग थे। अब उन सब भागों की सम्मिलित रचना का एक भाग में सन्निवेश कर के यह नूतन संस्करण निकाला गया है। इसमें पहले ईश्वरविषयक कविताएं दी हैं, इसके बाद स्वदेशाभिमान स्वदेशगौरव, स्वदेश-[illegible], इत्यादि विषयों की कविताएं हैं। फिर आर्यजाति का गौरव और [illegible] हैं; तत्पश्चात् आर्यसुन्दरियों की प्रशंसा स्तुति तथा उनके [illegible] का वर्णन है; फिर समाजसुधार, ऋतुवर्णन, प्रकृतिवर्णन इत्यादि विषयों की अनेक कविताएं हैं। "बालविलास" प्रकरण बालिकों के लिए अत्यन्त [illegible] है। धनविनय, [illegible], इत्यादि कविताएं विलकुल अनूठी हैं। अन्त में अंगरेजी के भी पद्य दे दिए हैं। निदान यह संग्रह सहृदयों के लिए अत्यन्त ही [illegible] है। इतने बड़े संग्रह का मूल्य भी इस बार १) [illegible] ही रक्खा है। [illegible] [illegible] प्रेम की है। [illegible] [illegible] पाठकों से सानुरोध निवेदन करते हैं कि वे [illegible] इस पुस्तक को [illegible] [illegible] की कविता और [illegible] [illegible]। मिलने का पता—पं० श्रीधर पाठक, [illegible], [illegible], प्रयाग।

७—प्राचीन दण्डविधान के नमूने।

प्राचीन काल में इंगलैंड में दण्ड देने की कैसी [illegible] प्रचलित थीं [illegible] [illegible] [illegible] हैं। सन् १३१६ के कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में पाये हैं। उन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के ऊपर, शराब बेचने के लिए, मुकदमा चलाया गया था। अन्त में ज[illegible] पर अपराध साबित होगया तब उसको इस प्रकार दण्ड [illegible] गया कि एक वर्ष और एक दिन वह क़ैद में रहे, जो बुरी [illegible] वह बेचता था उसका एक घूंट उसे पिलाया जाय; बाकी शरा[illegible] उसे स्नान कराया जाय, और लंडन नगर में फिर वह कभी [illegible] न बेचे! दूसरे एक मनुष्य को भी, उसके अपराध पर, पे[illegible] दण्ड दिया गया, जो कि उसके अपराध के अनुकूल था। [illegible] पानी के सार्वजनिक नल खोल रखने का अभियोग लगाया [illegible] था। अपराध सिद्ध हो जाने पर उस मनुष्य को घोड़े पर [illegible] कर उसके सिर पर एक घड़ा रखा गया, जिस में [illegible] छोटे छोटे नल लगे हुए थे, इन नलों के द्वारा उसके मस्तक पर [illegible] अभिषेक हो रहा था। सम्पूर्ण बस्ती में उसका जलूस नि[illegible] गया; और सब नलों के निकट उसके अपराध की डौंडी पि[illegible] गई! प्राचीन काल में इसी प्रकार के विचित्र दण्डविधान प्रायः [illegible] देशों में प्रचलित थे। ज्यों ज्यों नवीन सभ्यता का प्रचार होता [illegible] त्यों त्यों दण्डप्रणाली में नवीन नवीन परिवर्तन होते गये। [illegible] यह नहीं कहा जा सकता कि आज कल अपराधियों को जा [illegible] दिये जाते हैं उनसे अपराधियों का कुछ सुधार होता है। [illegible] सिवाय अपराधों की संख्या भी कम नहीं होती; किन्तु अधि[illegible] धिक बढ़ती जाती है। इससे सिद्ध होता है कि नवीन न[illegible] कानून अथवा नवीन नवीन दण्डविधान बनाने से अपराध [illegible] नहीं होते; किन्तु अपराधों को कम करने के लिए सदाचार [illegible] धर्म की शिक्षा का ही प्रचार होना चाहिए।

८—प्राप्तिस्वीकार।

आगरे के बुलाकीदास एंड संस ने हमारे पास निम्नलि[illegible] वस्तुएं भेजी हैं। (१) शर्बत बहार या शर्बत ठंढाई; इसको [illegible] के साथ घोल कर पीने से ठंढाई का स्वाद और गुण प्राप्त [illegible] है। खुशबूदार है। जो लोग ठंढाई के शौकीन हैं उनको सफ[illegible] यह उपयोगी हो सकता—१ बोतल मूल्य १); (२) भोजनश[illegible] मसाला; आगरे का यह मसाला बहुत प्रसिद्ध है, दाल और [illegible] कारी में डालने से बड़ा स्वाद आ जाता है; मूल्य ।) प्रति [illegible] (३) भोजनशृंगार चटनी; यह चटनी भी अच्छी है। (४) आरो[illegible] भूषण चूर्ण; यह पाचक और स्वादिष्ट भी है; मूल्य ।) फी शी[illegible] (५) बालामृतवटी, ये गोलियां बुखार, खांसी, जुकाम, [illegible] चलना, दर्दपेट, अजीर्ण, इत्यादि रोगों में बच्चों के लिए उपयोगी [illegible] लाई गई हैं। पेट के रोग में हमने एक बच्चे को दीं, और ला[illegible] दायक जान पड़ीं। जिन महाशयों को इन वस्तुओं की आवश्यक[illegible] हो, "मेसर्स बुलाकीदास एंड संस, राजामंडी आगरा" कपं [illegible] मँगा लेना चाहिए।

साहित्यचर्चा।

१ [illegible]—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के ग्रन्थ [illegible] [illegible] प्रकाशित करने का भार काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने लिया है। सभा का यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह पहली पुस्त[illegible] भारतेन्दुग्रन्थमाला की सुमेरुमणि के तुल्य है, ≈) ॥ में उक्त [illegible] मँगा कर सभी प्रेमियों को पढ़ना चाहिए।

२ [illegible]—कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त-कृत नवीन [illegible] मूल्य ।≈)। मिलने का पता प्रबन्धकर्ता साहित्यसदन, चि[illegible] झांसी। गुप्त जी ने अपनी प्रभावशालिनी लेखनी से [illegible] जीवन का हृदयद्रावक चित्र अंकित किया है।

३ [illegible]—अनुवादक पं० [illegible] चतुर्वेदी। [illegible] सेठ नाथूराम रंजा, हिन्दीसाहित्यप्रचारक कार्यालय [illegible] सी० पी०। स्वामी विवेकानन्द का गुरुशिष्यरूप में [illegible]

४ [illegible]—कविरत्न [illegible]। मिलने [illegible] सुबोधचन्द्र शर्मा, चन्द्रनगर, पो० रजपुरा, जि० [illegible]। [illegible] [illegible] आवश्यक जान पड़ता है। इस पुस्तक में कविरत्न [illegible] रीति से अपने विचार प्रकट करते हुए [illegible] की है। पुस्तक अवलोकनीय है।

५ [illegible]—(आयुर्वेदिक मासिक पत्र) [illegible] [illegible] शास्त्री [illegible] औषधालय कानपुर। [illegible] इस पत्र में वैद्यक-सम्बन्धी अनेक विषय दिये गये [illegible] काम के रहते हैं। साल भर में १।) [illegible] [illegible] के विषय में इसके द्वारा बहुत कुछ जानकारी [illegible]

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो ! तेजस्विता दीजिए । देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

भाग ७] आषाढ़, सं० १९७४ वि०—जुलाई, स० १९१७ ई० [संख्या ७

श्रूयताम् !
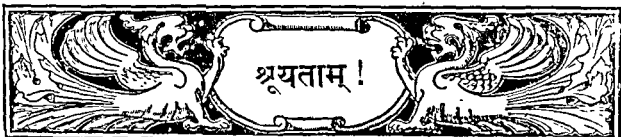
अहो नारिनर-वृन्द, सकल पृथिवी-तल के प्रिय अधिवासी ।
मनुज-वंश-अवतंस, बुद्धि-विद्या-बल-गुण-गौरव-राशी ॥ १ ॥

क्या तुम हो सब सुखी, स्नेह के मृदुल पाश में बँधे हुए ।
सुख-मय जीवन के साधन में तन मन धन से सधे हुए ॥ २ ॥

क्या तुम एक दूसरे का मिल सुख-सम्पादन करते हो ।
करके प्रबल प्रयत्न जगत् में सौख्य-सुधा-रस भरते हो ॥ ३ ॥

कठिनाई बहु झेल, मेल का सत मारग अनुसरते हो ।
जन्म जगत में पाय जगत-हित को जीते और मरते हो ॥ ४ ॥

औरों का दुख देख दुःख से द्रवित हृदय अति होते हो ।
विना किये दुख दूर, एक छिन सुखित नींद नहिं सोते हो ॥ ५ ॥

सजग होय जग बीच प्रेम का अटल राज्य फैलाते हो ।
प्रेम-ध्वजा के तले सकल जगती-तल को मिल लाते हो ॥ ६ ॥

दया-सहित, निर्दय हृदयों में सहृदयता सरसाते हो ।
निर्धन, निपट, असहायजन ऊपर अमृत-वारि बरसाते हो ॥ ७ ॥

मित्र, बन्धु, सुत, आदि प्रेम के जो प्रिय पात्र तुम्हारे हैं ।
माता, पिता, आदि ईश्वर-सम जो सुपूज्य और प्यारे हैं ॥ ८ ॥

इन सब पर सर्वस्व वार निज-जीवन धन्य बनाते हो ।
निज-परता का भ्रम उरों से हट और भेद हटाते हो ॥ ९ ॥

जो ऐसा नहिं करते हो तो कहो कहो क्या करते हो ।
चौरासी पर वार व्यर्थ किस अर्थ देह नर धरते हो ? ॥ १० ॥

—

[illegible], प्रयाग । }
१५-६-१९१७ }

[illegible] ।

जर्मन गुप्त षड्यंत्र रचनेवाले गुप्तचरों ने ज़ारीना और स्टर्मर को किसी न किसी उपाय से अपने कब्ज़े में ला कर उनके द्वारा रूस को मित्रराष्ट्रमंडल से फोड़ने का वे प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु रूस के अन्य बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और योद्धा सेनापति यह नहीं चाहते थे कि जर्मनी से स्वतंत्र संधि कर के अपने राष्ट्र को कलंकित किया जाय। इस लिए बड़े बड़े योद्धा सेनापति अर्थात् जनरल रस्की, ब्रुसिलाफ़, अलेक्ज़ीफ़, इत्यादि अन्त में जो ज़ारशाही के विरुद्ध बिगड़ खड़े हुए सो इसी लिए कि ज़ारीना और उनके साथी रूस की सैनिक कीर्ति में कलंक लगाने और इँगलैंड तथा फ्रांस से विश्वासघात करने के लिए तैयार हुए थे। रूस के सर्वसाधारण लोग, खाने को न मिलने के कारण, सोशियालिस्ट और अन्य विचारवान् राजनीतिज्ञ, ज़ारशाही के ज़ुल्मी शासन से सदैव त्रस्त रहने के कारण और फौज के बड़े अधिकारी इस कारण कि, ज़ार और ज़ारीना स्वयं रूस के पराभव होने और उसके आगे न लड़ सकने को स्वीकार कर दे कर सन्धि करने के लिए तैयार हैं, ज़ारशाही से बिगड़ कर उसका तख्ता लौटने के लिए तैयार हुए। शान्ति के समय ज़ारशाही उखड़ नहीं सकती थी। इसका कारण यही था कि सेना और सेना के बड़े अधिकारी ज़ारशाही से त्रस्त नहीं हुए थे; और उसकी पूर्ण हुकूमत में थे। शक्तिशाली सेना और उसके कर्तृत्ववान् अधिकारी जब तक ज़ार और ज़ारीना के विरुद्ध भड़के नहीं थे तब तक सिर्फ़ सोशियालिस्टों के व्याख्यानों से अथवा आन्दोलन करनेवाले लोगों के लेखों से ज़ारशाही का उखड़ जाना सम्भव नहीं था। परन्तु इस महायुद्ध के अवसर पर फौजी अधिकारी और सिपाही, सभी, ज़ारशाही पर असन्तुष्ट हुए। इस प्रकार जब भिन्न भिन्न कारणों से, भिन्न भिन्न श्रेणी और भिन्न भिन्न स्थिति के लोग ज़ारशाही के ऊपर बिगड़ उठे तब सहज ही वह उखड़ गई! महायुद्ध की विलक्षण परिस्थिति के द्वारा उपस्थित होनेवाले अनेक कारणों ने एक ही समय जब ज़ारशाही पर मार शुरू की तब उसका भव्य भवन एकदम ढह गया। सेना के बड़े बड़े अधिकारी और सिपाही लोग यदि ज़ारशाही के विरुद्ध बिगड़ न उठते तो इस महायुद्ध के अवसर पर भी ज़ारशाही उखड़ नहीं सकती थी। परन्तु जब स्वयं ज़ार रूसी सेना के मुख्य सेनापति बने; और ज़ार की गैरहाज़िरी में ज़ारीना के आसपास के स्टर्मर इत्यादि लोगों ने, जर्मनी के कहने में आकर, जब अपनी ही सेना को हैरान करने की कारस्तानियां शुरू कीं तब रूसी सेना के सब पराक्रमी जनरल ज़ारशाही के विरुद्ध उठ खड़े हुए। इस राज्यक्रांति के कारणों का जो वृत्तान्त अब तक थोड़ा थोड़ा प्रकाशित हो रहा है उसमें, कितनी ही विलक्षण विलक्षण बातें बाहर आ रही हैं। उनमें कहते हैं कि इस विषय में तो बहुत ही मज़ेदार कपट-कार्यवाहियां प्रकट हुई हैं कि—

मि० स्टर्मर।
(प्रधान मंत्री, १९१० जनवरी)

रोमानिया का सत्यानाश कैसे हुआ ?

रोमानिया को युद्ध में शामिल होने के लिए रूस ने बहुत तंग किया। इंग्लैंड और फ्रांस भी यही चाहते थे कि रोमानिया हमारी ओर से युद्ध में शामिल हो। परन्तु इनका कहना यह था कि रोमानिया को, सेना, गोलाबारूद, तोपखाना, इत्यादि की खूब तैयारी कर के, इसके बाद योग्य समय देख कर, और अनुभवी जानकार लोगों की सलाह से इस बात का पूर्ण निश्चय कर के, कि लड़ाई किस प्रकार शुरू की जाय, तथा शत्रु का बलाबल कैसा है, पूर्ण विचार के बाद, महायुद्ध में कदम रखना चाहिए। परन्तु रूस ने, अर्थात् उस रूसी दरबार ने, कि जिसके सूत्र ज़ारीना और स्टर्मर के हाथ में थे—रोमानिया को बहुत जल्द युद्ध में शामिल होने के लिए विवश किया। उसने रोमानिया से कहा कि तुम्हारे युद्ध में शामिल होते ही तुमको सहायता भेजेंगे, तुम डरते क्यों हो ? ज्यों ही तुम युद्ध में सम्मिलित हुए कि हम [illegible] बात में ट्रांसिलवेनिया प्रान्त, तुम्हारी सेना की मार के आगे, [illegible] जायगा, डोब्रुजा प्रान्त की रक्षा करने के लिए हम चाहे जितनी सेना मौके पर तुम्हारी सहायता को भेज देंगे। इस प्रकार के अनेक आश्वासन देकर रूस ने रोमानिया को एकदम युद्ध में खींच लिया। इस कारण रोमानिया, रूस के लचपच आश्वासनों में आकर, आनन्दपूर्वक युद्ध में कूद पड़ा। अब, कोई यह प्रश्न करेगा कि रोमानिया के राजनीतिज्ञ, रोमानिया का राजा, रोमानिया के रणमंत्री क्या बच्चे थे जो रूस के कहने में आगये? परन्तु सच तो यह है कि उस समय रूस ने रोमानिया को जो प्रलोभन दिखलाया उसके लिए ऊपर ऊपर का बहुत कुछ आधार था। क्योंकि रूसी सेनापति ब्रुसिलाफ़ ने आस्ट्रिया को उसी समय के करीब बुकोविना से पीछे हटाया था; और वर्डून की जर्मनों की चढ़ाई सर्वथैव निष्फल ठहरी थी। इस कारण ऊपर ऊपर देखनेवाले को यह सच मालूम हो सकता था कि आस्ट्रिया और जर्मनी, दोनों राष्ट्र अब शिथिल हो आये हैं; उनकी सेना में कुछ जान नहीं रही, और खाने को न मिलने के कारण जर्मन और आस्ट्रियन लोग युद्ध से बिलकुल त्रस्त हो गये हैं। इस लिए जब रूस ने रोमानिया को युद्ध में शामिल होने लिए बहुत ही उकसाया तब वह शामिल हो गया। परन्तु रूस की सम्पूर्ण राजनीति के सूत्र हिलाने वाले स्टर्मर और ज़ारीना ने रोमानिया को सहायता बिलकुल नहीं भेजी। इसके विरुद्ध, रोमानिया की सहायता के लिए जो गोलाबारूद अथवा अन्य युद्धोपयोगी सामान फ्रांस ने जलमार्ग से भेजा वह रूस के उत्तर ओर आर्केंजल बन्दर में जब उतरा तब वह एक भयंकर स्फोट से जल कर खाक हो गया। पिछले नवम्बर और दिसम्बर में इस दुर्घटना के तार आये ही थे। परन्तु उस समय ऐसे वृत्तान्त आये थे कि यह सारी दुर्घटना आकस्मिक रीति से हुई। अब, रूसी राज्यक्रान्ति के बाद, बतलाया जाता है कि, यह स्टर्मर ज़ारीना, और जर्मनी के कहनेवाले साथियों की एक गुप्त चाल थी कि जिसमें रोमानिया को सहायता पहुँचने ही न पावे। स्टर्मर समझता था कि यदि जर्मनी रोमानिया का रणांगण पर पूरा नाश करेगा तो रूस के लिए सन्धि की बातचीत करने का एक सबल कारण उपस्थित हो जायगा। स्टर्मर और ज़ारीना की इसमें यह चाल थी कि मित्रराष्ट्रों को यह भास कराकर संधि कर के युद्ध से अलग हो जाओ कि क्या करें भाई, हमने रोमानिया को भी अपनी ओर से युद्ध में खड़ा किया, तो भी जर्मनी नहीं हटता; ऐसी दशा में हम लाचार हैं; और रूस को संधि करने के सिवाय और कोई चारा नहीं। रूस के दोस्तों को स्टर्मर यह दिखलाना चाहता था कि रोमानिया के समान देश की दस लाख सेना रणभूमि पर आ गई, तो भी उसका टिकाव नहीं हुआ; परन्तु रूसी सेना तो दो ढाई वर्ष से लड़ कर बिलकुल थक गई है, अतएव रूसी सेना को अब अधिक लड़ाने में लाभ नहीं है। इसके सिवाय स्टर्मर पेट्रोग्राड के ब्रिटिश और फ्रेंच वकीलों को यह भी भास करा रहा था कि स्वयं हमारे देश में ही अन्न न मिलने के कारण हमारी प्रजा दंगा-फिसाद और बलवा करने लगी है; ऐसी दशा में अपने देश की व्यवस्था ठीक करने के लिए और चारों ओर शान्ति स्थापित करने के लिए सन्धि करना आवश्यक ही है। रोमानिया को युद्ध में ढकेल कर उसको जान बूझ कर अंधे कुएं [illegible] में तो रूसी षड्यन्त्रकारियों ने बड़े ही साहस का कार्य किया। रोमानिया रूस का पुराना दुश्मन है। इन दोनों देशों का परस्पर कभी भी सख्य नहीं रहा। हां, बैर ज़रूर रहा है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक था कि जब रूस को इस महायुद्ध में जर्मनी ने खूब पीटा और रूस के पोलैंड इत्यादि प्रान्त भी जब उसके हाथ से चले गये तब अपने पड़ोसियों को रूस दुर्बल दिखाई देने लगा। इस लिए रूस की ज़ारशाही को यह डर था कि रोमानिया यदि इस महायुद्ध में न पड़ते हुए ऐसा ही बना रहेगा तो [illegible] बेसारेबिया के विषय में झगड़ा निकालेगा; और इस महायुद्ध में यदि हम [illegible] कदाचित् पीछे से जर्मनी के उकसाने से रोमानिया बेसारेबिया प्रान्त पर कुछ [illegible]। इसलिए रोमानिया को भिन्न भिन्न प्रकार के प्रलोभन दिखलाकर और अनेक प्रकार की सहायता के वचन दे कर, स्टर्मर ने, [illegible] रोमानिया के [illegible] लड़ने के लिए

जनरल रस्की। (ज़ार से इस्तीफ़ा लेनेवाले सेनापति)

...ड़ता है, ज़ारशाही को ...भी नहीं थी, युद्धस्थल में घसीट लिया। जान
कई वर्ष लड़ते लड़ते हम निर्बल हो रहे हैं उसी भांति हमारे आस-
पास के अन्य छोटे-बड़े राज्य भी निर्बल हो जावें। जैसे कई मत्सर-
युक्त दुर्दैवी लोगों के मन में यह दुष्ट वासना सदैव आती रहती है कि
"मेरे समान तुम भी न जाने कब होगे," उसी प्रकार हतबल होने
वाली ज़ारशाही से यह नहीं देखा गया कि जब इतने राष्ट्र इस महा-
युद्ध में पड़ कर हतबल हो रहे हैं तब रोमानिया ही युद्ध से अलग रह
कर पहले की तरह हृष्ट-पुष्ट क्यों बना रहे! इस लिए रोमानिया के
युद्ध में शामिल होने पर जब जर्मनों की मार उस छोटे से राष्ट्र पर बड़े
वेग से होने लगी तब वह चिल्लाने लगा कि मेरी मदद को जल्दी दौड़ो,
जल्दी दौड़ो; परन्तु ज़ारशाही के अधिकारियों ने उसे किसी प्रकार की
मदद नहीं भेजी, इसके विरुद्ध फ्रांस से जो गोला-बारूद रोमानिया के
लिए आर्कैंजल मार्ग से रूस में पहुँचाया वह स्टर्मर ने उक्त बन्दर पर
ही अपने जर्मन साथियों की सहायता से उड़वा दिया। डोब्रुजा प्रान्त
की रक्षा के लिए पर्याप्त सेना रूस ने नहीं भेजी; और रोमानिया के
उत्तरी कोने में डोनांवड्रा (द्रोणावर्त) के पास यद्यपि रूसी सेना भरपूर
मौजूद थी, तथापि उत्तरी वालाचिया में जर्मनों का प्रतिकार करने के
लिए जब रोमानिया को सेना की आवश्यकता पड़ी तब रूस ने उक्त
जगह से अपनी सेना नहीं हिलाई। इस प्रकार रोमानिया को, संकट
के समय, स्टर्मर के तंत्र के नीचे की ज़ारशाही के अधिकारियों ने
किसी प्रकार की भी सहायता नहीं भेजी; और इसी कारण रोमानिया
फाल्कैनहेन और मैकेन्सन की दुहरी मार में कुचल गया; और स्टर्मर
आदि की गुप्तमंत्रणा सिद्ध होगई। ज़ारीना और उनके आसपास
की चांडालचौकड़ी (Camarilla) अब यह विचार करने में
हुई कि जर्मनों से स्वतंत्र सन्धि करने के लिए हम, ऊपर ऊपर से
मालूम होनेवाले अनेक कारण दिखला सकते हैं, और एक बार
युद्ध से हमने अपना हाथ खींच लिया कि बस फिर पहले ही की
अपनी निर्बल प्रजा पर अबाधित रूप से शासन करते हुए
राजधानी के राजमहल में खूब ऐश-आराम में दिन व्यतीत
इस प्रकार सुखस्वप्नों का अनुभव करते हुए वे लोग यह
लगे कि अब पेट्रोग्राड में स्वतंत्र सन्धि का प्रबन्ध किस प्रकार
...य और इँगलैंड फ्रांस के समान अपने मित्रों को चकमा किस
...दिया जाय। लंडन टाइम्स के, एक सम्वाददाता ने तो यहां
...ा है कि रूस के अन्तस्थ राजनीति के मंत्री प्रोटोपोपाफ ने इस
...उपाय कर के, कि जिससे बड़े बड़े शहरों में धान्य की कमी
...पर हो जावे, अपने साथियों के द्वारा जान बूझ कर ऐसे
... कि जिनसे बलवा और दंगाफिसाद शुरू होवे। स्टर्मर
... कि यदि ऊपर ऊपर से यह दिखलाया जायगा कि स्वतंत्र
...के लिए हमारे ही देश की अशान्ति और बलवा कारणी-
...तो इँगलैंड और फ्रांस के हमारे मित्र हम को बहुत दोष
...और इसी लिए ज़ारीना के तंत्र से चलनेवाली चांडालचौ-
...स्थ अशान्ति और बलवा का कृत्रिम, परन्तु ऊपर ऊपर
...सच्चा, दृश्य दिखलाने का कपटनाटक प्रारम्भ किया।
...जानते ही थे कि आखिर जो सन्धि होगी उसके लिए
...ो चाहिए, और उनका हस्ताक्षर सन्धिपत्र पर होना
...लिए पेट्रोग्राड में उन लोगों ने यह ढोंग लगा रखा था
...हो जाने पर ज़ार को राजधानी में बुलाया जाय; और
... और इँगलैंड के पेट्रोग्राड में रहनेवाले वकीलों से
...जाय कि अब हम सन्धि करेंगे; क्योंकि हमारे देश
...धानी में ही बलवा मच रहा है; और फिर संधि के
...हस्ताक्षरों से ही जर्मनों से पत्रव्यवहार प्रारम्भ
...ड में बलवा इत्यादि मच जाने के कारण ज़ार-
... अपनी छावनी छोड़ कर राजधानी के लिए चले।
...स्वाभिमानी सेनापतियों और लोकपक्ष के नेताओं
... ज़ारसाहब राजधानी को किस लिये लौटे आ
...लिए जनरल रुस्की, लोकमान्य रोज़ियेंको और
...[illegible] पहले ही से खूब तैयार कर रखा, कि
...[illegible] उनको घेर कर, उनसे सम्राटपद का
... जनरल रुस्की को हुक्म ... सेना
...के स्टर्मर, प्रोटोपोपाफ और ज़ारीना के समान
...[illegible] के लिए राजधानी के अन्दर

सैनिकों को ताकीद की; और स्वयं ज़ार साहब को यात्रा ...
कर, त्यागपत्र पर उनके हस्ताक्षर लेने के लिए जनरल रुस्की ने
ही जाकर उनका स्वागत किया।

जनरल रुस्की की कर्तव्यदक्षता।

अठारहवीं शताब्दी के अखीर में जो फ्रांस की राज्यक्रांति
उसकी अपेक्षा रूसी राज्यक्रांति को घटित करनेवाले रोज़ियेंको और जनरल रुस्की ने इस कार्य में अधिकतर चतुरता, सम-
सूचकता और राजनीतिज्ञता दिखलाई है। जब फ्रेंच राज्यक्रांति ...
अथवा उसके भी पहले, जब कि पहले चार्ल्स राजा का शिरच्छेद कर
के प्युरिटन लोगों ने इँगलैंड में राज्यक्रांति की, तब कदाचित् कई लोगों
का यह ख़याल होगा कि ज़ुल्मी अथवा नालायक राजा का शिरच्छे-
करना ही राज्यपद्धति बदलने का एक उपाय है। रोम के स्वतंत्रता-
देवी के भक्तों को जब यह मालूम होने लगा कि ज्यूलियस सीज़र बड़ा
ज़ुल्मी पुरुष होने लगा है तब उसके कष्ट से मुक्त होने के लिए उसके
कितने ही शत्रुओं ने स्वयं सीनेट सभा में उसका खून कर डाला।
ईसवी सन् के ४५ वर्ष पहले सीज़र का वध हुआ। फ्रांस की राज-
क्रांति सन् १७९० के लगभग हुई। अर्थात् बीच के उन अठारह सौ
वर्षों में सुधारवादी यूरप में भी राज्यक्रांति करने में विशेष सुधार नहीं
हुआ था। यही नहीं बल्कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय भयंकर
रक्तपात और कितने ही बड़े बड़े लोगों के शिरच्छेद हुए, तभी वह
राज्यक्रांति सिद्ध हुई। रूस देश बहुत ही पिछड़ा हुआ माना जाता
था। परन्तु राज्यक्रांति करने के विषय में जनरल रुस्की तथा उनके
अन्य साथियों ने बड़े बड़े सुधारवादी राष्ट्रों को भी पीछे हटा दिया।
जिन क्रांतिकारक लोगों का यह मत हो कि, जिसकी सत्ता या जिसका
ज़ुल्म अप्रिय हुआ हो, उसका सिर काटने से ही उसकी सत्ता उस-
...ती है, अन्यथा राज्यक्रांति नहीं होती, उन लोगों को अब अपना यह
मत बदल डालना चाहिए। फ्रांस की राज्यक्रांति के समय केवल फ्रेंच
बादशाह लुई का ही शिरच्छेद कर के क्रांतिकारक लोगों को सन्तोष
नहीं हुआ; किन्तु लुई की पत्नी रानी एन्टोनेट का भी शिरच्छेद करना
उन्हें आवश्यक अथवा इष्ट जान पड़ा। इसी प्रकार के घोर कर्मों के
कारण प्रसिद्ध अँगरेज वक्ता बर्क की क्रोधाग्नि फ्रेंच लोगों पर प्रज्वलित हो
भड़क उठी। राज्यक्रांति को घटित करते हुए पहले के इतिहासप्रसिद्ध
क्रांतिकारकों की ओर से इस प्रकार के जो निरर्थक अत्याचार होते
गये उनको जनरल रुस्की ने अपनी राज्यक्रांति से सावधानीपूर्वक दूर
रखा। ज़ारसाहब रणांगण से अपनी छावनी छोड़ कर स्पेशल ट्रेन के
द्वारा पेट्रोग्राड को चले, वे पेट्रोग्राड में पहुँच कर जो कुछ करनेवाले
थे उसका सब समाचार क्रांतिकारकों को पहले ही मिल चुका था।
इस लिए क्रांतिकारकों के नेता यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि
ज़ारसाहब पेट्रोग्राड में आ पहुँचे तो सारी काररवाई मिट्टी हो जायगी।
ऐसी दशा में, यद्यपि ज़ार साहब को, स्वयं पेट्रोग्राड में आकर राज-
धानी की अशान्ति मिटाने के लिए सभी बड़े बड़े नेताओं ने मांगुल ...
था, तथापि क्रांतिकारकों ने यह सलाह की, कि पेट्रोग्राड के ...
में ज़ारसाहब के पैर पड़ने के पहले ही हमें अपनी कारवाई कर ...
चाहिए। पेट्रोग्राड में जो सेना थी उसे क्रांतिकारकों ने पहले ही ...
पक्ष में कर लिया था। ज़ार वर्ष डेढ़ वर्ष से पेट्रोग्राड में नहीं थे।
कारण उनके विषय में पेट्रोग्राड की सेना में अब कुछ आदरभाव नहीं
रहा था। जनरल रुस्की की आज्ञा के अनुसार चलने और क्रांतिका-
रकों से सहकारिता दिखला कर अपने हाथ के शस्त्रों का उपयोग
करने के लिए वह सेना तैयार थी। इस सेना में से एक हथियारबन्द
पलटन ले कर जनरल रुस्की, पेट्रोग्राड से सौ डेढ़ सौ मील दूर के
एक रेलवे स्टेशन पर ज़ार की अगवानी करने के लिए आ जमे। यह
घटना मार्च मास की १५ तारीख के लगभग की है। रूस में उस
समय प्रायः ठंड का ही मौसम है। रात अँधेरी थी। १०॥ बजे
थे। आधी रात का समय आया। पेट्रोग्राड की ओर आनेवाली ज़ार
साहब की स्पेशल गाड़ी एक स्टेशन पर आकर खड़ी हुई। उस स्टेशन
पर जनरल रुस्की अपनी हथियारबन्द पलटन के साथ हाज़िर थे।
स्पेशल गाड़ी में ज़ार एक बड़े सैलून में थे। उनके साथ ...
पड़ोस वाले ... के डब्बे में थे। गाड़ी के ठहरते ही जनरल ...
की हथियारबन्द पलटन गाड़ी के सामने प्लेटफार्म पर फौज ...
खड़ी हो गई। सिपाही लोग अपने हथियार अपने कंधों पर लिये ...
थे। जनरल रुस्की, अपने साथ के दो तीन सरदार ...
ज़ार के सैलून में गये। ज़ार साहब को, उन्होंने फौजी कायदे से ...

किया। क्योंकि उस समय तक ज़ार रूस के सम्राट और सम्पूर्ण रूसी सेना के कमांडर-इन-चीफ़ थे। जनरल रुस्की को देखते ही ज़ार साहब उन से पेट्रोग्राड का समाचार पूछने लगे। रुस्की कुछ स्तब्ध से खड़े रहे। उनका चेहरा गंभीर था। विशेष बातचीत करने के झगड़े में वे पड़े ही नहीं। क्योंकि पेट्रोग्राड का समाचार बतलाने की अपेक्षा अत्यन्त महत्व का कार्य उनको करना था। रूस की १३ कोटि प्रजा को ज़ारशाही के सुलतानी शासन से मुक्त करने को जो बड़ा भारी षड्-यंत्र प्रिंस ल्वाफ़, मि० रोज़िऐंको और डूमा सभा ने रचा था उसका अन्तिम दाँव बड़ी चतुराई से खेलने का महत्वपूर्ण और दुर्घट कर्तव्य जनरल रुस्की ने अपने सिर लिया था। रेलवे के सब अधिकारियों को क्रांतिकारक लोकपक्ष ने पहले ही पूर्णतया अपनी कक्षा में ले लिया था। अस्तु। ज़ार साहब जब जनरल रुस्की से पेट्रोग्राड का समाचार पूछने लगे तब, उस विषय में कुछ भी न बोलते हुए, उन्होंने कहा, डूमा सभा के अध्यक्ष रोज़िऐंको का तार हमें अभी अभी मिला है, कि आप पेट्रोग्राड बिलकुल ही न जावें। ज़ार साहब रुस्की के इस कथन का कुछ भी अर्थ नहीं समझ सके। वे कुछ क्रोधित से होकर बोले। "मुझे पेट्रोग्राड जाने अथवा न जाने के लिए कहनेवाला डूमा सभा का अध्यक्ष कौन है?" जनरल रुस्की—"पेट्रोग्राड में डूमा सभा के अध्यक्ष ने सारा कारबार अपने हाथ में ले लिया है, पेट्रोग्राड की सेना ने भी ऐसा ही निश्चित किया है। आपका पेट्रोग्राड में जाना आपके लिए और लोकपक्ष के लिए भी अनिष्ट है।" ज़ार साहब जनरल रुस्की का यह कथन सुन कर भौंचक्के से रह गये। उनके साथ के एडी-डी-कांग आगे के डब्बे में थे। उन्हें ज़ार साहब बुलाने लगे। परन्तु उनको रुस्की के हथियारबन्द सिपाहियों ने पहले ही से घेर रक्खा था। ज़ार साहब बोले, "गाड़ी को पेट्रोग्राड पहुँचने दो, फिर हम लोग डूमा सभा के अध्यक्ष से मिल कर, जो कुछ होगा सो देख लेंगे।" रुस्की ने कहा, "इस स्टेशन से गाड़ी हिलने के पहले ही मुझे कुछ बातें कर लेनी है। नहीं तो यह गाड़ी दूसरे ही ओर ले जानी पड़ेगी; और आगे कुछ विलक्षण घटनाएं होंगी, जिनके लिए हम जवाबदार नहीं होंगे।" रुस्की के भाषण की दृढ़ता और अन्तिम संकेत जान कर ज़ार प्रसन्न हो कर बोले, "तो फिर तुम्हारा कहना क्या है?" रुस्की बोले, "अभी के अभी आप ऐब्डिकेशन (Abdication) अर्थात् सम्राट्पद छोड़ने का त्यागपत्र लिख दीजिए, यही उत्तम है। इससे आपको जान का ख़तरा न रहेगा।" ज़ार आश्चर्यचकित होकर कहते हैं, "क्या कहा, त्यागपत्र लिखूं?" रुस्की—"हां, त्यागपत्र ही लिखिये, और उस पर यहीं के यहीं हस्ताक्षर कीजिए।" ज़ार दुर्बल-हृदय के हैं, और शरीर से भी कमज़ोर हैं। उन्होंने सोचा कि, यदि त्यागपत्र पर हस्ताक्षर नहीं करते तो, जनरल रुस्की के साथ के लोग कदाचित् हमें बहुत जल्द कैद कर लेंगे, अथवा फ्रांस की राज्यक्रांति के समय बादशाह लुई की जैसी दशा की गई वैसी ही हमारी भी करने में ये क्रान्तिकारक सशस्त्र लोग कदापि आगापीछा न करेंगे। इस लिए ज़ार बड़े शोच से बोले, "अच्छा तो बतलाओ कैसा त्यागपत्र लिखूं।" यह सुन कर रुस्की ने जेब से एक मसविदा निकाला। यह रोज़िऐंको और प्रिंस ल्वाफ इत्यादि नेताओं का तैयार किया हुआ था। ज़ार के पास लिखने का कागज़ ही न था, इस लिए लिखें तो किस पर? तब रुस्की ने अपनी जेब से एक अधकोरा तार का फार्म निकाला, और वह ज़ार के सामने रख दिया। इसके बाद रुस्की त्याग-पत्र की भाषा बोलने लगे। तदनुसार ज़ार ने अपने हाथ से त्यागपत्र लिखा; और फिर उस पर हस्ताक्षर किया। रुस्की ने उसे ज़ार से ले कर जेब में डाला। इसके बाद ज़ार की स्पेशल पेट्रोग्राड की ओर न दौड़ते हुए दूसरे ही एक शहर की ओर दौड़ी। उस शहर का नाम शायद पिडिन या ऐसा ही और कुछ था। उस शहर में ज़ार साहब को क्रांतिकारक सशस्त्र लोगों की नजरकैद में एक कोट में रक्खा गया। बस, होगया। उस रात में पांच मिनट में ही रूस के सम्राट् ज़ार एक मामूली आदमी, अर्थात् निकोलस रोमेनाफ़ बन गये। दूसरे दिन रुस्की पेट्रोग्राड में आये; और ज़ार के ऐब्डिकेशन का घोषणापत्र प्रकाशित किया। विंटर पेलेस और ज़ारको-सेलो, इत्यादि राजमहल क्रांतिकारक सेना ने अपने अधिकार में ले लिये। स्टर्मर और प्रोटोपोपाफ कैद कर लिये गये। ज़ारीना देवी ने राजमहल के कमरों में बहुत तड़फड़ाहट और ज़लज़लाहट दिखलाई। परन्तु बाहर हथियारबन्द सेना खड़ी थी। वह ज़ारीना साहब की उस तड़फड़ाहट की क्या परवा कर सकती थी? ज़ारीना के जिन बड़े साथियों ने उपद्रव करने का प्रयत्न किया, उनको क्रान्तिकारकों ने उसी जगह देहान्त प्रायश्चित्त दिया। राजमहलों पर लोकसत्ताक राज्य का झंडा फहराने लगा। जिस बड़े जेलखाने में पहले के क्रान्तिकारक नेता अथवा राजद्रोह के अपराध पर सज़ा पाये हुए राजनैतिक कैदी थे उस जेल को क्रांतिकारकों ने अपने हाथ में ले कर उसे खोल दिया। ज़ारीना देवी अपने दस-पांच नौकर-चाकरों के सहित कैद कर ली गई। पेट्रोग्राड और रूस पर जो ज़ारशाही का शासन था वह नष्ट हो गया। ज़ार ने अपने त्यागपत्र में यह इच्छा प्रकट की थी कि मेरे पश्चात् ग्रेंड ड्यूक माइकेल अलेक्ज़ेंड्रोविच को ज़ार बनाया जाय। परन्तु लोग तो ज़ारशाही चाहते ही न थे। इसके सिवाय ग्रेंड ड्यूक माइ-केल ने स्वयं भी ज़ारशाही प्राप्त करने की इच्छा प्रदर्शित नहीं की। उन्होंने सोचा कि, आज मेरे चाचा पर जो मौका आया है वही कल मेरे ऊपर भी आ सकता है; और इसी लिए उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यह तलवार की धार पर की रोटी हमें नहीं चाहिए। अवश्य ही, ऐसी दशा में, लोकसत्ताक राज्य-पद्धति स्थापित होने का घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। पुराना सारा मंत्रिमंडल पदभ्रष्ट हुआ।

मि० रोड्ज़िऐंको।
(ड्यूमासभा के अध्यक्ष और कमेटी आफ़ सेफ़्टी के प्रेसिडेन्ट)

राज्यक्रांति तो होगई; अब आगे ?

राज्यक्रान्ति होते ही नवीन मंत्री नियुक्त किये गये। प्रिंस ल्वाफ प्रधानमंत्री हुए, मिल्युकाफ़ प्रथम परराष्ट्रीय मंत्री हुए थे; परन्तु उन्होंने आगे चल कर त्यागपत्र दे दिया। युद्धविभाग के मंत्री पहले गुचुकाफ थे। परन्तु उनकी जगह अब सोशालिस्ट केरन्स्की नियत हुए हैं। रोज़िऐंको डूमा सभा के अध्यक्ष हैं। उन्हें एक प्रकार से रूसी प्रजा-सत्ताक राज्य के प्रेसिडेंट या "राष्ट्रपति" कह सकते हैं। क्रान्तिकारकों ने बड़े चातुर्य से ज़ार-शाही नष्ट अवश्य की; परन्तु अब अगला मार्ग अर्थात् रूस के समान विस्तृत देश का सुप्रबन्ध करना, बहुत विकट है। यह बात अब रूसी नेताओं के ध्यान में आने लगी है। रोम में जब सन् ४४ ई० में सीज़र मारा गया तब सीजर को जुल्मी बाद-शाह समझनेवाले उसके प्रतिस्पर्धी—और खास कर सिसेरो, कहने लगा, कि, (the tyrant is dead but tyranny still survives) अर्थात् जुल्मी पुरुष मारा गया; पर जुल्म अभी मौजूद ही है। इसी प्रकार ज़ारशाही नष्ट हो गई सही; परन्तु ज़ारशाही का जो कुप्रबंध था वह अभी तक मौजूद ही है। अब उस कुप्रबन्ध को दूर करके देश में सुप्रबन्ध के द्वारा जब शान्ति स्थापित हो जाय, तब यह कहा जा सकता है कि, रूसी क्रान्तिकारकों ने अच्छी कर्तव्यदक्षता दिखलाई। कोई पुरानी संस्था अथवा राज्यप्रणाली खराब हो जाने पर उसको तोड़ डालना सहज है; पर उसकी जगह उससे अच्छी, सुखदायक और व्यवस्थित नवीन संस्था अथवा राज्यप्रणाली स्थापित करने में ही वास्तव में चतुरता, राजनीतिज्ञता और कर्तव्यदक्षता की परीक्षा होती है। जब संसार यह देख लेगा कि रूसी राज्यक्रान्तिकारकों के उद्देश्य और हेतु क्या थे; और क्रान्ति होने के बाद वे उनके द्वारा कहां तक पूर्ण हो रहे हैं, तभी क्रान्तिकारकों की कर्तृत्वशक्ति अथवा कर्तृत्वशून्यता के विषय में ठीक ठीक अनुमान किया जा सकेगा। रूस के जिन लोगों ने ज़ारशाही को उखाड़ फेंकने का भारी कार्य इतनी चतुरता से कर दिखलाया उनमें भिन्न भिन्न विचारों के लोग हैं। क्रान्तिकारकों के खास कर तीन ही उद्देश्य मुख्य बतलाये जा सकते हैं।

(१) ज़ार और ज़ारीना जर्मनी से स्वतंत्र सन्धि करनेवाले थे; और इससे रूस की फ़ौजी प्रतिष्ठा में बट्टा लगता; और इंगलेंड तथा फ्रांस से की हुई प्रतिज्ञाएं भंग होने के कारण, रूस पर विश्वासघात का दोष आता। उसको टालने के लिए युद्ध जारी रख कर मित्रगणों के साथ से अन्त में जर्मनों पर विजय प्राप्त करना और पोलेंड इत्यादि अपने

करने की खबर जब बड़े बड़े रूसी सेनापतियों को मिली, तभी तो ज़ारशाही का नाश किया गया। इस लिए रूस की स्वतंत्र सन्धि की सम्भावना नहीं है। तथापि, यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि जब तक नवीन राज्यव्यवस्था का छकड़ा सब बातों में बिलकुल ठीक नहीं चलने लगेगा तब तक रूसी युद्धस्थल में साधारणतया शिथिलता दिख-लाई दे सकती है।

महाराष्ट्र की कीर्तन-संस्था।
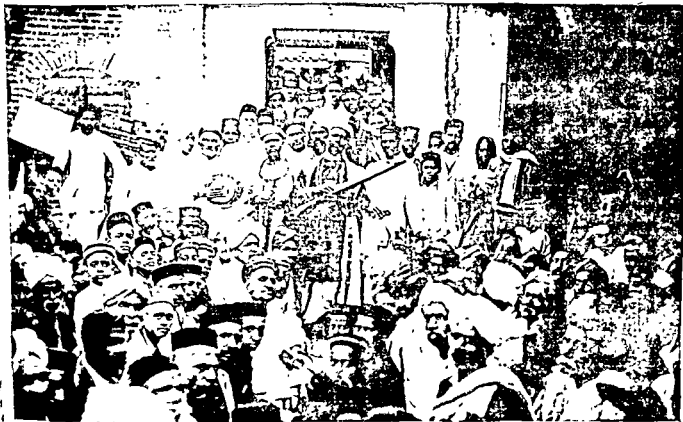
महाराष्ट्र प्रान्त की अनेक लोकोपकारिणी प्राचीन संस्थाओं में एक 'कीर्तन' संस्था भी है। यह केवल 'हरिकीर्तन' या 'नाम-कीर्तन' ही नहीं है, किन्तु इसके द्वारा नीति, धर्म और सदाचार का प्रचार खूब किया जा सकता है। कीर्तन करनेवालों को "हरि-दास" संज्ञा दी हुई है। इन हरिदास लोगों का व्यवसाय ही कीर्तन करना है, जैसे कि उत्तर भारत में कथा बांचनेवाले पौराणिक होते हैं वैसे ही इधर ये कीर्तनकार लोग हैं। इस से यह न सम-झना चाहिए कि इधर पौराणिक लोग नहीं हैं—नहीं, पौराणिक बहुत हैं। अब आज-कल वर्षा ऋतु में इधर, जगह जगह देवा-लयों में कीर्तनों और कथाओं की बड़ी धूम है। पाठक इस चित्र के बीच में "हरिदासबोवा" कीर्तनकेसरी [illegible] वीणा लिये हुए कीर्तन कर रहे हैं। उनके दाहने बायें मृदंग, झांझ और हारमोनियम बजानेवाले मौजूद हैं। "कीर्तन" क्या—यह सुन्दर भजनों से युक्त संगीतमय उपदेशप्रद व्याख्यान होता है। कीर्तनकार कोई एक पद, किसी प्रसिद्ध साधु का, आधार के लिए, ले लेता है, और फिर उसी के एक एक सिद्धान्त को ले कर अनेक भजनों, श्लोकों और आख्यायिकाओं के द्वारा उसको सरस बना कर श्रोतृसमु-दाय को नीति और धर्म का उपदेश करता है। कीर्तन के रङ्ग में प्रायः उसके अनुकूल कोई पौराणिक या अर्वाचीन पद्यात्मक आख्यान भी, आदर्श के लिए, कीर्तनकार लोग लगाते हैं। कीर्तनकार जितना अच्छा गायक और प्रभावशाली उपदेशक होता है उतना ही अच्छा प्रभाव वह जनता पर जमा लेता है। रामायण और महाभारत के पद्यों के आधार पर, व्यावहारिक नीतितत्त्वों का उपदेश, प्रायः कीर्तनकार बड़ी खूबी से करते हैं। कुछ दिनों से नवीन सुशिक्षित ग्रेजुएट लोग भी कीर्तन करने लगे हैं। सारांश, कीर्तन जिस प्रकार भगवद्भक्ति के प्रचार का एक साधन है वैसे ही व्यावहारिक नीति के सिद्धान्त भी इसके द्वारा बड़े मज़े से लोगों के मन में बैठाये जाते हैं।

प्रजात्व ।

(लेखक—श्रीयुत गोपाल नरसिंह चौधरी ।)

अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए मनुष्यों का प्रजात्व धारण करना परम आवश्यक है। जो प्रजा इस गुण से अनलंकृत है वह अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त नहीं कर सकती। सम्प्रति में इस प्रकार के प्रजात्व के अभिमान से विहीन जो जो प्रजाएं हैं उन सब में हमारी भारतवर्ष की प्रजा प्रथम पद पर विराजमान है। आफ्रिका की जंगली प्रजा जैसी प्रजा यदि इस गुण को धारण न करे तो उसके विषय में विशेष वक्तव्य नहीं रहता, क्योंकि वह अपने स्वकर्तव्य से अज्ञान है। परन्तु हमारे भारतवर्ष जैसी व्युत्पन्न प्रजा जब इस आवश्यक सद्गुण से रहित दृष्टिगोचर होती है तब प्रत्येक बुद्धिमान को खेद हुए बिना नहीं रहता।

"प्रजात्व" शब्द इस स्थान पर Nationality या राष्ट्रीयता के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। जो प्रजा प्रजात्व से रहित है, वह, अनेक गुणों से विभूषित होने पर भी, प्रगति को प्राप्त नहीं होती। इसका ज्वलन्त और प्रत्यक्ष उदाहरण हमारा यह भारतवर्ष है। आज भारत जानता है कि प्रगति अमुक अमुक विषय में करने की है, परन्तु वह प्रगति किसी भी विषय में अभी तक नहीं कर सका है, इसका कारण सिर्फ यही है कि उसमें प्रजात्व का अभाव है।

अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड तथा जापान के किसी मनुष्य को उस देश से यदि निर्वासित किया जाता है—अथवा उस पर किसी प्रकार का अन्याय किया जाता है तो आप देखते ही हैं कि, उस देश की समस्त प्रजा शीघ्र ही आन्दोलन मचा देती है, परन्तु देखते हैं कि जब कभी किसी भारतीय को निर्वासित किया जाता है तब भारतप्रजा विशेष आन्दोलन कुछ नहीं करती। यदि इसका कारण ढूंढा जाय तो प्रजात्व के अभाव के सिवाय कुछ नहीं निकलेगा। एक के साथ दूसरे का देशीयता का सम्बन्ध बिलकुल नहीं है।

शरीर के किसी अवयव में कोई व्यथा हो और उसका उपाय न किया जाय तो वह क्रमशः बढ़ते बढ़ते सर्व अवयवों को हानि पहुंचाने लगती है, इसी प्रकार प्रजा के एक मनुष्य को जो जो आपत्तियां झेलनी पड़ती हैं, उनकी ओर यदि अन्य मनुष्य लक्ष्य नहीं देते हैं तो उनके लिए भविष्य में वे ही दुःख खड़े हैं और उनके भोक्ता बनना ही पड़ता है। हमारा यह कहना नहीं है कि संसार की कोई प्रजा अथवा देश अन्य प्रजा अथवा देश को अन्याय से ले ले। विदेशी प्रजा से घृणा, ईर्षा अथवा द्वेष करना तथा विदेशी प्रजा को स्वापेक्षा हलकी मानकर उसका निरादर करना, इत्यादि पक्षपातता नितान्त अयोग्य तथा अन्याय से युक्त है। परन्तु स्वात्मरक्षण के लिए तथा आत्माभ्युदय के लिए प्रजात्व धारण करना आवश्यक है।

जो प्रजा प्रजात्व से हीन है वह अन्यापेक्षा निकृष्ट नज़र आती है। वस्तुतः इस भूतल पर जितनी प्रजाएं हैं उन सब को ईश्वर ने ही उत्पन्न किया है, अतएव पृथ्वीतल पर सब को समान अधिकार है, जिससे उत्कृष्ट और निकृष्ट का झगड़ा रहता ही नहीं है। परन्तु इस तत्त्व को [illegible] प्रजा जानती है जो अपने गौरव को समझती है।

बहुत से मनुष्यों की यह धारणा है कि "मेरा मेरा करना संकुचित हृदय वालों का काम है। बड़े मनुष्यों की दृष्टि सर्व विश्व के प्रति समान रहती है। वास्तव में यह विचार [illegible] नहीं, परन्तु भारत में भी यह [illegible] करने का [illegible] है। भारत में जो अपने अपने [illegible], [illegible], तथा अन्य सम्प्रदायियों के प्रति और अपने देश के प्रति [illegible]। [illegible] विश्व के प्रति दृष्टि रखना [illegible] है। परन्तु भारत में ही जो प्रजा विश्व के प्रति [illegible] [illegible] है वह [illegible], भूल करती है [illegible] [illegible] है, और [illegible] [illegible] ही [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

शिव का भक्त विष्णु के भक्त को और विष्णु का भक्त शिव के भक्त को द्वेष-बुद्धि से देखे तो यह अनुचित है। अपने २ इष्टदेव की आराधना में किसी को कोई तरह की बाधा नहीं करना चाहिये। [illegible] प्रकार के विश्व-विषयक कर्त्तव्य में कोई रोक नहीं, परन्तु इन्हीं [illegible] साथ अपने देश के कर्त्तव्य को छोड़ना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है। जिस प्रकार एक शैव की भक्ति शिव में और वैष्णव की विष्णु में सविशेष देखी जाती है उसी प्रकार एक अंग्रेज की [illegible] स्वदेश इंग्लैंड के प्रति और एक हिन्दू की हिंदुस्तान के प्रति [illegible] न्यायसंगत है। इस सिद्धांत का पालन संसार की अन्य अनेक [illegible] करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु एक भारतवर्ष ही ऐसा [illegible] जो अपने स्वदेशकर्त्तव्य से च्युत हो रहा है।

जापान में आप देखेंगे तो वहां के मनुष्य अपने देश [illegible] वस्तुएं वर्तते हैं, परन्तु भारतवर्ष में इस प्रकार का नियम [illegible] में नितान्त शिथिलावस्था में देखा जाता है। कारण यही है [illegible] प्रजात्व नहीं—मैं आर्य हूं, इसका भान नहीं।

बेल्जियम, इंग्लैंड, फ्रान्स अथवा सारे जर्मनी में घूम देखो [illegible] जैसा लोभ दिखा कर किसी मनुष्य को देश के विरुद्ध [illegible] को कहो तो वैसा एक भी मनुष्य आपको नहीं मिलेगा। आप अपने देश के मनुष्यों को इससे विरुद्ध पावेंगे। इससे [illegible] है कि हमारी प्रजा में प्रजात्व का कितना खेदजनक अभाव है।

मैं और मेरा देश—यह विचार अन्य प्रजाओं के हृदय में [illegible] विलक्षण रूप में पाया जाता है, परन्तु भारत में ऐसे दृढ़ [illegible] व्यक्ति हजारों में विरले ही मिलेंगे।

मैं आर्य हूं और इस आर्यावर्त के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है, [illegible] प्रति मेरे अमुक अमुक धर्म हैं—इस प्रकार के विचारवाले मनुष्य [illegible] ही कम हैं। बहुत से मनुष्य पेट भर कर ही कर्त्तव्य की [illegible] भते हैं और जो शिक्षित हैं उनमें से अधिकांश विश्व को अपना [illegible] माननेवाले हैं और यह मेरा देश है और इसके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य [illegible] इन विचारों से संयुक्त मनुष्य अपने देश में बहुत ही कम हैं।

अपने देश-विषयक धर्म का पालन करना वस्तुतः अपने निज [illegible] को पालन करने के तुल्य है। क्योंकि इस जड़ पृथ्वी का उससे कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु उसका लाभ, जो प्रजा उसके [illegible] विद्यमान है, उसको प्राप्त होता है। जिससे स्वदेशसेवा करना [illegible] निज की सेवा करना है और आत्मोन्नति की उन्नति मात्र का सोपान है।

मैं आर्य हूं और यह मेरा आर्यावर्त है, अथवा मेरे अमुक २ धर्म [illegible] प्रति हैं—यह विचार बुद्धिमान का नित्य कर्त्तव्य है। क्योंकि [illegible] के विचारों में अपना और अपनी भावी प्रजा का हित [illegible]

बहुत से मनुष्य अपने आप को अति क्षुद्र मानते हैं और [illegible] में क्या गणना ! इस प्रकार की भावना रखते हैं। परन्तु [illegible] नहीं। चाहे यह अन्यों के लिये भले ही उचित हो, परन्तु [illegible] लिए तो यह कदापि उचित नहीं है। क्योंकि [illegible] ऋषि-मुनियों की संतान हैं और उनका गौरव [illegible] की अपेक्षा उत्कृष्ट है। इंग्लैंड के [illegible] समर्थ विद्वान [illegible] मनुष्य अपने आप को [illegible] अनुचित [illegible] है। हम [illegible] मर्यादित होने के पात्र हैं, [illegible] करना चाहिए।

इस प्रकार की [illegible] प्रजा में विद्यमान [illegible] हमारी प्रजा अनेक दुर्गुणों से भिन्न है। परन्तु [illegible] को देख कर तथा अपने पूर्वजों की [illegible] हुई कीर्ति और गौरव को देख कर, [illegible]

धारण करना उचित है। और इस प्रकार एक आर्य को-जिसको कि संसार की सुधरी हुई प्रजाएं सर्वोत्कृष्ट मानती हैं-सर्वोत्कृष्ट होने के लिए जिन सद्गुणों का धारण करना योग्य समझा जाय, उन्हें धारण कर लेना चाहिए और जिन दुर्गुणों को छोड़ना हो उन्हें त्याग देना चाहिए।

एक सिंह अपने को भेड़ मानकर भेड़ों के समूह में जाकर रहे तो उसकी जो दशा हो, वैसी ही दशा अपने आप को भूलने से हमारी हुई है। जो हम प्रजात्व को धारण करेंगे तो चाहे हम कितनी ही निकृष्ट स्थिति में होंगे तो भी सर्वोत्कृष्ट पद पर पहुँच ही जायँगे।

अपने देश में बसनेवाले मनुष्य पारसी हों, मुसलमान हों, मराठा हों, बंगाली हों, चाहे जो हों, परन्तु वे सब अपने ही अवयवरूप हैं। उनको दुःख होता हो तो वह अपने को ही होता है। वे यदि अपने को दुःख पहुँचावें तो भी उनको अपना ही जानकर तथा मानकर सच्चे बन्धुभाव को जागृत करने की हमारी प्रजा में अनिवार्य आवश्यकता है। मेरे आर्य होने के कारण इस आर्यावर्त के साथ मेरा अकाट्य सम्बन्ध है; चाहे अन्य मनुष्य अपने धर्म को समझते हों या न समझते हों-अथवा अपना उनसे चाहे अहित भी हो, तो भी उसकी उपेक्षा कर अपने आप स्वधर्म को कदापि छोड़ना उचित नहीं है। वह अपना धर्म आज नहीं समझे तो कल समझेंगे, परन्तु इस पर हम को--जो कि अपना धर्म समझते हैं-इसकी अवगणना करना हितकर नहीं है। यदि हम अपने धर्म का पालन करते रहेंगे तो किसी समय वे अपने इतर बन्धु अवश्य पालन करेंगे; परन्तु यदि ऐसा न कर उनके समान होंगे तो हम अपने धर्म से भ्रष्ट हो जावेंगे और उनको भी स्वधर्म से भ्रष्ट कर देवेंगे-अर्थात् स्वधर्म में जागृत होने वाले समाज का विनाश करेंगे।

कुछ समय पहिले आफ्रिका में जनरल बोथा ने अपने भाषण में हिन्दुओं को बार बार 'कुली' शब्द से सम्बोधित किया था, इससे यहां के कितने ही हिन्दू सद्गृहस्थों को दुःख प्रतीत हुआ था और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार अन्य मनुष्य अपने को 'कुली' शब्द से सम्बोधन करें, इससे समझिये कि हम कितनी नीच स्थिति में पड़े हुए हैं! इससे स्वभावतः ही अन्य प्रजा हमको एक उत्कृष्ट प्रजा के समान योग्य सम्मान की दृष्टि से देखे, ऐसी स्थिति में हमको पहुँचना चाहिये। इतने पर भी अन्य भले ही अपने को 'कुली' कहें, इससे कोई हर्ज नहीं, परन्तु 'कुली' स्थिति में भी अपना जीवन ऐसा उत्कृष्ट होना चाहिये कि वैसा जीवन विश्व की महा सभ्य जातियों में भी ढूंढ़े न मिले। इस विषय में एक आर्य लेखक लिखता है कि:—"There may be men who call all Indians Coolies in arder to prevent us from getting rights of civilised men. The best way to defeat the object of such men is not to assert that there is a class of Indians who are superior and distinct from coolies, but to so raise the moral, m[...] intellectual condition of all Indians as to[...] contemptuous use of the word coolie impos[...] more well-to-do classes of Indias ought[...] forget that they are responsible for the [...] condition of closses to which the coolie[...]

[...] हैं उन्हें हो[...]
[...] को 'कुली' [...]
[...] उत्तम मा[...]
[...] क वर्ग के [...]
सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं; किन्तु सर्व भारती[...] आर्थिक और मानसिक स्थिति इतनी उच्च कर देना चाहि[...] धिक्कारवाचक "कुली" शब्द का हलका प्रयोग असं[...] भारत के उत्तम स्थिति वाले मनुष्यों को यह बात कदा[...] चाहिये कि कुली वर्ग की दुर्दशा अथवा निकृष्टता के लिये[...] नहीं।

हनुमानजी निरन्तर दासवत् ही रहते थे, परन्तु उ[...] का इस प्रकार पालन किया था कि, जिसकी जोड़ी मं[...] दुर्लभ है। निकृष्ट स्थिति में रह कर उच्च सद्गुण [...] सकते हैं। उच्च सद्गुणों को धारण करने के लिये [...] की आवश्यकता है यह पतित स्थितिवाले, परतंत्र भि[...] भी प्रकट कर सकते हैं।

अतएव उच्च २ दैवी सद्गुणों को धारण कर अ[...] अपना पवित्र आर्य नाम सार्थक करना चाहिये। यह [...] विदित ही है कि श्रीमान् गांधी जब आफ्रिका में थे[...] मिलने के लिये जब सेन्ट एन्ड्रूस जैसे प्रतिष्ठित विद्वान[...] वे उनको देखते ही उनके पैरों में पड़े थे। इस प्रकार ज[...] ं वहां वहां वह सम्मान और पूजा का पात्र है। श्रीम[...] अपने को एक गिरमिटवाला, या मिल के एक मजदूर के [...] हैं, परन्तु यह भारतवर्ष के गौरव का विषय है कि, वे [...] पाश्चात्य मनुष्यों के सम्मान के पात्र हुए हैं।

इस प्रकार चाहे जितनी हलकी स्थिति में हो, परन्तु [...] उच्च सद्गुणों को धारण करें कि जिससे आपको यह [...] भूषण रूप हो जाय। आप एक सिपाही हो तो एक ऐसे [...] कि जिससे आपका जोड़ा अन्य प्रजाओं में मिलना कठि[...] अथवा आप एक भिक्षुक हो तो ऐसे भिक्षुक बनो कि [...] मिलना दुर्लभ हो जाय। तात्पर्य कि, मनुष्य चाहे जैसी [...] परन्तु उसे इतनी प्रकाशित करे कि अन्य मनुष्य उसको स्तु[...] नहीं, किन्तु देव भी स्तुति करें।*

* एक गुजराती लेख का स्वतंत्र अनुवाद।

पेशावर का फॉलोअर्स कैम्प।

फौजी सामान पहुँचाने और ढोनेवाली टुकड़ी।

फौजी सामान पहुँचाने और ढोनेवाली टुकड़ी।

(लेखक—श्रीयुत सीताकान्त जी।)

…के सब अंगों में छाती का महत्व भी बहुत विशेष है। मर्द की …सी विशाल और बलवान होगी उसी के अनुसार उसमें … और पुरुषार्थ भी विशेष होगा। परन्तु खेद की बात है कि …ल हमारी तरुणपीढ़ी की छाती की बड़ी दुर्दशा है। कहां वे …भीम और प्रताप तथा पृथ्वीराज इत्यादि वीर पुरुषार्थी क्षत्रियों …ती तथा कहां आज कल के भारतीयों की धड़कती हुई कमज़ोर … आज कल हृदय का रोग (हार्ट डिज़ीज़) तो हमारे तरुणों के लिए …साधारण सा रोग हो रहा है। राष्ट्र की इस अधोगति का भी …ठिकाना है।

…रिद्रता के कारण जिनका पेट पीठ से लग रहा है उनकी तो बात …जाने दीजिए; परन्तु सुशिक्षित तरुण, जिनके यहां खानेपीने की … नहीं है, उनका पेट भी पीठ से लगा हुआ देखा जाता है। उनकी …ती तो उन्नत दिखती नहीं, हां, छाती के ऊपर और उसके आस पास …भाग पर हड्डियों का ठाठ अवश्य झलकता हुआ दिखाई देता है। …ती के ऊपर आने की जगह कंधे ऊपर उठे हुए दिखाई देते हैं; और …ठ झुकी हुई होती है। अब आप ही बतलाइये, जिन मर्दों की छाती … यह दशा है, उनसे देश की सेवा क्या होगी; और अपनी भावी …सन्तान के लिए वे क्या कर जायँगे? दस हज़ार नवयुवकों में दो सौ …नवयुवक भी तो हमें ऐसे नहीं दिखाई देते कि जो साहस कर के, …सीना उभाड़ कर, राष्ट्रकार्य की पुकार होने पर, आगे बढ़ें।

आत्मोन्नति के लिए–राष्ट्रोन्नति के लिए, संकटों से सामना करने के लिए, और सुखों का यथेष्ट उपभोग करने के लिए, स्त्रियों की भांति … बिना छाती के तरुण, उन्नत वक्षस्थलवाले अथवा गिरगिट की तरह … बिलकुल निरुपयोगी हैं; उसके लिए वज्र के समान कठोर और उन्नत छातीवाले पुरुष चाहिएं, भरी हुई छाती; गठीलेदार भुजदण्ड, तेजस्वी नेत्र, गुलाबी गाल और दमदार चालवाले पुरुषार्थी नवजवान चाहिएं। शारीरसामर्थ्य और मनःसामर्थ्य परस्परावलम्बी हैं। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" इस उपनिषद्वाक्य में, आध्यात्मिक दृष्टि से, शारीरिक बल का महत्व दिखलाया गया है। इस शारीरिक सामर्थ्य का एक मुख्य लक्षण भरावदार छाती है। छाती भरावदार होना सामर्थ्य का लक्षण है, शारीरिक उत्साह और मानसिक उत्साह का लक्षण है। प्रत्येक मनुष्य साधारणतया यह बात सहज ही समझ सकता है कि हमारी अथवा अन्य किसी मनुष्य की छाती, जितनी भरावदार होनी चाहिए उतनी है या नहीं; परन्तु वास्तव में यह बात प्रत्येक मनुष्य को मालूम होना चाहिए कि हमारी छाती साधारणतया कितनी होनी चाहिए और कितनी है। इससे यह भी अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि हमें अपनी छाती की पूर्ण वृद्धि करने के लिए कितनी मिहनत करनी चाहिए; तथा दुर्गुण, दुश्चिन्ता और अन्य कारणों से हमने अपने शरीर का कितना सत्यानाश कर लिया है। उँचाई, वज़न और छाती के माप की तुलना का औसत इस प्रकार है:—

उँचाई फीट-इंच	वज़न पौंड	छाती की माप इंच
५ — १	१२०	३४.७६
५ — २	१२६	३५.१३
५ — ३	१३३	३५.७०
५ — ४	१३६	३६.२६
५ — ५	१४२	३६.८३
५ — ६	१४४	३७.४०
५ — ७	१४८	३८.१२
५ — ८	१५४	३८.६०
५ — ९	१६२	३९.१०
५ — १०	१६६	३९.६६
५ — ११	१७४	४०.२३
६ — ०	१७८	४०.८०

छाती की अगली ओर बीच में एक हाड़ होता है; उसे उरोस्थि (Sternum) कहते हैं। उसके दोनों ओर बारह बारह, अर्थात् कुल चौबीस पसुलियां होती हैं। पहले इस उरोस्थि के बहुत से टुकड़े होते हैं; परन्तु आगे चल कर क्रमशः ये स्वाभाविक ही जुड़ जाते हैं, और उनके सिर्फ दो या तीन टुकड़े बन जाते हैं। इस का आकार कटार के समान होता है। वह ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः पतला होता जाता है और अन्त में नीचे की ओर उसमें लचीला और नोकीला सिरा होता है।

छाती की पसुलियां टेढ़ी, गोल और कमानीदार होती हैं। इनमें से प्रत्येक की चौड़ाई क्रमशः कम होती जाती है। उरोस्थि के प्रत्येक ओर सात गड्ढे होते हैं। बारह पसुलियों में से पहली सात पसुलियां इन सात गड्ढों में उरोस्थि से संयुक्त रहती हैं। उनके आगे की तीन पसुलियां इस सातवें गुड्ढे में ही आकर मिलती हैं। अन्त की सिर्फ तीन पसुलियां उरोस्थि में न मिलते हुए स्नायुओं में ही विलीन हो जाती हैं। प्रत्येक पसुली चपटी होती है; और उनके निचले सिरों के पास रक्त-वाहिनियां और तन्तु होते हैं। ये हड्डियां कुछ स्थितिस्थापक होती हैं और उनके इन गुणों का श्वासोच्छ्वास क्रिया में बहुत उपयोग होता है।

छाती का अस्थिपंजर ऊपर संकुचित और नीचे अधिकाधिक चौड़ा होता जाता है। उसमें दो फुफ्फुस, रक्ताशय और उसकी बड़ी रक्तवाहिनियां होती हैं। इसके अतिरिक्त अन्नमार्ग छाती के बीच में से ही नीचे पेट में उतरता है। श्वासनलिका का कुछ भाग छाती में है।

छाती में दोनों ओर एक एक फुफ्फुस और उसके मध्यभाग में रक्ताशय होता है। रक्ताशय तीसरी पसुली से ले कर छठी पसुली तक की जगह घेरता है। उसका बहुत सा भाग बाईं ओर और थोड़ा सा भाग दाहनी ओर होता है।

प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के समय मनुष्य कितनी हवा भीतर लेता है और कितनी बाहर छोड़ता है, यह निश्चित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को हवा न्यूनाधिक परिमाणों में आवश्यक होती है। यद्यपि साधारणतया मध्यम अवस्था का आरोग्य मनुष्य प्रत्येक श्वास के समय २५ से ले कर ३५ घन इंच तक हवा भीतर लेता है। एक डाक्टर कहते हैं कि २४ घंटे में एक मनुष्य को साधारणतया ६८,००० घन इंच हवा की आवश्यकता होती है।

जितनी ली जा सके उतने ज़ोर से श्वास भीतर खींच कर फिर जितनी छोड़ी जा सके उतनी, पूर्णतया, श्वास बाहर छोड़ते समय मनुष्य जितनी हवा छोड़ सकता है उतनी उसकी जीवनशक्ति मानी जाती है। ५ फीट ७ इंच उँचाई के प्रौढ़ और आरोग्य मनुष्य की जीवनशक्ति … घन इंच होती है। छाती को चलन देने की शक्ति जितनी अधिक … है उतनी ही जीवनशक्ति भी अधिक होती है।

मनुष्य के शरीर की उष्णता आरोग्यावस्था में साधारणतया … से ले कर ९९ अंश तक होती है। छोटे लड़कों की उष्णता … कुछ अधिक रहती है। शरीर के मध्यभाग से अवयव जितने … अधिक दूरी पर होगा उतना ही उसकी उष्णता का परिमाण … अवयव कम होता है। बगल में यदि उष्णता का परिमाण … है तो जंघाओं में ९६ अंश और पैरों में ९५ अंश होता है। … लीन कारण न होते हुए बीच में उष्णता का परिमाण कम … लता का चिन्ह है। उपर्युक्त उष्णता शरीरस्वास्थ्य के लिए … है। श्वासोच्छ्वासक्रिया जिस परिमाण में होती है उसी … उष्णता भी उत्पन्न होती है। अर्थात् श्वासोच्छ्वास के … उष्णता कम होती है और ज़ोर से चलने से अधिक होती है।

इससे यह मालूम हो जायगा कि जीवनशक्ति और … का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इससे यह भी सिद्ध … फुफ्फुसों की श्वासोच्छ्वास करने की शक्ति अधिक …

ो हुए और तनने तक की जानेवाली हलचलें करते हुए इस र के अनुसार शरीर की स्थिति रखना चाहिए।

व्यायाम—३ (आ० नं० ८ और ९)—आ० नं० ८ के अनुसार शरीर का कर खड़े हो जाओ। जैसा कि आकृति में दिखलाया है उस से अधिक यदि शरीर आगे की ओर झुकाया जा सके तो अच्छा होगा। के बाद हाथ तनेने रख कर पिछली ओर से जैसा कि आ० नं० ९ में दिखलाया है उस प्रकार की स्थिति में उनको लाना चाहिए। जब अच्छी तरह थकवा न मालूम होने लगे तब तक बराबर यही व्याम करते रहना चाहिए। इस व्यायाम से पीठ और छाती के ऊपर के भाग के स्नायु बहुत मजबूत होते हैं।

इन व्यायामों को करते समय कुछ यह आवश्यक नहीं है कि मुग्दर ही हाथों में ली जायँ। कोई भी जड़ पदार्थ लिया जा सकता है। यही नहीं किन्तु साधारणतया कुछ निर्बल मनुष्य केवल मुट्ठी बाँध कर ही ये व्यायाम कर सकता है। शक्ति के अनुसार २ से ४ पौंड तक के वजन के 'मुकदगदा' डम्बेल्स भी उपयुक्त किये जा सकते हैं।*

* प्रस्तुत लेख के विषय में यदि किसी महाशय को पत्रव्यवहार करना हो तो '४०, कालबा देवी बम्बई' के पते पर लेखक से करना चाहिये।

जबलपुर ट्रेनिंगकालेज, एल० टी० श्रेणी १९१६--१७।

मध्यप्रान्त और बरार प्रान्तों के शिक्षक ग्रेज्युएटों को कालेज में एल० टी० का ९ मास अध्ययन करना पड़ता है; और अंडरग्रेज्युएटों को दो वर्ष। पाठको! देखिये हमारे इन ग्रेज्युएटों (स्नातकों) के मुखमण्डल पर रौनक बिलकुल ही नहीं है। इसका कारण?

पणजी के दृश्य।

पणजी (गोवा) के आलफोन्स अल्बुकर्क का स्मारक।

पणजी के पास समुद्र किनारे के धुरन्धर किले का दृश्य।

डा० भांडारकर को अर्पण किया हुआ ग्रन्थ।

(लेखक—प्रो० वा० बा० पाटक।)

इस महीने की छठवीं तारीख को पूने में प्राचीन इतिहास का अन्वेषण करने के लिए 'भांडारकर-इन्स्टिट्यूट' नामक संस्था स्थापन हुई। उस समय अनेक विद्वान्, श्रीमान्, जागीरदार और अन्य बड़े बड़े लोग जमा हुए थे। गवर्नर साहब ने अध्यक्षस्थान स्वीकार किया था। डा० सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर ने अपना सारा जीवन प्राचीन इतिहासों का अन्वेषण करने में व्यतीत किया है, इस कारण उनके विषय में पूज्यबुद्धि व्यक्त करना इस सभा का उद्देश्य था। इस अवसर पर एक उत्तम नवीन ग्रन्थ तैयार कर के श्रीमान् गवर्नर साहब के हाथ से सत्कारपूर्वक उनको अर्पण किया गया। इस ग्रन्थ के लेखों का सारांश, समय समय पर देने का हमारा विचार है। भिन्न भिन्न विषयों पर लिखे हुए ४० निबन्ध इस ग्रन्थ में हैं। ये सब विख्यात विद्वानों के लिखे हुए हैं। इनमें से १७ निबन्ध यूरोपियन पंडितों के लिखे हुए हैं। और बाकी लेख एतद्देशीय विद्वानों के हैं। इनमें प्रतिपादन किये हुए विषय बहुविध हैं। पहला विषय वेद और वेदकालीन विद्या, दूसरा विषय भारतादि पुराण, तीसरा विषय पाली भाषा, बौद्धमत और जैनमत, चौथा विषय तत्वज्ञान, पांचवां विषय इतिहास और प्राचीनवस्तुअन्वेषण, छठा विषय व्याकरण और भाषाविज्ञान, सातवां काव्य और अलंकारशास्त्र, आठवां शिल्प, वैद्यक, इत्यादि।

इनमें से पहला निबन्ध डा० मेक्डोनेल (मुग्धानलाचार्य) का लिखा हुआ है। इसमें इस बात का विवेचन किया गया है कि ऋग्वेद का भाषान्तर करते समय कौन से सिद्धान्त ध्यान में रख कर भाषान्तर करना चाहिए। लगभग ११२ वर्ष पहले ऋग्वेद के विषय में यूरोपियन लोगों को जानकारी हुई और १८४९ में मोक्षमूलर ने ऋग्वेद का कुछ भाग सायणभाष्यसहित छापा। इसके बाद विल्सन नामक विद्वान ने अंगरेजी में ऋग्वेद का भाषान्तर किया। यह भाषान्तर सायणभाष्य के अनुसार है। डा० मेकडोनेल को ठीक समझ में नहीं आता। क्योंकि सायणाचार्य अर्वाचीन ग्रन्थकार हैं। यही नहीं, किन्तु डा० मेकडोनेल साहब का कथन है कि प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी जो ऋग्वेद के वाक्यों का अर्थ दिया है वह भी कहीं कहीं गलत है। इसके बाद आप कहते हैं कि ब्राह्मण काल में ही ऋग्वेद का अर्थ दुर्बोध होने लगा था। निघंटु और यास्क तो उससे बहुत पीछे के हैं, और सायणाचार्य को तो अभी ६०० ही वर्ष हुए। इस लिए सायणभाष्य में जो सांप्रदायिक अर्थ दिया हुआ है उसी पर अवलम्बित नहीं रह सकते। इधर कुछ समय से विद्वान् लोगों ने अनेक नवीन अन्वेषण किये हैं। उनमें विशेषतः पारसी लोगों के धर्मग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इसके सिवाय प्राचीन ग्रीक और रोमन ग्रन्थ भी उपलब्ध होने के कारण अब सायणाचार्य के समय की अपेक्षा, ऋग्वेद का भाषान्तर करने के लिए, विशेष साधन हैं। इस प्रकार प्रतिपादन करते हुए डा० मेकडोनेल ने ऋग्वेद का नवीन भाषान्तर करने का हेतु प्रदर्शित किया है।

इस पहले निबन्ध में केवल इतना ही दिखलाया है कि ऋग्वेद का भाषान्तर किस रीति से करना चाहिए। दूसरे निबन्ध में [illegible] साहब ने, ऋग्वेद में जिन नदियों के नाम आये हैं उनके विषय में विवेचन किया है। इसमें यह बतलाया है कि ऋग्वेद में जिन नदियों के नाम आये हैं उनके वर्तमान नाम क्या हैं, और वे ऋग्वेद के नामों से कहां तक मिलते हैं। इस ग्रन्थ का तीसरा निबन्ध लोकमान्य पंडित बाल गंगाधर तिलक का लिखा हुआ है। इसका विषय है—खाल्डियन वेद और हिन्दुस्थान के वेद।

खाल्डियन वेद और आर्यों के वेद।

उन्नीसवीं शताब्दी के, इधर के पचास वर्षों में मेसोपोटेमिया [illegible] बहुत से शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, यूरोपियन विद्वानों ने उन [illegible] मार्मिकता से पढ़ कर उनका अर्थ लगाया है। इन शिलालेखों [illegible] स्पष्ट दिखाई देता है कि सन् ईसवी से लगभग पांच हज़ार वर्ष [illegible] तुरेनियन जाति के लोग एशिया के उत्तरी भाग से आकर [illegible] नदी के मुख के पास के प्रदेश में रहने लगे। उन्होंने उन शिलालेखों [illegible] अपने धर्म और रीतिरवाजों के विषय में वृत्तान्त दिया है। इन [illegible] लेखों को कितने ही विद्वानों ने खाल्डियन वेद नाम दिया है। [illegible] नियन जाति के लोग टैग्रीस और यूफ्रेटीस नदियों के मुख से उत्त[illegible] ओर फैलते गये। इन लोगों के बाद, इनके रीति-रवाज ले कर, [illegible] यन नाम के दूसरे लोग उत्पन्न हुए। ये ईसवी सन् के लगभग [illegible] हजार वर्ष पहले हुए। यूरोपियन विद्वानों ने ऐसा अनुमान किया [illegible] कि हिन्दू लोगों ने इन असीरियन लोगों से बहुत से रीति-रवाज प्र[illegible] किये हैं। ईसवी सन् के लगभग दो हजार वर्ष पहले हिन्दू लोगों [illegible] असीरियन लोगों का मेल-मिलाप हुआ होगा। आर्यन लोगों की मू[illegible] वस्ती मध्य एशियाखंड में एक पहाड़ी प्रदेश में थी। [illegible] इन आर्यन लोगों को कृषिकर्म, नौकागमन, पत्थर [illegible] घर बनाना, धातुओं के पात्र बनाना, लेखनकला [illegible] इत्यादि बातें बिलकुल ही मालूम न थीं। और ये [illegible] सब बातें उन्होंने असीरियन लोगों से ग्रहण कीं। [illegible] परन्तु यह मत अन्य विद्वानों को स्वीकार नहीं है। [illegible] तथापि यूरोपियन विद्वानों का मत है कि मंत्र, तंत्र, जारण-मारण विद्या, ज्योतिषशास्त्र, कालज्ञान, इत्यादि विद्याएं असीरियन अथवा बाबिलोनियन लोगों से ही ली हैं और ऐसा अनुमान होता है कि ईसवी सन् के लगभग दो हजार वर्ष पहले के इधर ही उनको लिया होगा। इस अनुमान को दृढ़ता लाने के लिए यूरोपियन विद्वानों ने एक यह प्रमाण पेश किया है कि ऋग्वेद में एक जगह "मनाहिरण्य" शब्द आये हैं। इन विद्वानों के मत से यहां का यह मनाशब्द और ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं का मिना शब्द और फ्युनिशियन भाषा का मन शब्द—ये तीनों शब्द एक ही हैं, और वे कहते हैं कि हिन्दू लोगों ने मनाशब्द बाबिलोनियन लोगों से लिया है। इस लिए ऋग्वेद इस सन ईसवी के पहले दो हजार वर्ष के इधर का होना चाहिए। परन्तु मैक्समूलर का मत अवश्य ही इसके विरुद्ध है। अर्थात् उनकी राय में ऋग्वेद इस सन ईसवी के दो हजार वर्ष पहले से भी बहुत अधिक पुराना होना चाहिए। प्रो० मैक्समूलर का मत है कि मन शब्द केवल बाबिलोनियन भाषा में ही नहीं था, किन्तु उससे भी अधिक प्राचीन आकेडियन भाषा का यह शब्द है। इससे यदि यह कहा जाय कि ब्राह्मणों में मना शब्द बाबिलोनियन भाषा से न लेते हुए आकेडियन भाषा से लिया, तो यह अनुमान सहज ही निकलता है कि [illegible] वर्ष पहले उपलब्ध थी। प्रो० [illegible] ने अपने [illegible] ४५०० [illegible]

[illegible]

इससे [illegible]

[illegible]

डॉ० सर रामकृष्ण गोपाळ भांडारकर।

करने के लिए आज तक कोई प्रमाण नहीं मिला था; वह प्रमाण व उपलब्ध हुआ है। इस लिए अब इस विषय में विद्वान् लोगों को पने पहले के मत बदलने पड़ेंगे।

प्रो० सांईस नामक एक यूरोपियन पंडित ने अपने एक ग्रन्थ में यह हा है कि बाबिलोनियन लोगों में प्राचीन काल में जो कपड़े व्यवहृत ये जाते थे उनकी एक सूची मिली है। उस सूची में मलमल के अर्थ सिन्धु शब्द का उपयोग किया गया है। ये योरोपियन पंडित यह हते हैं कि सिन्धु नाम आकेडियन लोगों ने दिया होगा। क्योंकि आकेडियन लोगों के समय में यह कपड़ा सिन्धु नदी के किनारे से यापारी लोग खाल्डिया प्रान्त में ले जाते थे। इसी शब्द के समान अर्वाचीन इँगलिश भाषा का केलिको शब्द है। इसे केलिको कहने का इतना ही कारण है कि इस तरह का (केलिको नाम का) कपड़ा पहले व्यापारी लोग कालीकट बन्दर से विलायत को ले जाते थे। इससे जान पड़ता है कि सिन्धु नामक मलमल का कपड़ा इस देश से जाता था। दूसरी बात यह है कि वह जलमार्ग से जाता होगा। क्योंकि यदि स्थल से ईरान देश से जाता होता तो ईरान की प्राचीन भाषा के नियमानुसार 'स' कार का 'ह' कार हो कर 'सिन्धु' का 'हिन्दु' बन गया होता। इससे साफ मालूम होता है कि लगभग चार हज़ार वर्ष पहले खाल्डिया देश और हिन्दुस्थान देश में जलमार्ग से मेल मिलाप जारी था। यह बात सिद्ध होने के लिए ऊपर दिये हुए शब्द बस हैं। अर्थात् वेद-काल में आर्य लोगों ने खाल्डियन लोगों से 'मन' अर्थ का मना शब्द लिया। और खाल्डियन लोगों ने हमारे प्राचीन आर्य लोगों से मलमलवाचक सिन्धु शब्द लिया। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि चार हज़ार वर्ष पहले आर्य लोग और खाल्डियन लोग एक दूसरे के पड़ोसी थे, अथवा खाल्डियन व्यापारी लोग सिन्धु नदी के मुहाने के पास के प्रदेश में अथवा भारत के पश्चिम किनारे पर बार बार आते रहते थे।

सन् १९०७ ई० में एशिया माइनर प्रान्त में प्राचीन वस्तुओं की खोज करने के लिए खोदते समय कुछ प्राचीन लेख मिले। उनमें से एक शिलालेख में हिटैन लोगों के राजा और उत्तरी मेसोपोटेमिया के मितन्नी के राजा में सन्धि होने का उल्लेख है। यह लेख ईसवी सन् से १४०० वर्ष पहले का है। इसमें मित्र, इन्द्र, वरुण और नासत्या, चार देवताओं, की प्रार्थना की गई है। ये तो सुप्रसिद्ध वैदिक देवता हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसवी सन् के लगभग १४०० वर्ष पहले उत्तरी मेसोपोटेमिया के राजा वैदिक देवताओं के उपासक थे। और, इन राजाओं के नाम ईरानी हैं। परन्तु इतने ही से हमारे उपर्युक्त अनुमान में बाधा नहीं आती।

उपर्युक्त शिलालेख से ईसवी सन् के लगभग चौदह-पन्द्रह सौ वर्ष पहले का पता लगता है। परन्तु खाल्डिया और भारतवर्ष का हेलमेल उपर्युक्त मितन्नी राजाओं के समय की अपेक्षा भी बहुत प्राचीन है। [illegible] पंडित कहता है कि, आर्यन लोग उत्तम और कल्याणकारक देवताओं की उपासना करते थे। और खाल्डियन लोग दुष्ट पिशाचों की पूजा करते थे। और इसी लिए वैदिक धर्म का मुख्य लक्षण यज्ञ और खाल्डियन धर्म का मुख्य लक्षण यंत्रमंत्रादि हैं। इस योरोपियन पंडित के कथन से हम को अथर्वण वेद की याद आती है। क्योंकि उसी वेद में यंत्रमंत्रादि विषय आये हैं। इधर वेदविद्या की चर्चा धर्म करते हैं। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—इन तीन प्राचीन वेदों की ही त्रयी संज्ञा मिली है। अथर्व वेद इन तीन में नहीं आता। इसके सिवाय अथर्व वेद का महत्व भी प्रायः इन तीन वेदों की अपेक्षा कम मानने का संप्रदाय है। अथर्वण वेद ऋक्, यजु और साम की बराबरी नहीं कर सकता, ऐतिहासिक दृष्टि से भी उन तीन वेदों की अपेक्षा यह चौथा वेद अर्वाचीन है। किन्तु, अर्वाचीन भले ही हो, तथापि ईसवी सन् के ढाई हज़ार वर्ष पहले का है। क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में उसका नाम और उसके अवतरण आये हैं। यदि खाल्डियन भूतपिशाचों के नाम अथर्वणवेद में मिलेंगे तो इसका मतलब यह होगा कि खाल्डियन लोगों की मंत्रविद्या आर्यन लोगों ने ईसवी सन् से लगभग दो ढाई हज़ार वर्ष पहले ग्रहण की होगी; और जब तक इन दोनों लोगों में हेलमेल न हुआ होगा तब यह बात हो कैसे सकती है?

अथर्व वेद में सर्प का विष उतारने के लिए कुछ मंत्र बतलाये गये हैं। कौशिकसूत्र में यह बतलाया गया है कि इन विषमंत्रों का उपयोग कब करना चाहिए। इन मंत्रों में तैमात, आलिगी, विलिगी, इत्यादि शब्द आये हैं। यह नहीं जान पड़ता कि इन शब्दों की व्युत्पत्ति अथवा अर्थ क्या है। इन मंत्रों के अनुवाद अनेक लोगों ने किये हैं, और उन पर भाष्य भी हैं; तथापि इन शब्दों का अर्थ बिलकुल नहीं लगता। जब से प्राचीन खाल्डियन लोगों का पता लगा तब से इन शब्दों पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, तैमात नामक एक भयंकर बड़ा जलचर सर्प था, और अपोदक जमीन का सर्प था। अब, यह स्पष्ट ही जान पड़ता है कि ये नाम अनार्य हैं, और ऐसे अनार्य नाम अथर्ववेद में आने के कारण यदि आर्य लोग उस वेद की योग्यता कम समझने लगें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यूरोपियन पंडित यह प्रतिपादन करते हैं कि बाइबल में जेहोवः नाम परमेश्वर का है; और इस शब्द का ठीक ठीक उच्चारण यह्व है। इस शब्द की व्युत्पत्ति वेदग्रन्थों से अच्छी तरह मालूम हो जाती है। ऋग्वेद में यह यह्वति के समान रूप अनेक बार आते हैं; और यह विशेषण है, जिसका अर्थ मोटा है। यह कहा जा सकता है कि यह शब्द, जो कि महत्ववाचक है, खाल्डियन लोगों ने आर्य लोगों से लिया है। इसी भाँति अप्सु शब्द अब्ज़ु अथवा ज़ू के रूप में खाल्डियन में आया है। यही शब्द ऋग्वेद में आता है। दोनों में इसका अर्थ जलमय पाताल है। इससे भी यही कहना चाहिए कि यह शब्द आर्य लोगों से खाल्डियन लोगों ने लिया। एक और शब्द ऊरू भी ऋग्वेद में बहुत जगह आता है। 'ऊरू'-क्रम और 'ऊरू'-लोक, इन शब्दों का खाल्डियन भाषा में 'पाताल' अर्थ है। इसलिए जान पड़ता है, ऋग्वेद का उरु-लोक शब्द पाताललोक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शायद यह शब्द खाल्डियन लोगों से आर्यन लोगों ने लिया होगा। इसके सिवाय ऋग्वेद में ऋतुशब्द बारम्बार आता है। यह काल विभागवाचक शब्द है। खाल्डियन भाषा में मास या महीने के अर्थ में 'उतु' शब्द बारम्बार आता है। वररुचिकृत प्राचीन प्राकृतप्रकाश ग्रन्थ में यह कहा है कि ऋतु शब्द के ऋकार का उकार होता है। इस प्रसिद्ध नियम के अनुसार, यह स्पष्ट जान पड़ता है कि ऋग्वेद का सुप्रसिद्ध शब्द ऋतु खाल्डियन लोगों ने उतु के रूप से अपनी भाषा में लिया। इसके सिवाय, घिरे हुए जल को मुक्त करने के लिए, ऋग्वेद में इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन आता है। उसी भाँति खाल्डियन प्राचीन ग्रन्थों में तैमात और मर्दुक के युद्ध का वर्णन आता है। इन सब बातों को ध्यान में रखने से यह सिद्ध होता है कि, खाल्डियन लोगों में और आर्य लोगों में हेलमेल बहुत था। खाल्डियन लोग ईसवी सन् के लगभग चार हज़ार वर्ष पहले हो गये हैं। उनका और आर्य लोगों का बहुत हेलमेल था; अवश्य ही ये दोनों समकालीन थे। इससे यह बात स्वाभाविक ही सिद्ध होती है कि आर्यों का सुप्रसिद्ध ऋग्वेद भी उसी समय के लगभग रचा गया होगा।

प्रार्थना।

(राग कालिंगड़ा)

अब क्यों मौन हुए गिरिधारी!

[illegible]
[illegible]
अब क्यों मौन हुए गिरिधारी ॥ १ ॥
[illegible]
[illegible]
अब क्यों मौन हुए गिरिधारी ॥ २ ॥

क्या अब सुत की सुरति न आती, [illegible]
[illegible] दीन [illegible] ॥
अब क्यों मौन हुए गिरिधारी ॥ ३ ॥
[illegible]
[illegible] हे प्रभु भव भय-हारी ॥
अब क्यों मौन हुए गिरिधारी ॥ ४ ॥
[illegible]

बर्कले के दार्शनिक सिद्धान्त।

(लेखक—श्रीयुत पं० श्रीधरानन्द शर्मा बी० ए०)

अनेक प्रकार के प्राणियों से पूर्ण इस अखंड भूमण्डल में इतर प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य जाति की श्रेष्ठता की प्रतिपादिका उसकी 'विचारशक्ति' है। प्रायः मनुष्य धनोपार्जन अथवा व्यसनों में ऐसे लिप्त रहते हैं कि उन्हें द्रव्यप्राप्ति और व्यसनों के साधनों को छोड़ कर अन्य किसी विषय पर विचार करने का समय ही नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि वे अपने नरजीवन की श्रेष्ठता को काम में ही नहीं लाना चाहते। पर सभी मनुष्य ऐसे नहीं हैं; 'भिन्न प्रकृतयो हि लोकाः'। कुछ पुरुषों में यह विचारशक्ति का अंकुर महावृक्ष का आकार धारण कर लेता है। इस दूसरी कोटि के नररत्नों में व्यास, वसिष्ठ, गौतम, कणाद, पतञ्जलि, भरद्वाज, सुकरात, प्रेटो, एरिस्टाटल, बर्कले, हेगल, काँट इत्यादि हैं। न्याय, वेदान्त, सांख्य इत्यादि छः शास्त्रों के नाम अधिकांश हिन्दुओं ने सुने होंगे। इन्हीं को 'दर्शन' भी कहते हैं। दर्शन नाम ज्ञान का है। वास्तव में ऋषिमुनियों ने सुदीर्घ काल तक अपनी गम्भीर गवेषणा के द्वारा जीवेश्वर-सृष्टि-विषयक जो ज्ञान प्राप्त किया उसी का संग्रह इन दर्शन-ग्रन्थों में है। अँगरेज़ी में इस प्रकार के ज्ञान का नाम 'फिलासफ़ी' है। वर्तमान काल में पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी ज्ञान-परिधि बढ़ाने के लिए भारतीय दर्शनों की, अध्ययन, अनुवाद, तथा आलोचना द्वारा, विशेष चर्चा की है। ऐसी दशा में क्या यह उचित न होगा कि हम भी पाश्चात्य फिलासफरों से कुछ परिचय प्राप्त करें? इन पाश्चात्य तत्ववेत्ताओं में से, आज हम ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'बर्कले' के जीवन तथा सिद्धान्तों का कुछ दिग्दर्शन पाठकों को कराना चाहते हैं, क्योंकि उनके विचार वर्तमान पाश्चात्य शैली के विचारों के केन्द्रस्वरूप माने जाते हैं।

जीवनी।

यद्यपि इस महापुरुष की बाल्यावस्था का इतिवृत्त अन्धकार में है, तथापि इतना तो निश्चय ही है कि इनका जन्म आयर्लेंड के किलकेनी प्रान्त में, मार्च १६८५ ई० में, हुआ था। पन्द्रह वर्ष की आयु में इन्हों ने डबलिन नगर के ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश किया। वहाँ पर इनके १५ वर्ष व्यतीत हुए। उन दिनों इस कालेज में बेकन, न्यूटन, लाक, आदि फिलासफरों के विचारों की अच्छी चर्चा थी। हमारे निबन्ध-नायक बर्कले ने उपरोक्त तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों से, थोड़ी अवस्था में ही, परिचय प्राप्त कर लिया। इसके बाद, तीस वर्ष की आयु के पहले ही उन्होंने तीन छोटे छोटे दार्शनिक ग्रन्थ प्रकाशित किये। इन ग्रन्थों में उन्होंने प्रकृति (Matter) की परतन्त्र सत्ता का प्रतिपादन, तथा प्रकृतिवाद (Materialism) का खण्डन किया।

१७१३ में बर्कले ने लण्डन में पदार्पण किया। इसके बाद बीस वर्ष फ्रान्स, इटली, और अमेरिका में बिताये। उन दिनों इनके व्यक्तिगत सौजन्य तथा सिद्धान्तों की नवीनता और प्रौढ़ता पर तत्कालीन समस्त विद्वन्मण्डली मुग्ध हो रही थी। इटली-यात्रा समाप्त कर के आयर्लेंड लौट आने पर १७२४ में इनको डैरी स्थान के बड़े पादड़ी का पद मिला। पर इन को तो परोपकार की धुन लगी थी, इस लिए वे अधिक दिन तक उस पद का उपभोग न कर सके। शेष जीवन को, अमेरिका में क्रिश्चियन सभ्यता के प्रचार में, व्यतीत करने के उद्देश्य से वे चल पड़े। इनका विचार बरमूडाज़ में मिशनरी कालेज खोलने का था। परन्तु मार्ग में रोड नामक द्वीप में, कुछ अनिवार्य कारणों से, इन्हें तीन वर्ष रहना पड़ा, अतएव जन-साधारण ने आर्थिक सहायता से हाथ खींच लिया। फल यह हुआ कि, कालेज खोलने का विचार छोड़ना पड़ा और ये फिर आयर्लेंड को लौट आये। इसके बाद जीवन के अन्तिम बीस वर्ष दक्षिणी आयर्लेंड में, क्लोन के बड़े पादड़ी के पद पर, शान्तिपूर्वक एकान्तवास में, बिताये।

परन्तु यह न समझना चाहिए कि, लौकिक कार्यक्षेत्र में उतरने पर उन्होंने फिलासफ़ी को बिसार ही दिया हो। नहीं, लौकिक कार्यों में निरन्तर लगे रहने पर भी, वे सदा दार्शनिक विचारों का आलोचन-प्रत्यालोचन करते रहे। इटली-भ्रमण से लौटने पर उनकी 'गति-कारण'-विषयक पुस्तक प्रकाशित हुई। रोड द्वीप में रहते समय उन्हों ने 'सूक्ष्मतत्वदर्शी' नामक पुस्तक निर्माण की। यह पुस्तक अमेरिका से लौट आने पर १७३२ में मुद्रित हुई। तदनन्तर दो ग्रन्थ और बनाये।

बर्कले ने अपने अन्तिम दिवस परोपकार, ध्यान तथा शान्ति में बिताये। इन्हें क्लोन प्रदेश से विशेष प्रीति थी; क्योंकि इसके एकान्त स्थल में, गम्भीर-विचार-शील पुरुषों के लिए, कुछ कुछ अनिर्वचनीय आकर्षण था। परन्तु जब स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण, जलवायु के परिवर्तन की आवश्यकता हुई तब वे आक्सफर्ड चले आये। यह स्थान भी उनको बहुत पसन्द था। परन्तु वे अधिक दिन इस स्थान में नहीं रह सके; और कुछ ही महीनों के बाद, जनवरी सन् १७५३ में—"प्रकृति सर्वव्यापक चैतन्य के आश्रित है—" इस सिद्धान्त का युक्तिपूर्वक उद्घाटन करते हुए, अपने सुन्दर जीवन-पट का सम्वरण कर गये!

सिद्धान्त।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, बर्कले को जगत् के अस्तित्व में, अर्थात् इसकी सत्यता में, अथवा प्राकृतिक सत्ता में, जो इसकी सत्यता पर निर्भर है, संदेह नहीं था। किन्तु वे यही जानना चाहते थे कि, जगत् की सत्यता का अर्थ क्या है।

बर्कले को लाक का यह सिद्धान्त, कि मानवी ज्ञान अनुभवगत विचार (Idia) से उत्पन्न है—अर्थात् वस्तुतः अनुभव ही समस्त ज्ञान का जनक है—अभीष्ट था। ज्ञानोत्पत्ति के इस प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार कर के वे प्रकृति (Matter), मन (पाश्चात्य दर्शनों में मन (Mind) से अभिप्राय मनोविशिष्ट आत्मा या जीव से है), तथा ईश्वर, और इनके परस्पर-सम्बन्ध, की परीक्षा करने में प्रवृत्त हुए।

प्रकृति—बर्कले का कथन है कि, जब हम पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से अनुभूत जगत् पर विचार करते हैं तब हमको प्राकृतिक नियमानुकूल उपस्थित पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान, अर्थात् दर्शन, स्पर्शन, रसन, श्रवण, तथा घ्राण, के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रतीत होता। और, उपरोक्त रूपरसादिक मानसिक व्यापार हैं; क्योंकि मनोनियोगपूर्वक ही इन्द्रियां अपने अपने विषयों का ग्रहण करती हैं। इसके सिवाय मानसिक कार्य, मन को छोड़ कर, अन्यत्र नहीं रह सकते, अतएव ये अपनी सत्यता के लिए अनुभवकर्ता मन पर आश्रित हैं। अनुभूत प्रकृति में हम किसी प्रकार की स्वतन्त्र सत्ता या जननशक्ति नहीं पाते हैं। इसलिये प्राकृतिक वस्तु, जो मन के द्वारा अनुभव का विषय नहीं है, व्यर्थ और असत्य है।

मन—जब हम मन के बारे में विचार करते हैं, तब हम अपने आपको दर्शन, स्पर्शन, इत्यादि का अनुभवकर्ता पाते हैं, तथा समस्त भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भी, 'मैं' इस शब्द का विषय एक ही रहता है; और इस दृश्यमान जगत् में यत्किञ्चित् परिवर्तन करने की शक्ति भी हम उसमें पाते हैं। इस आत्मानुभवी, कर्तृशक्तिसंपन्न, तथा समस्त परिवर्तनों में एकाकारेण वर्तमान, वस्तु को बर्कले ने मन (Mind) का नाम दिया है।

ईश्वर—हम देखते हैं कि, 'हम' इन दृश्यमान वस्तुओं को बनाने में असमर्थ हैं, तथा इनमें होनेवाले अन्य कार्यों की नियमानुकूल प्रवृत्ति में परिवर्तन करने में असमर्थ हैं, अतः ये अवश्य ही दूसरी शक्ति से उत्पन्न हुई होंगी। प्राकृतिक वस्तुएं स्वयं शक्तिरहित हैं, इस लिए उनका उत्पादक कोई शक्तिशाली होना चाहिए। इसके सिवाय यह बात हमको अनुभव-द्वारा मालूम भी होती है कि शक्तिशाली एक आत्मा (Spirit) ही हो सकता है। इस लिये यह कारण, यह शक्ति, जिससे इन्द्रियों के विषय उत्पन्न होते हैं, आत्मा है; जिसको हम ईश्वर (God) के नाम से पुकारते हैं।

उपसंहार।

ऊपर हमने बर्कले के सिद्धान्तों का अत्यन्त संक्षेप से वर्णन किया है, इस लिये उनकी युक्तियों की ओजस्विता दिखलाना असंभव है। पर बर्कले ने अपने विचारों को अति विशद, ओजस्वी, अथच कौतूहलवर्धक, शब्दों में अनेक प्रकार से, नाना-युक्ति-पूर्वक, समझाने की चेष्टा की है। प्रथम पढ़नेवाले को बर्कले के सिद्धान्त बहुत विचित्र प्रतीत होते हैं। यथा बर्कले का कथन है कि, रूप, रस आदि गुण वस्तुओं में नहीं, किन्तु मन में हैं। उदाहरणार्थ, रूप को ले लीजिये-बर्कले का कथन है कि, एक ही वस्तु किसी अवस्था में गोल प्रतीत होती है, दूसरी दशा में लम्बी मालूम होती है; उसी वस्तु को एक मनुष्य नीला देखता है, कमलवायवाला पीला देखता है; इसी प्रकार एक ही रस किसी को कड़वा मालूम होता है, किसी को मीठा जान पड़ता है; अतः यह सिद्धान्त निकलता है कि, रूप, रस, आदि का अस्तित्व वस्तु में नहीं, किन्तु मन में है। अवश्य ही ये सिद्धान्त विचित्र हैं; पर यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय, तो इन सिद्धान्तों की सार्थकता भली भांति प्रतीत होगी। उन ... में थी-यह अपरिपक्व होने के कारण वर्तमान काल की ... सिद्धान्तों के मण्डन में नहीं, प्रत्युत खण्डन में लगी हुई थी (... छिमेति घटोऽपि मामयं प्रहरिष्यति-अर्थात् इससे घड़ा भी डरता है कि कहीं यह मेरे ऊपर भी हाथ साफ़ न करे)। प्रकृतिवाद (Materialism) की जड़ प्रबल होती जा रही थी, अतः बर्कले को, प्रकृतिवाद रूप प्रबल रोग की शान्ति के लिए, प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता की निषेध-रूप उग्र औषधि का प्रयोग करना पड़ा।

पाठक! आप देखते हैं, कि बर्कले का सिद्धान्त, जगत् के स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार न करने में, वेदान्त-सिद्धान्त से मिलता है, तथापि इन दोनों में इतना भेद है, कि बर्कले जगत् की सत्यता को परतन्त्र रूप से स्वीकार करते हैं और वेदान्त जगत् के अस्तित्व को नहीं मानता। वेदान्त का मत है कि, जगत् ब्रह्म में अध्यारोपित, अर्थात् भ्रान्तिमात्र, है। वास्तव में ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है—'नेह नानास्ति किञ्चन।'

रियासत सोंडूर में बाघ का तीसरा शिकार।

रियासत सोंडूर जिला बल्लारी की रानी श्री० सौ० ताराराजा घोरपड़े को चार पांच साल से शिकार का बड़ा शौक हुआ है। आपने शिकार के काम में अच्छी प्रवीणता भी प्राप्त की है।

इसी प्रकार रानीसाहब ने गत ५ जुलाई सन् १९१७ ई० को गुरुवार के दिन संध्यासमय साढ़े सात बजे, सोंडूर से तीन मील पर, नंदूरम्मा की घाटी के पास, तायम्मा के जंगल में, पूर्व की ओर, लगभग सा...

श्रीमती सौ० रानी ताराराजा सा० घोरपडे, रियासत सोंडूर।

... गत ६ अगस्त सन् १९१५ ई० को आपने ८ फुट ६ इंच लंबे बाघ का प्रथम शिकार तथा २८ अक्टूबर को ६ फुट ६ इंच लंबे बाघ का दूसरा ... अर्थात् एक वर्ष में, ढाई तीन मास के अंतर में, आपने दो ... शिकार किया।

... कोट के अंतर से, बड़े धैर्य के साथ, तीसरी बार एक बाघ का शिकार किया। यह बाघ ७ फुट २ इंच लम्बा और तीन फुट ऊंचा था। बहुत दिनों से तायम्मा के जंगल में इसने बड़े बड़े जानवरों ... कर के बहुत हानि की थी। शिकार होने के पहले, ...

की थी, श्री० सौ० रानीसाहब ने शिकार को जाने इत्यादि का कुछ भी विचार न किया था।

एकाएक संध्यासमय ५ बजे मि० रामराव रावसाहब थील, हेड-चीफ फारेस्ट आफिसर ने, राजमहल में आकर तायम्मा के जंगल में बाघ के द्वारा एक बैल के मारे जाने की खबर दी। यह सुनते ही रानी साहब ने घोड़े की गाड़ी तैयार करवाई और स्थान बतलाने के लिए रामराव जी को तथा और एक दो मनुष्यों को साथ लेकर, उपरोक्त बाघ के शिकार के लिए, प्रस्थान किया। वहाँ जा कर मंचान पर बैठने के एक डेढ़ घंटे बाद, उसी जंगल से वही बाघ, मारे हुए बैल को खाने के उद्देश से वहाँ फिर आया। मनुष्यों की आहट पा कर बाघ मंचान की ओर उछल कर आक्रमण करने ही वाला था, कि इतने में श्री० सौ० रानी साहब ने गोली का वार किया। यह गोली बाघ के मस्तक में लगी, और वह तत्काल नीचे गिर पडा। उस समय खूब ही अँधेरा हो गया था। लेकिन यह शूरवीर महाराष्ट्रीय राजकन्या बिलकुल न डगमगाई; और न किसी की सहायता इत्यादि की परवा की, इसने यह भी नहीं सोचा कि मैं अकेली हूँ; दूसरे शिकारी लोग साथ में नहीं हैं; तथा श्री० महाराजा साहब भी साथ नहीं हैं। इस प्रकार, बिलकुल अपने ही सामर्थ्य के बल पर, रानी साहब ने, बड़े शौर्य के साथ, तीसरे बाघ का शिकार किया।

श्री० महाराज साहब अपने आफिस में किसी आवश्यक कार्य में लगे थे, इस कारण वे रानी सा० के साथ न जा सके थे। श्री० रानी सा० ने तायम्मा के जंगल से रात के आठ बजे श्री० महाराज को बाघ के शिकार करने की खबर दी। यह खबर सुनते ही महाराज और कुछ लोगों को साथ लेकर, लगभग साढ़े आठ बजे, तायम्मा के जंगल में पहुँचे। फिर वहाँ से दोनों की सवारी बाघ-सहित सोंडूर के शिवपुर-बँगले पर पहुँची। शिवपुर-बँगले से गाजे-बाजे के साथ, बड़े ठाट से महाराज और रानीसाहब, बाघ को लिये हुए, दस बजे रात को, राजमहल में दाखिल हुए। उस समय दीवान साहब सुब्बाराव मुदालियार, इष्टमित्र और पुरखे लोग, आफिसर, सरदार, अमीर-उमरा, साहूकार, इत्यादि लोगों ने दोनों श्रीमानों पर न्योछावर और नज़राने कर के बड़े आनन्द से, उनका स्वागत किया। रानी साहब स्वर्गीय राजा श्री शहाजी भोसला, महाराज-अक्कलकोट की तृतीय कन्या हैं। आपका जन्म २७ जून सन् १८९६ को हुआ। इस समय आपकी अवस्था केवल २१ वर्ष की है। शूरवीर रानी साहब ने जो शौर्य दिखलाया है वह अभिनंदनीय है।

हमें स्वराज्य दीजिये।

(सम्राट से प्रार्थना)

प्रभो ! असंख्य कल्प लों, किया सदैव राज्य है,
समस्त भूमि-भाग पै, बिठा दिया स्वराज्य है ॥
स्व-शत्रु-संग भी कभी, न द्वेष-युक्त है रहे,
डिगे न न्याय-धर्म्म से, असीम कष्ट भी सहे ॥ १ ॥

उसी अजेय-जाति में, विलोप धर्म्म ज्यों हुआ,
प्रजा अयोग्य हो गई, सुयोग हाथ से गया ॥
विनाश ऐक्य का हुआ, स्वराष्ट्र ध्वंस हो गया,
नृपेंद्र जो रहा, वही, विदेश-भ्रंश सो गया ॥ २ ॥

सु-श्वेत-जाति आप की, सुयोग देख जो लिया,
मिलाय आर्य-वंश को, दबाय तुर्क भी दिया ॥
जमाय रंग ज्यों लिया, कहा पुकार यों यही—
"सुयोग्य हो गये जभी, स्वराज्य पा गये तभी" ॥ ३ ॥

अनेक वर्ष हो गये, प्रभो, सुयोग्य हो चुके,
कुरंग-ढंग देख के, कु-भेद-भाव खो चुके ॥
उदार जाति आप की, सिखा चुकी उदारता,
स्वतंत्रता न दी अजों, यही बड़ी विचित्रता ॥ ४ ॥

हठात आर्य जाति ने, बड़ा सुयोग पा लिया,
विपत्ति देख आप पै, स्व-जान-माल दे दिया ॥
समस्त-हिन्द, देख लो ! स्व-भक्त है बना रहा,
पिशाच-शत्रु-सैन्य को, भगा रहा, हटा रहा ॥ ५ ॥

समस्त सभ्य सृष्टि को, दिखाय दी स्व योग्यता,
न राजभक्ति से हिले, सदैव दी सहायता ॥
विनीत-प्रार्थना यही, नृपेन्द्र ! मान लीजिये,
स्वराज्य योग्य हो चुके, "हमें स्वराज्य दीजिये" ॥ ६ ॥

अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (आराम)
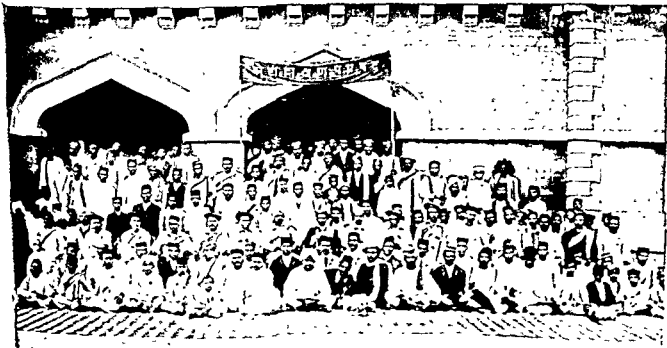
कोष्टी-परिषद नागपुर—१९१७।

ये स्वदेशी वस्त्र तैयार करनेवाले "कोष्टी" लोग हैं। [illegible] इन्हीं की तैयार की हुई [illegible] स्वदेशी [illegible] हैं। [illegible] "स्वदेशी" [illegible] हैं। [illegible] "[illegible]" कहे [illegible] हैं। कोष्टी लोगों की उन्नति पर देश की उन्नति बहुत कुछ अवलम्बित है।

.।) की रकम १,२२५ लोगों से मिली। इनमें लगभग १००० वार्षी ग्रेजुएट लोग हैं। इन पदवीधरों में महाराष्ट्र के अतिरिक्त सिंध, पंजाब, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, मध्यभारत, मध्यप्रान्त, बरार, मैसूर, मदरास, गुजरात और कर्नाटक, इत्यादि भारत के सब मुख्य प्रान्तों के लोग हैं। पंजाब की प्रसिद्ध श्रीमती सी० सरलादेवी चौधरानी बी० ए० भी इस महिलाविश्वविद्यालय की सदस्यसभा में एक सभासद (fellow) हैं।

यह बात अब देश के नेताओं के ध्यान में आने लगी है कि प्रारम्भिक शिक्षा से ले कर और उच्च शिक्षा तक, शिक्षा देनेवाली देशी संस्थाओं की अब भारतवर्ष को अत्यन्त आवश्यकता है। सच पूछिये तो सारे भारतवर्ष में, भाषाओं और प्रान्तों का भेद ध्यान में रख कर, महिला-विश्वविद्यालय खुलने चाहिएं। जो हो, अभी तो महाराष्ट्र में यह महिला-विश्वविद्यालय खुल गया है; और किसी भी प्रान्त में क्यों न हो, यदि महिलाओं का कालेज लोग खोलें तो वह इसके अन्तर्गत लिया जा सकता है; और जो कन्याविद्यालय (Girl's High School) इस के अन्तर्गत आना चाहें उनको द्रव्य से भी यह विश्वविद्यालय कुछ सहायता कर सकेगा। मतलब यह है कि प्रो० कर्वे ने यह बड़ा व्यापक कार्य प्रारम्भ किया है। इस कार्य में उनको धनवानों से धन, विद्वानों से ज्ञान, पालकों से विद्यार्थिनी और स्त्रीशिक्षासम्बन्धी संस्थाओं से सहकारिता और मैत्री के द्वारा सहायता मिलनी चाहिए। यदि सारे देश के लोग उनके इस कार्य में उत्साह दिखलायेंगे तो इसका परिणाम बड़ा कल्याणकारक होगा।

महायुद्ध के तीसरे वर्ष का जुलाई मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०।)

जब से रूस में राज्यक्रान्ति हुई तब से लेकर और जून के अन्त तक के चार मास विशेष चिन्ता में नहीं गये; परन्तु जुलाई का महीना बड़ी चिन्ता में व्यतीत हुआ, और अगस्त के प्रारम्भ में भी यह सन्देह बना ही रहा कि उक्त चिन्ता का ग्रहण अगस्त और सितम्बर में भी छूटता है या नहीं। पहले पहल ऐसा जान पड़ा कि रूस की राज्यक्रान्ति ने रूस की लोकस्थिति बदल दी; परन्तु रणांगण की स्थिति नहीं बदली। इसके विरुद्ध कुछ लोगों को तो ऐसी नवीन आशा होने लगी कि रूस की लोकमुखी राजसत्ता के कारण फौज का ज़ोर डेढ़दोगुना बढ़े बिना नहीं रहेगा। परन्तु यह नवीन आशा शीघ्र ही निराशा के रूप में परिणत हो गई। क्योंकि रूस की नवीन सरकार डयूमा सभा की राजनीतिज्ञमंडली के हाथ में न रहते हुए सोशियालिस्ट पक्ष की कर्मचारी-कमेटी के हाथ में चली गई। इस कमेटी ने ही राज्यक्रान्ति का कार्य किया। सब स्वतंत्र हैं; लड़ाई नहीं चाहिए; कुछ नहीं चाहिए; राजसत्ता की तरह सेना भी लोकमुखी होनी चाहिए; और जमींदारों की जमीन का हिस्सा सब को एक समान कर देना चाहिए—ऐसे नाना प्रकार के सोशियालिस्ट मतों ने चारों ओर से गड़बड़ मचा दिया। फौज के दस पन्द्रह लाख किसानों ने फौज को छोड़ कर, जमींदारों को भगा कर, कई जगह जमींदारों के खून कर के, जमीनें छीन लीं! रेलवे के छोटे छोटे भाग स्वसत्ताक हो गये। कई कारखाने और उद्योगधंधे मज़दूरों के कब्जे में चले गये; और पहले के मालिक मालकी से अलग हुए। चार महीने में महीना पन्द्रह दिन टिकनेवाले कितने ही छोटे छोटे प्रजासत्ताक जन्मे और विलीन हुए। फिनलैंड खाडी की जलसेना की छावनियों ने अपनी स्वतंत्रता आघोषित की और स्वयं फिनलैंड की पार्लिमेंट ने आप ही आप अपना अधिवेशन कर के फिनलैंड की अन्तस्थ स्वतंत्रता आघोषित कर के पेट्रोग्राड की नवीन सरकार को धता बताने का उपक्रम किया। दक्षिण के उक्रैन प्रान्त ने, अर्थात् कीव के प्रान्त ने, तीन चार हज़ार प्रतिनिधियों की अपनी सभा कर के यह प्रकट किया कि उक्रैन प्रान्त को अन्तस्थ स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, और सेना के विषय में भी यह आग्रह किया कि, अपनी अलग सेना रख कर सन्धि और विग्रह के विषय में उक्रैन प्रान्त का स्वतंत्र मत लेना चाहिए। नवीन रूसी सरकार उसी समय समझ गई कि इस सारी अन्धाधुन्धी और फूटफाट का फौजी दृष्टि से अत्यन्त बुरा परिणाम हुए बिना नहीं रहेगा। और जून के अन्त में उसने यह निश्चय किया कि कहीं न कहीं फौजी चढ़ाई का प्रारम्भ कर के महायुद्ध की ओर सारे राष्ट्र का ध्यान खींचे बिना इस अशान्ति का प्रतिबंध नहीं होगा। जनरल ब्रुसिलाफ बुलाये गये; और उनको सेना का मुख्य अधिपति नियत किया गया। बाद गेलिशिया और बुकोविना के मैदानों की रूसी सेना को चढ़ाई के लिए तैयार करके उसको नवीन तोपें, गोलाबारूद, विमान और युद्ध की अँगरेजी मोटरगाड़ियां उर्फ टैंक्स, इत्यादि सामान पूरा पूरा दिया गया। जुलाई के आरम्भ में यह नवीन चढ़ाई शुरू हुई। टार्नपूल के दक्षिण और स्ट्रीर नदी पार करके रूस ने एकदम ब्रेज़िनी पर हमला किया और आठ दस हज़ार आस्ट्रियन सेना कैद की। ब्रेज़िनी की ओर का यह हमला मुख्य हमला न था। इस नवीन रूसी चढ़ाई ने यह सैनिक नीति स्वीकार की कि बुकोविना से गेलेशिया में ऊपर प्रवेश करना चाहिए; और हेलिक्स स्टेनिला-स्ट्रीक की सीध में लेम्बर्ग की ओर जा कर मार्ग में ब्रेज़िनी की सेना से मिल कर फिर उत्तर ओर की सेना लेम्बर्ग की ओर और बुकोविना की सेना पूर्व कार्पेथियन पार कर के हंगारी में प्रवेश करे। जुलाई के पहले दो सप्ताहों में इस सैनिक नीति से अच्छी सफलता हुई। पहले सप्ताह में ब्रेज़िनी के पास गई हुई सेना की गति कुंठित अवश्य हुई; परन्तु बुकोविना की सेना ने हेलिक्स-स्टेनिला को ले कर अच्छा विजय प्राप्त किया; और बीस पचीस हजार आस्ट्रियन सेना कैद की। यही नहीं, किन्तु कारपेथियन पर्वत के जंगल के मैदान में कितने ही मील रूसी सेना आगे बढ़ी। जुलाई मास के दूसरे सप्ताह में यह स्पष्ट दिखाई दिया कि लेम्बर्ग लेने की अपेक्षा हंगारी में ही प्रवेश करना इस लड़ाई का मुख्य हेतु है। लेम्बर्ग की सीध की हलचल इसी लिए थी कि जिससे, जो चढ़ाई बुकोविना से हंगेरिया पर हो उसकी उत्तरी बगल सुरक्षित रहे। यह चढ़ाई इस आशा से की गई थी कि हंगेरी में प्रवेश करने पर रोमानियन सेना भी उठ सकेगी और आस्ट्रिया "न कर और न मुल्क" के रूसी सिद्धान्तानुसार एकदम सन्धि करने को तैयार होगा तथा जर्मनी को भी सन्धि के लिए तैयार करेगा। आठ दस दिन में जब आस्ट्रिया की तीस-पैंतीस हजार सेना कैद हो गई तब वहां बड़ी घबड़ाहट फैली; और रोमानिया ने फिर कमर कसना शुरू किया। चढ़ाई के मूल में जो राजकीय हेतु था उसके सफल होने का रंग देख पड़ने लगा। आस्ट्रिया में सन्धि की चिल्लाहट ज़ोर ज़ोर से सुनाई देने लगी। और उस चिल्लाहट की प्रतिध्वनि जर्मनी में भी उठने लगी। जर्मन पार्लिमेंट में प्रकट किया गया कि अब जर्मन सरकार को अपने सन्धिविषयक विचार स्पष्टता से लोगों के सामने रखना चाहिए। और सोशियालिस्ट पक्ष ने इस अर्थ का प्रस्ताव खुल्लमखुल्ला जर्मन पार्लिमेंट में पेश किया कि "न कर और न मुल्क" के सिद्धान्त पर जर्मनी को भी सन्धि कर लेनी चाहिए"। सन्धिवाले और लड़नेवाले ये दो पक्ष जर्मनी में दिखाई देने लगे; और बेथमन हालवेग, जो कि महायुद्ध के पहले से जर्मनी के मुख्य प्रधान हैं, उनका भी झुकाव "न कर और न मुल्क" के सिद्धान्त की ओर होने लगा। लड़नेवाले पक्ष ने प्रधान मंत्री के विरुद्ध कोलाहल मचाया। कैसर बादशाह का विश्वास डा० बेथमन हालवेग पर विशेष है; इस कारण क्षण भर सब ने यही समझा कि सोशियालिस्ट पक्ष जर्मनी में आगे बढ़ जायगा; पर इतने में लड़नेवाले पक्ष के आमंत्रण से जर्मनी के युवराज की सवारी बर्लिन में आ दाखिल हुई। सेनापति हिंडनबर्ग भी दौड़ आये। उनके साथ उनके सहायक सेनापति ल्युडेनार्फ भी उपस्थित हुए। इन सब योद्धाओं ने कैसर को यह आश्वासन दिया कि रूस की चढ़ाई से डरने की कोई आवश्यकता नहीं, हम थोड़े ही दिनों में विजय प्राप्त करा देंगे। प्रधान मंत्री बेथमन हालवेग को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। डा० मिकेलीस, जो कि राजनीतिज्ञता में अभी तक प्रसिद्ध नहीं थे, उनके अंग पर लड़नेवाले पक्ष ने प्रधान मंत्रित्व के वस्त्र डाल दिये। और पार्लिमेंट सभा के भिन्न भिन्न नेताओं को बुला कर निजी तौर पर उन्हें सैनिक बातें समझा दी गईं; और लड़नेवाले पक्ष ने

की रणभूमि में एकदम एक चमत्कार हुआ। गेलेशिया और बुकोविना में रूस का प्रतिरोध करने के लिए सेनापति हिंडनबर्ग ने जुलाई के प्रारम्भ से ही तैयारी कर रखी थी। पर यह बात जर्मन सेनापतियों को भी मालूम न होगी कि इतने थोड़े समय में उस तैयारी का इतना बड़ा फल होगा। गेलेशिया के ईशान कोन में टार्नेपूल और ब्राडी के बीच में रूस की ग्यारहवीं पलटन लड़ती थी। पहले पखवाड़े की जीत के समय अनुमान से अधिक रूसी योद्धा रणभूमि में पतन हुए; परन्तु ऐसी हानि सह कर भी रूसी सेना बराबर आगे ही बढ़ती रही। टार्नेपूल और ब्राडी के बीच में ही इस सेना का पहले पहल जर्मन सेना ने पराजय किया। जब तक जीत होती थी तब तक तो सब ठीक था, परन्तु पहला पराजय होते ही सेना की सारी व्यवस्था खराब होगई। ग्यारहवीं पलटन में से कई टुकड़ियां रणांगण छोड़ कर एकदम पीछे हट गईं। उन्होंने अपने कर्मचारियों के खून किये, सारा भारी तोपखाना शत्रु के हाथ लगा; और हलका सामान इत्यादि ले कर भी भागते हुए सब को बड़ी मुशकिल पड़ी। ग्यारहवीं पलटन के साथ ही साथ बारहवीं पलटन भी पीछे हटी; और नवीं दसवीं पलटन में भी अव्यवस्था का रोग फैल गया; और सम्पूर्ण गेलेशिया में रूस को पीछे हटना पड़ा, तथा पहले पराभव के एक दो दिन बाद ही टार्नेपूल जर्मनों के हाथ लगा। गेलेशिया के रूसी दल में पन्द्रह बीस मील के मुख पर बड़ा भारी मार्ग कर के जर्मन सेना भीतर घुसने लगी। उन्हीं दिनों के लगभग पेट्रोग्राड शहर में भी लेनिन इत्यादि कुछ सोशियालिस्टों ने, जो कि यह कहते थे कि, एकदम सन्धि होना चाहिए, थोड़े से सैनिकों की सहायता से नवीन रूसी सरकार के उच्चाटन करने का प्रयत्न किया। दो तीन दिन पेट्रोग्राड शहर में बड़ी मारपीट और दंगा हुआ। परन्तु अन्त में लेनिन प्रभृति लोगों का पराभव हुआ; और नवीन सरकार की सत्ता पेट्रोग्राड शहर में फिर स्थापित हुई। अब अगस्त के प्रारम्भ में रूसी सरकार को इस बात का बड़ा भारी प्रमाण मिला है कि, लेनिन इत्यादि लोग वास्तव में जर्मनी के गुप्तचर थे; और जर्मनी से घूस लेकर पेट्रोग्राड में दंगे किये और फौज में मार्ग कर के जर्मनी को घर में घुसने दिया। जो हो, यह बात अवश्य ही सच है कि, जुलाई के तीसरे सप्ताह में गेलेशिया का रूस का दल फूटा; और उसी समय पेट्रोग्राड में दंगे भी हुए—दोनों घटनाएं साथ हुईं। तितर-बितर फौज और डगमगाती हुई सरकार—दोनों बातें उस अवसर पर एक ही समय देखी गईं; और यह रूस के और भी दुर्भाग्य की बात है कि अगस्त का पहला सप्ताह व्यतीत हो गया, तथापि यह दशा कुछ न कुछ बनी ही रही। पेट्रोग्राड के दंगे तत्काल मिट गये सही, परन्तु नवीन सरकार का डगमगाता हुआ आसन किसी उपाय से भी जुलाई मास में स्थिर नहीं हुआ। पेट्रोग्राड में जब कि दंगे हुए उस समय युद्धविभाग के मंत्री केरेन्स्की रणभूमि की ओर चक्कर लगाने गये थे। उनके लौट आते ही निष्ठुरता के साथ बलवाइयों को कुचल डालने का प्रयत्न किया गया; और यह सन्तोष की बात है कि उसमें सफलता भी हुई। लेनिन इत्यादि बलवाई पकड़ लिये गये; और अगस्त के प्रारम्भ में बलवा मचाने का अभियोग उन पर लगाया गया, और खुले तौर से उन पर मुकद्दमा चलाने का भी प्रबन्ध किया गया। पेट्रोग्राड के इस दंगे से यह स्पष्ट होगया कि मंत्रिमंडल की रचना ठीक नहीं है। उस समय मंत्रिमंडल में सोशियालिस्ट पक्ष के छै और शेष अन्य मतों के लोग थे। अवश्य ही उनकी आपस में बनती नहीं थी। कोई कहते कि ज़मीन के हिस्से बहुत जल्द कर देने चाहिएं; कोई कहते कि डयूमा सभा बन्द होनी चाहिए; और कोई कहते कि फिनलैंड इत्यादि प्रान्तों को आज ही स्वतंत्रता देनी चाहिए। इनके सिवाय सन्धिवालों का पक्ष मंत्रिमंडल में मौजूद ही था। कोई मंत्रिमंडल जब यह हठ करता कि, अमुक एक बात होनी चाहिए; और अन्य लोग यदि उसके लिए सम्मति न देते, तो पेट्रोग्राड के कर्मचारियों की, किसानों की, अथवा लड़नेवालों की—किसी न किसी की संस्था उस मंत्री के मत को ग्रहण करती; और उस संस्था के दलवाले लोग हथियारबन्द हो कर औरों को डरवाने के लिए पेट्रोग्राड के रास्तों पर घूमने लगते। और लोगों को यह डर मालूम होने लगता कि जैसे सरकार तुरन्त ही उखड़ी पड़ती हो! पेट्रोग्राड के इस क्षुब्ध वायुमंडल, और मंत्रिमंडल की बेजोड़ रचना के कारण नवीन सरकार का जीवन बहुत संकट में पड़ गया। यह दशा देख कर मंत्रिमंडल में से उस समय के प्रधान मंत्री और उनके दो तीन अनुयायियों ने त्यागपत्र दिया और मि० केरेन्स्की के ऊपर प्रधान मंत्री, युद्धविभाग के मंत्री और परराष्ट्रीय मंत्री, ये तीनों काम आये। अन्य कामों पर सोशियालिस्ट मत के ही लोग नियुक्त किये गये; और मंत्रिमंडल में सोशियालिस्ट पक्ष का ही मताधिक्य होगया। इस प्रकार मंत्रिमंडल अधिकांश में एक ही प्रकार के लोगों का बन गया सही; तथापि जितनी चाहिए उतनी एकता मंत्रिमंडल में नहीं उत्पन्न हुई। कोई कहते कि नवीन सरकार को पेट्रोग्राड छोड़ कर मास्को शहर में जाना चाहिए; कोई कहते, मास्को में सब राजकीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों की कांग्रेस कर के, उस कांग्रेस के द्वारा अगला कार्यक्रम निश्चित कर लेना चाहिए; और भिन्न भिन्न मतों की यह खरोची मिटा डालनी चाहिए। मास्को में कांग्रेस करने का विचार मंत्रिमंडल को पसन्द आया, तथापि उसने समझा कि जब तक मंत्रिमंडल की रचना ऐसी न हो कि सब राजकीय संस्थाओं का साधारणतया उस पर विश्वास जमे, तब तक कांग्रेस के सामने खड़े होना ठीक नहीं। इस लिए मास्को की कांग्रेस का विचार स्थगित किया गया और जुलाई के अन्त में मि० केरेन्स्की मंत्रिमंडली की फिर दूसरी रचना करने के उद्योग में प्रवृत्त हुए। जिस समय पेट्रोग्राड में दंगे हुए उस समय संधिवालों का दौड़दौड़ा हुआ; और गेलेशिया के कितने ही सैनिक दल भग खड़े हुए। इस पर मि० केरेन्स्की ने इस प्रकार का कठोर शासन प्रारम्भ किया कि इन बलवाई भगोड़े सैनिकों को जहां का तहां ही मार डाला जाय; और फौजी आज्ञा का भंग करनेवालों को देहान्त दण्ड दिया जाय; परन्तु इस प्रकार के शासन का विरोध करनेवाले भी कुछ लोग सोशियालिस्ट पक्ष में निकले। सारे सोशियालिस्ट पक्ष का पूर्ण विश्वास भी मि० केरेन्स्की पर दिखाई नहीं दिया। डयूमासभा और क्यारेट सेना की संस्था का सोशियालिस्ट पक्ष पर अविश्वास था। ऐसी फूटफाट के समय, अगस्त के प्रारम्भ में, बुकोविना और गेलेशिया में, आस्ट्रो-जर्मनों की चढ़ाई ने खूब ज़ोर पकड़ा; और उनकी सेना दस बारह दिन में साठ सत्तर मील आगे बढ़ आई। सेनापति ब्रुसेलाफ की कर्तव्यदक्षता पर रूस का अविश्वास हुआ; और उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दिया। गेलेशिया में लड़नेवाली ग्यारहवीं पलटन के सेनापति का, पीठ में गोली मार कर, खून किया गया। और उत्तर ओर के सेनापति गोर्की के विषय में यह समझा गया कि ये नवीन सरकार के विरुद्ध हैं, और ज़ार से गुप्त रीति से पत्रव्यवहार कर रहे हैं; इस लिए वे कैद कर लिये गये। कोई अच्छा सेनापति नहीं बचा; सैन्य की व्यवस्था खराब हो गई; शत्रु ने बड़ा भारी आक्रमण किया; लोगों में नाना मत और नाना पाखंड पहले ही फैल रहे थे; यह दशा देख कर मि० केरेन्स्की के ध्यान में यह बात आगई कि मंत्रिमंडल एकतंत्री ही होना आवश्यक है, और ऐसा ही करने का उन्हों ने प्रयत्न किया। परन्तु किसी उपाय से भी कुछ बात बनी नहीं। तब उन्हों ने अगस्त मास के प्रारम्भ में मंत्रिमंडल से यह कह कर कि, भविष्य में होनेवाली विचित्र घटनाओं की जवाबदारी हम अपने शिर पर नहीं ले सकते, अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद सम्पूर्ण मंत्रिमंडल, कर्मचारी-कमेटी का मंडल, क्याडेट सैन्य का मंडल, डयूमा सभा की कौन्सिल और किसानों की कांग्रेस के नेता, इत्यादि सब की सभा हुई। रात भर वादविवाद हुआ; और अन्त में निश्चय हुआ कि रूस का राज्यकार्य सम्हालने के लिए मि० केरेन्स्की के अतिरिक्त अन्य कोई भी मनुष्य समर्थ तथा योग्य नहीं है। तुरन्त ही सब ने अपने अपने त्यागपत्र मि० केरेन्स्की के हाथ में रख दिये; और उनसे प्रार्थना कि अब आप ही, जैसी आपकी इच्छा हो उसके अनुसार, एक ही प्रकार के लोगों का और एकतंत्री मंत्रिमंडल बनावें। अगस्त के पहले सप्ताह में, रूस को नवीन लोकतंत्री सरकार जब इस प्रकार एकमुखी बन गई तब मि० केरेन्स्की ने अपने मंत्रिमंडल की एकतंत्री रचना कर ली; और पहले जो यह भय हो रहा था कि रूस में कहीं एकदम बलवा न हो जाय, यह भय अब अंशतः दूर हुआ। मि० केरेन्स्की यद्यपि सोशियालिस्ट पक्ष के हैं, तथापि यह उन्हें पूर्णतया मालूम है कि अन्य दलों से मिल जुल कर किस प्रकार चलना चाहिए। वे यह सिद्धान्त अच्छी तरह जानते हैं कि रणभूमि पर टिकाव धरे बिना रूस की राज्यक्रान्ति टिकाऊ नहीं हो सकती। इसके सिवाय मि० केरेन्स्की में यह दृढ़ निश्चय की शक्ति और बुद्धि की प्रखरता भी मौजूद है कि जिस की आवश्यकता किसी राज्य का अप्रबन्ध दूर करने में होती है। यदि कुछ लोग इन्हें रूस का क्रामवेल बतलाते हैं तो कुछ लोग इन्हें नेपोलियन की पदवी देते हैं। सम्पूर्ण रूस और साथ ही साथ सब मित्रराष्ट्रों का निर्भर अब मि० केरेन्स्की पर ही है। अब यहां यह कहने

की आवश्यकता नहीं कि एक दो महीने की अवधि में मि० केरेन्स्की
की कारगुज़ारी सब के सामने आ जायगी, और रूस के विषय में जो
चिन्ता मालूम हो रही है वह दूर हो जायगी। यहां तक तो रूस की
न्तःस्थिति का विचार हुआ। अब हम जर्मनी की उस चढ़ाई की
र दृष्टि डालते हैं कि जिसके कारण यह अन्तःस्थिति यहां तक
राब होगई।

रूस पर जर्मनी की चढ़ाई।

व से रूस में राज्यक्रांति हुई तब से जर्मनी ने रूस के साथ छेड़-
नहीं की थी, परन्तु जुलाई के आरम्भ में जब कि रूस ने गले-
पर चढ़ाई कर दी तब उस चढ़ाई का प्रतीकार करने के लिए
ोजर्मनों की सेना ने बुकोविना और गलेशिया की ओर अपना
फिराया, और इतने ही में कुछ रूसी पलटनों ने एका-
णभूमि छोड़ दी। इस कारण चढ़ाई करने में आस्ट्रो-जर्मनों को
ी सुभीता हो गया। टार्नपूल के पश्चिम ओर पचीस तीस मील
ीस्टर नदी के दक्षिण में तीस चालीस मील रूसी सेना धाया
थी। परन्तु अब आस्ट्रोजर्मनों ने उलटे आक्रमण कर के टार्न-
पूर्व और पचीस तीस मील रूसियों को पीछे हटा दिया।
लेशिया से पीछे हट कर रूसियों को कोमेनेट-पोडोलिया प्रान्त
ाना पड़ा; और उस प्रान्त में भी सरहद्द पर की नदी कई
कर आस्ट्रोजर्मनों की सेना घुस गई। रूस के कोमेनेट—
प्रान्त और उसके पास के गलेशिया के टुकड़े की दक्षिण
ीस्टर नदी बहती है; और उन्हीं दोनों प्रान्तों में पन्द्रह बीस
तर पर कोई दस बारह नदियां उत्तर की ओर से दक्षिण
कर उक्त नीस्टर नदी से मिलती हैं। पश्चिम की ओर
ओर पीछे लौटनेवाली सेना को इन नदियों का अच्छा
ा है। इन सब नदियों का उद्गम टार्नपूल और पोडो-
उत्तर भाग से होता है। अर्थात् यह नदियों का मुल्क
करना हो तो उनके उद्गम के पास का प्रान्त पहले
ना चाहिए; और फिर नदी के प्रवाह से नीचे उतर कर
नदी का आश्रय लेने के लिए लाचार करना चाहिए।
त आस्ट्रोजर्मनों के हाथ में आते ही टार्नपूल के दक्षिण
गलेशिया आठ दस दिन में ही आस्ट्रोजर्मनों ने ले
के अखीर तक प्रति दिन पांच छै मील के वेग से
सत्तर मील बढ़ गये। अगस्त के आरम्भ में टार्नपूल
य और पचीस तीस मील पर रूस ने जर्मनी को रोक
ावट को दूर कर के टार्नपूल से ओड़ेसा तक जाने-
सीध में जब तक आस्ट्रोजर्मन साठ सत्तर मील
, अर्थात् कीव से कोमेनेटस-पोडोलिया प्रान्त में
का जंक्शन स्टेशन जब तक वे न पकड़ लेवें, तब
न पर आस्ट्रो-जर्मनों का दबाव नहीं पड़ सकता।
करनेवाली रूसी सेना का मुख्य जमाव इस समय
। और उस जमाव को तोड़ने के लिए आस्ट्रो-
पोडोलिया प्रान्त होते हुए ओडेसा की ओर
ही आगे बढ़ना चाहिए। अगस्त के प्रारम्भ में
जोर टार्नपूल के पूर्व ओर नहीं दिखाई देता;
से बेसारेबिया में घुसने की ओर ही उनको
ी है। जुलाई के अन्त और अगस्त के प्रारम्भ
आस्ट्रोजर्मनों ने ले लिया है; और अगस्त की
नोविट्स शहर भी आस्ट्रोजर्मनों के हाथ आ
हुत सी रूसी सेना उन्होंने उत्तर से दक्षिण
ल्डेविया प्रान्त में पीछे हटा दी। ज़र्नोविट्स
सेना को उक्त शहर के दक्षिण ओर प्रुथ नदी
पड़ा। पूर्व की ओर बेसारेबिया प्रान्त में वह
ोविना से लेकर काले समुद्र तक बेसारेबिया
रेबिया और रोमानिया प्रान्तों के बीच में
य सीमा की ओर नीस्टर नदी है। बेसा-
स्टर नदियों के बीच में फुट कर नदीनाले
करनेवाली सेना को बीच में रोकने के
ाएं कहीं नहीं हैं। बेसारेबिया में यदि
साठ सत्तर मील आस्ट्रोजर्मन सेना धावा मारती हुई चली जायगी तो
कीव से पोडोलिया होते हुए बेसारेबिया में आनेवाली रेलगाड़ी को
वह पकड़ लेगी। ऐसी दशा में रोमानिया और बेसारेबिया की रूसो-
रोमानियन सेना बिलकुल एक ओर रह जायगी। जुलाई के अन्त
और अगस्त के प्रारम्भ में आस्ट्रोजर्मनों ने बुकोविना में विशेष ज़ोर कर
के बेसारेबिया में घुसने की जो शीघ्रता की उसकी सैनिक नीति,
जान पड़ता है, रोमानिया को एक ओर छोड़ देना ही था। बुकोविना
और गलेशिया में जब कि ये लड़ाइयां हो रही थीं तब रूसो-रोमानि-
यन सेना आस्ट्रोजर्मनों पर हमला करने लगी, और आस्ट्रोजर्मनों ने
उनके हमलों को अपने ऊपर आने भी दिया। यह रोमानिया का कदम
आगे बढ़ा ज़रूर है, परन्तु इधर यदि आस्ट्रो-जर्मन बेसारेबिया से
रोमानिया के पीछे उतर पड़ेंगे तो रोमानिया पर संकट आये बिना न
रहेगा। क्योंकि फ़ौजों के पीछे यदि आस्ट्रो-जर्मन सेना पहुंच गई तो
रोमानिया के लिए इसके सिवाय और कोई मार्ग नहीं रहेगा कि
वह सम्पूर्ण मोल्डेविया जल्दी जल्दी से छोड़ कर दक्षिण बेसारे-
बिया में पहुँच कर ओड़ेसा का मार्ग जल्दी जल्दी से पकड़े।
इस प्रकार बेसारेबिया और रोमानिया की सेना ओड़ेसा की ओर
भगाने के हेतु से आस्ट्रोजर्मन बेसारेबिया में घुस रहे हैं। बेसारेबिया
की इस सैनिक नीति को सफल करने के लिए टार्नपूल से ओड़ेसा की
ओर जानेवाली रेलगाड़ी के मार्ग से भी आस्ट्रो-जर्मनों की प्रबल
चढ़ाई होगी। क्योंकि उस मार्ग पर प्रबल ज़ोर करने से बेसारेबिया
में विशेष मदद नहीं पहुँच सकती; और बेसारेबिया की सीध में इस
समय जल्दी से आगे बढ़नेवाला कदम और भी अधिक ज़ोर से
आगे बढ़ेगा। आगस्त मास में पोडोलिया को घेर कर, आधे से
अधिक बेसारेबिया ले कर यदि आस्ट्रोजर्मन रूसो रोमानियन सेना को
ओड़ेसा की ओर नहीं हटा देंगे तो जर्मनी की यह चढ़ाई, जो जुलाई
के अन्त में शुरू हुई है, वैसी नहीं होगी जैसी कि वर्ष डेढ़ वर्ष पहले
सेनापति मेकेन्सन की हुई थी; किन्तु यह एक मामूली ही चढ़ाई रह
जायगी। परन्तु, यदि आस्ट्रोजर्मन पोडोलिया प्रान्त को व्याप्त कर लेंगे
और बेसारेबिया का बहुत-सा भाग लेकर रोमानिया को ओड़ेसा की
ओर हटा देंगे तो यह चढ़ाई भयंकर स्वरूप की हो जायगी। क्योंकि
फिर सितम्बर-अक्टूबर मास में ओड़ेसा हाथ का चला जायगा, और
सार्नी, रोवनों के टापुओं से, और पोडोलिया से, कीव पर धावा करने में
आस्ट्रो-जर्मन त्रुटि नहीं करेंगे। इस जगह यह प्रश्न उठता है कि
कीव और ओड़ेसा ले कर तथा दक्षिण ओर की सब रूसी सेना नष्ट
करके रूस को स्वतंत्र सन्धि के लिए बाध्य करने में जिस सैनिक नीति
का पर्यवसान होगा उसको स्वीकार करने में जिस मनुष्यबल की
आवश्यकता है वह आस्ट्रो-जर्मनी के पास है या नहीं! कोई कहते हैं,
है—और कोई कहते हैं, नहीं है। कुछ लोगों का तर्क है कि, जब कि
सेनापति हिंडनबर्ग ने जर्मनी के प्रधान मंत्री; मि० बेथमन हालवेग, जो
कि पांच सात वर्ष से बहुत प्रसिद्ध हो रहे थे, उनको त्यागपत्र देने के
लिए लाचार किया, तब रूस को पराजित करने के लिए वे अवश्य
तैयार होंगे; और गलेशिया तथा बुकोविना में, मौका लगते ही, रूस
को सदैव के लिए लँगड़ा कर देने में वे कुछ भी त्रुटि नहीं करेंगे। इस
के विरुद्ध यह भी प्रतिपादन किया जाता है कि जब कि गत चार पांच
महीने फ्रांस बेलजियम में जर्मनी का मनुष्यबल बहुत अधिक खर्च हुआ
है तब अवश्य ही जर्मनी में अब वह शक्ति नहीं रही है जो कि डेढ़ दो
वर्ष पहले थी। जर्मनी यदि रूस पर विशेष प्रबलता से चढ़ाई करेगा
तो फ्रांस-बेलजियम में वह अवश्य ही कमज़ोर पड़ जायगा; और यदि
फ्रांस-बेलजियम की ओर वह अपना पक्ष सम्हालेगा तो रूस की रण-
भूमि में मामूली विजय को छोड़ कर विशेष लाभ उसे नहीं होगा।
बेलजियम में जुलाई के अन्त और अगस्त के प्रारम्भ में इंगलैंड
ने जर्मनी पर ज़ोर के हमले शुरू किये हैं; और अब वहां उन्होंने
लड़ाई शुरू की है कि जो पिछली सब लड़ाइयों से भयंकर है।
बारह पन्द्रह मील के मुहरे पर आध मील तक उन्होंने जर्मनों को
भी हटाया है। अब अगस्त मास में इस बात का फैसला होगा
पश्चिम को सम्हाल कर पूर्व की ओर आगे बढ़ने योग्य मनुष्यबल
आस्ट्रोजर्मनों के पास है या नहीं; इस लिए इस समय सब को यह
चिन्ता लग रही है कि अगस्त के संकट से रूस किस प्रकार बच
पड़ता है।

सनातनधर्मसभा रायबरेली का उत्सव।

पिछले दिनों इस सभा का उत्सव माननीय राजा चन्द्रचूड सिंह जी [illegible] चन्दापुर के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ हुआ। [illegible] प्रान्त के धर्म-प्रेमियों ने बड़ा उत्साह प्रकट किया। हर्ष [illegible] है कि अब हमारे सनातनी भाई भी देशकाल की गति के अनु- [illegible] अपने धार्मिक विचारों को परिष्कृत कर के देश में शिक्षा और [illegible] के प्रचार में भाग लेंगे।

फर्श पर बैठे (बाईं ओर से)—लाल सुरेन्द्रबहादुरसिंह, लाल बीरेन्द्र बहादुरसिंह, पं. जानकीशरण त्रिपाठी, ब्रह्मचारी योगीन्द्र प्रकाश, बाबू रणबहादुरसिंह तालुकदार बरारा।

कुर्सी पर बैठे (बाईं ओर से)—लाल नृसिंहप्रतापनारायणसिंह (शाह मऊ), ठाकुर जगन्नाथबख्शसिंह तालुकदार रहँवाँ, माननीय राजा सर रामपालसिंह के. सी. आई. ई. तालुकदार कुरीसुदौली, माननीय राजा चन्द्रचूड़सिंहजी तालुकदार चन्दापुर (सभापति), श्री १०८ स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, कूर्माचलभूषण पं. दुर्गादत्तजी पंत, महोपदेशक पं. रलियारामजी शर्मा (अमृतसर), ठाकुर रघुराजसिंहजी तालुकदार सेमरी, लाल चन्द्रमौलिसिंह तालुकदार सेमरौता।

खड़े हुए अगली पंक्ति (बाईं ओर से)—लाला रामरक्खाजी, पं. सरजूप्रसादजी शुक्ल प्राइवेट सेक्रेटरी राजा चन्दापुर, पं. बंशगोपाल पांडे रईस और म्युनिसिपल कमिश्नर पं. द्वारकाप्रसाद शुक्ल बी. ए. एल. एल. बी. (मंत्री), पं. गुरुदयालजी त्रिपाठी बी. ए. एल. एल. बी., रायसाहब मुंशी जानकीप्रसाद वकील, पं. गयाप्रसाद शुक्ल वकील, राउत कन्हैयाबख्शसिंह तालुकदार पन्हौना, पं. चिंतामणि पांडे ठेकेदार, ठाकुर देवीबख्शसिंहजी तालुकदार पीठन, ठाकुर यदुनाथसिंहजी।

पिछली पंक्ति में—पं. शिवदुलारे मिश्र (कात्यायन) वकील, बाबू बद्रीनाथ निगम (मंत्री कुमारसभा), पं. शिवगोविंद त्रिपाठी (प्रधान स्वयंसेवक), पं. रामचरणजी पाठक, मुंशी महबूब अली मैनेजर रियासत चन्दापुर, पं. रामनाथजी शास्त्री।

गुरुकुल कांगड़ी में बड़े लाट।

पिछले दिनों भारत के वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड, लेडी चेम्सफोर्ड सर जेम्स मेस्टन साहब के साथ, गुरुकुल का अवलोकन करने के लिए पधारे थे। अर्वाचीन वैदिक-शिक्षा-प्रणाली के साथ आप खास तौर पर सहानुभूति रखते हैं। यदि आप अपने शासनकाल में भारत की शिक्षा में कुछ विशेष कल्याणकारक परिवर्तन कर सकें तो बड़ी खुशी की बात हो। देखिये, क्या कुछ हो। ऊपर के चित्र में महात्मा मुंशीरामजी के साथ उपर्युक्त तीनों श्रीमान गुरुकुलवाटिका में जा रहे हैं।

वैद्यसेवासमिति।

इस साल हरिद्वार-ऋषिकुल-उत्सव के समय वहां वैद्यसेवासमिति का भी अधिवेशन हुआ। सभापति थे मदरास के वैद्यरत्न पं० डी० गोपालाचार्लु। आपका संस्कृत-भाषण आयुर्वेद के भूत-वर्तमान गौरव से पूर्ण और महत्वशाली था। समिति के अध्यक्ष कानपुरनिवासी डा० प्रसादीलाल झा, आयुर्वेद-महामंडल के मंत्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

इत्यादि आयुर्वेदप्रचारक सज्जन भी उपस्थित थे। समिति के मंत्री पं० नारायणदत्त शर्मा समिति का कार्य विशेष उत्साह से करते हैं। हम समिति के उद्देश्य की सफलता हृदय से चाहते हैं।

ऋषिकुल हरिद्वार।

जिस प्रकार आर्यसमाज की ओर से गुरुकुल संस्था जनता में शिक्षा-द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार कर रही है उसी प्रकार 'सनातनधर्म' की ओर से ऋषिकुल भी शिक्षाप्रचार का कार्य कर रहा है। इस वर्ष गंगा दशहरा पर इसका जो वार्षिक उत्सव हुआ उसके पंडाल का भीतरी दृश्य यहां पर पाठकों के अवलोकनार्थ दिया जाता है।

सद्धर्मप्रचारक का महिलांक।

सहयोगी सद्धर्म-प्रचारक ने पिछले दिनों अपना एक महिलांक निकाला है। इसके आकार इत्यादि में तो कुछ अन्तर नहीं है। अन्य लेखों के [illegible] ऐसे [illegible] हैं जिनमें 'स्त्री-शिक्षा' विषय पर विचार प्रकट किये गये हैं। श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी तथा श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० के लेख विचारणीय हैं। सहयोगी, [illegible] [illegible] के कारण [illegible] रहा है, और [illegible] को [illegible] मासिक होने का विचार कर रहा है। [illegible] में [illegible] एक [illegible] है जो [illegible] (पृष्ठ ३४) [illegible] देखना चाहिए, [illegible] कर दिया। [illegible]

आगामि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

इस वर्ष हिन्दीसाहित्यसम्मेलन महाराज-होलकर की राजधानी इन्दौर नगर में होनेवाला है। इन्दौर मध्यभारत में है; और राजपुताना उससे मिला हुआ है। ये प्रान्त हिन्दी-साहित्य की ऐतिहासिकता की दृष्टि से भी बहुत महत्व के हैं; क्योंकि प्राचीन काल में हिन्दी के अनेक कवि और लेखक इन प्रान्तों में होगये हैं, जिनमें से कुछ प्रकट हैं, तथा अनेक ऐसे भी हैं, कि जिनके साहित्य की खोज होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि इन प्रान्तों में, थोड़ा सा प्रयत्न करने पर, हिन्दी का कार्य भी बहुत हो सकता है; क्योंकि इन प्रान्तों में अनेक जागीरदार, सेठ, रईस, जमींदार इत्यादि रहते हैं कि जिनको थोड़ा सा ही उत्तेजन देने पर वे हिन्दी-साहित्य और हिन्दी भाषा के प्रचार में बहुत कुछ सहायता दे सकते हैं। इन प्रान्तों में उर्दू का भी प्रतिरोध नहीं है; और लोगों में हिन्दुत्व के स्वाभिमान की भी कमी नहीं है, जैसी कि उत्तर भारत या पंजाब, इत्यादि प्रान्तों में देखी जाती है। इन सब बातों को देखते हुए यह कहना चाहिए कि इस बार सम्मेलन एक बहुत अच्छे प्रान्त में गया है; और इसको सफल करना प्रत्येक हिन्दीहितैषी का कर्तव्य है।

सफलता कहां है ?

सफलता आन्दोलन में है। हिन्दी-साहित्यसम्मेलन का अधिवेशन या उसकी बैठक को सफल बनाने के लिए मध्यभारत के कार्यक्षम सज्जन अपने प्रान्त में भ्रमण कर के सब प्रकार के लोगों के अन्दर, हिन्दी-साहित्यसम्मेलन के निमित्त से, आन्दोलन करके, जो जागृति उत्पन्न करेंगे उसी के अन्दर सफलता है। सम्मेलन की बैठक को सफल और सुशोभित कर देना एक बाहर की बात है। परन्तु उस समारम्भ के बाद जब मध्यभारत के धनवानों और कर्तृत्ववानों के अन्दर, हिन्दीसाहित्य की सेवा करने की कुछ चलनशक्ति शेष रह जायगी; और वे इस मैदान में कार्य करते हुए देखे जायँगे; तभी कहना होगा कि मध्यभारत का यह साहित्यसम्मेलन सफल हुआ। इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि, मध्यभारत के हिन्दी-प्रेमी और कर्तृत्ववान् सज्जन इस समय कुछ स्वार्थत्याग करें—यह स्वार्थत्याग और कुछ नहीं है—यह यही है कि, एक बहुत अच्छा संगठन करके वे सारे प्रान्त में भ्रमण करके आन्दोलन करें; और जिस बस्ती में जो श्रीमान् या कार्यकर्त्ता उन्हें मिले उन्हें अपने गिरोह में मिलाते जावें—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए सब लोगों से धन और जन की सहायता प्राप्त करते जायँ—उन्हें यह बतलाते जावें कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह आन्दोलन है क्या चीज; और देश की राष्ट्रीयता से इसका सम्बन्ध क्या है, तथा प्रत्येक हिन्दू धनवान् और कर्तृत्ववान् को इसमें भाग क्यों लेना चाहिए। यदि मध्यभारत के साहित्य-प्रेमी इस प्रकार अपने प्रान्त में आन्दोलन शुरू कर देंगे, तो हमें आशा है कि उन्हें अपने प्रान्त में अनेक ऐसे रत्न प्राप्त होंगे कि जो अपने नूतन प्रकाश से हिन्दी-साहित्य को आलोकित करने लगेंगे। इस लिए स्वागत-कारिणी के कार्यकर्त्ताओं से हमारा निवेदन है कि वे बहुत जल्द एक संगठन करें और खास इन्दौर शहर तथा अन्य बाहर के कस्बों तथा गावों में तथा मध्यभारत के अन्य शहरों में, उपर्युक्त प्रकार से आन्दोलन करने के लिए लोगों को भेजें।

अधिवेशन की सफलता।

अधिवेशन की सफलता बाह्य सफलता है, परन्तु आन्तरिक सफलता पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है। इस लिए सम्मेलन के अधिवेशन को सफल बनाने के लिए भी अनेक बातों पर ध्यान रखना पड़ता है। पहली बात सभापति का चुनाव है; क्योंकि इस पर भी बहुत कुछ सम्मेलन की सफलता निर्भर समझी जाती है। सभापति का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की हलचल, बंगाली, गुजराती या मराठी सम्मेलनों की भांति, केवल साहित्यिक स्वरूप की ही नहीं है; किन्तु हिन्दी के [illegible] भाषा होने के कारण, इस सम्मेलन ने एक प्रकार से देशव्यापी राष्ट्रीय स्वरूप भी धारण किया है। इस लिए इसका सभापति सिर्फ साहित्यसंग्राम-क्षेत्र का ही योद्धा होना चाहिए, किन्तु [illegible] क्षेत्र का भी कर्तृत्ववान् आत्मत्यागीशूर होना चाहिए; परन्तु [illegible] एक व्यक्ति में मिलना प्रायः दुर्लभ है। इस लिए देशकाल [illegible] करके सभापति का चुनाव करना चाहिए। अर्थात् जिस देश में साहित्य सम्मेलन होने को हो, और उस समय जैसा समय वर्त रहा हो, उसके अनुसार साहित्यिक या राष्ट्रीय सभापति की योजना करनी चाहिए। इस दृष्टि से देखते हुए यही कहना पड़ता है कि इस वर्ष महात्मा गांधी से अधिक सुयोग्य सभापति नहीं मिल सकता। इन्दौर प्रदेश एक ओर गुजरात और दूसरी ओर महाराष्ट्र से मिला हुआ है। इन प्रान्तों पर हिन्दी भाषा का राष्ट्रीय दृष्टि से प्रभाव डालने के लिए महात्मा गांधी का व्यक्तित्व पर्याप्त है। गान्धीजी हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी हैं। हिन्दी भाषा का सार्वदेशिक प्रचार करने के लिए यदि हिन्दी-साहित्य सम्मेलन उनको नेतृत्व का पद देगा तो भविष्य में इस कार्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त होने की सम्भावना है।

दूसरी बात अधिवेशन की सफलता के लिए यह होनी चाहिए कि सम्मेलन-मञ्च पर से प्रस्तावों के अतिरिक्त प्रति दिन एक ही व्याख्यान और एक दो निबन्ध भी रोज पढ़े जाने चाहिएं। व्याख्याता और निबन्धलेखक तथा निबन्ध-पाठक पहले ही से नियुक्त कर रखना चाहिए। अवश्य ही ये प्रसिद्ध सुयोग्य व्याख्याता और प्रसिद्ध उच्च श्रेणी के [illegible] चाहिएं। हम देखते हैं कि बँगला, मराठी, इत्यादि साहित्य-सम्मेलनों में उक्त भाषाओं के बड़े बड़े साहित्यधुरन्धर लेखक सम्मेलन में उपस्थित हो कर गम्भीर विषयों पर अपने विद्वत्तापूर्ण निबन्ध पढ़ कर साहित्यसम्मेलन को गौरवान्वित करते हैं, पर हिन्दीसाहित्यसम्मेलन में बहुत कम साहित्यधुरन्धर उपस्थित होते हैं; और जो उपस्थित होते हैं वे निबन्ध इत्यादि लिखने का कार्य नहीं लेते। इनमें सम्मेलन के कार्यकर्त्ता किसी उत्तम और उपयोगी विषय पर लिखने के लिए प्रार्थना करते हैं तब वे यही उत्तर देते हैं कि हमें [illegible] नहीं है; और इस लिए साहित्यसम्मेलन के वार्षिक निबन्धसंग्रह में ऊंचे दरजे के विद्वान् लेखकों के निबन्ध बहुत कम देखे जाते हैं। वर्ष, हमारी सम्मति में, सम्मेलन की स्वा० का० स० के कार्यकर्त्ताओं को, खास तौर, उच्च लेखकों से निबन्ध लिखने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी, बा० श्यामसुन्दरदास बी० [illegible] साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा एम० ए०, पं० माधवराव [illegible] बी० ए०, प्रो० बालकृष्ण जी एम० ए०, प्रो० दीवानचन्द जी एम० [illegible] प्रो० सम्पूर्णानन्द जी बी० एस० सी०, प्रो० महेशचरण सिंह जी, [illegible] पुरुषोत्तमदास जी टंडन, मिश्रबन्धु, पं० अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी, पं० गौरीशंकर हीराचन्द्र जी ओझा, बा० हरकृष्ण जौहर सम्पादक बंगवासी, पं० गणेशशंकर विद्यार्थी, सम्पादक प्रताप, पं० कृष्णकान्त मालवीय, पं० अमृतलाल जी चक्रवर्ती सम्पादक श्रीवेंकटेश्वरसमाचार, कविवर बा० मैथिलीशरण गुप्त, कविवर पं० श्रीधर पाठक, कविवर नाथूरामशंकर शर्मा, विद्यावाचस्पति पं० इन्द्र महाशय वेदालंकार, [illegible] गोविन्दनारायणजी मिश्र, मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ, प्रो० जनार्दन [illegible] एम० ए० (पं० बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र) पं० बदरीनाथजी भट्ट बी० [illegible] (प्रसिद्ध रामायणीय टीकाकार पं० रामेश्वरभट्ट के सुपुत्र) पं० पद्मसिंह [illegible] इत्यादि अनेक साहित्य के महारथी तथा नवयुवक लेखकगण [illegible] इनसे इनकी रुचि के अनुकूल निबन्ध लिखाने का प्रबन्ध करना चाहिए और इनमें से बड़े बड़े साहित्यदिग्गजों का यह परम पवित्र कर्तव्य है कि वे साहित्यसम्मेलन से उदासीन न रहें; और न सिर्फ एक पत्र [illegible] तार भेज कर ही सम्मेलन की सफलता की अभिलाषा [illegible] उसके लिए प्रत्यक्ष रूप से कार्य करें; और अधिवेशन में उपस्थित [illegible] पिछला अनुभव प्रायः यह बतला रहा है कि जो सज्जन एक बार सम्मेलन के सभापति हो चुकते हैं वे फिर दुबारा सम्मेलन में [illegible]

कैसे हैं मानो अपना अपमान सा समझते हैं; कुछ साहित्यदिग्गज वैसे ही अपनी टर्र में सम्मेलन से अलिप्त से रहते हैं; पर यह बात वास्तव में उनके गौरव का हेतु नहीं हो सकती। ऐसे महानुभावों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे बंगीय साहित्यसेवियों की ओर देखें—उनमें कैसे कैसे सम्माननीय सज्जन सम्मेलन में उपस्थित हो कर अपने ज्ञान और अनुभव से सम्मेलन का गौरव बढ़ाते हैं; और इससे उनकी भी गौरव-वृद्धि होती है।

निबन्धों की तरह कुछ व्याख्यानों का भी प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए भारतवर्ष के अन्य भाषाभाषी कुछ विद्वान् व्याख्याताओं को, राष्ट्रीय भाषा हिन्दी के नाम पर, सम्मेलन में आमंत्रित करना चाहिए। और उनके व्याख्यानों के विषय पहले ही से नियत कर देना चाहिए। यदि ऐसे महाशय न आ सकें तो हिन्दी-भाषियों के ही व्याख्यान उपयुक्त विषयों पर हों। जैसे पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा नागरी लिपि के क्रमविकास पर बहुत ही उत्तम सचित्र व्याख्यान देते हैं। आपका व्याख्यान इन पंक्तियों के लेखक ने गत वर्ष भरपुर-हिन्दी-साहित्यसमिति के उत्सव पर सुना था। इसी भांति स्वामी सत्यदेव जी का व्याख्यान भी नवयुवकजनता बड़े चाव से सुनती है। बा० श्यामसुन्दरदास जी का व्याख्यान भी बहुत अच्छा होता है। प्रोफेसर बालकृष्ण एम० ए०, लाला हंसराज जी, इत्यादि को भी व्याख्यान के लिए आमंत्रित कर सकते हैं।

अब कई साल से सम्मेलन के साथ प्रदर्शिनी करने की भी प्रथा जारी होगई है; और यह चाल बहुत अच्छी तथा उपयोगी है। परन्तु प्रदर्शिनी में जो प्रकाशित पुस्तकें, हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें, इत्यादि प्रदर्शित की जाती हैं उनका चुनाव ठीक तौर से होना चाहिए; बहुत मामूली, जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं ऐसी, प्रकाशित पुस्तकों के प्रदर्शित करने से कोई लाभ नहीं; जो वास्तव में साहित्योपयोगी और दर्शनीय हों उन्हीं को प्रदर्शित करना चाहिए। प्राचीन छपी हुई पुस्तकें, जो अब प्रायः अप्राप्य हैं, उनको भी दर्शिनी में एकत्र करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार ब्राह्मण, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, आनन्दकादम्बिनी, समालोचक, हिन्दीप्रदीप, उचितवक्ता, इत्यादि प्राचीन मासिक और साप्ताहिक पत्र भी प्रदर्शिनी में रखने [illegible] जिनको अवलोकन करने से दर्शक के चित्त में अपने प्राचीन [illegible] सेवियों का गौरव उत्पन्न होगा। इसके सिवाय, भारतेन्दु ह[illegible] राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, पं० अम्बि[illegible] व्यास, पं० लल्लूलाल जी, लाला श्रीनिवासदास जी, पं० प्रतापन[illegible] मिश्र, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, पद्माकर, रसखान, [illegible] लाल, भूषणकवि, चन्द्रबरदायी, इत्यादि अर्वाचीन और प्राची[illegible] पद्यलेखकों की हस्तलिपियां और चित्र यदि मिल सकें तो [illegible] प्रदर्शिनी में रखना चाहिए। सब के न मिल सकें तो जितने [illegible] के हस्ताक्षर और चित्र मिलें वे ही रखना चाहिए। समा[illegible] द्वारा जनता से विज्ञप्ति करना चाहिए कि जिन महाशयों के पा[illegible] युक्त अलभ्य या दुर्लभ वस्तुएं हों, वे प्रदर्शिनी में रखने के लि[illegible] वस्तु सुरक्षित रखी जायगी; और बाद प्रदर्शिनी के सुरक्षित वापस कर दी जायगी। हिन्दीसाहित्य या नागरी लिपि से [illegible] रखनेवाले सिक्के, ताम्रपत्र, शिलालेख, इत्यादि मिल सकें तो वे [illegible] र्शिनी में रखने चाहिएं। भागलपुर की साहित्यप्रदर्शिनी में इस प्र[illegible] वस्तुएं देखी गई थीं। भागलपुर के कार्यसंचालक यदि अपने य[illegible] प्रदर्शित वस्तुओं की सूची भेज सकें तो मँगा लेनी चाहिए। [illegible] सूचना के अनुसार कार्य करने से प्रदर्शिनी में सफलता हो सक[illegible]

अब अन्त में हमें एक बात साहित्यसम्मेलन के विषय में [illegible] लानी है वह यही है कि स्वयंसेवकों का और कार्यकर्त्ताओं [illegible] ठन बहुत अच्छा होना चाहिए। ऐसे सज्जन ही कार्यकर्त्ता निय[illegible] चाहिएं जो मातृभाषा से हार्दिक हित रखते हों; और अपना कार्य सचाई, उत्साह, प्रेम, सहानुभूति और सेवाभाव का ध्या[illegible] कर करें। अधिकारीपन का अभिमान प्रायः संगठन में खराबी करता है। 'कर्तव्य' और 'अधिकार' दोनों मिल कर चलने [illegible] और सेवाभाव की भावना कभी न छोड़नी चाहिए।

हमारी उपर्युक्त सूचनाओं के अनुसार यदि इन्दौर के हिन्दी[illegible] सम्मेलन की तैयारियां करेंगे तो अवश्य ही उन्हें सफलता प्राप्त [illegible] और मध्यभारत में साहित्यिक जीवन जागृत हो उठेगा।

साहित्यचर्चा।

१ 'मर्यादा' का स्वराज्य-अंक—'मर्यादा' मासिक पत्रिका समय समय पर अपने विशेष अंक निकाल कर हिन्दी-साहित्य की अपूर्व सेवा कर रही है। इसका स्वराज्य-अंक देख कर हमें बड़ा आनन्द हुआ। इस अंक में श्रीमती एनीबिसंट, लोकमान्य पं० बाल गंगाधर तिलक, श्रीयुत श्रीप्रकाश जी बी० ए० एल० एल० बी० बार-एट-ला, विश्वबन्धु मि० एच० एम० हार्डिमन, मि० राधाकमलमुकर्जी एम० ए०, मि० पी० के० तेलंग सम्पादक न्यू-इंडिया, मि० जी० एस० एरंडल, श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर सम्पादक मराठा और केसरी, मि० बी० पी० माधवराव सी० आई० ई०, श्रीयुत सीताराम केशव दामले बी० ए० एल० एल० बी०, मि० सी० वाई० चिन्तामणि सम्पादक लीडर, माननीय मि० पोलक, इत्यादि प्रसिद्ध विद्वानों के लेख हैं। सब लेख केवल स्वराज्य पर ही नहीं हैं; किन्तु स्वराज्यविषय को ले कर लेखकों ने भिन्न भिन्न पहलुओं से विवेचन किया है। भारतीय राजनीति के विचारों का बहुत अच्छा संग्रह हुआ है। प्रसंग विशेष पर लेखकों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को भी स्पर्श किया है। हमारे जो भाई अंगरेजी नहीं जानते हैं उनके लिए 'मर्यादा' की इस संख्या ने उपयुक्त प्रतिभाशाली लेखकों के विचार जानने का यह बहुत अच्छा अवसर दिया है। हिन्दी के कई अच्छे लेखकों की राष्ट्रीय कविताओं का भी इस अंक में विपुल संग्रह है। सब मिला कर कोई ४६ विषय हैं। सम्पादकीय विचार भी मनन करने योग्य हैं। मर्यादा के सम्पादक पं० कृष्णकान्त जी मालवीय को हम उनको इस स्वराज्यसंख्या की सफलता पर बधाई देते हैं। प्रत्येक स्वराज्य चाहनेवाले को मर्यादा के इस अंक को खरीद कर सम्पादक का परिश्रम सफल करना चाहिए; और स्वराज्य के विचारों का प्रचार करना चाहिए। इस संख्या का मूल्य १) और मिलने का पता—मैनेजर मर्यादा, भारतीभवन, प्रयाग है।

२ 'जननी' और उसका उपहार—स्त्रियोपयोगी मासिक साहित्य में 'जननी' नामक मासिक पत्रिका की वृद्धि देख कर किस साहित्य-प्रेमी का हृदय पुलकित न होगा? इसकी सम्पादिका श्रीमती बालादेवी जी हैं। प्रकाशक हैं पं० हरिश्चन्द्र भट्ट ४, सनमुख लाइन, ठाकुर गली कलकत्ता। वार्षिक मूल्य १॥) है। इस मासिक [illegible] के पहले अंक के साथ हमें "सदाचारिणी" नामक एक पुस्त[illegible] मिली है। इसमें एक पतिव्रता सदाचारिणी का चरित्र दि[illegible] जिसने अपने पति का अनेक दुर्व्यसनों से उद्धार किया है। [illegible] की जिल्द अच्छी है। यह ग्राहकों को उपहार में दी जाती है। [illegible] कुमुदबाला देवी जी ने निम्न लिखित पांच विषयों पर पांच [illegible] देने की भी घोषणा की है:—(१) किसी भी विषय की [illegible] सुन्दर आख्यायिका; (२) भारतवर्ष के किस प्रान्त में स्त्रीशिक्षा सब से अधिक प्रचार है, और किस प्रान्त में सब से कम। प्रान्त में अधिक है उसका कारण क्या है, और जिसमें कम है, [illegible] प्रकार क्या है? (३) पर्दे का प्रचार रहना उपयोगी है [illegible] कारण? और यदि नहीं तो क्यों? (४) अधिकांश स्त्रियों में और बहुओं में लड़ाई हो जाने का प्रधान कारण क्या है, और दूर करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय कौन है? (५) स्त्रीशिक्षा प्रचार का सर्वोत्तम उपाय कौन सा है? श्रीमती कुमुदबाला देवी जी का [illegible] की शिक्षा और सुधार के विषय में यह प्रयत्न और उत्साह [illegible] है। हम आपके उद्देश्य से हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। [illegible] सर्व० को 'जननी' का ग्राहक बनना हो [illegible] विषय में कुछ पूछताछ करना हो, उनको उपर्युक्त पते पर श्रीमती [illegible] पत्रव्यवहार करना चाहिए।

३ [illegible]—बंगकवि श्रीयुत द्विजेन्द्रलाल राय कृत बंगला [illegible] का अनुवाद पं० [illegible] पांडेय कृत। प्रकाशक श्रीयुत [illegible] हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगांव, [illegible] मूल्य ।।=) । द्विजेन्द्र बाबू बंगला के बड़े प्रसिद्ध कवि और [illegible] में हैं। [illegible]

क्योंकि इसमें गिरीन्द्र बाबू ने नीति-शा ...
है, किन्तु चरित्रविकास और दृश्य क ...
यिक रचना की है, साथ ही ऐतिहासिकता की भी पूरी पूरी रक्षा की ... पर स्थाभा-
है। बंग-रंगभूमि पर इस नाटक ने बड़ा नाम पाया है। हम आशा करते हैं कि हिन्दीभाषी नाट्यप्रेमी नवयुवक भी इसका प्रयोग कर के सफलता प्राप्त करेंगे।

४ हिन्दी-जैन-साहित्य का इतिहास—लेखक श्रीयुत नाथूराम जी प्रेमी। प्रकाशक जैन-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई। मूल्य ।=) यह निबन्ध प्रेमी जी ने सप्तम हिन्दी-साहित्यसम्मेलन में पढ़ने के लिए लिखा था। निबन्ध बड़ी खोज के साथ लिखा गया है, और बड़े महत्व का है। इसमें पहले यह दिखलाया है कि हिन्दी-भाषा का इतिहास जानने के लिए प्राचीन जैन साहित्य का अध्ययन अवश्य करना पड़ेगा, क्योंकि यह साहित्य प्राकृत से मिलती जुलती हुई भाषा में है; और हिन्दी के क्रमविकास का पता इससे अच्छी तरह चलता है, इसके सिवाय ऐतिहासिक घटनाएं भी इससे बहुत सी मालूम होती हैं। आपने यह भी दिखलाया है कि उस समय एक ऐसी भाषा में कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं जो हिन्दी और गुजराती को छूती हुई चली जाती है; और ऐसे कई ग्रन्थ अभी मिले हैं कि जो वास्तव में गुजराती की अपेक्षा हिन्दी से बहुत मिलते जुलते हैं; परन्तु गुजरातीवालों ने उन्हें गुजराती भाषा का मान रक्खा है। ये ग्रन्थ वास्तव में पुरानी हिन्दी के ही हैं। इसके बाद प्राचीन, अर्वाचीन और आधुनिक या वर्तमान जैन लेखकों तथा कवियों की साहित्यसेवा का वर्णन क्रमशः दिया हुआ है। निदान इस निबन्ध को पढ़ जाने से, जैन साहित्य और जैन लेखकों का हिन्दी-साहित्य से जो सम्बन्ध पहले रहा है, या अब है—यह भली भांति मालूम हो जाता है।

५ महादेव गोविन्द रानडे—लेखक श्रीयुत "भारतीय"। प्रकाशक ...दीक्षित और द्विवेदी, दारागञ्ज, प्रयाग। मूल्य ॥=)। यह तरुण-भारत-...न्थावली की तीसरी संख्या है। लेखक महाशय ने हमारे पास ...समालोचनार्थ" इसे भेजने की कृपा की है। पुस्तक कुल दो सौ ...फे में पूर्ण हुई है। महात्मा रानडे, और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ...ताई रानडे, के दो चित्र भी दिये हुए हैं। प्रत्येक नवयुवक को, ...र उन महाशयों को, जो कि देशसेवा में अपने जीवन को अर्पण ...ना चाहते हैं, इस पुस्तक का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। ...डे इस युग के बहुत बड़े देशभक्तों में थे। गोखले के समान जिनके ...हो गये उन महात्मा के चरित्र का महत्व कहां तक बतलाया जा ...ता है। लेखक ने बँगला, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, अँगरेजी और ...के १५ ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है, इसी से ...के परिश्रम और पुस्तक के महत्व का अन्दाजा लगाना चाहिए। ...भी इसका ॥=) बहुत कम रक्खा गया है, और ॥) प्रवेश-शुल्क देकर ...जन ग्रन्थावली के स्थायी ग्राहक बन गये हैं या बनेंगे, उन्हें तो यह ...मित मे यानी ।=)॥ में ही दो सौ पृष्ठ की सचित्र अमूल्य पुस्तक ...। "भारतीय" महाशय को, यह, इस ढँग की, पहली ही ...। यद्यपि इस के पहले आपका एक और भी ग्रन्थ प्रकाशित ...है, जिसने बड़ा नाम पाया है; परन्तु आपने उसके लेखक का ...म दूसरे ही सज्जन को दे दिया। आप बड़े होनहार और ...साहित्यसेवी हैं। आपके द्वारा मातृभाषा की आगे बहुत ...होनेवाली है।

...एनी बेसंट—लेखक पं० यदुनन्दनप्रसाद मिश्र बी० ए०। ...ओंकारनाथ जी वाजपेयी, ओंकारप्रेस, प्रयाग। मूल्य ।-)। ...बेसन्ट की धीरता, गम्भीरता, कार्यक्षमता, स्वावलम्बन-...तहितैषिता, इत्यादि गुणों से पूर्ण यह उनका मनोरंजक ...स समय श्रीमती जी भारतवर्ष के लिए जो कष्ट सह रही ...इसलिये लोगों को मालूम है। आपका चरित्र अवश्य ...। चित्र भी दिया हुआ है।

...दाभाई नौरोजी—लेखक बा० बद्रीप्रसाद जी गुप्त बी० ए० ...। यह पुस्तक भी उपर्युक्त ओंकार-आदर्श-चरितमाला ...रनाथ वाजपेयी द्वारा सम्पादित हो कर ओंकारप्रेस ...ई है। मूल्य यही ।-)। महर्षि दादाभाई नौरोजी ने इस ...का उद्धार करने के लिए सारे जीवन किस प्रकार ...या सो प्रत्येक भारतवासी को जान लेना चाहिए। ...सब पुस्तकें सचित्र रहती हैं, और आकार-

...नार, इनके हुए मूल्य बहुत कम रहता है। ऐसे ... चरित्र-ग्रन्थों का संग्रह अपने पुस्तकालय में कौन न करेगा ...

८ स्वधर्म-प्रदीप—लेखक श्रीयुत गंगाधर बापूजी वैद्य, ... पता श्रीयुत चुन्नीलाल छोटमलाल बोहरा मंत्री श्रीसनातन... मण्डलकार्यालय मानकपुर। मूल्य २॥)। इस पुस्तक में धर्म, ... मोक्ष, इत्यादि चतुर्विध पुरुषार्थों और अवतार-वाद का विस्तृत ... किया गया है। आचारशास्त्र की यह बहुत अच्छी पुस्तक है।

अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सूचना।

निखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति प्रयाग के गत २२ जुलाई के अधिवेशन में इन्दौर में होनेवाले आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पढ़ने के लिये जो विषय निश्चित किये हैं, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं। हिन्दी-प्रेमियों और विद्वानों से सविनय निवेदन है कि वे इन विषयों पर लेख लिखने की कृपा करें। लेख ३१ अक्टोबर सन १९१७ तक "मंत्री-साहित्य-विभाग, अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्वागत-कारिणी-समिति, हुकोगंज इन्दौर" के पते पर आजाने चाहियें।

सरयूप्रसाद (राय साहब) मंत्री।

अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये विषय-सूची।

१ गत आठ वर्षों में हिन्दी-साहित्य-संसार का सिंहाव ...
२ अंग्रेजी साहित्य का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव।
३ हिन्दी भाषा में स्त्रियों के योग्य साहित्य।
४ हिन्दी भाषा में बालकों के योग्य साहित्य।
५ हिन्दी में प्राचीन और आधुनिक कविता, आलोचना ...
६ हिन्दी भाषा में माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा।
७ भारतीय भाषाओं में समान वैज्ञानिक पारिभाषिक श ... आवश्यकता।
८ भारतीय इतिहास-सम्बन्धी खोज और उसका फल।
९ देव नागरी लिपि में कुछ शब्द भिन्न २ रूप में लिखे जाते ... उनके एक रूप निश्चित होने पर विचार, उदाहरण:—

गई	गए	हुआ		चाहिए	...
गयी	गये	हुवा, या हुया	लिये, लिए	चाहिये	...

१० मध्य भारत में हिन्दी की वर्तमान स्थिति।
११ देशी रियासतों में हिन्दी।
१२ हिन्दी के विश्वविद्यालयों की आवश्यकता।
१३ राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी के प्रचार में प्रान्तिक-भाषा भा... का कर्तव्य।
१४ बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में राष्ट्र... हिन्दी के प्रचार के साधन।
१५ हिन्दी में राजनैतिक साहित्य।
१६ हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य।
१७ हिन्दी में आध्यात्मिक साहित्य।
१८ क्या उर्दू हिन्दी से भिन्न कोई भाषा है।
१९ भारत में प्राचीन शिक्षाक्रम।
२० प्राचीन भारत में राज्य-प्रबन्ध।
२१ सूरदास
२२ केशवदास } इन लेखों में ग्रन्थ का परिचय और समालोचना हो।
२३ बिहारीलाल
२४ बौद्धकाल की भाषा।
२५ प्राचीन भारतवासियों में गणित की उन्नति और उसकी प्रणाली।
२६ भारतीय और पश्चिमीय नाटक (प्राचीन और अर्वाचीन।)
२७ दार्शनिक जीववाद और डाक्टर बोस का आविष्कार।

है महानतमोविनाशक विभो ! तेजस्विता दीजिए । देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से । फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

भाग ७] श्रावण, सं० १९७४ वि०—अगस्त, स० १९१७ ई० [संख्या ८

फूल और काटाँ।

(चौपदे)

लेखक—कविपुंगव पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय।

(१)

है न काँटों सा उभरना काम का। क्या रहा, जब दूसरों को दुख दिया।
सीख लेवें क्यों न खिलना फूल सा। जब किया तब और को पुलकित किया॥

(२)

रंग जिन पर हो भलाई का चढ़ा। सब जगह उनकी घटी सब दिन रही।
डालियों में है न काँटों की कमी। पर दिखाते फूल हैं दो चार ही॥

(३)

जब उठीं आँखें हमें काँटे मिले। नोक अपनी वैसिही सीधी किये।
पर नहीं जाना निराले फूल ए। कब खिले औ किस समय कुम्हला गये॥

(४)

क्या बतावें, है कलेजा मल रहा। कुछ न काँटों का हुआ इनके किये।
धूप निकली, लू चली, आँधी उठी। हा! इन्हीं सुकुमार फूलों के लिए॥

(५)

दूर आँखों से न वह काँटा हुआ। नोक से जिसकी लहू कितना बहा।
पर विचारी तितलियों के वास्ते। दो दिनों भी फूल का न समां रहा॥

(६)

किस लिए काँटे बहुत दिन तक रहें। आह! मेरा जी बहुत बिलला गया।
किस लिए इतना अनूठा फूल यह। आज फूला और कल कुम्हला गया॥

(७)

दो दिनों भी फूल रह पाया नहीं। पर बहुत दिन तक रहे काँटे अड़े।
जो भले हैं, सब जिन्हें है चाहता। कब न जीने के उन्हें लाले पड़े॥
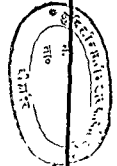
जान विलकीज़।

(लेखक—श्रीयुत मोहनलाल साह।)

१८ वीं शताब्दी में राजा के अधिकारों को कम करने, और प्रजा के अधिकारों को बढ़ाने, के लिए इंगलैंड में एक घोर आन्दोलन हो रहा था। जिन महानुभावों ने इस आन्दोलन में भाग लिया था, उनमें जान विलकीज़ भी एक था। इसके उद्योग से इँगलैंड की तीन बुरी प्रथाएं दूर हो गईं।

विलकीज़ का जन्म १७ अक्टूबर सन् १७२७ को लंडन के एक धनी [illegible]राब बेचनेवाले के यहां हुआ था। कुछ दिनों तक घर में एक पंडित [illegible] पास पढ़ने के पश्चात्, विलकीज़ हालैंड के एक विश्वविद्यालय को [illegible]ा गया। यहां से उसने सन् १७४४ ई० में एंट्रैंस की परीक्षा पास [illegible]। विश्वविद्यालय में रह कर उसने साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त [illegible]ा। सन् १७४८ में विलकीज़ जर्मनी, हालैंड और बेलजियम में घूम [illegible] इंगलैंड लौट आया। इसके बाद विलकीज़ ने अक्टूबर १७४९ में [illegible]ह किया; पर उसको, थोड़े ही काल में, आपस में अनबन हो[illegible]के कारण, अपनी स्त्री से अलग रहना पड़ा।

[illegible]लकीज़ बड़ा मिलनसार आदमी था। इस कारण थोड़े ही दिनों [illegible]न के वेस्ट नामक भाग में वह प्रसिद्ध हो गया। उसकी बड़े बड़े [illegible]से जान-पहचान तथा मित्रता हो गई। उसके उस समय के [illegible] विलियम पिट भी था, जो लिबरल दल का नेता और इंगलैंड [illegible]ो प्रधानमंत्री था। सन् १७५४ ई० में विलकीज़ ने पार्लियामेंट [illegible]ी के लिए कोशिश की; पर सफलता नहीं हुई। ३ वर्ष पश्चात्, [illegible]७ ई० में, वह अपने मित्रों के—खास कर विलियम पिट के— [illegible]ल्सबरी के लोगों की ओर से, पार्लियामेंट का मेम्बर चुना [illegible] १७६२ ई० में उसने कुस्तुन्तुनिया के राजदूत, और फिर [illegible] गवर्नरी के लिये कोशिश की; लेकिन सफलता नहीं हुई। [illegible] नार्थ ब्रिटन" नामक एक पत्र निकाला।

[illegible]न् १७६३ ई० में 'नार्थ ब्रिटन' की ४५ वीं संख्या में, विल[illegible] [illegible]लियामेंट में दी गई राजा की वक्तृता पर, आक्षेप किया और [illegible]स वक्तृता के बनाने का दोष दिया। उस समय इँगलैंड में [illegible]था यह थी कि, राजकर्मचारी लोग जिस किसी को [illegible]कभी अभियोग का सबूत पाये, जनरल वारंट दिखा कर [illegible]थे। 'नार्थ ब्रिटन' की इस संख्या के निकलने पर, उस [illegible]ी आफ स्टेट, लार्ड हैलिफाक्स, ने बिना कुछ तहकी[illegible] [illegible] दूतों को एक जनरल वारंट देकर, उस पत्र के लेखक, [illegible]टर, प्रकाशक, इत्यादि, जिन लोगों ने उस पत्र को [illegible]में भाग लिया था, पकड़ लाने के लिए भेजा। इस [illegible] नाम नहीं लिखा गया था, न किसी प्रकार की जांच [illegible] अपराध ही लिखा था।

[illegible]कलने के तीन दिन के भीतर ही, कम से कम ४८ [illegible] उनमें अधिकतर निरपराध मनुष्य थे। [illegible] [illegible]

मित्र, वकील, इत्यादि से भी उसको मिलने न दिया। चार दिन बाद, उसको, पार्लियामेंट के मेम्बर होने के कारण, "कोर्ट आफ कॉमन [illegible]लीज़" ने छोड़ दिया।

इस मामले में जो लोग पकड़े गये, शीघ्र ही, "जनरल वारंट" के नियमबद्ध होने, अथवा नियम-विरुद्ध होने, के विषय में प्रश्न करने लगे। सब से पहले कुछ मुद्रकों, कम्पोज़िटरों, इत्यादि ने उन दूतों पर अभि[illegible]योग चलाया; जो उनको पकड़ ले गये थे। लार्ड चीफ़ जस्टिस [illegible] साहब ने यह फ़ैसला किया, कि जनरल-वारंट न केवल नियम विरुद्ध ही है, किन्तु इसके प्रयोग में भी नियम-विरुद्ध काम किया जाता है। अतएव उन लोगों को ३०० पौंड जुर्माने का मिल गया, तथा इन लोगों की और प्रकार से क्षति पूर्ण करवाई।

विलकीज़ ने मिस्टर उड, अन्डर सेक्रेटरी आफ स्टेट, पर अभियोग चलाया। इन्हीं ने इस वारंट की आज्ञा को कार्य में परिणत कराया था। इस मुकदमे में यह सिद्ध किया गया, कि विलकीज़ को हवालात में पहुँचा देने के बाद, उड साहब ने मकान में अपना कब्ज़ा कर लिया तथा उसके मित्रों को भी अन्दर न आने दिया; और लोहार से उसके मेज़ के दराज (ड्रावर) को खुलवा कर, उसके कुल कागजात एक बोरे में भर कर, बिना किसी प्रकार की सूची बनाये, उठा ले गये। लार्ड हैलिफाक्स की गवाही ली गई। और उन्होंने कहा कि वारंट इस बात को जानने के तीन दिन पहिले निकाला गया था, कि "नार्थ ब्रिटन" का सम्पादक विलकीज़ है। लार्ड चीफ़ जस्टिस ने विलकीज़ के पक्ष में फ़ैसला किया और उसे १००० पौंड हर्जाने के दिला दिये। इसके पश्चात् एक मनुष्य ने ४०० पौंड हर्जाने के और पाये। [illegible] सिवाय इस फ़ैसले की पुष्टि, राजा के न्यायालय के जज, लार्ड मैन्स[illegible]फील्ड ने भी की।

इसके पश्चात् विलकीज़ ने लार्ड हैलीफाक्स और लार्ड एग्रमन्ट पर जनरल वारंट निकालने का अभियोग चलाया। पर लार्ड एग्रमन्ट की मृत्यु होजाने के कारण इनका अभियोग स्थगित रहा। लार्ड हैलि[illegible]फाक्स ने बहाना कर के मुकदमे को टालना चाहा, पर वह टला नहीं। अन्त में उनको सन् १७६९ में अदालत में हाजिर होना पड़ा। उसमें विलकीज़ को ४००० पौंड की डिग्री मिल गई।

इस मामले में गवर्नमेंट ने हर प्रकार से फरयादियों को [illegible] हर तरह की बाधाएं डालीं। जितनी कानूनी अड़चनें डाली जा सकती थीं, सब डालीं; और कम से कम १ लाख पौंड, गवर्नमेंट ने इनमें खर्च किये।

इसी समय जनरल वारंट का प्रश्न पार्लियामेंट में उठा था। अन्त में पार्लियामेंट ने भी अदालतों के फ़ैसले का समर्थन किया, और यह कुरीति इंगलैंड से उठ गई।

यहां तक तो विलकीज़ की जीत हुई, पर अभी उसको [illegible] भोगने थे। अदालतों में मामला चल ही रहा था, कि पार्लियामेंट में उसके विरुद्ध कार्रवाई शुरू होने लगी। नवम्बर सन् १७६३ [illegible] एक बैठक में "नार्थ ब्रिटन" के ४५ वें अंक को राजद्रोहात्मक [illegible] गया, और उस अंक को, फांसी देनेवाले के हाथ से, जला देने की आज्ञा दी। विलकीज़ ने कहा कि, [illegible] [illegible]

[illegible]

आक्षेप लगा दिये। यह देख कर विलकीज़ पैरिस को चल दिया। उसके विरुद्ध गवाही ली गई, जिससे यह मालूम हुआ कि वह "नार्थ ब्रिटन" का सम्पादक है; और इस लिए अन्त में उसको पार्लियामेंट से निकाल दिया।

यह तो कामन्स सभा में हुआ, पर लार्ड्स ने इससे अधिक किया। जिस दिन कामन्स सभा में 'नार्थ ब्रिटन' के ४५ वें अंक पर विचार हो रहा था, उसी दिन लार्ड सैन्डविच ने नारी-जाति के विषय में एक निबंध की एक प्रति हाउस आफ लार्ड्स में पेश की। यह निबंध विलकीज़ के मित्र पौटर ने पोप के पुरुष-विषयक निबंध की हँसी करने को लिखा था। उस निबंध पर कुछ टीकाएं विशप वार बर्टन के नाम से लिखी गयी थीं। उसकी कुल १३ प्रतियां विलकीज़ के निजी प्रेस में छपी थीं। ये लोग इसकी प्रूफ-कापी प्रेस के कर्मचारियों से ले आये थे और उनसे गवाही भी ले ली, कि यह विलकीज़ की लिखी है। उन्होंने "राजा की अदालत" को विलकीज़ पर दावा लगाने के लिए लिखा, पर विलकीज़ के बीमार होने के कारण उस पर अभियोग न चल सका। २४ जनवरी सन् १७६४ ई० को उन्होंने उसको गिरफ्तार करने का वारंट निकाला, पर वह तब उनके हाथ से निकल चुका था। परन्तु २१ फरवरी के दिन वह अपराधी निश्चित किया गया। अपनी सज़ा पाने को न आने के कारण वह अराजक ठहराया गया।

सन् १७६८ ई० में विलकीज़ इटली इत्यादि घूम कर इँगलैंड लौट आया। जब तक वह इँगलैंड से बाहर था, उसके खर्च के लिए इँगलैंड के उदार दल के नेता लोग १००० पौंड सालियाना भेजते थे। लौटने पर उसने लंडन नगर की ओर से फिर पार्लियामेंट की मेम्बरी के लिए कोशिश की; पर सफलता नहीं हुई। तब उसने मिडिलसेक्स की ओर से कोशिश की। मिडिलसेक्सवालों ने उसे बड़े उत्साह से अपनाया; और उसे अपना मेम्बर चुना। उसके पक्षपातियों ने बड़ी धूमधाम से उत्सव किया; और लंडनवालों को दीपोत्सव करने पर बाध्य किया। जलूस निकलते समय वे "विलकीज़ और स्वतंत्रता" की पुकार करते गये और प्रत्येक द्वार पर '४५' का अंक लिखते गये।

पर अभी उसको अपने पुराने अपराधों की सज़ा पानी थी। वह पकड़ा गया। जन-साधारण ने उसको छुड़ाने का प्रयत्न किया। उनको हटाने के लिए सेना बुलाई गई; और गोली चलाने का हुक्म दिया गया। इस झगड़े में एक निरपराध मनुष्य मारा गया। विलकीज़ के ऊपर जो अपराध थे उनमें से अराजकता का दोष तो उठा लिया गया; पर दूसरे जुर्मों के लिए उसे १००० पौंड जुर्माने और २२ महीने की सज़ा मिली; तथा ७ वर्ष तक अच्छे चालचलन का मुचलका लिखा लिया।

चुनाव के पश्चात् पहिले वर्ष तो विलकीज़ पार्लियामेंट में बैठ न सका, पर दूसरे वर्ष वह वहां आया। एक वर्ष तक वह चुपचाप बैठा रहा; उसका किसीने ख़याल ही नहीं किया। दूसरे वर्ष उसने एक अर्ज़ी पार्लियामेंट में पेश की, जिसमें उसने लार्ड मैन्सफील्ड और मिस्टर वेब पर मुद्रकों को घूस दे कर, उसके मामले में झूठी गवाही दिलाने का अभियोग लगाया था। जिस समय विलकीज़ पकड़ा गया था, लार्ड वेमथ ने एक मैजिस्ट्रेट के नाम पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने मैजिस्ट्रेट को, विलकीज़ को पकड़ते समय, यदि आवश्यकता पड़े तो, जनता को हटाने के लिए, सेना को काम में लाने का अधिकार दिया था। विलकीज़ ने इस पत्र को छपवा दिया, तथा उस पर अपनी टिप्पणी भी लिखी थी। इन अपराधों पर हाउस आफ कामन्स ने उसे सभासदी से निकाल दिया। मिडिलसेक्सवालों ने दो बार पुनः वोट उसी के लिए दिये। तीसरी बार गवर्नमेंट ने अपना एक आदमी ख किया, जिसके लिए २९६ वोट आये। इसके प्रतिद्वन्द्वी विलकीज़ ११४३ वोट थे। इस पर भी पार्लियामेंट ने उसको बैठने न दिया अ कर्नल लटरल को ही मेम्बर बनाया।

इन बातों से विलकीज़ का नाम और भी फैल गया और अन्त लंडनवालों ने उसको नगर का अल्डरमैन, फिर कुछ दिनों पश्च शेरिफ चुना। तथा उसके कर्ज़ों को अदा करने के लिए चन्दा किया एक समय वह लार्ड मेयर भी चुना गया था, पर कुछ आपत्ति होने कारण न हो सका।

सन् १७७४ के चुनाव में विलकीज़ फिर पार्लियामेंट का मेम्बर चु गया। और बिना रोक-टोक बैठा। फरवरी सन् १७७५ ई० में उस प्रस्ताव किया कि कामन्स सभा का प्रस्ताव, जिससे वह पार्लियामेंट बैठने से रोका गया था, पार्लियामेंट के लेखों से उड़ा दिया जाय पार्लियामेंट में उसके विरुद्ध जो कारवाई हुई थी, उसके ऊपर प पहले ही बहुत आक्षेप हो चुके थे, और चार बार पेश हो चुकने अन्त में वह प्रस्ताव सन् १७८२ में पास हो गया।

उस समय पार्लियामेंट को बहुत पहिले से यह अधिकार था, वह बाहर के लोगों को अपने भवन से निकाल सकती थ और अपने वादानुवादों को गुप्त रखती थी, उनको प्रकाशित होने देती थी। विलकीज़ ने इस बात का बड़ा उद्योग किया, कि समाचा पत्रों को इनके छापने का पूरा अधिकार रहे। सन् १७७१ में कु मुद्रक कामन्स सभा की अदालत में इसी अभियोग पर बुलाए गये थे इनमें से दो पेश हुए, पर दो नहीं गये। उनको पकड़ने के लिए इना की घोषणा हुई। वे पकड़े गये। उन दिनों विलकीज़ नगर का आल्ड रमैन था। पकड़नेवाले एक को उसके पास और दूसरे मुद्रक को दूस आल्डरमैन के पास ले गये। दोनों ने मुद्रकों को छोड़ दिया; तथा पकड़ वालों को बिना अधिकार पकड़ने के अपराध पर हवालात में डा दिया। एक मुद्रक पार्लियामेंट से लौट आया था। उसको पार्लियामें का आदमी बुलाने आया। उसने एक पुलिस वाले को बुला क उसके ऊपर यह जुर्म लगाया कि इस मनुष्य ने मेरे ऊपर मेरी दूका में आकर हमला किया। पुलिस उन दोनों को पकड़ कर, लार्ड मेय और विलकीज़ तथा एक दूसरे आल्डरमैन के सामने ले गई। उन्हों उस आदमी से पूछा कि, तुमको इस आदमी को पकड़ने का अधिका किसने दिया। उसने कामन्स सभा का वारंट दिखा दिया। ला मेयर ने कहा कि इस वारंट में हम तीनों में से किसी के भी दस्तख नहीं हैं, इसलिए तुम इसे पकड़ नहीं सकते थे। यह कह कर उन्हों पार्लियामेंट के उस दूत को हवालात में डाल दिया। नगर के अधि कारियों की इस कारवाई से कामन्स सभा में बड़ी खलबली मच गई और उन्होंने उन तीनों के पास सम्मन भेजा। लार्ड मेयर और आल्डर मैन ओलिवर, जो पार्लियामेंट के मेम्बर थे, वहां गये, पर विलकीज़ न गया। कुछ दिनों तक मामला चलता रहा। वह लोग लंडन के टा में कैद कर दिये गये। नगर के लोग इनकी जय मनाने लगे, क्योंकि वे उनके अधिकारों के लिए इतना लड़ते थे। विलकीज़ कई दिनों तक लापता रहा, पर पार्लियामेंट और मंत्री उसे अच्छी तरह पहचानते थे और पहले ही उससे तंग आ चुके थे। अतएव उन्होंने मामले को उठा लिया और ६ सप्ताह कैद में रख कर लार्ड मेयर और आल्डरमैन ओलिवर भी छोड़ दिये गये। इस झगड़े का परिणाम यह हुआ कि तब से बहसों को प्रकाश करने में कोई बाधा न रही।

इसी प्रकार जन-साधारण के अधिकारों के लिए लड़ते हुए विल कीज़ दिसम्बर सन् १७९७ ई० को परलोक को प्राप्त हुआ।

विनोद।

विलायती मल्लाहों, जिन्हें सेलर कहते हैं, कितने सीधे होते हैं, सो सभी जानते हैं। उनमें से एक मनुष्य किसी घड़ीसाज़ के पास जा कर कहता है, "भाई, हमारी यह घड़ी ठीक कर दो।" घड़ीसाज़ बोला, "यह बहुत बिगड़ गई है। इसको सुधारने में कोई लाभ नहीं। सुधारने में नई घड़ी से अधिक खर्च पड़ जायगा।" सेलर साहब ने उत्तर दिया, "तुम्हें इससे क्या करना है? मशीन घड़ी से दूनी कीमत पर जाय, तो भी कोई परवा नहीं।" घड़ीसाज़ उसके इस कथन का कुछ भी अर्थ नहीं समझ सका। उसने विचार किया, कि इस [illegible] नाव में विशेष [illegible] करने में कोई लाभ नहीं। घड़ी ठीक कर देनी चाहिए, और दाम [illegible] वसूल करना चाहिए। इसे क्या करना है! यह समझ कर उसने घड़ी ले ली और उसे ठीक कर के [illegible] दी। एक दिन [illegible] घड़ी लेने आये। दाम पूछने पर घड़ीसाज़ ने कहा, "मशीन से दूनी मज़दूरी हुई।" ये शब्द उसके मुख से निकलते ही उस [illegible] ने उसके दो [illegible] और [illegible] कहने लगा, "मशीन जितने की थी [illegible] में [illegible] दी है, और तुम [illegible] मज़दूरी में दे रहे हो"!!

ब्रिटिश पूर्व आफ्रिका और भारतीय उपनिवेशी।

" In my opinion founded on a residence of about three and a half years as His Majesty's Commissioner the East Africa Protectorate is in virtue of its position and natural character a possession of no small importance

Sir Charles Eliot.

ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार संसार में कितना बड़ा है, सो बतलाने की यहां आवश्यकता नहीं है।

विलायत में रानी एलिजाबेथ के समय में ही उपनिवेश बसा कर राज्यविस्तार करने की लहर उत्पन्न हुई; और यह लहर अब तक बराबर जारी है। १८३७ में, जब कि महारानी विक्टोरिया गद्दी पर बैठीं उस समय साम्राज्य में कौन कौन से प्रान्त समाविष्ट नहीं हुए थे उनका यहां पर उल्लेख कर देने से पाठकों को मालूम हो जायगा कि इस पौन सौ वर्ष की अवधि में अँगरेजी साम्राज्य की वृद्धि किस तेज़ी के साथ हुई है। उस समय यद्यपि भारतवर्ष का अधिकांश भाग ब्रिटिश अधिकार में आ गया था, तथापि अवध, पंजाब और ब्रह्मा के मुल्क अँगरेज़ों के राज्य में शामिल नहीं हुए थे। आस्ट्रेलिया में विक्टोरिया और क्विन्सलँड प्रान्त अँगरेजी साम्राज्य में नहीं आये थे; न्यूज़ीलँड भी अलग था; अमेरिका में कोलम्बिया प्रान्त ने 'ब्रिटिश' नाम उस समय तक धारण नहीं किया था। अदन, हांगकांग, इत्यादि छोटे छोटे भागों के उस समय इस साम्राज्य में आने का पता भी नहीं था। आफ्रिका में सिर्फ केपकालोनी का उपनिवेश था। उसके बाद न्यासालँड, रोडेशिया, सुडान, नायजेरिया, इत्यादि प्रान्त प्राप्त किये गये। ये सारे प्रान्त अँगरेज़ों ने अपनी कर्तव्यदक्षता से ही प्राप्त किये।

" Where the English have come from is still a matter for controversy; but where they have gone to is writ large over the Earth's surface."

Augustine Birrell.

देशपर्यटन की स्वाभाविक और बलवत्तर इच्छा, नौकानयनविषयक ज्ञान, अज्ञ जनों को ज्ञानामृत पिलाने की सात्विक अन्तःस्फूर्ति रखनेवाले मिशनरियों के विस्तृत प्रयत्न, अज्ञात प्रदेश में जाकर वहां का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक साहस और दृढ़ता, चातुर्यपूर्ण राजनीति, शासनप्रणाली-विषयक अनुभववैचित्र्य और कलाकौशल-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान, इत्यादि सब गुण जिसमें पाये जाते हैं वह राज्य साम्राज्य के अत्यन्त उच्च पद पर क्यों न आरूढ़ होगा?

पाश्चात्य लोगों के परदेशगमन का सिद्धान्त भिन्न है; उनके विचार, उनके साधन भिन्न हैं; और उनके आसपास की परिस्थिति भी सर्वथा भिन्न है। ईस्ट आफ्रिका के ब्रिटिश लोगों की बस्ती करने की प्रणाली यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखी जाय तो मालूम हो जायगा कि विलायत के धनाढ्य और अशिक्षित लोग इधर आये, और वे लोग साहसी, समुद्रयात्रापटु, शूरवीर और व्यापार के द्वारा द्रव्यसंचय करनेवाले थे; और उन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा कर के अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ाई; और उसकी विजयध्वजा खड़ी कर के साम्राज्य स्थापित किया।

इस प्रकार उच्च श्रेणी के लोग पहले इधर आये; और उन्होंने नौकानयन शास्त्र पर अपने नवीन नवीन अनुभव लिख रक्खे। इस देश में उनके पैर लगते ही अज्ञात प्रदेशों को परिचित कर लेने के लिए स्पिकँट, सर सेमुअल बेकर, डा० लिविंगस्टन मि० हेनरी एम् स्टेनली और केमरन, इत्यादि भूसंशोधक (Explorers) लोग निकले; और प्रवास के महान् संकटों को झेलते हुए अंगीकृत कार्य को पूर्ण करने में अपने साहस का अपूर्व परिचय दिया। उन्होंने प्रवास के सब अनुभव, अपने किये हुए नवीन ..., नवीन नवीन लोग और उनके रीतिरिवाज, व्यापार, ... का माल, व्यापारी मार्ग, इत्यादि बातों के विषय में अनेक लिखे; और अपने बाद आनेवाले साम्राज्य-स्थापक अपने ... के लिए मार्ग सुगम कर दिया। उनका यह निश्चित मत था

कि जब तक हमारा साम्राज्य स्थापित नहीं हो जायगा तब तक हमारे स्वाभिमान और गौरव की रक्षा नहीं होगी, हमारे व्यवसाय का ... पोष नहीं होगा; हमारे साम्राज्य के झंडे के साथ ही हमारी नैतिक उन्नति भी फहराती रहेगी। इसी कारण उनके समाजधुरीणों ने और उनके राज्यसंचालकों ने अपना आधिपत्य स्थापित किया; और ... प्रदेश के जल-वायु, कृषि-व्यापार, उद्योगधंधों और एतद्देशीय लोगों के विषय में उपयुक्त सब जानकारी प्रकाशित कर के उपनिवेश बसाने के लिए आनेवाले ब्रिटिश लोगों के मार्ग की बाधाएं दूर कीं। उनके ... जो मध्यम श्रेणी के लोग आये उनका मार्ग जब इस प्रकार सुलभ हो गया तब लगातार उन्नति होती गई।

हां, हम भारतीय उपनिवेशियों की परिस्थिति अवश्य ही उन... सर्वथैव विरुद्ध और निम्न श्रेणी की है।

यदि धार्मिक बन्धन के एक कारण को छोड़ दिया जाय, तो ... जान पड़ता है, कि भारतीय लोगों की मूल प्रवृत्ति दूसरे देशों में उप... निवेश बना कर रहने की नहीं है; और इसीलिए इधर ७५।८० व... पहले का कोई भी भारतीय उपनिवेश कहीं नहीं दिखाई देता। लेकिन जब स्वयं हिन्दुस्तान में लोकसंख्या अमर्याद रूप से बढ़ी; और ... अनेक राजकीय कारण उपस्थित हुए, तब लोगों को पेट भर खाने को ... न मिलने लगा, तथा बनिया लोग अपनी छोटीसी दुकान पर अपना चरितार्थ न चला सके; और अधिकांश प्रजा भूखों मरने लगी। ... कारण अशिक्षित मज़दूरों और बनिया लोगों का ध्यान परदेश की ओर गया; और उन्होंने सोचा कि शायद बाहर निकलने से पेट भर रोटी मिलने लगे। यह सोच कर वे लोग अपने ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों में तथा अन्य देशों में भी व्यापार और मजदूरी के निमित्त से गये। इस प्रकार जब निम्नश्रेणी के और अशिक्षित लोगों की भरती परदेश में हो गई, तब स्वतंत्र भारतीय उपनिवेश का विचार तो एक ओर रहा; किन्तु स्वाभिमान, भारतीय राष्ट्र की प्रतिष्ठा, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक हित की भी रक्षा नहीं हो सकी। मतलब यह है कि यह बात, थोड़ा सा भी विचार करने पर, मालूम हो जाती है कि प्रगत सुशिक्षित और राष्ट्रहित से प्रेरित ब्रिटिश उपनिवेशियों की सन्तोषदायक स्थिति और भारतीय उपनिवेशियों की कष्टमय स्थिति, ये दोनों उनके कर्मों और प्राकृतिक गुणों के नैसर्गिक फल हैं। श्रीकृष्ण महाराज गीता में कहते हैं:—

> उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
> आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
> बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
> अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥
>
> गीता, अध्याय ६।

सारांश यह है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आपही है। चाहे वह अपनी उन्नति कर लेवे और चाहे अपने को अवनति के गढ्ढे में डाल लेवे। वह यदि अपने आपको काबू में रख कर उद्योग और दृढ़ श्रम करेगा तो उसकी उन्नति हो जायगी; और यदि वह बुरे ... विषयों में पतन कर के अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारेगा तो इसका नतीजा स्वाभाविक ही उसे बुरा मिलेगा। यही तत्व उपनिवेशों के ... उपनिवेशों में क्या सर्वत्र—ब्रिटिशों और भारतीयों के लिए ... होता है।

अर्वाचीन काल में उन्नीसवीं शताब्दी से भारतीय लोग उपनिवेशों में जाने लगे हैं। ब्रिटिश ग्यायना में १८४४ में, नेटाल में १८६०, फीजी टापू में १८७९ में, ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका में १८९५-९६ में ... लोग जाने लगे। परन्तु इतनी अवधि में सन्तोषजनक स्थिति ...

भी भारतीय उपनिवेश दिखाई नहीं देता। जो ग्रामीण मजदूर लोग इस विषय में पूरे अज्ञान हैं कि, हम राष्ट्र के अंग हैं; और राष्ट्र के विषय में हमारे भी कुछ कर्तव्य हैं, तथा संघशक्ति का महत्व बड़ा भारी है, उनके ऊपर, ऐसे अज्ञानियों के ऊपर, उपनिवेशों में भारतीय राष्ट्र के गौरव की रक्षा का भार डाल कर हमारे भारतीय सुशिक्षित लोग आप आनन्द से घर में बैठे हुए हैं। हमारी सम्मति में यह बात सर्वथैव अनुचित है। परन्तु हमारे भारतीय सुशिक्षित लोगों में इस विषय में पूर्ण अज्ञान वास कर रहा है कि परदेश के भारतीय लोगों का हित और आर्थिक दृष्टि से स्वहित, किस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है। सच पूछिये तो उपनिवेशों के विषय में पूर्ण जानकारी देना परदेश गये हुए भारतीय लोगों का कर्तव्य है। यदि इस प्रकार का वृत्तान्त प्रकाशित होगा कि, राजकीय दृष्टि से उपनिवेशों में भारतीय लोगों का क्या दर्जा है, अथवा राजकीय अधिकारों के लिए वे अयोग्य क्यों हैं अथवा यह अयोग्यता दूर किस भांति की जावे कि जिससे भारतीय लोगों का कदम आगे बढ़े, तो उपनिवेशों के भारतीय लोगों, उनके नैसर्गिक अधिकारों, उनकी योग्यता-अयोग्यता, उपनिवेशों की सरकार और भारतीय लोगों के विषय में उसकी नीति, और इन सब विषयों में भारत में जो मत प्रचलित हैं; और आपस में जो भ्रम फैला हुआ है, वह सब दूर हो जायगा; और इस विषय में आवश्यक सुधार होने तथा भारतीय परदेश गमन की नीति ठहराने में बहुत सहायता मिलेगी।

हम अकसर सुनते हैं कि परदेश जा कर बहुत से भारतीय धनाढ्य भी हो गये हैं, अवश्य ही वे व्यापार, खेती और अन्य स्वतंत्र व्यवसायों में फँसे हुए हैं। परदेश गये हुए प्रत्येक भारतीय भाई का यह कर्तव्य है कि जिन व्यवसायों से उनकी उन्नति हुई हो, अथवा जिन साधनों से उन्हें लाभ पहुँचा हो, वे सब व्यवसाय और वे साधन वह अपने भारतवर्ष के देशभाइयों के सामने उपस्थित करे, और इस प्रकार दुःख को सहन कर उन्हें सुख का भी मार्ग बतावे। जहां तक हमें मालूम है, इस दृष्टि से उपनिवेशों का वृत्तान्त अपने देशभाइयों तक पहुँचाने का कार्य अभी तक किसी भी दिशा भारत में बहुत कम हुआ है, और विशेष कर ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका के विषय में तो सभी बातों में, भारतवर्ष में, अगाध अज्ञान देखा जाता है। और कितने ही लोगों को यहां के विषय में यदि कुछ मालूम भी होगा तो इतना ही कि यह देश सिंह का मूलस्थान है, और शिकार खेलने का बड़ा अच्छा जंगल है। मतलब यह कि यह बात बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि भारत के हित की दृष्टि से इस देश का वर्तमान समय में तथा भविष्य में कितना महत्व है। यह देश भारत से बिलकुल मिला हुआ है, इस लिए, इसमें सन्देह नहीं, कि इसका व्यवहार बहुत बड़े परिमाण पर भारतवर्ष से होनेवाला है, और चूंकि यह देश अभी हाल ही में उपनिवेश के तौर पर खुला है, इस कारण भारतीय लोकसंख्या को देखते हुए [illegible] लोकसंख्या बिलकुल कम है, और इस कारण राजकीय परिस्थिति भी बहुत कुछ अनुकूल है। और जब कि हमारे व्यापारी लोगों ने, थोड़े ही समय में, अच्छी उन्नति कर ली है, इससे विश्वास होता है कि, भविष्य में भारतीय कर्तृत्वशक्ति को यहां बहुत अच्छा क्षेत्र मिलेगा। वकील, डाक्टर और अन्य स्वतंत्र व्यवसायियों और [illegible] की इस समय भी यहां बहुत आवश्यकता है। मतलब यह कि इस पूर्व आफ्रिका में भारतीय लोगों के [illegible] करने के लिए बहुत [illegible] है। इस लिए यहां के लोगों, उनके [illegible], [illegible] और राजकीय [illegible], उनके उद्योग, [illegible] के विषय में हम विस्तारपूर्वक विवरण करते हैं। इसी कारण

आफ्रिका, अरबिस्तान और हिन्दुस्तान।

है कि हमारे इस लेख का इस समय भारत के सुशिक्षित तरुण लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा; और वे कूपमंडूक की तरह अपने कूप में ही न रहते हुए उपनिवेशों की परिस्थिति से लाभ उठाने को तैयार होंगे; और यहां पर अशिक्षित तथा धनतृषित बनियों के तथा निर्बुद्धि मज़दूरों के शिर पर राष्ट्र की प्रतिष्ठा रखने का जो बोझा है, उसे अपने बुद्धिबल से किसी न किसी अंश में अपने शिर पर ले कर स्वहित और देशहित करने में प्रवृत्त होंगे।

सच पूछिये तो, भारतीय उपनिवेशियों के गुणावगुण और एक उपनिवेशी की दृष्टि से उनकी योग्यता का विवेचन, उनकी वर्तमान परिस्थिति, उसके कारण; और उसके सुधार के उपाय; उनके दोष और उनसे उत्पन्न होनेवाले अनिष्ट परिणाम, स्थानिक राज्यव्यवस्था और भारतीय हितानहित पर उसके परिणाम, उनका अशिक्षितपन और उनकी बिगड़ी हुई समाजस्थिति, नवीन बस्ती तथा उससे उत्पन्न होनेवाले कृषि-व्यापार-सम्बन्धी नैसर्गिक लाभ, इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों का सांगोपांग विवेचन इसके पहले ही होना चाहिए था; और ऐसा न होने के कारण भारतीय उपनिवेशियों की, अतएव भारतवर्ष की, अत्यन्त हानि हुई है। भारतीय उपनिवेशियों की उन्नति रोकनेवाली परिस्थिति उत्पन्न हो गई है; और दिन दिन यह परिस्थिति बढ़ती ही जायगी। इस लिए यदि बहुत जल्द भारतीय सुशिक्षित अपना कर्तव्यकर्म पहचान कर उपाययोजना न करेंगे तो अन्त में उपनिवेशों का द्वार भारतीय लोगों के लिए सदैव को बन्द हो जायगा। पहले आये हुए भारतीय लोगों ने यथाशक्ति किसी न किसी अंश में अपना कर्तव्य बजाया है; और अगला कार्य वे अब अपने सुशिक्षित और बुद्धिमान भाइयों के ऊपर डालते हैं।

"Of Individuals it is true as of Nations that the pioneer is not always the best colonist."

ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका का उपनिवेश बिलकुल नवीन होने के कारण प्रायः बहुत लोग उससे परिचित न होंगे। इस लिए उपर्युक्त महत्वपूर्ण विषय में प्रवेश करने के पहले इस देश का पूर्वेतिहास और भूगोलविषयक वृत्तान्त देना आवश्यक है।

ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका का पूर्वेतिहास।

(पोर्तगीज लोगों के आगमन के पहले का समय) एक [illegible] ग्रन्थकार लिखता है:—

"Happy the people whose annals are blank in history's book!"

Montesquieu.

"जिन लोगों का नाम इतिहास में कोरा है वे भाग्यवान ही लोग हैं।"

इस वाक्य का अर्थ [illegible] नहीं [illegible], क्योंकि इसका पूर्वेतिहास है; और यदि इसका [illegible] न होता तो इसकी [illegible] है। दूसरी बात यह है कि [illegible] है कि, [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

हुई होंगी। परन्तु वे लेखन-कला के अभाव में काल की गति में नष्ट हो गईं। उस समय सब जगह यही कायदा था कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस।" अर्थात् प्रबल जाति दुर्बल जाति को प्रायः नष्ट कर डालती थी; और उनका सर्वस्व छीन लेती थी। उस प्रबल जाति की कुछ कुछ दन्तकथाएं भी होंगी; और उन सब को एकत्र करने से लूट-मार, आग लगाना, गुलामी और खून के सिवाय और कुछ न मिलेगा।

सन् ईसवी की अनेक शताब्दियों के पहले प्राचीन भूगोल-वेत्ताओं को आफ्रिका का पूर्वीय किनारा और उसके पास के टापू मालूम थे।

दूसरी शताब्दी में पूर्व आफ्रिका भी टॅलेमी के समय में "अज़ानिया" के नाम से प्रकट थी; और वह उसके विषय में बहुत विस्तृत वृत्तान्त देता है। "पेरीप्लस" की पुस्तक में कर्त्ता ने इस विषय का विस्तृत वर्णन किया है कि अज़ानिया के दक्षिण ओर ज़ांज अथवा ज़ागून लोगों के प्रदेश के पास कैसा जलप्रवास किया। अर्वाचीन 'ज़ंज़ीबार' शब्द उक्त शब्द से ही बना है। अन्त का 'बार' अर्थात् जमीन अथवा किनारे का अपभ्रंश है। टालेमी को जो खबर मिली वह एले-ग्ज़ेंड्रिया के समुद्रीप्रवासी लोगों से मिली, जो कि आफ्रिका के पूर्वीय किनारे पर आते जाते रहते थे। उनके नकशे से यह भी मालूम होता है कि उनके समय में बड़े बड़े सरोवरों का अस्तित्व था। पाश्चात्य भूगोलकारों को सन् १८५० तक जो बातें मालूम न थीं, वही सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी में न जाने उनको कैसे मालूम होगईं!

नवीं शताब्दीः—(अरब लोग) अरबी इतिहासकारों ने लिखा है कि इरक के सरदारों ने ओमान के सुलतान सैयद सुलेमान के ऊपर हमला कर के उसको पराभूत किया। उन भगोड़े अरब और परशियन लोगों ने ज़ांज लोगों के प्रदेश में बड़ी बड़ी बस्तियां बसाईं। कहते हैं कि इटा-लियन पूर्व आफ्रिका की राजधानी मकदिश् को भी उपर्युक्त पराभूत लोगों ने ही बसाया। इसके बाद किल्वा, मुम्बासा और लामू, इत्यादि प्रदेश, कुछ काल बाद, बसाये गये। और इसी शताब्दी में इस देश में एशियाटिक लोगों के पैर जमे।

सन् ११००—इस किनारे पर जापानी और चीनी लोग आये। क्योंकि सन् ७१३ और ११७० के बीच के सिक्के मिले हैं। इसी समय आये हुए एक चीनी यात्री ने लिखा है कि इस प्रदेश में फैंग नाम का एक पक्षी है। वह जब आकाश में उड़ता है तब अपने पंखों से सूर्य को ढक लेता है। वह ऊंटों को निगल सकता है; और उसके पंखों की नली का उपयोग पानी भरने के पीपों के समान होता है, ऐसा पक्षी यहां नहीं था; और न है-अब तो चूंकि उसके मिलने की सम्भावना ही नहीं है, इस लिए पहले आनेवाले लोगों को डरना न चाहिए।

जिस समय कि पोर्तुगीज़ लोग बर्किडी में पहले पहल आये तब तक अरबी लोगों की स्थिति में विशेष रद्दोबदल नहीं हुआ।

सन् १३२८—इब्न बतूता नामक प्रसिद्ध अरब प्रवासी जब इस प्रान्त में आया था, उस समय के उसके लेख से मालूम होता है कि यहां के लोग उस समय बहुत सभ्य, धार्मिक और सात्विक मनोवृत्ति के थे। न जाने इतने थोड़े समय में उनका इतना सुधार कैसे होगया।

पोर्तुगीज़ लोगों का आगमन।

यूरप में पहले पहल वास्कोडिगामा ने पूर्व आफ्रिका के विषय में समाचार दिया।

सन् १४९८—इस वर्ष वह केप ऑफ़ गुडहोप की ओर चक्कर काटते हुए, किनारे किनारे से प्रवास कर के, मोज़ेंबिक, मुम्बासा और मालिंडी बन्दर में आया। ७ अप्रैल को मुम्बासा बन्दर के पास आकर उसने लंगर डाला। मुम्बासा का उस समय का जो वर्णन दिया हुआ है उससे जान पड़ता है कि वह बन्दर खूब चलता होगा। वास्कोडि-गामा मुम्बासा से मेलिंडीस को गया। वह स्थान शायद उसे बहुत पसन्द आया। वह लिखता है कि "यह बस्ती समुद्र किनारे पर बसी हुई है। यहां के घर ऊंचे हैं; और चूने से पुते हुए सफ़ेद, अतएव स्वच्छ दिखाई देते हैं। आसपास नारियल इत्यादि के ऊंचे वृक्षों की घनी झाड़ियां हैं। हम यहां नौ दिन रहे; और बड़ा आनन्द उठाया।"

सन् १४९९ में वास्को डिगामा ने जो पत्थर की मीनार बनवाई वह अब तक उसके आगमन को जतला रही है।

अब यहां से मुल्क के लिए रक्तपात और युद्धों का प्रारम्भ होता है। अरबिस्तान इस देश से मिला हुआ है, इस लिए अरब लोग यहां आये; और मीनार के प्रदेश में जाकर भूगोलविषयक ज्ञान प्राप्त किया;

पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह ज्ञान कौनसा, कब और प्राप्त किया। हां, इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने किनारे के अपनी सत्ता स्थापित की; और वे सब अच्छी दशा में थे। इतने पर भी पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक पाश्चात्य लोगों को इस का पता तक न था। परन्तु भारतवर्ष का मार्ग ढूंढ़ते हुए, इसी प्रकार कोलम्बस को, भारत का पता लगाते हुए, अमेरिका प्राप्त हो गया। उसी प्रकार वास्कोडिगामा को भारतवर्ष के मार्ग पर यह प्रदेश मिल गया। और यहां पर पाश्चात्य सत्ता इस पहले यूरोपियन ने ही स्थापित की। जब से भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे पर पोर्तुगीज़ लोगों की सत्ता स्थापित हुई। और उस प्रदेश पर देखरेख करने के लिए गव-र्नर नियत किया गया, तब से यूरप और भारतवर्ष के बीच में विशेष आवागमन शुरू हुआ। परन्तु लिस्बन से सीधा भारतवर्ष को आना बहुत दूर का मार्ग था; और उस समय पालों के बल पर चलनेवाली नौकाओं से इतनी दूर का किनारा पाना बहुत कठिन था; इस लिए जगह जगह मुकाम ढूंढ़ निकालना आवश्यक था; इसी से सेंट हेलीना, केप आफ़ गुड होप, मोज़ेंबिक, मुम्बासा और मलिंडी, इत्यादि बन्दर भी आश्रय के लिए कायम किये; और इन स्थानों को सदैव अपने हाथ में रखने के लिए उन पर अपनी सत्ता स्थापित करना आवश्यक हुआ और यह प्रान्त भारतवर्ष के गवर्नर के अधिकार में दिया।

सत्ता स्थापित करना उस समय कुछ कठिन काम नहीं था। नेटिव लोगों की अपेक्षा यदि हथियार किसी अंश में भी अच्छे हुए; और किसी साहसी पुरुष ने किसी प्रमुख बस्ती में अपना झंडा खड़ा कर दिया, अथवा कोई स्तम्भ खड़ा कर दिया, तो बस इतने ही से सारा प्रदेश उसके अधिकार में चला जाता था। उसने यदि कोई कोटबन्दी की जगह बना ली अथवा कोई किला बना लिया तो फिर उसके अधिकार के विषय में बिलकुल संशय नहीं रहता था। फिर न सिर्फ उस प्रान्त ही पर, किन्तु किनारे के पीछे सैंकड़ों मील की भूमि पर उसका अधिकार सिद्ध होता था।

सन् १५०० ई० में केब्रल नामक पोर्तगीज़ सरदार ने मुम्बासा शहर को लूटा; और फिर १५०५ में भारतवर्ष के पोर्तगीज़ वाइसराय फ्रेन्सि स्कोडी, अलमैंडा ने मुम्बासा, ज़ंज़ीबार, लामू और किल्वा शहर ल कर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया, और अन्त में १५ में चार मास तक मुम्बासा को घेरे रह कर उस शहर को जला डाला इसके बाद अवश्य ही अनेक वर्ष तक अप्रतिहत रूप से उनकी सत्ता जारी रही। इसके बाद पोर्तगीज़ लोगों की चढ़ाई की लहर दक्षिण ओर को उतरी; और उन्होंने सोफाला किला, इत्यादि शहर हस्तगत किये; और थोड़ी ही अवधि में सकोआ; लामू, मलिंडी, मोज़ांबिक, ज़ंज़ीबार और मकदिश् इत्यादि शहर अपने जीते हुए प्रदेशों में दाखिल किये। और इस प्रदेश पर द्वार्त दि लेमास को गवर्नर नियत किया गया; और इसने मलिंडी को अपना मुख्य स्थान बनाया, क्योंकि यह स्थान गोवा से आने-जानेवाली नौकाओं के लिए सुभीते का था। इस प्रकार उन्होंने प्रायः आफ्रिका का पूर्वीय किनारा व्याप्त कर लिया। यहां के मूल निवासी अरब लोगों को पोर्तगीज़ सत्ता पसन्द न थी और बीच बीच में दंगे भी हुआ करते थे। परन्तु तुरन्त ही वे दंगे शान्त होगये; और पोर्तगीज़ सत्ता बहुत काल तक जमी रही। इस अवधि में प्रायः उन्होंने भीतरी भागों की खोज अथवा इस देश का सुधार इत्यादि कुछ नहीं किया। एक प्रसिद्ध जर्मन मिशनरी और प्रवासी इस पोर्तगीज़ सत्ता के विषय में लिखता है:—

"In East Africa the Portuguese have left nothing behind them but ruined fortresses. Palaces and eccle-siastical buildings. No where is there to be seen a single trace of any real improvement effected by them"

Dr. Ludwig Krapf.

"पोर्तगीज़ लोगों ने गिरे हुए किले, महल और प्रार्थना-मंदिरों को छोड़ कर और कुछ भी पीछे नहीं छोड़ा; और सच्चे सुधार का एक भी चिन्ह दृष्टि में नहीं आता।"

यह स्पष्ट है कि चूंकि भारत के पोर्तगीज़ राज्य से, सुभीते के साथ हेलमेल रखने के लिए इस प्रान्त का मुख्य उपयोग किया गया था, इस लिए उन्होंने कोई भी सुधार नहीं किये।

सन् १५८४ में मीर अलीबे नामक तुर्क लुटेरा आया; और मुम्बासा इत्यादि की बस्तियों को लूट कर १०००० का माल और ५० पोर्तगीज़ कैदी ले गया। इसी समय एक दूसरी जाति के लोगों ने इस देश पर

[illegible] की, चीन के लोग अफ्रिका नदी के दक्षिण में स्वतंत्रता से वर राज कर रहे थे। उन्होंने किलवा शहर ले कर ३००० लोगों को वहां निर्दयता से कतल किया, और एक के बाद एक सब शहरों को हस्तगत करते हुए मुम्बासा को घेर लिया, और मकप (मुम्बासा के पश्चिम ओर का भाग) में डेरा डाल दिया। इतने में अरबी और उसके तुर्क लोग फिर आये। उन्होंने शस्त्र मेरानी में उतर कर एक किला बनाया। सन १५८४ में लोगों ने मोर अरबी को मुम्बासा शहर लौटा दिया, इस लिए उसका बदला लेने के लिए गोवा के वाइसराय ने टामस डीसूज़ा कुटीनो के हाथ में एक जहाजी बेड़ा देकर भेजा। अर्थात् उस समय मुम्बासा शहर तीन शत्रुओं की ओर से दब गया था। जंबू लोगों ने पोर्तुगीज लोगों से समझौता करके तुर्कों पर हमला किया, और मोर अरबों को पीट कर के शेष लोगों को भगा दिया। इसके बाद मुम्बासा पूर्णतया पोर्तगीज लोगों के कब्जे में आ गया। अवश्य ही जंबू लोगों की मैत्री का बदला उन्होंने विश्वासघात से दिया। पोर्तगीज लोगों ने सम्मलहन कर के जंबू लोगों को कतल किया, और पूर्णतया पराजित किया। इसके बाद उन्होंने अपनी रक्षा के लिए एक मजबूत किला बनाया, यह अब भी ऐतिहासिक दृष्टि से दर्शनीय है। उपर्युक्त कारवाई में मालिंडी के अरब सुलतान हसन बिन अली की सहायता मिली थी; इस कारण उन्होंने उसे मुम्बासा का सुलतान बनाया।

अगले पचास वर्ष में यद्यपि पोर्तगीज लोगों की सत्ता पलट देने के समान जबरदस्त प्रतिस्पर्धी नहीं मिला, तथापि यह राज्यरूपी नौका चलाने में बहुत अड़चन पड़ने लगी। क्योंकि पहले तो पोर्तगाल की लोकसंख्या ही थोड़ी है; और जब उन्होंने भारत का उपनिवेश, ब्राज़ील और पूर्व आफ्रिका के उपनिवेश प्राप्त किये, तब इन सब उपनिवेशों में पूरे पूरे योग्य मनुष्य भेजना कठिन होने लगा। जिन साहसी वीरों ने ये प्रान्त अधिकृत किये उनके पीछे योग्य मनुष्य भेजने को जब न मिले तब निस्सन्देह यही कहना चाहिए कि ऐसी परिस्थिति में इस देश में इस लुसितानियम (पोर्तगीज़) राष्ट्र को उपनिवेश बसाने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। वास्कोडिगामा के समान नेताओं के मिलने से और अपने साहसी स्वभाव के कारण निस्संदेह पोर्तगीज़ लोग शीघ्र ही वैभव शिखर पर आरूढ़ होगये, परन्तु यही स्थिति आगे कायम नहीं रही, अर्थात् उसी प्रकार के साहसी लोगों की मालिका नहीं रही, और देश की अन्तर्व्यवस्था यथायोग्य नहीं रही, और इन्हीं कारणों से, अगली दो शताब्दियों में ब्रिटिश लोगों ने जो कर दिखलाया वह वे लोग नहीं कर सके। यह बतलाने वाला कोई उस समय न था कि राष्ट्र के नवीन उपनिवेशों में राज्य ने कैसा बर्ताव कैसा रखना पड़ता है; और परदेश का संकटपूर्ण समय टल जाने के पहले ही स्वदेश में अन्तस्थ कलह उत्पन्न होते थे, इसका परिणाम ऐसा हुआ कि स्वार्थसाधु परन्तु अनुभवी लोगों के हाथ में उपनिवेश के सूत्र आगये, और इस कारण पोर्तुगीज़ लोगों के मित्रों की अपेक्षा शत्रु ही अधिक होगये। इस पोर्तुगीज़ उपनिवेश से यदि तात्पर्य निकाला जायगा तो यही निकलेगा कि महासागर के भारी विस्तार से भूप्रदेश ढूंढ निकालने में जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे गुण नवीन प्राप्त किये हुए भाग के चलाने में उपयोगी नहीं ठहरते।

मुम्बासा के सुलतान हसन बिन अली की पोर्तुगीज़ गवर्नर से पटी नहीं; इस लिए वह मुम्बासा छोड़ कर भाग गया; पर अन्त में लड़ाई में उसका खून हुआ। इस सुलतान के लड़के को शिक्षा के लिए गोवा को भेज दिया था। वहां उसने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार करके एक पोर्तुगीज़ स्त्री से विवाह कर लिया। उसके बाप की मृत्यु के बाद उसको गोवा से ला कर सुलतान की गद्दी पर बैठाया। इसके अगले ही वर्ष इस नवीन सुलतान ने प्रायः सब, अर्थात् लगभग १०० पोर्तगीज़ लोगों को कतल किया; और उनका मजबूत किला भी ले लिया। इस विश्वासघात का बदला लेने के लिए गोवा से फ्रांसिस्को डीमूरा एक पलटन के साथ भेजा गया परन्तु उक्त बलवाई सुलतान यूसुफ़ बस्ती का सत्यानाश कर के और किले को गिरा कर दो जहाजों के साथ भग गया; और इसके बाद सात वर्ष में वह मर गया; यही मुम्बासा का अन्तिम सुलतान है। अवश्य ही, सात वर्ष की अवधि में इसने दंगाफिसाद और लूटमार मचा कर पोर्तगीज़ लोगों को बहुत सताया। कुछ वर्ष बाद पोर्तगीज़ लोगों की सत्ता स्थिर हुई, परन्तु जहां राज्यपद्धति ही अत्याचारपूर्ण और लापरवाही की है वहां शान्ति कैसे रहेगी ?

आघात होने पर प्रत्याघात होना सृष्टिनियम के अनुसार ही है। पाश्चात्य लोगों की चढ़ाइयां सदैव लोग कहां तक सहन करते रहें ? इस समय जो एक यह मत प्रचलित हो रहा है कि एशियाखण्ड एशिया के लोगों के लिए ही है अथवा भारतवर्ष भारतीय लोगों के लिए ही है, इसका रहस्य भी इसीमें है। आफ्रिका के इस भाग से जिन लोगों का सम्बन्ध आया उनके साथ यहां के लोगों ने तथा यहां के लोगों के साथ उन लोगों ने जो असहिष्णुता दिखलाई वह सृष्टिनियम के अनुसार नहीं थी।

इसी वर्ष मुम्बासा के लोगों ने पोर्तगीज लोगों के असह्य कष्ट से छुटकारा पाने के लिए अरबस्तान के मस्कत के इमाम से विनती की; और यह विनती इमाम ने स्वीकार भी की, इस कारण अगले ४०।५० वर्ष का समय अरब और पोर्तगीज लोगों की लड़ाइयों और रक्तपात में व्यतीत हुआ। उक्त लड़ाई के समय में मुम्बासा शहर केन्द्रस्थान बना था; और इसी को अधिकृत करने में प्रत्येक पक्ष की हारजीत अवलम्बित थी।

दि पूना कैम्प एजुकेशन सोसायटी का दशम-वार्षिक उत्सव।

गत मई सन् १९१७ को यह उत्सव खान बहादुर एन. एम्. कन्ट्रर की अध्यक्षता में हुआ।

सोंडूर के महाराज का बाघ का शिकार।

सोंडूर (जि० बिलारी) के महाराज श्रीमान् वेंकटराव साहब घोरपडे ने २४ जुलाई १९१७ को सायंकाल सात बजे यह शिकार किया। बाघ की लम्बाई ६ फीट ७ इंच और उंचाई २ फीट ७ इंच है।

लखनऊ की "भूलभुलैयां" नामक इमारत।
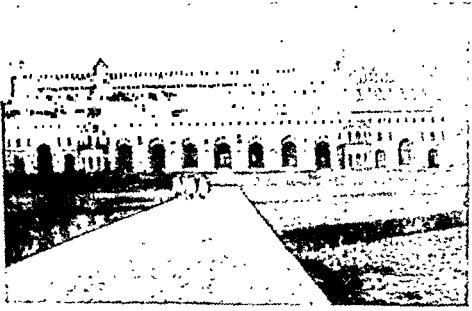
श्रीयुत सरदेसाई का तैयार किया हुआ पुतला।

गत मार्च मास में बम्बई में चित्रकारों की जो प्रदर्शिनी हुई उसमें इस पुतले को [illegible] स्वर्ण पदक और प्रथम पारितोषिक मिला है।

जलाने की लकड़ी से निकलनेवाले पदार्थ।

वर्तमान यूरप के महायुद्ध का परिणाम किसी देश पर कैसा ही हो, परन्तु इसमें बिलकुल संशय नहीं है कि यह भारतवर्ष के लिए लाभदायक ही होगा। यह सुचिन्ह ही है कि यहां के उद्योग धंधों को उत्तेजना देने के लिए सरकार विचार कर रही है। यदि इससे हम लोगों ने कोई लाभ न उठाया तो समझना चाहिये कि हमारे समान दुनिया में कोई हतभागी नहीं है। तारकोल (डाम्बर) से प्रथम जर्मनी ही ने सुन्दर रंग तैयार किया था और यह कार्य आज तक जर्मनी के ही अधीन रहा। परन्तु अब इंगलैण्ड ने इस प्रकार के कारखाने खोल कर

जलाने की लकड़ी से उपयुक्त पदार्थ निकालने का कारखाना। (कोल्हापुर)

जर्मनी को पीछे हटाने का संकल्प किया है। और विलायत के धनवान् लोग भी सरकार की सहायता से अपना धन लाभदायक व्यवसायों में लगा रहे हैं। ऐसे समय में हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि हम क्या कर सकते हैं।

तारकोल (डांबर) से रंग तैयार करने और उसको सूत पर पक्का करने में "एसेटिक एसिड" (Acetic Acid) की आवश्यकता होती है। यह Acid जलाने की लकड़ियों से तैयार किया जाता है। और इसके बनाने की युक्ति सन् १९०७ के 'केसरी' के दो अंकों में दी गयी है। परंतु उस वक्त कोई कारखाना कुछ अपरिहार्य अड़चनों के कारण न खुल सका। इस समय "कोल्हापुर-दर्बार" ने यह कारखाना खोलने का निश्चय किया है। इस कारखाने की सफलता के लिए जो प्रयोग किये गये हैं उसका कुछ वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

प्रयोग के लिए १८ गाड़ी लकड़ी लेकर उससे निम्नलिखित पदार्थ उत्पन्न किये गये।

१२०० पौंड "वुडस्पिरिट", wood spirit or crude Acetic Acid
१५ पौंड डाम्बर, (Wood Tar) Stockholm Tar
१४००० पौंड कोयला, Charcoal.

इस प्रकार वस्तुयें तैयार हुईं जिनकी कीमत निम्न लिखित है:—

१४०० पौंड कोयले की कीमत, प्रति रुपया ७० पौंड के हिसाब से, २०) रु०।

६५ पौंड डाम्बर की कीमत, प्रति ग्यालन ३) के हिसाब से, १३) रु०। Wood Spirit का भाव अभी अनिश्चित है। हां, प्रति १०० पौंड की कीमत १० शिलिंग कही जाती है। परंतु भेजने के लिए भाड़ा आदि जोड़ कर अधिक होती है।

तथापि यह बात निश्चित है कि कोयला और डाम्बर बहुत जल्दी बिक सकता है।

अब खर्च का परिमाण देखना चाहिये:—

१८ गाड़ी लकड़ी की कीमत, प्रति रुपया १ गाड़ी के हिसाब से १८)
कुलियों की मज़दूरी ५॥≈)

कुल खर्च २३॥≈)

उपर्युक्त हिसाब में कुली-मजदूरी अधिक रखी गयी है। और लकड़ी भी नजदीक लेने में खर्च कम पड़ता है। यहां पर दिये हुए चित्रों से कारखाने में उपयुक्त होनेवाली यंत्रसामग्री पाठकों के ध्यान में आ जायगी। अब, आप ही इस बात का विचार करें कि इस प्रकार का व्यवसाय भारतवर्ष के लिए कितना लाभदायक हो सकता है।

पांच हज़ार से लेकर दस हज़ार तक की पूंजीवाले महाशय भी जंगल पास होने से यह काम कर सकते हैं। कोयला, डाम्बर और Wood Spirit यह पदार्थ बहुत ही आवश्यक समझे जाते हैं

सृष्टिदेवी की शाल।

(लेखक—श्रीयुत वासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए० ।)

ऊपर आकाश की ओर दृष्टि फेंकिये, अथवा भूतल पर के वनस्पति, और पशु, पक्षी आदि प्राणियों की ओर देखिये; जिधर देखिये उधर यही दिखाई देगा कि सृष्टिदेवी ने नाना प्रकार के रंगों की चित्रविचित्र, अत्यन्त नयनमनोहर शाल ओढ़ ली है। यह इतने भिन्न २ रंग क्यों चाहिए? एक ही रंग होने से क्या काम नहीं चल सकता था? जल, स्थल, आकाश, पशु, पक्षी, अचेतन वस्तु और सचेतन प्राणी—इन सब को, यदि परमेश्वर ने आकाश की भाँति गाढ़ा नीला रंग अथवा बर्फ की तरह सफ़ेद-शुभ्र एक ही रंग दिया होता, तो क्या हानि हुई होती? ऐसे प्रश्न मनुष्य के मन में उत्पन्न होना बिलकुल स्वाभाविक है। वास्तव में इन प्रश्नों का उत्तर इतना सहज है कि प्रत्येक मनुष्य, जिसको कि मनुष्य-स्वभाव का तथा मनुष्य की शरीर-रचना का कुछ भी ज्ञान है, सहज ही दे सकता है। क्षणभर के लिए मान लीजिये कि, हमारे घर की सारी वस्तुएं एक ही रंग की हैं। घर की दीवारें, बर्तन, शरीर के कपड़े, कुर्सियां, मेज़, दरवाजे, सब कुछ सफ़ेद ही सफ़ेद है। सफ़ेदी के सिवाय दूसरा कोई रंग घर में नहीं दिखाई देता। अब बतलाइये, ऐसी दशा में, क्या मनुष्य को एक घंटा भी चैन पड़ सकती है? कदापि नहीं। उसके चर्म-चक्षुओं को ऐसे घर का दर्शन अत्यन्त हानिकारक होगा। एक रंग से खींचे हुए फोटो की अपेक्षा कई रंगों से बनाये हुए चित्र क्यों अधिक चित्ताकर्षक होते हैं? इसका कारण यही है कि अन्य विषयों में जिस प्रकार चित्रकार सृष्टि की नक़ल करता है, उसी प्रकार रंग के विषय में भी वह सृष्टि की ही नक़ल करता है। इस लिए यदि भिन्न २ रंगों का मिश्रण किसी तरह से भी चित्रकार ने कर दिया हो, और उनमें सृष्टि रचना की कृति की नकल करने का चातुर्य न दिखलाया हो, तो वह चित्र भिन्न २ वर्णयुक्त होने पर भी प्रेक्षक को नेत्रशूल उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त, परमेश्वर ने नेत्र की रचना ही ऐसी की है कि, यदि उसकी दृष्टि में नाना प्रकार के रंग न दिखलाई दें, और सिर्फ़ एक ही रंग दिखलाई दे, तो वह बहुत जल्द थक जायगी—उसकी उल्लास-वृत्ति लय हो जायगी, तथा उसे बहुत दुःख और कष्ट होगा।

सृष्टि में जो वर्णवैचित्र्य दिखाई देता है, वह मनुष्य की दृष्टि को सुख देने के लिए-उसका मन बहलाने के लिए-उसकी संसारयात्रा आनन्द से पूर्ण करने के लिए दिखाई देता है। यह हम नहीं कह सकते कि, अन्य प्राणियों के लिए भी यही बात उपयुक्त हो सकती है। पानी की मछलियों को पानी के एक ही रंग में सारा जन्म काटना पड़ता है, उसीमें उनको सुख जान पड़ता है। और यदि बाह्य सृष्टि का वर्ण-वैचित्र्य दिखाने के लिए, उनको क्षण भर के लिए बाहर निकाला जाय, तो वे तड़फड़ाने लगती हैं। इस लिए यह नहीं कहा जा सकता, कि मनुष्य प्राणी के विषय में अन्वेषण किया हुआ नियम मछलियों अथवा अन्य प्राणियों के लिए भी उपयुक्त हो सकता है; पर मनुष्य प्राणी के विषय में तो उपर्युक्त नियम अवश्य ही सत्य ठहरता है।

जो लोग यह कहते हैं कि, मनुष्यप्राणी सृष्टिदेवी का दुलारा बच्चा है, उनके इस कथन की सत्यता उपर्युक्त नियम से बहुत कुछ सिद्ध होती है। उनके कथनानुसार सृष्टिदेवी अपने बालकों के कौतुक के लिए ही अपनी शाल का रंग बार बार बदलती रहती हैं। यह बात भी गलत नहीं है कि सृष्टि के क्रम में भिन्न भिन्न ऋतुएं हैं और प्रत्येक ऋतु में सृष्टि का बाह्यांग भिन्न २ वर्णों से सजा हुआ दिखाई देता है। परन्तु इतने वर्णवैचित्र्य से भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता, इसके लिए और भी वैचित्र्य की आवश्यकता होती है। सृष्टिदेवी अपने बालकों का कौतुक पूर्ण करने के लिए, यद्यपि बारंबार रंग बदल रही हैं और भिन्न भिन्न वर्णों की वस्तुएं उनकी दृष्टि में लाने के लिए इतना प्रयत्न कर रही हैं, तथापि मनुष्य की वैचित्र्य-दर्शन की लालसा पूरी नहीं होती! उसको और वैचित्र्य की आवश्यकता होती है। केवल गुलाब ही को ले लीजिये। सृष्टि ने मनुष्य के लिए भिन्न भिन्न ८० रंगों का गुलाब निर्माण किया; तथापि मनुष्य की तृप्ति नहीं हुई। इस लिए उसने अब यह प्रयत्न शुरू किया कि एक पौदे में एक ही रंग के गुलाब के फूल न लगें; किन्तु भिन्न भिन्न रंग के गुलाब के फूल लगें। सृष्टिदेवी ने अपने प्यारे बालकों की यह लालसा भी पूर्ण की। देखिये, यह कितना भारी उसका मातृप्रेम है!

परन्तु क्या केवल अपने बालकों की लालसा पूर्ण करने के लिए ही उसने अपनी शाल में इतना वर्ण-वैचित्र्य रक्खा है? इस प्रश्न का सन्तोष-जनक उत्तर देना कठिन है। शास्त्रज्ञों का मत है, कि पशु पक्षी आदि प्राणियों में जो वर्णवैचित्र्य दिखलाई देता है उसमें उसका कुछ अन्य हेतु है। वे कहते हैं कि, अनेक प्रकार के प्राणियों को भिन्न २ रंग देने में सृष्टिदेवी का यह हेतु है कि जिससे उस प्राणी का उसके शत्रु से रक्षण हो सके। पक्षियों की तीक्ष्ण दृष्टि से बचने के लिए, हरी घास में रहनेवाले जीवों का रंग हरा और सूख कर पीली हो जानेवाली घास में पीले रंग के जीव सृष्टि ने उत्पन्न किये हैं। शिकारी कुत्तों अथवा हिंसक पशुओं से बचने के लिए, खरगोश को सफ़ेद रंग दिया, जिससे सूखी हुई घास में वह जल्दी नहीं दिखाई देता। इसी कारण सदा हरी घास में सरपट फिरनेवाले सर्प का रंग हरा अथवा मटमैला बनाया। गिरगिट के समान कितने ही प्राणियों को अपने भक्ष्य की खोज के लिए कभी भिन्न भिन्न वर्णों के पेड़ों पर चढ़ना पड़ता है, कभी भुसभुसी मिट्टी में घुसना पड़ता है, इसी लिये उसको, भिन्न भिन्न रंग पलटने की शक्ति भी दी गयी है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्राणियों के रंग के विषय में भी कहा जा सकता है।

परन्तु यह भी नहीं कह सकते कि सब जगह जीव-जन्तुओं का वर्ण-वैचित्र्य, प्राण रक्षार्थ ही है—शास्त्रज्ञों ने कई स्थलों पर अन्य हेतु का भी अनुमान निकाला है। उदाहरणार्थ, मनुष्यप्राणी को ही लीजिये, अमेरिका के इंडियन लाल रंग के, निग्रो काले रंग के, चीनी-जापानी मनुष्य पीले रंग के क्यों होते हैं? यहां पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन रंगों की सहायता से उक्त मनुष्य अपनी प्राण रक्षा कर सकते हैं। यहां पर शास्त्रज्ञ दूसरी तर्कपद्धति भिड़ाते हैं। वे कहते हैं कि प्राणी के देह में—उसके चर्म में—एक प्रकार का वर्ण कोष होता है और इस कोष में जिस प्रकार का रंग संचित होता है वही रंग उसके चर्म को प्राप्त होता है। निग्रो जाति के मनुष्यों के वर्णकोष का रंग काला होने से उनके चमड़े का रंग भी काला होता है। अमेरिका के इंडियनों के वर्ण-कोष में लाल रंग संचित होने के कारण उसी रंग का प्रतिबिम्ब उनके चर्म में दिखाई देता है। इस पर यह प्रश्न उठ सकता है कि वर्णकोष में ऐसे भिन्न २ रंग कैसे संचित होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर, प्राचीन शास्त्रज्ञ इस प्रकार देते हैं कि, मनुष्य जिस परिस्थिति में जन्म पाता और बढ़ता है उस परिस्थिति के पदार्थों के रंगों का प्रतिबिम्ब उसके वर्णकोष पर पड़ता है; और इसी कारण वह वर्ण उस मनुष्य के चमड़े में दिखाई देने लगता है। परन्तु इस उत्तर से नवीन शास्त्रज्ञों का सन्तोष नहीं होता और इसी लिये उन्होंने बड़े परिश्रम से अन्वेषण कर के अंत में यह निश्चित किया है कि, प्राणी प्रायः जो रंग आंखों से विशेष कर देखता है उसका प्रतिबिम्ब उसके मस्तिष्क के किसी विशिष्ट भाग पर पड़ कर, वह भाग उससे उत्तेजित होता है और फिर वही उत्तेजना, कुछ विशिष्ट स्नायुओं के द्वारा, उस मनुष्य के चर्म के वर्ण-कोष तक पहुँचती है। और उसीसे वर्णकोष में उस रंग की अधिकता होकर वह रंग उसके चर्म में प्रधानता से दिखलाई देता है।

प्रसिद्ध जीवतत्त्ववेत्ता डॉ० पवर ने, जब, बार बार रंग बदलनेवाले (इन को हम बहुरूपी कह सकते हैं) कितने ही प्राणियों पर विच-

प्रयोग करके, और उनके मस्तिष्क को निश्चेष्ट करके देखा, तब उनको मालूम हुआ कि उन प्राणियों की रंग बदलने को शक्ति नष्ट हो गई। इसके सिवाय उन्होंने देखा कि आस पास को परिस्थिति का रंग ग्रहण करने की दृष्टिशक्ति जिनमें कम है उनमें रंग बदलने की शक्ति भी कम ही है। अनेक प्रयोग करके देखने के बाद उनका यह मत निश्चित हुआ कि परिस्थिति के रंग का प्रतिबिम्ब चर्मचक्षु के द्वारा पहिले मस्तिष्क पर पड़कर फिर वही स्नायुओं के द्वारा चर्म के वर्ण-कोष में सक्रमित होने से उस चर्म में कुछ विशिष्ट रंग आता है।

डॉ० वेयर का सिद्धान्त पहले पहल तो लोगों को सही जान पड़ा; परन्तु खोज करने पर उसमें भी एक भेद पाया गया। वह भेद यह है कि यदि डॉ० वेयर का सिद्धान्त ठीक है तो फिर अपने आस पास के कोष में घिरा हुआ स्वस्थ निद्रित कीटक भी अपना रंग बदलते हुए क्यों दिखाई देता है? उस समय तो उसकी आखें बंद रहती हैं, फिर यह कब सम्भव है कि उसका चर्मचक्षु, परिस्थिति का प्रतिबिम्ब मस्तिष्क तक पहुँचावे? अथवा दूसरा उदाहरण लीजिये, उत्तरी ध्रुव के प्रदेशों में जिधर देखिये उधर ही सफेद-शुभ्र बर्फ ही बर्फ दिखाई देता है। बर्फ के सफेद रंग के सिवाय अन्य रंग ही वहाँ नहीं दृष्टि आता, तथापि, वहाँ के भी बहुरूपी जीव-जन्तु रंग बदलते दिखाई देते हैं। उनके मस्तिष्क पर बहुवर्णों का प्रतिबिम्ब कहां से आता है? [सा]रांश यह है कि, डॉ० वेयर के सिद्धान्त से भी शास्त्रज्ञों का समा[धा]न नहीं हुआ। इस लिए अब उन्होंने एक और पहलू बदला, वे [क]हने लगे कि, प्राणियों को भिन्न भिन्न वर्णों की जो प्राप्ति होती है वह [परि]स्थिति के रंग के प्रतिबिम्ब से नहीं, किन्तु सूर्य के प्रकाश से प्राप्त [हो]ती है। सूर्यप्रकाश की किरणें सप्तरंगों का मिश्रण हैं। इस लिए [उ]स प्राणी में किसी विशेष समय में जो विशिष्ट रंग ग्रहण करने की [शक्ति] होगी। वह प्राणी उस समय में उस रंग का प्रतिबिम्ब ग्रहण [कर]के उसे मस्तिष्क तक पहुँचाता है और वही फिर स्नायुओं के द्वारा [चर्म] के वर्णकोष तक संक्रमित होता है। पर यह सिद्धान्त भी सार्व[त्रिक] रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें भी भेद देख [पड़ते] हैं। गहरे समुद्र की तह तक सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, [पर] वहां भी चित्र-विचित्र वर्ण के जलचर प्राणी संचार करते हुए [दिखाई] देते हैं। इसके सिवाय, मनुष्य का रंग काला, गोरा, पीला [भले ही] हो, परन्तु उसके शरीर का रक्त सर्वत्र समान ही लाल रंग [का होत]ा है। रक्त तो सूर्य प्रकाश का मुंह भी नहीं देख सकता, फिर [उसका] रंग लाल क्यों कर हुआ? उपर्युक्त सिद्धान्त जीवकोटि के [लिए] चाहे सत्य मान लिया जाय, परन्तु जड़ सृष्टि के लिए तो वह [नहीं] ठहरता। जड़ में दृष्टि-शक्ति नहीं, स्नायु नहीं, अथवा चमा[त्कार वि]शेष भी नहीं। इस लिए अब इस सृष्टि के लिए कोई [दूसर]ा सिद्धान्त निकालना चाहिए। अन्यथा भूगर्भ को अतिशय [गहराइ]यों में निकलनेवाले पदार्थों के वर्ण-वैचित्र्य की उपपत्ति कैसे [हो] सकेगी?

[शास्त्रज्ञ]ों की मति तो हमको यहां कुंठित सी देख पड़ती है; [परन्तु] विकासवाद का आज चारों तरफ बोलबाला हो रहा है [इस लिए] आओ हम देखें कि इस वर्णवैचित्र्य का रहस्य कुछ खुलता है या नहीं। अनेक लोगों का दृढ़ विश्वास है कि, [डार्विन] का विकासवाद सृष्टि के अनेक रहस्यों का उद्घाटन [करने] वाली एक कुंजी है; और इसी लिए धर्म, राजनीति, समाज[शास्त्र], प्राणिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, अंतरिक्ष की घटनाएं, आदि अनेक बात[ों में] विकासवाद लगा कर, उस सिद्धान्त का प्रभुत्व, चारों ओर स्था[पित] करने के लिए, वे महान प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे प्रयत्न करनेवालों में से ए[क] प्रोफेसर हेनस्लो ने उक्त सिद्धान्त को वर्णवैचित्र्य में भी लगाने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं हुई। उन्होंने अनेक घने जंगलों के और कृत्रिम बगीचों के चित्र-विचित्र वर्णों के फूलों का सूक्ष्म निरीक्षण कर के यह निश्चित किया कि सब फूलों का मूल रंग पीला होता है, और धीरे २ विकास सिद्धान्त के अनुसार उनका जैसे २ अवस्थान्तर होता है वैसे २ उनका वर्ण बदल कर उनमें विचित्रता आती है। उनका यह भी कथन है कि, बहुधा यह वर्णवैचित्र्य, मनुष्य के प्रयत्न के कारण, सृष्टिक्रम में बाधा आने से प्राप्त होता है। जंगली फूलों के पेड़ जब तक जंगल में रहते हैं तब तक उनका रंग पीला ही होता है, परन्तु मनुष्य जब उनको वहाँ से लाकर बाग में लगाता है और कृत्रिम उपायों से उनकी सेवा-बरदास करता है—अर्थात् सृष्टि के क्रम में बाधा लाता है, तब उन वृक्षों को भी अपने वर्ण में अन्तर करने की इच्छा होती है; और इसी प्रकार प्रायः मनुष्य की जबरदस्ती से वृक्षों के वर्ण में विचित्रता हुई है। वही पौदा यदि फिर जंगल में लगाया जाता है तो उसके फूलों का रंग फिर पहले की तरह पीला हो जाता है। प्रो० हेनस्लो का यह मत स्वयं विकासवादियों में से ही अनेकों को स्वीकार नहीं है; फिर अन्य लोग यदि इसको अस्वीकार करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

कितने ही लोग, प्राणियों के वर्णभेद की मीमांसा करते समय, मांसाहारी और शाकाहारी का वर्णभेद कर के यह सामान्य नियम बतलाते हैं कि मांसाहारी पशु चित्र-विचित्र वर्ण के होते हैं और शाकाहारी बहुधा एक रंग के होते हैं। जान पड़ता है कि बाघ, बनबिलाव, इत्यादि थोड़े से वन्य पशुओं पर से ही यह सामान्य नियम निकाला गया है, परन्तु यह सिद्धान्त भी गलत है। सिंह के शरीर पर वर्णवैचित्र्य कहाँ देख पड़ता है? रीछ, भेड़िया, जंगली सुअर इत्यादि हिंसक पशु क्या एक ही रंग के नहीं होते? इसके विरुद्ध जिराफ, ज़िब्रा और हरिण आदि शाकाहारी जानवर हैं, उनमें अनेक वर्ण देख पड़ता है अथवा नहीं?

सारांश यह है कि, सृष्टिदेवी की शाल के वर्ण-वैचित्र्य की उत्पत्ति लगाने में शास्त्रज्ञों की मति कुंठित होती है। वे अपने शास्त्रज्ञान का कितना ही घमंड करें, परन्तु अंत में उनको यह बात माननी ही पड़ेगी कि सृष्टि का वर्णवैचित्र्य अभी तक एक अज्ञात और गूढ़ रहस्य है। एक छोटे से रहस्य ने अनेक बड़े बड़े शास्त्रज्ञों से "नेति नेति" कहला लिया—फिर ऐसे अनेक रहस्य जिस में भरे हैं उस पुराण पुरुष से यह कह कर, कि तू अगाध और अचिन्त्य है, तेरे स्वरूप और शक्ति का पता किसी को नहीं लग सकता, लीन भाव से उसके शरण जाना ही उचित है।

आश्वासन।

चन्द्र! क्यों धूमिल हो तुम आज?
[illegible]-बादलों में क्या घिरा, या कुछ आती लाज? ॥ १ ॥

[illegible] के प्रश्न में, [illegible]-समाज।
[illegible] निज [illegible] का काज? ॥ २ ॥

[illegible] से, [illegible]?
[illegible] ॥ ३ ॥

जग में [illegible] ही करते हैं, [illegible] के [illegible]।
गिर गिर कर फिर फिर उठते हैं, [illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] हृदय में, [illegible]।
उमड़ घुमड़ [illegible] में, फिर [illegible] ॥ ५ ॥

चन्द्र! क्यों धूमिल हो तुम आज?

[illegible]

डा० भांडारकर को अर्पण किया हुआ ग्रन्थ।

(लेखक—प्रो० का० बा० फाटक।)

(गतांक से आगे।)

डा० भांडारकर को अर्पण किये हुए ग्रन्थ के पहले तीन निबन्धों का सारांश पिछले अंक में दिया था। चौथे निबन्ध में प्रो० गुणे ने निरुक्त में लिये हुए ब्राह्मण-ग्रन्थों के अवतरणों की खोज लगाने का प्रयत्न किया है। यास्क ने "इति च ब्राह्मणम्"—यह गोलमाल हवाला दे कर ४२ वाक्य उद्धृत किये हैं। उनमें से अधिकांश का पता लगा कर इस प्रकार के अनुमान निकाले हैं कि यास्क को प्रायः सब ग्रन्थ मालूम थे, और दैवत ब्राह्मण का तीसरा खंड निरुक्त का अनुकरण है, वह ब्राह्मण-ग्रन्थों में अप्रासंगिक दिखाई देता है, इत्यादि। पांचवें लेख में मूल्टन ने आवेस्ता के कुछ भाग का सारांश अंगरेजी में पद्यबद्ध किया है।

छठवें लेख में जीवनजी मोदी ने इस बात का विचार किया है कि आवेस्ता और पल्हवी में हूणों का जो उल्लेख है वह किस शताब्दी तक [illegible]

[illegible]

के फीरोज नामक राजा को मार डाला। वहां से काबुल होते हुए गान्धार देश में आकर उन्होंने गुप्त साम्राज्य का नाश किया। इनके मुख्य सरदार तोरमाण ने मालवा तक अपनी सत्ता स्थापित कर दी, इसके बाद सन् ५१० में उसका देहान्त होगया। तोरमाण के लड़के मिहिरकुल की राजधानी पंजाब प्रान्त के शाकल (स्यालकोट) नगर में थी। राजतरंगिणी नामक काश्मीरी ऐतिहासिक ग्रन्थ से यह वृत्तान्त जाना जाता है कि मिहिरकुल ने मिहिरपुर में मिहिरेश्वर की स्थापना की, कितने ही उच्च ब्राह्मणों की वृत्तियां बन्द कर के उसने हीनकुलोत्पन्न गांधारी ब्राह्मणों को वे वृत्तियां दीं, इस राजा की सेना के पीछे पीछे हिंस्र पक्षियों का झुंड आया था। डा० स्टीन के मत से 'मिहिरकुल' नाम और उसके स्थापित किये हुए देवताओं तथा गावों के नाम भी ईरानी हैं। इस राजा की विवाहपद्धति, और मृतों के शरीर गिद्धों के समान पक्षियों को खिलाने की चाल, पर जब हम ध्यान देते हैं तब यही कहना पड़ता है कि इन हूणों का धर्म अधिकांश में ईरानियों के धर्म के समान था। मिहिरकुल की क्रूरता जब असह्य होगई तब भारतवर्ष के राजाओं ने एकता की; और मगध देश के राजा बालादित्य तथा मध्य-भारत के राजा यशोधर्म ने नेतृत्व स्वीकार कर के मिहिरकुल पर हमला किया, और उसको कैद कर लिया। इस जय के निमित्त यशोधर्म ने दो रणस्तम्भ खड़े किये। अब यहां पर यह प्रश्न वादग्रस्त है कि मिहिर-कुल का पराभव बालादित्य ने किया या यशोधर्म ने किया। तोरमाण और मिहिरकुल ने अपने नाम के साथ "शाही" का पद लगाया है। इससे मोदी महाशय यह अनुमान करते हैं कि भारतवर्ष के और ईरान के हूण एक ही वंश के होंगे। यद्यपि ये उल्लेख पांचवीं अथवा छठवीं शताब्दी के हैं, तथापि जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि हूणों का इतिहास दो हजार वर्ष का है तब यह अनुमान निकलता है कि पांचवीं शताब्दी के पहले इन लोगों ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की होगी। तुर्क लोगों के पूर्वज यही हैं; और सन् ईसवी के दो सौ वर्ष पहले से उत्तर-चीन में बड़े बड़े साम्राज्य इन्हीं ने जीते थे। चूंकि इनका पता पारसियों के प्राचीन ग्रन्थों में लग सकता है, इसलिए मि० मोदी ने आवेस्ता ग्रन्थ में हूणों के उल्लेख की खोज लगाने का प्रयत्न किया है। इससे मालूम होता है कि सातवीं शताब्दी के पहले पार-सियों को 'हुनु' लोगों का परिचय था। इन 'हुनुओं' का धर्म अधिकांश में ईरान ही का सा था, और उनमें से अनेक तो अग्निपूजक भी थे। इस 'हुनु' शब्द का अर्थ, आज तक, अनेक स्थलों में, संस्कृत शब्द 'सूनु', अर्थात् 'लड़का', किया गया था; परन्तु मोदीजी ने यह दिखलाया है कि यह शब्द अनेक स्थलों में हूण लोगों का ही वाचक है। आवेस्ता के अनुसार तत्कालीन जगत् में पांच वंशों के लोग थे। (१) ऐर्य, (२) तुर्य, (३) सारिम्य, सीरिया देश के लोग, (४) सैनी, अर्थात् चीनी; और (५) दाही। पल्हवी ग्रन्थ में कहा गया है कि ईरानी और हूण एक ही वंश के थे।

सातवें निबन्ध में कीथ ने 'इंडो-ईरानी' लोगों के प्राचीन इतिहास का मंथन किया है; पर जान पड़ता है, उससे कुछ निश्चित सिद्धान्त नहीं निकला। समकालीन असली लिखित प्रमाणों के बिना, केवल दन्तकथाओं के आधार पर ही, इतिहास रचने से गड़बड़ उत्पन्न होता है। यह सिद्धान्त भारतीय, ईरानी और अधिकांश में ग्रीशन लोगों के प्राचीन इतिहास के लिए उपयुक्त कर के मि० कीथ ने पहले बतलाया है कि, उक्त इतिहास, अन्य प्रमाणों के अभाव में, अविश्वसनीय है। इजिप्ट के कई लेखों के कारण इधर कुछ दिनों से यह प्रमाण लोगों के सामने आया है; और इससे ग्रीशन तथा इंडोईरानी इतिहास की घुंडी खुलने में कुछ सहायता हो सकती है। वह प्रमाण यही है कि उधर के लेखों के कितने ही देवताओं और पुरुषों के नाम इंडो-ईरानी नामों के समान जान पड़ते हैं। लेकिन इस साम्य से उनका अभेद प्रस्थापित नहीं होता। क्योंकि व्युत्पत्ति लगाते समय अनेक विद्वान् चाहे जिस शब्द का सम्बन्ध चाहे जिस शब्द से जोड़ देते हैं। एक कोश ऐसा मिला है कि जिसमें कस्साइट भाषा के कितने ही शब्दों का बाबिलोनियन भाषा में अर्थ दिया हुआ है। राजाओं के नाम ईरानी नामों के समान हैं। और 'सूरियस्' शब्द वैदिक सूर्यस् (सूर्यः) के समान है। इसके अतिरिक्त, सन् ईसवी के १७६० वर्ष पहले के अनन्तर बाबिलोन पर राज्य करनेवाले कस्साइट राजाओं के जमाने में जो लेख तैयार हुए उनमें घोड़ा का वर्णन अनेक जगह आया है; और उसको "पर्वत का गधा" कहा गया है। इससे यह तर्क किया जाता है कि यह उस समय हाल ही में ईरान से लाया गया होगा। परन्तु जब कि यह निश्चित है कि ईसा के पहले दो हजार वर्ष के पहले बाबिलोन में घोड़ा मौजूद था तब अवश्य ही उपर्युक्त तर्क लँगड़ा पड़ जाता है।

इससे उत्तर मेसोपोटेमिया के मिटानी के लेखों का प्रमाण अधिक विचारणीय है। वहां के लोग हिट्टाइट और कस्साइट लोगों के रक्त के थे, और उनका इंडो-यूरोपियनों से बिलकुल ही सम्बन्ध न था। परन्तु ईसवी सन् के पूर्व १३८० वर्ष के पहले हिट्टाइट लोगों के राजा से जो सन्धि हुई उसमें मतियज़ा ने मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्याः इत्यादि वैदिक देवताओं की स्तुति की है। इसके सिवाय, मिटानी के राजा दुशरत्त, उसके भाई अर्तसुमर, पिता सुतर्न और दादा अर्ततम, इत्यादि के नाम ईरानी हैं। ईसा के पहले १४०० वर्ष के बाद अमर्ना के पत्र-व्यवहार में सुवर्दत, अत्तन, अर्तमन्य, [illegible], अर्जवीय, [illegible], सुबन्धी, सुतर्ना, इत्यादि सिरिया के राजाओं के नाम आये हैं। उनका आर्यों के नाम से बहुत साम्य है। इसी प्रकार वहां के लेखों में और भी नाम मिले हैं कि जिन्हें सचमुच ईरानी कह सकते हैं।

इस साम्य से और उल्लेख से क्या तर्क निकालना चाहिए? यह कहने के लिए तो बिलकुल ही आधार नहीं है कि उत्तर-मेसोपोटे-मिया में और सिरिया में आर्यवंश की बस्ती थी। कुछ नाम भले ही आर्यों के हों, तथापि इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वहां आर्यों की बस्ती बड़े परिमाण में थी। हां, बहुत होगा तो इतना कहा जा सकेगा कि कितने ही [illegible] और [illegible] वहां गये होंगे। एशिया और यूरप के इतिहास में ऐसे प्रसंग बहुत से दिखलाये जा सकेंगे। ये आर्य नाम बाबिलोनियन इतिहास में एकदम [illegible] में आते हैं। इससे यही कहना पड़ता है कि उक्त [illegible]

से यहां के रहनेवाले न होंगे; किन्तु हाल ही में आये होंगे। अब, यह स्वीकार कर लेने पर फिर यह प्रश्न उठता है कि आर्य लोग यहां किस ओर से गये होंगे। इस प्रश्न का बहुत कुछ ऊहापोह कर के मि० कीथ ने यह निश्चित किया है कि आर्य लोग बाबिलोनिया में पूर्व की ओर से आये होंगे। इसके बाद फिर दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मिटनी के राजा ने जिन देवताओं के नामों का उल्लेख किया है वे नाम भारतीय हैं या ईरानी हैं, अथवा भारतीय और ईरानी लोग जब बिलकुल प्राचीन काल में एक जगह रहते थे उस समय के हैं। इसका उत्तर कीथ ने इस प्रकार दिया है कि "मिटनी के देवता भी आर्यों के और भाषा भी आर्यों की ही उपभाषाओं में से कोई होगी।" अब तक के प्रमाणों से यही कहना पड़ता है कि ईरान में आर्य लोग ईशान कोण की ओर से प्रविष्ट हुए होंगे। तथापि अभी इसके विरुद्ध यह प्रतिपादन करना सम्भव है कि इंडो-ईरानी लोग यूरप से आये। अन्त में मि० कीथ ने यह सारांश निकाला है कि इंडो-यूरोपियनों का मूल स्थान एशिया में मिले अथवा यूरप में मिले; परन्तु भारतीय और यूरोपीय लोगों के पूर्वज जिस काल में एकत्र रहते थे वह काल ईसा से तीन हजार वर्ष प्राचीन होना चाहिए।

आठवें निबन्ध में डॉ० न० गो० सरदेसाई ने यह दिखलाया है कि 'सप्तसिन्धु' प्रदेश 'पंजाब' नहीं है; किन्तु उक्त प्रदेश 'तातेरी के उत्तर ओर का' प्रदेश होना चाहिए। 'पंजाब' नाम से ही यह निश्चित होता है कि यह पांच नदियों का प्रदेश पहले से ही प्रसिद्ध चला आता है। ऐसी दशा में, वहां की पांच नदियों में यथान्तर दो नदियों के नाम घुसेड़ कर सात की गणना करना शास्त्रीय दृष्टि से उचित नहीं होगा। इसके सिवाय ऋग्वेद में यह उल्लेख है कि 'सप्तसिन्धु' की सातों नदियां समुद्र में मिलती हैं; और इधर पंजाब की तो पांचों नदियां स्वतंत्र रीति से समुद्र में नहीं मिलतीं, इससे भी यही सिद्ध होता है पंजाब सप्तसिन्धु प्रान्त नहीं है। यह दिखला कर फिर लेखक ने यह अनुमान लगाया है कि रूसी तुर्किस्तान का एक उपजाऊ प्रदेश, जो कि अब तक "सात नदियों का प्रदेश" कहलाता है, वही सप्तसिन्धु होगा, और आर्य लोग उत्तर ध्रुव से चल कर, भारत में आने के पहले, इसी सप्तसिन्धु में रहे होंगे।

नवां और दसवां, दोनों लेख पुराणविषयक चर्चा के हैं। नवें में, इस प्रतिपादन के सिवा कि, "ततो जयमुदीरयेत्" इस चरण के 'जय' शब्द का साम्प्रदायिक अर्थ ('इतिहास अथवा महाभारत') न करते हुए उसे सर्वथा के ही अर्थ में लेना चाहिए, निबन्धलेखक मि० [illegible] ने यह निश्चित करने का प्रयत्न किया है कि महाभारत और गीता, ये ग्रन्थ [illegible] तथा क्षत्रियों का कर्तव्य समझाने के लिए ही, एकदेशीय दृष्टि से, लिखे गये हैं। मि० [illegible] कहते हैं कि "यतः कृष्णस्ततो जयः", "यतो धर्मस्ततो जयः" इत्यादि वाक्यों का [illegible] श्रीकृष्ण यह उपदेश करते हैं कि [illegible] युद्ध करने में [illegible] क्षत्रियों को लगाने के लिए ही [illegible] का कर्तव्य बतलाने के लिए यह ग्रन्थ निर्मित नहीं हुआ। परन्तु इस प्रतिपादन में बहुत [illegible] है। [illegible]

[illegible]

स्वाभाविक है कि उनके वंशजों ने और उनके दरबार [illegible] उनका अचूक स्मरण रखने का प्रयत्न किया हो। मतलब यह है कि प्राचीन राजवंशों की ये लम्बी चौड़ी सूचियां विचारणीय हैं; अन्यथा काल्पनिक सूचियां इतनी सावधानी के साथ हजारों वर्षे तक सुरक्षित रखने की इच्छा (आजकल की भांति ही) सत्यप्रिय प्राचीन लोगों को कदापि न हुई होती—हां, यह अवश्य है कि कितने ही वंशों के मूलपुरुष जो सूर्य और चन्द्र बतलाये गये हैं, यह बात काल्पनिक हो सकती है; इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि जब किसी नवीन पुरुष ने कोई राज्य जीता हो तब उसका सम्बन्ध किसी प्राचीन प्रसिद्ध राजघराने से जोड़ देने का मोह वंशावलीकारों को हुआ हो। परन्तु यदि ये थोड़े अपवादात्मक प्रसंग छोड़ दिये जांय तो यह कहा जा सकता है कि इतिहासप्रसिद्ध पुरुषों के वंशज भाटों के द्वारा अपनी वंशावली अचूक रखने का प्रयत्न करते थे; इसके सिवाय यदि कोई राजा अपने भाट को वंशावली में कुछ झूठ बात घुसेड़ने के लिए बाध्य करता तो यह बात अन्य राजाओं के दरबारों के भाटों को मान्य नहीं हो सकती थी। वेद-ग्रन्थ शुद्ध रखने में जिस प्रकार ब्राह्मण लोग अतिशय दक्ष रहे थे उसी प्रकार राजाओं की वंशावली को शुद्ध स्वरूप में रखने का काम भाटों के हाथ में था; और अपना यह कार्य उन्होंने बड़ी उत्तमता से किया है। इस प्रकार पौराणिक वंशावलियों के विषय में पार्जीटर का मत है; और वास्तव में यह उनका मत मान्य होने योग्य है। परन्तु निबन्ध के अन्त में उन्होंने, बनावटी वंशावलियों का कर्तृत्व ब्राह्मणों को और विश्वसनीय वंशावलियों का कर्तृत्व भाटों को दे कर इस प्रश्न को हल करने का जो प्रयत्न किया है वह हास्यास्पद है। लेखक ने यह आग्रह किया है कि ब्रह्मांड, मत्स्य और वायुपुराण की वंशावलियों में भृगु, अत्रि और वशिष्ठ इत्यादि ब्राह्मणों से वंशों की उत्पत्ति बतलाई गई है, और इतने ही से उसे अविश्वसनीय मानना चाहिए। हम नहीं समझते कि लेखक का यह आग्रह विद्वानों को कहां तक मान्य होगा।

ग्यारहवां निबन्ध "अभिजात पाली का मुख्य स्थान" शीर्षक [illegible] ग्रियर्सन ने लिखा है। अभिजात पाली के मूलस्थान के विषय में विद्वानों ने भिन्न भिन्न तर्क किये हैं। ओल्डेनबर्ग का कथन है कि [illegible] मूलस्थान विन्ध्याद्रि के दक्षिण ओर होना चाहिए। [illegible] का मत कि अभिजात पाली उज्जयिनी के आसपास के प्रदेश में उत्पन्न होगी; और विंडिश का तर्क है कि बुद्ध जो भाषा बोलते थे वह अर्थात् मागधी प्राकृत भाषा ही, अभिजात पाली है। ग्रियर्सन सम्पूर्ण प्रमाणों की छानबीन कर के और निम्नलिखित तीन बातों ध्यान में रख कर यह कहा है कि अभिजात पाली मगध देश में [illegible] हुई। उक्त तीन बातें ये हैं—(१) अभिजात पाली मागधी [illegible] (२) पैशाची भाषा से उसका घनिष्ट सम्बन्ध है, और (३) [illegible] पैशाची भाषा केकय और गान्धार देशों में प्रचलित थी।

'ऋत' [illegible] शीर्षक बारहवें लेख में, [illegible] के [illegible] 'धर्मशास्त्र' [illegible] सत्य विजय है और धर्मपालन से ही मनुष्यजाति की [illegible] नैतिक उन्नति होती है, उससे सम्बन्ध रखनेवाले कितने ही विचार [illegible] 'ऋत' शब्द के 'गति, नियमबद्ध गति, व्यवस्था, [illegible] नैतिक व्यवस्था और सत्य' इत्यादि अर्थ [illegible] यह शब्द वेद और पारसियों के धर्मग्रन्थ [illegible], दोनों में [illegible] है। इससे यह सिद्ध होता है कि आर्य और पारसी [illegible] रहते थे, तब यह शब्द रूढ़ हुआ होगा। [illegible] इस शब्द की कल्पना ईसा के तीन हजार वर्ष [illegible] [illegible] में थी। बुद्ध का उदय होने के पहले ही [illegible] भाषाओं से यह शब्द लुप्त हो गया था। [illegible] में यह शब्द नहीं मिलता। इस प्रकार 'ऋत' शब्द [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] ! यह कृतार्थ है। ईश्वर अनादि है, और इसी प्रकार [illegible] कहने में भी कोई दोष नहीं कि सृष्टि भी अनादि है "—इस प्रकार [illegible]क ने संक्षेप में यह बतलाया है कि जैनमत का अन्य धर्मवालों से किस विषय में साधर्म्य अथवा वैधर्म्य है।

पन्द्रहवें निबन्ध में प्रो० सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र का साधारण स्वरूप दिया है। यह शास्त्र अक्षपाद गौतम ने ईसा से ५५० वर्ष पहले के लगभग रचा। ईसा के पूर्व ५०० वर्ष से लेकर सन् ४०० ई० तक पाली भाषा में और संस्कृत में भी इस शास्त्र पर अनेक टीकाग्रन्थ रचे गये। सन् ४०० ई० से ले कर आगे अनेक बौद्ध लेखकों ने इस शास्त्र पर अच्छे अच्छे प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे, जैनों ने भी इन ग्रन्थों में अच्छी वृद्धि की। चूंकि इस शास्त्र से मतस्वातंत्र्य को प्रोत्साहन मिलता है, इस लिए वेदप्रामाण्य में धक्का लगने की सम्भावना थी। जैमिनि ने तो मीमांसा में कहा है कि विधिवाक्यों को छोड़ कर शेष वेदवचन निरुपयोगी हैं। इस कारण मनु ने कहा है कि हेतुशास्त्र के कहने में आकर जो द्विज वेदों या धर्मसूत्रों की अवहेलना करें तो उनका बहिष्कार करना चाहिए। वाल्मीकि ने भी रामायण में, धर्मशास्त्र छोड़ कर आन्वीक्षिकी (न्याय) शास्त्र की तर्कट लड़ानेवालों की निन्दा की है। महाभारत में एक कथा है कि तर्कशास्त्र के चक्कर में फँसे हुए एक ब्राह्मण का चूंकि वेद पर से विश्वास उड़ गया था, इस कारण आगे चल कर उसे स्यार का जन्म मिला। स्कन्दपुराण में भी नैयायिकों की निन्दा की गई है। और नैषध-चरित में तो न्यायशास्त्र के कर्त्ता को 'गो-तम' (अर्थात् पक्का बैल) कह कर उसकी हँसी उड़ाई गई है।

परन्तु आगे फिर वेदप्रामाण्य मान कर जब इस शास्त्र पर ग्रन्थ लिखे गये तब उनकी गणना मान्य ग्रन्थों में होने लगी। गौतम-धर्मसूत्र में और मनु, याज्ञवल्क्य तथा व्यास के ग्रन्थों में और पद्म तथा मत्स्य पुराण में जगह जगह न्यायविद्या की महत्ती गाई गई है।

साधारणतया समझा जाता है कि अक्षपाद-गौतम के रचे हुए न्यायसूत्र में पांच अध्याय हैं; और प्रत्येक अध्याय में दो आन्हिक हैं। परन्तु विद्याभूषण महाशय की राय में सिर्फ पहला अध्याय ही अक्षपाद का रचा हुआ होना चाहिए; आगे के तीन अध्याय, जिनमें वैशेषिक, योग, मीमांसा, वेदान्त और बौद्ध मतों का विवेचन है, प्रायः अन्य ग्रन्थकारों के लिखे हुए होंगे; और पांचवां अध्याय तो अक्षपाद का नहीं है, यह निश्चित है। इन सब सूत्रों की एकवाक्यता करने का प्रयत्न वात्स्यायन ने सन् ४०० के लगभग अपने भाष्य में किया है। इससे उनका काल निश्चित किया जा सकता है। वात्स्यायन द्रविड़ देश के रहनेवाले थे। दिङ्नाग ने वात्स्यायन और उद्योतादि ब्राह्मणी नैयायिकों का खंडन कर के न्यायवार्तिक नामक टीकाग्रन्थ लिखा है। इसके बाद दसवें शतक में मिथिलानिवासी वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्तिक-तात्पर्य-टीका नामक बौद्धमत का खंडन करनेवाला ग्रन्थ, लिखा। इसके अतिरिक्त उदयनाचार्य, जयन्त, भा-सर्वज्ञ, इत्यादि टीकाकार हुए। इससे विद्याभूषण महाशय ने यह तात्पर्य निकाला है कि न्यायशास्त्र पर 'न्यायसूत्र' नामक एक ही ग्रन्थ बना है, और उसके पश्चात् वात्स्यायनादि लेखक केवल टीकाकार थे; वे स्वतंत्र रीति से न्यायशास्त्र की रचना करनेवाले नहीं थे।

सत्रहवें निबन्ध में डा० बेलवलकर ने सांख्यदर्शन पर 'माठरवृत्ति' नामक एक अत्यन्त प्राचीन और दुर्लभ ग्रन्थ का वृत्तान्त दे कर यह दिखलाया है कि ईश्वरकृष्ण का काल जो आज तक माना गया है उसे एक दो शताब्दी और पीछे ले जाना चाहिए। परमार्थ नामक एक उज्जयिनी का ब्राह्मण वू-टी नामक चीनी सम्राट् के निमंत्रण पर सन् ५४६ में चीन में गया। उसने वहां जन्म भर अनेक संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। ये ग्रन्थ वह अपने साथ ही ले गया था। परमार्थ ७१ वर्ष की अवस्था में, सन् ५६९ ई० में, चीन में ही स्वर्गवासी हुआ। इसमें कोई संशय नहीं कि जो संस्कृत ग्रन्थ वह अपने साथ ले गया था वे भारतवर्ष में बहुत दिनों से विद्वन्मान्य रहे होंगे। इस लिए उसके भाषान्तरित किये हुए ग्रन्थ सन् ५०० ई० के पहले के बने हुए होने चाहिएं। इन ग्रन्थों में से एक का नाम "सांख्यकारिकावृत्ति" है, यह ग्रन्थ आज तक दुर्लभ था। इस निबन्ध में यह दिखलाया है कि अब 'माठरवृत्ति' के नाम से मिला हुआ यह ग्रन्थ वही है।

इस सांख्यकारिकावृत्ति का गौड़पादाचार्य के भाष्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। शंकराचार्य के गुरु के गुरु गौड़पादाचार्य सन् ७०० ई० के लगभग मौजूद होंगे, यह सम्भव नहीं कि ये प्रसिद्ध लेखक, लोगों को ग्रन्थ जैसा का तैसा उतरा देकर, ग्रन्थ को अपने नाम से लोगों के सामने प्रकट करते। इस लिए ऐसी कल्पना करनी चाहिए कि गौड़पाद के समय में ही 'कारिकावृत्ति' ग्रन्थ दुर्लभ हो गया होगा, इस कारण उन्होंने, उस ग्रन्थ को अपने विचारानुसार पूर्ण कर के अपने भाष्य के तौर पर प्रचलित किया होगा। यही समझ कर डा० टाकाकुशू नामक जापानी विद्वान् ने ऐसा तर्क किया कि कारिकाकार और वृत्तिकार दोनों एक ही होंगे; और इसी लिए ईश्वरकृष्ण का समय ४५० के आगे खींचा है।

डा० बेलवलकर को यह विचारशैली मान्य नहीं है। उनके मत से शंकराचार्य के गुरू के गुरू गौड़पाद और भाष्य तथा उत्तरगीता के टीकाकार गौडपाद दोनों भिन्न होने चाहिएं। गौडपादभाष्य माठरवृत्ति का संक्षेप है। लेकिन संक्षेप का प्रचार बना रहा और मूल भाष्यग्रन्थ दुर्लभ होगया।

ईश्वरकृष्ण का काल ४५० के लगभग निश्चित करने में डा० टाकाकुशू ने तीन कारण दिखलाये हैं।

(१) परमार्थ ने चीन में (ई० स० ५४६-५६९ के बीच में) वसुबन्धु नामक बौद्ध तत्वज्ञ का चरित्र लिखा। उसमें मृत्यु के समय वसुबन्धु की अवस्था ८० वर्ष की दी है। अर्थात् वसुबन्धु का समय अनुमान से ई० स० ४२०-४५० लिया जा सकेगा।

(२) वसुबन्धु के गुरू बुद्धमित्र को विन्ध्यवास नामक सांख्यशास्त्रज्ञ ने वाद में पराजित किया; वसुबन्धु उसका बदला लेना चाहता था। परन्तु परमार्थ कहता है कि विन्ध्यवास उसके पहले ही मर गया। इससे यह निश्चित होता है कि विन्ध्यवास एक सांख्यशास्त्रज्ञ का नाम था; और वह वसुबन्धु से बड़ा था। एक जगह ऐसा उल्लेख है कि बालादित्य गुप्त के समय में विन्ध्यवास नामक एक वर्षगण्य का शिष्य भी था; और उसने हिरण्यसप्तती नामक ग्रन्थ लिखा है। इससे जान पड़ता है कि हिरण्यसप्तती नामक सांख्य ग्रन्थ का कर्त्ता विन्ध्यवास वसुबन्धु से बड़ा था; और वह वर्षगण्य का शिष्य था।

(३) चीनी भाषान्तर में उपान्त्यकारिका के "शिष्यपरम्परयागतम्" समास का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा है कि सांख्यसप्तती का कर्त्ता ईश्वरकृष्ण 'पोपोली' का शिष्य था। इस लिए डा० टाकाकुशू ने यह मान कर कि 'हिरण्यसप्तति' 'सांख्यसप्तति' है, और 'पोपोली' से मतलब 'वर्ष' से है, ईश्वरकृष्ण का समय सन् ४५० ई० निश्चित किया है।

परन्तु डा० बेलवलकर के मत से ईश्वरकृष्ण ही विन्ध्यवास नहीं हो सकता। क्योंकि माठर में ही कहा है कि ईश्वरकृष्ण का गुरू देवल था, और चूंकि वसुबन्धु का समय ई० स० २८०–३६० इधर थोड़े से निश्चित हुआ है, इस लिए उसका समकालीन, अवस्था में उससे बड़ा, ग्रन्थकार विन्ध्यवास ई० स० ४५० के लगभग होना असम्भव है। इसके सिवाय यह भी माना नहीं जा सकता कि हिरण्यसप्तति और सांख्यसप्तति दोनों एक ही ग्रन्थ के नाम हैं। और माठरवृत्ति में ईश्वरकृष्ण की जो गुरुपरम्परा दी है उसमें 'वर्ष' का नाम नहीं दिया है। सारांश यह है कि ईश्वरकृष्ण विन्ध्यवास और वर्ष के पहले का होना चाहिए। इस लिए यदि यह ध्यान में रखा जाय कि वसुबन्धु, जो कि ३०० के लगभग हो गया, उसके पहले 'वर्ष' था, तो यह कहा जायगा कि ईश्वरकृष्ण सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग हुआ होगा।

लेकिन ईश्वरकृष्ण चाहे प्रचलित सांख्यग्रन्थकारों में अत्यन्त प्राचीन हो, तथापि कपिल मुनि का प्रचलित किया हुआ सांख्यशास्त्र उससे भी अधिक प्राचीन होना चाहिए। इस प्रारम्भकाल से लेकर ईश्वरकृष्ण तक इस शास्त्र में जो परिवर्तन हुए होंगे उनकी कल्पना बांधने का प्रयत्न डा० बेलवलकर ने आगे किया है। इसका सारांश इस प्रकार बतलाया जा सकता है। (१) विस्तृत परन्तु उपनिषत्कालीन स्तर सांख्यशास्त्र प्रचलित था, (२) फिर उसका वेदान्त से सम्बन्ध हुआ, और महाभारत में जो आन्वीक्षिकी प्रतिपादित की है वह इसके बाद बढ़ गई, (३) इस विचारपद्धति का अन्तिम परिणाम निरीश्वरवाद में हुआ, (४) इसके बाद इस शास्त्र के निरीश्वर (सांख्य) और सेश्वर (योग) भेद हुए, (५) फिर बाद को ईश्वरकृष्ण के समान कारिकाकार हुए। इसके बाद अनेक टीकाकार हुए। मतलब यह कि इन ढाई हजार वर्षों से, अथवा इससे भी अधिक समय से, सांख्यशास्त्र ने भारतीय विचारों को अनेक प्रकार से [illegible]

है। इस प्रकार चाहे [illegible] की और चाहे [illegible] की ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाय तो [illegible] समझना कि उन शब्दों का [illegible] हो जायगा। आधुनिक [illegible] सब जगह 'रामायण' करने का व्यर्थ प्रयत्न किया है।

[illegible] भी नहीं। [illegible] चाहिए कि जो विचार [illegible] अनुकूल हों, या प्रतिकूल। ऐसा करने में, [illegible] कोई संदेह नहीं।

कमलादेवी की राखी।

(लेखक—श्रीयुत [illegible] वर्मा ।)

(१)

कौलेज की छुट्टियों में रमेशचन्द्र घर आगये। जिस दिन वे आये उसके दूसरे दिन राखी-पूनम थी। रमेशचन्द्र की छोटी बहिन उनके लिये नाना प्रकार के पकवान तैयार कर रही थी। उसने एक अत्यंत सुन्दर राखी भी पड़ोस की एक दूकान से मँगवा ली थी। पूनम का दिन आ पहुँचा। रमेशचन्द्र की बहिन कमलादेवी इस पर्व के सग-भग थाली में राखी और कुछ मिष्टान्न रख कर ले आई।

कमला ने बड़े चाव से रमेशचन्द्र से कहा—" भैया ! राखी बँधवा लो "। उन्होंने मुस्करा कर कहा—

" कमला ! पहिले राखी और मिष्टान्न का मूल्य बता दो। "

उनकी पूजनीय माता ने उनका प्रश्न सुन कर झिड़क कर कहा—

" लल्ला, तुम सर्वदा छोटी बहिन को चिढ़ाने में अपना गौरव समझते हो ! कमला बिचारी तो इसी के लिये दो दिन से परिश्रम कर रही है और तुम उसके सारे परिश्रम पर पानी फेरना चाहते हो ! "

रमेशचन्द्र ने उत्तर दिया—

" माताजी, इसमें नाराज होने की क्या बात है ? अच्छा, तो तुम ही कहो, क्या कमला इसका मूल्य न लेगी ? .. " उनकी पूजनीय माता निरुत्तर हो चुप होगईं। परन्तु सहोदरा कमला, जो कि अभी तक विचार-मग्न थी, बोली—

" भैया, तुम्हारा कहना ठीक है। इस राखी का मूल्य अवश्य है। रुपया-अशर्फी नहीं, वरन चिरस्थायी-भ्रातृप्रेम ! भ्रातृप्रेम का मूल्य नहीं होता। यह प्रेम अमूल्य है। बस, इसके सिवाय मैं तुमसे कुछ न लूंगी। "

रमेशचन्द्र बालिका के असाधारण प्रेम-परिपूरित ये वचन सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे कुछ देर तक कुछ न बोल सके। किन्तु कमला की ओर टकटकी से देखते रहे। कुछ काल पश्चात् उन्होंने देखा कि कमला की आंखों से प्रेमाश्रु टपक रहे हैं।

रमेश बाबू की आंखों से भी दो आंसू टपक पड़े !.. ....

उन्होंने कहा—

" कमले ! तू प्रसन्नतापूर्वक मेरे राखी बाँध सकती है। "

कमला के मुख-मंडल पर प्रसन्नता झलकने लगी। उसने अत्यंत प्रेम-पूर्वक रमेश बाबू के हाथ में राखी पहिना दी। तत्पश्चात् कमला ने कहा—

" भैया, राखी पहिनी है, तो मिष्ठान्न भी खाना पड़ेगा ! "

रमेश बाबू ने उत्तर दिया—

' मैं खाने को तैयार हूं '।

कमला ने रमेश बाबू के पास थाली रख दी। वह अपने कार्य्य की सफलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। यहां तक कि खिलखिला कर हँस पड़ी ! .... इतने में सुनाई दिया—

' कमला ! तेरे चाचा कचहरी से आगये हैं। उन्हें आकर भोजन तो परोस दे। '

कमला यह सुन कर माता के पास चली गई। तत्पश्चात् रमेश बाबू ने राखी को अपने बक्स में यत्न पूर्वक रख लिया।

(२)

रमेश बाबू, छुट्टी समाप्त होने के बाद, प्रयाग चले गये। प्रयाग जाने का उनका विचार न था। क्योंकि कमला की अवस्था प्रति दिन बिगड़ती ही जाती थी। बचने की किसी को आशा न रही। पर वे विवश थे। पिताजी की आज्ञा का भी तो उल्लंघन नहीं कर सकते थे। जिस दिन प्रयाग पहुँचे उसी दिन उन्हें कमला की मृत्यु का तार द्वारा समाचार मिला।

रमेश बाबू तार पढ़ते ही बेसुध होगये। उन्होंने दो दिन तक खाना न खाया। पर अन्त में लाचार होकर खाना ही पड़ा। परन्तु उस दिन से रमेश बाबू के सहपाठियों ने उन्हें कभी प्रसन्नमुख न देखा।

द्वितीय वर्ष वे एम०ए० की परीक्षा देकर घर लौट आये। और परीक्षा के फल की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें एक दिन, वर्ष तुल्य प्रतीत होने लगा। उनके पास उस समय पढ़ने के लिए कोई पुस्तक भी न थी।

उसी समय उन्हें याद आया कि कमला ने उनके बक्स में दो हिन्दी की पुस्तकें छुट्टियों में पढ़ने के लिये रख दी थीं।

बक्स को खोल कर रमेशचन्द्र ने देखा, तो उन्होंने उक्त पुस्तकों पर एक राखी और एक कमला-लिखित पत्र पाया। पत्र में लिखा था—

" भैया !

जीवन-मरण ईश्वर के हाथ में है। मनुष्य के हाथ में नहीं। मेरा रोग दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है। मैं बचूंगी अथवा नहीं, यह नहीं कह सकती। मुझे इस बात का पश्चात्ताप होता है कि मैं तुम्हें अन्तिम समय में देख न सकी ! मेरी राखी को मेरा 'प्रेमोपहार' समझना। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे—

यही इच्छा करनेवाली

तुम्हारी

कमलदेवी— "

पत्र को पढ़ते ही रमेश बाबू का शरीर कांपने लगा। उस दिन की घटना उनके हृदय-पट पर उभड़ने लगी। वे आंखों में आंसू रोक न सके; और कहने लगे " कमले ! प्रेम सचमुच अमूल्य है। तेरा उस दिन का कहना आज सिद्ध होगया ! हा कमले ! मैं तुझे अन्तिम समय में देख न सका ! "

इतना कह कर वे रोने लगे। उन्हें संसार शून्य प्रतीत होने लगा। इतने में मैं पहुँच गया। मैं ने कहा " रमेश बाबू, आप एम० ए० की परीक्षा में सर्वोच्च श्रेणी में पास हुए हैं। " वे शान्त रहे। उनके मुख मंडल पर गंभीरता विराजमान थी।

उन्होंने कहा—' मैं आपको धन्यवाद देता हूं। '

महायुद्ध के चौथे वर्ष का अगस्त मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी॰ ए॰ ।)

जुलाई की तरह अगस्त मास भी रूसी सरकार को दृष्टि से बहुत चिन्ता का व्यतीत हुआ; और सितम्बर के प्रारम्भ में जर्मनी ने रीगा-पेट्रोग्राड की अपनी चढ़ाई शुरू कर के रीगा बन्दर और रीगा प्रान्त ले लिया; इस कारण जान पड़ता है कि अब दिसम्बर तक रूस की उस चिन्ता का ग्रहण नहीं छूटता। गेलेशिया, बुकोविना और रोमानिया की आस्ट्रो-जर्मनों की चढ़ाई को अगस्त के दूसरे पखवाड़े में बहुत मन्दता प्राप्त हुई; और ऐसी आशा होने लगी कि रूस के चिन्ता के दिन अब समाप्त होने पर आये। परन्तु रीगा-पेट्रोग्राड की चढ़ाई ने उस आशा को नष्ट कर दिया। अच्छा, अब हम पहले इस बात का विचार करेंगे कि, रीगा-पेट्रोग्राड की चढ़ाई की ओर मोर्चा फिराने के पहले गेलेशिया की ओर की जर्मनी की चढ़ाई मन्द कैसे होगई। अगस्त के पहले अठवाड़े में जर्मनी ने सारा गेलेशिया प्रान्त ले लिया; और गेलेशिया के पूर्व ओर के प्रान्त में भी कुछ जगह प्रवेश किया। दूसरे अठवाड़े में सारा बुकोविना प्रान्त ले कर बुकोविना के पूर्व ओर के बेसारेबिया प्रान्त में भी जर्मनी ने प्रवेश किया। जर्मनसेना जब बेसारेबिया प्रान्त में घुसी तब यह सैनिक नीति दिखाई देने लगी कि नीस्टर नदी के दक्षिणी किनारे से काले समुद्र तक जा कर ओडेसा को पहुँचें, और बेसारेबिया के इस पचड़े से रोमानिया की रूसो-रोमानियन सेना को पीछे से घेर लें। परन्तु सितम्बर के प्रारम्भ में जर्मनी ने यह नीति छोड़ दी। रूसी फौज लड़ती नहीं थी, किन्तु पीछे हट रही थी, तो भी जर्मनी ने अपने हाथ का विजय क्यों खो दिया? इस लापरवाही के, अथवा नीति छोड़ने के अनेक

इटली की रणभूमि।

कारण बतलाये जाते हैं। उनमें तीन कारण मुख्य हैं। पहला कारण यह है कि बुकोविना की सीमा समाप्त होने के बाद आस्ट्रो-जर्मन रेलगाड़ियां समाप्त होजाती हैं; और रूसी रेलगाड़ियां शुरू होती हैं; और रूसी रेलगाड़ी की चौड़ाई आस्ट्रो-जर्मन रेलगाड़ी से भिन्न होने के कारण बेसारेबिया की रेलगाड़ी का मार्ग दुरुस्त किये बिना जर्मनों का कदम आगे बढ़ना सम्भव नहीं। परन्तु जब हम अगस्त के दूसरे पखवाड़े की आस्ट्रो-जर्मन लड़ाइयों की ओर ध्यान देते हैं तब यही अनुमान निकालना पड़ता है कि ओडेसा की नीति, जैसा कि समझा गया था, उतनी प्रमुखता से, आस्ट्रो-जर्मनों ने अपने सामने नहीं रखी थी। गेलेशिया अथवा बुकोविना के पूर्व ओर जोरशोर के साथ आस्ट्रो-जर्मन लड़े ही नहीं। उनका इरादा यही देख पड़ा कि जितना मिले उतना ले लो। इससे यह न समझना चाहिए कि रूस को इस ओर की रणभूमि में वे कहीं लड़े ही नहीं। रोमानिया के मोल्डेविया प्रान्त की सीरेथ नदी के पश्चिम भाग में आक्चुना और फाक्शनी मैदानों में पन्द्रह दिन तक भयंकर लड़ाइयां होती रहीं। रोमानिया की फौज को मार भगाने के लिए सेनापति मेकेन्सन ने अपनी ओर से कोई उपाय बाकी नहीं रखा। रोमानियन सेना ने भी इस पखवाड़े में अच्छी शूरवीरता दिखलाई; और सेनापति मेकेन्सन ने जोरदार चढ़ाई का अच्छा प्रतिरोध किया। अगस्त के अन्त में रोमानियन सेना सीरेथ नदी की ओर हटने लगी। और सितम्बर के प्रारम्भ में बुकोविना के दक्षिणपूर्व ओर प्रुथ नदी के उत्तरी किनारे से आस्ट्रो-जर्मनों का कदम कुछ आगे बढ़ने लगा। रोमानिया के मुख पर दबाव पड़ने लगा; और पीछे की ओर घिराव भी होने लगा। यह देख कर, रोमानियन सरकार के कागजपत्र और मौल्यवान् पदार्थों सहित, रोमानिया की रानी साहब, ओडेसा के भी आगे, काले समुद्र के खुरसा बन्दर में रहने के लिए चली गईं। मौका आजाने पर रोमानिया की राजधानी को रूस देश में खुरसा बन्दर में ले जाने का यह पूर्वचिन्ह समझिये। रोमानियन सेना में फूट डालने और रोमानियन सरकार को स्वतंत्र सन्धि के लिए बाध्य करने में जर्मनी ने बड़ा भारी प्रयत्न किया, लेकिन सफलता नहीं हुई। अन्त तक मित्रराष्ट्रों के कन्धे में कन्धा भिड़ा कर लड़ने का अपना निश्चय रोमानिया ने प्रकट किया है। सितम्बर-अक्टूबर महीनों में रोमानिया का सब प्रान्त से॰ मेकेन्सन कदाचित् पादाक्रान्त कर लेंगे अथवा न भी कर लेंगे; परन्तु अपना सारा बल इस ओर खर्च कर के ओडेसा की चढ़ाई जोरदार करने की ओर आस्ट्रो-जर्मनों का इस समय ध्यान ही नहीं दिखता; किम्बहुना जून-जुलाई महीनों में भी उनका असली विचार वैसा नहीं था। से॰ हिंडनबर्ग ने योग्य समय पर रूस के ऊपर फेंकने के लिए दस-पांच लाख सेना का एक अच्छा भुचण्ड अलग रख लिया था। जानकार लोगों का मत है कि इस भुचण्ड का बहुत सा भाग एंग्लो-फ्रेंचों ने पहले ही खराब कर डाला था। इस प्रकार सेनापति हिंडनबर्ग का यह सैन्यसमूह यद्यपि अंशतः हलका पड़ गया था, तथापि जुलाई मास में जर्मन सेनानायकों को यही जान पड़ता होगा कि, रूस पर बड़ा भारी विजय सम्पादन करने के लिए वह पर्याप्त है। अन्यथा से॰ हिंडनबर्ग के पक्ष का विजय होकर, और सन्धिचर्चा में नरमाई दिखाने पर प्रसिद्ध प्रधान मंत्री बेथमन हालवेग के त्यागपत्र देने तक नौबत न आई होती। अगस्त के पहले पखवाड़े में ऐसा जान पड़ा कि से॰ हिंडनबर्ग ने अपना यह सैन्यसमूह बेसारेबिया में उतार कर ओडेसा पर छोड़ दिया, परन्तु अगस्त के दूसरे पखवाड़े में बेसारेबिया में विशेष प्रगति भी नहीं दिखाई दी, और न लड़ाइयां ही दिखाई दीं। ओडेसा की सैनिक नीति यदि से॰ हिंडनबर्ग ने स्वीकार की होती, तो दक्षिण ओर रोमानियन सेना को अपने ऊपर ले कर बेसारेबिया में ही लड़ने की सच्ची धूमधाम आस्ट्रो-जर्मनों की सेना के सामने देख पड़ी होती। ओडेसा की सैनिक नीति की दृष्टि से बेसारेबिया की लड़ाइयां आवश्यक और जोरशोर की होनी चाहिये थीं; और मोल्डेविया की लड़ाइयां शत्रु के निकट रहने मात्र के लिए ही होनी चाहिये थीं। यह कहने की अपेक्षा, कि रोमानिया के जोर के कारण बेसारेबिया में लापरवाही हुई, यह कहना अधिक युक्तिक है, कि बेसारेबिया में शत्रु की पीठ पर हाथ रख कर रहना और रोमानिया का जितना मुल्क गिलंकृत किया जा सके उतना गिलंकृत करना ही अगस्त के दूसरे पखवाड़े में से॰ मेकेन्सन की सैनिक नीति थी। रेलगाड़ी की चौड़ाई बदल जाने के कारण नहीं, अथवा रोमानिया के जोर के कारण भी नहीं; किन्तु ऐसे खास हेतु से ही ओडेसा की नीति मन्द होती दृष्टि पड़ी। पर यह कैसे कहा जा सकता है कि वह ऐसा खास हेतु ही था? यह क्यों न कहा जाय कि ओडेसा की नीति को सिद्ध करने के लिए आस्ट्रो जर्मन सेना असमर्थ सिद्ध हुई? यह अनुमान क्यों न बांधा जाय कि ओडेसा लेने के लिए आवश्यक सेना ही आस्ट्रो-जर्मनों के पास न थी? उपर्युक्त अनुमान युक्तियुक्त हुआ होता, परन्तु सितम्बर के प्रारम्भ में जर्मनों ने रीगा-पेट्रोग्राड पर भारी चढ़ाई शुरू की और रूसी सरकार की ओर से यह भी प्रकट किया गया कि इस चढ़ाई के लिए आवश्यक मनुष्यबल भी जर्मनों ने रोमा प्रान्त से पक-

...त किया। ऐसी दशा में यह विधान ही सत्य नहीं ठहरता कि अगस्त मास में जर्मनी के पास विशेष मनुष्यबल नहीं था। यदि विशेष मनुष्यबल नहीं था तो रीगा में खड़े रह कर जर्मनी पेट्रोग्राड की सीध में क्यों कर आगे बढ़ा होता? यह बात सच है कि, रूस की राज्य-क्रांति के कारण रूसी फौज ढीली पड़ गई है; और उसकी लड़ने की शक्ति आधी से भी कम हो गई है; इस लिए एक वर्ष पहले पेट्रोग्राड की चढ़ाई शुरू करने के लिए जर्मनी के पास जितना मनुष्यबल चाहिए था उतने मनुष्यबल की अब आवश्यकता नहीं रही; पर कुछ यह थोड़ा ही है कि रीगा की ओर रूसी फौज की स्थिति एक प्रकार की और ओड़ेसा की ओर दूसरे प्रकार की हो। रूस में सब जगह सब प्रकार की व्यवस्था खराब हो रही है। और रूस की नवीन सरकार इस व्यवस्था को फिर ठीक करने और शत्रु से टक्कर मारने में अपनी

ही, अगस्त के प्रारम्भ से बिलकुल अन्त तक इँगलैंड, फ्रांस और इटली, तीनों राष्ट्रों ने जर्मन सेना पर जोर शोर के हमले करके उसको बिलकुल सत्यानाश कर देने में कुछ भी त्रुटि नहीं की। अगस्त के पहले अठवाड़े में इप्रेस की ओर फ्लैंडर्स में वर्षा और कुहरे की तकलीफ होते हुए भी एंग्लो-फ्रेंच सेना ने एक सप्ताह तक जर्मन सेना की खूब ही खबर ली। यह लड़ाई पहले की सब लड़ाइयों की अपेक्षा अत्यन्त भयंकर हुई; और थोड़ा थोड़ा पीछे हटते हुए अपना पक्ष सम्हालते सम्हालते जर्मनी हैरान हो गया। पहले अठवाड़े के बाद जर्मनी ने यह समझा कि अब एंग्लो-फ्रेंचों का ज़ोर कम हो रहा है; लेकिन इतने ही में लेन्स के आसपास अँगरेजों ने धूम मचा दी! उत्तर, पश्चिम और दक्षिण ओर से अँगरेजी सेना लेन्स के पास इतनी गई कि लॅस के पूर्व ओर का मार्ग भी अँगरेजी तोपखाने की मार में

रीगा-पेट्रोग्राड की रणभूमि।

ओर से बहुत परिश्रम कर रही है। परन्तु रूस के और [illegible] सरकार के दुर्दैव से अभी तक रूस की दशा सुधरी नहीं है। ओड़ेसा और पेट्रोग्राड, दोनों सिरों पर जब कि समान ही अशान्ति हुई है, और ओड़ेसा की चढ़ाई अधूरी छोड़ कर रीगा की ओर जर्मनी चढ़ाई कर रहा है, तब तो यही कहना पड़ेगा कि, अगस्त मास में जर्मनी ने ओड़ेसा की चढ़ाई [illegible] से अंगीकार नहीं की थी। इस बात का विचार करने के पहले, कि ओड़ेसा की अपेक्षा पेट्रोग्राड की सीध जर्मनी को अधिक श्रेयस्कर क्यों [illegible], [illegible] रूमानिया की सम- [illegible] [illegible] यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। जर्मनी की ओड़ेसा की चढ़ाई शुरू होने

आ गया। इस लॅन्स की लड़ाई में कनाडा की पलटनों ने विशेष [illegible] दिखलाई; ऐसा जान पड़ने लगा कि लॅन्स का शहर टपक कर अँगरेजों के हाथ में आयेगा; लेकिन उसी समय बहुत जल्दी [illegible] फ्रांस के पूर्वी भाग की सेना लॅन्स की ओर से आये, और किसी न किसी प्रकार लेन्स का बचाव किया। लेन्स का तात्कालिक [illegible] हो गया ज़रूर, लेकिन वर्डन के मैदान में फ्रेंचों ने जर्मनी को [illegible] हार खिलाई। और पहले की वर्डन की लड़ाई के समय जितने [illegible] [illegible] म्यूज नदी के दोनों ओर जो मोर्चे और जगहें जर्मनी ने हस्तगत की थीं उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण [illegible] फ्रेंचों ने एक दो दिन में लौटा लीं। पश्चिम रणभूमि में जर्मनी

तरुण-मित्र-मंडली भांगरवाड़ी लोणावला।

यह मित्र-मंडली उपदेशप्रद नाटकों का अभिनय करके सार्वजनिक देशोपकारी संस्थाओं को आर्थिक सहायता दिया करती है। हिन्दी-भाषा-भाषियों को भी ऐसी मंडलियां स्थापित करनी चाहिएं।

श्रीकृष्ण-जयन्ती-उत्सव के समय लड़कियां करताल बजा कर खेल रही हैं।

सांगली-कृषिप्रदर्शन।

दक्षिण में सांगली बड़ी उन्नतिशील रियासत है। यहां के अधिपति श्रीमान् चिन्तामणिराव आपा साहब पटवर्धन अपने राज्य की उन्नति के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहते हैं। पिछले दिनों आपने राज्य में एक कृषि-प्रदर्शिनी की थी। बम्बई के लाट साहब ने इस प्रदर्शिनी को खोला था। इसमें बड़े अच्छे अच्छे बैल और गौएं इत्यादि जानवर प्रदर्शित किये गये थे। अच्छे होनेवाले जानवरों के लिए पारितोषिक भी दिया गया था। अगले पृष्ठ पर प्रदर्शिनी के कुछ जानवरों के चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। भारत की खेती विशेषतया बैलों पर ही निर्भर है। ऐसी दशा में बैलों की अच्छी जातियां उत्पन्न करना भारतीय किसानों का मुख्य कर्तव्य है। अन्य देशी रियासतों के अधिपति भी यदि इसी प्रकार कृषि तथा गोधन की उन्नति में ध्यान देंगे तो बहुत अच्छा होगा। सर्वसाधारण प्रजा, जमींदार और रईसों को भी इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

श्रीमान् चिन्तामणिराव आपा साहब पटवर्धन।
(सांगली रियासत के राजा)

श्रीमान् विट्ठलराव बापूसाहब
(श्रीमान् राजा साहब के छोटे भाई।)

गोशालों की इमारतें।

इस बैल-जोड़ी ने बालू से भरे हुए अठारह पौने खाँच पर पहला नम्बर प्राप्त किया।

मौंगली-सरकार का छः वर्ष का एक बैल।

दो यमज बछड़े—उम्र १ वर्ष।

इस बैल ने बालू से भरे हुए चौदह पौने खाँच पर पहला नम्बर प्राप्त किया।

इस बैल ने बालू से भरे हुए १८ पौने खाँच पर दूसरा नम्बर प्राप्त किया।

शाहपुर-सारस्वत-पाठशाला।

हनुमज्जयन्ती के निमित्त लिया हुआ फोटो।

सूबेदार मुरारराव सेंधिया।

सितारा जिले के इन महाशय ने मेसोपोटेमिया में वीरता के कार्य कर के "इण्डियन आर्डर आफ मेरिट" की आदर-सूचक पदवी प्राप्त की है। आप दिसम्बर १९१५ से मई १९१७ तक लड़ाई पर रहे।

जमखंडी रियासत में लार्ड विलिंगडन ।

महाराष्ट्र में जो ब्राह्मणों के राज्य हैं उन्हीं में जमखंडी रियासत भी एक है। जनसंख्या, उत्पन्न, इत्यादि की दृष्टि से अन्य रियासतों में इसका नम्बर दूसरा है।

पहले जमखंडी प्रान्त चौहानों के हाथ में था। १७:४ में पेशवाओं

मा० गवर्नर साहब, श्री० भाउसाहब पटवर्धन और अन्य दर्शक लोग।

ने इसे जीत लिया। १७४७ में सांगली और मिरज का किला भी इन्होंने चौहानों से ले लिया। इसके बाद पेशवाओं ने अपना यह

[illegible]

प्रान्त अपने पटवर्धन सरदारों को दे दिया।

सन् १७६१ में श्रीमान् माधवराव पेशवा ने पटवर्धन घराने के लिए [illegible] लाख की आमदनी का मुल्क दे दिया। और यह निश्चय हुआ कि पटवर्धन घराने के लोग [illegible] सवारों के साथ पेशवा की फौज में

नौकरी करें। इसी घराने में रामचन्द्रपन्त बड़े प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हुए। बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी अप्पा उन पर बड़े खुश रहते थे। बम्बई प्रान्त के पुर्तगालों से रामचन्द्रपन्त ने ही बड़ी वीरता से पेशवाओं के लिए जीता। इनके पुत्र परशुरामभाऊ ने भी पेशवाओं

की बड़ी बहादुरी से सेवा की। मैसूर की ओर के अंग्रेजों और कोल्हापुरवालों से लड़कर उन्होंने अपना अपूर्व युद्धकौशल दिखलाया

[illegible]

था। [illegible]

[illegible]

स्वर्गीय पं० शिवकुमार शास्त्री।

संवत् १९०४ विक्रमाब्द फाल्गुन बदी ११ को काशी से चार कोस उत्तर काशिराज के 'उन्दीग्राम' नामक इलाके में सुप्रसिद्ध पण्डित रामसेवक मिश्र के घर भारत के विद्या-मार्तण्ड देशपूज्य पण्डित शिवकुमार शास्त्री का जन्म हुआ। जिस समय आप पांच वर्ष के थे, उस समय आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। इस पांच वर्ष की अवस्था में ही आपकी बाल्य लीला के समय आपकी बुद्धि की प्रखरता और असाधारण प्रतिभा देख आपके पिता ने आपको होनहार महा पण्डित होने का आशीर्वाद दिया था। पांच वर्ष के इस बालक में यह विचित्रता थी, कि किसी श्लोक को एकाध बार सुनने से ही वह उसे मुखस्थ कर लिया करते थे। इन पण्डित जी के पिता पांच भाई थे, जिनमें उक्त रामसेवक मिश्र महाशय कनिष्ठ थे। पण्डित शिवकुमार जी के पिता की मृत्यु के बाद इन पण्डित जी के पितृव्यगण इनका भरण-पोषण करने लगे। इनके एक चाचा बेतिया-राज्य में तहसीलदार थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में यह पण्डितजी अपने चाचा के साथ बेतिया चले गये। वहां कुछ दिन तक आपने ज्योतिष का अध्ययन किया। इसके बाद बेतिया के प्रसिद्ध वैयाकरण पण्डित वाणीदत्त चौबे से आप व्याकरण पढ़ने रहे। दो-ढाई वर्ष बाद यह पण्डित जी अपने ग्राम लौट आये।

बेतिया में पण्डित जी की तबीयत न लगी। कारण, वह जैसे गुरु को ढूंढते थे, वैसे गुरु उन्हें वहां न मिले। ढूंढते हुए इन पण्डित जी ने काशी के क्वीन्स कालेज में एक गुरु पाया। पण्डित जी ने क्वीन्स कालेज के अध्यापक श्रीयुत पण्डित दुर्गादत्त द्विवेदी से विद्याध्ययन आरम्भ किया। लगातार ढाई तीन वर्ष तक पण्डित जी उन्दीग्राम से चलकर नित्य काशी पढ़ने आते और फिर अपने ग्राम लौट आते थे। यहां कह देना आवश्यक जान पड़ता है, कि श्रीकाशीधाम की पाठशालायें सवेरे ६।७ बजे खुलती और १० बजे बन्द हुआ करती हैं; अब तक संस्कृत-पाठशालाओं का ऐसा ही नियम है। इस पर भी पण्डित जी चार कोस तय कर नित्य समय से पाठशाला में उपस्थित हुआ करते थे। इन पण्डित जी का ऐसा विद्याप्रेम देख पण्डित दुर्गादत्त जी ने इन्हें अपने घर रहने को स्थान दिया। इस पाठशाला में काशी के सुप्रसिद्ध बालशास्त्री महाशय भी जाया करते थे। एक दिन शिवकुमार जी कुछ विद्यार्थियों से शास्त्रार्थ कर रहे थे, बालशास्त्री जी इनकी अलौकिक बुद्धि देख प्रसन्न हो इनसे कहने लगे, कि तुम मेरे गुरु पण्डित राजाराम शास्त्री से पढ़ा करो। इस पर इन पण्डित जी ने उत्तर दिया, कि वह वृद्ध हैं; मैं उन्हें कष्ट देना नहीं चाहता; यदि आप कृपया पढ़ायें, तो अच्छा है। बालशास्त्री महाशय ने इन्हें सहर्ष पढ़ाना स्वीकार किया। अवकाश मिलने पर यह पण्डित जी अन्य विद्वानों के यहां भी शास्त्रचर्चा सुनने जाया करते थे। एक दिन जगद्गुरु १०८ स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती महाशय ने इनकी बुद्धि-विद्या का परिचय पा इन्हें स्वयं पढ़ाना स्वीकार किया। प्रायः अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की अवस्था तक अन्यान्य विषयों का अध्ययन कर इन पण्डित जी ने न्याय, वेदान्त और मीमांसादि का अध्ययन आरम्भ किया। प्रायः बाईस तेईस वर्ष की अवस्था तक आपने सब विषयों में पाण्डित्यलाभ किया। फिर दो-तीन वर्ष तक संस्कृत भाषा के प्रेमी जम्बू, बूंदी प्रभृति राज्यों में भ्रमण करते रहे। छब्बीस वर्ष की अवस्था में पण्डित जी को काशी के क्वीन्स कालेज में अध्यापक का पद मिला। आप चार वर्ष तक वहां रह बहुत ही योग्यता के साथ विद्यादान करते रहे। इसके बाद पण्डित जी ने वह पद परित्याग किया। वहां से आप दरभंगे चले गये। वहां स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह महोदय ने आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो आपको अपने दरबार में स्थान प्रदान किया। यहीं पण्डित जी ने दरभंगा-राजवंश के वंशावलीरूप से 'लक्ष्मीश्वरप्रताप' नामक बाईस सर्गों का एक महाकाव्य लिखा। यह काव्यग्रन्थ माघ, नैषध प्रभृति महाकाव्यों के जोड़-तोड़ का है। इस पुस्तक की रचना के एक वर्ष बाद काशी में 'दरभंगा-पाठशाला' स्थापित हुई। पण्डित जी इस पाठशाला के अध्यक्ष और प्रधानाध्यापक बन फिर काशी आये। तब से आजन्म पण्डित जी इस पाठशाला के प्रधान बने रहे। संवत् १९५० विक्रमाब्द में आपको गवर्नमेण्ट की ओर से 'महा-महोपाध्याय' की उपाधि दी गई। कलकत्ते की कान्यकुब्ज-सभा ने आपको 'विद्या-मार्तण्ड' की उपाधि प्रदान की। उड़ीसा—बामडे के राजा साहब ने आपके पाण्डित्य पर मुग्ध हो आपको 'अद्वैत विद्यारत्न' की उपाधि से भूषित किया। शृंगेरी-मठ के मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने आपको 'सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र' की उपाधि प्रदान की।

स्वर्गीय पं० शिवकुमार शास्त्री।

काशी का विश्वविद्यालय भी आप ही की प्रस्तावना का फल है। प्रयागधाम के गत कुम्भ-मेले में आपने ही मालवीय जी प्रभृति सज्जनों के आगे इस विश्वविद्यालय का प्रस्ताव उठाया था। उस समय पण्डित जी ने यही विचार प्रकट किया था, कि यह विश्वविद्यालय देशी संस्था हो, जिसमें धर्म का उपदेश दिया जा सके। किन्तु ऐसा न हुआ। इसके बाद मालवीय जी ने इस विश्वविद्यालय की नींव देते समय की यज्ञादि समस्त कार्य पण्डित जी के हाथ अर्पित किया। उस अवसर पर प्रजाप्रिय लार्ड हार्डिंज महोदय पण्डित जी से मिल बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज के दिल्ली आने पर उन्हें पण्डित जी का परिचय दिया गया। पंचम जार्ज महोदय इनसे मिल बहुत ही प्रसन्न हुए। यह बात उन्होंने लाहोर के छोटे लाट द्वारा प्रकट कराई। भारतवर्ष में कोई ऐसा प्रान्त नहीं, जिस प्रान्त में पण्डित जी के शिष्यगण प्रसिद्ध पण्डित के नाम से परिचित नहीं।

इधर कोई डेढ़-दो वर्ष से पण्डित जी वातरोग से पीड़ित थे। कुछ लोग इस रोग को लकवा बताते थे, किन्तु लकवे की तरह इनके हाथ-पैर शून्य हुए न थे; सिर्फ निर्बल हो गये थे। जो हो; इसी [illegible] रोग से आक्रान्त हो कर पण्डित जी एक [illegible] भगवती भागीरथी के किनारे काशी—मणिकर्णिका में वास करते रहे। यहां आपको [illegible] काशीनिवासी श्रीमान् राजा साहिबपुर ने केदारघाट पर अपने मकान में इन्हें स्थान दिया। श्रीमान् राजा साहिबपुर पण्डित जी का बहुत आदर करते थे। [illegible] आजकल यह [illegible] भारतवर्षीय ब्राह्मण-महासभा के सभापति हैं; यह सभा उक्त पण्डित जी के घर की एक छोटी कोठरी में ही संगठित हुई थी। केदारघाट पर प्रायः दो मास बिता कर आश्विन [illegible] संवत् १९[illegible] शनिवार

हे अज्ञानतमोविनाशक विभो! तेजस्विता दीजिए। देखें सर्व सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सम्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से॥

भाग ७] भाद्रपद, सं० १९७४ वि०—सितम्बर, स० १९१७ ई० [संख्या ९

श्रीकृष्णावतार।

(१)

जिस ने अरि का संहार किया, लीला से जग संसार किया।
शुभ शिक्षा का विस्तार किया, नवजीवन जग संचार किया॥
श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ।

(२)

गीता-विज्ञान पढ़ाने को, जीवन स्वाधीन निभाने को।
शुचि स्फूर्ति बदन में लाने को, सोतों को पुनः जगाने को॥
श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ।

(३)

क्या जादूमय उपदेश किया, अधिकार-युक्त आदेश दिया।
मन मोह-पंक में फाँस लिया, फिर रण में मोह-विनाश किया॥
श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ।

(४)

सुन लो! 'गीता' क्या कहती है, शुभ मंत्र फूँक दुख दहती है।
"अधिकारों-हित प्रिय! डटे रहो, कर्मी सुधीर, गम्भीर बनो"॥
श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ।

(५)

भाद्र कृष्ण-निशि प्यारी है, अष्टमी तिथी सुखकारी है।
यह कृष्ण जन्म का दिवस अहा! धन भरत-खण्ड बलिहारी है॥
श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ।

—"विजय"।

चित्रमय जगत

उसके सिरे पर एक डोरा बँधा हुआ है, ऊपर का पत्र फिराया जा सकता है, नीचे के पत्र पर यदि विविध आकृतियां होती हैं तो बहुत ही चित्रविचित्र दृश्य दृष्टि पड़ता है।

एक आड़ी डंडी पर दो सिरों पर दो पत्र लगाओ। और उनमें से एक को गति देने का साधन रखो। उस पर इतने छिद्र लम्बे लम्बे रखो कि जितने दूसरे पत्र पर चित्र हों। दूसरे पत्र पर एक ही क्रिया को भिन्न भिन्न स्थितियां एक के बाद एक इसमें दिखाई देती है। उन पत्रों पर छोटे लड़के अथवा लड़कियां दो हाथों में डोरी के सिरे पकड़ कर, डोरी पैरों के नीचे से निकाल कर सिर पर से फिराते हैं—इस क्रिया के, प्रथमावस्था से लेकर अन्त की स्थिति तक के चित्र उस पत्र पर खिंचे हैं। इससे सिनेमा की भांति हलचल करनेवाले चित्रों का प्रदर्शन घरों घर देखने को मिलता है। चित्र स्थायी रहते हैं। परन्तु अगले पत्र की गति के कारण भीतर के चित्रों की एक के बाद एक की अवस्था दृष्टिगोचर होती है। और मन को बहुत कौतूहल होता है।
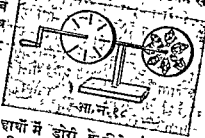
आ. नं. १८

यहां दिये हुए चित्र में एक अंडाकार गोल (cylinder) है। उसमें आयत की भांति (oblong) लम्बे छिद्र रहते हैं। भीतर की ओर सिनेमा-चित्र-पट के समान घूमता हुआ कागज का एक पट्टा है। उस पर एक ही क्रिया के अनेक स्थित्यन्तर दिखलानेवाले चित्र हैं। इस कारण प्रेक्षकों को रमणीय दृश्य दिखाई देते हैं। भीतर के चित्रों का नमूना यहां दिया जाता है।

आ. नं. १९

विषय एक चोर सन्दूक के बाहर आता है:—

भिन्न भिन्न स्थित्यन्तर

पाठको! अब दृष्टिविभ्रम के और दो कौतूहल बतला कर लेख समाप्त करते हैं।

दृष्टिविभ्रम की विशेष कौतूहलवर्धक बातें हैं—

रंगभूमि पर भूतों की आकृतियां दिखलाना।

एक कोठरी में तीन पायों का मेज है। उसके ऊपर मानवी सिर कपड़े में लिपटा हुआ रखा है। यह सिर बोलता है, और आंखें भी फिराता है। परन्तु वह शिर छिपे हुए एक मानवी देह का है। मेज के नीचे हमें पोलाई देख पड़ती है। दर्शकों को मालूम होता है कि सिर काट कर रखा गया है परन्तु सच पूछिये तो उसके नीचे ही मनुष्य छिपा रहता है। जादू दिखलाने के लिए दाहिनी और बाईं ओर दीवाल में ४५° के कोन में शीशे लगाये हैं। वह सारा प्रबन्ध ऐसा कुछ किया गया है कि कोठरी के पिछले भाग में जो दीवाल है उस पर उन शीशों का सीधा प्रतिबिम्ब पड़ता है। तीनों दीवालों के रंग समान ही हैं। प्रकाश अवश्य ही मन्द होगा। अर्थात् यह बोलता हुआ सिर देख कर दर्शकों में हास्य, करुणा, भय और आश्चर्य की लहरें उत्पन्न होती हैं।

आ. नं. २०

रंगभूमि पर भूतों की आकृति ... हल-जनक है। रंगभूमि ... आने ... और इस निर्जीव भूत के आने से दर्शकों पर बहुत ही योग्य प्रभाव पड़ता है। जीवित भूत को वास्तव में तलवार से काट नहीं सकते, परन्तु इस प्रकार की पिशाचाकृति को रंगभूमि पर जब काट कर गिरा देते हैं तब दर्शक बहुत ही खुश होते हैं। रंगभूमि के नीचे एक मनुष्य, जैसा कि चित्र में दिखलाया है, भूत का पात्र बन कर इस प्रकार खड़ा होता है कि जो दर्शकों को दिखलाई नहीं देता। इस पर दीपक का प्रखर प्रकाश डालने से, रंगभूमि पर तिरछा लगाया हुआ कांच, उसका प्रतिबिम्ब रंगभूमि पर डालता है, और इस प्र... दर्शकों को उस पर कौतूहल होता है।

आशा है कि पाठकगण इस लेख के कुछ प्रयोग करके स्वयं अपने मन तथा अपने मित्रों के मन को आनन्दित करेंगे।

राजपूत-वीर-रमणी कुमारी ताराबाई का सन्मान।

...की ओर से आदर से मानपत्र दिया गया।

दशाश्वमेध-मार्ग (काशी)

[illegible] को यह मार्ग ४ फीट गहरा पानी से भी ... उस समय गंगा नदी का तल [illegible] फीट गहरा था।

रंग का व्यवसाय।

(लेखक—श्रीयुत किशोरीलालजी ज़मीदार महलखेड़ा, होलकर राज्य।)

पाश्चात्य देशों के नूतन आविष्कारों को देख कर संसार दंग हो रहा है। प्रायः समस्त उन्नतिवान, प्रतिभाशाली देश परस्पर अनुकरण ही करते २ आज इतने उच्च शिखर पर चढ़ चुके हैं। किसी आविष्कर्ता ने साइकल निर्माण की तो दूसरे ने उसमें कुछ अधिक विशेषता रख दी। किसी ने १० घोडे के पॉवर की मोटर बनाई तो दूसरे ने १५ घोड़े के पॉवर की—किसी ने प्रति घंटा ४० मील चलनेवाला वायुयान तैयार किया तो किसीने ६० मील प्रति घंटे के वेग का। इसी प्रकार कितने ही कल-कारखानों इत्यादि की उन्नति हुई। हमारे भारतवासियों में इस प्रकार के उन्नति करनेवाले अनुकरण की बिलकुल रुचि नहीं दिखाई देती और न वे इन देशों की ओर दृष्टि डालते हैं। केवल हाथ पर हाथ, धरे बैठे हैं; और निजकर्तव्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। धर्मसेवा, जातिसेवा करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है। किन्तु कुछ नहीं कर दिखाते, अपने घर ही की उन्नति में निमग्न हैं।

वर्तमान महायुद्ध के कारण विदेशी चीजें, जिन पर हमारे देश का अधिकतर कार्य अवलम्बित था, वे अप्राप्य होने लगी हैं। कागज, स्याही तथा प्रेस-सम्बन्धी चीजों का अभाव होने से कितनी ही ग्रन्थमालाएं तथा पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने से बंद होगईं। और रंग का तो मानो अकाल ही पड़ गया है। एक पौंड रंग के डब्बे की कीमत एक रुपया थी, वही आज २५ रु. में मिलना दुस्साध्य होगया है। और रंग का बड़ा पीपा ४० में रुपये मिलता था वही आज १२०० रुपयों में भी ठिनाई से मिलता है। कहिये पराधीनता में कितना कष्ट है। चिरल से लिखते हुए अनेक लेखकों की लेखनियां मुड़ गईं, किन्तु तो भी रतवासी इस कुंभकर्णी निद्रा से न जगे। अन्यथा आज अन्य देशों । इतना मुँह न ताकना पड़ता। आगे भी यदि इसी प्रकार सोते हेंगे तो भविष्यत् में और भी अधिक आपत्ति का सामना करना ड़ेगा।

मान लीजिए, यदि जापान दियासलाई इत्यादि देना बन्द कर दे, मैनचेस्टर और वाली ब्रादर्स इत्यादि कम्पनियां कपड़ा देना बंद र दें, बरमा-आइल-कम्पनी मिट्टी का तेल देना बंद कर दे, अमेरिका चाकू, कैंचियें, ताले, होल्डर पेंसिलें, इत्यादि देना बंद कर दे, तो कहिये भारत की क्या दशा होगी? संसार में जो राष्ट्र निज आवश्यकता की सी चीजें तैयार न कर के तुच्छ २ चीज़ों के लिए पराया मुँह ताकते हैं वे यत्न में भी उन्नति नहीं कर सकते, यह अटल सिद्धान्त है। अस्तु, अब मैं दो चार प्रकार के रंग बहुत सरलतापूर्वक, कम खर्च से तैयार करने की प्रक्रिया लिखता हूँ। आशा है पाठक मेरे इस तुच्छ लेख से भली भांति लाभ उठायेंगे।

कसूँबा।

यह एक प्रकार का पौदा है जो लगभग तीन फुट तक बढ़ता है, पश्चात् इसके फूल आते हैं, जिनसे लाल, पीला, नारंगी आदि सर्वोत्कृष्ट रंग तैयार होते हैं। इसकी काश्त कुछ दिन पूर्व भारत के अधिकांश भागों में होती थी, किन्तु जब से विदेशी रंग का प्रादुर्भाव हुआ है तब से काश्तकारों ने इसकी काश्त करना बंद कर दी। क्योंकि विदेशी रंग शीघ्रतापूर्वक काम में लाया जा सकता है और इसमें कुछ समय लगता है। आशा है कि हमारे भाई पुनः इसकी काश्त को नव जीवन प्रदान कर रंग की सहायता पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे।

कसूँबा का पेड़ सालभर में एक बार फलता है। इसके फूलों को लेकर छाया में रखो। जब आवश्यकता हो, कुछ फूलों को पानी के साथ कढ़ाई में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा दो और मंदाग्नि से पकाने लगो। जब उन फूलों का रंग पूर्णतया पानी में आ जाय तब नीचे उतार लो। फिर उसमें वस्त्र इत्यादि रँग लो। इसी रंग से लाल, गुलाबी, [illegible], व नारंगी रंग बन सकता है।

आल।

इसके छोटे २ पौदे होते हैं। यह भारत के अधिकांश भागों में आसानी से पाये जाते हैं। इनको खोद कर इनकी जड़ें रंग के काम में लाई जाती हैं। जड़ों के छोटे २ टुकड़े कर छाया में सुखा रखो। जब आवश्यकता हो, कुछ टुकड़ों को, कढ़ाई में छोड़ कर पानी से भर कर चूल्हे पर चढ़ा दो। नीचे आंच देते रहो। कुछ समय में टुकड़ों से रंग निकल कर पानी में उतर आवेगा। फिर उसको नीचे उतार लो और उसमें कपड़े को डाल दो। उसी समय अति उत्तम लाल रंग तैयार हो जायगा। कुछ समय पूर्व भारत में प्रायः इसकी काश्त होती थी; और अधिकतर लाल रंग इसी से तैयार किया जाता था। आशा है, हमारे भारतवासी भाई पुनः इस काश्त को नवजीवन प्रदान कर अपनी आवश्यकता पूर्ण करेंगे।

नील।

यह एक प्रकार की वनस्पति है। इसके पौदे लगभग तीन चार फुट ऊँचाई के होते हैं। इसकी भी खेती पूर्व समय में भारत में होती थी। अब भी कहीं २ इसके पौदे पाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ ले उन्हें पानी में डाल कर उपर्युक्त क्रिया से उत्तम नीला रंग तैयार किया जाता है। इसी से नीला रंग तैयार कर वस्त्र रँगना चाहिये। अधिक गहरा बनाने पर इसका स्याह रंग भी बन सकता है।

पतंग।

इसके बड़े २ वृक्ष होते हैं, और ये भी भारत में कहीं कहीं पाये जाते हैं। इसकी छाल को अलग कर के भीतर का लाल वर्ण का गूदा काम में लाया जाता है। कुल्हाड़ी से उसके छोटे २ टुकड़े कर डालो और उपर्युक्त नियमानुसार कढ़ाई में डाल कर पकाओ, इससे अल्प काल में उत्तम गुलाबी रंग तयार हो जायगा। भारत में प्राचीन काल में गुलाबी रंग को इसी से तैयार कर अपना कार्य्य चलाते थे। अब भी भारतवासी इस ओर ध्यान देकर अपनी आवश्यकता पूर्ण करेंगे।

टेसू।

टेसू खाखरा अर्थात् पलास या ढाक के फूलों को कहते हैं। इसके बड़े २ वृक्ष भारत के सब विभागों में पाये जाते हैं। इसके फूलों को तोड़ कर छाया में सुखावें और जब पीला रंग रंगने की आवश्यकता हो तब कुछ फूलों को लेकर उपर्युक्त क्रिया के अनुसार कढ़ाई में डाल कर पकावे। फिर नीचे उतार कपड़े को भीतर डालकर रँग सकते हैं। इससे उत्तम पीला रंग रँगा जा सकता है।

हल्दी।

हल्दी से भी अच्छा पीला रंग रँगा जा सकता है। हल्दी से प्रायः समस्त भारत के लोग भली भांति परिचित हैं। जब पीला रंग रँगना हो तो कुछ हल्दी के टुकड़े कर के कढ़ाई में डालकर जल से भर दो और उपर्युक्त नियमानुसार पकाओ।

केसरा।

इसके भी पौदे भारत में पाये जाते हैं। इसके फूलों को तोड़ कर छाया में सुखाओ। रंग निकालने की रीति वही है जो ऊपर बतला चुके हैं। इससे केसरिया रंग बनता है।

[illegible]।

यह [illegible] वृक्ष है। इसकी लकड़ी [illegible] होती है। इसकी [illegible] लेकर ऊपर बतलाई हुई रीति से [illegible] रंग तैयार होता है। इसमें कुछ [illegible] [illegible] है।

करता।

इससे काफी रंग तैयार होता है। कपड़े काम को लेकर मशीन धोने, पुनः कुछ सोहागा एवं फटकरी मिलाने पर उत्तम काफी रंग तैयार होता है।

गूहर के डोड़े।

इसे कोई २ नागफनी भी कहते हैं। इसके काँटे बड़े खराब होते हैं। ...के डोड़ों से उत्तम गुलाबी रंग तैयार होता है, किन्तु काँटों के न चुभने ... पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। क्रिया यही है जो ऊपर कहा आये हैं, ...ल इसके डोड़ों को किसी शस्त्र से फोड़ना चाहिये। इसके बाद ... पर चढ़ा कर औटने पर नीचे उतार कर इसे नागफनी से ...ना होगा। मिल सके तो महीन चालनी में, नीचे बरतन रख कर, ... से डाल दो। काँटे इत्यादि समस्त उसमें रह जायँगे। इसमें

कपड़े रंगने से अच्छा गुलाबी रंग चढ़ता है। इसके अतिरिक्त नाना भाँति के रंग भारत में तैयार हो सकते हैं। किन्तु अभाव केवल बताने वालों ही का है। उपर्युक्त समस्त रंगों में उबालते समय, रंग अच्छा आने के हेतु सोहागा और कुछ फटकरी डालना लाभदायक है। और शीतल होने पर छान कर ही काम में लाये जाँय।

प्रिय पाठक! हम लोगों को भारत में उत्पन्न होने का बड़ा अभिमान है, क्योंकि इसके समान भाग्यशाली देश विश्व भर में अन्य नहीं है। ही, पतन एवं उत्थान का यांग है। उपर्युक्त वर्णन की हुई रीतियाँ अधिकांश सज्जनों को ज्ञात भी होंगी, क्योंकि जब तक भारत में विदेशी रंग का प्रादुर्भाव न हुआ था तब तक इसी प्रकार के रंग भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक काम देते थे। आशा है कि हमारे भाई पुनः अपनी सोई हुई कला को कारण को नवजीवन प्रदान कर के भारत की उन्नति में योग देंगे।

सौन्दर्योपासना।

...कौनसी सर्वोत्तम उपासना है, जिसको मूल परम प्रीति है और ...जिसका मधुरतम पुण्य फल है? ...पासना! प्रेमरूपी उपास्य वस्तु के अर्थ आत्म-समर्पण कर देना ...उपासना का परमोद्देश्य है। इस उपासना का हेतु क्या है! ...न करने से कौनसी दुर्लभ वस्तु प्राप्त होती है? न तो इस ...उपासना से कोई दुःख ही दूर होता है, न धन, सम्पत्ति, ...कीर्ति लाभ होता है और न अणिमादि सिद्धि-प्राप्ति ही होती ...पत्थर से सर मारने से क्या? किन्तु ऐसा नहीं, इस उपा... ...य वस्तु भी सुलभ हो जाती है। यह उपासना निष्काम ...तः उपासक के मलिन हृदय को अत्यन्त शुद्ध और दर्पण ... देती है। यह निस्पृह और संतोषप्रद होती है। इसी ...सक इन्द्र के सिंहासन को भी तृणवत् तुच्छ समझता ...विहारिणी एवं कल्याणकारिणी है, सुतरां इसकी फल... ...नन्द है।

...सार्वजनिक है। इसमें भिन्न २ मतावलंबियों के या कृ... ...दायों के भेद नहीं। इस उपासना का सर्वोत्कृष्ट भाव ...मान है, या यों कहो कि सब के स्वभाव-संगठन का ...त्व यही है। हिन्दू, मुसल्मान और ईसाई सब ही ... से दीक्षा पा कर सौन्दर्योपासक बन जाते हैं। ... प्रेम-पंथ के पथिक पशु, पक्षी से ले कर स्वर्ग के ... और अचर स्थावर तथा जंगम, सारी प्रकृति ही, ...ता से स्थित है। इसकी प्रतीति में अनुमान और ...हीं। सुन्दर वस्तु को देख कर बिना सिखाये ही ...मयूर नाचने लग जाता है। प्रेमोन्मत्त हो कर, ...म, पद तथा वैभव का विचार-अविचार छोड़ ...निषेध से द्वंद्वातीत हो जाता है और उसका ...ह जाता है। सत्य है, "जाति पाँति पूछे नहिं ...भजै सो हरि का होई"।

अब इस पर विचार करना चाहिये कि सौन्दर्य क्या है और कहाँ है? सौन्दर्य किसी वस्तु-विशेष में नहीं, तथा किसी काल-विशेष में नहीं, सौन्दर्य किसी देशविशेष में भी नहीं। सुन्दर वस्तु नष्ट हो जाने पर भी मन में वही रटन लगी रहती है। वियोग से प्रेम घटता नहीं, किन्तु बढ़ता ही है। यदि वस्तु विशेष में सौन्दर्य नहीं, तो उसके प्राप्त होने पर चित्त को संतोष क्यों होता है?

जिस प्रकार मूर्ति ईश्वर नहीं, तथापि मूर्तिद्वारा ईश्वरोपासना की जाती है, उसी प्रकार सुन्दर वस्तु में सौन्दर्य की उपासना की जाती है। सुन्दर वस्तु में आदर्श-सौन्दर्य की छाया मात्र है। इस छाया ही के कारण सुन्दर वस्तु की सुन्दरताई है। सुन्दर वस्तु में निर्मल साम्य तथा विरोधाभाव है। जब किसी ऐसी वस्तु के प्रभाव को हमारे स्वभाव पर पड़ती है, तब इस प्रकाश-द्वारा सारा भौतिक ...कार उड़ जाता है, और मन अत्यन्त निर्मल हो जाता है; और तब का आदर्श-सौन्दर्य, सुन्दर वस्तु द्वारा अपनी प्रतिलिपि ज्यों की ...पा जाता है। ऐसे ही समता के निर्मल आदर्शों के संयोग से 'परमानन्द' की उत्पत्ति होती है और उपासक उपास्य वस्तु में अ... भाव को आरोपित कर स्वयं अपनी उपासना करने लग जाता है। उसे सर्वत्र सौन्दर्य ही सौन्दर्य दीखता है। बहुत दिन के परिश्रम ... खोज सफल हो जाती है। तीनों लोकों का वैभव प्राप्त हो जाता ... प्रकृति देवी उसकी सेवा करने को हाथ जोड़े खड़ी हो जाती है। नरकमय संसार स्वर्ग हो जाता है। और अपवर्ग आदि दुस्... फल भी अनायास प्राप्त हो जाते हैं। उपासक उपास्य का अ... उपास्य उपासक का तद्रूप हो जाता है। दोनों ही के भौतिक शरी... नष्ट हो जाते हैं। पंचभूतात्मक शरीर के बदले, संतोष, सत्य, दया, क्षमा और शान्ति का पंचात्मक शरीर प्राप्त हो जाता है। सौन्दर्यरूपी प्राण का संचारण होता है और नित्य केवलानंदात्मक आत्मा का सर्वत्र प्रकाश पड़ने लग जाता है। इस प्रकार सौन्दर्योपासक का निर्माण एवं निर्वाण होता है, यही सच्ची अनन्य सौन्दर्योपासना है।

गुप्त।

चीनी और अमेरिकन स्वयंसेवक।

...क फौज में नाम लिखा रहे हैं। ...नागरिक भी अमेरिकनों के साथ ...की इच्छा रखते हैं।

अमेरिकन स्वयंसेवक चीन में कवायद करते हैं।

अमेरिका ने जब से जर्मनी के विरुद्ध युद्धघोषणा की तब से ... दिन के अन्दर चीन-निवासी अमेरि... सैनिक शिक्षा...

ब्रिटिश पूर्व-आफ्रिका और भारतीय उपनिवेशी।

(लेखक—श्रीयुत गो० भि० तलवलकर नैरोबी, ब्रि० पू० आफ्रिका।)

(२)

अरब लोग किलिंडिनी बन्दर में उतरे और उन्हों ने पोर्तुगीज़ लोगों के सेंट जोज़फ नामक किले को घेर लिया। यह घेरा ३३ महीने तक पड़ा रहा। ५० फिरंगी और २५०० नेटिव इस घेरे में थे। थोड़े ही दिनों में किले में बीमारी शुरू हुई; और बहुत लोग मर गये। इतने में पोर्तगीज़ों के लिए मोज़ंबिक से सहायता आ पहुँची। अर्थात् किले में १५० फिरंगियों की वृद्धि हुई; इस लिए और १३ महीने तक किले के लोगों ने टिकाव रखा। मस्कत के इमाम ने जब देखा कि किले के जीतने में देरी हो रही है तब उसने और कुछ युद्धपोत तथा बहुत सी सेना घेरे की सहायता के लिए भेज दी; और घेरे का काम तेजी से शुरू हो गया। घेरे के लोगों को समय पर सहायता न मिलने के कारण अरबों ने १२ दिसम्बर १६९८ को यह किला ले लिया; और भीतर जो लोग किले की रक्षा कर रहे थे उनको बड़ी निर्दयता से कतल किया। गोवा से सहायता के तौर पर एक बेड़ा आया; लेकिन वह दो दिन देर से पहुँचा, और इस कारण, उसके एडमिरल ने जब देखा कि किले पर अरबों का झंडा फड़क रहा है तब उसने किनारे

मुम्बासा में पोर्तगीज़ों का किला।

पर उतरने का प्रयत्न नहीं किया; और वैसा ही पीछे लौट आया। इस विजय के बाद अरब लोगों ने पेम्बा, ज़ंज़ीबार, किल्वा, इत्यादि शहर ले कर पोर्तगीज़ लोगों को सब जगह से भगा दिया; और केप डेलगाडो के उत्तरी प्रदेश पर अपनी सत्ता प्रस्थापित की; और मुख्य मुख्य शहरों में अरब गवर्नरों की नियुक्ति हुई। मुम्बासा में नासर बिन अबदुल्ला एल् मज़रुई की नियुक्ति हुई।

अरबी राजसत्ता।

यद्यपि मुम्बासा शहर और उसके दक्षिण तथा उत्तर की ओर के प्रान्तों से इस नवीन अरबी लहर ने पोर्तगीज़ लोगों को भगा दिया, तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि पाश्चात्य सत्ता का बिलकुल सत्यानाश होगया। हां, इतना अवश्य सिद्ध होगया कि पहले अरब लोगों पर जिस प्रकार पोर्तगीज़ लोगों ने राजसत्ता चलाई उसी प्रकार अब उसके विरुद्ध, अर्थात् पोर्तगीज़ जित और अरब जेता, यह सम्बन्ध यहां से आरम्भ हुआ। और इसके लिए कारण भी सबल है। जिन अरब लोगों पर पोर्तगीज़ लोगों ने सत्ता स्थापित की थी वे लोग प्राचीन काल में अरबिस्तान और ईरान के [illegible] से आगे होकर एक एक कर के इस उद्देश से यहां आये कि जिससे शान्ति के साथ समय व्यतीत हो। यहां आकर उन्होंने उपनिवेश बसाया। अर्थात् उनका किसी भी सत्ता से सम्बन्ध न था। इस लिए किसी भी राजसत्ता की दाल उनके सामने नहीं गली। अथवा यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनमें अरब जाति का अभिमान अथवा अरबी राष्ट्रीयत्व के भाव मौजूद थे। ऐसी दशा में यदि पौर्वात्यों पर पाश्चात्यों का विजय हुआ तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हां, अरबों ने जब पोर्तगीज़ लोगों को नीचा दिखा कर अपनी सत्ता प्रस्थापित की उस समय की दशा भिन्न थी। परतंत्रता की शृंखला क्या किसी को पसन्द आ सकती है? और फिर उसमें भी पोर्तगीज़ लोगों की शृंखला। जो अरब आज तक स्वतंत्र रहे थे वे ऐसी परिस्थिति में रह नहीं सकते थे। अरबिस्तान से यद्यपि उनका सम्बन्ध छूट गया था, तथापि इस्लामी धर्म से बँधा हुआ उनका तार नहीं टूटा था। स्वधर्मियों की ओर अपना झुकाव होना हर हालत में उचित ही है, और ख़ास कर मुसल्मान धर्मियों में तो यह प्रेम बहुत ही घनिष्टता से पाया जाता है। इसलिए ऐसे मौके पर, जब कि शत्रु ने धावा किया था, उनका आपस का द्विधाभाव यदि नष्ट होगया; और मस्कत के इमाम से यदि उन्होंने सहायता मांगी तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं; और यह बात हम ऊपर बतला ही चुके हैं कि वह सहायता उन्हें प्राप्त भी हुई। इस काल से, पहले फुट-फैल रहनेवाले अरब लोगों से पोर्तगीज़ लोगों की लड़ाई नहीं रही,

मुम्बासा बन्दर के मुहाने पर पोर्तगीज़ों के किले का भग्नावशेष।

किन्तु एक प्रबल अरबी राष्ट्र से उनकी लड़ाई शुरू हुई। कहते हैं कि जिस समय मस्कत के इमाम ने मुम्बासा को घेरा उस समय उसके जहाज़ों में से एक जहाज़ पर ३ इंच की ८० तोपें थीं; यह कदाचित् अतिशयोक्ति हो सकती है, पर इतना अवश्य ही सच है कि उस समय इस अरबी राष्ट्र की जहाज़ी ताकत बहुत बड़ी थी। इसी लिए इस समय उनकी जीत हुई, और पोर्तगीज़ लोगों को यह मालूम हुआ कि यह लड़ाई अफ्रीका वासी लोगों से नहीं है, किन्तु उनके प्रमुख राष्ट्र से यह सामना है।

पोर्तगीज़ लोगों ने इस प्रदेश पर बहुत काल तक राज्य किया था, इस लिए उनके हाथ से इस प्रान्त का जाना उन्हें सहन नहीं हुआ। अतएव उन्होंने अगले कुछ वर्षों में, लिस्बन और गोआ से मुम्बासा को लौटा लेने के लिए अनेक प्रयत्न किये; परन्तु उनके उद्योग ३० वर्ष तक सफल नहीं हुए, और आगे भी उनको जो मौका मिला उसका कारण भी अरबों की फूट ही है। [illegible] की [illegible] की शक्ति किसनी कमज़ोर होती है, उसका यह एक ही उदाहरण नहीं है। सन् १७२८ में मुम्बासा और [illegible] के बाद [illegible] ([illegible]) में [illegible] हुए, और [illegible] के [illegible] ने [illegible] से पोर्तगीज़ लोगों की सहायता मांगी। पोर्तगीज़ [illegible] के लिए [illegible] बैठे थे। [illegible] के कारण, [illegible] के [illegible] की सहायता से, मुम्बासा ले लिया, [illegible] और

पना झंडा किले पर चढ़ाया। यही नहीं, बल्कि थोड़े ही काल में प्रायः म्पूर्ण किनारा व्याप्त कर लिया। अवश्य ही यह स्थिति बहुत दिन क नहीं टिकी, अरबों का पूर्व-उत्साह बना हुआ था, इस लिए उन्होंने पनी सत्ता आफ्रिका के इस प्रदेश पर सन् १७२९ में फिर स्थापित की। ाच में फिर गोवा के वाइसराय ने अरबों के शासन के लिए एक बड़ा ड़ा भेज दिया; लेकिन मार्ग में बहुत बड़ा कुहरा उठा; और १२०० ोगों के साथ यह बेड़ा रसातल को चला गया। साम्राज्यस्थापना के लए पोर्तगीज़ लोगों का यह अन्तिम प्रयत्न है। इस रीति से यह यत्न दैवी कोप से निष्फल हुआ; और एक योरोपियन सत्ता का सूर्य ितिज के नीचे गया।

इस समय मस्कत के इमाम की सत्ता मेगादिश से केप डेलगाडो तक ५० मील के घेरे में स्थापित हुई।

मस्कत के इमाम—सन् १७२९ में पोर्तगीज़ लोगों का पूर्ण पराजय हो ाने के बाद पूर्वआफ्रिका के किनारे के राज्यसूत्र मस्कत से संचालित ोने लगे। मुम्बासा, पाटे, इत्यादि जगहों में पोर्तगीज़ गवर्नरों की गह अरब लिवाली नियुक्त किये गये। आगे सौ डेढ़ सौ वर्षों में अन्य केमी राष्ट्र से झगड़ा नहीं करना पड़ा; अतएव अधिकतर रक्तपात हीं हुआ; परन्तु इस बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शान्ति की जो ावना बनी उसके अनुसार शान्ति स्थिर रहना उस समय सम्भव हीं था। क्योंकि मस्कत में प्रारम्भ से ही दो दल थे। पहला यूराबी ौर दूसरा अल्बु सैयदी। यूराबी दल ने पोर्तगीज़ लोगों को भगा कर पूर्वआफ्रिका में अपनी सत्ता स्थापित की; इसके बाद मस्कत के यूराबी घराने के हाथ से राजसत्ता चली गई; और अल्बु सैयदी घराने के हाथ में आई। इस प्रकार के दोदल तथा भीतरी कलह के कारण राज्य की दुर्बलता अन्य लोगों के सामने आती है, और धूर्त लोग उस दुर्बलता से लाभ उठाये बिना नहीं रहते। यह मौका देख कर मुम्बासा का लिवाली अली बिन ओयमान मज़रूई, मुम्बासा और उसके आसपास का प्रदेश दाब बैठा; और उसके प्रतिस्पर्धी पाटे के लिवाली नामन ने भी वैसा ही किया और दोनों स्वतंत्र हो गये। इन दोनों लिवालियों में परस्पर द्वेष सदैव रहा। इन दोनों का यदि कहीं एकमत हुआ होगा तो मस्कत के इमाम की सत्ता को फटकार देने में—अर्थात् इस प्रदेश की शान्ति का भंग इन दोनों की कलह के कारण होता था। सन् १८०४ तक मस्कत के इमामों ने, अर्थात् अहमद बिन सैयद व सुलतान बिन अहमद ने, इस मुल्क से सार्वभौम राजा की दृष्टि से किसी न किसी तरह कारोबार एकत्र करके, येनकेनप्रकारेण अपनी सत्ता इन लिवालियों पर कायम रक्खी थी।

घूमने लगा। उसके कप्तान ने जंज़ीबार की राज्य-रचना तथा व्यापार के सुभीतों के विषय में इस प्रकार लिख रखा है:—

"उस समय जंज़ीबार में मस्कत के इमाम सैयद बिन सैद का गुलाम हकीम (गवर्नर) था, भूमिकर तथा अन्य कर यही वसूल करता था। उसकी वार्षिक आय लगभग सवा दो लाख रुपये होती थी। यहां का अधिकार हकीम, उसका एक सहायक और सेना के तीन अरब चलाते थे, जमीन का लगान चाहे जिस तरह लोगों से वसूल करते थे, कुछ निश्चित नहीं था। इसका एक उदाहरण, हमारे यहां रहते समय, इस प्रकार दिखाई दिया। मस्कत से कुछ जहाज आये और यह प्रकट किया कि लड़ाई के खर्चे के लिए एक लाख रुपये मस्कत के इमाम ने मांगे हैं। वास्तव में यह रकम उन आये हुए जहाजों की मरम्मत के लिए ही आवश्यक थी; क्योंकि ये बंगाल प्रान्त में जानेवाले थे। हकीम ने हुक्म दिया कि प्रत्येक मनुष्य अमुक एक निश्चित रकम एक निश्चित मुद्दत में ला कर देवे; और इस प्रकार वह रकम एकत्र की। आनेवाले माल की मूल कीमत पर पांच फी सदी जो कर बैठाया गया था वह आमदनी का दूसरा द्वार था। हकीम के पास लड़नेवाली सेना बिलकुल नहीं थी; लेकिन चार पांच सौ गुलामों को ही हथियार देकर सिपाही बनाया था। यह अनुमान कर के कि आनेवाले माल की कीमत कम से कम तीन लाख पौंड होगी, वह आगे लिखता है कि, "बाद को फिर हम को यह भी ज्ञात हुआ कि यूरोपियन माल की मांग यहां बहुत भारी है। परन्तु सिक्का न होने के कारण माल मोल लेने के लिए गुलाम अथवा हस्तिदन्त के अतिरिक्त अन्य साधन कदाचित् नहीं होगा। हां, इतना अवश्य निश्चित है कि इस जगह हम अपना बहुत सा माल लाभदायक रीति से बेंच सकेंगे।"

युगांडा प्रोटेक्टोरेट के संस्थापक।

ब्रिटिश लोगों का हेलमेल।

इसी वर्ष टरनेट जहाज के आने के बाद ब्रिटिश लोगों का 'सिल्फ' नामक जहाज़ आया। और इसी समय से जंज़ीबार शहर से ब्रिटिश लोगों का हेलमेल शुरू हुआ। 'सिल्फ' के कमांडर ने उस समय के भारतीय लोगों के विषय में जो कुछ लिख रखा है उससे मालूम होता है कि इसके अनेक वर्ष पहले भारतीय लोग व्यापारी की हैसियत से यहां आकर रहे थे।

वह लिखता है:—

"Some Surat merchants, who had often complained of the Hakim's treatment represented that he had demanded Rs. 12000 of them as their portion of the tribute exacted by the Imam of Muscat and in failure of payment, had threatened them with imprisonment."

सूरत के कुछ व्यापारियों ने यह शिकायत की कि हकीम ने, ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हम से १२००० रु० मस्कत को भेजने के लिए मांगे; और उनके न देने पर कैद करने की धमकी दी।

इस वर्ष से खोजा और भाटिया जाति के लोग जंज़ीबार को आने लगे।

ब्रिटिश लोगों का आगमन।

सन् १७१८ में नेपोलियन का भारत पर चढ़ाई करने का विचार नष्ट करने के लिए कमोडोर [illegible] के अधिकार में ब्रिटिश जहाज़ों का बेड़ा आफ्रिका के पूर्व किनारे पर घूमने लगा।

सुलतान बिन अहमद की मृत्यु के बाद ओमान की राजसत्ता, उसके दूसरे लड़के सैयद बिन सैद के हाथ में आई। यह अवस्था में सिर्फ १४ वर्ष का ही था, इस कारण इसके हाथ में राज्यसूत्र आने के बाद कुछ वर्ष बहुत ही संकट में व्यतीत हुए। यह छोटी अवस्था का होकर भी बड़ा होशियार, पराक्रमी और कारोबारी था। इस लिए इसका [illegible] विशेष महत्व का हुआ है। इसके शासनकाल के, पहले कुछ वर्ष [illegible] में व्यतीत हुए, इसका कारण यह हो सकता है कि [illegible] पूर्व आफ्रिका पर [illegible] करने का [illegible] किया, [illegible] यह भी हो सकता है कि छोटी उम्र का [illegible] के कारण [illegible] और पाटे के लिवालियों ने [illegible] किया। कुछ भी हो, [illegible] है कि [illegible] इसके [illegible] बहुत [illegible] थी।

[illegible] का [illegible]।

सन् १८११ में [illegible] ब्रिटिश [illegible] के [illegible]

आफ्रिका के लिवाली के अधिकार [illegible] इस [illegible] में इमाम सैयद बिन सैद के विचार बिलकुल भिन्न थे। ये [illegible] चूंकि अरब होकर लिवाली थे, इस कारण उन पर कुछ [illegible] था; परन्तु इसके लिए भी कुछ मर्यादा थी। जब तक इन [illegible] की ओर से वार्षिक [illegible] मस्कत के खज़ाने में जमा होते [illegible] मस्कत के सुलतान की सत्ता स्वीकार करते, तब तक [illegible] परन्तु ये जब स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगे तब [illegible] के [illegible] यह [illegible] नहीं [illegible] था, [illegible] अपनी [illegible] इसी उद्देश से उसने अपनी [illegible] बहुत बढ़ाई थी, [illegible] इसका मन बहुत [illegible] था, और इस कारण [illegible] के बाद एक [illegible] में ही [illegible]। [illegible]

प्रणाली पोर्तगीज लोगों को अपरिचित ही थी, इसमें शंका नहीं। अस्तु।

सैयद बिन सैद, जो कि इतना प्रबल था, उसे भी मुम्बासा के लिवाली ने कष्ट देने में न्यूनता नहीं की। मुम्बासा के मज़रूई घराने के लिवाली और पाटे के लिवाली में सदैव लड़ाइयां हुआ करती थीं; और सन् १८२२ ई० में फिर इन दो लिवालियों में लड़ाई शुरू हुई। पाटे का लिवाली कमज़ोर था; इसलिए उसने सैयद बिन सैद की सहायता मांगी; परन्तु मुम्बासा के मज़रूई सुलेमान बिन अली ने दूसरे एक प्रबल राष्ट्र की सहायता मांगी, और वह प्रबल राष्ट्र ब्रिटिश राष्ट्र है।

ब्रिटिश सत्ता की लहरें।

इस समय ब्रिटिश लोगों का क्रूजर "बेराकूटा" पूर्व आफ्रिका के किनारे पर घूम रहा था; और उसके कप्तान वीडल से मुम्बासा के लिवाली ने सहायता मांगी, परन्तु यह बात उसके वश की न थी, इस कारण उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया। सुलेमान बिन अली ने समझा कि जब तक हमें किसी की सहायता न मिलेगी, अथवा कम से कम जब तक हम यह न प्रकट कर सकेंगे कि हमें किसी न किसी की सहायता है, तब तक हमारा जोर नहीं चलेगा; इस लिए उसने अपनी ही जवाबदारी पर और ब्रिटिशों की सम्मति न रहते हुए, युनियन जैक का झंडा लगा दिया। दो महीने बाद "लीवन" जहाज के कप्तान ओवन ने यह झंडा देखा, और अधिकार के प्रश्न से सिर को न थकाते हुए यह निश्चय किया कि राष्ट्रहित की दृष्टि से लिवाली को सहायता देना सहज है। [इस]के बाद तुरन्त ही उसने तात्कालिक [ब्रि]टिश सत्ता स्थापित की, और ले० रीट्ज़ [को] रेज़िडेन्ट नियत किया। उसके स्मरणार्थ [कि]लिंडीनी बन्दर के एक भाग को पोर्ट-रीट्ज़ नाम दिया गया है। सैयद बिन सैद [के] समान मस्कत के जलसैनिक राष्ट्र के [यश]स्वी सुलतान ने जब यह सुना कि लिवाली [ने] ब्रिटिश लोगों के पंखों के नीचे आश्रय [लि]या है तब उसे यह बात सहन नहीं हुई; [औ]र उसने भारतसरकार से तीव्र पत्रव्यव[हा]र कर के मुम्बासा में नियुक्त किये हुए [रे]जिडेन्ट को लौटा बुलाने के लिए उसे [बा]ध्य किया। ब्रिटिश सत्ता की यह पहली [ल]हर इस प्रकार लौटी। अस्तु।

ज़ंज़ीबार के सुलतान।

भारत सरकार को अपना रेज़िडेन्ट यदि उस समय मुम्बासा में [र]खना होता तो वह ऐसा कर सकती थी; परन्तु आसपास की परि[स्थि]ति की ओर यदि थोड़ी सी दृष्टि डाली जावे तो ऐसा दिखाई देगा कि ऐसे समय में पीछे हट जाना ही समयोचित और राजनीतिज्ञता की बात थी। इसी समय के लगभग नेपोलियन की सैनिक सत्ता की [उ]सकी महत्वाकांक्षा को नष्ट कर के थके हुए ब्रिटिश लोग विश्रांति ले रहे थे; मराठों से उनकी लड़ाइयां अभी हाल ही में समाप्त हुई थीं; परन्तु भारतवर्ष में जैसी शान्ति और व्यवस्था होनी चाहिए थी वैसी न होने के कारण, समुद्री मार्ग के मस्कत के समान प्रबल सुलतान से बैर करके, विलायत से भारत को आने का अपना मार्ग ख़तरे में डालना कदापि उचित नहीं था। अस्तु। एडमिरल ओवन का विचार यद्यपि भारत के लाट साहब को पसन्द नहीं पड़ा, तथापि उनकी, मुम्बासा में ब्रिटिश वर्चस्व स्थापित करने की चतुरता, अर्थात् साम्राज्य बढ़ाने के लिए आवश्यक गुण और भारत सरकार की राजनीतिज्ञता का सैकड़ों साल ही क्या साम्राज्यवृद्धि का कारण नहीं हुआ? अस्तु। मुम्बासा के लिवाली को इस प्रकार जब ब्रिटिशों की ओर से सहायता न मिली तब फिर सैयद बिन सैद और मज़रूई लिवाली में घोर लड़ाइयां हुईं। कितनी ही बार सैयद बिन सैद को तात्कालिक सन्धि कर के मस्कत में लौट जाना पड़ा। आखिर वह सन् १८३३ में मस्कत को लौट गया। जब उसने यह देखा कि मज़रूई लिवाली का हमेशा हार्दिक पारि-[प]त्य नहीं होता तब धोखा देकर विश्वासघात से उसने उसको कैद करने की युक्ति भिड़ाई और १८३७ में उसे पकड़ लिया; और इसी वर्ष मुम्बासा सुलतान के पूर्ण अधिकार में आगया, इसके आगे का समय चूंकि शान्ति के साथ व्यतीत हुआ, इस कारण इस प्रदेश का व्यापारी महत्व पाश्चात्य लोगों को अच्छी तरह मालूम हो गया; और फिर प्रमुख राष्ट्रों ने ज़ंज़ीबार में अपने व्यापारी वकील नियुक्त किये। सन् १८३६ में युनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के राष्ट्र ने अपना कैन्सुलेट स्थापित किया। इमाम सरकार के राज्य में ब्रिटिश सरकार की तरफ से ले० कर्नल हेमरटन वकील के तौर पर नियत किये गये। सन् १८४४ में फ्रेंच सरकार ने यहां अपना वकील भेजा। इस इमाम के शासनकाल में परदेश से हेलमेल बढ़ा; और व्यापार की वृद्धि होने लगी। उसके अधिकार में केपगार्ड फुई से केप डेलगाडो तक ६६० मील लम्बाई का मुल्क था। इमाम सैयद बिन सैद सन् १८५६ के अक्टूबर मास में ज़ंज़ीबार आते हुए जहाज में ही मर गया। मरते समय उसने मृत्युपत्र लिख रखा था। तदनुसार उसके बड़े लड़के सैयद थवैनी को मस्कत की गद्दी मिली; और उसके दूसरे लड़के सैयद मजीद बिन सैद को ज़ंज़ीबार की गद्दी मिली। इस व्यवस्था के अनुसार मस्कत के प्रबल और महत्वाकांक्षी इमाम सैयद बिन सैद की मृत्यु के बाद मस्कत के साथ पूर्व आफ्रिका का सम्बन्ध सदैव के लिए टूट गया।

ज़ंज़ीबार के सुलतान।

सुलतान सैयद बिन सैद के जीवनकाल में ही मस्कत की गद्दी ज़ंज़ीबार आनी चाहिए थी। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद ऐसी व्यवस्था हुई; इसके लिए उसका मृत्युपत्र नाममात्र के लिए कारणीभूत हुआ। इस प्रदेश पर अरब लिवालियों की स्वतंत्र सत्ता चलती थी; और कभी कभी यह सत्ता मस्कत से नियंत्रित होती थी। ऐसे समय में यह कल्पना भी किसी के सिर में नहीं आई थी कि आफ्रिका के अन्तरभाग पर किसकी सत्ता है, अतएव आफ्रिका के जंगल में चाहे जो प्रवेश कर सकता था। परन्तु सुलतान सैयद बिन सैद के मरने के पहले कुछ वर्ष तक यह अंधाधुंधी बहुत कम होगई थी। जिस प्रकार मुम्बासा के मज़रूई घराने पर मस्कत के इमाम की धाक इसने बैठाई उसी प्रकार उसने ज़ंज़ीबार से कांगो तक बीच बीच में व्यापारी स्थान नियत किये। इसके सिवाय उसका हुक्म बेगा से टगानीका झील के किनारे तक माना जाता था। चूंकि भीतर के प्रदेश से प्रत्येक प्रकार के माल के विषय में खबरें पहुंचने लगीं; इस लिए पाश्चात्य व्यापार ने सिर उठाया; और जैसा कि ऊपर कहा है, भिन्न भिन्न राष्ट्रों के लोग तथा वकील यहां आकर रहने लगे। सुलतान सैयद मजीद बिन सैद का शासनकाल सन् १८५६ से सन् १८७० तक रहा। इस काल में व्यापार-वृद्धि, परराष्ट्र के वकीलों और व्यापारी लोगों का आगमन, मिशन की स्थापना, इत्यादि विशेष बातें हुईं। आफ्रिका के अन्तर्भाग का अन्वेषण करने के लिए लोग इसी समय में निकले; और प्रत्येक राष्ट्र ने ज़ंज़ी-बार के सुलतान पर अपनी धाक बैठाने की पराकाष्ठा की।

सन् १८४४ में प्रसिद्ध लडविग क्रैपफ ने मुम्बासा में मिशन स्थापित किया। इसने रे० जे० रेबमन की सहायता से, कुछ वर्ष बाद, अर्थात् सन् १८४८–४९ में किलीमानजारो और केनिया पर्वतों का शोध लगाया।

सन् १८५७ में सुप्रसिद्ध भूप्रान्तशोधक बर्टन और स्पीक बगामोयो से टँगानिका झील की ओर गये और फिर स्पीक बर्टन को पीछे छोड़ कर आगे गया और विक्टोरिया नियांजा झील ढूंढ निकाली।

सन् १८६२ में डा० क्रैपफ ने अपने मित्र की सहायता से United Methodist Church Mission स्थापित किया और इसी वर्ष सर सेम्युएल बेकर ने अल्बर्ट नियांज़ा का पता लगाया।

सन् १८७० में सुलतान सैयद मजीद की मृत्यु होगई; और उसके पश्चात् इमाम सैयद बिन सैद का भाई बर्गश बिन सैद गद्दी पर बैठा, और इसका शासनकाल भी इसी रीति से सन् १८८८ में समाप्त हुआ। इस अवधि में ब्रिटिशों के कर्नल हेमर्टन के बाद कर्नल पेल्ली इत्यादि

(लंका के प्राचीन इतिहास के आधार पर ।)

युवराज-पत्नी इला—देखते नहीं यह तो पागल है-छोड़ दो ।

पागल—नहीं नहीं, मैं पागल नहीं हूं । मैं हूं युवराज । मुझे पहचानती नहीं ? मालूम होता है तुम्हारे कोई लड़का नहीं ! बंशी बजाने के कारण तब उसे क्यों फांसी मिलेगी ! !

राजकुमार—पागल ? यह भयंकर धूर्त है । देखती नहीं, मेरा कैसा तिरस्कार कर रहा है ? राज-प्रश्रय के कारण प्रजा की स्पर्धा इतनी बढ़ जावे कि हमारे प्रमोद-उद्यान में प्रवेश कर के हमारी निर्भर्त्सना करने का साहस करे ? यह स्पर्धा मैं नहीं रहने दूंगा-नहीं रहने दूंगा !

पुनः उस पागल को सम्बोधन करके—बंशी बजाने के कारण तो तेरे लड़के को फांसी दी है और यहां घुस आने के कारण अब तुझे कुत्तों से नोचवाऊंगा ।

पागल—हाः हाः ! मेरे साथ चालाकी ? क्यों अब विश्वास हुआ कि-मैं राजकुमार हूं ! ऐसा वैसा नहीं, मैं राजकुमार हूं ! किसी को नहीं रखूंगा ! छोटा बड़ा नहीं मानूंगा ! एक तरफ़ से सब का सफ़ाया करूंगा ! हाः हाः !

इला—(स्वामी से) तुम दिन दिन होते क्या जा रहे हो ? यह कैसी अतृप्ति, अशांति, तुम्हारे हृदय में भर गई है ? रात दिन निरीह प्रजा को सता कर तुम चाहते क्या हो ?

पागल—हाः हाः मैं और चाहता ही क्या हूं ? शोक की झड़ी और आंसुओं की लड़ी ! स्वदेश की मिट्टी और पानी-सब लाल ही लाल कर दूंगा !

इला—छोड़ दो पागल को । व्यर्थ अत्याचार कर के प्रजा का शाप लेना उचित नहीं । उसे बड़ा दुःख है, छोड़ो, छोड़ो ।

पागल—पुत्र-वियोग के शोक से भी अधिक दुःख ! ! उफ़ !

इला—छोड़ो । उसे शीघ्र छोड़ो । पुत्र-शोकातुर बिचारा पागल ! आह !

राजकुमार—इला ! यम का दण्ड हो तो शिथिल हो सकता है—

पागल—किन्तु हमारा नहीं होगा ! हाः हाः !

(पागल को लेकर राजकुमार का प्रस्थान)

इला—(आप ही आप) कैसा भीषण अत्याचार ! कैसी जघन्य रक्त-पिपासा है ! जो पिशाच के लिये भी असम्भव हो वही मनुष्य के लिये किस प्रकार सम्भव हो जाय ? . . मनुष्य क्या पिशाच से भी अधम है ? अथवा मनुष्य की त्वचा के भीतर पिशाच की कोई नवीन सृष्टि है ! उफ़ ! सृष्टि ? किसकी ? भगवान् की ? जिन्होंने इस सारे संसार को ऐसी सुन्दरता से गढ़ा है—उनकी ? विश्वास तो नहीं होता । असम्भव ! हे भगवान् ! मेरे स्वामी की यह रक्त-पिपासा, जघन्य रक्त-पिपासा, निवारण कीजिए ! प्रभो ! शीघ्र निवारण करके प्रजा का संकट दूर कीजिये !

(२)

राजा—मंत्री ! नहीं नहीं ! अब मुझे नीचे बैठने दो ! इस राज-सिंहासन पर बैठने योग्य अब मैं नहीं रहा ! उफ़ !

मंत्री—आप के समान सर्वगुणसम्पन्न राजा किस देश की प्रजा को नसीब होगा ?

राजा—[illegible] मंत्री ! जो राजा स्नेह के वशीभूत हो अपने लड़के को शासित नहीं कर सकता । दुर्वृत्त पुत्र के अत्याचार से प्राणों से भी प्रिय प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ है— वह राजा !—सर्वगुणसम्पन्न राजा ! (कुछ देर चुप रह कर) मंत्री ! जाओ उस शैतान से कह दो कि वह [illegible] है— हम यहाँ हैं । किन्तु अब वह हमारी प्रिय प्रजा के ऊपर अत्याचार न करे और घर घर जा कर [illegible] न सतावे ।

(सहसा राजकुमार का प्रवेश)

राजकुमार—मैं क्या चाहता हूं । मैं चाहता हूं—राजा की प्रि[य] प्रजा के रक्त से स्वदेश को रँगना ।

कुछ देर राजकुमार की ओर देख कर राजा ने आंखें बंद कर लीं ।

(भयंकर क्रोध दिखलाते हुए राजकुमार ने प्रस्थान किया)

राजा—(मृत पत्नी को सम्बोधन करके अर्धस्फुट भाषा में) कल्याणी ! आज यदि तुम जीवित होती तो मैं स्नेहवश इतना कातर न बनता— निश्चय ही इस दुष्ट सन्तान को दण्ड दे कर उसका शासन करता ! उफ़ !

(३)

राजकुमार—(आप ही आप) इला कहती है—प्रजा का सताना महापाप है, अत्याचारी को शान्ति नहीं मिलती, सुख नहीं मिलता ! किन्तु कहां ? मुझे तो अशांति नहीं ! क्या चाहता हूं जो नहीं मिलता ? राज-सिंहासन ? जिस जगह बैठने से पुरुष का पौरुष नहीं रहता, पुरुष एक स्नेहमयी नारी में रूपांतरित हो जाता है, वही सिंहासन ? जिसके स्पर्श से दुर्वृत्ति को दमन करने की शक्ति लोप हो जावे जिस जगह बैठने से केवल दया और धर्म ही की चर्चा करनी पड़े; वही राज-सिंहासन ? नहीं नहीं ! वह मैं नहीं चाहता ! मैं पुरुष हूं । कोमलता मेरा व्यापार नहीं । ज्वालामुखी पहाड़ की भांति मैं सर्वदा देश के जीवन में आशंका, उद्वेग एवं आतंक जमाये रखूंगा । और बीच बीच भूकम्प की तरह समस्त देश को कँपा कर हाहाकार और सर्वनाश उत्पन्न करता रहूंगा । मैं नारी नहीं हूं—पुरुष हूं । अत्याचार ही मेरा धर्म, भीषणता ही मेरी शांति और विपत्ति ही मेरा आशीर्वाद है ! पुरुष हूं—सन्तोष मेरे लिए नहीं— सन्तोष मैं नहीं चाहता ! असन्तोष ही मेरी वासना है ! असन्तोष ही मेरी साधना है ! यह असन्तोष जिस दिन समाप्त हो जायगा उसी दिन मेरी [illegible] समझनी चाहिए !

(सहसा इला का प्रवेश)

इला—उन्मत्त की भांति यह क्या बक रहे हो ? एक ओर तो देखो ! दिन दिन यह होते क्या जा रहे हो ? [illegible] अत्याचार ! मनुष्य हो कर मनुष्य की हत्या ? मनुष्यत्व ओ ! असमातुर न बनो ! !

राजकुमार—तूफ़ान जब उठा है, तब चलेगा अवश्य । [illegible] बात नहीं सुनूंगा । यदि रोकना ही चाहती हो, तो तूफ़ान [illegible] प्रबल बनो । अत्याचार, अविचार एवं रक्तपात की मात्रा [illegible] कर मेरे कामों को उत्तेजना दो ! क्यों ऐसा करता हूं ? [illegible] शराब पीता है ? किस सुख के लिये ? केवल नशा के लि[ये] । यही हाल है-मुझे अत्याचार और अविचार का नशा है ! आनन्द है ।

इला—प्रजा का जीवन मरण लेकर खेल करने का नशा ! ! उफ़ ! कैसी भीषणता है !

राजकुमार—क्यों ? जीवन मरण में कौनसा दुर्लभ है ? मरण ! मरण से बढ़ कर जगत में सुलभ ही क्या है ? और जीवन ? प्रजा का जीवन इतना बहुमूल्य नहीं कि स्वयं राजकुमार उसको लेकर खेल न कर सके !

इला—बस ! बस ! हो चुका ! अब यह बातें न कहिये !

राजकुमार—कहता तो हूं, यदि शांति चाहती हो-मुझे उत्तेजना [illegible]

इला—कहो ! क्या करना होगा ? मैं वही करूंगी ! किस उपाय से तुम्हें उत्तेजना मिलेगी ?

राजकुमार—राजा की स्नेहांध, आंखों में [illegible] होगा । [illegible] राजा के ही हाथ से उस पागल धूर्त का वध कराना होगा । [illegible] सकोगी ?

इला—उफ़ !

(४)

राजा—(आप ही आप) किस पाप से मनुष्य दुर्बल हृदय लेकर राजा बनता है ? प्रजा के तप्त-अश्रु-सागर में राज-सिंहासन डूब रहा है। पुत्र को शासित करने की शक्ति नहीं, तब मैं राजा ही क्यों हुआ ? किसने मुझ अयोग्य को सिंहासन पर बिठला दिया ? प्रजा विद्रोह क्यों नहीं कर देती ? (कुछ देर चुप रह कर) नहीं नहीं, मैं अब दुर्बल नहीं हूं। मैं राजा हूं—प्रजा का हित-साधन ही राजा का एक मात्र कर्त्तव्य है। पुत्र-स्नेह चीज़ ही क्या है ? प्रजा के हित के लिये-प्रजा के मंगल के लिये-मैं सर्वस्व बलि करने को तैयार हूँ। अभी उस अत्याचारी, नराधम पुत्र के प्राणदंड का आदेश देता हूं ! (पुत्र के प्राण-दंड का आदेश लिखने लिखते) यह क्या ? हाथ क्यों कांपता है ? नहीं ! नहीं ! अब रुक नहीं सकता ! रुकने से काम नहीं चलेगा, प्रजा के हाहाकार से आकाश फट कर गिरना चाहता है ! उस जगत् के शत्रु को, अत्याचारी पिशाच को, प्राणदण्ड दूंगा ! किन्तु ! किन्तु ! वह तो मेरे हृदय का एक खंड ही है ! आज भी स्वर्ग से दो आंखें उसे स्नेह-पूर्ण दृष्टि से देख रही हैं ! इस जल्लाद पिता को पुत्र-प्राण-दंड लिखते देख कर, जान पड़ता है, वे आंखें विकल होकर रोती हैं ! अब तो मेरा हृदय भी खंड खंड हो रहा है ! हाय ! क्या करूं ! !

(मंत्री का प्रवेश)

मंत्री ! राज्य भर में घोषणा करा दो कि उस दुष्ट राजपुत्र के प्राण-दंड की आज्ञा हो गई है ! पिशाच-पुत्र के रक्त से प्रजा का हाहाकार बुझने दो। प्रजा का कल्याण और शांति सुख लौटने दो !

मंत्री—महाराज !'

राजा—मंत्री ! चुप रहिये ! मैं बहुत दुर्बल-हृदय हो रहा हूं। शिथिल होने से कर्त्तव्य-विमुख होकर महा पातकी बनूंगा ! चुप ! चुप !

मंत्री—सुसम्वाद ! महाराज सुसम्वाद है !

राजा—क्या ? क्या ? क्या प्रजा विद्रोही होगई ? अह ! सन्तान को बलि देने से छुट्टी मिली ! अब यह रक्त-लोलुप आदेश-पत्र फाड़ डालूं ?

मंत्री—इस भीषण आदेश का कोई प्रयोजन नहीं । युवराज कहते हैं-" यदि राजा मेरी एक प्रार्थना पूरी कर सकें तो मैं अत्याचार करना छोड़ दूं। "

राजा—कहो ! कहो ! वह कौनसी प्रार्थना है ?

मंत्री—है एक !

राजा—कहोगे भी ! शीघ्र कहो !

मंत्री—उसी पागल के सम्बन्ध में !

राजा—क्या पागल के सम्बन्ध में ?

मंत्री—आपके हाथ से उसका वध ......!

राजा—मंत्री ! यह क्या ? केवल शांति-मरीचिका दिखलाते हो ! रक्तस्रोत कहां बन्द हुआ ? अधम-पुत्र-रक्त से तो कँपता था ! यह निरीह-प्रजा-रक्त, असहाय-पागल-रक्त, पुत्र-रक्त से कम मूल्यवान नहीं है ! नहीं ! मैं ऐसा नहीं कर सकूंगा ! पुत्र-स्नेहांध नहीं हूंगा !

(५)

प्रथम प्रजा—कहो भाई ! अब क्या करना होगा ? रात दिन का अत्याचार कहां तक सहेंगे ? राजकुमार अब शांत होने के नहीं !

२ य प्रजा—क्यों ? करना क्या है ? मरना है, सो चट पट मरो !

१ म प्रजा—केवल मर ही जाँय ?

२ य ,, —समय मिले तो कुछ तबला भी बजा लेना।

१ म ,, —किस अपराध में मरना होगा ?

३ य ,, —जिस अपराध से मरे, चींटियां और मक्खियां मरती ही हैं।

१ म ,, —क्या हम में कोई शक्ति नहीं ?

२ य ,, —शक्ति होती तो मरना ही क्यों पड़ता ?

३ य ,, —सीना उभाड़ने की भी जिसमें शक्ति हो वह नहीं मरता।

२ य ,, —मरने के पहिले न मरो । हम लोग मरने के पीछे फूलेंगे। यही तो ?

४ र्थ ,, —चलो सब लोग एक साथ चल कर, राजा के पैरों में गिर कर रोवें।

३ य ,, —राजा के पास रोने का फल ? उत्तर में रोना ही सुनना पड़ेगा। कहीं रोने से प्राण बचते हैं ! और बचें भी, तो ऐसे निर्बल प्राणियों का न बचना ही अच्छा है।

४ र्थ ,, —तब क्या करने को कहते हो !

३ य ,, —यहीं मरने को।

२ य ,, —इसके लिये विशेष उपदेश की क्या आवश्यकता है ? एक बार राजकुमार की भीषण मूर्ति का स्मरण करने ही तो मृत्यु आ पहुँचती है।

३ य ,, —दूसरे के स्मरण से नहीं, अपने साहस से मरना होगा।

(अन्यान्य प्रजागणों का प्रवेश)

आगंतुक—सुना आप लोगों ने ? सर्वनाश आरम्भ हो गया। राजा ने भी राजकुमार के साथ अब रक्त-खेल में योग दिया है।

सब लोग—(उत्कण्ठित भाव से) हैं ! हैं ! क्या ? क्या ?

५ म प्रजा—पुत्र की बात मान कर राजा ने अपने हाथ से उस पुत्र-शोकातुर पागल का वध किया है।

सब लोग—आं ! आं ! उफ़ !

३ य प्रजा—यह क्या ? कँप क्यों उठे ? राजभक्ति में खूब तर रहो ! इस थोथी राज-भक्ति का फल अभी जो कुछ न मिले सो थोड़ा है !

१ म ,, —तब क्या करने को कहते हो ? विद्रोह ?

४ र्थ ,, —छिः छिः ! ऐसा महापाप ! (सब का प्रस्थान)

(६)

राजकुमार—यह क्या ? मेरा प्राण क्यों घबड़ा रहा है ? पाषाण-हृदय में दया कैसी ? मेरे सामने तो उसकी हत्या भी नहीं हुई ! केवल राजा की रक्त-भरी तलवार और उस अभागी पागल का छिन्न-मस्तक ही देख कर यह दशा हो गई ! सैकड़ों मनुष्यों के रक्त से पृथ्वी लाल कर चुका, किन्तु ऐसी दुर्बलता तो कभी नहीं आई ? केवल एक हत्या देख कर आज यह हाल कैसा ? नहीं नहीं, काले के ऊपर काला दाग़ नहीं पड़ता और सफ़ेद के ऊपर एक हलका सा दाग़ भी स्पष्ट उठ आता है। मैं नृशंस हूं-मेरे हाथ से चाहे जैसी भयंकर हत्या हो जाय, मुझे दया नहीं आती। किन्तु राजा करुणमूर्ति हैं-उनके हाथ से एक साधारण हत्या भी देख कर, मेरा अधम हृदय कँप उठा। राजा ने यह हत्या नहीं की, जगत् की करुणा ने स्वयं तलवार उठाई है ! तभी तो मुझ अधम अत्याचारी को भी दया आ गई !

(राजकुमार के कई एक दुराचारी अनुचरों का प्रवेश)

अनुचर—राजकुमार ! चारो ओर भीषण षड्यंत्र हो रहा है और आप निश्चिन्त बैठे हैं।

राजकुमार—क्यों ? और क्या चाहते हो ? राजा को भी तो रक्त-खेल में मिला लिया-अब और क्या बाकी है ? सुधा को विष में और करुणा को नृशंसता में तो परिवर्तित कर दिया ! अब मेरी इच्छा पूर्ण हो चुकी।

अनुचर—राजकुमार ! आपको धोका दिया गया है। राज-पद-तल का छिन्न-मुंड, उस पागल का नहीं । वह किसी शव देह का है। कृत्रिम रक्त से तलवार रँग कर आपको शांत किया गया है।

राजकुमार—क्या कहा ?

अनुचर—क्या आप झूंठ समझते हैं ?

राजकुमार—नहीं ! तुमने कभी नहीं झूंठ कहा। करुणा नृशंस नहीं हो सकती। (कुछ देर सोच कर) किन्तु यदि करुणा, नृशंस नहीं हो सकती, तो अधम मैं ही क्यों मधुर हुआ ? धोके में आकर शांत हो गया था, अब भ्रम दूर हो गया। अच्छा ही हुआ। अब द्विगुण उत्तेजना से रक्तपात आरम्भ होगा ! चलो ! जो जिसे पावे हत्या करे ! !

(७)

राजा—मंत्री ! धन्य तुम्हारी बुद्धि ! तुमने मुझे पुत्र-हत्या से बचा लिया। मेरी प्रिय प्रजा की रक्षा भी की। अह ! तुम्हें यदि यह युक्ति न सूझती तो न जाने क्या हो जाता ! मैं क्या न कर बैठता ! किन्तु, मंत्री ! चित्त अब भी क्यों निश्चिन्त नहीं ? हृदय तो अब भी सशंक सा है।

मंत्री—महाराज ! अब कोई आशंका नहीं। युवराज अब केवल शांत ही नहीं, वरन पूर्व-अत्याचार पर उन्हें पश्चात्ताप भी है।

राजा—पश्चात्ताप ! आह-अच्छा हुआ ! प्रजा की व्यथा समझता होगा। प्रजा के दुख से दुखी और सुख से सुखी बने ! बाहर कठोर होकर भी अन्तर में कोमल है। आख़िर मेरा ही पुत्र तो है !

मंत्री—केवल दुष्टों की कुसंगति और अनुचित उत्तेजना के कारण ही राजकुमार की यह दशा होगई थी।

राजा—ठीक है। इसी से तो कुसंगति का निषेध है। इसे ... ईश्वर सब की बुद्धि शुद्ध करे।

(सहसा राजदूत का प्रवेश)

दूत—महाराज ! सब चौपट होगया ! राजकुमार को मालूम होगया कि पागल भाग गया। इस बार दूनी तेज़ी से वे पागल की खोज लिये दौड़ रहे हैं। जहां जिसे पाते हैं पिटवाते हैं।

राजा—सर्वनाश ! सब व्यर्थ हुआ ! उफ़ !! (राजा मूर्छित होकर गिर पड़े)

(८)

राजकुमार—(पागल के दरवाज़े उसकी स्त्री से) तेरा स्वामी कहां है ?

स्त्री—मैं तो नहीं जानती कि स्वामी इस लोक में हैं या परलोक [illegible] गये।

दुष्ट अनुचर—राजकुमार ! यह स्त्री सब जानती है। अपने स्वामी का वृत्तान्त नहीं जानेगी ?

राजकुमार—हम से छिपा कर तू अपने स्वामी को नहीं रख सकेगी। वह मूर्ख, कहां छिपेगा ? उसे बुलवाती है या नहीं ? अच्छा ! जल्लाद ! इसके दोनों लड़कों का इसके सामने वध करो !

दोनों पुत्र—(सभय माता से लिपट कर) अरी अम्मा ! मा ! मा !

स्त्री—बच्चा मेरा ! मेरा प्राण ! अब तुम्हें कहां, कैसे छिपाऊं लाल ! हाय राम ! (माता ने बच्चों को छाती से लिपटा लिया)

राजकुमार—जल्लाद ! मा की गोद से बच्चों को छीन कर, शीघ्र वध कर !

छोटा पुत्र—(बड़े भाई से) दादा ! दादा ! मरने से डरते हो ! माता के पवित्र शरीर में जल्लाद अपवित्र हाथ लगाना चाहता है। तब भी तुम मरने से डरते हो ! क्या माता की अन्तिम दुर्गति देखने के लिये जीना चाहते हो ? धिक्कार ! जो सन्तान माता की दुर्गति देखता हुआ जीवित रहे वह सन्तान नहीं, शत्रु है नराधम पिशाच है ! (आगे बढ़ कर) जल्लाद ! लो पहिले मेरा वध करो ! मैं माता की दुर्गति नहीं देख सकता !

बड़ा पुत्र—(आगे बढ़ कर) नहीं नहीं ! माता की दुर्गति देखने से मर जाना अच्छा। अब मैं मरने से नहीं डरता। जल्लाद ! पहिले मेरा वध करो। मेरे छोटे भाई को पीछे मारना !

(माता मूर्छित होकर गिरती है)

राजकुमार—जल्लाद ! ठहर जा ! माता की मूर्छा भंग होने दे ! माता के सामने उसके दोनों पुत्रों को एक साथ बलि देना होगा !

छोटा पुत्र—माता ! तेरी यह मूर्छा, ईश्वर करे कभी दूर न हो ! अच्छा हो यदि तू सन्तान की हत्या देखने के पहिले ही मर जाये ! (राजकुमार के सामने घुटने टेक कर) प्रभो ! जो इच्छा हो सो कीजिये। केवल—केवल माता के सामने उसकी सन्तान की हत्या न कीजिये ! स्वामी ! क्या आपके माता नहीं !

पागल की स्त्री—(मूर्छा भंग होने पर) कांपती हुई—कहां ! कहां मेरा रत्न ! कहां मेरा प्राण ! हाय पुत्र ! (फिर गिर पड़ी।)

बड़ा पुत्र—माता ! ओ मा ! कांपती क्यों है ? तू हमारी माता है-यह भी थोड़ी देर के लिये तू भूल जा ! यह भी भूल जा कि तू नारी है !

छोटा पुत्र—व्याकुल मत हो माता ! यह पेट की विषम ज्वाला बुझने दे मा ! यह अत्याचार ऊपर ही ऊपर नहीं जायेगा ! ईश्वर का ध्यान कर और समझ ले कि तेरे कोई पुत्र नहीं रहा ! (राजकुमार को सम्बोधन करके) राजकुमार ! याद रखिये जो निर्बल को सताता है, राजा हो कर प्रजा पर अत्याचार करता है, प्रजा का सर्वस्व हरण करता है, एवं निरपराधियों को दण्ड देता है—वह पिशाच भी कालान्तर में किसी सबल द्वारा सताया जाता है, दबाया जाता है और तहस-नहस किया जाता है—सनातन से यही परिवर्तन चला आता है। अब आप को भी इस नृशंसता का फल शीघ्र ही भोगना होगा ! जल्लाद को आज्ञा दीजिये—हम दोनों भाई खड़े हैं !

राजकुमार—जल्लाद ! है—

आदेश पाते ही घातक की तलवार ऊपर उठने लगी, उसी समय विद्युद्वेग से कौन आकर उस तलवार के नीचे, दोनों लड़कों के ऊपर गिर पड़ा—तलवार के प्रबल आघात से तीनों शरीर एक साथ खण्ड-खण्डित हो गये !

राजकुमार—(आगन्तुक के छिन्न शिर को देखते ही घबड़ा कर) अरे ! अरे ! यह क्या हो गया ? पिता ! पिता ! ऊः ! उफ़ !! प्रजा इतने स्नेह की पात्र होती है ! प्रजा प्राणों से भी प्रिय होती है ! उफ़ ! हाय ! हाय ! पिता का वध करने के पहिले, यह समझ क्यों नहीं आई ! हाय अब मैं क्या करूं ! (राजकुमार का मूर्छित होना)*।

अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (अनाथ)।

* "[illegible]" की "राजकुमार" नाटक [illegible] का स्वतन्त्र अनुवाद।

लश्कर (ग्वालियर) के श्री० युवराज की प्रथम वर्षगांठ के निमित्त ब्राह्मणसभा का कराया हुआ कीर्तन।

डा० भांडारकर को अर्पण किया हुआ ग्रन्थ।

(लेखक—प्रो० का० वा० फाटक बी० ए० ।)

(गतांक से आगे ।)
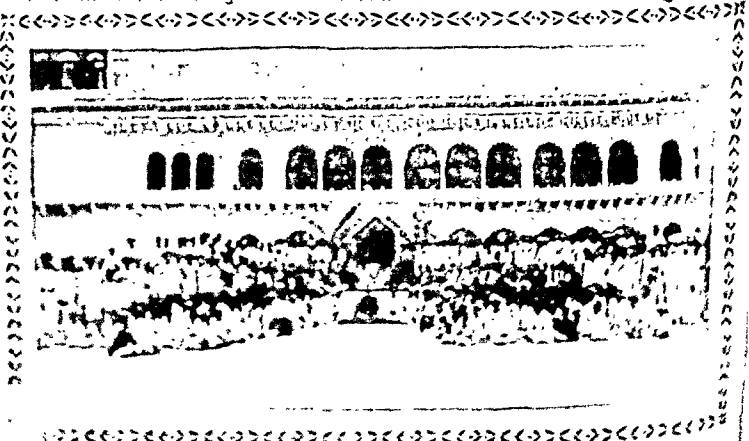
विक्रमसंवत् का वृत्तान्त ।

इस ग्रन्थ में अठारह से ले कर सत्ताईस तक के दस निबन्ध ऐतिहासिक और प्राचीन-वस्तु-अन्वेषणविषयक हैं। इनमें से अठारहवें निबन्ध में श्रीयुक्त देवदत्तराव भांडारकर एम० ए० ने विक्रमकाल के विषय में नवीन और उपयुक्त वृत्तान्त दिया है। उसका सारांश इस प्रकार है:—

हमारे देश में एक दन्तकथा है कि ईसवी सन् के ५७ वर्ष के पहले विक्रमादित्य नामक राजा ने यह विक्रमकाल प्रारम्भ किया। इसी को हम आजकल विक्रमसंवत् कहते हैं। इधर कुछ दिनों से अनेक शिलालेख और ताम्रपट मिले हैं। उनसे यह दन्तकथा बिलकुल निराधार साबित होती है, अर्थात् प्राचीनवस्तु-अन्वेषक विद्वानों के मत से इसको विक्रमकाल अथवा विक्रमसंवत् कहना भूल है। तिस पर भी राय-बहादुर चिन्तामणिराव वैद्य और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के समान विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ईसवी सन् के पहले, प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा होगया है; और उसीने यह विक्रमसंवत् शुरू किया है; और इस लिए यह दन्तकथा सच है। उन्होंने अपने मत के पुष्टीकरणार्थ हालकृत गाथा सप्तशती नामक ग्रन्थ का एक पद्य प्रमाणभूत माना है। इन दोनों विद्वानों का आग्रह है कि, "इस पद्य में यह ध्वनित किया है कि विक्रमादित्य नामक एक बड़ा दानशूर राजा था। हाल का दूसरा नाम शातवाहन है। सन् १२५ ई० के लगभग गौतमीपुत्र शातकर्णी नामक आन्ध्रभृत्य वंश का राजा राज्य करता था। इसके कुछ वर्ष पहले इसी कुल का शातवाहन नामक एक दूसरा राजा होगया; और यह राजा ईसवी सन् की पहली शताब्दी में राज्य करता था। गाथासप्तशतीकर्त्ता शालिवाहन और आन्ध्रभृत्य राजा शालिवाहन, ये दोनों एक ही होने चाहिए; और जब कि विक्रमादित्य की उदारता का उल्लेख आया है तब ईसवी सन् के पूर्व पहली शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा था; और उसीने यह विक्रमसंवत् प्रारम्भ किया, इस लिए दन्तकथा सप्रमाण माननी चाहिए।"

अच्छा, क्षण भर के लिए हम मान भी लें कि ईसवी सन् के पूर्व पहली शताब्दी में विक्रम नाम का एक राजा था। पर इतने ही से यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि उसने विक्रमसंवत् चलाया। इतना अवश्य सच है कि बहुत इधर के शिलालेखों में विक्रमकाल का प्रयोग आता है; लेकिन चूंकि ये शिलालेख बहुत ही अर्वाचीन हैं, इस कारण इनको कोई बहुत बड़ा प्रमाण नहीं माना जा सकता। अमितगति नामक एक और प्रख्यात जैन ग्रन्थकार है। उसने विक्रमसंवत् १०४० में सुभाषित रत्नसन्दोह नामक ग्रन्थ रचा। उसमें वह स्पष्टतया कहता है कि विक्रमसंवत् वास्तव में विक्रमादित्य ने नहीं चलाया है; किन्तु उसकी मृत्यु के बाद यह संवत् चला है। अच्छा, प्राचीन शिलालेख यदि देखे जावें तो उस काल को विक्रमसंवत् न कहते हुए कुछ दूसरा ही नाम दिया गया है। इससे जान पड़ता है कि विक्रमादित्य का इस संवत् से कोई सम्बन्ध नहीं है; और इस बात का कोई भी प्रमाण दिखाई नहीं देता कि उन्होंने यह संवत् चलाया। अच्छा, इसी का क्या प्रमाण है कि हाल की गाथासप्तशती बहुत प्राचीन है? इसके विरुद्ध कितने ही विद्वानों का तो यह मत है कि इस ग्रन्थ में जब कि कृष्णराधिका और मंगलवार का उल्लेख है तब फिर यह ग्रन्थ छठवीं शताब्दी का होगा। ऐसी दशा में यदि इस ग्रन्थ में विक्रमादित्य की प्रशंसा आई हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सुबन्धुकृत वासवदत्ता ग्रन्थ भी छठवीं शताब्दी के अन्त का है। इसमें भी विक्रमादित्य की उदारता का वर्णन आया है, इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि विक्रमादित्य ने यह संवत् नहीं चलाया है। और इसे विक्रमसंवत् कहना ही भूल है। अच्छा, अब हम इस बात का थोड़ा सा विचार करते हैं कि इसका पहले का नाम क्या था।

> ' मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये ।
> त्रिनवत्यधिकेऽब्दानां—'
> पंचसु शतेषु शरदां याते- ।
> ष्वेकान्नवतिसहितेषु ॥
> मालवगणस्थिति वशात्—
> श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते ।
> एकषष्ठ्यधिके प्राप्ते समाशतचतुष्टये ॥
> कृतेषु-चतुर्षु-वर्ष शतेषु एकाशीत्युत्तर-
> ष्वस्याम् मालवपूर्वायाम् कार्तिक शुक्लपंचम्याम् ॥

शिलालेख के उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन काल में मालवसम्प्रदाय का काल अथवा मालवकाल अथवा मालवसम्प्रदाय के अमुक कृत वर्ष हुए, इत्यादि कहने की चाल थी। वर्तमान समय की भांति विक्रमकाल अथवा विक्रमसंवत् कहने की चाल न थी। ऊपर दी हुई पंक्तियों में से अन्तिम पंक्ति में कार्तिक शुक्ल पंचमी के लिए मालवपूर्वायाम् विशेषण लगाया गया है। इससे यह अनुमान निकलता है कि प्राचीन काल में पौर्णिमान्त पद्धति अथवा अमान्त-पद्धति अथवा दोनों पद्धतियां इस मालवकाल के सम्बन्ध में प्रचलित होंगी।

गुप्त राजाओं का काल और मिहिरकुल के विषय में नवीन वृत्तान्त ।

उन्नीसवां निबन्ध का० बा० फाटक ने लिखा है; और उसका सारांश इस प्रकार है: - प्राचीन काल में उत्तर भारत में गुप्तवंश के बड़े शक्तिशाली राजा होगये। उन्होंने लगभग दो सौ वर्ष राज्य किया। राज्य करने की उनकी शैली बहुत उत्तम थी, इस कारण भारत देश बड़े वैभव के शिखर पर चढ़ा था। धनधान्य की खूब समृद्धि थी, अतएव देश की खूब उन्नति हुई थी। उस समय प्रचलित धर्मों में हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म और जैनधर्म मुख्य थे। देश में शान्ति-छाई हुई थी। इस कारण लोग सब सम्पन्न और सद्गुणी थे। उस समय चूंकि बौद्ध धर्म का उत्कर्ष हो रहा था, इस कारण चीन देश से अनेक यात्री बौद्धधर्म के तत्व समझने के लिए, संस्कृत भाषा का अध्ययन करने के लिए और बौद्धों के पवित्र स्थानों का दर्शन करने के लिए इस देश में आया करते थे। इसी समय कालिदास के समान प्रख्यात कवि और दिङ्नाग के समान प्रख्यात तत्ववेत्ता होगये। उस समय गुप्त राजा राज्य करते थे, सो ऊपर बतलाया ही जा चुका है। इन राजाओं के अनेक ताम्रपट और शिलालेख मिले हैं। उनमें उन राजाओं ने अपना कालनिर्देश भी किया है। परन्तु उन्होंने जो अपना शक दिया है उसका आरम्भ कहां से समझा जाये, इस विषय में विद्वान् लोगों में अनेक वर्षों से चर्चा हो रही है। लेकिन उसका विश्वास योग्य निर्णय नहीं हुआ। इस विषय में अनेक विद्वानों ने बड़े बड़े निबन्ध लिखे हैं। जिन विद्वानों ने इसका निर्णय करने के लिए प्रयत्न किया वे बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। उनमें से कुछ के नाम हम यहां पर देते हैं। जेम्स प्रिन्सेप, टॉमस बेली, फर्ग्युसन, कनिंघम, डाक्टर भाऊ दाजी, डाक्टर राजेन्द्र-लाल मित्र और डाक्टर फ्लीट। इनमें से कुछ विद्वानों ने इस विषय का विवेचन करते हुए अल्बरूनी के ग्रन्थ का आधार लिया है। गज़नी का महमूद बादशाह ईसवी सन् की ग्यारहवीं सदी में भारतवर्ष पर चढ़ाई करने लगा, उस समय उसके साथ अबूरिहाँ अल्बरूनी नामक विख्यात

अरब जाति का पंडित आया था। उसे संस्कृत का पूर्ण ज्ञान था। ज्योतिष, पुराण, व्याकरण इत्यादि शास्त्रों तथा अन्य महत्वपूर्ण बातों के विषय में उसने अपने ग्रन्थ में बहुत ही उत्तम वृत्तान्त दिया है। जो लोग भारतवर्ष का इतिहास जानने की उत्कट इच्छा रखते हैं; और जिनको कि यह जानने की लालसा है कि ग्यारहवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य की क्या दशा थी, उनको अलबरूनी का ग्रन्थ अवश्य ही देखना चाहिए। इससे हमारे पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से अलबरूनी के ग्रन्थ का कितना महत्व है। लेकिन ऐसा किसी को न समझना चाहिए कि अलबरूनी ने अपनी कपोल कल्पनाओं से ही पुस्तक को भर दिया होगा, नहीं। भारतवर्ष में पर्यटन करते हुए एतद्देशीय पंडितों से मिल कर, उनसे सब प्रकार की जानकारी प्राप्त करके उसने अपना ग्रन्थ तैयार किया है। यदि कदाचित् उसके वृत्तान्त में कहीं कुछ भूल साबित हो तो इसका दोष अलबरूनी पर नहीं आ सकता; किन्तु जिन्हों ने उसे वैसा वृत्तान्त दिया उन्हीं की वह भूल होगी। अलबरूनी ने गुप्त राजाओं और वल्लभी राजाओं का वृत्तान्त दिया है। उसका कथन है कि शाके दो सौ एकतालीसवें वर्ष में गुप्तकाल शुरू हुआ; और गुप्तकाल को ही वल्लभी काल भी कहते थे। गुप्तकाल, गुप्तराजाओं का विस्तृत राज्य लय हो जाने पर प्रारम्भ हुआ। अलबरूनी ने अपना ग्रन्थ अरबी भाषा में लिखा है। शब्द-सान्निध्य के कारण अथवा अन्य किसी कारण उसके ग्रन्थ के अनुवाद में कई जगह कुछ विसंगतपन दिखाई देता है। इस कारण गुप्त राजाओं के शिलालेखों का और ताम्रपटों का अर्थ करते हुए, अलबरूनी के दिये हुए वृत्तान्त का यथोचित उपयोग न हो कर, और उससे विलक्षण वादविवाद उत्पन्न हुआ। इसका कारण यही है कि अलबरूनी के कथनानुसार गुप्तराज्य के लय हो जाने पर गुप्तकाल शुरू हुआ; और शिलालेखों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि गुप्तराजाओं के राजत्वकाल में ही गुप्तशक प्रचलित था। इसके सिवाय अलबरूनी के संदिग्ध शब्दों के कारण यह भी अनुमान निकलता है कि शालिवाहन शाके दो सौ बयालीस अथवा दो सौ तैंतालीस से भी गुप्त काल का प्रारम्भ हुआ होगा। इस विषय में कई वर्ष तक विद्वानों में वादविवाद होता रहा है। कई विद्वानों का कथन यह था कि चूंकि अलबरूनी का अभिप्राय विसंगत है, इस लिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता, अन्य कई विद्वानों को यह सम्मति पड़ी कि अलबरूनी का अभिप्राय अंशतः ग्राह्य करना चाहिए; अर्थात् इतनी बात सच माननी चाहिए कि शालिवाहन शाके दो सौ एकतालीस से गुप्तकाल प्रारम्भ हुआ, इसके सिवाय अलबरूनी का जो यह कथन है कि गुप्तराज्य के लय होने के बाद गुप्तकाल शुरू हुआ सो मिथ्या समझना चाहिए। लेकिन इससे विद्वान् लोगों का वादविवाद कुछ मिटा नहीं। अन्त में भारतसरकार ने इस बात का निर्णय होने के लिए सन् १८८४ के लगभग डा० फ़्लीट की नियुक्ति की। डा० फ़्लीट ने उस समय तक उपलब्ध होनेवाले सब शिलालेखों और ताम्रपटों को एकत्र कर के एक बड़ी भारी पुस्तक छपाई। इस पुस्तक के उपोद्घात में उन्होंने भिन्न भिन्न विद्वानों के अभिप्राय दिये हैं। उसमें अलबरूनी के ग्रन्थ के अनेक अवतरण दिये हैं; और उनके भिन्न भिन्न भाषान्तर भी दिये हैं। यह ग्रन्थ लिखते समय ग्वालियर राज्य के मन्दसौर नामक स्थान पर डा० फ़्लीट को एक बड़ा भारी शिलालेख मिला। इस शिलालेख से जान पड़ता है कि मालवसंवत् ४९३ में कुछ कोष्टी (कोरी) लोगों ने वहां एक सूर्य का मन्दिर बनवाया। उस समय कुमारगुप्त नामक गुप्तवंशीय राजा राज्य करता था। इसके ३६ वर्ष बाद, जब कि उसी मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया, उस समय मालवसंवत ५२९ था। इस शिलालेख के विषय में फ़्लीट साहब ने अपना यह मत दिया है कि मालवसंवत विक्रमसंवत ही है। इस विषय में फ़्लीट साहब ने जो प्रमाण दिया है वह अन्य विद्वानों को पसन्द नहीं पड़ा। हां, उन्होंने इतना अवश्य स्वीकार किया कि मालव संवत् से अभिप्राय विक्रमसंवत् से ही है। आगे अधिक प्रमाण मिलने पर मत्य निश्चित होने की सम्भावना है। फ़्लीट साहब ने अपने उपोद्घात में यह प्रतिपादन किया है कि गुप्तशक और शालिवाहन शक में दो सौ बयालीस वर्ष का अन्तर है। अन्य विद्वान् लोगों को यह मत पसन्द नहीं आया। इसका परिणाम यह हुआ कि फ़्लीट साहब का ग्रन्थ निकल जाने पर भी गुप्तकाल के विषय में वादविवाद जारी ही रहा।

अब बतलाइये, इस बात का फैसला कैसे हो? लोगों ने समझ लिया कि गुप्तराज्य के समय का कोई मनुष्य जब फिर जन्म ले कर इस पृथ्वीतल पर प्रकट हो; और वह जब किसी मासिक पत्र के द्वारा अपनी चिट्ठी दिखलाये कि गुप्तकाल और शालिवाहन शक में इतना ही अन्तर है, तब कहीं कुछ काम चले, अन्यथा इसका निर्णय नहीं हो सकता। लेकिन इतने में जैन ग्रन्थों में इस विषय में अच्छा वृत्तान्त मिल गया है।

इन जैन ग्रन्थों में पहला ग्रन्थ जिनसेन आचार्यकृत हरिवंश है। ग्रन्थ शाके ७०५ में लिखा गया है। दूसरा ग्रन्थ जिनसेन आचार्य शिष्य गुणभद्राचार्य का रचा हुआ उत्तरपुराण नामक ग्रन्थ तीसरा ग्रन्थ नेमीचन्द्राचार्यकृत त्रिलोकसार है। ये ग्रन्थकार हैं कि महावीर स्वामी के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ महीने बाद राजा उत्पन्न हुआ। शक राजा के ३९४ वर्ष सात महीने बाद कल्कि नामक दुष्ट राजा हुआ। अर्थात् महावीर स्वामी के १००० वर्ष बाद कल्कि राजा का जन्म हुआ। उस वर्ष माघ संवत्सर था

इससे ऐसा जान पड़ता है कि शकराजा के बाद ३९४ वें वर्ष माघ संवत्सर था। इसके तीन वर्ष बाद वैशाख संवत्सर प्राप्त हुआ वैशाख संवत्सर के रहते हुए १५६ वां गुप्तवर्ष था। उस समय परिव्राजक महाराज हस्ती नामक मांडलिक राजा राज्य करता था। चूंकि यह राजा गुप्त राजाओं का मांडलिक था, इस कारण गुप्त राजाओं का वर्चस्व इसने अपने ताम्रपट में स्वीकार किया है। इसके समय में गुप्त राजा राज्य करते थे; और उस समय गुप्त वर्ष १५६ वां था। शाके ३९४ में तीन वर्ष जोड़ने से ३९७ होते हैं। इस लिए वैशाख संवत्सर रहते हुए ३९७ शक वर्ष था; और १५६ गुप्त वर्ष था। इससे जान पड़ता है कि गुप्त वर्ष में २४१ वर्ष मिलाने से शक वर्ष आता है; अथवा शकवर्ष और गुप्त वर्ष में ठीक २४१ वर्ष का अन्तर होता है। इस लिए जब कि यह कहा है कि कल्कि राजा का जन्म ३९४ वें शक वर्ष में हुआ तब फिर उसमें से २४१ वर्ष घटा देने से यह सिद्ध होता है कि १५३ वें गुप्त वर्ष में कल्कि राजा उत्पन्न हुआ। अब शाके ३९४ में यदि १३५ मिलाये जाँय तो ५२९ मालवसंवत् आता है। अर्थात् मालव से तात्पर्य विक्रम सिद्ध होता है। क्योंकि किसी भी शकवर्ष में १३५ जोड़ने से विक्रम संवत् आता है। यह बात सुप्रसिद्ध है। मन्दसौर-शिलालेख में ५२९ मालव वर्ष आने का उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह वर्ष मन्दिर के जीर्णोद्धार करने का है। ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि मालव संवत् ४९३ में कोष्टी लोगों के द्वारा इस मन्दिर के बनाये जाने का उक्त शिलालेख में उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त राजा विक्रमसंवत ४९३, गुप्तसंवत् ११७ और शाके ३५८ में राज्य करता था।

इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि गुप्तसंवत् और वि में ३७६ वर्ष का अन्तर है। विरावल में एक शिलालेख मि उसमें विक्रमसंवत् १३२० और वल्लभीसंवत् ९४५ आषाढ़ वद्य रविवार का कालनिर्देश किया गया है। गणित करने से प पड़ता है कि इस शिलालेख में दिया हुआ संवत् कार्तिकादि है ऐसा सिद्ध होता है कि उस समय चैत्रादि विक्रमसंवत १३२१ था शाके ११८६ चैत्रादि विक्रम १३२१ और वल्लभी वर्ष ९४५ बराबर

शक		विक्रम		वल्लभी
११८६	=	१३२१	=	९४५
३५८	=	४९३	=	११७
८२८	.	८२८		८२८

अर्थात् पहले अंकों से दूसरे अंकों को घटा देने से ८२८ बाकी है। इससे यह सिद्ध होता है कि वल्लभी नाम गुप्त शक का और मालव नाम चैत्रादि विक्रमसंवत् का है। और इसी लिए ९४ वर्ष में २४१ मिलाने से ११८६ आते हैं। उसकी सिद्धि हो गी होती है। पहले माघ संवत्सर का हम ने उल्लेख किया है; और वि वल के शिलालेख के अंकों का उपयोग किया है। जैन लोगों हुए वृत्तान्त से आज लगभग ७८ वर्ष के वादविवाद का निर्णय ह

यहां, इस समय, एक बात का और भी उल्लेख करना चाहि इस समय जिस प्रकार प्रभवविभवादि साठ संवत्सर जारी है प्रकार ईसाई शक की पांचवीं शताब्दी में माघ वैशाखादि संवत्सर जारी थे।

जैन ग्रन्थकार यह भी कहते हैं कि कल्कि राजा ने शाके ४२५ का विस्तृत राज्य विध्वंस किया। यह राजा बड़ा दुष्ट था, इसने के निग्रन्थ साधुओं को बहुत ही सताया। शिलालेखों से मालूम कि गुप्तों के राज्य को लय करनेवाला मिहिरकुल नामक बलाढ्य होगया। इस मिहिरकुल राजा का सविस्तर वर्णन हुएनसंग प्रख्यात चीनी यात्री ने अपने प्रवासवर्णन में किया है। इसके सि इस राजा की दुष्ट रीति के विषय में राजतरंगिणी नामक संस्कृत में भी विशेष वृत्तान्त आया है। यह दुष्ट राजा गुप्तों के बाद, राज्य अधिष्ठित करके, चालीस वर्ष राज्य करता रहा; और ७० वर्ष अवस्था में मरा। यह स्पष्ट है कि, इसी का नाम चतुर्मुख कल्कि

महायुद्ध के चौथे वर्ष का सितम्बर मास ।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर बी० ए० ।)

अगस्त मास की तरह सितम्बर मास भी रूस के लिए बड़ी चिन्ता का व्यतीत हुआ। सितम्बर के प्रारम्भ में जर्मनी ने रीगा प्रान्त लेकर रीगा बन्दर के ईशान की ओर पचास साठ मील तक आगे धावा किया। प्रारम्भ के इस धक्के के साथ जितना मुल्क जर्मनी को मिल गया उतने ही पर वह सन्तुष्ट रहा। फ्रेड्रिकस्टेड और जेकबस्टेड नामक ड्वीना नदी के मुख्य स्थानों को जर्मनी ने सितम्बर में पूरा पूरा ले लिया; और ड्वीना नदी पर रूस ने खन्दकों की जो मजबूत जगह गत दो वर्षों में तैयार की थी वह जगह रूस को छोड़ देनी पड़ी। रूस का दल अचानक फूट जाने पर जर्मनी ड्वीना नदी और रीगा बन्दर लेकर ही सन्तुष्ट बना रहा, इसमें कुछ विलक्षणता अवश्य है। सैनिक दृष्टि से विचार करने पर जर्मनी का यह व्यवहार एक प्रकार की पहेली ही है। पेट्रोग्राड को डांट बतलाने का मौका मिलने पर भी जर्मनी शान्त क्यों रहा? यदि यह कहा जाय कि जर्मनी के पास उतना मनुष्यबल नहीं है तो वहां मनुष्यबल की कुछ बहुत आवश्यकता भी न थी; क्योंकि अन्तस्थ कलह के कारण पेट्रोग्राड की तरफ रूसी सेना स्वयं अत्यन्त निर्बल हो रही थी। कुदली के बल से ही खुद सकनेवाली मुलायम जगह मिलने पर भी, कठोर जगह प्राप्त होने तक, कुदली से खोदने का कार्य जर्मनी ने सितम्बर महीने में क्यों टाला? जब से रूस की राज्यक्रांति हुई तब से, जान पड़ता है, जर्मनी के मन में यह लालच समाया है कि, मनुष्यबल न खर्च करते हुए रूस की ओर की सन्धि का फल यों ही हमारे हाथ में आजावे। सितम्बर महीने में रूस में जो रद्दोबदल हुए वे जर्मनी के उक्त लोभ के पोषक हुए, विघ्नकारक नहीं हुए। रूस में इस समय दो बड़े दल हैं। एक पूंजीवाले लोगों का और दूसरा मज़दूरों का। ज़ार के शासन से मध्यम स्थिति के लोग असन्तुष्ट थे। लेकिन महायुद्ध के प्रारम्भ से ये लोग सरकार को हृदय से सहायता कर रहे थे। इस निश्चय के बल से ये लोग युद्ध का भार शिर पर लेने के लिए प्रवृत्त हुए थे कि इस युद्ध में जर्मनी का गर्व गलित होना ही चाहिए; और रूस की कितनी ही पीढ़ियों की आकांक्षाएं सफल होनी ही चाहिए। युद्धविभाग ने समय समय पर इन लोगों से जो सहायता मांगी वह उन्होंने मुक्तहस्त से बड़े उत्साह के साथ प्रदान की। बन्दूकें और कारतूस इन लोगों के निजी अथवा म्युनिसिपैलिटी के कारखानों में तैयार होने लगे, घायलों की शुश्रूषा करने के लिए इन लोगों के खोले हुए दवाखाने चारों ओर दिखाई देने लगे, यही नहीं किन्तु इनके निजी नियत किये हुए डाक्टर रणभूमि पर भी सहायता के लिए दौड़ गये। सेना में खाने पीने की असुविधा जब इनको दिखाई दी तब अन्न पानी की भी सहायता इन्होंने सेना को दी। इसके अतिरिक्त जगह जगह स्वयंसेवकों के दल खड़े कर के अन्तस्थ व्यवस्था रखने का भी बहुत सा भार इन्हों ने अपने सिर पर लिया। इस प्रकार जब इन मध्यम स्थिति के पूंजीवालों ने उत्साह, साहस और दृढ़ निश्चय के साथ समय समय पर सहायता दी। तब फौज के अधिकारी इनको सहानुभूति की दृष्टि से देखने लगे। यही नहीं किन्तु सेनापति आलेक्सी, से० ब्रुसेलाफ, से० कार्निलाफ इत्यादि प्रसिद्ध फौजी अधिकारियों को भी यह विश्वास हो गया कि रूसी राष्ट्र के वैभव के विषय में यदि किसी को सच्ची चिन्ता है तो वह इन मध्यम स्थितिवालों के नेताओं को ही है। इस प्रकार डयूमासभा अथवा मध्यम स्थिति के बड़े अफसरों के हृदय जब कि एक दूसरे से मिल रहे थे तब सन् १९१५ की भारी हार के बाद सन् १९१६ के अन्त में रोमानिया का बहुत सा भाग जब जर्मनी ने जीत लिया तब उच्च सैनिक अधिकारियों और डयूमा सभा के पूंजीवाले नेताओं के हृदय का पूर्ण मिलाप होगया। इन्होंने निश्चित किया कि ज़ार का मंत्रि-मंडल चूंकि नालायक लोगों का है, इस कारण ये आपत्तियां रूस पर आती हैं। ज़ार के आस पास के जिस सरदार-मंडल से भिन्न भिन्न विभागों के मंत्री नियुक्त किये जाते थे वह सरदार-मंडल भी बिलकुल अयोग्य था, इस कारण रूस के उद्धारक मध्यमस्थिति के लोगों और फौजी अफसरों ने यह निश्चित किया कि मंत्रिमण्डल की नियुक्ति डयूमासभा के द्वारा और डयूमासभा के नेताओं में से ही होनी चाहिए। दोनों का यह निश्चय जिस समय हुआ उस समय ज़ार की सत्ता समाप्त हो गई। फौजी अफसरों के हुक्म पालने की तत्परता और ज़ार के पुरातन सिंहासन को प्रत्यक्ष रीति से ढुकराने के विषय में मध्यम स्थिति के लोगों की अनिच्छा, इन दोनों ही आधारों पर ज़ार की सत्ता खड़ी हुई थी। महायुद्ध में जो पराभव हुआ उसके कारण ज़ार के राजमंडल की नालायकी खुल गई। भीतर के घृणित स्वरूप का पर्दा रणभूमि पर खोला गया; और उस घृणित स्वरूप की खराबी के कारण ज़ार के दोनों पैर उनको छोड़ जाने के लिए तैयार हुए। ऐसी दशा में पेट्रोग्राड शहर में धान्य की महंगी के कारण दंगे हुए; और डयूमासभा के नियुक्त किये हुए नवीन मंत्रिमंडल के हाथ में रूस की राजसत्ता दी गई। यह नवीन मंत्रिमंडल जिस समय स्थापित किया गया उसी समय एक नवीन कलह का रूस में प्रारम्भ हुआ। यह नवीन कलह एक दो वर्ष में मिटनेवाला नहीं है, किन्तु अनेक वर्ष तक सारे यूरप को व्याप कर डालनेवाला है। सोशियालिस्ट पक्ष के मतों और इंगलैंड के समान देश में इस समय रूढ़ होनेवाली लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति के मतों में यह कलह है। अवश्य ही यह कलह दो चार पीढ़ी और स्वाभाविक ही चलेगी। इंगलैंड की लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति (डयूमावालों) पूरा पूरा समाज के वरिष्ठ वर्ग को दुखाने की इच्छा नहीं रखती, और कनिष्ठ वर्ग की स्वार्थबुद्धि तथा उदारता से चला कर ऊपर की सीढ़ी पर चढ़ने के उसके मार्ग खुले रख कर मध्यम स्थिति के पूंजीवालों के हाथ में राज्यसत्ता के सूत्र रखती है। अमेरिका और फ्रांस के देशों में भी इसी प्रकार की लोकसत्तात्मक राज्यसत्ता है। ज़ार की सत्ता को हटा कर उस सत्ता की जगह इंगलैंड, फ्रांस अथवा अमेरिका के समान मध्यम स्थिति के नेताओं के हाथ में लोकसत्तात्मक राज्यसत्ता प्रस्थापित करने का उद्योग राज्यक्रांति होने के बाद ही डयूमासभा और पूंजीवाले सरदारों ने प्रारम्भ किया; लेकिन जिन्होंने प्रत्यक्ष बलवा कर के ज़ार को निकाल कर दिया वे मज़दूर और सैनिक सोशियालिस्ट मत के पक्षपाती ठहरे।

अधूरी सन्धि का फल आप ही आप हाथ में आ सकता है तो ऐसा मौका व्यर्थ जाने देने की ओर इस समय जर्मनी का झुकाव नहीं है। आस्ट्रो-जर्मनों की इस समय दशा ही ऐसी है कि आगामि हेमन्त ऋतु में यदि अधूरे स्वरूप की सन्धि नहीं हो सकी तो अगले साल के वसन्तकाल के बाद, जब कि अमेरिका की लाखों सेना और हजारों विमान फ्रांस में आ जायँगे तब, दांतों में तृण दाब कर सन्धि की भिक्षा मांगने के अतिरिक्त जर्मनी के लिए अन्य कोई गति नहीं रहेगी। इस प्रकार की अधूरी सन्धि के लिए फ्रांस और इटली अनुकूल नहीं है; लेकिन हठ से विरोध करनेवाले भी नहीं हैं। पोप साहब की मध्यस्थी से बेलजियम और फ्रांस का मुल्क छोड़ देने के लिए आस्ट्रोजर्मन तैयार हैं; और ट्रिस्टी बन्दर, सर्विया और रोमानिया के विषय में भी सुलह स्वीकार कर लेने के लिए वे तैयार हैं। रूस में जिस समय राज्यक्रांति हुई उसी समय नूतन रूसी सरकार ने यह प्रकट कर दिया था कि उसे क्या चाहिए; और क्या न चाहिए। ऐसी दशा में आस्ट्रोजर्मन और रूस, दोनों परस्पर स्वतंत्रता से अपना मामला तै कर सकते हैं। ऐसी अधूरी सन्धि से इटली और फ्रांस का प्रत्यक्ष नुकसान कुछ भी नहीं है। हां जर्मनी, आस्ट्रिया, बलगेरिया और तुर्किस्तान की चौकड़ी का गठड़ा अवश्य ही ऐसी सन्धि की रस्सियों से मज़बूत बंध जायगा; और ईरान, अरबसागर और इजिप्ट के विषय में उनकी महत्वाकांक्षा प्रज्वलित हो जायगी। इस लिए इस प्रकार की अधूरी सन्धि होने पर यदि उपर्युक्त महत्वाकांक्षा प्रदीप्त हो जायगी तो मुख्य हानि अंगरेज़ी साम्राज्य और रूस के पूँजीवालों के पक्ष की होगी। रूस के पूँजीवाले पक्ष को सोशियालिस्ट पक्ष, सितम्बर मास में खुल्लमखुल्ला खा डाल[ने] के लिए तैयार हुआ है, और अगले दो तीन महीनों में यदि सोशि[]यालिस्ट पक्ष ने पूंजीवाले पक्ष को पूर्णतया खा डाला तो सोशिय[ा]लिस्ट पक्ष के हठ के कारण, इंगलैंड को भी, रणभूमि पर अपनी जी[त] होते हुए और अगले वर्ष जर्मनी को पराभूत करने का विश्वास हो[ते] हुए भी, अधूरी सन्धि के लिए अपनी सम्मति देनी पड़ेगी। अगस्[त] मास की भांति सितम्बर में भी अँगरेजों ने बेलजियम में इप्रेस के मैदा[न] में दो तीन अच्छे विजय जर्मनी पर प्राप्त किये कि जिससे रूस का सोशि[]यालिस्ट पक्ष पूंजीवाले पक्ष को राजसत्ता से दूर न करे, निरुत्साही रूस[ी] सैनिकों में आशा का संचार हो; और अगले वर्ष के विजय के विष[य] में किसी को शंका न रहे। इसके सिवाय इस बीच में अँगरेजों ने तोप[]खाने, पैदल की वीरता और विमानों के हमलों में भी जर्मनी पर अपना प्रभाव प्रस्थापित कर दिया। पोप साहब की मध्यस्थी से जर्मनी ने जो सन्धि की चर्चा शुरू की है उसका सफल अथवा निष्फल होना रूस के सोशियालिस्ट और पूंजीवाले पक्षों के झगड़े पर अवलम्बित है, इस कारण, अक्टूबर मास खतम होकर जब तक हेमन्तकाल यूरप में न प्रारम्भ हो जाय तब तक, यह मनाते हुए, कि रूस में आपस के कलह में सोशियालिस्ट पक्ष का ही विजय हो, जर्मनी पश्चिम रणांगण में किसी न किसी तरह सम्हला रहेगा, ऐसी दशा में यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि प्रायः अक्टूबर महीना भी सितम्बर महीना की ही भांति व्यतीत होगा।

बुगदाद-रणभूमि के कुछ दक्षिणी लोग।

बारहवें बिहारी छात्र-सम्मेलन के लिए

महात्मा गान्धी का व्याख्यान।

छात्रगण और बन्धुवर्गो !

आप ने मुझे छात्रसम्मेलन के इस अधिवेशन का सभापति बना कर विभूषित किया है। पचीस वर्ष से विद्यार्थियों के साथ में गूढ़ सम्बन्ध रखता आया हूं। विद्यार्थियों का पहला परिचय मुझे दक्षिण अफरिका में प्राप्त हुआ। विलायत में मैं हमेशा विद्यार्थियों से मिलता था। हिन्दुस्तान वापस आने पर हर जगह विद्यार्थियों के साथ मिलता जुलता रहा हूं और उन लोगों ने मुझ पर असीम प्रीति रक्खी है। आज मुझे सभापति का आसन प्रदान करना और मुझे हिन्दी में व्याख्यान देने देना तथा इस सभा की कारवाई हिन्दी में होने देना आप छात्रों के असीम प्रीति का परिचय देना है। इस प्रेम का मैं पात्र बन् और विद्यार्थिवर्ग की कुछ सेवा कर सकूं तो मैं अपने को कृतार्थ मानूंगा। आप का यह निश्चय करना कि इस सभा की कारवाई इस प्रान्त की मातृभाषा में, जो राष्ट्रीय भाषा भी है, की जाय, आप की दूरदर्शिता बताती है। इस को मैं आप को बधाई देता हूं। मुझे आशा है आप इस सिलसिले को कायम रक्खेंगे। मातृभाषा का निरादर हम लोगों ने किया है। इस पाप का कठिन फल हम को अवश्य भोगना पड़ेगा। हम में और हमारे घर के लोगों में कितना अन्तर हो गया है, इस के साक्षी सभागत सभी लोग हैं। हम ने जो कुछ सीखा वह हम न अपनी माताओं को समझाते हैं और न समझा सकते हैं। हम जो शिक्षा प्राप्त करते हैं उस का प्रचार अपने घर में न हम करते हैं और न कर सकते हैं। ऐसा दुःसह परिणाम इंगरेजी कुटुम्बों में नहीं देखा जा सकता है। विलायत या दूसरे मुल्कों में, जहां शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है वहां के लड़के जो पाठशालाओं में पढ़ते या सीखते हैं उस को घर आकर अपने मा-बाप को सुनाते हैं और घर के नौकरों वो दूसरे लोगों को भी मालूम होता है। इस तरह जो शिक्षा लड़कों को पाठशालाओं में मिलती है उस का नफा घरवाले भी उठाते हैं। हम तो अपने पाठशाला में जो पढ़ते हैं उस को वहीं छोड़ आते हैं। विद्या बहुत आसानी से फैलती है, हवा के समान फैलने वाली है। लेकिन हम अपनी विद्या को कृपण के धन की नाईं अपने ही मन में रखते हैं और उस का फायदा दूसरों को नहीं मिलता है। मातृभाषा का निरादर माता के निरादर के समान है। जो मातृभाषा का निरादर कर... है वह स्वदेशभक्त कहलाने के योग्य नहीं है। बहुत से लोगों को यह कहते सुना है कि हमारी भाषाओं में हमारे उच्च खेआलात जाहिर करने के लायक शब्द नहीं हैं। सज्जनो, यह कुछ भाषा का दोष नहीं है, भाषा को बनाना बढ़ाना हमारा ही कर्तव्य है। एक समय था जब इंगरेजी भाषा की भी वैसीही अवस्था थी। इंगरेजी बढ़ी चूंकि इंगरेज बढ़े, तरक्की की, उन्नति की। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सकें और हमारा सिद्धान्त यह हो कि इंगरेजी ही के द्वारा अपने ऊंचे खेआलात बता सकेंगे और बढ़ा सकेंगे तो हम हमेशा के लिये गुलाम बने रहेंगे इस में कोई सन्देह नहीं। जब तक हमारी मादरी जबान में हमारे सब ख्यालात को जाहिर करने की ताकत नहीं आ जायगी, जब तक हम वैज्ञानिक शास्त्र मातृभाषा में नहीं समझा सकेंगे तब तक कौम को नये ज्ञान की प्राप्ति नामुमकिन है। यह स्वयंसिद्ध है।

(१) आम लोगों को नये ज्ञान की जरूरत है।

(२) आम लोग हरगिज इंगरेजी नहीं समझ सकते हैं।

(३) इंगरेजी पढ़ने वाले ही नया ज्ञान पा सकते हैं। इस लिये आम लोगों को नये ज्ञान का मिलना असम्भव है:—

इस का मतलब यह हुआ कि यदि पहले दो पद ठीक हैं तो कौम नष्ट हो जायगी।

लेकिन भाषा में दोष नहीं है। तुलसीदास जी अपने दिव्य विचार को भाषा में बतला सके हैं। रामायण के मोकाबले की बहुत कम पुस्तकें हैं। जो गृहस्थाश्रमी रहते हुए भी देश के लिए सर्वत्यागी हो गये हैं ऐसे महान देशभक्त भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीय जी को अपने खेयालात को हिन्दी में बताने में कुछ कठिनाई नहीं मालूम पड़ती है। उन का इंगरेजी का व्याख्यान चान्दी सा चमकता हुआ कहा जाता है, लेकिन मानसरोवर में से निकलती गंगा की धारा जैसे सूर्य्य के किरणों से सुवर्ण की नाईं झलकती है वैसाही श्रीमान् पण्डित जी का हिन्दी व्याख्यान प्रवाह भी झलकता है। मैं हिन्दी और उर्दू में फर्क नहीं समझता हूं। मैने कितने मौलानों को वाज देते सुना है वे लोग बड़ी आसानी से अपने बड़े बड़े ख्यालों को अपनी मादरी जबान में जाहिर कर सकते हैं। तुलसीदास की भाषा सम्पूर्ण है, अविनाशिनी है। इस भाषा में हम अपने भाव को प्रकाश न कर सकें तो दोष हमारा है।

महात्मा गान्धी।

इस त्रुटि का कारण स्पष्ट है। हमारी शिक्षा का माध्यम इंगरेजी है। इस बड़े दोष को दूर करने में सभी मदद कर सकते हैं। मेरा ख्याल है कि विद्यार्थिवर्ग इस विषय में सरकार से सविनय प्रार्थना कर सकते हैं। इस के साथ साथ तत्कालिक उपाय विद्यार्थियों को यह भी है कि जो कुछ पाठशाला में पढ़ते हैं उस का अनुवाद दिन प्रति दिन हिन्दी में कर लें और उस का प्रचार यथासम्भव घर में भी करें और परस्पर व्यवहार में मातृभाषा का ही प्रयोग करने की प्रतिज्ञा करें। एक बिहारी को इंगरेजी भाषा में पत्र लिखना मेरे लिये असह्य है। मैंने लाखों इंगरेजों को बात चीत करते हुए सुना है। वे दूसरी भाषा बोल सकते थे लेकिन आज तक मैंने दो इंगरेजों को आपस में परभाषा में बोलते नहीं सुना है। जो अत्याचार हम हिन्दुस्तान में कर रहे हैं वैसा इस जगत् के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता है।

एक वेदान्ती कवि ने लिखा है कि बगैर विचार की शिक्षा मिथ्या है। लेकिन उपर्युक्त कारणों से विद्यार्थी-जीवन बहुतकर विचारशून्य दीख पड़ता है। विद्यार्थी तेजहीन हो गये [illegible] ...नता नहीं है। बहुत

यह भाषा

किया, खान पान सादा बनाया, गन्दी बातों का त्याग किया! प्रोफेसर यदुनाथ सरकार के सलाह के मोताबिक छुट्टी के दिनों में गरीबों को मुफ्त पढ़ाने का कार्य कितने विद्यार्थियों ने किया? ऐसे बहुत से प्रश्न पूछ सकता हूं। इन के उत्तर की याचना नहीं करता आप स्वयं अपने आत्मा को सन्तुष्ट करलें।

आप के ज्ञान की कीमत आप के कार्यों में है। सैकड़ों मन पुस्तकों का ज्ञान मग़ज़ में भरने से उस की कीमत मिल सकती है किन्तु उस की अपेक्षा एक रुपैया भर कार्य की कीमत ज्यादे है। मग़ज़ में भरे हुए ज्ञान की कीमत केवल कार्य के कीमत के इतना ही है बाकी सब ज्ञान मग़ज़ के लिए निकम्मा बोझा है। मेरी हमेशह के लिए यही प्रार्थना है, यही आग्रह है कि जैसा आप सोचें समझें वैसी ही क्रिया कर लें इस में ही उन्नति है।

भड़ौंच (गुजरात) में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का स्वागत।

वेद सब के हैं।

(लेखक—[illegible] पं० [illegible] उपाध्याय।)

चतुष्का।

(१)

चमकती हुई उन किरनें सुनहरी। उगा चाँद औ चाँदनी यह [illegible]।
हवा मंद बहती धरा ठीक [illegible]। [illegible] और [illegible]।
सकल लोक [illegible] जिस तरह हैं [illegible]। सभी को उसी भाँति हैं वेद बानी॥

(२)

सभी देश पर औ सभी जातियों पर। सदा सम [illegible]।
[illegible] सर्व आय [illegible]। बनाते उन्हें [illegible] जिस तरह नर।
इसी भाँति ए वेद प्यारे सभी हैं। सकल लोक हित के लिये आये हैं॥

(३)

बड़े काम को ध्यान ये हैं बताते। बहुत ही भली सीख ये हैं सिखाते।
सभी जाति में प्यार ये हैं जताते। सभी देश में मेल ये हैं मिलाते।
[illegible]

(४)

[illegible]
[illegible]
[illegible]

अन्तर्राष्ट्रीय-राजनीति ।

कनाडा का अनिवार्य फौजी कानून ।

वर्तमान महायुद्ध में कनाडा प्रान्त ने अनेक बहादुरी के कार्य कर के
नाम पाया है; लेकिन इस प्रान्त में फ्रेंच-कनेडियन लोगों का एक
अल्पसंख्याक वर्ग है; और उसने युद्ध के कार्य में अब तक खूब टाल-
टोल किया है। कनाडा के अँगरेज़ी और फ्रेंच उपनिवेशियों का
सर्वोपार वैमनस्य ही इसका कारण है। यह वैमनस्य मौका पाते ही
ऊपर सिर उठाता है। इस समय कनाडा की लोकसंख्या ७४ लाख
है; इसमें से एक-तृतीयांश आबादी फ्रेंचवंशीय लोगों की है। इन फ्रेंच
कनेडियनों की बस्ती प्रायः क्वेबेक प्रान्त में है। इसके अतिरिक्त ओंटे-
रिया और मनीटोबा प्रान्तों में
भी कुछ लोग गये हैं। लेकिन
उत्तरकनाडा में फ्रेंच कनेडियन
बिलकुल ही नहीं हैं; जो कुछ
हैं सो दक्षिणमें ही हैं। महायुद्ध
के प्रारम्भ-काल में सेना में भरती
होने के लिए सख्ती नहीं थी;
जो अपनी खुशी से युद्ध में जाना
चाहते थे उन्हीं की भरती की
जाती थी। लेकिन दो महीने
पहले, स्वयंसेवक भरती करने
की उक्त प्रणाली छोड़ कर अनि-
वार्य सैनिक शिक्षा का कानून
पास किया गया। उस समय
११८ सम्मतियां अनुकूल मिलीं,
तो भी ५५ सम्मतियां विरुद्ध भी
थीं। अब तक ३५ हजार
कनेडियनों ने रणांगण पर

सर आर्थर करी।
(केनेडियन सेना के अध्यक्ष)

देहपात किया है; और लाखों सैनिक लड़ रहे हैं। ऐसी दशा में
उनके श्रम और जीवन को यदि सफल करना है तो कनाडा को अन्त
तक युद्ध में लड़ना ही पड़ेगा, यह बात बिलकुल स्पष्ट है; तथापि
लारियर (विरुद्ध मत के नेता) ने अनिवार्य कानून का विरोध किया;
क्योंकि उनको यह भय था कि फ्रेंच और अँगरेज़ी केनेडियन लोगों में
कितनी ही पीढ़ियों से जो द्वेषाग्नि धधक रही है वह इस अनिवार्य
कानून से भड़क उठेगी; और अन्त में उनका यह भय सच निकला।
कनेडियन पार्लिमेन्ट के कानून के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार से न्याय-
याचना करने का प्रस्ताव इन फ्रेंच कनेडियनों ने किया है। अब तक
इन झगड़ालू लोगों ने महायुद्ध के लिए स्वयंसेवकों के दल में, एक
कम्पनी में भी पूरे पूरे लोग नहीं दिये। साढ़े चार लाख सेना में से
केवल १२ हज़ार फ्रेंचवंशीय हैं। जहां तहां अँगरेज़ी कनेडियनों को
वृद्धि कर के संख्या पूरी करनी पड़ी। अब अनिवार्य कानून के पास
होते ही यह चिल्लाहट मचाई है कि इससे हमारी खेती की हानि
होगी। कई पत्र तो यहां तक सूचना करने लगे हैं कि, " इस युद्ध में
यदि फ्रेंचवंशीय जनता का संहार होजायगा तो कनाडा में आंग्ल-
वंशियों की ही प्रबलता होगी। इस लिए दक्षिण कनाडा को उत्तर
कनाडा से सम्बन्ध तोड़ कर और बलवा कर के स्वतंत्र होजाना चाहिए।
और अँगरेज़ी साम्राज्य के नीचे फ्रेंच-कनेडियनों का स्वतंत्र प्रजा-
सत्ताक राज्य स्थापित करना चाहिए।"

इसके अतिरिक्त आंग्लवंशीय कनेडियनों में से भी एक दो प्रान्त इस
अनिवार्य कानून के विरुद्ध हैं, और उन्होंने विरोध का जो कारण बत-
लाया है वह बहुत ही विलक्षण है। उनका कथन यह है कि, " हमारे
भाग में ४० हजार पशियाटिक हैं। इस लिए इस अनिवार्य कानून से
यदि १८ से ४५ तक की उम्र के हमारे प्रान्तों के सब नवयुवक चुन कर
जबरदस्ती से लड़ाई पर भेज दिये जायँगे तो हमारी स्त्रियों और लड़-
कियों का क्या हाल होगा? एक दो वर्ष में इस प्रान्त में पशियाटिकों
की संख्या यूरोपियन पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जायगी। इस
स्थिति को देख कर हमारे भाग की गोरी स्त्रियों को बड़ी चिन्ता हो
रही है। इसी डर के कारण इस साल कोलम्बिया प्रान्त में खेती के
... की भांति, चीनी मज़दूर नहीं लगाये गये; किन्तु गोरी
स्त्रियों ने ही उस काम को स्वीकार कर लिया है। इस रीति से
के अनिवार्य सैनिक कानून का प्रबल विरोध किया गया है; इस
अवश्य ही इस कानून का अमल बहुत विचारपूर्वक करना पड़ेगा।

स्विटज़रलैंड का परोपकारी स्वभाव।

यूरप में स्विटज़रलैंड के लोग अपनी स्वातंत्र्यप्रियता के लिए
प्रसिद्ध हैं। और इधर कुछ दिनों से उन्होंने परोपकार के जो
हैं उनको देखते हुए उनके प्रेमपूर्ण और उदार स्वभाव की
करनी चाहिए। महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही हजारों फ्रेंच और
कुटुम्ब निराधार होकर भगे; और स्विस सीमा में प्रविष्ट हुए।
हर एक प्रकार से सहायता पहुँचाने के लिए स्विस पुरुष, स्त्रियां और
बच्चों ने खूब परिश्रम किया। पुरुषों ने तो अनेक प्रकार से सहायता
की ही, लेकिन स्त्रियों और बच्चों तक ने रात रात भर जग कर के
रेलवे स्टेशनों और रास्तों पर खड़े होकर उन निराश्रित लोगों के स्त्री
बच्चों को चाह, काफी, इत्यादि पेय और भोजन की सामग्री पहुँचाई।
उन भगनेवाले झुंडों की माताओं की सहायता के लिए जा कर उनके
बच्चों को गोद में लेकर खिलाते हुए कितने ही मील तक उन्हें पहुँ-
चाने में स्विस लड़कों ने पूरा पूरा परिश्रम किया। अनेक स्त्रियों ने तो
अपने घर के सब कपड़े इन निराश्रितों को सुखी करने के लिए बांट
दिये; और कितनों ही ने अपने बच्चों के शरीर के कपड़े, भरे जाड़े
में, निकाल कर फ्रेंच और बेल्जन बच्चों का जाड़ा दूर करने के लिए
उनके शरीर में पहना कर अपनी उदारता प्रकट की।

लेकिन युद्ध की दृष्टि से इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य स्विट-
ज़रलैंड में स्थापित किये हुए प्रत्येक राष्ट्र के अस्पताल हैं। स्विटज़र-
लैंड की हवा बहुत ही आरोग्यकारक है, इस कारण बीमार कैदी
वहां जाकर बहुत जल्द आराम हो जाते हैं। इन अस्पतालों में प्रत्येक
राष्ट्र के खर्च से अपने अपने लोगों के दवापानी का प्रबन्ध होता
रहता है। फ्रेंच कैदी चाहे जर्मनों के हाथ आजावें, तथापि यदि वे
बीमार होते हैं तो उनको स्विटज़रलैंड के फ्रेंच अस्पताल में ले जाने
की इजाज़त मिल जाती है। यही सुभीता अँगरेज और जर्मन बीमार
कैदियों के लिए भी है। अतएव १९१६ से युद्ध के कारण उत्पन्न होने
वाली हृदयद्रावक यातनाओं का स्वरूप अब कुछ सौम्य होगया है।

डेढ़ दिन का राज्य।

सुश्रान तंग।
(चीन का डेढ़ दिन का राजा)

चीन में परस्पर जो कलह मची
थी उसका वर्णन चित्रमयजगत्
किसी पिछले अंक में हो चुका
उसके बाद जुलाई के दूसरे सप्ता
वहां अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं
लोकसत्ताक राज्य तोड़ कर कितने
लोगों ने चीन में राजसत्ता को स्था
करने के लिए प्रबल प्रयत्न किया।
लोगों ने आखिर चीन की गद्दी
राजा की स्थापना कर ही दी;
दस दिन भी नहीं होने पाये कि
अपना जी बचाने के लिए भग
पड़ा! चीन में इस समय तीन
गये हैं। पहला राजदल (नेता
दूसरा मंत्रिदल (नेता तुआन-
और तीसरा पार्लिमेंटदल (नेता
राजदल का नेता चंगसून
हठवादी, पुराणमताभिमानी औ
गतिक पक्ष का नेता है। उस
बलवे में चंग की सेना को परा
प्राप्त हुआ। और उसने पेकिंग
अधिकार कर लिया, तथा

सुआन-टंग को कैद कर लिया। लेकिन पीछे से यह समाचार सुनाई दिया कि उस तात्कालिक विजय से फूल कर चंग ने राजघराने के फूलन नामक एक नवयुवक को फांसी पर लटका दिया। फूलन यद्यपि राजघराने का था, तथापि वह अत्यन्त लोकप्रिय मनुष्य था। अमेरिका की बृहद् प्रदर्शिनी के समय वह चीन की ओर से प्रतिनिधि नियत होकर वहां गया था; और पहली चीनी पार्लिमेंट का अध्यक्ष था। चंगसून ने चीन में राजसत्ता स्थापित करने का विचार जब उससे प्रकट किया तब उसने उसका कठोर शब्दों में निषेध किया; और कहते हैं कि इसी कारण चंगसून ने उसे मार डाला। लेकिन इससे न सिर्फ पार्लिमेंटदल ही, किन्तु राजदल के भी अनेक लोग चंगसून से बिगड कर युद्ध करने को तैयार हुए। यह युद्ध पेकिंग से ३५ मील पर लंगफग गाँव के पास हुआ। अन्त में चंग का पराभव हुआ; और वह जी बचाने के लिए पेकिंग के एक देवालय में जा छिपा। इधर पेकिंग की ओर आया और प्रजासत्ताक सरकार अपना कारोबार नांकिंग नामक पुरानी राजधानी में ले गई। अध्यक्ष अभी तक कैद में था, अतएव उपाध्यक्ष ने अध्यक्षपद ग्रहण किया। अवश्य ही यह बात मंत्रिदल को सम्मत नहीं है; उसको न पार्लिमेंट चाहिए, और न राजा ही चाहिए। अर्थात् इस दल का नेता तुआन-ची जुई बेजवाबदार सत्ताधीश होना चाहता है। चीनी जनता इस बात को कदापि पसन्द नहीं कर सकती। लेकिन मंत्रिदल को फौजी सत्ता और धन का बल है, इस कारण जान पडता है कि इस समय उसी के हाथ में सब सूत्र रहेंगे। इधर जो समाचार आ रहे हैं उनसे यह भी संशय होता है कि फूलन के मारे जाने का समाचार मिथ्या है। यदि वह जीवित होगा तो लोकपक्ष और राजपक्ष में सलाह हो कर अराजकता शान्त हो सकती है।

चंगसून।
(सुआनतंग का सेनापति)

स्पेन में सुलतानी शासन।

स्पेन में बेजवाबदार राजसत्ता अस्तित्व में होने के कारण लोकमत को दमन करने के लिए सुलतानी ठाट के जुल्म वहां सदैव होते रहते हैं। स्पेन के पूर्व ओर के केटलोना प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने यह प्रार्थना की कि हमारे प्रान्तों को होमरूल का अभिवचन दिया जाये। किन्तु मंत्रिमण्डल की ओर से इसके लिए इन्कारी का उत्तर मिला। इस लिए प्रतिनिधियों ने इस बात का विचार करने को, कि अब आगे क्या करना चाहिए, बार्सेलोना शहर में एक सभा करने का विचार किया। १९ जुलाई को सब प्रतिनिधि सभा में एकत्र हुए, लेकिन सभा की कार्यवाही प्रारम्भ होने के समय उस प्रान्त के गवर्नर एकाएक सभा में घुस पड़े; और बोले—" यह सभा यदि प्रतिनिधियों की है तो यह राजद्रोही है; और इस सभा के लोग यदि केवल साधारण नागरिक हैं तो बिना इजाज़त के होने वाली यह सभा गैरकानूनी है!" इतना कह कर उन्हों ने सभा से चले जाने के लिए लोगों को इशारा किया। यह देख कर, कि बाहर फौज का बड़ा भारी प्रबन्ध है, लोग चुपके भाग्यबल से चले गये, लेकिन इस दमननीति के कारण स्पेन की जनता अत्यन्त प्रक्षुब्ध हुई है। उसका स्फोट कहीं बुरी तरह से हुए बिना नहीं रहेगा।

जापान में सोने का धुआं।

महायुद्ध की गड़बड़ में जापानी व्यापार को अच्छा अवकाश मिल गया है; और चूंकि इस अवसर का उपयोग कर लेने के लिए उस राष्ट्र में उत्साह भी है, इस लिए वहां के व्यापारियों को अच्छा लाभ हुआ है, यहां तक कि वह सारा द्रव्य अब वे व्यवसाय में लगा नहीं सकते, इस लिए वे बैंकों की ओर दौड़ रहे हैं। बैंकों में भी यह मर्यादा नियत रहती है कि अमुक रकम तक द्रव्य रखा जाय। इस लिए उनको भी धन लेने में अड़चन पड़ने लगी; और अनेक बैंक अब अपनी मर्यादा कानूनी रीति से बढ़ा भी रही हैं। लेकिन इतने पर भी जब देखा गया कि काम नहीं चलता तब अनेक जापानी साहूकार अंगरेज और फ्रेन्च सरकार को ब्याज पर कर्ज दे रहे हैं। तिस पर भी बकाया रकमों का बढ़ना बिलकुल कम नहीं होता है! गत जून की १३ तारीख से २३ तारीख तक के १० दिनों में बचत की रकम १ करोड़ दस लाख येन बढ़ी; और इसके अगले दस दिनों में १ करोड ५० लाख येन बढ़ी। इस प्रकार पूंजी की अडचन दूर हो जाने के कारण जापान में अनेक नवीन नवीन उद्योग-धंधे खूब तेज़ी से बढ रहे हैं। पहले जापान में बड़े बड़े जहाज़ नहीं बनाये जाते थे। लेकिन इस साल निपोन की एक ही कम्पनी ने ६७०० टन के छै और ८८०० टन के दो जहाज़ बनवाने का कार्य प्रारम्भ किया है; और उसे आशा है कि वह प्रतिमास एक जहाज़ तैयार कर सकेगी। अगले वर्ष यही कम्पनी १२ जहाज़ बनवायेगी; और उनमें से छै १० हजार टनवाले होंगे।

युद्ध के बाद का एशिया।

देशभक्त लाला लाजपतराय ने एक अमरीकन पत्र में इस विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं कि युद्ध के बाद एशियाखंड की परिस्थिति में क्या क्या परिवर्तन होंगे। लालाजी कहते हैं—" इस युद्ध से जापान को सब से अधिक लाभ हुआ है। उसका व्यापार खूब बढ़ा है; और उसकी जलसेना अथवा स्थलसेना को कुछ भी धक्का नहीं पहुँचा है। जर्मनी चूंकि योरोपियन राष्ट्रों के जहाज़ बड़ी तेज़ी से डुबा रहा है, इस लिए युद्ध के बाद माल के ढोने का काम प्रायः जापानी जहाजों के द्वारा ही करना पड़ेगा। इधर कुछ दिनों से चूंकि जापान में धन की वृष्टि ही हो रही है, इस लिए भीतरी सुधार करने का भी उसे बहुत अच्छा अवसर मिल गया है। अभी तक रूस इत्यादि परकीय शत्रुओं का जापान को डर था, इस कारण भीतरी सुधारों की ओर विशेष ध्यान न देकर सैनिक उन्नति के लिए ही उसे सारे प्रयत्न करने पड़ते थे। लेकिन अब परकीयों का डर उसे बिलकुल ही नहीं रहा। इस लिए अब जापान खूब खुले दिल से समाजसुधार में लग गया है। इसी प्रकार यह भी बहुत सम्भव है कि जापान का राज्यकार्य अब लोकसत्ताक राज्यपद्धति से होने लगे, और चीन में हस्तक्षेप करने का आग्रह करनेवाला दल भी शायद अब कमज़ोर हो जायगा। चीन भी यही चाहता है।

भारत पर तो इस युद्ध का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। यहां की राज्यपद्धति को भी लोकसत्ता के अनुकूल बनाने का प्रबल आन्दोलन हो रहा है। सामाजिक, धार्मिक और जातिविषयक भेदभाव भूल कर लोगों ने एकमत से स्वराज्य की आकांक्षा प्रकट की है; इस कारण अधिकारियों को भी उसकी ओर ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ा है। कहते हैं कि युद्ध के बाद जो सुधार होनेवाला है उसका मसौदा तैयार भी हो गया है, लेकिन अभी तक वह प्रकाशित नहीं हुआ है। स्वदेश-संरक्षक सेना में सुशिक्षितों को स्थान मिला है। साम्राज्यपरिषद में, लोकनियुक्त तो नहीं, लेकिन भारतीय प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया है। भारतीय राजामहाराजा भी बड़ी उत्सुकता से इस लोकसत्ताक राज्यपद्धति की स्थापना की बाट जोह रहे हैं। सारांश, प्रतिगामी साम्राज्यवादियों को अब कहीं भी आधार नहीं रहा। यद्यपि यह अभी नहीं कहा जा सकता कि यह सारा महोद्योग अन्त में पूर्णतया सफल ही होगा, तथापि इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है कि युद्ध के बाद भारत की परिस्थिति वर्तमान परिस्थिति से कुछ भिन्न अवश्य ही होगी।

जर्मनी के आसपास के तटस्थ राष्ट्र।

जर्मनी के आसपास हालैंड, डेन्मार्क, इत्यादि तटस्थ राष्ट्रों का गिरा है। अभी तक अमेरिका ने यह हठ कर के इन देशों में बहुत सा अनाज भेजा कि ये देश यदि यह इकरार लिख दें कि हम अपना अनाज जर्मनी को नहीं पहुँचावेंगे तो अमेरिका राष्ट्र को ... से इनको अनाज मोल देने का अधिकार हम को पहुँचता है। उपर्युक्त राष्ट्रों ने भी इकरार के अनुसार यह अनाज जर्मनी को नहीं भेजा। पर आखिर में अब यह जाना गया है कि इससे भी जर्मनी ने पूरा पूरा लाभ उठा लिया है। क्योंकि परदेश से आया हुआ अनाज हालैंड के किसान सुअरों को खिलाते हैं; और फिर वही खूब मोटे ताजे सुअर ये जर्मनी में ले जा कर बेचते हैं! इससे जर्मनी को मांस और चरबी भरपूर पहुँचती है। इससे साफ साफ मालूम होता है कि अमेरिका और हालैंड के व्यापार से जर्मनी में " चार पैरों का अनाज " पहुँचता है!

का यह कर्तव्य ही होगया कि यह ऐसा प्रबन्ध करे कि जिससे . . प्रान्त कम्पनी सरकार के हाथ में आ जाये। और यह प्रबन्ध . . था कि उक्त प्रान्त में रेलवे निकाली जाय। वर्तमान युगांडा रेलवे इसी निमित्त से निकली। परन्तु कम्पनी के पास अधिक पूंजी न होने के कारण यह काम हाथ में लेना सम्भव नहीं था, यही नहीं, किन्तु कम्पनी सरकार का एक बार यह भी विचार हुआ था कि युगांडा में राज्यविस्तार करने के लिए जो व्यय लगता है वही रेलवे की नयाई के काम में खर्च किया जाय, लेकिन साम्राज्य सरकार को यह ठीक नहीं जान पडा कि कम्पनी इस प्रकार युगांडा से अपना हाथ निकाल ले। क्योंकि यद्यपि अब जर्मन धूर्तों का डर अधिक नहीं रहा था, तथापि साम्राज्यसरकार ने युगांडा का पूरा प्रबन्ध करने के लिए ताकीद की, कि जिससे ऐसे सम्पन्न प्रदेश को अधिकृत करने के कार्य में ढिलाई न हो। लेकिन यह कार्य कम्पनी से होना सम्भव नहीं था; क्योंकि कम्पनी सरकार ने जो प्रदेश सम्पादन किया उसका विस्तार बहुत बडा था; और इस प्रयत्न में उसने अगणित धन खर्च कर के जो स्वार्थत्याग दिखलाया वह, साम्राज्य की वृद्धि के निजी प्रयत्न की दृष्टि से, अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है। इसका सारा श्रेय सर विलियम मेकिनन को ही देना चाहिए; और इसी महापुरुष की मूर्ति मुम्बासा के सार्वजनिक बाग में खड़ी कर के उसका नाम चिरस्थायी किया गया है। सच तो यह है कि यह मूर्ति उसके जड देह की नहीं है; किन्तु यह उसके सौजन्य, भूतदया, स्वार्थत्याग, राष्ट्रप्रेम और ज्वलन्त स्वदेशाभिमान की मूर्तिमन्त शक्ति ही समझनी चाहिए।

साम्राज्यसरकार ने जब देखा कि कम्पनीसरकार के द्वारा अब इससे अधिक कार्य नहीं हो सकता तब उसने सन् १८९५ में राज्यसूत्र अपने हाथ में ले लिये; और उसकी सब मालमत्ता तथा मिलकियत २,५०,००० पौंड में मोल ले ली, और तब से ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका पर साम्राज्य सरकार की सत्ता फारेन आफिस की ओर से प्रारम्भ हुई; और इस प्रोटेक्टोरेट का प्रबन्ध देखने के लिए कमिश्नर की जगह पर सर आर्थर हार्डिंज की योजना हुई; और यही ब्रिटिश ईस्ट आफ्रिका प्रोटेक्टोरेट के पहले कमिश्नर हैं।

इनके बाद सर चार्लस एलियट इत्यादि कमिश्नर होगये। सन् १९०५ में फौरेन आफिस ने इस प्रोटेक्टोरेट की अपनी सत्ता कलोनियल आफिस के अधीन कर दी; और अब तक वह कलोनियल सेक्रेटरी के अधिकार में है। सन् १९०७ से गवर्नर आने लगे। पहले गवर्नर सर जेम्स हेलन सेडलर हैं। इनका शासनकाल भारतीय लोगों को विशेष पसन्द आया। व्यवस्थापक सभा में पहले पहल भारतीय सभासदों की नियुक्ति इन्हीं ने की थी। इनके बाद व्हाइट कॉलनी के पुरस्कर्ता कर्नल सर पर्सी गिरवर्ड आये; और इस समय के गवर्नर तथा कमांडर इन चीफ सर कान्वे बेलफील्ड हैं।

इस प्रोटेक्टोरेट का कारोबार श्रीमान् गवर्नर साहब के द्वारा चलता है। उनकी सहायता के लिए एक्ज़िक्यूटिव (Executive) और लेजिस्लेटिव (Legislative) कौंसिल हैं। पहली में चार मेम्बर रहते हैं; और दूसरी में १० रहते हैं। जिनमें से ८ सरकारी और २ योरोपियन प्रजा में से सरकार के चुने हुए होते हैं। इस समय व्यवस्थापक सभा में भारतीय मेम्बर एक भी नहीं है। अगले साल से यूरोपियन लोगों को मेम्बर चुन देने का अधिकार मिलनेवाला है; लेकिन अभी तक यह प्रकट नहीं हुआ कि अन्य प्रजाजनों के अधिकार का पक्ष कलोनियल आफिस ने किस प्रकार सम्हाला है। परन्तु इस व्हाइट कॉलनी में भारतीय हित की कुछ भी रक्षा करना कितना विकट काम हो गया है, यह सहज ही मालूम हो जायगा। यहां पर केवल इतना ही कह कर कि, भारतीय लोगों के हित का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है, सेल्फ गवर्नमेंट के लिए आतुर एक पाश्चात्य के उद्गार नीचे दे कर यह विस्तृत भाग समाप्त करते हैं:—

"In the course of time, self-government must "come to british East Africa as to every "Britain "beyond the Seas" for the romantic associations "of the Protectorate have combined with its "phenomenal natural advantages to attract to its "land, settlers of a class exceptionally well equipp-"ed for a share of political responsibility The geni-"us for administration which has alredy substituted "the *Britannica* for the chaos and cofusion of "centuries, is not likely to be daunted by the prob-"lems which still remain to be solved."

अकोट का जठार-जीमखाना।

इस संस्था के भवन का प्रवेशोत्सव मि० जठार (डे० क० अकोला) के द्वारा [illegible] को हुआ। इस समय जीमखाने के सभासदों का यह फोटो लिया गया।

H भाग का-क-भाग B भाग के-ग-भाग में लगा कर B के-ग-में H का-ग भाग लगा कर उसे डिबरी से फिट करना चाहिए।

बाद-

H को-ख-जगह में भाग का ग-भाग लगा कर उसे डिबरी से करना चाहिए।

I भाग को A भाग के २ और २ भाग से, A भाग को १ जगह में पतवार जोड़ा है, उसके चक्र तक-क-डंडी लगा कर, उसमें-ग-जगह पर-ग-चक्र-जोड़ना चाहिए। सो इस प्रकार कि जिससे और इस चक्र का संयोग हो जावे। इसके बाद उस पर लगा कर फिट करना चाहिए। बाद को—

-घ-भूः-ड-डंडी पर लगा कर उस पर डिबरी बैठा कर फिट करना चाहिए।

इस जोड़े हुए भाग को मूठ फिराने से, पतवार विशिष्ट दिशा की ओर घुमा कर ट्रायसिकल के मार्ग की दिशा बदली जा सकेगी।

J भाग का-क-भाग A भाग के ७ और ७ की जगह भिन्न भिन्न दो स्थानों में बैठा कर उन्हें स्क्रू से फिट करना चाहिए।

K भाग का वर्णन L भाग में है।

नं० २ के चित्र का भाग नल के स्वरूप में न रखते हुए नं० १ के ऊपर के चक्र वृत्त की स्थिति में दो कड़ी चौरस तैयार करके उनको १, २, ३ और ४ के भागों से J भाग की-घ-और-ङ-जगह में जोड़ने का दृश्य दिखलाया है।

यह नं० २ का चित्र पूर्ण वृत्त कड़ियों का नहीं है, किन्तु अर्ध वृत्त का, केवल समझाने के लिए दिखलाया गया है।

यह भाग J भाग पर जोड़ने के बाद—

N की-क-जगह में-ग-नली लगा कर-ख-भाग M भाग की-ख-जगह में जोड़ना चाहिए।

इससे N का-ग-भाग पंखे से जुड़ जायगा; और N का-ख-भाग O भाग के चक्र वृत्त के ऊपर रहेगा।

इसका उपयोग यह है कि पंखा पानी झेलते हुए, पानी के लेवल की सरल रेखा से समकोन को पानी में जो नीचे रेखा कायम होगी, वहां पंखे से पानी झेलना बन्द हो जायगा; और वह पंखा पानी काट कर सहज ही ऊपर निकल जायगा।

इसमें एक बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिए कि पंखे के द्वारा जिस दिशा में पानी झेला जायगा उस दिशा की ओर चक्र वृत्त में
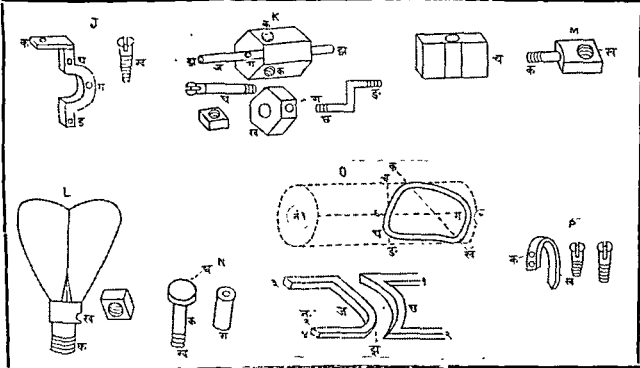
L बल्ली के समान कार्यकारी पंखा है। इसके नीचे का डंडा K भाग के-क-छिद्र में लगा कर, नीचे डिबरी लगानी चाहिए। इस दिखाये हुए K विभाग में तीन पंखे लगेंगे।

इसके बाद—K विभाग में से ज-डंडी पर-ख-भाग जोड़ कर, इस जोड़े हुए भाग के-ग-छिद्र से यह भाग जिस डंडी पर जोड़ा हो उसके-ग-भाग में-घ-स्क्रू लगाना चाहिए।

इसके बाद यह तैयार हुआ भाग J भाग पर-ग-और-ग-में रख कर बाद को—

-ङ-डंडी में-च-चक्र बैठाकर-छ-भाग को डिबरी बैठाकर फिट करना चाहिए। ऐसे दो भागों के-ङ-भाग-झ-और-झ-जगहों में बैठाना चाहिए।

इस भाग के योग से बैठक पर बैठकर पैर के द्वारा ट्रायसिकल को वेग दिया जा सकता है।

M भाग L भाग में-ख-स्थान पर जोड़ना चाहिए।

N भाग का वर्णन O भाग में आवेगा।

O भाग में से नम्बरी का चित्र एक अंडाकार नल है और उस पर यह कल्पनाचित्र दिखलाया है कि चक्र वृत्तात्मक रेखाओं से पंखे की दिशा किस प्रकार बदलेगी।

उस चक्र वृत्त के-क-और-ख-रेखा से दो विभाग किये गये हैं। उनमें से एक विभाग का दृश्य एक अर्ध वृत्त का है और दूसरा विभाग दूसरे अर्ध वृत्त का है। यह नल बैठक में जोड़े हुए J के दो विभाग हैं।

इस नल का अर्ध विभाग-च-और-ङ-रेखा से दिखलाया है; और उस रेखा के बाहर चक्र वृत्त का किंचित् भाग गया हुआ दिखलाया है।

दिखलाया हुआ-ग-भाग, पानी के लेवल से ऊपर ५ और ६ के नल का वृत्तार्ध समानान्तर रहेगा।

P भाग में यदि हमें कुछ सामान रखने का सुभीता करना हो तो हलकी पेटी के दोनों ओर-क-ख-क-जगह में स्क्रू लगा कर-ग-भाग C भाग की-ख-और-ख की जगह अटकाना चाहिए।

कुछ सूचनाएं।

इसमें लगनेवाला सामान हलका और मजबूत होना चाहिए।

उपयोग करने के पहले इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि प्रत्येक विभाग दुरुस्त है अथवा नादुरुस्त है।

मिट्टी के तेल का खाली डब्बा, जो चारों ओर से बन्द होता है, वह पानी में, एक दो सवा दो मन वजन, तोल के साथ, साध सकता है। इस पीपे के आकारमान और भारमान से ट्रायसिकल का वजन, उस पर बैठने का वजन और सामान के अनुरोध से P का चकगोल तैयार करना चाहिए। उसमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जिससे पानी न जा सके। बिलकुल वृत्ताकार होने की अपेक्षा, उसके मध्यभाग में एक अथवा दो इंच के त्रिकोणाकृति वृत्त, सम्पूर्ण चक्र के वृत्त की अपेक्षा अधिक ऊंचे होने से अच्छा होगा।

इसमें से नाजुक विभाग का सामान, बचत के रूप में, सदैव पास रहना चाहिए।

पानी में चलाने के लिए ले जाते समय और कार्य हो जाने पर सब विभाग कपड़े से अच्छी तरह पोंछ कर ऊपर से तेल लगा देना चाहिए।

जो तैर नहीं सकते उनको इस प्रकार की तूंबियां सदैव अपने साथ में रखनी चाहिएं कि जिनके द्वारा वे अपना वजन सम्हाल सकें।

है, इस लिए तोपें यद्यपि उतनी जल्दी नहीं बिगड़तीं, तथापि धीरे और लगातार वार करते रहने से भी वे जल्दी खराब हो जाती हैं। और वर्तमान युद्ध में तो चढ़ाई का काम न सिर्फ कुछ घंटे ही, किन्तु कई दिन, सप्ताह अथवा महीना भर तक जारी रहता है। इस लिए प्रत्येक सैन्यविभाग की तोपों, गोलाबारूद, इत्यादि की संख्या बार बार लगातार पूरी करनी पड़ती है। सितम्बर १९१४ में फ्रेन्च सेना ने शाँपेन में जो चढ़ाई की थी उसमें १ हजार ८ सौ तोपें निरुपयोगी हुई थीं। उस समय नवीन तोपें नहीं पहुँच सकीं, अतएव हमले का काम बन्द होगया था। इस लिए जिस सैन्यविभाग के पास ३०० तोपें और ६००००० गोले होंगे; और तोपों तथा गोलों की कमी ठीक समय पर पूरी होती रहेगी वही सैन्यविभाग इस महायुद्ध में भाग ले सकेगा।

इस रीति से सेना को गोलाबारूद और तोपों की पूर्ति सिर्फ दो प्रकारों से हो सकती है। पहले तो एक वस्तु की जगह पांच रख लेना, अर्थात् इन वस्तुओं का असंख्य संग्रह रख लेना पड़ता है। दूसरे यह कि, कारखाने रात दिन जारी रख कर इन पदार्थों की असंख्य रूप में उत्पत्ति करनी होती है। आवश्यकता के समय, ठीक मौके पर और न्यूनता को पूर्ण करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। लेकिन इन तोपों और गोलाबारूद के खर्च का परिमाण जाड़े में बहुत कम होता है, इस लिए उन दिनों के अवशिष्ट माल का परिमाण बहुत बढ़ा रहता है। उसे भी उपर्युक्त परिमाण में जमा करना चाहिए।

पहली अवशिष्ट प्रणाली रूस ने स्वीकार की है। रूस ये पदार्थ परदेश से लाता है; और उनका भरपूर संग्रह कर रखता है। दूसरी पद्धति फ्रांस इँगलैंड और जर्मनी में जारी है। अर्थात् वहां रातदिन तोपों और गोलाबारूद के कारखाने जारी रहते हैं और खूब माल तैयार होता रहता है। मतलब यह है कि केवल एक बार ही चाहे जितनी तोपें और गोलाबारूद पहुँचा देने से ही काम नहीं चलता, किन्तु योद्धाराष्ट्र के पास यह माल खूब जमा भी होना चाहिए।

× × × ×

जिस समय तोपों और गोलाबारूद का संग्रह पूरा पूरा नहीं होता उस समय लड़नेवाली सेना की जो दशा होती है उसका सहज ही अनुमान हो सकता है। ऐसे समय में सेनापति की जवाबदारी बड़ी विकट रहती है। ऐसे समय में वह अपने पास की तोपों का बहुत मन्द उपयोग करता है कि जिससे तोपखाने की आकस्मिक अड़चन में—अकस्मात् तोपें निरुपयोगी हो जाने के कारण तोपखाने के विना रहने की दशा में—आने का मौका न आवे। और जब कि तोपों की गोलाबारी का योग्य परिणाम होने के लिए, अर्थात् गोलाबारी सफल होने के लिए केवल उनकी संख्या के परिमाण की बाढ़ उपयोगी नहीं होती, किन्तु गोलाबारी की तेजी बढ़ानी होती है, तब फिर यह स्पष्ट है कि तोपों और अन्य सामान का संग्रह कम करना मानो उसके योग्य परिणाम का लाभ कम करना है! किसी विभाग का सेनापति जब इस कैंची में पड़जाता है—अर्थात् ३०० की जगह मान लो उसे केवल १२० तोपों से ही काम चलाना पड़ता है तब वह पांच अथवा छैगुनी कम तोपों से काम चलानेवाले सेनाध्यक्ष की स्थिति में आ जाता है।

फ्रांस में मार्नी की लड़ाई के बाद जर्मनसेना की तेजी जो घट गई उसका कारण तोपों और गोलाबारूद की कमी ही थी। सन् १९१५ के हेमन्तकाल में रूस का पराजय भी गोलाबारूद की कमी के कारण ही हुआ था। और गोलाबारूद तथा तोपों की कमी के कारण ही इँगलिश-फ्रेंच सेना को शाँपेन परगना में बढ़ने की नीति छोड़नी पड़ी।

आलफ्रेड रेवक नामक इटालियन महाशय ने अपने ये विचार "लइंदेपां नास्योनाल" नामक पोर्तुगीज दैनिक में प्रकाशित किये हैं।

जलगांव में यजुर्वेदी ब्राह्मणों की सभा।
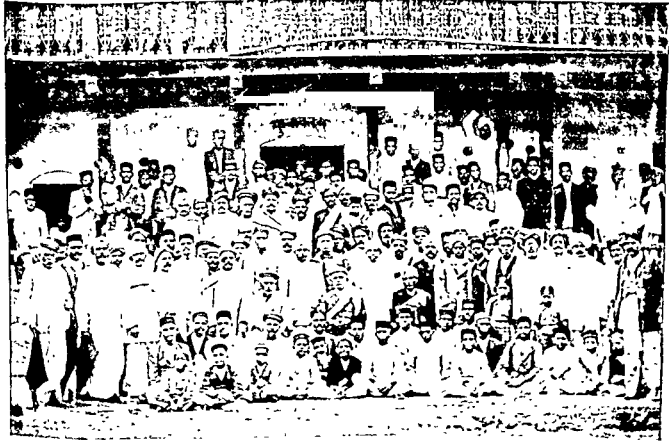
१२ अगस्त सन् १९१७ को जलगांव में माननीय [illegible] की अध्यक्षता में यह सभा इस बात का विचार करने के लिए हुई थी कि यजुर्वेद ब्राह्मणों के होनहार, परन्तु गरीब, विद्यार्थियों की शिक्षा में मदद करने के लिए क्या क्या उपाय करना चाहिए।

शान्ति-पथ ।

(लेखक—श्रीयुत हरिशरण सक्सेना ।)

कॉलेज की छुट्टियों में मैं घर आगया । वहां मेरे मित्र बाबू रमेश-चन्द्र एम० ए०, बी० एल० मिले । इस समय इनकी वह अवस्था न थी जिस समय कि ये मेरे साथ एम० ए० क्लास में पढते थे ।

जब वे कॉलेज में पढते थे तब वे बड़ी तड़क-भड़क से रहते थे, पर अब वह तड़क—तड़क न रही । अब वे केवल एक साधारण कुड़ता व धोती पहिन कर जीवन व्यतीत करते थे । जिस समय वे कॉलेज में पढते थे, उस समय वे अपने सहपाठियों से बड़ा मज़ाक़ करते थे । पर अब वह बात नहीं । इस समय इनके मुख-मंडल से गंभीरता टपक रही थी ।

केवल एक वर्ष में इनके जीवन में इतना फेर क्यों ? . मुझे रमेश-बाबू को इस अवस्था को देख बड़ा आश्चर्य हुआ । जिस दिन मैं घर आया था उस दिन कारण-वश मैं रमेश-बाबू से मिल न सका ।

मैं ने दूसरे दिन उनका हाल जानने के लिये उनके घर जाने का विचार किया ।

× × × ×

दूसरे ही दिन मैं रमेश बाबू के घर गया । मैं ने पूंछा " रमेश यह क्या ? ", " जिस समय तुम कॉलेज में पढते थे उस समय तुम्हारी यह हालत न थी । पर अब कुछ ही दिनों में इतना परिवर्तन क्यों ? "

उन्होंने गंभीरता-पूर्वक उत्तर दिया—

" मित्रवर, यह केवल ईश्वरीय माया है । " इस क्षुब्ध उत्तर से मुझे शान्ति न हुई । मैं ने बहुत कुछ पूंछा पर रमेश-बाबू शान्त रहे । थोड़ी देर बाद मैंने देखा—रमेश बाबू की आंखों से आंसू टपक रहे हैं.. ... मैं ने कहा " रमेश, तो क्या सचमुच तुम मुझे भूल गये ?..... क्या तुम उस प्रेम को भूल गये जो हममें कॉलेज में था ?... ... ... "

रमेश ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—

" कभी नहीं ! "

मैं ने पूंछा, " यदि ' कभी नहीं ' तो फिर, आप अपनी सच्ची हालत को गुप्त रखने का क्यों प्रयत्न कर रहे हैं ? " .... रमेश ने कहा " नरेश-बाबू आज तक न तो मैं ने कोई बात तुमसे छिपाई न अब छिपाऊंगा । पर मैं सोचता हूं कि अपनी दुख-कथा दूसरे को सुना क्यों दुखित करूं ? " मैं ने कहा, " रमेश बाबू, मैं आज तक आपके दुख-सुख का साथी रहा—और मुझे विश्वास है कि हम जन्म भर एक दूसरे के दुख-सुख के साथी रहेंगे !. ..... . " रमेश-बाबू कुछ देर तक चुप रहे । फिर वे अपनी दुख-कथा इस प्रकार कहने लगे—

" नरेश-बाबू, यह तुम्हें भली-भांति मालूम है कि मैं एम० ए० की परीक्षा में प्रथम-श्रेणी में उत्तीर्ण होते ही कॉलेज का जूनियर-प्रोफेसर हो गया था । इसके कुछ ही दिन बाद मेरे बहनोई का स्वर्गवास हो गया । मेरी बहिन कमला देवी का इस समय सिवाय मेरे संसार में कोई भी न था ।

मेरी बहिन बचपन से ही मुझे बहुत चाहती थी । वह विधवा हो मेरे पास अपने बालक सुरेशचन्द्र के सहित चली आई । एक दिन मेरी बहिन ने कहा—

" भैय्या ! मैं अनाथ हूं । आज से इस बालक के तुम्ही कर्त्ता-धर्त्ता हो । इसकी उन्नति या अवनति सब तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है । इस बालक के ऊपर आज से तुम्हारा ही अधिकार है—(रोकर) पर भैय्या, इसके साथ ही इस बात का भी विस्मरण न कर देना कि यह बालक अनाथ है ... ... सिवाय तुम्हारे इस बालक का संसार में कोई भी नहीं ! .. . " मैं ने कमला को विश्वास दिलाते हुए कहा " कमले! विश्वास रख । मैं तेरे बालक को अपना सर्वस्व समझूंगा । मैं ने आज तक तेरी बात कोई भी न टाली । फिर न मालूम आज तू क्यों इतनी अधीरता-पूर्वक कह रही है । तू कदाचित यह समझती हो कि तू अनाथ है, पर कमले ! मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं कि जब तक मैं जीवित तब तक तू अकेली न रहेगी ! "

मेरे वचनों को असाधारण समझ कमला संतोष-पूर्वक . . व्यतीत करने लगी ।

इस घटना के दूसरे ही दिन मैंने सुरेशचन्द्र को कॉलेज " . करवा दिया । बालक बड़ा परिश्रमी एवं होनहार था । वह . इयर की वार्षिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ । पर ... उसकी अवस्था दिन पर दिन बिगड़ने लगी । वह बुरी सोहबत में बिलकुल बिगड़ गया । यहां तक कि उसके शिक्षक-गण व " . तक की शिकायतें मेरे पास पहुँचने लगीं । मैं ने उसे बहुत कुछ ... भाया, पर सब व्यर्थ । एक दिन मुझे प्रिंसिपल ने अन्तिम चिट्ठी भेजी। आपने लिखा था—

" प्रियवर,

मुझे यह लिखते हुए खेद होता है कि सुरेशचन्द्र की अवस्था सुधरने के बजाय दिन पर दिन बिगडती जाती है । मुझे अंदेशा है कि उनके रहने से उनके सहपाठियों की भी अवस्था बिगड़ जाय । ठीक हो यदि आप इन्हें अच्छी तरह समझा देवें अथवा कालेज से अलग करलें ।

आपका...... ह "

मैंने पत्र बतलाते हुए सुरेश से कहा कि ' यह क्या बात है । दिन पर दिन तेरी तो अवस्था बिगड़ती ही जाती है, उसने कहा—' मेरी अवस्था बिलकुल ठीक है । यह सब प्रपंच न मालूम क्यों रचा जा रहा है । ' सुरेश का उत्तर सुनते ही मुझे क्रोध आगया । मैंने उसे खूब पीटा और कबूल करवाया कि भविष्य में वह ऐसा न करेगा ।

कुछ काल तक उसने प्रण निबाहा पर उसके बाद फिर वही हालत । आखिर को फल यह हुआ कि प्रिंसिपल ने उसे कॉलेज से निकाल दिया ।

रात्रि के २ बजे होंगे । मैं सुरेश के बारे में विचार कर रहा था कि क्या करूं क्या न करूं कि इतने में सुरेश आगया । मैंने कहा—

' भाई सुरेश,

तुम्हारी अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती ही जाती है । लोग हमें और तुम्हारे पिताजी को धिक्कारते हैं । हमारे नाम बदनाम हो चुके हैं, पर सुरेश, अब भी समय है कि तुम सुधर जाओ । तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि तुम एक उच्च-वंशीय हो—तुम्हें अपने उच्च वंश का अभिमान होना चाहिये । उसके गौरव को प्राण-पण से निभाना चाहिये । इतना होते हुए भी न मालूम तुम क्यों इतने बेफिक्र हो । '

सुरेश ने कहा—

' अब जो हुआ सो हुआ, पर आज से आप मुझे इस अवस्था में कभी न पावेंगे ! '

मैंने उत्तर देते हुए कहा—

" मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम अपने कहे हुए पर चल सको । अच्छा, अब तुम भी जाओ । १० बज चुके हैं । "

मैं भी सोगया । मैं सुबह उठा, मैंने देखा कि सुरेश ने वास्तव में अपना प्रण निबाहा । उसके गले में फांसी लग रही थी ! उसके शरीर में अब प्राण न थे । मेरी बहिन सुरेश को देख देख कर ... कर रो रही थी । जब मैं बहिन के पास पहुँचा तब वह मेरी ओर काल-दृष्टि से देखने लगी । बहिन और सुरेश की यह अवस्था देख मेरा हृदय टूक टूक होने लगा । मुझे अपने प्राण रखना कठिन होगया । उसी दिन मेरी बहिन का भी स्वर्गवास होगया ।

उसी दिन से मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न होगई । मैंने मन में कहा कि मैं इतना नीच हूं कि बहिन का एक तुच्छ कहना भी पूरा न कर सका !

! ऐसे ही कारण दोनों को शरीर त्याग करना पड़ा। फिर मैं संसार ... कर क्या करूं? मेरा शरीर अब अपवित्र होगया है। फिर इस अधम शरीर को रखने से लाभ? मन में कहा 'बात बिलकुल ठीक ...।' पर आत्महत्या करना क्या अपवित्र काम नहीं?' एक अपवित्र ... कर तुम पहिले ही कलंकित होगये हो, फिर भी तुम दूसरे अप... काम को पूरा कर शान्ति चाहते हो!'

यह विचार आते ही मैंने आत्म-हत्या की यह कल्पना त्याग दी। इच्छा हुई कि सब तीर्थ-स्थानों के दर्शन करूं। मैं सब तीर्थ-स्थानों के दर्शन कर आया, पर तो भी मुझे शान्ति न हुई!

एक दिन मैं ऋषिकेश के एक घने वन में विचर रहा था। विचार कर रहा था कि क्या संसार में "शांति पथ" है ही नहीं। थोड़ी दूर पर मुझे एक महात्मा मिले। उनका शरीर विशाल था और मुखमंडल पर शांति दमक रही थी। उन्होंने कहा—'बच्चा, यहां पर क्या सांसारिक, क्या आत्म-त्यागी, सब ही को मैं आनन्दचित्त देखता हूं, पर न मालूम तेरा चेहरा इतना उदास क्यों है!'

मैंने महात्मा को अपनी सारी दुख कथा कह सुनाई। उन्होंने कहा "शांति इस तरह न मिलेगी। यदि तू शांति चाहता है तो बहुत से बालकों को प्रेम से पढ़ा। उन्हें मारना मत—उन्हें अत्यंत चाव-पूर्वक पढ़ाना।" उसी दिन से मैंने इस गाँव में एक पाठशाला खोली है और महात्मा जी के कहे अनुसार पढ़ाता हूं। इस अवस्था में मुझे कुछ शांति मालूम होती है, पर "मेरी बहिन मेरी ओर कातरदृष्टि से देख रही है, यह दृश्य आंखों के सामने मुझे अब भी दिख रहा है। पर इतना होते हुए भी मुझे विश्वास है कि इस तरह मुझे शांति अवश्य मिलेगी।" यह कह कर रमेश बाबू चुप हो रहे।

रमेश बाबू की यह बात सुन मुझे कुछ दुख हुआ, पर मेरा भी विश्वास है कि महात्मा जी का कहा हुआ मार्ग सचमुच ही "शांति पथ" है।

नरेशचन्द्र एम० ए० बी० एससी, बा० एल।

महाराष्ट्र का श्रीगणेशोत्सव।

महाराष्ट्र प्रान्त का गणपतिउत्सव प्रायः सारे भारत में प्रसिद्ध है। भाद्रपद मास में गणेशचतुर्थी से ले कर और लगभग एक सप्ताह अनेक छोटे बड़े नगरों में गणपति की झांकियां बनाई जाती हैं। इन झांकियों का अनुमान प्रायः वे लोग कर सकते हैं जिन्होंने कि श्रावण मास की श्रीकृष्ण की झांकियां मथुरा वृन्दावन या उत्तर भारत के कानपुर इत्यादि नगरों में देखी हों। परन्तु उन श्रीकृष्ण की झांकियों और इन गणपति की झांकियों के उत्सव में बहुत अन्तर है। यद्यपि दोनों के भक्तिभाव में कोई अन्तर नहीं है, तथापि उत्तर भारत में श्रीकृष्ण की झांकियों से प्रायः शृंगारिक भाव का ही विशेष प्रचार होता है। गणपति-उत्सव में यह बात नहीं है। महाराष्ट्र का यह उत्सव बहुत प्राचीन है, और महाराष्ट्र-स्वराज्य के काल में तो यह राष्ट्रीय तथा धार्मिक उत्सव बहुत ही धूमधाम तथा स्वतंत्र भाव से मनाया जाता था। कालान्तर से इस उत्सव में केवल भोला धार्मिक भाव रह गया था; पर अब कुछ काल से महाराष्ट्र के कर्मवीर नेताओं ने इस उत्सव में फिर से नवजीवन का संचार कर दिया है। अर्थात् उस भोले धार्मिक भाव में राष्ट्रीयता का अन्तर्भाव कर दिया है। अब प्रति वर्ष गणेशोत्सव के दिनों में रोज गणपतिजी के सामने किसी न किसी सुप्रसिद्ध विद्वान् वक्ता का राष्ट्रीय व्याख्यान हुआ करता है। प्रत्येक मुहल्ले के मुख्य गणपति के सामने व्याख्यान होते रहते हैं; और व्याख्याता तथा उनके व्याख्यान का विषय पहले ही से नियत कर दिया जाता है। सारे नगर भर के गणपतिउत्सव का तथा व्याख्यानों इत्यादि का प्रबन्ध करने के लिए एक कमेटी ही पहले से बना दी जाती है, जिसके द्वारा संगठित रूप से सब कार्य होता रहता है।

इस प्रकार व्याख्यानों द्वारा लोकजागृति का कार्य तो होता ही है, इसके अतिरिक्त कीर्तन और भजन (पद्गान) के द्वारा भी गणेशोत्सव पर नीतिधर्म और भक्तिभाव बढ़ाने का अवसर मिलता है। महाराष्ट्र की "कीर्तन-संस्था" के विषय में हम अपने पाठकों को कुछ बातें किसी पिछले अंक में बतला ही चुके हैं। गणपति जी के सामने "हरिदास बोवा" कीर्तन कर के लोगों को अपनी वक्तृत्वशक्ति के द्वारा नीति की ओर झुकाते हैं। 'भजन' प्रायः गणेशोत्सव पर गानमंडलियों के द्वारा होता है। इन मंडलियों को "मेळा" कहते हैं। गणेशोत्सव में गाने के लिए पद और भजन भिन्न भिन्न मनोहर चालों पर रचे हुए हैं, तथा प्रति वर्ष महाराष्ट्र कवियों के द्वारा रचे जाते हैं। इन भजनों की छोटी छोटी पुस्तिकाएं प्रत्येक भजनमंडली की ओर से छपी रहती हैं। इन भजनों में देशभक्ति, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और ईश्वरभक्ति का बहुत अच्छा मेल रहता है। प्रत्येक मंडली का नायक अपनी मंडली को संगठित कर के इन भजनों के द्वारा जनता में स्वदेशाभिमान और राष्ट्रीय धर्म का जीवन डाल देता है। ये भजनमंडलियां निम्नश्रेणी के लोगों में बहुत अच्छा काम करती हैं। इस प्रकार व्याख्यानों, कीर्तनों और भजनों द्वारा उच्चश्रेणी, मध्यमश्रेणी, निम्नश्रेणी, इत्यादि सब प्रकार के लोगों में जागृति उत्पन्न करने के लिए गणेशोत्सव का अवसर महाराष्ट्र में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

गणेशजी के विसर्जन के दिन, तमाम शहर के गणपतियों का जलूस बड़ी धूमधाम से शहर में घूमते हुए, नदी की ओर जाता है। इसमें सम्पूर्ण शहर के नरनारी सम्मिलित होकर अनुपम राष्ट्रीय ऐक्य का अनुभव करते हैं। पूने का राष्ट्रीय देवता "तिलक" जुलूस के मध्य में जनता के साथ चलता है। विद्यार्थी और नवयुवकसमूह उसके आसपास हरिनाम कीर्तन करते हुए चलता है; और नदी पर गणपति का विसर्जन कर के फिर तिलक महाराज समारोप का अन्तिम भाषण करते हैं। इस प्रकार यह गणपतिउत्सव लोगों में राष्ट्रीयता की रूह फूँक कर समाप्त होता है।

भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में अनेक धार्मिक उत्सव प्रति वर्ष होते हैं। रामलीलाएं होती हैं, कृष्ण लीलाएं होती हैं, अनेक त्योहार होते हैं, क्या इन लीलाओं और त्योहारों को हमारे नेता लोग सच्चे धर्म, अर्थात् नीतियुक्त धर्म या महाराष्ट्रीय धर्म का स्वरूप नहीं दे सकते? कृष्ण के समान नैतिक और राष्ट्रीय विभूति के नाम पर उत्तर भारत के अनेक नगरों में कितनी अश्लील शृंगारिकता का प्रचार किया जाता है? धनुषयज्ञ और रामलीला में लड़कों का स्वांग किस शृंगारिकता के साथ बनाया जाता है! क्या हमारे बड़े बड़े नेता इन राष्ट्रीय उत्सवों को सुधारने की ओर ध्यान न देंगे? जनता में हिले-मिले बिना इनका सुधार कैसे हो सकता है!—महाराष्ट्र के नेता जनता में मिल कर "जनतारूप जनार्दन" का पूरा पूरा अनुभव करते हैं, और सुधार करते हैं। हमारे उत्तर भारत के अधिकांश नेता जनता से अलग रह कर उसका सुधार करना चाहते हैं, अंगरेजी में स्पीचें सभाओं में, और कौंसिलों में, झाड़ना जानते हैं, इस प्रकार कैसे जागृति उत्पन्न हो सकती है? महात्मा गान्धी कहते हैं कि हमारे देश में सुशिक्षितों और सर्वसाधारण जनता के बीच में एक गहरा खड्ड, अंगरेजी भाषा, अंगरेजी रहन-सहन और पश्चिमी सभ्यता का, खुदा हुआ है। जब तक हमारे सुशिक्षित नेता देशी भाषा, देशी लिबास और रहनसहन, आर्यसभ्यता, का स्वीकार कर के जनता में मिल कर एक रूप नहीं बन जायेंगे—और "जनतारूप जनार्दन" में अपनी एकता का पूरा पूरा अनुभव नहीं करेंगे, तब तक यह बीच का गड्ढा कैसे मिटेगा, और कैसे इन करोड़ों मूक देशभाइयों में जागृति उत्पन्न होगी? क्या हमारे सुशिक्षित नवयुवक और नेतागण हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे?

पूने में गणपति-विसर्जन का जलूस।

(आर्यन सिनेमा ने अपने "लङ्कादहन" नामक चित्रपट का विज्ञापन भी गणपति की सवारी में लगा दिया है। वही भाग इस फोटो में आया है।)

बेळगांव-महाराष्ट्रसंघ का गणपति।

रत्नागिरी का गणपति।

नासिक में पुल पर का गणपति।

लश्कर ग्वालियर का श्रीभद्रमचंडी-उत्सव।

[illegible]

इस "

सम्मिश्र-समा

बम्बई—दादर के " जी० ई० इ०

अवश्य मालूम हो गई है, भारत की उपयोगिता
साम्राज्य को इस विशेष स्थान मिलना आवश्यक है।
आवश्यक है कि भारत की शासनप्रणाली भारत के
और उसकी बुद्धिमत्ता के लिए उचित जान पड़े।
... इसे स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों
... को जो पद प्राप्त है—जो अधिकार प्राप्त है वही
... तक हमको मिलने चाहिए ... और अन्त में,
... रहा है कि, भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत पूर्ण
... नहीं।" इसी सरकार की कौंसिल के सभासद माननीय
... ही कहा है—" भारत के लोगों की पराधीनता की धार
... अवश्य होनी चाहिए, और साम्राज्य में भारतीय
... कि नागरिकत्व की भावना होना आव-
... " सभी भारतीय नेताओं ने समय समय पर इस प्रकार के
... प्रकट किये हैं। हमारे इस कथन में कुछ भी अनुचित नहीं
... के विख्यात तीन राजनीतिज्ञों के जो वचन ऊपर
... में भारत के रोग की पूर्ण चिकित्सा मौजूद है।
... कि भारतवर्ष का प्रश्न इन चार बातों से पेश किया जा
... (१) भारत की बढ़ती हुई दरिद्रता (२) भारत में पौरुष
... (३) भारतीय राज्यकार्य से भारतीयों का अलगाव और
... शासन, जो भारतीयों को इस विशेष सब जगह
... है।
... देशों ने इस रोग का एक ही रामबाण उपाय बत-
... यही है कि यहां ऐसी राज्यपद्धति जारी की जाय
... लोगों को पूर्ण रूप से उत्तरदायी हो—अर्थात् भारत
... दिया जावे। इसके अतिरिक्त यदि भारतीय लोगों
... आन्दोलन का इतिहास देखा जाय तो भी यही बात
... और आगे मि० मांटेग्यू जो नवीन सुधार अमल में लाने
... भी इसी से होगा कि उपर्युक्त चारों बातें किस
... हुई :

... के साथ जो अंगरेजी नवीन विचार यहां आये उनमें
... अथवा शासनशास्त्र का खास तौर पर उल्लेख करना
... इस शास्त्र में भी, प्राय सब यूरोपीय और अमरीकन
... पंडितों के मन से लोकसत्ताक राज्यपद्धति ही सर्व-
... है। यह लोकायत्त सत्तावाद योरप में भी इस शतक
... हुआ और तब से इसका बराबर खूब उत्थान हो
... इस बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो भयंकर लोकक्षय
... इसका भी उद्देश्य यही है कि उपर्युक्त लोकायत्त सत्ता
... स्थापित की जावे—यह बात युद्ध में लगे हुए सब राष्ट्र
... रहे हैं। फ्रांस में जो पहली राज्यक्रान्ति हुई उसका
... यही था कि उपर्युक्त लोकसत्ताक राज्यपद्धति जारी
... फिर उसकी लहरें अमेरिका में पहुँची तथा वहां उक्त
... स्थापित भी हो गई। और आज इस शताब्दी में इसी
... न्यूनाधिक परिमाण से सर्वत्र विजय हो रहा है। अमे-
... रियासतें, फ्रांस, स्विटज़रलेंड, इत्यादि प्राचीन काल के
... दस पांच वर्ष से लोकसत्ताक शासनप्रणाली को जारी
... पुर्तगाल, रूस, इत्यादि राष्ट्र अथवा इँगलैंड, जापान,
... नाममात्र के राजसत्ताक, परन्तु वास्तव में लोक-
... सभी खुल्लमखुल्ला प्रजासत्ताक राज्य का ही पुरस्कार
... संसार में ऐसा एक भी राष्ट्र नहीं है कि जो उपर्युक्त
... खुल्लमखुल्ला विरोध कर सकता हो। सारांश यह है कि यदि
... कि वास्तव में कौनसी शासनप्रणाली अमल में लानी
... उत्तर में निस्सन्देह यही कहना पड़ेगा कि सचमुच
... राज्यपद्धति ही राजकीय उत्क्रान्ति या विकास का सर्वोच्च
...।

... हम इस बात का पृथक्करण करते हैं कि उपर्युक्त लोक-
... है क्या चीज़—तो हमें यही मालूम होता है कि इस
... सत्ता पूर्णतया लोगों के हाथ में रहती है। प्रत्यक्ष
... प्रजा में से ही, उसी के चुने हुए और उसी के
... होते हैं। इस राज्यपद्धति में राज्यकर्त्ताओं तथा
... कोई अलग झगड़ा शेष नहीं रहता। योग्यता के
... लिए राज्ययंत्र में स्थान रहता है, और जिसके अन्दर
... योग्यता होती है वह राज्य की सब से श्रेष्ठ

पदवी तक पा सकता है। किसी की भी महत्वाकांक्षा के लिए कहीं
रुकावट नहीं है, और इस प्रकार का प्रतिबन्ध कहीं भी नहीं है कि अमुक
पद अमुक के लिए ही सुरक्षित रख छोड़े गये हैं, अथवा सब से श्रेष्ठ श्रेणी
के पद अमुक लोगों को ही ग्रहण करना चाहिए। मतलब यह कि वर्ण
अथवा कानून का भेदभाव वहां रहता ही नहीं। ऐसी लोकसत्ताक पद्धति
का व्यावहारिक स्वरूप, अर्थात् प्रत्यक्ष राजदण्ड जिनके हाथ में रहता है वे
लोग, अथवा राज्यकर्त्ता लोग, प्रजा यानी लोकप्रतिनिधियों के बनाये हुए
कानून से नियंत्रित रहते हैं। अपने राज्यकार्य के लिए वे प्रजा अथवा
प्रजा के प्रतिनिधियों के सामने उत्तरदायी रहते हैं, और उनके प्रत्येक
कार्य पर लोकमत की पसन्दगी की छाप की आवश्यकता होती है।
मतलब यह कि कानून बनाने का अधिकार प्रजा के ही हाथ में रहता
है और उस कानून को अमल में लाने के लिए नियुक्त किये हुए प्रत्यक्ष
कार्यकारी अधिकारियों का काम, उसके अमल करनेवाले नौकर का
रहता है। ऐसी शासनप्रणाली में कोई भी जुल्मी कानून बन नहीं सकता,
और यदि बना भी तो चूंकि वह अपना ही बनाया हुआ होता है इस
लिए प्रजा को उसके लिए कोई खेद नहीं होता। इस लोकायत्त या
प्रजासत्ताक शासनप्रणाली में 'राजद्रोह' का शब्द ही नहीं रहता—
हां 'देशद्रोह' हो सकता है। बस, इसी शासनप्रणाली को, जो कि
उपर्युक्त प्रकार से प्रजा के सामने उत्तरदायी रहती है, पूर्ण स्वराज्य
कहते हैं। निधि अथवा कर की यदि आवश्यकता हो तो प्रतिनिधि
और उसकी सभा स्वीकार करनी चाहिए—बस, यही तत्व इस प्रणाली
की आत्मा समझिये। स्वयं इँगलैंड में भी यही शासनप्रणाली प्रचलित
है। और इँगलैंड तथा उसके उपनिवेशों में, इसी सिद्धान्त के ऊपर
और इसी नीति के अनुसार, राजकीय संस्थाओं का विकास हो रहा
है। सच पूछिये भारतवर्ष जब कि अँगरेजी शासन के अन्दर आया
तभी उपर्युक्त राज्यप्रणाली यहां प्रचलित होनी चाहिए थी—
अँगरेजी राज्य के साथ ही अँगरेजी राजकीय संस्थाएं यहां संस्थापित
होना चाहिए थीं। कम से कम उनका उपक्रम तो अवश्य ही होना
चाहिए था। परन्तु वास्तव में मांटेग्यू साहब को यह प्रश्न ही खास
तौर पर हल करना है कि क्या वास्तव में ऐसी परिस्थिति उप-
स्थित हुई है? और निस्सन्देह यदि उपर्युक्त शासनप्रणाली प्रचलित
करने का प्रारम्भ वे यहां करेंगे तो भारत का प्रश्न हल करने का सारा
श्रेय उन्हें मिलेगा।

यह भी नहीं है कि उपर्युक्त लोकायत्त राज्यपद्धति भारतीय लोगों
के लिए सर्वथैव अपरिचित हो। उपर्युक्त पद्धति का मुख्य सिद्धान्त
यह है कि कानून बनाने की सत्ता पूर्णतया लोगों के हाथ में होनी
चाहिए और कानून का अमल करनेवाला अधिकारीवर्ग उस
सत्ता के सामने उत्तरदायी होना चाहिए। उपर्युक्त शासनप्रणाली
चाहे वर्तमान स्वरूप में न हो, किन्तु किसी न किसी स्वरूप में यह
भारतवर्ष में प्रचलित थी। प्राचीन काल के सब कायदा कानून
बनाने का कार्य उन ऋषियों के हाथ में था कि जिन्होंने अपने
स्वार्थ को तिलांजलि दे दी थी, जो बिलकुल निष्काम थे, और केवल
संसार का उपकार करना ही जिनका एकमात्र व्रत था। और प्रजा
अपने प्रतिनिधियों के द्वारा अपने हित के लिए जो कार्य करा लेती
है वही कार्य उस समय वे निःस्वार्थी, निष्पक्ष, निस्पृह और सर्वज्ञ
महर्षि लोग किया करते थे, और विशेष बात यह थी कि सब
राजा और राज्य के अधिकारी अपने अपने राज्यकार्यों के लिए
उपर्युक्त महर्षियों के सामने जवाबदेह रहते थे। पौराणिक काल के
इतिहास की ओर देखने से हम को स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वे
ऋषि बारम्बार राज्यों में आकर राजाओं और उनके अधिकारियों
से राज्य की व्यवस्था के विषय में प्रश्न किया करते थे, और उन
सब को इस विषय में जवाब देना पड़ता था। यही नहीं, किन्तु
राजधर्म के नियमों का भंग करने से वे महर्षि, मौके पर, राजाओं
को दण्ड भी दिया करते थे। इस प्रकार स्वयं राजाओं और उनके
अधिकारियों का नियमन करने के लिए वे ऋषि ही प्रजा के प्रति-
निधि होते थे। मतलब यह है कि प्रजासत्ताक शासनप्रणाली में
जो एक प्रकार के विशिष्ट सिद्धान्तों का उत्कर्ष होना है वह एक
भिन्न प्रकार से ही सिद्ध किया जाता था। इसके अतिरिक्त ग्राम-
पंचायतों के समान ... लोकसत्ताक संस्थाएं सर्वत्र प्रचलित थीं।
इन सब बातों को देखते हुए यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि
प्राचीन काल में भारत के लोगों को लोकायत्त सत्ता का पूर्ण
परिचय था।

मि० मांटेग्यू और स्वराज्य।

(लेखक—श्रीयुत दामोदर विश्वनाथ गोखले, बी० ए०, एल० एल० बी०, सहायक मंत्री स्वराज्यसंघ, पूना सिटी।)

The day is come
But where is India ?
....
The temple-hall is full of pilgrims
But where is India ?

रवींद्रनाथ ठाकुर।

भारत के नवीन स्टेट स्टेटसेक्रेटरी सन्माननीय मि० ई० एस० मांटेग्यू ने ब्रिटिश साम्राज्य सरकार की ओर से पार्लिमेंट में यह आघोषित किया है कि, "भारतीय लोगों को राज्यकार्य के भिन्न भिन्न विभागों में अधिकाधिक उत्तरदायित्व के पद देने चाहिएं; और भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण भाग समझ कर वहां ऐसी राज्यपद्धति प्रत्यक्ष अमल में लाई जाय कि जो भारतीय लोगों के समक्ष उत्तरदायी हो; और इस हेतु से सम्राट तथा उनके मंत्रिमंडल का यह उद्देश्य है कि वहां धीरे धीरे स्वायस-सत्ताक संस्थाएं उत्पन्न की जावें।' जिस समय भारतमंत्री ने अपनी यह आघोषणा पार्लिमेंट में आघोषित की उसी समय स्वयं भारत में वाइसराय साहब ने भी यह कहा कि भारतीय लोगों को राज्यकार्य में अधिकाधिक भाग देना भारतीय सरकार का भी उद्देश्य है। चूंकि उत्तरदायी अधिकारियों की ओर से उपर्युक्त वचन दिये गये हैं, इस लिए, भारत के राजकीय वायुमंडल में जो क्षुब्धता उत्पन्न हुई थी वह अब निस्सन्देह कुछ शान्त होगई है। इसके अतिरिक्त साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि यह निश्चित करने के लिए कि, उपर्युक्त घोषणा अमल में कैसे लाई जावे, तथा प्रस्तुत विषय में भारतसरकार तथा भारतीय जनता की सम्मति जानने के लिए, स्वयं मांटेग्यू साहब भी आ रहे हैं, इस कारण वर्तमान समय में अत्यन्त उत्कट आशा का साम्राज्य चारों ओर फैला हुआ दिखाई दे रहा है। सच पूछिये तो राजनीति में उत्कट आशा और उत्कट निराशा—दोनों ही परिणाम में सत्य नहीं निकलतीं। राजनीति का विधान ही ऐसा है कि जो स्वार्थ की नींव पर खड़ा हुआ है। और खास कर जब कि एक राष्ट्र पर दूसरा राष्ट्र शासन करता है तब तो उनके व्यवहार में शुद्ध नात्विक बातों और तत्वज्ञान का बहुत ही थोड़ा उपयोग होता है। एक राष्ट्र की आवश्यकताओं तथा अड़चनों और दूसरे राष्ट्र के जोश और महत्वाकांक्षा में खींचातानी शुरू होती है; और अन्त में दोनों राष्ट्रों की बुद्धि ठिकाने आ जाने पर राजकीय उन्नति करनी ही पड़ती है। इस दृष्टि से विचार करते हुए, यह अनुमान लगाने के पहले, कि मि० मांटेग्यू स्वयं यहां आ कर भिन्न भिन्न लोगों से मिल कर अन्त में भारतीय लोगों को क्या अधिकार प्रदान करेंगे, स्पष्ट तौर पर अपने मन में अपनी ही स्थिति का विचार करना चाहिए; और मुख्य मुख्य बातें अपने सामने रख कर और फिर अपनी राजनैतिक मांगें पेश करना चाहिए, ऐसा करने में धोखा नहीं होगा।

सन्माननीय मि० ई० एस० मांटेग्यू।
(नवीन भारतमंत्री।)

यही सब बातें सोच कर मुख्य मुख्य वर्तमान राजनैतिक सिद्धान्तों और स्थूल घटनाओं का सिंहावलोकन करना अत्यन्त आवश्यक पड़ता है।

भारत देश को कौनसा रोग हुआ है, इसका निदान भारतीय नेताओं ने पहले ही किया है। २५ वर्ष पहले ही स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले ने विलायत में वेलबी कमीशन के सामने साक्षी देते हुए जो वचन कहे थे वे सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कहा था:—"वर्तमान राज्यपद्धति से जो बड़ी हानियां हुई हैं उनमें मानसिक और नैतिक हानि सब से बड़ी हानि है। इस राज्यपद्धति से सारा भारतीय राष्ट्र खस्सी किया जा रहा है। जीवन का सारा समय हमें हीन दशा में काटना पड़ता है; और प्रचलित राज्यप्रणाली में हमारा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, इस लिए, जो मनुष्य हम में से गुणों में श्रेष्ठ है उसे भी अपनी गर्दन नीची करनी पड़ती है। इँगलैंड में ईटन, हेरो, इत्यादि के प्रत्येक बालक को जो यह एक प्रकार की महत्वाकांक्षा रहती है कि हम ग्लेडस्टन, नेलसन, वेलिंगटन होंगे और जिस महत्वाकांक्षा के कारण ही वह अपनी उन्नति के लिए अटूट प्रयत्न करते रहता है वही महत्वाकांक्षा रखने का अवसर हमारे किसी बालक को भी नहीं मिलता। वर्तमान शासनप्रणाली के कारण ही राजकीय वायुमण्डल में हम उतने ऊँचे नहीं उड़ सकते जितने ऊंचे उड़ने की हम में सामर्थ्य मौजूद है। स्वराज्य में रहनेवाले प्रत्येक नागरिक को जो एक प्रकार का गौरव मालूम होते रहता है वह हमें नहीं होता। हमारी स्वाभाविक राजनीतिज्ञता और हमारा क्षात्रतेज धीरे धीरे नष्ट हो रहा है; और यह साफ तौर से दिखलाई देता है कि अन्त में हम अपने राष्ट्र में केवल लकड़हारे और पनहारे ही रह जायँगे।" सन् १९०५ में राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष की हैसियत से माननीय गोखले ने अपने भाषण में उपर्युक्त परिस्थिति का ही दूसरे शब्दों में वर्णन किया था। "दो राष्ट्रों की बुद्धिमत्ता और गुणों में जब बहुत सा अन्तर नहीं होता है तब जित राष्ट्र का हजारों तरह से नुकसान होता है। पहले, अपनी बुद्धिमत्ता के ज़ोर पर बड़े बड़े कार्य करने की उसकी ... शक्ति नष्ट हो जाती है; और ... को प्राप्त हो जाता है। आज ... से करोड़ों रुपये प्राप्त कर के ... वहीं कर रहे हैं। गत चालीस वर्ष में कोई १५ अरब रुपये भारत से ... चले गये। १८८२-१८८४ में प्रति सहस्र २४ आदमी मरते थे। १८९२-९३ में प्रति सहस्र तीस और आज (१९०५ में) प्रति हजार ३४ मरते हैं। क्या इससे भारतवर्ष की दरिद्रता सिद्ध नहीं होती?" माननीय भूपेन्द्रनाथ बसु अब सेक्रेटरी आफ स्टेट की कौंसिल में आ गये हैं; और अब वे जब मांटेग्यू साहब के घुटने में घुटने भिड़ा कर बैठेंगे, और भारत के राजकीय सुधारों का विचार करेंगे, तब वे स्वयं ही ... निश्चित की हुई भारत की आकांक्षाओं को किस प्रकार ... १९१४ में राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष के नाते से जो भाषण ... किया उसमें वे कहते हैं:—"भारतवर्ष की उच्च

[illegible] मालूम हो रही है, भारत की उपयोगिता [illegible] को एक विशेष स्थान मिलना आवश्यक है। [illegible] है कि भारत की शासनप्रणाली भारत के [illegible] और उसकी बुद्धिमत्ता के लिए उचित जान पड़े। ... [illegible] यह इच्छा है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों [illegible] को जो हक़ हासिल है—जो अधिकार प्राप्त है वही [illegible] हक़ हमको मिलने चाहिएं ... और अन्त में, [illegible] यही है कि, भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत पूर्ण [illegible] हो।" बम्बई सरकार की कौंसिल के सभासद माननीय [illegible] ने यही कहा है—" भारत के लोगों की पराधीनता की धार [illegible] अवश्य होनी चाहिए और साम्राज्य में भारतीय [illegible] बराबरी के नागरिकत्व की भावना होना आव[illegible]" सम्पूर्ण भारतीय नेताओं ने समय समय पर इस प्रकार के [illegible] हैं। हमारे इस कथन में कुछ भी अनुचित नहीं [illegible] के विख्यातनाम तीन राजनीतिज्ञों के जो वचन ऊपर [illegible] उन्हीं में भारत के रोग की पूर्ण चिकित्सा मौजूद है। [illegible] है कि भारतवर्ष का प्रश्न इन चार बातों से पेश किया जा [illegible]—(१) भारत की बढ़ती हुई दरिद्रता, (२) भारत में पौरुष [illegible] ह्रास, (३) भारतीय राज्यकार्य से भारतीयों का अलगाव और [illegible] अपमान, जो भारतीयों को देश, विदेश, सब जगह [illegible] पड़ता है।

सम्पूर्ण राजनैतिक वैद्यों ने इस रोग का एक ही रामबाण उपाय बत[illegible] है और वह यही है कि यहाँ ऐसी राज्यपद्धति जारी की जाय [illegible] भारतीय लोगों को पूर्ण रूप से उत्तरदायी हो—अर्थात् भारत [illegible] पूर्ण स्वराज्य दिया जावे। इसके अतिरिक्त यदि भारतीय लोगों [illegible] राजनैतिक आन्दोलन का इतिहास देखा जाय तो भी यही बात [illegible] होती है, और आगे मि० मांटेग्यू जो नवीन सुधार अमल में लाने [illegible] हैं उनकी परीक्षा भी इसी से होगी कि उपर्युक्त चारों बातें किस [illegible] में नष्ट हुईं :

[illegible] राज्य के साथ जो अंगरेज़ी नवीन विचार यहाँ आये उनमें [illegible] का ख़ास तौर पर उल्लेख करना [illegible] और उस शास्त्र में भी, प्रायः सब योरोपीय और अमरीकन [illegible] पंडितों के मत से लोकसत्ताक राज्यपद्धति ही सर्व[illegible] गई है। यह लोकायत्त सत्तावाद योरप में भी डेढ़ शतक [illegible] प्रचलित हुआ और तब से इसकी बराबर ख़ूब उन्नति हो [illegible] है, और आज बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो भयंकर लोकक्षय [illegible] है उसका भी उद्देश्य यही है कि उपर्युक्त लोकायत्त सत्ता [illegible] संसार में स्थापित की जावे-यह बात युद्ध में लगे हुए सब राष्ट्र [illegible] चिल्ला रहे हैं। फ्रांस में जो पहली राज्यक्रान्ति हुई उसका [illegible] कारण यही था कि उपर्युक्त लोकसत्ताक राज्यपद्धति जारी [illegible], और फिर उसकी लहरें अमेरिका में पहुँचीं तथा वहाँ उक्त [illegible] प्रचलित भी हो गई। और आज डेढ़ शताब्दी से इसी [illegible] का न्यूनाधिक परिमाण से सर्वत्र विजय हो रहा है। अमे[illegible] की संयुक्त रियासतें, फ्रांस, स्विटज़रलेंड, इत्यादि प्राचीन काल के [illegible] और गत दस पांच वर्ष से लोकसत्ताक शासनप्रणाली को जारी [illegible] चीन, पुर्तगाल, रूस, इत्यादि राष्ट्र अथवा इंगलैंड, जापान, [illegible], इत्यादि नाममात्र के राजसत्ताक, परन्तु वास्तव में लोक[illegible] राष्ट्र-सभी खुल्लमखुल्ला प्रजासत्ताक राज्य का ही पुरस्कार [illegible] रहे हैं, और संसार में ऐसा एक भी राष्ट्र नहीं है कि जो उपर्युक्त [illegible] का खुल्लमखुल्ला विरोध कर सकता हो। सारांश यह है कि यदि [illegible] यह प्रश्न करे कि वास्तव में कौनसी शासनप्रणाली अमल में लानी [illegible], तो इसके उत्तर में निस्सन्देह यही कहना पड़ेगा कि सचमुच [illegible] राज्यपद्धति ही राजकीय उत्क्रान्ति या विकास का सर्वोच्च [illegible] है।

[illegible], अब हम इस बात का स्पष्टीकरण करते हैं कि उपर्युक्त लोक[illegible] राज्यपद्धति है क्या चीज़-तो हमें यही मालूम होता है कि इस [illegible] में सब राजकीय सत्ता पूर्णतया लोगों के हाथ में रहती है। प्रत्यक्ष [illegible] लोग भी प्रजा में से ही, उसी के चुने हुए और उसी के [illegible] चलनेवाले होते हैं। इस राज्यपद्धति में राज्यकर्ताओं तथा [illegible] का कोई अलग झगड़ा शेष नहीं रहता। योग्यता के [illegible] सब के लिए राज्ययंत्र में स्थान रहता है; और जिसके अन्दर [illegible] होती है, अथवा योग्यता होती है वह राज्य की सब से श्रेष्ठ पदवी तक पा सकता है। किसी की भी महत्वाकांक्षा के लिए कहीं भी रुकावट नहीं है; और इस प्रकार का प्रतिबन्ध कहीं भी नहीं है कि अमुक पद अमुक के लिए ही सुरक्षित रख छोड़े गये हैं, अथवा सब से श्रेष्ठ श्रेणी के पद अमुक लोगों को ही ग्रहण करना चाहिए। मतलब यह कि वरिष्ठ अथवा कनिष्ठ का भेदभाव वहाँ रहता ही नहीं। ऐसी लोकसत्ताक पद्धति का व्यावहारिक स्वरूप, अर्थात् प्रत्यक्ष राजदण्ड जिनके हाथ में रहता है वे लोग, अथवा राज्यकर्त्ता लोग, प्रजा यानी लोकप्रतिनिधियों के बनाये हुए कानून से नियंत्रित रहते हैं। अपने राज्यकार्य के लिए वे प्रजा अथवा प्रजा के प्रतिनिधियों के सामने उत्तरदायी रहते हैं; और उनके प्रत्येक कार्य पर लोकमत की पसन्दी की छाप की आवश्यकता होती है। मतलब यह कि कानून बनाने का अधिकार प्रजा के ही हाथ में रहता है; और उस कानून को अमल में लाने के लिए नियुक्त किये हुए प्रत्यक्ष कार्यकारी अधिकारियों का काम, उसके अमल करनेवाले नौकर का रहता है। ऐसी शासनप्रणाली में कोई भी ज़ुल्मी कानून बन नहीं सकता, और यदि बना भी तो चूंकि वह अपना ही बनाया हुआ होता है; इस लिए प्रजा को उसके लिए कोई खेद नहीं होता। इस लोकायत्त या प्रजासत्ताक शासनप्रणाली में 'राजद्रोह' का शब्द ही नहीं रहता—हां, 'देशद्रोह' हो सकता है। बस, इसी शासनप्रणाली को, जो कि उपर्युक्त प्रकार से प्रजा के सामने उत्तरदायी रहती है, पूर्ण स्वराज्य कहते हैं। निधि अथवा कर की यदि आवश्यकता हो तो प्रतिनिधि और उसकी सत्ता स्वीकार करनी चाहिए-बस, यही तत्व इस प्रणाली की आत्मा समझिये। स्वयं इंगलैंड में भी यही शासनप्रणाली प्रचलित है। और इंगलैंड तथा उसके उपनिवेशों में, इसी सिद्धान्त के ऊपर और इसी नीति के अनुसार, राजकीय संस्थाओं का विकास हो रहा है। सच पूछिये भारतवर्ष जब कि अंगरेज़ी शासन के अन्दर आया तभी उपर्युक्त राज्यप्रणाली यहाँ प्रचलित होनी चाहिए थी—अंगरेज़ी राज्य के साथ ही अंगरेज़ी राजकीय संस्थाएं यहाँ संस्थापित होनी चाहिए थीं। कम से कम उनका उपक्रम तो अवश्य ही होना चाहिए था। परन्तु वास्तव में मांटेग्यू साहब को यह प्रश्न ही ख़ास तौर पर हल करना है कि क्या वास्तव में ऐसी परिस्थिति उपस्थित हुई है? और निस्सन्देह यदि उपर्युक्त शासनप्रणाली प्रचलित करने का प्रारम्भ वे यहाँ करेंगे तो भारत का प्रश्न हल करने का सारा श्रेय उन्हें मिलेगा।

यह भी नहीं है कि उपर्युक्त लोकायत्त राज्यपद्धति भारतीय लोगों के लिए सर्वथैव अपरिचित हो। उपर्युक्त पद्धति का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कानून बनाने की सत्ता पूर्णतया लोगों के हाथ में होनी चाहिए; और कानून का अमल करनेवाला अधिकारीवर्ग उस सत्ता के सामने उत्तरदायी होना चाहिए। उपर्युक्त शासनप्रणाली चाहे वर्तमान स्वरूप में न हो, किन्तु किसी न किसी स्वरूप में वह भारतवर्ष में प्रचलित थी। प्राचीन काल के सब कायदा कानून बनाने का कार्य उन ऋषियों के हाथ में था कि जिन्होंने अपने स्वार्थ को तिलांजलि दे दी थी, जो बिलकुल निष्काम थे; और केवल संसार का उपकार करना ही जिनका एकमात्र व्रत था। और प्रजा अपने प्रतिनिधियों के द्वारा अपने हित के लिए जो कार्य करा लेती है वही कार्य उस समय वे निःस्वार्थी, निष्पक्ष, निस्पृह और सर्वज्ञ महर्षि लोग किया करते थे; और विशेष बात यह थी कि सब राजा और राज्य के अधिकारी अपने अपने राज्यकार्यों के लिए उपर्युक्त महर्षियों के सामने जवाबदेह रहते थे। पौराणिक काल के इतिहास की ओर देखने से हम को स्पष्ट मालूम हो जाता है कि ये ऋषि बारम्बार राज्यों में जा कर राजाओं और उनके अधिकारियों से राज्य की व्यवस्था के विषय में प्रश्न किया करते थे, और उन सब को इस विषय में जवाब देना पड़ता था। यही नहीं, किन्तु राजधर्म के नियमों का भंग करने पर वे महर्षि, मौके पर, राजाओं को दण्ड भी दिया करते थे। इस प्रकार स्वयं राजाओं और उनके अधिकारियों का नियमन करने के लिए वे ऋषि ही प्रजा के प्रतिनिधि होते थे। मतलब यह है कि प्रजासत्ताक शासनप्रणाली में जो एक प्रकार के विशिष्ट सिद्धान्तों का उत्कर्ष होता है वह एक भिन्न प्रकार से ही सिद्ध किया जाता था। इसके अतिरिक्त ग्राम-पंचायतों के समान [illegible] लोकसत्ताक संस्थाएं सर्वत्र प्रचलित थीं। इन सब बातों को देखते हुए यह कहने में कोई [illegible] नहीं है कि प्राचीन काल में भारत के लोगों को लोकसत्ताक राज्य का पूर्ण परिचय था।

भारत में अँगरेजो राज्य के आते ही ग्रामसंस्थाओं के साथ साथ लोकसत्ताक राज्यपद्धति का भी बिलकुल अन्त हो गया। तथापि सन्तोष की बात यह हुई कि सन् १८५८ में राज्यकार्य कम्पनी के हाथ से लेकर वह महारानीसाहब अथवा अँगरेजो पार्लिमेंट के हाथ में दे दिया गया। लेकिन ब्रिटिश पार्लिमेंट का, केवल तत्वतः नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष अधिकार यदि भारतीय राज्यकार्य पर होता तो भी किसी न किसी अंश में, राजकीय दृष्टि से भारत की उन्नति ही हुई होती। किन्तु दुर्भाग्य से वैसा नहीं हुआ। केवल नाम मात्र के लिए पार्लिमेंट सभा के सामने, जिन बिलकुल थोड़े अवसरों पर भारत का प्रश्न आता उस समय पार्लिमेंट के बहुत से सभासद उठ जाते थे; और उठ जाते हैं; तथा जवाबदेह, निस्पृह और स्वातंत्र्यभक्त सभासदों की जगह, केवल उनकी रिक्त बेंचें और कुर्सियां, मूकपन से, भारतीय प्रश्न के विषय में चर्चा करती हुई दिखाई देती हैं। किसी किसी अवसर पर कम्पनी की कार्यवाही पर जब आक्षेप किये जाते थे तब प्रायः पार्लिमेंट भारतीय प्रश्न की ओर कुछ विशेष ध्यान देती थी। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध वक्ता एडमंड बर्क ने जिस समय वॉरन हेस्टिंग्स के शासन पर हमले किये उस समय इस प्रश्न की ओर पार्लिमेंट का ध्यान बहुत था। उपर्युक्त विवेचित उदाहरणों में पार्लिमेंट ने भी अन्याय करके अपने ही जातिभाइयों का पक्ष लिया; परन्तु जांच होने और सब स्याहीसफ़ेदी बाहर आने का केवल एक ही सुअवसर मिला। इसके सिवाय, सन् १८५८ के बाद, अर्थात् जब से भारतवर्ष का राज्यकार्य पूर्णतया पार्लिमेंट के हाथ में गया, एक भी ऐसा अवसर नहीं आया—यही नहीं, बल्कि पार्लिमेंट ने अपनी यह नाममात्र की सत्ता भी उस अधिकारीवर्ग के हाथ में सौंप दी कि जो पार्लिमेंट के ही कानून के अनुसार भारतीय राज्य में शासन कर रहा है। प्रत्यक्ष व्यवहार में जो लापरवाही हुई, अथवा की गई, वही वास्तव में भारतवर्ष में अधिकारीवर्ग का शासन निरंकुश करने में कारणीभूत हुई है; और इस दोष का सारा रूपर पार्लिमेंट के सिर पर ही फोड़ना चाहिए; और इस भूल के प्रायश्चित्त में ही अब आगे से, भारत के अधिकारीवर्ग पर पार्लिमेंट को दूर की सत्ता न रखते हुए ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिससे सारा अधिकारीवर्ग भारतीय लोकमत के सामने जवाबदेह रहे। यह दिखलाने के लिए कि, पार्लिमेंट का अधिकार, बिलकुल नहीं रहा है, एक ही उदाहरण बस होगा। पार्लिमेंट के सभासद मि० हर्बर्ट पॉल ने सन् १८९३ में पार्लिमेंट के सामने यह सूचना पेश की कि सिविल सर्विस की परीक्षा, भारत में भी इंगलैंड की ही तरह एक ही समय में ली जाया करे। यह सूचना पार्लिमेंट में, सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध होते हुए भी, पास हो गई। तथापि भारत के स्टेट सेक्रेटरी और उनकी कौंसिल के पेंशनर सिविल सर्वेंट अधिकारी तथा भारत में प्रत्यक्ष राजकाज करनेवाला अधिकारी वर्ग इत्यादि सब ने यह सूचना पूर्णतया मिट्टी में मिला दी, और लार्ड मिंटो ने १८३३ के कानून के विषय में जिस नीति की मीमांसा की थी वही १८३३ के नाम में [illegible]। १८३३ के कानून की ८७ वीं धारा में स्पष्ट तौर से कहा है कि, " भारतीय मनुष्य को—फिर वह चाहे किसी जाति, धर्म अथवा वर्ण का हो—उसकी जाति, धर्म अथवा वर्ण के कारण, कम्पनी की कार्यवाही में किसी स्थान के लिए भी अयोग्य न समझना चाहिए।" इस कानून में अनेक प्रकार से [illegible] दिया गया। इसके विषय में विलकृम " [illegible] " [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कानून अथवा कानून से संस्थापित संघटना अथवा, जिसे [illegible] कान्स्टिट्यूशन कहते हैं, उसके न होने के कारण, भारतवर्ष में [illegible] कारीवर्ग निरंकुश और सर्वथा बेजवाबदार रीति से राज्यकार्य [illegible] लगा। चारों ओर सम्पूर्ण राज्यकार्य में सिविल सर्विसवाले [illegible] का ही एकछत्री राज्य प्रारम्भ होगया। जिले के असि० कलेक्टर से [illegible] फिर कलेक्टर, कमिश्नर, प्रान्तिक कौंसिल के कार्यकारीमंडल [illegible] सेक्रेटरियट के सेक्रेटरी, वाइसराय की कौंसिल के सभासद [illegible] आफ स्टेट की कौंसिल के पेंशनर सिविल सर्वेंट सभासदों तक सिलसिला लगा है। नीचे से ले कर ऊपर तक चूंकि ये लोग दूसरे का पक्ष लेते रहते हैं, इस लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष के [illegible] में इन की अनियंत्रित सत्ता जारी है; और यह अधिकारीवर्ग [illegible] मानो एक " लोहे से जकड़े हुए लकड़ी के यंत्र " के समान ही हुआ है। इस यंत्र पर किसी का भी वश नहीं; और चूंकि यह एक ही है, इस कारण इसमें भावना भी नहीं है; और [illegible] में अपने को परिवर्तित करने की शक्ति भी नहीं है। इस [illegible] अथवा इस अधिकारीवर्ग को भारतीय लोकमत के सामने [illegible] बनाना ही मांटेग्यू साहब का पहला कर्तव्य है; और यही आज [illegible] वर्ष से भारत की मांग है।

पार्लिमेंट का अधिकार केवल नाममात्र का है, भारत के लोगों [illegible] हाथ में सत्ता बिलकुल है नहीं और इधर अधिकारीवर्ग पूर्ण [illegible] है—ऐसी विकट परिस्थिति के पेच में, भारत के समान संसार की पं[illegible] मांश आबादी-वाला देश आ पड़ा है। भारतीय लोगों की [illegible] यही है कि भारत में आज नहीं तो कल प्रजासत्ताक राज्यप्रणाली जारी हो। इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका के समान स्वतंत्रताप्रेमी [illegible] वर्तमान महायुद्ध में जिन सिद्धान्तों के लिए अपने लड़ने का [illegible] प्रकट कर रहे हैं वे सिद्धान्त यही हैं कि छोटे छोटे राष्ट्रों की [illegible] की रक्षा हो; और संसार में प्रजासत्ताक शासनप्रणाली का प्रसार [illegible] इतना ही नहीं, किन्तु अमेरिका ने आयर्लैंड के प्रश्न को हल कर [illegible] यह स्पष्ट कह दिया था कि जब तक आयर्लैंड को स्वराज्य [illegible] जायगा तब तक हम इंगलैंड को मदद नहीं करेंगे।

अस्तु; अब यह सम्भव नहीं है कि उपर्युक्त प्रकार से [illegible] राज्यपद्धति का पुरस्कार करनेवाले राष्ट्रों के अंगीकार किये सिद्धान्तों का अमल केवल [illegible] की नहर के उसी तरफ हो और [illegible] तरफ उन्हीं सिद्धान्तों का उच्छेद वही राष्ट्र स्वयं देखें। लेकिन [illegible] को स्वराज्य देने का इससे भी अधिक बलवत्तर कारण यही है कि इं[illegible] लैंड का तथा उसके द्वारा सारे साम्राज्य का हित इसी में है।

प्रस्तुत महायुद्ध में इंगलैंड की मनुष्यबल की कमी [illegible] मालूम हो रही है। इंगलैंड और उसके उपनिवेशों की नई भर्ती [illegible] सेना से पूरा नहीं पड़ा है, फ्रांस की भी लगभग यही हालत हुई है। तथापि फ्रांस को इस बात का [illegible] सन्तोष है कि [illegible] [illegible] परिश्रम कर के, जहां तक उससे हो सका है, [illegible] है। फ्रांस यह जानता था कि लोकसंख्या की दृष्टि से जर्मनी [illegible] में अधिक ही रहेगा; और इसी लिए उसने [illegible] [illegible] शिक्षा दे कर सज्ज कर रखा था। लेकिन इंगलैंड ने क्या किया? [illegible] इकतीस करोड़ की आबादी का देश उसके अधिकार में है, [illegible] इस सागर जैसी [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

फौलादी कागज।

(श्रीयुत शिवदत्त वाजपेयी-द्वारा मराठी से अनुवादित।)

फोनोग्राफ अथवा ग्रामोफोन के आविष्कर्त्ता, डाक्टर एडीसन ने अभी हाल में ही एक आश्चर्यजनक आविष्कार किया है। जिसका फल यह होगा कि भविष्य में, अर्थात् थोड़े ही दिन बाद, पुस्तकें निकल (nickel) अथवा फौलाद के पत्तरों पर लिखी और छापी जाया करेंगी। इस आविष्कार का कारण यूरोपीय महायुद्ध नहीं है; किन्तु इसका कारण यह है कि जगत् के वन, जिनसे कागज़ बनाने का मसाला मिलता है, सदा नहीं रहेंगे।

डाक्टर एडीसन ने एक महाशय से बात-चीत करते समय इस आविष्कार के विषय में इस प्रकार कहा है—"बिजली तथा विज्ञान की सहायता से, मैं फौलाद, ताम्बा और निकल के ऐसे पत्तर बना सकता हूँ, कि जो उस स्याही को, जो छापने के काम में आती है, सोख सकें। इन तीनों धातुओं में से मैं निकल को कागज़ की जगह बहुत ही अच्छा समझता हूँ। इस धातु का पत्तर इतना पतला बनाया जा सकता है कि जो मोटाई में एक इंच का भाग सहस्रवाँ ४०,००० भाग होता है और इस कागज़ से कहीं अधिक मज़बूत तथा मुलायम होता है। उक्त महाशय को मि० एडीसन ने एक पुस्तक दिखलायी, जो केवल दो इंच मोटी थी। उस किताब को दिखलाते हुए एडीसन साहब ने कहा कि, यदि इस पुस्तक का कागज़ निकल का बना हुआ हो तो इतनी मोटाई में चालीस हजार पृष्ठ हो सकते हैं; और उसका वजन केवल एक पौंड (आधसेर) होगा। आज कल एक इंच मोटी किताब में अधिक से अधिक ४०० पृष्ठ हो सकते हैं; उन्होंने पुनः यह भी कहा कि निकल का कागज उसी भाँति की स्याही सोख सकता है जिसको आज-कल का कागज़ सोख सकता है। इस लिए स्याही बनाने वाले कारखानों को इस कागज़ के लिए ख़ास तरह की स्याही न बनानी पड़ेगी, निकल के तख्ते प्रत्येक प्रकार की स्याही सोख सकेंगे। इस लिए हर चीज़, जो इस कागज़ पर छप सकती है, उन पर भी छप सकेगी—चाहे वे तस्वीरें हों चाहे और कोई रंग का काम हो।

एडीसन साहब की रसायन-शाला (Laboratary) में धातु का कागज़ तैयार भी किया गया है। यहाँ पांच घर्गफीट कागज़ तैयार करने में डेढ़ मिनट लगता है; और एक दिन में चौथाई टन, अर्थात् साढ़े छ मन कागज़ बन सकता है। इस कागज़ के बड़े २ तख्ते बनाने के लिए, और संसार की बाजारों में भरपूर पहुँचाने के लिए, बड़ी बड़ी कलों की आवश्यकता होगी। इसके बाद मि० एडीसन ने निकल से कागज़ बनाने की रीति बतलाई; और यह भी बतलाया कि इतने पतले पत्तर कैसे बनाये जा सकते हैं। बिजली के ज़ोर से ये तख्ते तैयार होते हैं; अर्थात्, निकल के पत्तरों पर, जो १ इंच मोटे होते हैं, बिजली दौड़ाने से उस पत्तर का बीस-हजारवां भाग जम जाता है, न इससे कम और न अधिक। इसके लिए उन्होंने एक मुख्य नियम बतलाया, और कहा कि इसी की सहायता से यह जम जाता है।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार धातु से जो कागज़ बनाया जायगा, उससे कितना लाभ होगा। पहले तो उस कागज़ पर छपी हुई पुस्तकें बहुत मज़बूत होंगी। आज कल के कागज़ पर जो पुस्तकें छपती हैं वे १०० साल के अन्दर ही अन्दर ख़राब हो जाती हैं। सच पूछिये तो जगत् के हजारों कारखानों में जो लाखों पुस्तकें मौजूद हैं, और जिन पर लाखों रुपया ख़र्च हुआ है, उनको यदि हमेशा के लिए रखना चाहें तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक शताब्दी के अन्त में वे पुस्तकें फिर से छपाई जावें; परन्तु अब यह दिक्कत दूर हो जावेगी। इसके अतिरिक्त आज कल बहुत सी मूल्यवान् पुस्तकें आग में जल कर भस्म हो जाती हैं, परन्तु निकल के कागज़ पर आग की आंच जल्दी असर नहीं पहुँचा सकती, एवं पानी में भी उसके बहुत देर तक पड़े रहने से कुछ हानि नहीं हो सकती। दूसरा लाभ यह है कि इस कागज़ की एक इंच मोटाई में ४००० पृष्ठ हो सकेंगे, अर्थात् दो दो सौ पृष्ठवाली दो सौ पुस्तकें तैयार हो सकेंगी। यही नहीं, किन्तु यह दो सौ पुस्तकें एक इंच मोटाई की एक ही जिल्द में आ सकेंगी। इससे पुस्तकालयों में रखने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता भी न रहेगी। परन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस प्रकार धातु का कागज़ जब तैयार किया जायगा, तब उसकी कीमत प्रति पौन्ड ४ शिलिंग, अर्थात् ३) होगी। मतलब यह है कि निकल का कागज, वर्तमान कागज से कहीं अधिक महँगा बिकेगा। सम्भव है, आगे चल कर वैज्ञानिक लोग इसकी कीमत कम करने की भी तरकीबें निकाल सकें, क्योंकि विज्ञान का महत्व ही ऐसा है कि उसने आज अनेक असाध्य बातों को साध्य कर दिखलाया है।

सम्राट् पञ्चम जॉर्ज।

सम्राट् जार्ज का रेशम का रंगीन चित्र।

पूने के प्रसिद्ध फोटोग्राफर श्रीयुत एम० के० गोखले की धर्मपत्नी श्रीमती यमुनाबाई गोखले ने सम्राट् पञ्चम जार्ज का एक चित्र कई रंग की रेशम से बुन कर तैयार किया है। यह चित्र छाया दृष्टि से इतना उत्तम बना है कि निकट से बड़े गौर के साथ देखे बिना यह नहीं मालूम होता कि यह चित्र ऑइल पेंटिंग है अथवा बुना हुआ है। इस काम के जानकारों ने चित्र की बड़ी प्रशंसा की है। हम श्रीमतीजी के हस्त-कौशल के लिए आपका अभिनन्दन करते हैं। श्रीमतीजी का तथा उनके बुने हुए चित्र का फोटो हम यहां प्रकाशित करते हैं।

श्री० सौ० यमुनाबाई गोखले।

सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य।

(श्रीयुत शिवदत्त वाजपेयी द्वारा "लोकमित्र" से अनुवादित।)

ऐतिहासिक हिंदू सम्राटों में महाराजा चंद्रगुप्त प्रथम सम्राट हैं। वे मगधदेश के राजकुमारों में एक थे। नन्दवंशीय राजाओं के अत्याचार के कारण वे मगध देश छोड कर पंजाब चले गये। उसी समय सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। महाराजा चन्द्रगुप्त भी उसी से जा मिले, और उसकी सेना को सारी युद्धकला सीख ली। ईसवी सन् के ३२३ वर्ष पहिले सिकन्दर का अन्त हुआ। उसके बाद उसके विस्तृत राज्य को बांट लेने के लिए सारे सेनापतियों में युद्ध ठन गया। इस कारण भारतवर्ष में जीते हुए भाग की राज्यव्यवस्था ढीली पड़ गयी। इस मौके पर चंद्रगुप्त ने कुछ सेना एकत्रित कर के पंजाब पर चढाई की; और वहां अपनी सत्ता जमा ली। इसके बाद मगध देश पर भी चढाई कर नंदवंशीय राजा को पदच्युत कर दिया। महाराज चन्द्रगुप्त ई० स० के ३२२ वर्ष पहले सिंहासन पर बैठे।

सिकंदर की मृत्यु के बाद, उसके एक सेनापति सेल्यूकस नेक्टर ने, भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेशों में एक बलवान् राज्य संस्थापित किया। वह राज्य सिरिया के नाम से प्रसिद्ध है। बाबिलोन उस राज्य की राजधानी बनाई गयी। इस पराक्रमी पुरुष ने सिकंदर के जीते हुए राज्य को लौटाने का निश्चय कर के भारतवर्ष पर चढाई की थी। परंतु महाराज चंद्रगुप्त ने उसे कई बार पराभूत किया। अंत में उसे संधि करनी ही पड़ी। उसने संधि में बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान, सीमान्त प्रदेश और ६०० हाथी दिये। इसके अतिरिक्त उसने अपनी बेटी से ब्याह भी कर दिया। उसने मेगस्थनीज़ नामक अपना एक वकील महाराजा चंद्रगुप्त के दर्बार में रखा। यह बहुत समय तक उनके यहाँ रहा। इसने तत्कालीन परिस्थिति के वर्णन की एक पुस्तक लिखी है। उससे हमको सम्राट चंद्रगुप्त का बहुत सा इतिहास ज्ञात होता है। वह पूर्ण पुस्तक अभी तक अनुपलब्ध है। तथापि उसका बहुत सा भाग भिन्न भिन्न ग्रंथकर्त्ताओं ने उद्धृत किया है, इस लिए उस समय का सारा वृत्तांत सुरक्षित है। उसी के आधार पर साम्राट चंद्रगुप्त का इतिहास लिखा गया है।

चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। वह दस मील लंबी और दो मील चौड़ी थी। यह नगर गंगा और सोन के मध्य में है। नगर के चारों ओर से चहारदीवारी बनाई गयी थी। और उसमें ६४ दरवाजे थे और किनारों पर ५७० शिखर थे। चंद्रगुप्त का महल भी अत्यंत अद्भुत, विचित्र और विशाल था। उसके चारों ओर सुन्दर सुन्दर बाग थे, जिनमें जगह जगह जलाशय थे। राजमहल का अधिकतर काम लकड़ी से किया गया था, परंतु वह इतना सुन्दर था कि, उसकी समानता करनेवाली दूसरी इमारत मिलना दुर्लभ था। ईरान में भी वैसी सुन्दर इमारत न थी। उस इमारत का शृंगार भी अप्रतिम किया हुआ था। उस शृंगारकार्य में सुवर्ण और अनेक रत्न लगे हुए थे। राजमहल में जो पर्दे लगे थे वह भी सुवर्णघटित और रत्नजटित थे। चंद्रगुप्त का राज्य बहुत विस्तृत था। वह पूर्व पश्चिम बंगालसमुद्र से अरबसमुद्र तक, और उत्तर दक्षिण हिंदूकुश पर्वत से नर्मदा की तराई तक फैला हुआ था। बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी सरहद्दी सूबा भी उनके ही राज्य में था। अर्थात् दक्षिण हिंदुस्थान का प्रदेश छोड़ कर अखिल भारतवर्ष पर सम्राट चंद्रगुप्त की एकछत्री ध्वजा फहरा रही थी। इस विशाल राज्य के स्थापन-कार्य में चंद्रगुप्त के, चाणक्य नामक एक अद्वितीय राजनीतिज्ञ मंत्री ने अत्यंत बुद्धिकौशल दिखलाया था। वही उस राज्य के स्थापन का प्रधान स्तम्भ था। वह जाति का ब्राह्मण था। और राजनीतिशास्त्र का ज्ञाता उसके समान उस समय कोई नहीं था। उसकी लिखी हुई "चाणक्य नीति" नामक पुस्तक सब जगह बड़े आदर से पढ़ी जाती है। उसका लिखा हुआ एक और ग्रंथ भी अब मिला है। वह अर्थशास्त्र-विषयक है। इस पुस्तक में चंद्रगुप्त की सेना का इस प्रकार वर्णन है कि, उनकी सेना उस समय के सब राजाओं से अधिक थी। उस सेना के चार अंग थे-(१) लड़ाई करनेवाले हाथी; (२) के रथ; (३) सवार; और (४) पैदल। उनमें से हाथी ६००० उनके सवार ३६००० योद्धा थे, घुड़सवार ३००००, पैदल ६०००००, और लड़ाई के रथ ८००० से भी अधिक थे।

सेना की सारी व्यवस्था ६ पंचायतों के अधिकार में थी। चार पंचायतें सेना के चार अंगों पर नियत थीं। पांचवीं, समय आने पर, न्यूनाधिक सामग्री लड़ाई के लिए तैयार करने को तत्पर रहती थी। और छठवीं पंचायत जलसेना का प्रबंध करती थी-इससे ज्ञात होता है कि उस समय जल-सेना और जंगी जहाज भी थे।

राज्य-प्रबंध की शैली इस भांति थी कि पाटलिपुत्र राजधानी में शासन करनेवाली ६ पंचायतें थीं। प्रत्येक पंचायत में ५ सभासद थे और सब का कार्य जुदा जुदा था।

राज्य के अन्य शहरों में भी इसी भांति प्रबंध किया जाता था। यह व्यवस्था बहुत ही सुन्दर और संतोषदायक थी। प्रत्येक गांव में पंचों की सभाएं स्थापित की गयी थीं। और इन्हीं सभाओं में सब बातों को सुनाई होती थी। प्रत्येक प्रांत पर एक २ अधिकारी था और उसका यह काम था कि सब भली-बुरी बातों की इत्तिला उक्त सभाओं को देते रहे। प्रत्येक शहर तथा गांव में मनुष्यों के जन्म-मरण का लेखा रखा जाता था। बाहर से जो लोग आते थे उनके सत्कार के विषय में, तथा उनसे किस भांति बर्ताव किया गया-इस विषय में नियम बनाये गये थे। सम्राट चंद्रगुप्त का अन्य सब राज्यों से बड़ा स्नेह था। इस लिए अन्य देशों के राजदूत हमेशा बिना रोक-टोक आते जाते थे।

मालविभाग की व्यवस्था इस प्रकार थी कि खेत में उत्पन्न होनेवाली जिन्स का चतुर्थांश कररूप से राजा को देना पड़ता था। कृषि के उपयोगार्थ नहरें निकालनेवाला एक विभाग अलग ही था। वह भी पानी का कर वसूल करता था। इन करों के अतिरिक्त व्यापारियों की आमदनी पर तथा बिकाऊ माल पर चुंगी का कर वसूल किया जाता था। यह कर आज-कल भी शहरों में आने जानेवाले माल पर वसूल किया जाता है। इस समय जिस प्रकार जमीन की पैमाइश होती है उसी प्रकार उस समय भी पैमाइश की जाती थी। उस समय फौजदारी के कायदे भी बहुत ज़बरदस्त थे। कारीगर अपराधियों को, हाथ तोड़ने, आंखें फोड़ने और फांसी की सज़ा दी जाती थी। इससे ज्ञात होता है कि उस समय कारीगरी और शिल्पविद्या को बहुत महत्व दिया गया था। और इसी कारण भारतवर्ष की शिल्पविद्या उच्च स्थान पर विराजमान थी। फौजदारी के नियम कठोर होने के कारण सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी। चोरों का डर न था। आबकारी विभाग की भी व्यवस्था उस समय थी; और उसका प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था।

सम्राट चंद्रगुप्त ने इस प्रकार २४ वर्ष राज्य कर के ई० स० के २९८ वर्ष पहले इस संसार को त्याग दिया। उनके बाद उनका वंश "मौर्य-वंश" नाम से ई० स० के १८४ वर्ष पहले तक राज्य करता रहा।

सम्राट चंद्रगुप्त के समय की परिस्थिति का मेगास्थनीज़ ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसका कुछ अंश यहाँ दिया जाता है। उससे पाठकों को उस समय की परिस्थिति का बहुत कुछ अनुमान होगा। मेगास्थनीज़ लिखते हैं:-

"इस समय राज्य-व्यवस्था बहुत उत्तम है। हिंदू लोग मितव्ययी हैं। यहाँ चोरी नहीं होती है। यहाँ के लोगों का चाल-चलन सादा है। इस कारण ये लोग आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। यज्ञ के अवसर छोड़ कर अन्य समय में ये लोग मदिरा पान नहीं करते हैं। यहाँ चावल का उपयोग अधिक है। और यहाँ के लोग उससे नाना प्रकार के पदार्थ बनाते हैं। हिन्दुओं के सादेपन और नीतिमत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि वे न्यायालय तक बहुत ही कम पहुँचते हैं। यह लोग एक दूसरे पर इतना विश्वास रखते हैं कि धरोहरों अथवा

, आदि के मामले बिलकुल नहीं होते। इन लोगों को जान और माल की रक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नहीं करना पडता। यहाँ के लोग सुवर्णयुक्त और रत्नखचित वस्त्र परिधान करते हैं। बेलबूटेदार मलमल के कपडों का भी ये लोग उपयोग करते हैं। इनको सुन्दर पोशाक अधिक पसन्द है। ये लोग सदाचार और सचाई अधिक पसन्द करते हैं। राजा दिन भर राजकीय काम-काज में रत रहता है। कोई भी काम आलस से आज का कल पर नहीं छोडता। मौके पर वह उपाहार आदि दैहिक कर्म भी दरबार में ही कर लेता है। ये लोग ब्याज पर रुपये-पैसे का लेन-देन आदि कुछ नहीं जानते हैं। यहाँ लेनदेन की लिखा पढ़ी नहीं है, जमानत आदि लेना भी प्रचलित नहीं है। एक दूसरे पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। यदि कोई पैसा लेकर फिर न दे तो इस पर कोई उपाय-योजना नहीं है और इस विषय में कोई नियम भी नहीं है—ऐसे अपराधी की निर्भर्त्सना करना—उसको धिक्कारना—यही उसके लिए सज़ा मानी जाती है।

वाई क्षेत्र में लो॰ तिलक का स्वागत-सन्मान।

लोकमान्य तिलक ने पिछले दिनों वाई का [illegible] दौरा किया। उस समय वहाँ के लोगों ने आपका स्वागत सत्कार करके अभिनन्दनपत्र दिया।

वाई के दामोदराश्रम में लो॰ [illegible] का [illegible]।

इस वर्ष का मुहर्रम।

उत्तर हिन्दुस्तान में इस वर्ष हिन्दुओं की रामलीला और मुसलमानों का मुहर्रम एक साथ पड़ा था, इस कारण पहले ही से बहुत अन्देशा था कि इन दोनों जातियों में कहीं बड़े बड़े गहरे झगड़े न हो जाँय। राष्ट्रीय सभा और मुसलिम लीग ने एक स्वर से जब कि स्वराज्य की आकांक्षा प्रकट की है, और भारतमंत्री भी स्वराज्य-दान का निर्णय करने के लिए जब कि यहां आ रहे हैं—ऐसे समय हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य रहना बहुत आवश्यक है। यों तो शिक्षित हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े प्रायः होते ही नहीं रहे हैं। दंगा, झगड़ा-फसाद, इत्यादि अज्ञानता के ही कारण से होते हैं। जो कमीने लोग दंगा करने को उद्यत होते हैं उन पर कोई राष्ट्र का दायित्व नहीं होता—बहुतेरे कमीन वर्गों की शत्रुता का बदला निकालने के लिए ही ऐसे अवसरों की बाट जोहते रहते हैं। ऐसी दशा में यदि रामलीला और मुहर्रम के समान धार्मिक त्योहार एक साथ पड़ जाने से कहीं कुछ दंगा-फ़िसाद हो भी जाये तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि सर्वसाधारण हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य नहीं है। तथापि सन्तोष की बात है कि इस वर्ष, केवल इलाहाबाद को छोड़ कर, और कहीं से भी हिन्दू-मुसलमानों में फ़िसाद की ख़बर सुनने में नहीं आई। और प्रयाग से भी जो समाचार आये हैं उनसे जाना जाता है कि दंगा कमीन लोगों में ही हुआ है, और उसके भी होने का मौका न आता, यदि यहाँ के अधिकारी लोग पूरी प्रबन्ध-दक्षता से काम लेते। कई स्थानों से तो ऐसे समाचार आये हैं कि हिन्दू-मुसलमानों ने परस्पर जलसों में शामिल होकर पूर्ण सहानुभूति और आदरसत्कार [illegible]लाया है। इधर दक्षिण की ओर तो रामलीला होती ही नहीं; झगड़े की कोई सम्भावना ही नहीं थी। दूसरे, इस तरफ हिन्दू-मुसलमानों में उत्तर भारत के समान अनर्थकारी भेदभाव भी नहीं। यहां के मुसलमान भाई मराठी भाषा का व्यवहार करते और हिन्दुओं की सी ही पोशाक पहनते और परस्पर बहुत मेल से हैं। उत्तरभारत की सी कट्टरता इधर के मुसलमानों में नहीं है, अवश्य ही महाराष्ट्र की ऐतिहासिकता ही इसका कारण है। हाँ, इस वर्ष पूने का मुहर्रम बहुत ही दर्शनीय रहा। क्योंकि यहां मुसलमान सज्जनों के निमंत्रण से स्वयं लोकमान्य तिलक, हरिभक्ति-परायण विष्णुबोवा जोग, [illegible] शास्त्री, श्रीयुत [illegible] जी भी मुहर्रम के जलूस में सम्मिलित हुए थे। सर्वसाधारण हिन्दू लोग तो मुहर्रम में प्रति वर्ष भाग लेते ही रहे हैं, किन्तु इस वर्ष हिन्दुओं के नेताओं के सम्मिलित होने से मुसलमान भाइयों में बड़ी प्रसन्नता रही। जिस समय जलूस के अन्दर मुसलमान भाइयों ने हमारे लोकमान्य प्रभृति नेताओं का स्वागत किया उस समय तालियों की आवाज़ से आकाश गूंज उठा, और सब को बड़ा आनन्द हुआ। सारे भारत में यदि इसी प्रकार हिन्दू-मुसलमानों में मेल के प्रमाण होने लगें तो स्वतन्त्रता की बहुत कुछ सम्भावना हो सकती है।

पूने में मुहर्रम का ताज़िया—लोकमान्यप्रभृति हिन्दू नेता आगे हैं, मुसलमान बन्धु स्वागत कर रहे हैं!

महायुद्ध के चौथे वर्ष का अक्टूबर मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर बी० ए० ।)

सितम्बर महीने की तरह अक्टूबर मास भी रूस के विषय में चिन्ता का व्यतीत हुआ; और उस चिन्ता में इटली-विषयक दुःखदायक वार्ता की विशेषता हो गई। इटली की पूर्वरणभूमि की ओर की इसांजो नदी और उस नदी के तीर के पहाड़ी प्रदेश को भी लांघ कर वीनिस के मैदान में आस्ट्रो-जर्मन सेना घुसी। अब जानकार लोगों की यह सम्मति प्रकाशित हुई है कि नवम्बर मास में सारा वीनिस प्रान्त व्याप्त किये बिना आस्ट्रोजर्मन सेना कदापि नहीं रहेगी। इटली के इस पराभव के कारण, अब चाहे अगले वर्ष के वसन्तकाल में अमेरिका की दस पांच लाख सेना फ्रांस की रणभूमि में उतरे, तो भी जर्मन सेना का पूरा पूरा नाश होना सम्भव नहीं है। वीनिस प्रान्त यदि सचमुच आस्ट्रोजर्मनों के हाथ लग गया तो जो विजय १९१८ के साल में मिलनेवाला है वह सन् १९१९ के वसन्तकाल के बाद की लड़ाइयों पर अवलम्बित रखना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं। इटली का यह अक्टूबर मास का पराभव सैनिक नीति की दृष्टि से बड़े महत्व का है; और महायुद्ध के दोनों पक्षों की सैनिक स्थिति पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। गत वर्ष इन्हीं दिनों में जिस प्रकार रोमानिया का पराभव हुआ, यह इटली का पराभव भी उसी प्रकार का है। सैनिक नीति की दृष्टि से पूर्व रणभूमि में रोमानिया के बुखारेस्ट के मैदान को जो महत्व प्राप्त था वही महत्व आज पश्चिम रणभूमि में वीनिस के मैदान को प्राप्त है। रोमानिया का मैदान जाने से पूर्वरणभूमि सैनिक दृष्टि से कमज़ोर पड़ गई; और इस कमज़ोरी का बड़ा विचित्र प्रभाव रूस की राजकीय परिस्थिति पर हुआ, जिस कारण कि रूस में राज्यक्रांति हो गई। वीनिस का मैदान यदि आस्ट्रोजर्मनों के हाथ में चला गया तो इस बदली हुई सैनिक स्थिति का अनिष्ट प्रभाव इटली और फ्रांस के राजकीय वायुमंडल पर भी हुए बिना नहीं रहेगा। हां एक दूसरा बड़ा अन्तर इन दोनों स्थितियों में यह है कि चूंकि पश्चिम रणभूमि को इंगलैंड और अमेरिका के समान दो बलाढ्य राष्ट्रों की प्रत्यक्ष सहायता है, इस कारण रूस के राजकीय वायुमण्डल की भांति कदाचित् पश्चिम रणभूमि का राजकीय वायुमण्डल उतना नहीं बिगड़ेगा। इंगलैंड इस समय अपनी सैनिक शक्ति की भरी जवानी में है, और अमेरिका ने तो अभी तक अपनी सैनिक शक्ति का उपयोग भी नहीं किया। ऐसी दशा में इटली और फ्रांस, दोनों देशों के पैर यदि कुछ लड़खड़ाने भी लगेंगे तो, [illegible] पैरों में फिसलना न होने पावे, उनको सहारा देने के लिए अकेला इंगलैंड समर्थ है। इंगलैंड इटली की सहायता, और आगे वर्ष के वसन्तकाल में अमेरिका की जो सहायता आवेगी वह इटली के इस पराभव को मिटा देने के लिए काफी होगी। हां, यह अवश्य है कि जर्मनी को पराभूत करने का विचार अब सन् १९१९ के साल पर टालना पड़ेगा। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि अन्य कारणों से यदि इस बीच में सन्धि न हुई तो फिर, इटली के इस पराभव के कारण, अब यह महायुद्ध दो वर्ष और आगे जायगा। ग्रीस के प्रधानमंत्री एम० वेनीजलास नवम्बर के प्रारम्भ में रोम गये थे, सो उन्होंने भी उपर्युक्त प्रकार के ही वचन कहे हैं! उन्होंने यह भविष्यवाणी कही है कि चाहे और किसी की भी सहायता न हो, तो भी इँगलैंड और अमेरिका की जोड़ी इस महायुद्ध में अन्तिम विजय सम्पादन करने के लिए समर्थ है, और यही उनका दृढ़ संकल्प भी है, तथापि, ऐसी दशा में, इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है, कि महायुद्ध की समाप्ति का समय और भी बहुत आगे बढ़ता जायगा। एक मास पूर्व जानकारों ने यह अनुमान लगाया था कि सन् १९१८ के वसन्तकाल में जब कि अमेरिका की सहायता आ पहुँचेगी तब जर्मनी के भारी पराभव का प्रारम्भ होगा—यह अनुमान इस शीतकाल के प्रारम्भ में बिलकुल ठिठुर गया! यह स्थित्यन्तर इटली के पराभव के कारण दिखलाई पड़ा। अस्तु। सेनापति मेकेन्सन ने अक्टूबर के अन्त में अचानक इटली पर जो विलक्षण जय सम्पादन किया उसका वृत्तान्त पाठकों के सामने रखने के पहले रूस और फ्रांस की रणभूमि की ओर कुछ थोड़ा बहुत चक्कर लगा लेना आवश्यक है।

अक्टूबर मास के दूसरे सप्ताह में जानकार लोगों में इस विषय में बड़ी चर्चा शुरू हुई थी कि रूस की ओर जर्मनी कैसी क्या हलचल करता है, सो देखना चाहिए। इसका कारण यह था कि रीगा की खाड़ी के सिरे पर जो एक टापू था उस पर जर्मन जलसेना ने एकाएक हमला करके अपनी सेना उतार दी थी। सितम्बर के महीने में रीगा बन्दर लिया गया, इसके बाद रीगा के मैदान में पचास साठ मील आगे सरकने में एक महीना हो गया, तब रीगा की खाड़ी में जर्मन जलसेना ने यह हलचल की। पेट्रोग्राड पर धावा करने का यदि जर्मनी का विचार होता तो जिस समय रीगा बन्दर लिया गया उसी समय समुद्री सेना की हलचल शुरू हुई होती। पर ऐसा नहीं हुआ। [illegible]

अधिकार में चले गये ।
जानेवाले समुद्री मार्ग जर्मनी के अधिकार में चले गये ।
की खाड़ी का समुद्र दिसम्बर के प्रारम्भ से जमने लगता
दिसम्बर के अन्त में रीगा की खाड़ी भी बर्फमय हो
। अतएव फिनलैंड की खाड़ी में नवम्बर मास में जर्मनी
जलसैनिक हलचल होने का मौका है। अक्टूबर मास में रीगा
पर के टापू लेते समय जर्मन और रूसी जलसेना में लड़ाई
चूंकि रूस की जलसेना के सामने जर्मनी की जलसेना बहुत
ालेती है, इस लिए उक्त लड़ाई में रूस के आधे से अधिक
डूब गये । लेकिन शेष जहाज बड़े चातुर्य से फिनलैंड की
से निकल गये। जर्मनी को यह जलसैनिक विजय प्राप्त हुए
ग्नवाड़ा हो गया, तथापि फिनलैंड की खाड़ी में जर्मनी ने
भी हलचल नहीं की। यही नहीं, किन्तु रीगा की ओर डूवीना
पार करके जर्मनी की जो सेना आगे बढ़ गई थी उसे उसने
ना नदी पर फिर से पीछे हटा लिया, और रीगा तथा फिन-
की खाड़ियों को मिलानेवाली खाड़ी में मून टापू के सामने रूस
भूमि पर उतारी हुई सेना भी जर्मनी ने लौटा ली । मतलब यह
रूस की ओर स्वयं ही जर्मनी पीछे हट आया । लेकिन उसका
पीछे हटना कब हुआ? इटली की ओर की सैनिक नीति
पूर्णतया प्रकट हुई तब। इस प्रकार पीछे हटना मानों यह प्रकट
ना ही है कि अब हमने पेट्रोग्राड पर चढ़ाई करने का विचार छोड़
या। रीगा का बन्दर जब से जर्मनी ने लिया था तब से प्रायः ऐसा
खाई दे रहा था कि जैसे जर्मनी पेट्रोग्राड पर चढ़ाई करने के लिए
किसी बड़े उद्योग में लगा हो। सच्ची नज़र इटली पर लगी हुई थी
और बड़े खटाटोप का बाहरी दिखावा पेट्रोग्राड की ओर था। जब
क इसांज़ो नदी का इटली का दल नहीं टूट चुका तब तक बाहरी
दिखावा प्रायः यही दिखाया जा रहा था कि जैसे जर्मनी पेट्रोग्राड की
चढ़ाई में ही लगा हुआ हो। पेट्रोग्राड की अपेक्षा इटली की ओर
जर्मनी का अधिक ध्यान क्यों होना चाहिए? पेट्रोग्राड की चढ़ाई का
सौंग दिखलाकर और सच्ची तैयारी इटली की चढ़ाई के लिए करके
जर्मनी ने कौनसा काम बनाया? इटली के वोनिस बन्दर से पेट्रोग्राड
का महत्व क्या कुछ कम है? इन प्रश्नों का ठीक ठीक खुलासा करने के
लिए आस्ट्रोजर्मनों की राजकीय स्थिति का विचार करना चाहिए।
रूस की राज्यक्रान्ति से सोशियालिस्ट मतों का प्रभाव सारे यूरप पर
पड़ रहा है। आस्ट्रोजर्मन राज्यकर्त्ताओं की इच्छा इन मतों को नष्ट
कर देने की है। आस्ट्रोजर्मनों का पूरा पूरा पराभव जब इस महायुद्ध
में होगा, तभी रूस के सोशियालिस्ट पक्ष का विजय सारे यूरप में
फैलेगा। आस्ट्रोजर्मन यदि विजयी होंगे तो सोशियालिस्ट पक्ष की
कला उतरने लगेगी। विजयी होने की आशा अब आस्ट्रोजर्मनों को
नहीं रही। क्योंकि वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि अमेरिका के
मुकाबले, यदि एक वर्ष में नहीं, तो कम से कम आगे के दो तीन वर्ष में
तो अवश्यही हार खानी पड़ेगी। ऐसी दशा में आस्ट्रोजर्मन राजनीतिज्ञ-
मंडल इस उद्योग में लगा है कि हमारा विजय चाहे न हो, तोभी कम
से कम यह सिद्ध करके, कि हमारा पराभव नहीं हुआ, सन्धि कर
ली जावे। रूस इस प्रकार की सन्धि के बिलकुल विरुद्ध नहीं है।
यही नहीं, किन्तु सब को मिल कर यदि सन्धि होती होगी तो रूस
कुछ हानि सहकर भी, सन्धि करने को तैयार हो जायगा। रूस का
कुछ यह हठ नहीं है कि जर्मनी का जब तक पूर्ण पराभव न हो जाय
तब तक सन्धि ही न की जाय। यह हठ इटली, फ्रांस, इंगलैंड और
अमेरिका का है। इन में भी इंगलैंड का हठ विशेष है।
फ्रांस और इटली को आल्साक्ष्लॉरेस और ट्रिस्टी प्रान्तों की आवश्य-
श्यकता है, लेकिन चूंकि रूस के सोशियालिस्ट मतों का धक्का उनको
धीरे धीरे मालूम होने लगा है, इस लिए इँगलैंड के हठ के पहले
उनका हठ गल जाने योग्य है। ऐसी दशा में यदि जर्मनी यह सिद्ध
कर के सन्धि करना चाहता है कि खैर, हम विजयी नहीं हुए तो न
सही, लेकिन पराभूत भी तो नहीं हुए, तो इटली अथवा फ्रांस, इन
दो में से एक को तो अवश्य लँगड़ा करना चाहिए। गत सात आठ
महीने से फ्रांस इतनी बहादुरी के साथ लड़ रहा है कि जर्मनी ने यह
अच्छी तरह समझ लिया है कि फ्रांस पर विजय सम्पादन कर के
ंस को लँगड़ा करना कदापि सम्भव नहीं है। इधर इँगलैंड की सेना
अपने बलातिशय के कारण विजयश्री से अब नटने लगी है। इस
लिए इंगलैंड के सामने कुछ कर दिखलाने की जर्मनी कल्पना भी नहीं कर
।इँगलैंड पर जर्मनी ने पनडुब्बी नौकाएं छोड़ी हैं, जर्मनी पर अँगरेजों

का समाचार लेने की महत्वाकांक्षा जर्मनी ने धारण नहीं की। ऐसी दशा में
रहते रहते कुचल रह जाता है बिचारा इटली। गत वर्ष ट्रेंटीनो प्रान्त से
आस्ट्रिया ने इटली में घोनिस के मैदान पर उतरने का प्रयत्न किया था। पर
उसमें आस्ट्रिया को सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस वर्ष अगस्त-सितम्बर
में इटली ने इसांज़ो के मैदान में आस्ट्रिया को बहुत पीछे हटाया। और
कार्सो का मैदान पार कर के इटली ने ट्रिस्टी को अधिकृत करना
चाहा। गत दो वर्ष में इटली ने आस्ट्रिया को खूब पीटा, इसमें सन्देह
नहीं, लेकिन जर्मनी की दृष्टि अभी तक इटली की ओर गई ही नहीं
थी। इटली इस समय इस घमंड में था कि हम विजयी हुए हैं; और
शीतकाल के प्रारम्भ में आस्ट्रिया हमारी ओर काहे को आता है।
और यह अभिमान होना इटली के लिए स्वाभाविक था। क्योंकि
अगस्त सितम्बर में इटली ने आस्ट्रिया पर विजय ही ऐसे प्राप्त किये
थे। इस अभिमान के कारण शीतकाल के युद्ध की ओर दुर्लक्ष कर
के इटली अन्तस्थ कलह का विशेष विचार कर रहा था। यह अन्तस्थ
कलह इटली के सोशियालिस्ट पक्ष ने उत्पन्न किया था। रूस के
सोशियालिस्टों में जिस प्रकार ऐसा एक पंथ है कि जो कहता है कि
शीघ्र सन्धि करो उसी प्रकार इटली में भी खुल्लमखुल्ला यह प्रतिपादन
करनेवाला एक पक्ष है कि इस शीतकाल में सन्धि होनी ही चाहिए।
इस पक्ष में बहुत से प्रभावशाली नेता हैं, और इस पक्ष ने वहां के
मज़दूरों तथा सर्वसाधारण सैनिकों के मन कलुषित कर दिये हैं।
इटली जिस समय महायुद्ध में शामिल हुआ उस समय वहां के सब
पक्ष युद्ध के अनुकूल थे; पर चूंकि युद्ध अनुमान से अधिक बढ़ गया,
इस कारण सोशियालिस्ट पक्ष उकता गया। और इधर रूस के सोशि-
यालिस्टों के नवीन मतों ने भी उसे पछाड़ा। इस अवसर पर जर्मन
गुप्तचरों ने इटली के उच्च श्रेणीवालों की निन्दा करने का कार्य बड़े वेग
से जारी किया। इन जर्मन गुप्तचरों ने इस मौके पर मज़दूरों के मन
पर यह बात पूर्णतया जमा दी कि इँगलैंड और अमेरिका के बड़े पेट
वाले करोड़पतियों के लाभ के लिए यह युद्ध आगे बढ़ा दिया गया है,
सर्वसाधारण जनसमूह का इससे कुछ भी लाभ नहीं है। उपर्युक्त
प्रकार के मत सोशियालिस्ट पक्षों के नेताओं ने खुल्लमखुल्ला अंगीकार
किये; और उनके प्रचार करने का खूब उद्योग प्रारम्भ किया। इस
पर इटालियन पार्लिमेंट में इस विषय पर खूब वादविवाद हुआ कि
सोशियालिस्टों की यह हलचल देशद्रोही और राजद्रोही है; और
इन लोगों पर मुकदमे चला कर इस हलचल को नष्ट कर देना
चाहिए। इसके सिवाय इस आत्मघात की हलचल की ओर दुर्लक्ष
करने के कारण इटली के मंत्रिमंडल को अपने पद भी छोड़ने पड़े।
इटली ने ज्यों ही इसांज़ो की रणभूमि में बड़ा भारी विजय प्राप्त किया
त्यों ही सोशियालिस्टों की यह हलचल प्रारम्भ हुई। इसका कारण
यह है कि पोप साहब ने जब सन्धि की मध्यस्थी उठाई तब इटली ने
उस मध्यस्थी का आदर नहीं किया। जर्मन गुप्तचरों के साथ पोप
साहब के रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के धर्माधिकारियों का आधार भी
सन्धिवाले सोशियालिस्टों को मिल गया। इस प्रकार जब कि सन्धि
के विषय में सारे राष्ट्र में फूट पड़ गई तब यह डर उत्पन्न हुआ कि
कहीं रूस की तरह इटली भी सैनिक दृष्टि से कमज़ोर न पड़ जावे।
इसी डर को नष्ट करने में इटली के राजनीतिज्ञ और सेनानायक अक्टू-
बर मास में लगे हुए थे। अभी हाल ही में उन्होंने आस्ट्रिया पर
विजय प्राप्त किया था; और इस बात का उन्हें अनुभव हो गया था
कि आस्ट्रिया की शक्ति अब क्षीण हो चली है। उनको यह साहस
हो गया था कि जब चाहेंगे तब एक दो सप्ताह के प्रयत्न से ही हम
आस्ट्रिया से ट्रिस्टी बन्दर छीन सकेंगे। वे यहां तक साहस कर रहे
थे कि ट्रिस्टी बन्दर लेना तो कोई बड़ा भारी काम है ही नहीं यह तो
बात की बात में हो जायगा, यही नहीं, किन्तु इटली में यदि पहले ही
की तरह ऐक्य उत्पन्न हो गया तो आस्ट्रिया में प्रवेश कर के वीना
को भी डांट बता कर जो सफलता प्राप्त करने की इच्छा ज़ार का सैन्य-
सागर करता था वही सफलता अब हम प्राप्त करेंगे; और महायुद्ध
की परिसमाप्ति करने का मान इटली को प्राप्त करा देंगे—इस प्रकार की
महत्वाकांक्षा में इटालियन सेनानायक और राजनीतिज्ञ निमग्न हो रहे
थे। ऐसा न समझना चाहिए कि इस महत्वाकांक्षा के स्वप्न उनको
व्यर्थ ही पड़ रहे थे। गत तीन वर्ष में इटली ने बहुत अच्छा कार्य कर
दिखलाया है। इस छोटे से राष्ट्र ने पिछले तीन वर्ष में चालीस लाख
जवानों को भरती सेना में की है। बड़ी बड़ी तोपें ढालनेवाले नवीन
बृहद् कारखाने खोले हैं। उसने इतने नवीन विमान बनवाये हैं कि जो

मार प्रारम्भ की; लेकिन अपारेटो और टालमिनो के दो मुकामों पर इटली से बीसगुनी तोपें और दसगुनी सेना एकत्र करके २४ तारीख़ को इसांजो नदी उतर कर इटली का दल फोड़ा। यह दल फूटते ही इसांज़ो नदी के उस पार का दस बारह मील चौड़ा विषम प्रदेश लांघ कर मैदान के पास का शिविडेल स्टेशन लाख दो लाख आस्ट्रोजर्मनों ने घेर लिया। इटालियन सेनानायकों ने ज्यों ही यह देखा की इटली में घुसा हुआ आस्ट्रोजर्मनों का गिरोह बहुत बड़ा है; और वह मैदान पर फैलने लगा है; और दस पांच मील के बीच में उसे घेरना सम्भव नहीं है, त्यों ही उन्हीं ने दूसरी और तीसरी छावनियों को, पीछे से शत्रु के ग्रस लेने के पहले ही, पीछे हटने का हुक्म दिया। इधर आस्ट्रोजर्मन शिविडेल से एकदम उड़ाइन जंक्शन तक पहुँच गये। इसांज़ो की रणभूमि के पीछे इटली की जो मुख्य रेलगाड़ी है उसी रेलगाड़ी का केन्द्रस्थान यह उड़ाइन जंक्शन है। सेनापति मेकेन्सन जब इस जंक्शन तक आ पहुँचे तब इस बात की शंका उपस्थित हुई कि अब इटली की दूसरी और तीसरी छावनियों को सुरक्षित रीति से पीछे हटने का भी मौका मिलता है या नहीं। लेकिन इटालियन सेना इतनी शीघ्रता और खूबी के साथ पीछे हटने लगी कि कुल दो ही तीन दिनों में, कुछ जगह चालीस-पचास मील, तो कुछ जगह पचीस-तीस मील, पीछे हट कर उड़ाईन जंक्शन के पश्चिम ओर १७ मील पर टेग्लीमेंटो नदी के उस पार सब इटालियन सेना नवम्बर के प्रारम्भ में जा पहुँची। कहते हैं कि इस भगदड़ में एक हजार तोपें और एक लाख सेना इटली के हाथ से चली गई। नवम्बर के प्रारम्भ में टेग्लीमेंटो नदी का आश्रय ले कर इटालियन सेना में फिर व्यवस्था उत्पन्न की गई, लेकिन अब यह समाचार प्रसिद्ध हुआ है कि उत्तरी मैदान में टेग्लीमेंटो नदी पार कर के आस्ट्रो जर्मनों ने इस इटालियन सेना की बाईं बाजू फिर से पीछे हटाने का उपक्रम शुरू किया है। यह भी प्रकाशित हुआ है कि ट्रेंटिनो प्रान्त की आस्ट्रो-जर्मन सेना ने—जो कि इटली के मस्तक में एक प्रकार से पत्थर सी भरी हुई है—फिर से हलचल शुरू की है। ट्रेंटिनो प्रान्त की आस्ट्रोजर्मन सेना दो दिशाओं से हलचल कर रही है। एक पश्चिम तरफ से लॉम्बार्डी के मैदान की सीध से और पूर्व ओर से वेनिस के मैदान की सीध से। इनमें से कोई भी ... यदि सफल हो जायगी तो इसांज़ो का दल फूटने के समान ही बड़ा संकट इटली पर उपस्थित हो जायगा। लॉम्बार्डी के ... यदि आस्ट्रोजर्मन घुस जायँगे तो इटली और फ्रांस का सम्बन्ध ... जायगा, और सम्पूर्ण इटली को आस्ट्रोजर्मन महीने-डेढ़-महीने में ... जायँगे। इस लिए यह स्पष्ट है कि लॉम्बार्डी की ओर इटली आस्ट्रो-जर्मनों को कदापि मैदान में उतरने नहीं देगा। इटालियन सेना के वर्तमान स्थिति में ये दो काम बहुत ही कठिन प्रतीत होंगे कि ... लॉम्बार्डी की रक्षा की जाय; और दूसरे आस्ट्रोजर्मन, जो कि ट्रेंटिनो वेनिस के मैदान में उतर कर टेग्लीमेंटो के किनारे की इटालियन ... पिछले भाग को ग्रस डालना चाहते हैं—उनको ट्रेंटिनो प्रान्त में ही ... रखा जाय। इसके अतिरिक्त यह भी बड़ा कठिन काम है कि ... सेना, बाईं बाजू खुली रख कर, विजयी शत्रु से मुकाबला ... सके। इन सब अड़चनों को देखते हुए जानकार लोगों ने यह निश्चित किया है कि जब तक इटालियन सेना वेनिस की दक्षिण पेडिज नदी के उस पार न जा पहुँचे तब तक इटली का कुशल है। अनुमान किया जाता है कि ट्रेंटिनो के मैदान में यदि कोई बाधा न आई तो दो तीन सप्ताह में, वेनिस प्रान्त को ... छोड़ते हुए इटालियन सेना पाडिज़ नदी के उस पार सुरक्षित जगह जा पहुँचेगी। इसमें सन्देह नहीं कि सेनापति मेकेंसन के इस ... से इटली की अत्यन्त हानि हुई है, लेकिन उसमें भी सन्तोष ... इतना ही है कि इस पराभव के कारण इटली की भीतरी ... बिलकुल मिट गई है; और नवम्बर के पहले सप्ताह में चूंकि ... और फ्रांस इटली की मदद के लिए दौड़ गये हैं, इस लिए मित्रराष्ट्रों के राजनीतिज्ञों को यह विश्वास होने लगा है कि अब पेडिज नदी के दक्षिणी किनारे पर इटालियन सेना को शीतकाल में विश्रान्ति मिलेगी; और अगले वसन्तकाल में इटली फिर तरोताज़ा होकर मैदान में कूद सकेगा।

सोलापुर-जिला-परिषद।

२० अक्टूबर १९१७ को सोलापुर की ज़िला परिषद [illegible] में हुई था। इसके अध्यक्ष [illegible] हुए थे। [illegible]

देशभक्त मि० रसूल।

कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर और राष्ट्रीय पक्ष के एक प्रमुख नेता मि० अब्दुल रसूल का गत मास में देहान्त हो गया। आप मुसलमान होकर भी भारतमाता के बड़े भक्त थे। बंगाल की पिछली हलचलों में आपने अनुपम देशसेवा की थी। नरम गरम दोनों दलों पर आपका बराबर ही प्रभाव था। आप के असमय कालवश में देश की बड़ी हानि हुई है। ईश्वर आपकी आत्मा को शान्ति देवे।

धर्मलक्षणसंयुक्त दयानन्द ।

न्दी में भारतवर्ष में जो अनेक राष्ट्रीय आन्दोलन उठे
माज ' का आन्दोलन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है।
उठानेवाले स्वामी दयानन्द जी तथा उनके अनेक विद्वान्
साथी थे। स्वामी दयानन्द एक विशुद्ध धर्मात्मा पुरुष
दस लक्षण, जो महर्षि मनु ने बतलाये हैं, वे उनमें पूर्ण थे।
ये हैं:—
ते; (२) क्षमा; (३) दम; (४) अस्तेय; (५) शौच;
यनिग्रह; (७) धीः; (८) विद्या; (९) सत्य; (१०) अक्रोध।
इनमें से एक एक लक्षण लेकर इस बात का विचार करेंगे
ण स्वामी के चरित्र में किस प्रकार घटित होते हैं।
लक्षण धृति है। राजर्षि मनु ने, इस लक्षण को पहले रख कर
त किया है कि धृति ही धर्म के अन्य सब लक्षणों का आधार
त कहते हैं धैर्य या साहस
सको धारण करने की शक्ति
होती है वह धीर पुरुष अपने
पर मेरु की तरह अटल
है; विकल्प उसके पास फट-
भी नहीं। जिस बात का
वह करता है, दृढ़ता के साथ
पूर्ण करता है। बीच में कितने
विघ्न क्यों न आवें—वह उगम-
ा नहीं। राजर्षि भर्तृहरि ने अपने
एक श्लोकों में धीर पुरुष का
च्छा लक्षण बतलाया है। एक जगह
न्होंने कहा है, कि एक पुरुष ऐसा
ोता है कि विघ्नों के भय से कार्य
ारम्भ नहीं करता (उसको कायर
कहना चाहिए); दूसरा पुरुष कार्य
तो प्रारम्भ कर देता है, परन्तु विघ्न
आते ही उसका धैर्य छूट जाता है;
उसके हाथ पैर फूल जाते हैं; और
वह कार्य छोड़ देता है, तीसरा पुरुष
वह है कि जो विघ्नों से बार बार
मुकाबला करता है—वह यह सम-
झता है कि ये विघ्न हम को अपने
कार्य के लिए और भी दृढ़ करने के
लिए ही आते हैं—वह अपने
आरम्भ किये हुए कार्य को पूर्णता
तक पहुँचाता है। भर्तृहरि जी कहते
हैं कि वही उत्तम और धीर पुरुष है,
ऐसा पुरुष निन्दास्तुति की परवा नहीं करता, चाहे लोग उसको गालियां
बकें, उसके ऊपर थूकें, उसके ऊपर कीच और पत्थर बरसावें; और
चाहे उसकी पूजा करें, हाथियों पर उसका जुलूस निकालें, चाहे
रुपयों और अशर्फियों की उसके ऊपर वर्षा हो, राजा लोग लाखों
रुपये की सम्पत्ति उसको देने लगें, चाहे एक फटी लँगोटी भी उसके
तन पर न रहे; आज ही चाहे उसे मृत्यु आ जावे; और चाहे युग युग
यह जोय—कितने ही युगान्तर उसके सामने से गुज़र जावें—वह धीर
सत्य और न्याय के पथ से अपना क़दम नहीं हटाता। आप निष्पक्ष-
पात-दृष्टि से स्वामी दयानन्द का चरित्र अवलोकन करें—क्या यह
लक्षण उनमें नहीं पाया जाता?

दूसरा लक्षण क्षमा है। हम ऊपर कह चुके हैं कि धृति धर्म के
सब लक्षणों का आधार है। इस लिए जहां धृति-धारणा है वहां क्षमा
क्यों न होगी? क्षमा का अर्थ सहनशीलता या सहनशक्ति है। इस
क्षमा या सहनशीलता का आज-कल प्रायः बड़ा दुरुपयोग देखा जाता
। निर्बल और कायर मनुष्य भी अपने को क्षमाशील कहलाते हैं।
और अत्याचार को सँच चुपके से सहते रहना यद्यपि क्षमा
कहला सकती—यह एक प्रकार की कायरता है।

बहुत से लोग अपनी कायरता या निर्बलता को छिपाने
के लिए क्षमा और सहनशीलता का मिथ्या आवरण
ऊपर डाले रहते हैं। सच्चा क्षमाशील पुरुष वही है कि जो
अन्दर शक्ति होते हुए भी निर्बलों और अज्ञानियों के अपराधों
अपने को आपे से बाहर नहीं होने देता। अन्याय
भी कभी कभी इस लिए न्यूनाधिक रूप से सहना पड़ता है कि
से किसी प्रस्तुत कार्य में कोई बिगाड़ उपस्थित न हो। ये
व्यावहारिक क्षमा के स्वरूप हैं। किन्तु महात्माओं की क्षमा निराली
होती है। उनकी क्षमा धरती की तरह होती है। जैसे धरती
चाहे आप मख़मल बिछावें; और चाहे उसे फावड़े से खोदें,
पर चन्दन-कस्तूरी का लेप करें और चाहे उस पर विष्ठा वमन करें—
उसको कुछ भी हर्ष या ग्लानि नहीं होती, इसी भांति सज्जनों को चाहे
आप दूधमलाई खिलावें, चाहे उन्हें
ज़हर पिलावें, उन पर चाहे ईंट-
पत्थर बरसावें; और चाहे उन्हें मख़-
मल के मुलायम गद्दों पर लिटावें,
हर्ष अथवा विषाद से उनकी शान्ति-
भंग नहीं होती। स्वामी दयानन्द
सहिष्णुता और क्षमा के अवतार
थे। उन पर ईंट-पत्थर, कीचड़ और
गालियों की वर्षा की तो बात ही
जाने दीजिए, कई बार उन्हें विष
दिया गया; और उसको भी वे अपने
आत्मिक बल से पचा गये। अप-
राधियों की तहक़ीक़ात उन्होंने कभी
नहीं कराई। उनके अनुयायियों में
बड़े बड़े राजा महाराजा और गवर्न-
मेंट के बड़े बड़े उच्च अधिकारी तक
थे—उनके संकेतमात्र से अपराधियों
को कठोर दण्ड दिया जा सकता
था। परन्तु वे सदा यही कहते कि
इसमें इन बेचारों का कोई अपराध
नहीं है—यह सब स्वार्थदेव और
अविद्यादेवी की लीला है। एक बार
जब उनको विष देने या दिलानेवाले
एक अपराधी को क़ैद कराने के
लिए उनके अनुयायियों ने आज्ञा
मांगी तब स्वामीजी ने यही कहा
कि "मैं संसार को क़ैद कराने
नहीं आया हूं; किन्तु क़ैद से छुड़ाने आया हूं!" इससे अधिक
बड़ा क्षमा का और कौन सा दृष्टान्त हो सकता है?

धर्म का तीसरा लक्षण मनोदमन है। स्वामी दयानन्द के मनोदमन
के विषय में कहना ही क्या है। बचपन में ही उनके माता-पिता ने
अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करने की शिक्षा उन्हें दी थी।
आगे चल कर तो फिर योगाभ्यास, सत्संगति, ईशार्चन, तथा
वनपर्वतों में भूख, प्यास और अनेक प्रकार के संकटों को सह कर
उनका मन बिलकुल शान्त हो गया था। मनुष्य का मन अत्यन्त
चंचल होता है; और साधक-अवस्था में नाना प्रकार के प्रलोभनों
में आ कर इसके बिगड़ जाने की बहुत सम्भावना रहती है। परन्तु
भगवान् कृष्ण ने कहा है कि अभ्यास और वैराग्य से इसकी चंचलता
बिलकुल नष्ट की जा सकती है। स्वा० दयानन्द जी ने साधकावस्था
में अपनी इन्द्रियों और मन को खूब कसा था, ईश्वरचिन्तन से उन्होंने
चित्त को अपने वश में कर लिया था। इन्द्रियदमन और तितिक्षा के वे
पूर्ण अवतार थे। उनके शीघ्रकोपी गुरु स्वामी विरजानन्द ने जब एक
बार उनके ऊपर लट्ठ का प्रहार किया तब कितनी शान्ति का बर्ताव
उन्होंने दिखलाया!

श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती।

धर्म का चौथा लक्षण आस्तेय है । दूसरे की वस्तु प्राप्त करने की लालसा मन में भी न लाना आस्तेय का लक्षण है । वेद कहते हैं, कि जगत् के यावत् पदार्थ परमात्मा से व्याप्त हैं, बड़ी सावधानी के साथ, अपने परिश्रम से प्राप्त की हुई सम्पत्ति का ही भोग करना चाहिए, किसी के प्यारे धन को नाजायज़ तरीके से प्राप्त करने की इच्छा न रखनी चाहिए । अहा ! क्या ही अच्छा सिद्धान्त है ! इस सिद्धान्त के अनुसार यदि संसार के लोग चलने पर तैयार हों तो दुनियां की बहुत सी अशान्ति मिट जावे । स्वामी दयानन्द सन्यासी थे । वे एक सम्पत्तिशाली पिता के पुत्र थे । धन की उन्हें कुछ भी परवा नहीं थी । तभी तो अपनी पैतृक सम्पत्ति को भी त्याग करके वे घर से निकल पड़े । संन्यासी-अवस्था में भी उनको बहुत सी सम्पत्ति मिलती थी । उनके परम भक्त शिष्य उदयपुराधीश हिन्दूसूर्य महाराना सज्जनसिंह कई लाख की गद्दी उन्हें देते थे-इस शर्त पर कि भी जो मूर्तिपूजा का खंडन बन्द कर दें—लेकिन उस सच्चे कांचन, निष्काम और निस्पृह संन्यासी ने बड़े तिरस्कार के साथ राना के उस प्रस्ताव को अस्वीकार किया । यों तो स्वामी जी राज को राजा-रईसों के यहां हजारों रुपये की दक्षिणा और भेंट ती थीं; और वे आदरपूर्वक उसे स्वीकार भी करते थे; क्योंकि जानते थे कि लोकोद्धार के जिस मन का उद्यापन उन्होंने किया उसमें धन की बहुत आवश्यकता है । वे उन ढोंगी संन्यासियों हीं थे कि जो ऊपर ऊपर से तो त्यागी बने हुए लक्ष्मी का तिर-र दिखलाया करते हैं; परन्तु भीतर भीतर से किसी इन्द्रियलोलुप विलासी गृहस्थ से भी कम नहीं हैं । स्वामी दयानन्द जी लक्ष्मी बड़ा आदर करते थे, और परोपकार का उसे एक बड़ा साधन मते थे । तथापि उन्होंने स्वयं अपने पास लक्ष्मी का कभी संग्रह ं किया, जो द्रव्य उनको मिलता, वे अपने कार्यकर्त्ता अनुयायियों पास रहने देते थे; और जगह जगह वैदिक पाठशालाएँ तथा वेद-य, इत्यादि वैदिक साहित्य के प्रचार में वह खर्च हुआ करता था । न में उन्होंने "परोपकारिणी सभा" को अपना सर्वस्व अर्पण के यह दिखला दिया कि वे संसार के उपकार का इतना प्रयत्न े करते हुए भी उससे बिलकुल अलिप्त थे ।

धर्म का पांचवां लक्षण शौच है । शौच के दो भेद हैं-बाहरी शौच र भीतरी शौच । बाहरी शौच में शरीर, वस्त्र, इत्यादि का शौच ता है; और भीतरी शौच में मन, बुद्धि, आत्मा, इत्यादि की शुद्धता अन्तर्भाव होता है । दोनों का परिणाम चित्त की प्रसन्नता है । [illegible]-शुचिभूत मनुष्य सदैव प्रसन्नचित्त रहता है, उसमें शान्ति [illegible] होती है, उसकी कान्ति बढ़ती है । पावित्र्य, चारित्र्य और [illegible]चार का लक्षण है, जिसका हृदय शुद्ध और सरल है उससे [illegible]ार की कोई बुराई नहीं हो सकती । जिसका हृदय कलुषित है [illegible] अपना नाश करते हुए संसार का भी बिगाड़ करता है । [illegible] और कुटिलहृदयवाले पुरुष का चित्त अशान्त में डूबा रहता है, [illegible] और मक्कारी से दुनियां को ठगने और अपना स्वार्थ साधने [illegible] वह अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता है, उसके मुख पर कान्ति [illegible] झलकती नहीं—अन्धकार बरसता है । उसके मुखमंडल पर [illegible] सदैव छाई रहती है । ऐसे मनुष्य के दर्शन से आनन्द नहीं होता, [illegible] "प्रसन्नचित्त" पुरुष के मुख की ओर एक नज़र डालने ही [illegible] के मन में एकदम एक अपूर्व आनन्द का संचार हो जाता है । [illegible] शुद्ध और सरल हृदयवाला महात्मा स्वयं तो प्रसन्न रहता ही है, अपने विचारों, अपने शरीर और अपने कार्य से संसार पर [illegible] प्रसन्नता और आनन्द की वृष्टि करता रहता है । इसी लिए [illegible] में "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" कह कर बार बार परमे-श्वर की प्रार्थना की गई है । स्वामी दयानन्द योगी थे । उनके साथ [illegible] वाले एक वृद्ध पुरुष ने उनकी दिनचर्या हमें बतलाई थी । स्वामी [illegible] के तीसरे पहर करीब तीन बजे उठ कर योगाभ्यास, अर्थात् [illegible]चिन्तन, में लीन हो जाते थे । दो तीन घंटे इसी स्थिति में रहते थे । बाद को ५-६ बजे, जब सर्वसाधारण लोग निद्रा से उठते हैं, [illegible] समाधि से उठते थे; और शौच, स्नान, सन्ध्या, इत्यादि [illegible] से निवृत्त हो कर लोकोपकार के कार्य में लग जाते थे । [illegible] जी अत्यन्त सरल, सौम्य और मृदु हृदय के थे । उनकी [illegible] के बारे में एक बात प्रसिद्ध है—एक बार, जब कि वे [illegible] कर रहे थे, एक बालक ने उनके [illegible] — [illegible] [illegible] बतलाई । स्वामी जी

की प्रसंशा करते हुए अपनी गलती को स्वीकार किया । मनुष्य-जाति पर प्रेम उनके हृदय में बहुत था । तथापि अत्यन्त मूढ़ पुरुष यदि द्वेष के साथ आकर उनके सामने कोई आक्षेप की बात करता तो उसे वे प्रायः विनोदपूर्ण और हृदय पर प्रभाव करनेवाला उत्तर देते थे । अनेक मूढ़ों को अपनी सरलता, प्रेम, सत्य, और सौम्यता से वे अपना अनुगामी बनाते थे । उनका कार्य बड़ा कठिन था । अर्थात् प्रचलित धर्मान्धता, कि जिसके करोड़ों मनुष्य शिकार बने हुए थे, उसका निवारण करते हुए लोगों को सन्मार्ग और वेदपथ पर लाना उनका कार्य था । यह स्वामी दयानन्द के सत्य और हार्दिक पावित्र्य का ही बल था कि उन्होंने स्वकीयों, और परकीयों के भी, इतने बड़े विरोध से टक्कर मारते हुए, इतना "लोकसंग्रह" का कार्य कर लिया ।

धर्म का छठवां लक्षण इन्द्रियनिग्रह है । मनुष्य की इन्द्रियां अपने अपने विषयों की ओर स्वाभाविक ही दौड़ती हैं । उदाहरणार्थ, चक्षु-रिन्द्रिय का विषय रूप है; किसी वस्तु का सुन्दर रूप देख कर आंखों को आनन्द होता है । रसनेन्द्रिय का विषय रस यानी स्वादु है जिह्वा सरस और सुस्वादु पदार्थ चखने को मांगती है । इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पांच विषय पांच ज्ञानेन्द्रियों के हैं, पांच कर्मेन्द्रियों के भी पांच कर्म हैं । इन इन्द्रियों का राजा मन है । इन्द्रि-यों के सामने ज्योंही अनेक विषय आते हैं त्योंही इन्द्रियां उनको पाने के लिए लोलुप होती हैं, उस समय मन के द्वारा उनका निग्रह करना होता है । पर ध्यान में रहे कि मन भी यदि शुद्ध नहीं है, अर्थात् आत्मा के वश में नहीं है तो वह इन्द्रियों का निग्रह कैसे कर सकेगा ? इन्द्रियां प्रजा हैं, मन राजा है; राजा ही यदि संयमी नहीं है तो वह प्रजा को अपने वश में कैसे रख सकेगा ? इस लिए मन आत्मा के वश होना चाहिए—आत्मवशी मन ही इन्द्रियों का निग्रह कर सकता है । लेकिन इन्द्रियनिग्रह का यह मतलब नहीं है कि इन्द्रियों को उनके विषय का स्पर्श ही न होने दिया जाय । जब कि मनुष्य में मन है, उसके इन्द्रियां हैं; और इन्द्रियों के विषय भी संसार में मौजूद हैं, तब यह कदापि सम्भव नहीं है कि इन्द्रियों को उनके विषयों से बिलकुल ही दूर रखा जाय । वास्तव में इन्द्रियनिग्रह का तात्पर्य इतना ही है कि इन्द्रियों से यथोचित उपयोग लिया जाय । इन्द्रियों को इस प्रकार विषयों में न फँसने देना चाहिए कि जिस से अपना मन, मन और धन की बरबादी हो, तथा संसार का भी अप-कार हो—अन्याय और हिंसा, अर्थात् परपीड़ा, के द्वारा विषयों का उपार्जन कदापि न करना चाहिए, किन्तु अपने आप को वश में रखते हुए इस प्रकार अपने मन और इन्द्रियों के द्वारा आचरण करना चाहिए कि जिससे हम को स्वयं सुख, शान्ति और प्रसन्नता हो, और हमारे व्यवहार से संसार का उपकार हो । यहां प्रश्न सदुप-योग या दुरुपयोग का है । इन्द्रियां जब कि शरीर के साथ लगी हैं तब उनका उपयोग तो होगा ही । हां, उनका दुरुपयोग न करके सदुपयोग करना चाहिए । इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि हमारी इन्द्रियों के आचरण से किसी को हानि न पहुंचे—किसी को दुःख न हो, बस यही इन्द्रियनिग्रह है । स्वामी दयानन्द जी आबाल ब्रह्मचारी सन्यासी थे, उन्होंने बालपन से ही, और सभी युवावस्था में अनेक प्रकार के [illegible] और [illegible] करके, योगा-भ्यास और [illegible] के द्वारा, अपने [illegible], मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया था और [illegible] [illegible] संसार के सुधार और उपकार में लगा दी थी । उनका [illegible] [illegible] और परोपकार के कार्यों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महात्मा के इन्द्रियनिग्रह के विषय में क्या कहना है !

मनु जी ने धर्म का [illegible] [illegible] "[illegible]" बतलाया है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], इत्यादि [illegible] [illegible] लक्षण हैं । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नन्द जी अपूर्व बुद्धिमान—कुशाग्रबुद्धि थे। यों तो उनमें स्वाभाविक ही मेधा और धारणाशक्ति थी; परन्तु तप, योगाभ्यास और स्वाध्याय से उनकी बुद्धि का विलक्षण विकास हुआ था। ब्रह्मचर्य के धारण से उनकी स्मरणशक्ति में विचित्र वृद्धि हुई थी। उनके व्याख्यान, उनके शास्त्रार्थ, उनके ग्रन्थ, उनकी विवेचनशैली, इत्यादि देख कर उनके विरोधी तक उनकी बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका लोकसंग्रह-विषयक कार्य प्रत्यक्ष तौर पर उनकी विलक्षण बुद्धिमत्ता की साक्ष दे रहा है। अपनी युक्ति और बुद्धि के बल पर ही उन्होंने "आर्यसमाज" संस्था की स्थापना की, जिसके नीचे सैकड़ों बुद्धिमान् व्यक्तियों का संग्रह किया, अपनी युक्ति और तर्क-शक्ति द्वारा अनेक विरोधी पंडितों को अपना अनुयायी बनाया, घोर नास्तिकों के हृदय में आस्तिकता का संचार किया, अनेक भ्रान्तपथ तथा स्वधर्मभ्रष्ट लोगों को अपनी प्रबोधशक्ति के द्वारा सत्य का मार्ग दिखला कर उनका उद्धार किया। भूले-भटके तथा असन्मार्गगामी लोगों को सत्पथ पर लानेवाले बडे भारी नेता के लिए जिस मेधाशक्ति की आवश्यकता होती है वह स्वामी दयानन्दजी में पूर्णतया विद्यमान थी।

धर्म का आठवां लक्षण विद्या है। विद्या की व्याख्या स्वामी जी ने स्वयं एक जगह इस प्रकार की है कि पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्षपर्यन्त सब दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थों का यथावत् ज्ञान करके उसके द्वारा संसार का उपकार सिद्ध करना विद्या का लक्षण है। स्वामी जी ने कोरे ज्ञान को ही विद्या नहीं माना है; किन्तु क्रियाशीलता के साथ जो ज्ञान है उसी को विद्या कहा है। यह विद्या का लक्षण आज पश्चिमी राष्ट्रों में पूर्णतया चरितार्थ हो रहा है। विद्या के बल पर ही पाश्चिमात्य विद्वानों ने अनेक आविष्कार किये हैं; जिनसे संसार को लाभ पहुँच रहा है। पाश्चिमात्य देशों में चूंकि आध्यात्मिकता का भाव नहीं है—भौतिक उन्नति अर्थात् स्वार्थभाव का अधिक प्रभाव है; और इसी कारण उन देशों में विद्योन्नति की चरम सीमा होते हुए भी अशान्ति का पूरा पूरा साम्राज्य छाया हुआ है। आर्यावर्त देश भी किसी समय विद्या में बहुत बढ़ाचढ़ा हुआ था—यहां तक कि मनु जी ने कहा ही है कि इसी देश के विद्वान् लोगों से सारे संसार के लोग अपने अपने चरितार्थ की शिक्षा लिया करें-वह भारत का स्वर्णयुग था। यहां के ऋषि-मुनियों ने विद्या के प्रत्येक विभाग में सप्रयोग पूरी पूरी उन्नति कर दिखलाई थी, यहां के दार्शनिकों ने ईश्वर, जीव और प्रकृति के तत्वों का पूरा पूरा खोज किया था; चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, धन्वन्तरि, इत्यादि महर्षियों ने रसायनशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, इत्यादि विषयक आविष्कार और प्रयोग किये थे, राजर्षि मनु के समान धर्मशास्त्रियों ने आचारशास्त्र और शासनशास्त्र के नियम [illegible] अनुभव से बनाये थे। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों इत्यादि के देखने से यह पता चलता है कि युद्धकला, आयुधशास्त्र, [illegible]पदार्थों के उपयोग से भूगर्भशास्त्र, प्राणिशास्त्र, इत्यादि सब विद्या-[illegible] में आर्यों ने उन्नति की थी। पिछले हजार-दोहजार वर्षों [illegible] का पतन होने लगा, इधर विदेशियों के पादाक्रान्त होने से [illegible] पराधीनता का साम्राज्य हुआ; और स्वातंत्र्यविचार के लोप [illegible] सारी विद्या और कलाकौशल लुप्त हो गया। अब भी आर्य-[illegible] यदि मौका मिले तो संसार के बड़े से बड़े स्वाधीनचेताओं [illegible] किया जा सकता है। इस दासत्व के जमाने में भी [illegible] के समान कवि उत्पन्न कर सकता है, जगदीशचन्द्र [illegible] आविष्कारक और उत्पन्न कर सकता है, [illegible] [illegible] तिलक, मालवीय के समान राजनीतिज्ञ [illegible] है, रामकृष्ण परमहंस के समान योगी अध्यात्म-[illegible] सकता है, दयानन्द के समान पंडित स्वार्थत्यागी, [illegible] कर सकता है-इसी से हम कहते हैं कि [illegible] उनके प्राचीन ऋषि मुनियों का रक्त अब-[illegible] है; और जो आकृति हो चुकी है [illegible] जाति, शत्रुओं और विरोधियों के हजार [illegible] नहीं सकती। यह सब हमारे पूर्वजों के तप [illegible] है। विशेष कर इस युग में तो यह स्वामी [illegible] है कि जो शिक्षा हमें यह बत [illegible] का आधार है; आधुनिक संसार [illegible] है कि [illegible] में था प्राचीन [illegible] मान बताया [illegible] [illegible] है कि [illegible] था [illegible] है, और जो [illegible] है। [illegible] करते हैं,

लेकिन आर्यसन्तान से उनकी यही अपील है कि तुम [illegible] के चकाचौंध में पड़ कर अपने पूर्व को बिलकुल ही मत [illegible] अपने प्राचीन साहित्य को खोजो तो तुमको मालूम हो [illegible] यह कथन बिलकुल सत्य है कि पश्चिमीय संस्कृति का [illegible] है वहां से आर्यसंस्कृति का प्रारम्भ होता है। स्वामी [illegible] विद्वत्ता की धाक उनके कट्टर विरोधियों तक ने मानी है।

धर्म का नवां लक्षण सत्य है। जिस बात को जिस [illegible] आत्मा या विवेचक बुद्धि स्वीकार करे उस बात को [illegible] मानना, उसको वैसा ही प्रकट करना; और उसके अनुकूल करना सत्य का लक्षण है। यह लक्षण स्वामी जी में पूर्ण घटित होता है, अथवा यों कहिये कि उनका सारा [illegible] सत्य की स्थापना में हुआ है। अपने सत्यव्रत का पालन करने [illegible] अपने स्वकीय देशभाइयों का अत्यन्त कट्टर विरोध उन्होंने सह[illegible] लाखों की सम्पदा पर लात मार दी, ईंटपत्थर और गालियों [illegible] सहीं, विष के प्याले तक पिये; और अन्त में उसी [illegible] सर्वस्व, अपने प्राण तक अर्पण कर दिये—स्वामी जी [illegible] शिरोमणि थे। सत्य को कहीं भय नहीं—वे निर्भय थे। [illegible] सच्ची निर्भयता उनमें पूर्णतया विद्यमान थी। यद्यपि वे [illegible]तनधर्म को जानते थे कि "सत्य बोलो, लेकिन प्रिय बोलो," [illegible] चूंकि उनका काम एक शस्त्रचिकित्सक का सा था—बिना [illegible] चलाये—बिना अप्रिय सत्य या कडवी सचाई के—हिन्दू [illegible] हिन्दूधर्म के शरीर में भरा हुआ सैकड़ों वर्ष का विकारपूर्ण [illegible] निकल नहीं सकता था। इसी लिए, भीतर से कोमलहृदय [illegible] भी, स्वामीजी को अपने ग्रन्थों, अपने शास्त्रार्थों, अपने [illegible] कटूक्तियों से पूर्ण सत्य का अवलम्ब करना पड़ा है—परन्तु कम्पनीय दशा है इस मानवीय प्राणी की, जो अब तक इस पथ्य का स्वीकार नहीं कर रहा है। रोगकीटकों के कारण [illegible] हिन्दू जाति का शरीर सड़ रहा है, लेकिन स्वामी दयानन्द की मात्रा ग्रहण करने को अब भी यह तैयार नहीं!

अस्तु; धर्म का दसवां लक्षण अक्रोध है। क्रोध को सब [illegible] पाप का मूल माना है। इस लिए क्रोध को त्याग करने के लिए [illegible] की शिक्षा दी गई है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या अत्याचार [illegible] अन्याय से पूर्ण इस संसार में ऐसा भी कोई महात्मा बन सकता है जिसके अन्दर क्रोध कभी उद्भूत ही न हो? हमारी समझ में यह [illegible] कुल असम्भव है—अक्रोध का सिर्फ इतनाही अर्थ लेना चाहिए [illegible]

[illegible]

मन्युं मयि धेहि"—इस क्रोध से कदापि संसार का हानि नहीं सकती। दूसरे शब्दों में यही भाव इस प्रकार जतलाया जा [illegible] कि मनुष्य को पाप और दुर्गुणों पर क्रोध करना चाहिए; पापी [illegible] दुर्गुणी प्राणी पर क्रोध न करना चाहिए; और यदि उस प्राणी पर क्रोध किया जाय तो हृदय से यह भाव कभी—एक क्षण भर के लिए [illegible] न हटने देना चाहिए कि इस पापी और दुर्गुणी का पाप और [illegible] से उद्धार करने के लिए मैं इसको "शिक्षा" कर रहा हूं। "शिक्षा" का दूसरा अर्थ ही "दण्ड" लिया गया है; और यह भाव बहुत [illegible] उपकारी है—जो मनुष्य कि संसार का सुधार करना चाहता है—[illegible] यह सात्विक क्रोध [illegible] बुराइयों को दूर करना चाहता है—उसे "मन्यु" धारण करना ही पड़ता है—और यह सत्पुरुष इस [illegible] को अपने वश में रख कर इस प्रकार इस शस्त्र की योजना करता है कि जिससे मनुष्य की कुछ भी हानि नहीं होती—और उसके दुर्गुण दूर होते जाते हैं। ऐसे दुर्लभ योजक महात्माओं को धन्य है कि [illegible] काम, क्रोध लोभ, मोह, इत्यादि विकारों को भी अपने वश में [illegible] कर संसार के उपकार में उनकी योजना कर लेते हैं। ऐसी महात्माओं को वास्तविक "अक्रोधी" कहना चाहिए। स्वामी दयानन्द भी ऐसे ही अक्रोधी महात्माओं में थे। वे अत्यन्त गम्भीर और शान्त [illegible] [illegible] महात्मा थे, अन्याय और अत्याचार के वे शत्रु थे। [illegible] मनुष्य जाति के मित्र थे। उन्हों ने सारे जीवन [illegible] किया, और सत्कार्यों का प्रचार किया। [illegible] जो कि स्वामी जी के ग्रन्थों के आदि [illegible] में पाया जाता है, उनका 'मोटो' था—[illegible] [illegible]! संसार के सारे दुरित दूर हों, और [illegible] [illegible] शान्ति और कल्याण की प्राप्त हो।

साहित्यचर्चा—आगामी अंक में।

हे अज्ञाननमोविनाशक विभो ! तेजस्विता दीजिए। देखें सबै सुमित्र होकर हमें ऐसा कृती कीजिए ॥
देखें त्यों हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से। फूलें और फलें परस्पर सभी सौहार्द्र की दृष्टि से ॥

भाग ७] कार्तिक, सं० १९७४ वि०—नवम्बर, स० १९१७ ई० [संख्या ११

आभ्यान्तरिक जगत् से बाह्य संसार में।

(लेखक-डाक्टर एल० सी० वर्मन, डी० एससी० ओ०, एम० ए० पी० (लडन)

"मन वह प्रखर शक्ति है कि जो समस्त पदार्थों को स्वयं निर्माण कर
ती है। मनुष्य वास्तव में मन ही है, जो विचार यन्त्र को ग्रहण कर
जो चाहता है, बना लेता है, तथा सहस्रों सुखदुःखों को प्रस्तुत
र लेता है। वह जो कुछ गुप्त रीति से चिन्तन करता है वही हो भी
ता है। यह जगत् केवल उसका प्रतिबिम्बस्वरूप है"—जेम्स एलन।
मनुष्य की समस्त शक्तियां ईश्वर निर्मित इन्द्रियों द्वारा प्रकाशमान
ती है। दृष्टि की इन्द्रिय नेत्र है; श्रवण की कर्ण; गन्ध की नासिका,
र्श की त्वचा और रस की इन्द्रिय जिह्वा है, तथा विचारशक्ति की
द्रिय मन को मान ले सकते हैं। यद्यपि प्रकृति-दार्शनिकगणों को यह
श्चर्य की बात प्रतीत होगी, तथापि यह सिद्धान्त है जिसे अंगीकार
ये बिना कार्य सिद्ध ही नहीं सकता।

मानसशास्त्र के समस्त भक्त स्वीकार करते हैं कि मन के दो स्वरूप
। प्रथम को भौतिक और द्वितीय को आभ्यान्तरिक नाम से निर्देश
ते हैं।

जिसका प्रयोग हम साधारण कार्य में करते हैं, तथा जिसके
प हम सम्पूर्ण संसार का अनुभव प्राप्त करते हैं, उसे भौतिक मन
हते हैं और जो कि हमारे दुःख-सुख और अनुभव के संग्रह का
ना रखता है उसे आभ्यान्तरिक मन कहते हैं।

प्रथम का कर्तव्य प्रेरित करना और द्वितीय का प्राप्त करना है।
तिक मन बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखता है और आभ्यान्तरिक मन
तर के जगत् का निरीक्षण करता है। भौतिक मन कहिये वृत्तियां,
र आभ्यान्तरिक मन कहिये उच्च मन, उनका अधिष्ठाता।

यह आभ्यान्तरिक मन ही है कि जो माप करता है और योग्य
तुओं का आदर और अयोग्य पदार्थों का तिरस्कार करता है।
य इसका यह है कि आभ्यान्तरिक मन एक प्रखर शक्ति है, जिसका
त्य सदैव महत्वपूर्ण कार्यों का ही सम्पादन करना है। उसके
दुपयोग से उसकी शक्ति प्रचुर होती जाती है और अकर्मण्य रखने
यह शक्तिहीन हो जाता है।

इससे विदित होगा कि संसार में सफलता प्राप्ति के हेतु भौतिक
 पर आभ्यान्तरिक मन का आधिपत्य परमावश्यक है।

वृत्तियों में अति दुखदायक यह है—काम, क्रोध, लोभ, मोह और
हंकार। इनकी उत्पत्ति भीतर से ही होती है। एक वृत्ति का
सी धर्म की अन्य वृत्ति से संयोग होने से उसकी शक्ति और भी
द्धि को प्राप्त होती है। ऐसा प्रत्येक दिन के कार्य-व्यवहार में देखने
आता है। कामी का कामी के साथ संयोग होने से उस कामी का
म और भी प्रज्वलित हो जाता है। क्रोधी को क्रोधी मिल जाने से
उसका क्रोध और भी बढ़ जाता है। ऐसी ही अन्य वृत्तियों की
लीला है।

अस्तु। वृत्तियां एक प्रकार से बड़ा अनर्थ सम्पादन करनेवाली हैं।
संसार भर को खडबड़ा देना इन्हीं की कृपा का कार्य है। मनुष्य
जितने सुख भोगता है वे सब उन्हीं की सन्तान हैं। किन्तु वे सम्पूर्ण-
रूप से घृणा योग्य नहीं हैं। संकल्पशक्ति द्वारा उनसे बड़े बड़े महत्व-
पूर्ण कार्य निकाले जा सकते हैं।

ये वृत्तियां साधारण भ्रम के सदृश हैं, किन्तु उनका निर्माण-कौशल
इतना सूक्ष्म है कि जब तक मनुष्य तत्वदर्शी न हो जाय, वह साधारण
नेत्रों से नहीं देखी जा सकती।

इनको वश में करलेने से मनुष्य मात्र का कितना बड़ा भारी उप-
कार हो सकता है, यह प्रायः सभी जानते हैं। अस्तु; संसार से दुख
और शोक निवारण करने के हेतु उनको वश में करना अति
आवश्यक है।

अब यह सिद्ध होचुका कि आभ्यान्तरिक जगत् बाह्य जगत् की
अपेक्षा अधिक महत्व का है, अतः वही अधिक ध्यान के योग्य है।
बाह्य संसार तो मानो उसी की छाया है।

हम जिस पदार्थ की इच्छा करते हैं वह मिल जाता है। जगत् में
कोई ऐसी वस्तु नहीं कि जो अप्राप्य हो। इसी कारण मनो विज्ञान के
सभी हितैषी मानते हैं कि अपना भाग्य हम आप ही बनाते हैं, चाहे
वह अच्छा हो या बुरा।

आभ्यान्तरिक जगत् में रहस्य, आश्चर्य, संगीत और सुन्दरता है।
धन्य भाग हैं उसके जो बाह्य संसार में कार्य करने के पूर्व भीतरी
जगत् का दर्शन करता है, क्योंकि जब तक इसमें सफलता नहीं प्राप्त
होती, बाह्य जगत् में किसी प्रकार से भी सफलता प्राप्त करना अस-
म्भव नहीं, तो अति कठिन अवश्य है।

साधारणतः हम बाह्य वस्तुओं और बाह्य कार्यों में ही लगे रहते
हैं; और यह हमारा स्वभाव होगया है। कोई स्वभाव [illegible]
पड़ जाता है तब उससे तुरन्त मुक्त होना कोई सहज बात [illegible]
तथापि ऐसी बात नहीं है कि वह छूट ही नहीं सकता।

विधिपूर्वक आभ्यान्तरिक जगत् में कुछ काल तक भ्रमण करना
अन्त में बड़ा आनन्ददायक प्रमाणित होता है। स्वास्थ्यरक्षा के निमित्त
एक मिनट का आभ्यान्तरिक जगत् में भ्रमण एक घंटे के बाह्य भ्रमण
के तुल्य है।

हमारे समीप आनन्द के निमित्त सभी साधन वर्तमान हैं, किन्तु
हम उनका व्यवहार करना नहीं जानते। सोचते हैं कि यह बात अति

सन् १८०२ में सम्राट नेपोलियन के पहले परराष्ट्रीय [illegible] मेन्सर मेथ्यू ने इंगलिश खाड़ी के नीचे से बोगदा [illegible] बनाने का विचार निकाला। और इस काम [illegible] के नकशे सम्राज्ञों की प्रदर्शिनी में लोगों के देखने के लिए रखे गये। इसके बाद शीघ्र ही वे पेरिस की प्रदर्शिनी में रखे गये, लेकिन वहां वे खो गये, और अब तक उनका पता नहीं है।

मेन्सर मेथ्यू के बाद तीस वर्ष तक इस विषय में किसी भी इंगलिश अथवा फ्रेंच इंजिनियर की ओर से प्रयत्न नहीं हुआ। सन् १८३३ में थोम डी गेमंड ने अपने जीवन के अनेक वर्ष इसी विचार में व्यतीत किये, और बहुत से प्रयोगों के बाद एक विचार उपस्थित किया। उन्होंने पहले भिन्न भिन्न जगहों में चट्टानों में १,५०० छेद कर के चट्टानों की तथा खाड़ी के तल की भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से जांच की। कितनी ही बार तो पनडुब्बियों की सहायता से वे तल में गये थे। उन्होंने सन् १८३३ से १८६६ तक, ३३ वर्ष में, निम्नलिखित विचार उपस्थित किये:—

(१) सन् १८३४ में कैले से डोवर बन्दर तक खाड़ी के तल में साढ़े पचीस मील लम्बा लोहे का नल डाल कर उसके अन्दर से रेलगाड़ी का मार्ग तैयार करने का विचार उन्होंने उपस्थित किया।

(२) सन् १८३६ में उपर्युक्त मार्ग कैले से डोवर तक न बनाते हुए, कैले से नेज़ कार्नर तक बनाने का विचार उन्होंने निकाला। इन दो

खाड़ी पर मध्य का छेद। किनारे के पास का छेद।

बोगदा बोगदा

लंदन बाजू फ्रान्स बाजू
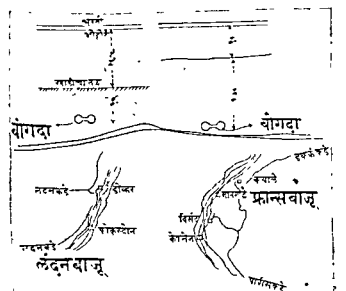
स्थानों का अन्तर सवा बाईस मील है। यह अनुमान भी उन्होंने निकाला कि इस काम में सोलह करोड़ पौंड व्यय होगा।

(३) इसके बाद केप ग्राफनेच से नेज़ कार्नर तक सवा बाईस मील लम्बाई का बड़ा पुल बना कर बीच में जहाज आने जाने के लिए घूमते हुए दरवाजे की योजना कर के मार्ग रखा जाय।

(४) सन् १८५६ में इँगलिश खाड़ी के डोवर और फोकस्टन शहरों के मध्य से फ्रांस के किनारे पर केप ग्रांज़ेवज़ बन्दर तक खाड़ी के तल के नीचे से रेलवे लाइन बनाने के लिए एक बड़ा बोगदा तैयार करने का विचार उपस्थित हुआ।

(५) इस लाइन के मध्यभाग पर वर्ना नामक टापू है, इस कारण यह लाइन खास तौर पर पसन्द की गई। क्योंकि वर्ना टापू पर बोगदे का मुख खुला रख कर बोगदे में हवा, प्रकाश, इत्यादि लाने की सुविधा होगी। तथा वर्ना टापू चूंकि मध्यभाग पर है, इस कारण यात्रियों के लिए वहां एक स्टेशन भी हो जायगा। इस सम्पूर्ण काम के नकशे पहले पहल सन् १८६२ में लंडन की प्रदर्शनी में रखे गये। उस समय लोगों के झुंड के झुंड इस अद्भुत बात को देखने के लिए आते थे।

(६) इसके बाद फिर सन् १८६६ में बड़ी बारीकी के साथ और भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से जांच करके फ्रेंच किनारे पर का बिन्दु कायम रख कर, इँगलिश किनारे पर के बोगदा के मुहँ की जगह बदल कर फोकस्टोन शहर का बिन्दु कायम किया गया। इस अन्तर के कारण लाइन ठीक ठीक वर्ना टापू की मध्य रेखा से आ सकी।

सन् १८६९ में सार्वजनिक दृष्टि से विचार करके इस काम के लिए एक बड़ी कमेटी स्थापित की गई। इसमें फ्रांस और इँगलैंड के उस समय के प्रसिद्ध नेता लोग थे। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

फ्रांस के नेता — माइकेल चेवेलियर, एडवर्ड ब्लाउंट, फेलो डी फार्टेन, पोलिन टेलेबाट (प्रख्यात पेरिस लाइन रेलवे के डाइरेक्टर) थोम डी गेमंट (सलाह-मशविरा देनेवाला इंजिनियर)

इँगलैंड के नेता। — लार्ड ग्रोसवेनार, काउंट वेजेल, एडमिरल इलियट, फ्रेडरिक बोमांट, टामस ब्रासी, एडमंड बकले, हाक शॉ और ब्रन्लेस (इंजिनियर)।

परन्तु उन्हीं दिनों के लगभग फ्रेंको-जर्मन-युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण इस कमेटी का काम स्थगित रहा। इसके बाद शीघ्र ही इस कमेटी ने काम के खर्च का अन्दाज अस्सी लाख पौंड किया। और "ब्रंटन बोरिंग" यन्त्र की सहायता से बोगदा का काम पांच वर्ष में पूर्ण होने का अनुमान लगाया। थोम डी गेमंट ने एक ऐसा उपाय ढूँढ निकाला कि ज्वारभाटे के पानी की दाब की सहायता से यंत्ररचना कर के बोगदे के लिए आवश्यक वायु भीतर लाई जाय; लेकिन उपर्युक्त यंत्ररचना का विचार अभी तक गर्भावस्था में ही है। क्योंकि थोम डी गेमंट की मृत्यु के बाद किसी ने भी इस विषय में प्रयत्न नहीं किया। उपर्युक्त कमेटी का रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद सन् १८७५ में कार्यारम्भ करने के लिए फेब्रुअरी महीने में फ्रेंक सिंडिकेट की स्थापना हुई। सिंडिकेट की पूंजी पहले पहल बीस लाख फ्रेंच थी। इसमें से दस लाख की पूंजी फ्रेंच नार्दर्न कम्पनी की थी। पांच लाख फ्रेंक यूरप के प्रसिद्ध कुबेर राथ चाइल्ड की थी; और शेष पूंजी अन्य प्रसिद्ध लोगों की थी, परन्तु विलक्षणता यह हुई कि सिंडीकेट की स्थापना होने के एक ही दिन पहले उक्त विचार का जनक थोम डीगेमेंट, ६८ वर्ष की अवस्था में परलोक सिधार गया, और अपने विचार को सफलता के रूप में देखने के लिए वह जीवित नहीं रहा।

लंडन की ओर से बोगदा के मुहँ और रेलवे लाइन का नकशा।

फ्रेंच सरकार की ओर से सिंडीकेट के प्रयत्न को अनुमोदन प्राप्त हुआ, और फ्रेंच पार्लिमेंट में उपर्युक्त काम की सम्मति का कायदा अगस्त १८७४ में पास हुआ। इस कायदे के अनुसार फ्रेंच सिंडीकेट कम्पनी को ९९ वर्ष के इकरार का अधिकार मिला; और काम समाप्त होने पर तीस वर्ष तक दूसरी किसी भी प्रतिस्पर्धी कम्पनी को इसी प्रकार का दूसरा बोगदा न बनाने देने की शर्त फ्रेंच सरकार ने स्वीकार की। इन्हीं दिनों के लगभग भिन्न भिन्न सात इंजिनियरों ने भिन्न भिन्न सात उपाय ढूँढ निकाले। वे इस प्रकार हैं:—

(१) सन् १८६६ में चालमर नामक इंजिनियर ने, ईंटों से बँधे हुए नल के भीतर से रेलगाड़ी ले जाने का उपाय प्रकट किया, और वर्ना टापू पर एक स्टेशन बना कर नल में हवा, प्रकाश, इत्यादि लाने की योजना निश्चित की। इस काम के लिए एक करोड़ बीस लाख पौंड का तख़मीना किया गया।

(२) मार्सडेन नामक इंजिनियर ने तल पर दो नल डालने की योजना कायम रखी; और ईंटों की जगह सीमेंट बाज़ू कंकरीट से तैयार करने की सम्मति दी; और इस भय से कि शत्रुओं के द्वारा शीघ्र विध्वंस न हो जाये वर्ना टापू पर स्टेशन न रखते हुए, लम्बा सा नल ही कायम रख कर, आवश्यक हवा और प्रकाश यंत्र की सहायता से भीतर पहुँचाया जाय। इस काम के खर्च का अनुमान एक करोड़ लाख ६० हजार पौंड किया गया।

(३) बेटमन नामक इंजिनियर ने डोवर से केप ग्रांज़ेनेज़ की ही लाइन कायम रखी; और लोहे के ढले हुए नल की लाइन की योजना बतलाई। इस काम के व्यय का इस्टिमेट अस्सी लाख पौंड किया गया।

(४) बोलडर्न नाम के इंजिनियर ने थोड़ा बहुत फेरफार [illegible]

उपर्युक्त योजना ही निश्चित रही; यह इंजिनियर प्रख्यात "इंजिनियर" पत्र का सम्पादक था।

(५) सन् १८७० में पेज नामक इंजिनियर ने १८ मील लम्बाई का पुल बनाने की युक्ति निकाल कर उसके नक्शे तैयार किये।

(६) केले और डोवर के बीच में खाड़ी के तल पर फौलादी नल की लाइनें तैयार करके उन पर सवा दो फीट मुटाई का ईंटों का बँधाई का काम किया जाय; और नल का व्यास तेरह फीट रख कर भीतर से गाड़ी ले जावें। इसके खर्च का अनुमान पचास लाख पौंड लगाया गया।

(७) इसके बाद विशप नामक इंजिनियर ने अंडाकृति ढले हुए नल की लाइन की युक्ति निकाली। इस लाइन की लम्बाई २१½ मील होनी थी। नल के पत्र की मुटाई ? इंच लगा कर उस पर एक फुट मुटाई का ईंटों का बँधाई का काम निश्चित किया गया था। इस काम के खर्च का अनुमान प्रति मील दस लाख पौंड किया गया था।

इसके बाद सन् १८८१ में पार्लिमेंट की एक बैठक में इस काम की मंजूरी प्राप्त करने के लिए चेनल टनल नामक एक प्रसिद्ध कम्पनी ने बिल पेश किया। इस बिल की एक दो पेशी हुई थीं, इतने ही में, वाद-विवाद के पूर्ण होने के पहले, सन् १८८३ में फिर एक दूसरी नवीन प्रतिस्पर्धी कम्पनी उत्पन्न हुई; और उसने इस कार्य के लिए मंजूरी प्राप्त करने का बिल पार्लिमेंट में पेश किया। इन दोनों कम्पनियों के बिल परस्पर-विरुद्ध थे; और उन्होंने काम करने की शर्तें, परस्पर चढ़ा-ऊपरी करके लगाई थीं। इस लिए पार्लिमेंट के सामने यह एक बड़ा वादग्रस्त प्रश्न उपस्थित हो गया; और उस समय के अधिकारीवर्ग पर एक बड़ी अप्रायशोगी ही का काम आ पड़ा। इसी वर्ष के एप्रिल मास की २३ वीं तारीख को कामन्स सभा में चेम्बरलेन नामक सभासद ने इस प्रकार का प्रस्ताव पेश किया कि इंगलैंड और फ्रांस के बीच में बोगदा बनाने की सम्मति देने अथवा न देने का विचार करने के लिए एक कमेटी नियत की जाये। सभा में बहुत चर्चा होने के बाद यह प्रस्ताव बहुमत से १०९ विरुद्ध मतों से पास हो गया, और [illegible] लार्ड्स और कामन्स लोगों की कमेटी स्थापित की गई।

[illegible]

१ लार्ड [illegible], २ लार्ड [illegible], ३ लार्ड [illegible], ४ लार्ड [illegible] और ५ लार्ड [illegible]। १ [illegible] २ मि० [illegible], ३ मि० [illegible] ४ मि० [illegible] इत्यादि। इस कमेटी के [illegible] और बहुत [illegible] होने के बाद कमेटी ने [illegible] पृष्ठों का [illegible] रिपोर्ट प्रकाशित किया। [illegible]

[illegible]

सात वर्ष के बाद सन् १९१३ में इस काम के लिए फिर प्रयत्न शुरू हुआ; और लोकमत भी फिर बहुत कुछ अनुकूल कर लिया, तथा पार्लिमेंट के सामने एक बिल उपस्थित किया गया। यह बहुत कुछ सफल हुआ। इसी वर्ष के अगस्त मास में ९० [illegible] का एक डेपुटेशन प्रधान मंत्री से मिलने के लिए भेजा गया। डेपुटेशन में बड़े बड़े प्रसिद्ध इंजिनियर और बहुत से राजनीतिज्ञ थे। इस डेपुटेशन ने यह प्रार्थना की कि निम्नलिखित शर्तों का विचार कर के तदनुसार कार्य प्रारम्भ करने की स्वीकारी दी जाये सन् १८८३ से सन् १९०७ तक इंगलैंड और फ्रांस के परस्पर नाते परिवर्तन हुआ; और मित्रता की वृद्धि हुई, इस लिए सैनिक दृष्टि इस काम के विरुद्ध जो कारण पेश किये जाते थे वे कारण अब होगये; इस कारण इस कार्य के प्रारम्भ करने की मंजूरी देने में अड़चन न होनी चाहिए, सैनिक विद्वान् तथा आफ़िसर लोगों की तजवीजें और शर्तें उचित जान पड़ेंगी वे सब सैनिक दृष्टि से [illegible] पाली जायेंगी।

अब, सरकारी ओर से सैनिक दृष्टि से जो अड़चनें पेश की इस प्रकार हैं—(१) शत्रु का दल अथवा शत्रुपक्ष की भरी हुई बोगदा में एकदम आकर बोगदा अधिकार में ले कर शत्रु को अँगरेज़ी किनारे पर उतार सकेगी; (२) जलमार्ग से डोवर और [illegible] के बन्दरों पर अकस्मात् हमला कर के बोगदा के दोनों द्वार [illegible] में ले कर बोगदा के द्वारा शत्रुसेना इंगलैंड के किनारे पर उतारी जा सकेगी, और ऐसे आकस्मिक प्रसंग में, अँगरेज़ी जलसेना कितनी ही बलवती क्यों न हो, तथापि वह कुछ भी प्रतिबन्ध न कर सकेगी; (३) किसी भी शत्रु की युक्ति-प्रयुक्ति से लंडन शहर और [illegible] के किनारे के बीच का आने-जाने का मार्ग बन्द किया जा सकेगा, और बोगदा सहज ही शत्रु के अधिकार में आ सकेगा, तथा इस प्रकार इंग-लैंड पर हमला किया जा सकेगा; (४) बोगदा का दूसरा मुँह फ्रांस के अधिकार में रहना मानो, यह एक ही बात, जर्मनी की उक्त फ्रांस विजय करने की इच्छा को प्रबल करने के लिए और भी अधिक उत्तेजना देगी।

उपर्युक्त अड़चनों में से अन्तिम अड़चन को छोड़ कर अन्य तीनों अड़चनें दूर करने के लिए अनेक युक्तियाँ और मार्ग सूचित किये गये। उनमें से अनेक मार्ग बालिशपन के तथा हास्यास्पद होने से अग्राह्य हैं, इस कारण उनका यहाँ दिग्दर्शन करने की आवश्यकता नहीं। और कुछ युक्तियाँ प्रारम्भ में यद्यपि लाभदायक जान पड़ती थीं, तथापि परि-णाम में हानिकारक ही थीं, अतएव वे त्याज्य निश्चित की गईं।

प्रसिद्ध इंजिनियर सर [illegible] ने सन् १८८२ में ११ मई को इन्हीं युक्तियों के विषय में [illegible] नामक लेख में एक अत्यन्त [illegible] और महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान में भिन्न भिन्न उपायों का मनोहर चित्र अंकित किया, और सब का विचार करने के बाद यह निश्चय हुआ कि बोगदा [illegible] और [illegible] के हाथ में पूर्ण रूप [illegible] जायँ; और [illegible] प्रसंग में उन युक्तियों का [illegible] उपयोग करने में वे [illegible] न दिखावें। [illegible]

[illegible]

[illegible] के पीछे का महाद्वार भी बन्द कर के गाड़ी को बांध लिया जाय और इस प्रकार उसे पूर्णतया सेना के अधिकार में कर लिया जावे। ऐसी दशा में, पहली गाड़ी की सहायता के लिए पीछे से यदि शत्रु की दूसरी गाड़ी आती होगी, तो वह भी पिछले महाद्वार पर ही रुक जायगी। इस युक्ति से बोगदे का पूर्णतया किसी प्रकार से भी नाश न करते हुए, मौके पर, शत्रु की ओर से होनेवाले हमले का उचित रीति से प्रतिबन्ध किया जा सकेगा। दोनों महाद्वार खुले रखने अथवा बन्द करने की जवाबदारी पूर्णतया सैनिक लोगों के हाथ में [illegible]गी, और उसके लिए एक सैनिक चौकी समुद्र तीर पर बोगदे के [illegible] पर ही बनानी होगी।

(२) इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उपर्युक्त तीनों [illegible] स्वसंरक्षण के लिए दूर ही हो जायँगी। ऐन मौके पर उपयोग में [illegible]ने के लिए बोगदा के मुँह पर ही पानी के बड़े हौज़ भरे हुए तैयार [illegible]ने होंगे, और जिस समय आवश्यकता होगी, उनका पानी बोगदे [illegible] एकदम छोड़ दिया जायगा, इससे बोगदे का मुँह जलमय हो [illegible]यगा, और शत्रु की गाड़ी इंगलैंड के किनारे पर नहीं जा सकेगी।

(३) उपर्युक्त दोनों युक्तियां ऐन मौके पर यदि निष्फल होती हुई [illegible]र पड़ेंगी तो अन्तिम और विश्वसनीय युक्ति अमल में लाने के लिए [illegible] निम्नलिखित योजना की जा सकेगी। बोगदा के मुँह पर ही, बोगदे [illegible] ऊपरी भाग और खाड़ी के तल के बीच में एक बड़ी कोठरी तैयार [illegible]र के उसमें बारूद भर रखी जाय; और शत्रु के आगमन का समाचार [illegible]ते ही, ऐन मौके पर बारूद का कोश एकदम भक से उड़ा कर [illegible]गदा के मुख का भाग एकदम ढहा दिया जाय। इस युक्ति के द्वारा [illegible]गदा का और इंगलैंड के किनारे का सम्बन्ध पूर्णतया तोड़ कर शत्रु [illegible] मार्ग पूर्णतया बन्द किया जा सकेगा।

उपर्युक्त काम के नक्शे बनाने के पहले भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से [illegible]गरी भाग की जांच करने के लिए प्रसिद्ध जानकार लोगों की एक [illegible]भा कर के इस बात का विचार किया गया कि भूगर्भशास्त्र की दृष्टि [illegible] रेलवे लाइन कौन कौन से भाग से ले जावे। इस सभा ने यह निश्चय [illegible]या कि खाड़ी के तल के १०० फीट नीचे बोगदा बनाना हिफ़ाज़त [illegible] काम होगा। क्योंकि तल के नीचे क्रीटेशन जाति के पत्थर के तह [illegible] मुटाई डोवर की तरफ़ ८७ फीट है; और फ्रांस की ओर ८० फीट [illegible]। इन चट्टानों से पानी झिरने की सम्भावना बहुत ही कम रहती है, [illegible]र कुछ जगहों में यदि थोड़ा सा पानी झिरा भी तो वहाँ तुरन्त [illegible]पाय भी किया जा सकेगा।

इसके बाद दो गाड़ियां जाने योग्य एक ही बड़ा बोगदा बनाने की [illegible]गह दो छोटे भिन्न भिन्न बोगदे बनाने का निश्चय किया गया। और [illegible]नके बीच बीच में आड़े मार्ग जगह जगह रखे जायँगे, जिन से [illegible]काश और हवा इत्यादि के आने-जाने में, सुभीता होगा। इसके [illegible]सिवाय यदि कारणवश, एक बोगदा, मरम्मत के लिए बन्द रखना [illegible]ड़ा, तो सब गाड़ियां दूसरे बोगदे से जा सकेंगी। बोगदा में सब जगह [illegible]प्रकाश बिजली की सहायता से किया जायगा; और सब गाड़ियां भी बिजली की सहायता से चलाई जायँगी। इन दोनों कामों के लिए बिजली एक ही यंत्र के द्वारा नहीं पहुँचाई जायगी; क्योंकि इंजिन चलानेवाली बिजली की शक्ति यदि एकाएक बिगड़ गई, तो कम से कम गाड़ी तो अँधेरे में खड़ी न रहे—इस लिए बिजली का कारखाना बिलकुल अलग रखा जायगा। वायु यंत्र की सहायता से पहुँचाई जायगी। गाड़ी बिजली की शक्ति से चलाना बहुत सुविधाजनक और लाभदायक होगा। कोयले के धुएं के कारण बोगदा खराब न होगा; और न हवा दूषित होगी, प्रत्येक १० मिनट में एक एक रेलगाड़ी ५०० मनुष्य ले कर आने के लिए, स्वच्छ वायु की पहुँच प्रति मिनट में ५४००० घनफुट के हिसाब से बोगदे में यंत्र की सहायता से करनी पड़ेगी। और इतनी वायु छोड़ने का वेग साधारण हवा के झोंके के वेग के बराबर होगा। सम्पूर्ण बोगदा की लम्बाई ३१ मील होगी; उसमें से साढ़े पन्द्रह मील ब्रिटिश कम्पनी के हिस्से में आवेगी, और [illegible]नी ही फ्रेंच कम्पनी के भाग में रहेगी। दो बोगदे १८ फीट व्यास के बनाये जायँगे; और उनका अन्तर ३६ फीट होगा। जानकार इंजिनियरों के अनुमान के अनुसार प्रति दिन खुदाई का काम १७ गज होगा। इतना काम होने के लिए, रविवार को छोड़ कर २४ घंटे काम जारी रखना पड़ेगा। मज़दूरों की तीन पालियां आठ आठ घंटे की रखनी पड़ेंगी। अर्थात् प्रत्येक सिरे से प्रति वर्ष तीन मील काम होगा; और कुल काम पूरा होने के लिए कम से कम ६ वर्ष लगेंगे। अच्छा, अब इस बोगदे का व्यापारी दृष्टि से भी थोड़ा सा विचार करना चाहिए। अनुमान है कि कुल खर्च एक करोड़ साठ लाख पौंड लगेगा। प्रति वर्ष लंडन से सब मार्गों से फ्रांस को आने जानेवालों की कुल संख्या औसत से २० लाख होती है। अर्थात् इतनी बड़ी मुसाफिरों की संख्या वहन करने के लिए प्रति दिन कुल १० से १५ गाड़ियां तक छोड़नी पड़ेंगी। तीनों दरजों की टिकटों की औसत आमदनी १० शिलिंग होगी। इस हिसाब से तीनों दरजों की केवल टिकटों की आमदनी १०००,००० पौंड होगी। इस बोगदा के कारण फलफलहरी और मांसमछली, इत्यादि, शीघ्र खराब होनेवाले पदार्थों के ढोने की आमदनी अधिक होगी, ऐसा अनुमान है। क्योंकि इस समय लंडन से पेरिस को यदि फलफलहरी, इत्यादि ले जाना होता है तो बीच में उसको दो तीन बार चढ़ाना-उतारना पड़ता है; और समय बहुत लग जाने के कारण सामान की खराबी होती है। प्रति वर्ष इस माल का वज़न लगभग ६००,००० टन होगा। अर्थात् प्रति टन १० शिलिंग के हिसाब से ३००,००० पौंड आमदनी होगी, और अन्य पार्सललगेज की आमदनी प्रति वर्ष १००,००० यदि रखी जाय तो कुल आमदनी:—

१०००,०००	मनुष्य
३००,०००	फल-फलहरी, मांस इत्यादि।
१००,०००	अन्य लगेज की आमदनी।
१४००,०००	
२५०,०००	
११५०,०००	

इसमें माल की आमदनी बिलकुल ही नहीं रखी। उसे अलग ही समझिये। कुल आमदनी १४००,००० हुई। इसमें से वार्षिक खर्च का अनुमान २५०,००० अर्थात् मूलधन पर कुल साढ़े सात फीसदी आमदनी होगी। ऐसी दशा में पूंजीवाले को कम से कम साढ़े सात फीसदी लाभ होगा। इससे यह मालूम होजायगा कि कोई मनुष्य भी इस काम में अपनी पूंजी लगाने में आनाकानी नहीं करेगा।

यह बोगदा तैयार हो जाने पर लंडन शहर से यूरप के भिन्न भिन्न देशों को जाने के लिए पांच डाकगाड़ियां छूटेंगी। वे इस प्रकार:—

१ सुबह ६ बजे लंडन से पेरिस की ओर जानेवाली "पेरिस एक्सप्रेस" छोड़ी जायगी।

२ सुबह दस बजे जर्मनी-आस्ट्रिया-हंगेरी से बुखारेस्ट की ओर अथवा आस्ट्रिया-हंगेरी से कांस्टैंटिनोपल की ओर जानेवाली कांटिनेंटल एक्सप्रेस छोड़ी जायगी।

३ सुबह ११ बजे "नार्ड एक्सप्रेस" लंडन से चल कर ब्रुसेल्स, ऐंटवर्प, कॉनिग्ज़बर्ग, इत्यादि शहरों से पेट्रोग्राड, मास्को, [illegible], इत्यादि रूस के शहरों की ओर जायगी।

४ लगभग १२ बजे "सदर्न एक्सप्रेस" लंडन से चल कर दक्षिण फ्रांस और दक्षिण जर्मनी से ट्यूरिन, मिलन, रोम, इत्यादि शहरों से भूमध्य सागर के किनारे के ब्रिंडिसी शहर तक जायगी।

[illegible] [illegible]डन से चल [illegible] शहरों से [illegible]

इस प्रकार इस खाड़ी के नीचे के मनुष्य-निर्मित भुयारे के द्वारा, इंगलैंड के ईश्वरनिर्मित टापू के रहते हुए भी, भौगोलिक दृष्टि से नैसर्गिक अड़चनों पर विजय प्राप्त करते हुए, लंडन से सब देशों का रेल-मेल आरम्भ हो जायगा।

फादर डेमियन।

(कोढ़ में काम करनेवाले धर्मोपदेशक)

जे का रंजले गांजले। त्यांसी म्हणे जो आपुले।
तोचि साधु ओळखावा। देव तेथेंचि जाणावा॥
भूतांची दया हे भांडवल संतां।
आपुली ममता नाहीं देहीं॥
तुका म्हणे सुख पराविया सुखें।
अमृत हे मुखें स्रवतसे॥

—तुकाराम।

अर्थ:—तुकाराम जी स्वामी कहते हैं, कि—"दीन और दुखियों को, जो अपना कहता है उसी को साधु जानना चाहिए; और परमेश्वर ऐसे मनुष्यों में ही वास करता है। सर्व भूतों पर दया करना ही सन्तों का मुख्य काम है, ये कभी अपने सुख की ओर ध्यान नहीं देते, वे दूसरों को सुख होना ही अपना सुख समझते हैं, और अमृत के समान वचन मुख से निकालते हैं।

मनुष्य प्राणी सदा यह आशा रख कर इस संसार में फँसा रहता है कि 'हमको सुख होवे, ज्ञान होवे, द्रव्यप्राप्ति होवे; वैभव, सत्ता तथा कीर्ति आदि मिलें। परन्तु करोडों में कुछ ऐसे श्रेष्ठ महात्मा भी होते हैं कि जो उक्त स्वार्थों की ओर ध्यान न देते हुए, अपना जीवन परोपकार में लगाते हैं, और इसी कारण उनके चरित्र अत्यन्त अनुकरणीय तथा पूज्य होते हैं। उक्त प्रकार के महात्माओं में से ही एक महात्मा फादर डेमियन हो गये हैं। जिनका चरित्र यहाँ संक्षेप में दिया जाता है।

फादर डेमियन का मूल नाम जोसेफ था। इनका जन्म बेलजियम देश के ट्रेमेल नामक गाँव में सन् १८४१ ई० में हुआ। उनके मां-बाप बडे धर्मशील थे, वे ईसाई धर्मान्तर्गत कैथोलिक पंथ के थे। जोसेफ के बडे भाई पेरी पांफिली कालेज में अध्ययन करते थे, और वह धर्मोपदेशक की परीक्षा देनेवाले थे। परन्तु जोसेफ के पिता उनको व्यापारिक कार्य में लगाना चाहते थे, इसलिए वे उनको शिक्षा भी उसी भांति की देते थे। परन्तु जोसेफ बचपन से ही बड़े भगवद्भक्त और उदार वृत्ति के थे। एकबार वे अपने पिता के साथ भाई से मिलने गये, वहाँ पर उन्होंने यह निश्चय किया कि कालेज में अध्ययन कर के भाई की तरह धर्मोपदेशक बनना चाहिए। उन्होंने अपना यह हेतु अपने पिता से भी प्रकट किया। परन्तु उस समय उनकी सम्मति इसके अनुकूल न हुई। तथापि अन्त में घर जा कर फिर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त की; और उसी कालेज में धर्माध्ययन करने लगे।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर उनके भाई पॅसिफिक महासागर के सेंडविच द्वीप में धर्मोपदेशक का काम करने के लिए चले। सारी तैयारी हुई; परन्तु उस समय पर वे बुखार से बीमार होगये और इस कारण उनका जाना थोडे समय के लिए रुक गया। जोसेफ का अध्ययन जारी था। जब उन्होंने देखा कि बीमारी के कारण हमारे भाई नहीं जा सकते, तब उन्होंने स्वयं मिशन के अधिकारियों के पास अर्जी दी कि भाई के बदले सेंडविच द्वीप को मुझे भेजा जाय। उनका उत्साह तथा दृढ़ता देख कर, अधिकारियों ने उनको वहाँ जाने की आज्ञा दे दी, और वे बहुत ही शीघ्र १८६३ ई० में सेंडविच द्वीप में ... का काम करने गये।

फादर डेमियन।

पॅसिफिक महासागर में जो आठ द्वीपों का समुदाय है उसको हाव
अथवा सेंडविच द्वी... कहते हैं। इस द्वीप में ज्वालामुखी पहाड
और उनकी चोटियों से खनिज पदार्थों के गले हुए गोले और धु
सदैव निकलता रहता है। पूर्वकाल में इस द्वीप को कोई न जान
था। १७७८ ई० में कप्तान कुक ने इसका अन्वेषण किया। इस द्वीप
पहिले जंगली लोग रहते थे। वहाँ की हवा अच्छी और जमीन कृ
करने के योग्य थी, पानी भी अच्छा बरसता था; इसलिए पहले अ
रिका और यूरपखंड के ही मिशनरी (धर्मोपदेशक) वहाँ भेजे गये
उन धर्मोपदेशकों ने वहाँ पाठशाला स्थापन की; और वहाँ के मू
निवासियों को लिखना-पढ़ना सिखाया। कृषि और कला-कौशल
ज्ञान देकर उनको उं... जैनावस्था में लाये। वहाँ के लोगों में रक्तपि
नामक कोढ बहुत फैला हुआ था, और
रोगग्रस्त लोग सारे द्वीप भर में फैले हुए थे
इस कारण वह रोग बढता ही जाता था
पाश्चात्य देशवालों का उस द्वीप से सम्बन्ध बढ़ने
के कारण उनको वह स्थिति बहुत ही शोचनीय
मालूम होने लगी। और बहुत लोगों ने यह
निश्चित किया, कि यह रोग स्पर्शजन्य है, इस
लिए रोगग्रस्त लोगों की बस्ती अलग होनी
चाहिए। और उनके प्रयत्न से मोलोकाई नामक
छोटा सा द्वीप रोगग्रस्त लोगों का स्वतन्त्र
निवासस्थान नियत किया गया। परन्तु उनमें
कुछ सम्बन्ध न रखने के कारण अथवा उनकी
आवश्यकताओं का कोई अधिक विचार न करने
के कारण उनकी दशा शोचनीय थी।

उन लोगों को पीने के लिए पानी, खाने के
लिए अन्न तथा शरीर के लिए कपड़ा भी पूरा
पूरा नहीं मिलता था। उनको औषधि, इत्यादि
देने के लिए डाक्टर भी न था। वे आलस्य में
समय व्यतीत करते थे, लड़ाई झगड़ा करते रहते
थे, मनमाना बर्ताव करते रहते थे और पशुओं की
भांति निंद्य काम करते रहते थे, क्योंकि कोई भी उन
... था। सारांश, उन लोगों की स्थिति अत्यन्त करु
... भेजने के लिए जब रक्तपित्त के रोगियों को
... थे, भाग जाते थे, और न ले जाने के लिए
पर देखरेख रखनेवाला ...नके सम्बन्धी भी बहुत दुःखित होते थे। यह
णास्पद थी। उस द्वीप ...यक था। उसे देख कर फादर डेमियन का
पकडते थे तब वे रोते ... हो जाता था।
विनती करते थे, और उ... कर हवाई द्वीप में धर्मोपदेशक का काम
देखाव बहुत ही हृदयद्र... मंदिर का स्थान नियत करने के लिए जिस
कलेजा दुःख से टूक टूक हो... नहीं थी उस समय यह बात निकली कि
फादर डेमियन यहाँ ... रोगियों के लिए डाक्टर नहीं है, उनके पर
करने लगे। एक नवीन ...स्माल करनेवाला नहीं है, इसलिए, यदि कोई
समय धर्मोपदेशक सभा ...रे और उनको सब प्रकार से सहायता करे
मोलोकाई द्वीप के कोढ़ी ...उसका बड़ा उपकार होगा। परन्तु उन रोग-
नहीं है, उनका कोई दे... आकर अपनी जान धोखे में डालने के लिए
धर्मोपदेशक वहाँ जाकर ... किसी ने जिरा तक न हिलाई, सब स्तब्ध
तो उन दीन लोगों पर ...मियन यह काम करने के लिए राजी होग-
ग्रस्त लोगों की बस्ती में ... बड़ा आश्चर्य हुआ, सब ने उनका ...
कोई उत्पन्न न हुआ और
बैठे रहे। परन्तु फादर डे...आशीष और सम्मान तथा सत्कार ...
इस पर सब लोगों को
मन्दन किया।
मोलोकाई द्वीप ...

फादर डेमियन।

(कोढ में काम करनेवाले धर्मोपदेशक)

जे का रंजले गांजले। त्यांसि म्हणे जो आपुले।
तोचि साधु ओळखावा। देव तेथेंचि जाणावा॥
भूतांची दया हे भांडवल संतां।
आपुली ममता नाहीं देहीं॥
तुका म्हणे सुख पराविया सुखें।
अमृत हे मुखें स्रवतसे॥

—तुकाराम।

अर्थ—तुकाराम जी स्वामी कहते हैं, कि—"दीन और दुखियों को, जो अपना कहता है उसी को साधु जानना चाहिए; और परमेश्वर ऐसे मनुष्यों में ही वास करता है। सर्व भूतों पर दया करना ही सन्तों का मुख्य काम है, वे कभी अपने सुख की ओर ध्यान नहीं देते, वे दूसरों को सुख होना ही अपना सुख समझते हैं, और अमृत के समान वचन मुख से निकालते हैं।

मनुष्य प्राणी सदा यह आशा रख कर इस संसार में फँसा रहता है कि 'हमको सुख होवे, ज्ञान होवे, द्रव्यप्राप्ति होवे; वैभव, सत्ता तथा कीर्ति आदि मिलें। परन्तु करोड़ों में कुछ ऐसे श्रेष्ठ महात्मा भी होते हैं कि जो उक्त स्वार्थों की ओर ध्यान न देते हुए, अपना जीवन परोपकार में लगाते हैं; और इसी कारण उनके चरित्र अत्यन्त अनुकरणीय तथा पूज्य होते हैं। उक्त प्रकार के महात्माओं में से ही एक महात्मा फादर डेमियन हो गये हैं। जिनका चरित्र यहाँ संक्षेप में दिया जाता है।

फादर डेमियन का मूल नाम जोसेफ़ था। इनका जन्म बेलजियम देश के ट्रेमेल नामक गाँव में सन् १८४१ ई० में हुआ। उनके माँ-बाप बड़े धर्मशील थे, वे ईसाई धर्मान्तर्गत कैथोलिक पंथ के थे। जोसेफ़ के बड़े भाई पेरी पांफिली कालेज में अध्ययन करते थे, और वह धर्मोपदेशक की परीक्षा देनेवाले थे। परन्तु जोसेफ के पिता उनको व्यापारिक कार्य में लगाना चाहते थे, इसलिए वे उनको शिक्षा भी उसी भाँति की देते थे। परन्तु जोसेफ़ बचपन से ही बड़े भगवद्भक्त और उदार वृत्ति के थे। एकबार वे अपने पिता के साथ भाई से मिलने गये, वहाँ पर उन्होंने यह निश्चय किया कि कालेज में अध्ययन कर के भाई की तरह धर्मोपदेशक बनना चाहिए। उन्होंने अपना यह हेतु अपने पिता से भी प्रकट किया। परन्तु उस समय उनकी सम्मति इसके अनुकूल न हुई। तथापि अन्त में घर जा कर फिर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त की; और उसी कालेज में धर्माध्ययन करने लगे।

[illegible]न प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर उनके भाई पॅसिफ़िक महासागर के सैंडविच द्वीप में धर्मोपदेशक का काम करने के लिए चले। सारी तैयारी हुई; परन्तु ऐन समय पर वे बुखार से बीमार होगये और इस कारण उनका जाना थोड़े समय के लिए रुक गया। जोसेफ़ का अध्ययन जारी था। जब उन्होंने देखा कि बीमारी के कारण हमारे भाई नहीं जा सकते, तब उन्होंने स्वयं मिशन के अधिकारियों के पास अर्जी पेश की; कि भाई के बदले सैंडविच द्वीप को मुझे भेजा जाय। [illegible]नका उत्साह तथा दृढ़ता देख कर, अधिकारियों ने उनको वहाँ जाने [illegible]ी आज्ञा दे दी, और वे बहुत ही शीघ्र १८६३ ई० में सैंडविच द्वीप में [illegible]र्मोपदेशक का काम करने गये।

फादर डेमियन।

[illegible]क महासागर में जो आठ द्वीपों का समुदाय है [illegible] पॅसिफ़िक सैंडविच द्वीप कहते हैं। इस द्वीप में ज्वालामु[illegible] अथवा [illegible]की चोटियों से खनिज पदार्थों के गले हुए गोले [illegible] और उन[illegible]कलता रहता है। पूर्वकाल में इस द्वीप को [illegible] सदैव [illegible] १७७८ ई० में कप्तान कुक ने इसका अन्वेषण किया [illegible] था। [illegible]जंगली लोग रहते थे। वहाँ की हवा अच्छी और [illegible] पहिले [illegible] योग्य थी, पानी भी अच्छा बरसता था; इसलिए [illegible] करने के [illegible]र यूरपखंड के ही मिशनरी (धर्मोपदेशक) वहाँ [illegible] रिका औ[illegible]पदेशकों ने वहाँ पाठशाला स्थापन की; और वह[illegible] उन धर्मों को लिखना-पढ़ना सिखाया। कृषि और कला-[illegible] निवासि[illegible] उनको उर्जितावस्था में लाये। वहाँ के लोगों में [illegible] ज्ञान देक[illegible] नामक कोढ़ बहुत फैला हुआ था, [illegible] रोगग्रस्त लोग सारे द्वीप भर में फैले [illegible] इस कारण वह रोग बढ़ता ही जात[illegible] पाश्चात्य देशवालों का उस द्वीप से सम्बन्[illegible] के कारण उनको वह स्थिति बहुत ही शो[illegible] मालूम होने लगी। और बहुत लोगों [illegible] निश्चित किया, कि यह रोग स्पर्शजन्य है, [illegible] लिए रोगग्रस्त लोगों की बस्ती अलग [illegible] चाहिए। और उनके प्रयत्न से मोलोकाई ना[illegible] छोटा सा द्वीप रोगग्रस्त लोगों का स्व[illegible] निवासस्थान नियत किया गया। परन्तु उ[illegible] कुछ सम्बन्ध न रखने के कारण अथवा उन[illegible] आवश्यकताओं का कोई अधिक विचार न क[illegible] के कारण उनकी दशा शोचनीय थी।

उन लोगों को पीने के लिए पानी, खाने के [illegible] लिए अन्न तथा शरीर के लिए कपड़ा भी पूरा [illegible] पूरा नहीं मिलता था। उनको औषधि, इत्यादि [illegible] देने के लिए डाक्टर भी न था। वे आलस्य में समय व्यतीत करते थे, लड़ाई झगड़ा करते रहते थे, मनमाना बर्ताव करते रहते थे और पशुओं की भाँति निंद्य काम करते रहते थे; क्योंकि कोई भी उन [illegible] रखनेवाला न था। सारांश, उन लोगों की स्थिति अत्यन्त करु[illegible] पर देखरेख। उस द्वीप में भेजने के लिए जब रक्तपित्त के रोगियों को णास्पद थी तब वे रोते थे, भाग जाते थे, और न ले जाने के लिए पकड़ते थे। [illegible]थे, और उनके सम्बन्धी भी बहुत दुःखित होते थे। यह विनती करते ही हृदयद्रावक था। उसे देख कर फादर डेमियन का दिखाव[illegible] बहुत से टूक टूक हो जाता था।

कलेजा दुःख[illegible]मियन यहाँ पहुँच कर हवाई द्वीप में धर्मोपदेशक का काम फादर डे[illegible] एक नवीन मंदिर का स्थान नियत करने के लिए जिस करने लगे। [illegible]देशक सभा हो रही थी उस समय यह बात निकली कि समय धर्मोप[illegible] के कोढ़ी रोगियों के लिए डाक्टर नहीं है, उनके घर मोलोकाई [illegible]का कोई देखभाल करनेवाला नहीं है, इसलिए, यदि कोई नहीं है, उन[illegible] यहाँ जाकर रहे और उनको सब प्रकार से सहायता करे धर्मोपदेशक लोगों पर उनका बड़ा उपकार होगा। परन्तु उन रोग- तो उन दीन की बस्ती में आकर अपनी जान धोखे में डालने के लिए ग्रस्त लोगों [illegible] हुआ और किसी ने जिरह तक न दिखाई, सब स्तब्ध कोई उद्यत [illegible] फादर डेमियन यह काम करने के लिए राजी होगये- बैठे रहे। [illegible] लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, सब ने उनका अभि- इस पर सब[illegible] नन्दन किया। [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] मोलोकाई

बम्बई की जी. आई. पी. रेलवे के कर्मचारियों की हड़ताल।

कर्मचारीगण।

कुटुम्ब-सहायक-समिति हड़तालियों को अनाज बांट रही है।

बम्बई की जी. आई. पी. रेल्वे के कर्मचारियों की हड़ताल।

कर्मचारीगण।

कुटुम्ब-सहायक-समिति हड़तालियों को अनाज बाँट रही है।

राष्ट्रों की उत्पत्ति और विकास।

(लेखक—श्रीयुत वासुदेव गोविन्द आपटे, बी॰ ए॰ ।)

मनुष्यप्राणी और राष्ट्र की तुलना।

मनुष्य, कुटुम्ब, समाज, गाँव, देश और राष्ट्र, इत्यादि के अनुसार यदि परम्परा ली जाय तो मनुष्य उस परम्परा का आधार और राष्ट्र उस परम्परा का शिखर कहा जायगा। इन सब का विकास होता है; और वह कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार ही होता है। मनुष्यदेह और राष्ट्रदेह के संगठन में यद्यपि भिन्नता है, तथापि एक ही सृष्टि-नियम से वे दोनों बद्ध हैं। मनुष्य और उसके कुटुम्ब में जैसा ऐहिक और पारमार्थिक दुहरा सम्बन्ध रहता है वैसा ही राष्ट्र और उसके घटकावयवों (अर्थात् उसकी व्यक्तियों) में भी ऐहिक और पारमार्थिक सम्बन्ध है। भूमि, नदियां, पर्वत, अथवा उनसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं से, राष्ट्र राष्ट्र में विनिमयादि जो व्यवहार होते हैं वे ऐहिक हैं; और स्वाभिमान, स्वदेशप्रीति, देशाभिमान, स्वातंत्र्यप्रीति, इत्यादि उच्च दर्जे के गुणों का जिनमें उपयोग होता है उनको हम पारमार्थिक कहेंगे। वास्तव में पारमार्थिक शब्द का जो [illegible] अर्थ है उस अर्थ से इनको पारमार्थिक अवश्य नहीं कह सकते; [illegible] ऐसे व्यवहार में एक प्रकार का पावित्र्य का तेज रहता है। [illegible] अर्थ में यहां पारमार्थिक शब्द की योजना की है।

मनुष्यप्राणी और राष्ट्र में दूसरे एक विषय में भी अत्यन्त सादृश्य है। इस संसार में मनुष्यप्राणी को पद पद में जीवनार्थ कलह करना पड़ता है, और जो सब से अधिक योग्य होता है, वही अखीर तक [illegible] है। यह नियम है; और इस नियम के कारण यह जीवनार्थ [illegible] उसके जन्म से लेकर और अन्त तक बराबर जारी है। बस, [illegible] हाल राष्ट्रों का भी है। राष्ट्रों के जीवन में भी एक प्रकार की [illegible] रहती है, और जो राष्ट्र सब को पीछे छोड़ कर, सब पर बाज़ी [illegible] है, वही अन्त में विजय प्राप्त करता है। आज पाश्चात्य राष्ट्रों [illegible] का जो भीषण स्वरूप दिखाई दे रहा है, देख कर उसको मन [illegible] लगता है। सच पूछिये तो यह सारा सृष्टिमाया का खेल है।

जहां जीवन है, वहां हलचल मौजूद ही है। बिलकुल सुषुप्तावस्था [illegible] जीवन वास्तव में जीवन ही नहीं है। मनुष्य के विषय में यदि [illegible] तो उसकी प्रत्येक हलचल के मूल में अदृश्य हृदयस्थ [illegible] और दृश्य स्नायुओं के व्यापार रहते हैं। राष्ट्र के जीवन [illegible] में भी ये दो बातें रहती हैं। अन्तर इतना ही है कि राष्ट्र के [illegible] मनुष्यबल और द्रव्यबल है। इच्छाशक्ति चूंकि अदृश्य [illegible] है, इस कारण वह केवल उद्गारों से और कार्यों से, अनुमान [illegible] जाती है। उसे जानने में बहुत बार बेसमझी उत्पन्न होने [illegible], [illegible] खास तौर पर उत्पन्न करने का, हेतु हो सकता है। [illegible] राष्ट्र अपने विषय में अथवा अन्य राष्ट्र के विषय में [illegible] करता है तब उस पर लोगों का एकदम विश्वास नहीं [illegible]! [illegible] विषय में उनकी वृत्ति शंकापूर्ण रहती है।

इतिहास और भूगोल का परस्पर इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि उसमें विच्छेद डालने से काम नहीं चल सकता। भूगोल के बिना ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ स्वरूप मालूम नहीं होता; और इतिहास के ज्ञान के बिना भूगोलज्ञान निर्जीव होता है। दोनों की जननी, यह एक पृथ्वी ही है—और [illegible] के महाकोशों में भूमिकृष्टा बहुधा प्रथम [illegible]

पृथ्वी।

विकास के विषय में पृथ्वी का बहुत बड़ा कार्यभाग रहता है। राष्ट्र व्यक्तियों से तैयार होता है, और उन व्यक्तियों के लिए आवश्यक खाद्यपेयादि वस्तु पहुँचाने का कार्य पृथ्वी के ज़िम्मे रहता है। यह जो नियम है कि, जैसा आहार वैसा व्यवहार, सो कुछ मिथ्या नहीं है। आहार का मनुष्य के स्वभाव पर और उसके कार्य पर, चाहे प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष, शीघ्र हो अथवा कालान्तर से हो, परिणाम हुए बिना रहता नहीं। जिस प्रदेश में मनुष्य रहता होगा, उस प्रदेश के नैसर्गिक स्वरूपानुसार उसको अपनी रहनसहन रखनी पड़ती है। उसके व्यवसाय उद्योग भी उसके अनुसार ही होते रहते हैं। मनुष्य का आलसी अथवा उद्योगी होना, रोगी अथवा तन्दुरुस्त होना, तामसी अथवा सात्विकी होना, प्रायः अधिकांश में उसके अधीन की बात नहीं है। नैसर्गिक परिस्थिति उसको वैसा स्वरूप देती रहती है। इसलिए राष्ट्रघटना में नैसर्गिक परिस्थिति को एक महत्व का विषय समझना चाहिए।

मनुष्यकृत परिस्थिति।

नैसर्गिक परिस्थिति की भी अपेक्षा मनुष्यकृत परिस्थिति राष्ट्र-संगठन के विषय में विशेष बलवती होती है। भिन्न भिन्न भाषा, भिन्न भिन्न धर्म, जातिभेद, रीतिरवाजों के भेद, इत्यादि अनेक भेद हैं जो कि प्रायः लोगों का मन राष्ट्रीयता के केन्द्र में लाने में अन्तराय उपस्थित करते हैं। लेकिन ये अन्तराय सार्वत्रिक अथवा सर्वकालीन नहीं होते। राष्ट्र-संगठन का कार्य उन अन्तरायों या विघ्नों के कारण कुछ सदैव के लिए बन्द नहीं होता। सच पूछिये तो राष्ट्रीयता की सची जान लोगों की वह हार्दिक एकता है कि जो राष्ट्रहित के प्रश्न के विषय में होती है। यह जान, यह जीवन, यदि मौजूद है, तो फिर अन्य अवान्तर बातों का, उसके सामने, कोई महत्व नहीं है। जहां इस सूर्य का उदय हुआ कि बस अन्य अन्तरायरूपी जो बादल ऊपर छाये रहते हैं, वे धीरे धीरे सब भगते जाते हैं, और इसी लिए, उस राष्ट्रीय जागृतिरूप आत्मा का जब उदय होता है तभी यह समझा जाता है कि अब मानो राष्ट्र की उत्पत्ति हुई। जब तक वह राष्ट्र गर्भावस्था में रहता है,

विकास के लिए प्रयत्न।

यह हमने अभी ऊपर दिखलाया कि मनुष्य के जैसे देह और आत्मा हैं, वैसे ही राष्ट्र के भी हैं। और इन दोनों का समान ही विकास होना, जितना मनुष्य के विषय में उतना ही राष्ट्र के विषय में भी आवश्यक है। मनुष्य को जीवनयात्रा के लिए कुछ न कुछ व्यवसाय करना आवश्यक होता है; और इस व्यवसाय में अनेक बार उसको अपने समान अन्य मनुष्य से झगड़ना पड़ता है, [illegible] देखना पड़ता है, नवीन नवीन [illegible]—नई युक्तियाँ—[illegible] करनी पड़ती हैं; राष्ट्रों को भी अपने राष्ट्रजीवन की रक्षा के लिए और उसका विकास करने के लिए, अन्य राष्ट्रों के झगड़ों में पड़ना होता है, नवीन नवीन मुल्कों में अपने लोग भेज कर उपनिवेश बसाने पड़ते हैं, और इस लिए कि औद्योगिक विषयों में दूसरों पर हमारा वर्चस्व—हमारा प्रभाव या [illegible]—कायम रहे, उन्हें [illegible] प्रकार के [illegible] शोध, अथवा वैज्ञानिक आविष्कार करने पड़ते हैं।

उपनिवेश।

उपनिवेश के विषय में दो शब्द और भी [illegible] है। [illegible] में जो लोग उपनिवेश बसाने के लिए जाते हैं वे [illegible] से [illegible] कर नहीं जाते। [illegible] बढ़ने के कारण उन [illegible] देश की [illegible] निर्वाह के [illegible] से [illegible] नहीं [illegible], [illegible] हो कर [illegible], [illegible] और [illegible] से विदा हो कर [illegible] करते हैं। [illegible] के [illegible] के बाहर [illegible] जो [illegible] देश [illegible] का पूर्ण [illegible] में [illegible] है, [illegible] हैं [illegible] देश में [illegible] को भी [illegible] कर लेना पड़ता है। [illegible] और [illegible] किसी [illegible] पर उपनिवेश [illegible] का काम होता है।

बम्बई की जी. आई. पी. रेलवे के कर्मचारियों की हड़ताल।

कर्मचारीगण।

जंगल काट कर ज़मीन समतल बनाना, नालों-गड्ढों-इत्यादि में जमा हुआ पानी निकालना, सड़ी हुई और रोगकारक वनस्पतियों के ढेर जला कर वहां की हवा स्वच्छ करना, इत्यादि कामों के बाद फिर ज़मीन को कमाना पड़ता है; और जब तक फसल नहीं होने लगती है, तब तक हानि सह कर गुज़ारा करना पड़ता है, यह सब काम पूंजी के बिना नहीं हो सकता, और पूंजी का तो उनके पास बहुत अभाव रहता है। इसलिए उपनिवेश में बसने के लिए आनेवाले लोग प्रायः ऐसी जगह जाते हैं जहां पहले ही से लोगों की बस्ती और व्यवहार हो रहे हैं। वहां के लोग समझते हैं कि ये परकीय लोग हमें लूटने के लिए ठग बन कर आये हैं; और इस लिए वे उनका द्वेष, कम से कम तिरस्कार, करते हैं; और वह अपमान उपनिवेशियों को चुपके सहना पड़ता है, और यदि हो सकता है तो धीरे धीरे उन मूल निवासियों को खुश रख कर अर्थात् उनकी खुशामद कर के वे उनमें मिल जाते हैं।

राष्ट्र का यह स्थलान्तर द्रवपदार्थों के स्थलान्तर के समान है।

उपनिवेशियों के आवश्यक गुण।

द्रवपदार्थ के प्रवाह ऊंची जगह पर से बहते हुए नीचे ज़ोर से आते हैं; और मार्ग में आनेवाली रुकावटें यदि क्षुद्र होती हैं तो उन्हें वे प्रवाह नीचे भेल देते हैं; और यदि वही बाधाएं प्रबल होती हैं तो उनको टाल कर दोनों ओर से अपना मार्ग निकाल लेते हैं; और फिर एक हो कर आगे मार्गक्रमण करने लगते हैं, समतल प्रान्त में पानी के प्रवाह फैलते हैं, और विषम मार्ग में, जैसा कि ऊपर बतलाया है, उनका एकीकरण होता रहता है। उपनिवेश बसानेवालों में पानी के प्रवाह से यह बोध लेने योग्य चातुर्य यदि नहीं होता तो उस नवीन उपनिवेश से उनके उच्चाटन होने में बहुत देर नहीं लगती। उपनिवेश में बसनेबसानेवाले चाहे एक जाति के, एक धर्म के, एक पन्थ के और एक भाषा के हों, अथवा उनमें जाति, धर्म, भाषा-इत्यादि के विषय में अनेक भेद हों, जब वे इस संकल्प और एकता से चलते हैं कि हम सब उस स्थान में अपने पैर स्थिर रखेंगे तभी उनका निर्वाह होता है. अन्यथा नहीं। यह सब की एकता होने के लिए सब के अन्तःकरण में बहुधा स्वार्थबुद्धि होती है, लेकिन इसके अतिरिक्त स्वाभिमान का उच्च उद्देश्य भी आवश्यक होता है। अवश्य ही यह सब व्यक्तियों में नहीं हो सकता। ऐसे समय में सब के लिए आदर्शभूत पवित्र और स्फूर्तिकारक आचरण के किसी महानुभाव नेता की अत्यन्त आवश्यकता होती है; और सौभाग्यवश यदि वह मिल जाता है तो उसके गुणों का प्रादुर्भाव सब व्यवहार में दृग्गोचर होता है। यह बात दक्षिण आफ्रिका के भारतीय लोगों का उदाहरण ले कर स्पष्ट की जा सकती है।

उपनिवेश के दो भेद हैं। पहला भेद यह है कि कोई देश जीत कर

उपनिवेशों के दो स्थूल भेद।

फिर वहां बस्ती या उपनिवेश बसाया जाय। इस प्रकार के उपनिवेश के कारण मूल निवासियों के मन में एक प्रकार का शल्य बना रहता है; और वे उपनिवेश का विकास और उत्कर्ष होने के मार्ग में, जहां तक हो सकता है, विघ्न डालते हैं। इसकी अपेक्षा सौम्य उपाय से बसाई हुई बस्तियां या उपनिवेश अधिक श्रेयस्कर हैं।

उपनिवेशों की दृष्टि से देखा जाय तो यूरप के आज कल के बहुत से प्रमुख राष्ट्र यह समझते हैं कि परदेश में बस्तियां बसाना राजनीति का एक मुख्य भाग है। जर्मनी, आस्ट्रिया और फ्रांस के उपनिवेश, न्यूनाधिक रूप से जीत कर प्राप्त किये हुए और अधिक लोकसंख्या के हों, अथवा न हों, राज्य का विस्तार करने की दृष्टि से वे बसाये गये हैं। इंगलैंड का यह हाल नहीं है। उसके सब उपनिवेश ऐसे अंगरेज़ों से बसे हुए हैं कि जो छोटे से इंगलैंड देश में, बढ़ी हुई लोकसंख्या के न समाने और उद्यम व्यवसाय में घिचपिच होने के कारण अथवा धार्मिक मतभेद की असहिष्णुता के कारण बाहर निकाले हुए हैं।

देशकालानुसार उपनिवेश बसाने की, पहले की और अब की, प्रणाली में भी बहुत अन्तर पड़ गया है। अब इधर के समय में ऐसे उदाहरण नहीं मिल सकते कि किसी सभ्य राष्ट्र के लोगों ने जंगली लोगों के किसी मुल्क में जा कर उन पर गोला चला कर उनको मार डाला हो; और उन लोगों को निर्वंश कर डाला हो। मूल निवासियों को वे अपना दास बना लेंगे, उन्हें शान्ति से चलना सिखलाएंगे, थोड़ा बहुत शिक्षा का संस्कार भी कर देंगे। अपने हित में धक्का न हुए यदि उनका हित होता होगा तो उसे करने में वे मार्गदर्शक होंगे। उनसे मज़दूरी करा कर बाग़ बगीचे और ... लेंगे, उनके लड़के-लड़कियों के लिए स्कूल खोलेंगे; उनको ध... महत्व बतलाने के लिए क्रिश्चियन मिशनरी सात समुद्र पार से ... हां; उन लोगों को अपनी बराबरी से नहीं रखेंगे। इस विष... अवश्य उनका जात्याभिमान और दुराग्रह स्पष्ट दिखाई देता है।

जैसी परिस्थिति से मनुष्य का दृढ़ परिचय होता है वैसी ही

उपनिवेश के योग्य स्थल।

फिर वह चाहे नैसर्गिक हो अथवा ... हो—जिस जगह होगी वहीं बस्तियां या ... निवेश, बसाने की बुद्धि होना मनु... के अनुकूल है। इँगलैंड के लोगों, को ... वेश बसाने के लिए अमेरिका का ही देश बहुत पसन्द आया। ... कारण यह है कि इँगलैंड और अमेरिका के देश प्रायः ... पर हैं। ग्रीक लोगों ने जो उपनिवेश बसाये वे ऐसी ही जगह ... कि जहां उन्होंने अपने देश के समान नैसर्गिक परिस्थिति देखी। ... लोगों के उपनिवेश प्रायः दलदल की ही जगहों में देखे जाते हैं। ... को बिलकुल उत्तर की ओर का, बर्फाच्छादित और विरल ... का प्रदेश ही उपनिवेश के योग्य मालूम होता है।

कुछ विशिष्ट जाति के कीड़े ऐसे होते हैं कि उनका कोई भाग ... काट डाला जावे तो वह उतना कटा हुआ भाग एक स्वतंत्र प्राणी ... तौर पर संचार करने लगता है। बस, यही हाल उपनिवेश का ... उपनिवेशवालों का मूल देश और उनका उपनिवेश, इन दोनों ... स्वतंत्र अस्तित्व रहता है। एक के दूसरे पर उपकार नहीं होते और ... कोई किसी पर अवलम्बित रहते हैं, तथापि विवाह के बाद अपने ... की गृहस्थी चलानेवाली लड़की का भी कुछ न कुछ झुकाव अपने मां ... की तरफ रहता है; और लड़की जब कि लड़केवालोंवाली होती ... तब भी वह अपनी मा के सामने छोटी ही बनी रहती है; और मा ... यह अपेक्षा उस समय भी बनी रहती है कि लड़की हमें ... मान देवे। बस, यही सम्बन्ध मूल मातृभूमि और उपनिवेशों का ... रहता है। मा और बेटी दोनों यदि चतुर और व्यवहारज्ञ होती हैं तो ... उनमें कभी घिसाघिसी नहीं होती। लेकिन अगर दोनों अपना ही ... हठ चलानेवाली होती हैं; और सब बातों में वे अपने ही अधिकार ... का अभिमान दिखाने लगती हैं तो, ऐसी दशा में, अवश्य ही गम्भीर ... स्वरूप के राजकीय प्रश्न उपस्थित होते हैं।

उपनिवेश बसाने के लिए आये हुए लोग यदि अधिक सुधरे हुए

अनुकरण से होनेवाली हानि।

होते हैं; और उस प्रदेश के मूल निवासी अज्ञान और उद्यम-व्यवसाय इत्यादि में पीछे होते हैं तो ऐसी दशा में वहां एक नवीन प्रकार की विचित्र परिस्थिति उत्पन्न होती है। वे अज्ञान लोग अपने सुधरे हुए लोगों की नकल करने में अपना सौभाग्य समझने लगते हैं। लेकिन उनको यह समझने योग्य ज्ञान नहीं होता कि किस विषय में नकल करना लाभदायक और किसमें हानिकारक है। इस कारण सुधार का केवल कूड़ा-कचरा भर ही ये आनन्दपूर्वक शिरोधार्य कर के खुशी से उछलने-कूदने लगते हैं; और यह उनका बन्दरों का सा नाच देख कर उपनिवेशधारी भीतर ही भीतर मुसकराते रहते हैं। अज्ञानी लोग समझते हैं कि ये हमारी इन चालों पर प्रसन्न हैं; और इसलिए वे और भी अधिक मूर्खता का बर्ताव करते हुए अन्त में स्वयं ही अपनी हानि कर के संसार के सामने उपहासास्पद बनते हैं। हां, उपनिवेशियों के अच्छे अच्छे गुणों का प्रतिबिम्ब अवश्य ही उनके बर्ताव में कहीं नहीं दिखाई देता।

इस मरकटी अनुकरण का परिणाम यह होता है कि उन लोगों के अपने पूर्वजों के रीति-रवाज, पहनावा, उद्यम-व्यवसाय, कला-कौशल, धर्म, भाषा इत्यादि नष्ट होजाती हैं; और वे लोग बिलकुल सत्वहीन बन जाते हैं। उच्च श्रेणी के सभ्य लोगों में इनका आदर नहीं होता, और अपना स्वत्व गवां कर दूसरे का दास्य और परावलम्बन स्वीकार करना अन्त में इन बिचारों के भाग्य में आता है, इसी को उनके जातिक्षय का श्रीगणेश कहना चाहिए। इतने ही पर यदि वे न चेतें; अथवा यह बात उनको समझा देनेवाला बुकर टी० वाशिंटन के समान कोई महात्मा यदि उनमें न उत्पन्न हुआ तो दास्य का टीका उनके मस्तक पर सदैव के लिए लग जाता है; उस दशा में अधोगति के मार्ग से वे बच नहीं सकते। देशी माल छोड़कर विदेशी सस्ता माल ख़रीद-

के विषय में प्रोफेसर राटज़ेल नामक विद्वान् इतिहास-लेखक का यह अवतरण मननीय है। वे कहते हैं—

"When the wholesale importation of bad but cheap Products of European industries into Polynesia or Central Asia causes decay in the production of Native arts and crafts, it is a loss to the life of the whole people; henceforth the race will be placed in the same category with tribes that gather much rubber, prepare palm-oil, or hunt elephants to supply European demand, and who in turn, must purchase threadbare fabrics, spirits that contain sulphuric Acid, worn out muskets and old clothes—in a word, all the rubbish of civilisation"

(*Harmsworth's History of the World.*
Vol I P. 364.)

इस का मतलब यही है कि जहां एक बार विदेशी माल को सस्ता समझ कर लेने का चस्का पड़ गया कि फिर बहुत जल्द देश के उद्योग-धंधों को क्षय रोग हो जाता है; और वे नष्ट हो जाते हैं; और उस दशा में लोगों को जब कोई उद्यम व्यवसाय नहीं रहता तब विदेशी लोगों की गुलामी स्वीकार करनी पड़ती है; उनकी खुशामद करनी पड़ती है; और विदेशी लोगों के दिये हुए फटे-पुराने वस्त्र, उनकी निरुपयोगी होजाने के कारण छोड़ दी हुई बन्दूकें; और हानिकारक औषधियाँ निरुपाय हो कर लेनी पड़ती हैं। पॉलिनेशिया और मध्य एशिया में ऐसा ही अनुभव प्राप्त हुआ है। हम को प्रति दिन व्यवहार में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनके लिए दूसरों के मुँह की ओर देखने का अवसर आना अत्यन्त लज्जास्पद और अपमान की बात है। मानापमान की बात यदि एक ओर भी रख दी जाय तो भी ऐसी स्थिति का राष्ट्र पर भयंकर परिणाम होता है, इसलिए अपना उत्तरदायित्व पहचान कर चलनेवाले अधिकारी लोग यह अपना कर्तव्य समझते हैं कि जिन वस्तुओं की हम को नित्य आवश्यकता रहती है उनको अपने देश में ही तैयार करने का प्रयत्न किया जावे। इस विषय में इँगलैंड का ही उदाहरण दिया जा सकेगा। इँगलैंड की जमीन खेती के लिए विशेष अनुकूल नहीं है। वहां खेती की अपेक्षा कपड़े, हथियार, फौलादी यंत्र, इत्यादि वस्तुओं के कारखाने ही विशेष लाभदायक होते हैं; और यही देख कर वहां के पूंजीवालों ने खेती की ओर बहुत ध्यान न दे कर कारखानों में ही अपनी सारी सम्पत्ति और परिश्रम लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे लोग अत्यन्त धनवान् होगये; लेकिन अनाज पैदा होना बन्द होगया, इस कारण उत्तर-अमेरिका, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया, इत्यादि दूर दूर के देशों से आनेवाले अनाज पर ही इँगलैंड का जीवन अवलम्बित रहा। अनाज महँगा बिकने लगा। इस कारण गरीबों को कष्ट होने लगा। मजदूरों ने मजदूरी के दर बढ़ा दिये। अधिक मजदूरी देते हुए कारखानेवालों की जान पर आ बनने लगी। अन्त में मजदूरों की हड़तालें होने लगीं। तब कहीं कारखानेवालों की आंखें खुलीं। अधिक मजदूरी देकर भी कारखानेवालों को इतनी किफायत होने लगी कि खेती करने की बात किसी के मन में न आने लगी। लेकिन एक आकस्मिक मौके ने अन्त में अँगरेज़ लोगों को हथौड़े नीचे रख कर हाथ में हल पकड़ने के लिए बाध्य किया। वह आकस्मिक प्रसंग यही है कि परदेश से अनाज लाने के लिए जिन जहाजों की आवश्यकता पड़ती है उनका इस युद्ध के कारण टोटा पड़ गया। घर में अनाज पैदा नहीं होता, बाहर से लाने का सुभीता नहीं है, भूखों मरने की नौबत आ गई। ऐसी अड़चन जब आपड़ी, तब अँगरेज राजनीतिज्ञों का ध्यान इँगलैंड की खेती की ओर गया, और अब उन्होंने इतने बड़े परिमाण पर खेती का काम हाथ में लिया है कि अब इँगलैंड को अनाज के लिए दूसरों का मुँह न ताकना पड़ेगा।

राष्ट्रके विकास में प्रकृति देवी की सहायता। राष्ट्र का विस्तार होने और उसकी शक्ति बढ़ने के लिए उद्योगधंधों से जैसी सहायता मिलती है, वैसी ही देश के प्राकृतिक स्वरूप से भी इस कार्य में मदद मिलती है। ऊंचे ऊंचे पर्वतों के कारण देश के विभाग होजाते हैं, और उन विभागों के लोगों को अन्य लोगों के विषय में परकीयता ज्ञात पड़ती है। लेकिन वही प्रदेश यदि एक समतल भूमि के रूप में होते हैं तो उन प्रदेशों के निवासियों में परस्पर अपनत्व होता है, और यदि उन प्रदेशों में नौकायें चलने योग्य नदियां होती हैं, तो उन नदियों के द्वारा अन्य दूर दूर स्थानों के लोगों का भी हेलमेल हो जाता है और उनमें एक प्रकार का दृढ़ बन्धन उत्पन्न हो जाता है। नदियों की ही तरह पहाड़ी घाटियों का उपयोग भी अधिकांश में इस बात में होता रहता है कि निकटवाले प्रान्तों के लोगों के नैसर्गिक अन्तराय दूर हों, और उनमें अपनत्व का भाव दृढ़ हो। पहाड़ी मैदान में रहनेवाले लोगों को प्रकृति ने उत्तम जल-वायु और मानसिक उत्साह के साथ साथ स्वातंत्र्यप्रियता भी दी है; और इस कारण ऐसे स्थान में जो लोग रहते हैं उनमें एकराष्ट्रीयता की भावना शीघ्र जागृत होती है। चूँकि वे ऊँचे स्थल में रहा करते हैं, इस कारण अन्य संसार से उनका सम्बन्ध कम पड़ता है। परन्तु, यह न्यूनता उनके पारस्परिक बन्धन की दृढ़ता से पूरी हो जाती है। इसका सब से अच्छा उदाहरण स्विटज़रलैंड है। यह देश यूरप के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही छोटा है। लेकिन उसकी स्वातंत्र्यप्रियता, स्वावलम्बन, स्वातंत्र्य-रक्षा विषयक शक्ति, उद्यमशीलता, इत्यादि गुणों की ओर जब हम ध्यान देते हैं; तब, अँगूठी पर चमकनेवाले छोटे किन्तु तेजस्वी मणि के समान इस प्रजासत्ताक राज्य पर हमें अत्यन्त कौतुक होता है।

जंगलों की विशेषता। राष्ट्र-संगठन में विघ्न डालनेवाले जो नैसर्गिक कारण हैं उनमें विस्तृत और घने जंगलों के समान अन्य कोई भी प्रबल कारण नहीं है। बड़ी बड़ी नदियाँ, पुलों के द्वारा अथवा छोटी बड़ी नावों, डोंगियों, तमेड़ों और अग्निबोटों के द्वारा पार की जा सकती हैं, बड़े बड़े पर्वत भी घाटियों अथवा बोगदों की सहायता से उल्लंघ्य हो सकते हैं; लेकिन विस्तृत और घने जंगलों के सामने मनुष्य का कोई वश नहीं चलता। ऐसे जंगल बड़े भारी जनसमूह में एकता उत्पन्न नहीं होने देते; ऐसी स्थिति में छोटे छोटे गिरोह अथवा थोड़ी संख्या की जातियां एकत्र हो सकती हैं, लेकिन एक बड़ा भारी जनसमुदाय यदि चाहे कि बीच के बड़े भारी विस्तीर्ण जंगल का उल्लंघन कर के दूसरे बड़े जन-समुदाय से मित्रता कर ली जाय तो यह कार्य सहज में नहीं हो सकता। यूरप में स्वीडन देश के राष्ट्र संगठन में यही अड़चन उपस्थित हुई। ऐसी जगह में छोटी छोटी रियासतें ही बन सकती हैं। जंगल का नाश कर के राष्ट्र संगठन का कार्य कर लेना अत्यन्त कठिन कार्य है और इसके लिए बहुत समय की आवश्यकता है। यही कारण है कि, चीन को फारमोसा टापू का पश्चिमी भाग ले कर वहां के लोगों का एकीकरण करने में दो सौ वर्ष लगे; पूर्वी भाग तो अब तक चीन की दाल ही नहीं गलने देता।

उपसंहार। यहाँ तक संक्षेप कर इसी बात का विचार किया गया कि राष्ट्रों की उत्पत्ति कैसे होती है और उनका विकास होने के लिए कौनसे प्राकृतिक कारण किस अंश में सहायक होते हैं, अथवा विघ्न डालते हैं। लेकिन राष्ट्रों का विकास केवल नैसर्गिक या प्राकृतिक कारणों से ही नहीं हुआ करता। इसके लिए मानवी प्रयत्नों की भी बहुत आवश्यकता रहती है। यदि राष्ट्र का प्राचीन इतिहास, और वह भी अभिमानास्पद, होता है तो बहुत ही अच्छी बात है; और यदि नहीं है तो राष्ट्र को बनानेवाले लोकसमूह के अन्दर, कम से कम, नवीन इतिहास प्राप्त करा देने की महत्त्वाकांक्षा तो अवश्य होनी चाहिए। प्राचीन इतिहास की केवल बड़ाई मार कर और स्वयं निष्क्रिय रहना—इसके समान लज्जास्पद और कोई भी बात नहीं है। यह समझना अत्यन्त मूर्खता की बात होगी कि जिस पद्धति से प्राचीन काल में हमारे लोगों को इतिहास में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसी रीति से वर्तमान [illegible] परिस्थिति में भी हमें प्राप्त होगी। यह भ्रम अपने मन से निकाल देना चाहिए कि [illegible] मतभेद, जातिभेद, लिपिभेद, अथवा [illegible] प्रचार, इत्यादि दुर्गुणों का भार सिर पर ले कर हम राष्ट्रोन्नति का विकट और दुर्गम पहाड़ी मार्ग सुगमता से चढ़ सकेंगे। यदि राष्ट्रोन्नति करने में [illegible] [illegible] [illegible]

पहाड़ पर चढ़ने लगते हैं तब हम को दम साध कर और एक एक कदम दृढ़ता से और शान्ति से आगे रखते हुए चढ़ना होता है। क्योंकि जहां एक बार दम फूल आया कि फिर चढ़नेवाले के हाथ पैर स्तब्ध होजाते हैं। बस, यही हाल राष्ट्रोन्नति के मार्गक्रमण का भी है। इसमें भी दम साध कर शान्ति से, परन्तु दृढ़ता के साथ, आगे बढ़ते जाना चाहिए। इस मार्ग में ज्यों ज्यों हम ऊंचे चढ़ते जावें त्यों त्यों आस-पास हमें खूब सावधानी के साथ सूक्ष्म दृष्टि रखनी चाहिए। नहीं तो कभी कभी दिशाभ्रम हो जायगा, पैर फिसल जायगा, अथवा आंखों के चकरा जाने से शरीर की तोल नहीं सम्हल सकेगी; और इन कारणों से अपघात होने की सम्भावना रहेगी। गंगोत्री की ऐसी विकट यात्रा में हमारे साथ जो हार्दिक और विश्वासपात्र साथी होंगे उनकी सलाह शायद किसी किसी समय हमारी समझ में न आवेगी, तो भी अपना हठ छोड़ कर उनकी उस सलाह को सुन लेना ही उचित होगा। क्योंकि कम से कम राष्ट्रयात्रा के विषय में तो यह बात कदापि नहीं कही जा सकती है कि यदि हमीं अकेले गंगोत्री तक पहले जा पहुँचे; और हमको मोक्ष मिल गया, बस, चलो काम बन गया। क्योंकि हम तो केवल एक व्यक्ति हैं, राष्ट्र हम नहीं हैं। यह राष्ट्रीय यात्रा करते समय अनेक कष्ट और विपत्तियां सहनी पड़ती हैं, अनेक बार, जब कि हम इस यात्रा में विकट और झाड़-झंकाड़ से पूर्ण पगडंडी के द्वारा जाने लगते हैं तब उन कांटेदार झाड़ियों से हमारा शरीर छिल जाता है; और रक्त बहने लगता है; जहां हम को पहुँचना है वह स्थान दूर से संनिकट सा दिखाई देता है; परन्तु वास्तव में वह बहुत दूर होता है, ऐसी दशा में यदि हमारे उपाहार का भी समय टल जावे तो भी उधर ध्यान न देते हुए, सहिष्णुता धारण कर के मुकाम तक पहुँचना होता है; और यदि हम इस बात की उतावली करते हैं कि यहां हम को शीघ्र पहुँचना है तो व्यर्थ के लिए हम को कष्ट सहना पड़ता है; और अनेक ठोकरें खानी पड़ती हैं; मार्ग भूलने के मौके आते हैं; संकट के समय यदि अपना धैर्य छूट जाता है तो यह न दिखाते हुए, कि हमारा धैर्य छूट गया है, दूसरों को, साहसपूर्ण उत्तेजना दे कर, धैर्य धराना होता है, और बाघ दैवता से भेड़ा पड़ने की यदि नौबत आ जाती है तो बड़े साहस के साथ उसको पार करना होता है; बटमार से यदि भेड़ा आ पड़ता है तो "दुर्जनं प्रथमं वन्दे" की नीति से कभी कभी उसे साष्टांग प्रणाम भी करना होता है; और मधुर मधुर भाषण कर के उससे अपनी रक्षा कर लेनी होती है। सारांश, गंगोत्री के यात्रियों को जो जो बातें करनी होती हैं वही वही बातें, न्यूनाधिक परिमाण से, परिस्थिति के अनुसार, भिन्न भिन्न रूपों से, राष्ट्रोन्नति के यात्रियों को भी करनी ही पड़ती हैं। जो लोग कि इस प्रकार की बातें करते हैं कि राष्ट्रोन्नति का अमुक एक स्थूल मार्ग है, उस मार्ग से जाने के लिए अमुक ही लोगों की योग्यता है, वहां जाने की इच्छा रखनेवाले यात्री को अमुक ही पाथेय साथ लेना चाहिए, वे लोग बिलकुल गप्पीदास होते हैं। हमारे देश का— आज तक का इतिहास वैसा नहीं कहता। यह बतलाते हुए, [illegible] की उत्पत्ति क्यों कर होती है, और उनका विकास कैसे होता उसमें आनेवाले नैसर्गिक और मनुष्यकृत विघ्न वह स्पष्टतया है। अब, यह बात स्वयं आप को ही निश्चय करनी है कि उन से पार होने के लिए देशकाल, परिस्थिति, अपना साहस, अपनी दर्शिता से जो उपाय आपको सूझ पड़ेगा वह करना चाहिए न करना चाहिए। इतिहास आप से यह कदापि नहीं कहता कि अमुक ही उपाय करें। प्राचीन काल में भारतीय लोग काशी, केदार, रामेश्वर, द्वारका, जगन्नाथ, गंगोत्री, कामरूकामाक्षा, इत्यादि यात्रा पैदल ही करते थे; और इसी लिए वे साहसी होते थे। वे लँगड़े-लूले, अन्ध, पंगु रिश्तेदारों को और इष्टमित्रों को कंधे जाते थे। इन पंगु इष्ट-मित्रों को वे भाररूप कभी नहीं समझते और उनका समय-कुसमय उपयोग भी होता था। वे पुराणों आख्यायिकाएं बतला कर अथवा देवादिकों के मधुर गान गा उनका मन रिझाते थे; और अतएव उन लोगों के श्रमों [illegible] होता था। जो लोग यह कहते हों कि राष्ट्रोन्नति के यात्रियों में राजकीय हलचल करनेवाले लोग ही चाहिए; और विधवाविवाह पक्षपाती, ठठेरे, अशिक्षित अथवा सुशिक्षित कवि, नाटक [illegible] और मुख में रंग पोत कर उन नाटकों को रंगभूमि पर कर[illegible] वाले, भजन करनेवाले, निम्न श्रेणी के स्त्री-पुरुष, अथवा बालक चाहिएं, उन लोगों को कुटिलपथप्रदर्शक समझना चाहिए; और उनकी सलाह त्याज्य माननी चाहिए। राष्ट्रोन्नति की यात्रा सब लिए मोक्षप्राप्ति करा देनेवाली है। इस यात्रा में सब का उपयोग है सब को साथ ले कर चलना चाहिए। इस यात्रा के लिए साथ पाथेय भी ऐसा ही लेना चाहिए कि वह चाहे बहुत रुचिकर न हो, भी पथ्यकर अवश्य हो। यात्रा में चलनेवाले सब लोगों का यह निश्चय होना चाहिए कि हम परमेश्वर के दर्शन कर [illegible] होंगे, अन्यथा अपने घर को अपना कलुषित मुख नहीं दिखलायेंगे साथ ही परमेश्वर में इतनी दृढ़ श्रद्धा चाहिए कि जब परमेश्वर के के लिए हम इतने आतुर हो रहे हैं तब फिर यह कभी हमारी नहीं करेगा—अपनी कृपा के कटाक्ष से वह हमारे मार्ग के सारे विघ्न अवश्य ही दूर करेगा; इतनी निरभिमानता हम में चाहिए कि हम जो इतना मार्ग चल आये सो यह हमारे समान पंगु के लिए बिलकुल दुर्गम था—यह सब ईश्वर के ही कृपाप्रसाद का सच्चा प्रभाव है। परस्पर के विषय में सब के मन में इतना विश्वास चाहिए कि जैसा अब से ५० वर्ष पहले के यात्रियों में था। इतनी बातों की जब पूर्ण अनुकूलता होगी तभी यह राष्ट्रयात्रा अच्छी तरह सफल होगी। फिर उसमें जाति, भाषा, धर्म, रीति-रवाज, इत्यादि के असंख्य भेद चाहे बने रहें तो भी उनसे किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँच सकती। यही राष्ट्रीय विकास की चरम सीमा है।

साहित्य की उन्नति।

साहित्य की उन्नति जाति की उन्नतावस्था का प्रधान अंग है। 'साहित्य-चर्चा' मनुष्य के विचार को ऊंचा और स्वभाव को उदार बनाती है। जिस देश का साहित्य वहां के मनुष्यों से सुरक्षित नहीं है, जिस देश के साहित्य को देशवासी [illegible] नहीं उस देश का भविष्य हम उन्नतिसूचक नहीं कहेंगे। रोम विजित हो गया, पर रोमीय साहित्य उसके नाम और सभ्यता को अमरत्व प्रदान कर गया है। [illegible] का वह दिन अब नहीं है, पर प्लेटो और होमर की कीर्ति [illegible] [illegible]

भाव तो यही है। भाव विरोधी नहीं हुआ है। और जो प्रचलित भाषाएं इस समय भारतवर्ष में वर्तमान हैं वे सब उसी मूल भाषा संस्कृत की लड़कियां हैं। सब का स्वभाव एक सा है। [illegible] [illegible] हिन्दी [illegible] [illegible]

हिन्दुस्तान के उपकार जापान पर।

ापान " नामक मासिक पत्र के सम्पादक डा० ग्रैंग्रशी ने लिखा यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो चुकी है कि बौद्धमत के द्वारा ने हिन्दुस्थान से सभ्यता प्राप्त की, किन्तु जापान से पहिले ा और चीनवाले आर्यों से सभ्यता की शिक्षा प्राप्त कर चुके थे, : सन् ५३२ ई० में कोरिया की हिकोस्टो नामक छोटी सी रिया- : राजा ने बुद्ध की एक भद्दी मूर्ति और कुछ संस्कृत की पुस्तकें के बादशाह किम्मी के पास उपहार के तौर पर किम्मी ने इस मूर्ति को राजमहल में रखकर सब से प्रथम ादिर की नींव डाली। इस भेंट की बदौलत कोरिया, चीन और के राज्यों में पहलेपहल मित्रता स्थापन होकर पत्रव्यवहार आ। इसके कुछ दिन उपरान्त जापान का एक प्रसिद्ध राज- म्यूटो होतसी, जिसने एक जापानी रियासत में सन् ५९३ ई० से ० तक राज्य किया, बौद्ध साधू हो गया। बस, इसी समय से में बौद्ध मत का प्रचार बढ़ने लगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं दुस्तान के मतमतान्तरों की भांति उस समय कोरिया और भी बौद्धमत की कई शाखाएं या सम्प्रदाय हो गये थे, परन्तु ने इस झगड़े की नींव को जड़ ही से काट दिया, और केवल त के सिद्धान्तों को ही ग्रहण किया। इसी प्रकार उसने हिन्दु- ी सभ्यता-संबन्धी बातों को चुन लिया और शेष किसी बात सम्बन्ध न रक्खा। जनसाधारण के अतिरिक्त जापान के ने भी केवल सिद्धान्तविषयक बातों को ही स्वीकार किया। : भी राजा सीवा (सन् ८५६ ई०—८७४ ई०) राजा ऊधा और ारिकोश्रा, (सन् १०७४—७६ ई०) जिसने कई कालेज और बनवाये, तथा राजा होश्यूजी-श्यूजी और सोश्यूजी इत्यादि ने बौद्ध मत को ग्रहण करके उसका प्रचार बढ़ाया।

ापि कोरिया और चीन से बौद्ध मत के भिन्न भिन्न संप्रदायों के ों ने झगड़ा डालने को जापान में प्रवेश किया, परन्तु वहां कुछ की दाल न गली, क्योंकि जापान के लोगों ने इन झगड़ों पर ध्यान न दिया, वरन् ज्यों ज्यों जापान में राजनैतिक विचारों की होती गई त्यों त्यों बौद्ध और शंट्ट मतान्तर्गत आचार और निस्सार बनावटी बातें लोगों की अश्रद्धा के कारण कम होतीं और उनके स्थान में विद्या तथा सभ्यता-संबन्धी विचार दृढ़तर फैलने लगे और यही कारण था कि जब सोलहवीं शताब्दी में मत जापान में आया, उसे वहां कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। ः जापान में टाकागुल्मा के राजत्व काल में स्वतंत्रता-संबन्धी ों के साथ साथ धार्मिक स्वतंत्रता भी बढ़ने लगी, अतः इसी से बौद्ध मंदिर हथियार बनाने के कारखानों और कालेजों के परिवर्तित होते गये और उनके विशाल घंटों को गला कर तोपें गईं। सारांश यह कि यदि देखा जाय तो जापान पर बौद्ध मत साथ हिन्दुस्थान, कोरिया और चीन की अपेक्षा कुछ निराले ही पड़ा, जिसका कारण यह है कि जापान ने बनावटी और दिखावे की बातों को छोड़ कर केवल सचाई का अनुकरण । विरुद्ध इसके, चीन और हिन्दुस्थान के लोग बनावट, ढोंग, ौर आचार विचारों में लिप्त रहे। परन्तु वास्तव में जापान इस लिए हिन्दुस्थान का ही कृतज्ञ है; और इस धर्म द्वारा जो जो र हिन्दुस्थान ने जापान के साथ किये हैं उन की संक्षिप्त सूची ार हैः—

जापान की पत्थर और धातु की कारीगरी तथा जापानी स्थापत्य पर बौद्ध मत का अच्छा प्रभाव पड़ा। सन् ५८८ ई० में जो नी एलची कोरिया को भेजा गया था वह वहां से अपने साथ की बनी हुई पत्थर की मूर्तियां लाया, फिर उस नमूने की न में हजारों मूर्तियां बन गईं, इस कारण पत्थर में खुदाई के

कौशल की अत्यन्त उन्नति हुई। मंदिरों के दर्वाजों पर भी अनेकानेक भांति के खुदाई के कामों का रिवाज होगया। इसके अतिरिक्त धातु के बर्तनों और मूर्तियों पर भी नक्काशी और चित्रकारी करने का शौक हुआ।

२ राजा शिको के राजत्वकाल के तेरहवें वर्ष में एक रेशमी रूमाल पर गौतमबुद्ध की मूर्ति कढ़ी हुई जापान में आई, बस फिर क्या था, जापान में इसकी भी खूब नकल हुई और इस कारीगरी में जापानियों ने ऐसी उन्नति की, कि इसी के कारण जापान आज सारे संसार में इस गुण में अग्रगण्य समझा जाता है, और केवल चीन तथा हिन्दु- स्तान ही नहीं, वरन अमेरिका एवं यूरप से भी करोड़ों रुपया इस कारी- गरी की बदौलत जापान में जाता है।

३ जापान की शिक्षा तथा विनयशीलता आदि पर भी बौद्ध मत का बहुत प्रभाव पड़ा है, जिसके कारण जापान में घर घर विद्या का प्रचार होगया। यह प्रचार शोगन के समय तक बराबर जारी रहा। यथार्थ में जापानियों में यह गुण परम्परा से है कि वह जिस चीज को अपने लिए लाभदायक समझते हैं, निष्पक्षपात होकर ग्रहण कर लेते हैं। सच तो यह है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में जापान ने कोरिया चीन और हिन्दुस्तान से विद्या प्राप्त करने में कुछ भी त्रुटि न की उसी प्रकार शोगन के समय के उपरान्त जब पाश्चात्य राष्ट्रों ने वैज्ञानिक उन्नति की और जापानियों ने देखा कि अब बिना वैज्ञानिक शिक्षा के जाति तथा देश की उन्नति होना असंभव है, तो उन्होंने अपने देश के होनहार नवयुवकों को विद्योपार्जन के हेतु यूरप और अमेरिका में भेजना शुरू किया और इसी प्रकार के उच्च सुधार के कारण आज वह सारे संसार की प्रबल जातियों में गिना जाता है।

४ बौद्ध मत ने जापानी जीवन-प्रणाली में सृष्टि-सौन्दर्यविषयक प्रेम भी उत्पन्न कराया, जिसका वहां के जीवन एवं रहनसहन तथा चाल- ढाल पर गहरा प्रभाव पड़ा है और यही कारण है कि जापान के मंदिर, स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी तथा फौजी छावनियां, एवं व्यायाम के मैदान आदि देश के अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक और रमणीय स्थानों पर बने हैं, और प्रत्येक अमीर गरीब के घर में बाग या छोटीसी फुलवाड़ी अवश्य रहती है। हिन्दुस्तान की शिक्षा का एक यह भी प्रभाव पड़ा है कि जापानी लोग मुर्दों को गाड़ने के बजाय जलाते हैं। यह दस्तूर वहां एक हजार वर्ष से चला आता है। यूरप और अमेरिका में भी अब साइन्स तथा आरोग्यतासंबंधी विचारों के कारण इसका रिवाज हो चला है। तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तान और जापान में प्रति दिन के व्यवहार तथा रहनसहन इत्यादि पर बौद्ध मत का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। स्वयं जापान के बड़े बड़े मान्य नेता हिन्दुस्तान के इन उपकारों को स्वीकार करते हैं—यथा-काउन्ट तिकाहाशी, (वर्तमान लार्ड मेयर टोकियो) ने अपने एक लेख में प्रकाशित किया है कि यद्यपि वर्तमान बीसवीं शताब्दी की सभ्यता यूरप व अमेरिका के अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यों पर निर्भर है, परन्तु इसमें पूर्वी की अति प्राचीन जाति, अर्थात् हिन्दुस्तान, का भी बहुत कुछ भाग है, क्योंकि प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और चीन ने उत्तमोत्तम और महत्वपूर्ण, न्याय, सांख्य वेदान्त आदि शास्त्रों का ज्ञान तथा दानशीलता, वफ़ादार और दयादार बनना, इत्यादि नाना प्रकार के गुणों के ख़ज़ाने दिये हैं।

जापान के प्रति हिन्दुस्तान का अन्तिम उपकार (रूस जापान युद्ध में हिन्दुस्तान की सहायता)—११ जून सन् १९०४ ई० के " रूस जापान युद्ध " नामक साप्ताहिक सामयिक पत्र में प्रकाशित हुआ है कि " इस युद्ध के अवसर पर हिन्दुस्तान के निवासियों ने जापान के साथ प्रत्यक्ष कार्य रूप से सहानुभूति प्रदर्शित की है। लगभग दस हज़ार रुपया चन्दा कर के हिन्दुस्तानियों ने जापानी घायलों की सेवा में दिया। यह रुपया बम्बई, कलकत्ता, बनारस, मद्रास तथा अन्य बड़े बड़े शहरों में

इकट्ठा किया गया था। बंगाल में स्त्रियों ने इस युद्ध में जापान को सहायता देने के अभिप्राय से एक खास कमेटी बनाई थी और इसकी ओर से तीस सेविकाएं जापान को भेजी गई थीं; और जापानी गवर्नमेंट की आज्ञा पाकर श्रीयुत प्यारेलाल नामक एक हिन्दुस्थानी डाक्टर युद्ध के मैदान में भी गये थे, इसी प्रकार तीन बंगाली लड़कियों ने तीन सोने की चूड़ियां और दो अंगूठियां भेजी थीं।

हमारे हिन्दुस्थानी भाई यह पढ़कर आश्चर्य करेंगे कि जब जब मैंने जापान के समाचार और मासिक पत्रों से उपरोक्त अंतिम विषय की चर्चा की तब तब उन्हों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया, किन्तु जब उन्हें १२ जून सन १६०४ का 'रूस और जापान युद्ध' नामक पत्र दिखाया गया तब वे बहुत चकित हुए और उन्होंने दुबारा सन् १६१२ में, (जब कि मैं जापान में था) इस विषय को प्रकाशित करके जापान के प्रति हिन्दुस्थान का अन्तिम उपकार स्वीकार किया; किन्तु मुझे इससे किञ्चित् मात्र भी सन्तोष न हुआ, क्योंकि स्वयं देखता था कि जापान अपने रेशम, मिट्टी और घास की चीजों के द्वारा बम्बई और रंगून से प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ रुपया खींच ले जाता है, और फिर भी हिन्दुस्थान के वर्तमान सेठ साहूकारों के साथ उसका कुछ अच्छा बर्ताव नहीं है। वास्तव में जापानी लोग हिन्दुस्थान के साथ अपने इस व्यापार से सन्तुष्ट नहीं हैं, वरन् जैसे बने वैसे व्यापार के द्वारा यहां से द्रव्य खींचना ही उनका उद्देश्य है। दूसरी बात यह है कि हिन्दुस्थानी-जापानी-समिति में जापानी मान्य सज्जनों ने एक पाई की भी सहायता नहीं दी, वरन समस्त सहायता का भार हिन्दुस्तानी रईसों पर है। तिस पर भी इस रुपया से हिन्दुस्थानी विद्यार्थियों को कुछ सहायता नहीं दी जाती, बल्कि जापानी विद्यार्थी हिन्दुस्थान की राजनीति एवम् व्यापार-संबन्धी विषयों के अध्ययन के लिए भेजे जाते हैं—महाशय स्वयं विचार करें कि इसका क्या तात्पर्य है।

यह भी अत्यन्त शोक का विषय है कि जापानी कारखानों में [illegible] स्थानियों को कार्यकारिणी शिक्षा नहीं दी जाती; क्योंकि वे [illegible] हैं कि कहीं यह लोग अपने देश में जा कर यहीं कारखाने न खोल [illegible] परन्तु यह जो कुछ जापान हमारे साथ कर रहा है वह एक हिसाब [illegible] उचित है, क्योंकि वह जो कुछ करता है अपने देश की रक्षा [illegible] उन्नति के लिए करता है। कहावत भी है कि "अव्वल ख्वेश दरवेश"। जिस देश के लोग इस कहावत को भूल जाते हैं [illegible] सदैव ऐसे ही बर्ताव के भागी होते हैं जो जापान हिन्दुस्थान के [illegible] करता है। इस लेख का तात्पर्य यह है कि आज कल के नवयुवकों [illegible] इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि उनके पूर्वजों ने इस [illegible] पर लोगों के साथ कैसे उपकार किये हैं और अब उनके साथ [illegible] क्या प्रत्युपकार किये जाते हैं।

अतएव इस लेख के अन्त में समस्त भारतवासियों से मेरा कथन है कि—अपनी करनी पार उतरनी—जो कुछ करो उसे [illegible] करो, सदैव अपने देश का ध्यान रक्खो, और उसे उत्तम [illegible] करो। जोश के साथ होश को सँभाले रहो। उड़ती हुई बातों का आश्रय छोड़ दो। आप स्वयं दया और पुरुषार्थ का संग्रह करो। आशा नितान्त मिथ्या एवं निस्सार है कि दूसरे आकर हमारा सँभाल देंगे*।

विद्याधर वाजपेयी।

* उर्दू मासिक पत्र "ज़माना" से अनुवादित।

श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य मठ-श्रीशिवगंगा का ग्वालियर में आगमन।
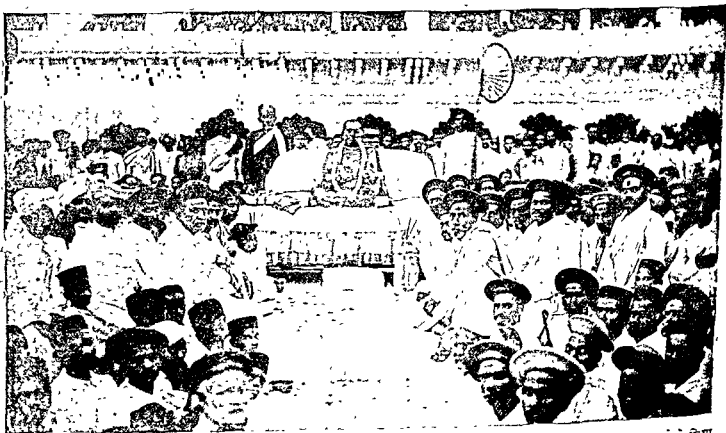
श्रीजी की पादपूजा के लिए और मानपत्र अर्पण करने के लिए यहां की ब्राह्मणसभा ने बड़ा उत्सव किया। उस समय यह फोटो लिया गया। श्रीमान् ग्वालियरनरेश ने जगद्गुरु महाराज का खूब सम्मान किया, इसलिए श्रीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

विश्वास।

(लेखक—श्रीयुत हरिशरण सक्सेना।)
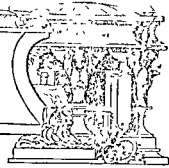
(१)

जब डाक्टर मेरा इलाज करते करते हार गये, तब उन्होंने मुझे साफ़ कह दिया कि बिना कुछ महीनों के लिए आबहवा बदले तुम्हारा रोग जड़ से न जायगा। जगन्नाथपुरी मेरे गांव से बहुत पास थी। मैं यह भी सुन चुका था कि अंगरेज़ लोग भी वहां की आबहवा को पसन्द करते हैं। अतएव मैंने पुरी ही जाना निश्चय किया।

इस संसार में सिवाय मेरी वृद्ध माता के और कोई नहीं है। जब मैंने उन्हें पुरी जाने की तैयारी करने के लिए कहा तब वे बड़ी प्रसन्न हुईं। वे कहने लगीं, 'तुम्हारा रोग का रोग मिट जायगा और मेरा तीर्थ का तीर्थ हो जायगा, 'एक पंथ दो काज।'

हम दोनों दूसरे दिन ही पुरी पहुंच गये। मैंने वहां एक बँगला किराये ले लिया, और आनन्दपूर्वक हम दोनों वहां रहने लगे। मेरी पूज्य माता प्रति दिन स्नान कर प्रातःकाल ही जगन्नाथ जी के दर्शन करने चली जातीं और मैं समुद्र के किनारे हवा खाने। एक दिन मेरी पूज्य माता ने मुझ से दर्शन करने के लिये श्रीमन्दिर को जाने के लिए कहा। उन्होंने कहा, 'ईश्वर करेगा तो दर्शन करते ही तुम्हारा रोग चला जायगा।' मैंने साफ़ कह दिया 'टूटी-फूटी भयंकर मूर्ति के दर्शन करने से लाभ?' मेरी पूज्य माता चुप हो गईं। उन्होंने उसी दिन मेरे कथन-मात्र के पाप के प्रायश्चित्त के लिए भोग इत्यादि चढ़ा दिये।

(२)

मैं कुछ दिनों से भोर होते ही हवाखाने निकल जाया करता था। मैं प्रति दिन एक साधु को अँधेरे में आते देखता, जो कि श्री मन्दिर के ऊपर की चाक्र के दर्शन कर अँधेरे ही में लौट जाता था। सब से प्रथम मैंने उसे ढोंगी समझा, पर बाद में मैंने सोचा कि यदि यह सचमुच ढोंगी ही है तो इसे अँधेरे में आने से लाभ?

एक दिन मैंने उस साधु के पास जा कर पूँछा कि आप श्री मन्दिर के दर्शन करने भीतर क्यों नहीं जाते? उस साधु ने गंभीरतापूर्वक कहा—'मैं इतना अपने पापों के कारण अपवित्र हो गया हूँ, कि मुझे इस अपवित्र देह के साथ भीतर जाने का साहस नहीं होता। मैंने कहा 'उस टूटी फूटी मूर्ति से भी तुम डरते हो!' यह सुनते ही साधु ने एकदम अपने कानों में उँगलियां डाल लीं और शान्तिपूर्वक चल दिया। मेरे हृदय पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा। मैं उस साधु की गंभीरता और शान्ति देख कर मुग्ध हो गया। दूसरे ही दिन मैं उस साधु से मिला, मैंने नम्रतापूर्वक कहा—'क्या आप मुझे यह बतलायेंगे कि आप गृहस्थी इत्यादि छोड़ संन्यासी कैसे होगये?'

साधु ने कहा, 'यदि आपको यह इच्छा है, तो मैं अवश्य कहूंगा, सुनिये—किसी समय मैं कृष्णनगर का एक बड़ा धनाढ्य सेठ था। मैं सब लोगों को उधार रुपये दे कर खूब सूद वसूल करता था। यदि वे, आज-कल, इत्यादि करते तो मैं भी उन्हें खूब तंग करता।

एक दिन एक ब्राह्मण मेरे मकान पर आया। उसने कहा, 'सेठ जी मुझे मेरी कन्या का विवाह दस दिन बाद करना है। घर में कल ही १०००) रुपये की चोरी हो गई है। यदि आप १०००) रुपये मुझे तीन महीने के लिए उचित सूद पर दें, तो बड़ी कृपा हो, मैंने कहा 'कृपा की क्या बात है—ऐसी अवस्था में तो मैं रुपये देना अपना कर्तव्य ही समझता हूं।' मैंने तुरन्त रुपये दे दिये और सब लिखा पढ़ी, पूरी कर डाली। उस दिन से बराबर तीन महीने बाद वह ब्राह्मण रुपये सूद-सहित ले आया।

जिस दिन वह रुपये लाया था उस दिन विजयादशमी थी। दूकान की छुट्टी का दिवस था। मैंने उससे कहा, 'आप रुपया कल लाइये—आज छुट्टी है.' उसने कहा, 'गवाही इत्यादि की कुछ जरूरत नहीं—सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द, बनवारीलाल सब देखता है।' मैंने रुपये लिये। मैंने सोचा, यह तो पागल हो गया है—क्यों न इस डिग्री कर १०३०) रुपये और लूं, यह विचार कर दूसरे ही दिन अदालत में डिग्री कर दी। तारीख मुकर्रर हुई। ब्राह्मण पेश हुआ

न्यायाधीश ने पूंछा—'कहिये आपने रुपये लिये थे?'

न्यायाधीश 'गवाही?'

ब्राह्मण ने दृढ़तापूर्वक कहा 'लिये थे!'

ब्राह्मण ने कहा, 'गवाही वही बनवारीलाल।' मैं उस पागल की बातें सुन कर हँसने लगा।

न्यायाधीश ने पूँछा 'बाप का नाम?'

ब्राह्मण—'नन्दलाल।'

न्यायाधीश—'ठिकाना?'

ब्राह्मण 'गुंजरी का मन्दिर, मथुराजी'—

न्यायाधीश ने गवाही के नाम सम्मन काट दिया—और तारीख मुकर्रर की। मैं उस दिन मन ही मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। मैंने सोचा 'अब तो मैं मुक़द्दमा जीत गया—यह बनवारीलाल काहे को आ… लगे—यदि वह और किसी को गवाही कर लेता तो कदाचित् जी… भी जाता।'

तारीख के दिन पेशी हुई।

न्यायाधीश ने कहा—'आपका गवाही?'

ब्राह्मण ने कहा 'मुझे मालूम नहीं। बुला लीजिये।'

चपरासी ने ज़ोर से कहा 'बनवारीलाल!'

उत्तर मिला 'हाजिर!'

मैं, 'हाजिर' सुनते ही बड़ा विस्मित हुआ—मैंने सोचा कि क्या आकाश फाड़ कर तो 'बनवारीलाल' न आगये।

इतने में 'बनवारीलाल' आ पहुँचे।

न्यायाधीश ने कहा, 'रुपये तुम्हारे सामने दिये थे?'

बनवारीलाल 'हां, दिये थे!'

न्यायाधीश 'सबूत?'

बनवारीलाल '१९७४ के खाते में ४ थे सफ़े में मेरे सामने जमा किये।'

मैंने मन में कहा, मैंने तो कहीं न जमा किये—अब तो मुकद्दमा जीते—मेरे मलीन मुख पर फिर आनन्द चमक उठा।

न्यायाधीश ने खाता मँगवाया और ४ थे सफ़े पर जमा किये रुपये निकले! … … …। ब्राह्मण आनन्द में मग्न हो रहा था। वह प्रेम के मारे बेहोश हो गिर पड़ा! न्यायाधीश ने औषधि दी। ब्राह्मण उठ बैठा। न्यायाधीश ने पूंछा 'आप बेहोश क्यों हो गये थे?'

ब्राह्मण ने सब हाल ज्यों का त्यों कह सुनाया। उसी दिन से मैं और न्यायाधीश घर-बार छोड़-सन्यासी होगये!

मैंने कहा, 'तब मैं तो आप से भी पापी हूं। मैं तो विश्वास ही नहीं करता था।'

साधु ने कहा, 'श्रीमन्दिर के दर्शन करो। तुम्हारे पाप जगन्नाथ जी क्षमा कर देंगे।'

मैं उसी समय श्रीमन्दिर में गया और 'देव' से क्षमा मांगी।

उसी दिन से मैं भला चंगा हो गया, और दूसरे ही दिन घर लौट आया।●

● बाबू …कुमार …लिखित एक '…' के आधार पर

निस्सार जीवन।

तीन घड़ियों के नहीं गुज़रे दुने।
फूल को तजकर नशा काँटे चुने ॥
और भूले ही रहे चस माम के।
खोल दो, फेरे, भरता तिनके गिने ॥ १ ॥
पंगनायों को अनूपम देह गढ़,
सब तरह शोभायमान, सुडौल है।
फल नहीं है आज, यद्यपि, शान से,
पर अगर भीतर लखो, तो पोल है ॥ २ ॥
दिन दहाड़े सामने मेरा किये,
निर्बलों की गरदनें कितनी कटीं !
क्या करें, कुछ भी कहा जाता नहीं।
हाय ! छाती भी नहीं टुक भी फटी ॥ ३ ॥
रात दिन रोते दुखी को देख कर
प्रेम से आंसू कभी पोंछे नहीं।
देखते ही शान में, लो, हो चढ़े।
किन्तु तुम से हैं नहीं ओछे कहीं ॥ ४ ॥
लो, तड़पते भाइयों को देख लो
मान तज, हैं हाथ फैलाये खड़े।
पर नहीं तुम को ज़रा भी ध्यान है—
'क्या किसी को जान के लाले पड़े ?' ॥ ५ ॥
दिल जलों की दर्द से पूरी भरी-
आह सुन कर दम नहीं जाता निकल !
क्या कलेजा मोम से भी तुच्छ है ?
जो ज़रा सी आंच मे जाता पिघल ॥ ६ ॥
भूख से हैं मर रहे जो मरभुखे,
है कभी फूटी नज़र देखा उन्हें ?
माल औ रुपयों भरे सन्दूकचे,
काम देवेंगे, कहो, फिर कब, किन्हें ? ॥ ७ ॥
कर कमाई मौज खुद करते रहे,
दूसरों को ही रहे, बस, टालते।
क्या कभी तुम से हुआ उपकार है ?
काक भी यों दिन बिता ही डालते ! ॥ ८ ॥
नित्य बेईमान बन बाज़ार में,
भाइयों के ही गले हो घोंटते।
घाव को मानो छुरी से चाक कर,
मिर्च से पीसा नमक हो छोड़ते ! ॥ ९ ॥
व्यर्थ आडम्बर बनाया, तन रँगा,
पर खिली हर्गिज़ नहीं दिल की कली।
है कसौटी साँच की-कह दो-खरी,
क्या तुम्हारी है कहीं कुछ भी गली ? ॥ १० ॥
देश के सच्चे हितैषी हो सही,
और इससे ही सभी पद चूमते।
पर अगर है स्वार्थ का कुछ घुन लगा,
तो उसे ही हो, असल में, भूनते ॥ ११ ॥
बात चिकनी और चुपड़ी ही निरी,
औ सभी दिखलावटी ही धाक है।
हो मढ़े, सुन्दर बने, पर अन्त में,
जो लखा; खीरा सरीखो फांक है ॥ १२ ॥
गोद खाली हो गई जिसकी हरे !
काल या दुर्भाग्य के आघात से।
है दिलासा क्या उसे तुमने दिया—
धैर्य की, सच्चे हृदय की बात से ? ॥ १३ ॥
सुन सिसकते आत्मा के ताप को,
दिल नहीं संताप से जिसका जला।
हे हरे ! वह भी कोई इन्सान है !
दुःख से जिसका न भर आता गला ? ॥ १४ ॥

मातादीन शुक्ल।

भारत की भावी उन्नति।

भारतवर्ष जो एक समय में बहुत ही धनवान् देश था, आज कल अत्यन्त निर्धन होगया है। यहां के आठ करोड़ लोग भूखों मर गुज़ारा करते हैं। और इसी निर्धनता के कारण दुर्भिक्ष और (प्लेग) यहां सदैव के महमान बन गये हैं और यहां की दुर्भिक्षता भारी कारण यह है कि यहां के कार्यालय कारखानादिक और व्यापक व्यापार नष्ट हो गये हैं और केवल कृषि या व्याज आदि लोग गुज़ारा करते हैं। सर्वसाधारण की मूर्खता या निर्धनता न तो लोग व्यापारादि में और न कृषि में किसान लोग उन्नति करते हैं। और इसके अतिरिक्त यहां का दान भी बहुत बिगड़ा है। यद्यपि भारतवासी दूसरे युरुप और अमेरिका के विद्वान् सभ्यजातियों की अपेक्षा ज्यादा दानी हैं, परन्तु हमारा दान, या देशोन्नति की ओर नहीं जाता शास्त्रों में दान के विषय में आज्ञा सुपात्र यानी विद्वान् साधु ब्राह्मण या अतिथि की सेवा में या पाठशालाओं के स्थापन में समर्पण हो और कुपात्र यानी मूर्ख दुराचारियों को देने में दाता को पुण्य के बदले महापाप लगता है क्योंकि मूर्ख लोग दान ले कर गांजा भांग या वेश्याओं दुराचारी बन जाते हैं। यदि दाता लोग इन कुपात्रों को दान न देते, तो ये लोग न तो मूर्ख होते न ऐसी देश की अवनति होती।

(१) आज कल और सब जातियां हर प्रकार से उन्नति कर रही हैं, और विद्या या गणना में भी बढ़ रही हैं, किन्तु भारतवासी हर प्रकार से घट रहे हैं। क्योंकि भारतवर्ष में दुर्भिक्ष व प्लेग के कारण हरसाल ६० लाख मनुष्य मरते हैं और इनकी विधवायें कोई तो वेश्या हो जाती हैं और कोई धर्म को छोड़ ईसाई आदिक बन जाती हैं। और उनके सन्तानों का भी इसी प्रकार बुरा हाल होता है। दुर्भिक्षों का भारी कारण यह है कि भारतवर्ष से हर साल दो सौ करोड़ रुपया अन्य अन्य देशों को बाहर निकलता जाता है। क्योंकि लोग स्वदेशीय चीज़ों को छोड़ विदेशी चीज़ें ग्रहण करते हैं। (२) कई पुरुष यह भी कहते हैं कि विदेशी चीजें देखने में सुन्दर हैं और इस देश की बनी हुई वस्तुयें वैसी सुन्दर नहीं होतीं। उसका उत्तर यह है कि विदेशी वस्तुयें वेश्या की नाई हानिकारक हैं और स्वदेशी वस्तुयें अपनी धर्म पत्नी की नाईं सुखदायक होती हैं। यह भी सत्य नहीं है कि विदेशी वस्तुयें सस्ती होती हैं। वास्तव में स्वदेशी वस्तुयें सस्ती हैं। क्योंकि स्वदेशी चीज़ें विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा द्विगुने या तिगुने काल तक चलती हैं। अब हर एक भारतवासी को चाहिए कि धर्म की रक्षा और देशोन्नति के लिये सच्चे दिल से दृढ़ प्रतिज्ञा करे कि वह केवल अपने देश की बनी हुई चीजों को काम में लावेगा, ताकि भारतवर्ष का धन विदेशों में निकलने से बच कर इसी देश में रहे और फिर यहां हर प्रकार के कारखाने स्थापित हो जावें, जिनमें लोगों को जीविका प्राप्त हो। धनाढ्यों का भी कर्तव्य है कि वह अपने धन को नये २ कारखानों के स्थापन करने में लगावें। न कि आज कल की तरह धन को पृथ्वी में गाड़ कर या सोने चांदी के भूषण बनाने में व्यर्थ खोवें।

क्योंकि सब से अच्छा भूषण विद्या ही है। आज कल के स्वर्ण या चांदी के भूषणों से चोरी का डर रहता है और प्रायः इन्हीं भूषणों के लालच से चोरियां होती हैं और बच्चे भी प्रायः भूषणों के कारण जान से मारे जाते हैं। इस लिए धनवान् लोग अपने धन को सोने या चांदी के भूषणों में व्यय करने के बजाय विद्यारूपी उत्तम भूषण के प्रचार या सब प्रकार के कारखानों के स्थापित करने में लगावें। उससे उनको भी बहुतसा लाभ होगा और देशवासियों को भी इन कारखानों से जीविका मिल जावेगी। और यह बड़ा धर्म और पुण्य का काम है। बडे लाटसाहब ने अपनी एक वक्तृता में कहा है कि भारतवर्ष का धन आठ सौ करोड रुपया इसी स्वर्णादि के भूषणों में या पृथ्वी में गड़ा हुआ व्यर्थ पड़ा है और यदि यह आठ सौ करोड रुपये सब प्रकार के कारखानों में लगाये जावें तो कोई भी मनुष्य भूखों न मरे। परमेश्वर भारतवर्ष के धनवानों को देशसेवा और कारखानों के स्थापित करने की ओर प्रेरित करें।

टहलराम गंगाराम जमींदार, डेरा इस्माईलख़ां।
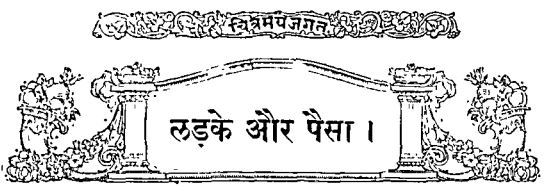
लड़के और पैसा।

राष्ट्र का सच्चा अभ्युदय होने के लिए उसके नागरिक जनों की शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति बढ़नी चाहिए। इन तीनों का महत्व समान ही है। तथापि, उच्चार और आचार के पहले जब कि स्वाभाविक ही विचार को प्रथम स्थान मिला है तब फिर सब से पहले मन सुसंस्कृत होना चाहिए। जो लड़के आज बाल्यावस्था में हैं वही आगे चल कर किसी समय राष्ट्र के आधारस्तम्भ होंगे। उन को सब प्रकार से बलवान् बनाने के लिए उनकी शिक्षा शुद्ध आधार पर स्थापित होनी चाहिए। व्यायामशाला, शिक्षासम्बन्धी संस्थाओं, इत्यादि से मिलनेवाली शिक्षा, इस समय तो अवश्य ही कम से कम एकांगी होती है। क्योंकि एक तो ऐसी जगह रहने के लिए लड़कों को समय ही बहुत थोड़ा दिया जाता है। दूसरे, सब प्रकार से योग्य और श्रद्धापूर्वक अपना कार्य करनेवाले शिक्षक ही दुर्लभ हैं; और फिर उसमें भी ८।१० रुपये मासिक पर अच्छे अध्यापकों का मिलना बिलकुल असम्भव होता है। तीसरे, यदि क्षणभर के लिए यह भी मान लिया जाय कि ऐसे अध्यापक मिल भी जाँय, तो भी, चूंकि शिक्षक को एक ही समय में अनेक विद्यार्थियों पर ध्यान रखना होता है, इस कारण उन सब लड़कों के मन पर बारीकी से जांच रखना प्रायः असम्भव होता है। इसलिए अपने लड़कों को उत्तम नागरिक बना कर उनके द्वारा देशकार्य के लिए अपना अपना भाग ग्रहण करने को जो आधारभूत सर्वांगपरिपूर्ण शिक्षा आवश्यक है वह उन्हें देने का सारा भार अवश्य ही उनके माबाप पर पड़ता है।

गृहशिक्षा की व्याप्ति लड़कों के अध्ययन क्रम की अपेक्षा बहुत अधिक है। उसमें लड़कों के मानसिक, शारीरिक और नैतिक गुणों की वृद्धि जिस शिक्षा के योग से होती है उस सारी शिक्षा का अन्तर्भाव होता है। इस शिक्षा की जवाबदारी जान कर योग्य प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय, यह प्रश्न बहुत नाजुक और बड़ा विकट है। इस पर चाहे जितने ग्रन्थ लिखे जावें, सब अपूर्ण होंगे। इसके सिवाय, इस प्रश्न को हल करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव का और गुणदोषों का ज्ञान इतना आवश्यक है कि यह केवल विशिष्ट परिस्थिति के माबापों को ही हो सकता है। वह परिस्थिति यही है कि लड़कों के साथ लड़का बन कर चलना होता है। लड़के ही क्यों न हों, तथापि बड़ों की तरह उनमें भी संकोच, लज्जा, इत्यादि भावनाएं होती ही हैं। जब तक हम उनके साथ ऐसा बर्ताव न करें कि जिससे वे अपने में से ही हमको भी एक समझने लगें तब तक वे अपना सच्चा स्वभाव दिखला नहीं सकते। अस्तु। तथापि कुछ स्थूल नियम ऐसे होते हैं कि उनमें कुछ रद्दोबदल करने से वे सब पर साधारणतया उपयुक्त किये जा सकते हैं। प्रस्तुत लेख में हम इसी प्रकार का एक प्रयत्न करना चाहते हैं।

व्यवहार में 'पैसा' एक अत्यन्त उपयुक्त और महत्वपूर्ण वस्तु है। संसार में जितने अपराध होते हैं उनमें से, कम से कम, ३ तीन चौथाई अपराध पैसे के लिए ही होते होंगे। परन्तु इस बात का विचार बहुत थोड़े पुरुषों ने किया होगा कि इस इतने महत्वपूर्ण विषय में लड़कों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। कई माबाप पैसे को आवश्यकता से अधिक महत्व दे देते हैं, और इस बात का प्रयत्न करते हैं कि पैसा लड़कों के हाथ में न जाने पावे। इसका परिणाम यह होता है कि बिलकुल छुटपन से ही लड़कों में यह जिज्ञासा पैदा हो जाती है कि पैसे में ऐसा कौन सा गुप्त रहस्य है! और आगे चल कर उनको यही नहीं समझ पड़ता कि पैसे का उपयोग क्या है, अतएव "कंजूस बाप के खर्चीले बेटे" के समान उनकी स्थिति हो जाती है। क्रिया और प्रतिक्रिया का साथ स्वाभाविक ही है। कई लड़के तो, अपने माबाप की उपर्युक्त प्रवृत्ति के कारण, घर के घर ही में चोरी करने लगते हैं। वे घर से एक-आध पैसा चुरा ले जाते हैं, और अपने उद्दण्ड साथियों की तरह बाजार में जा कर सड़गले फल, सड़ीबुसी मिठाई अथवा और कोई खेलने की चीज़, इत्यादि में उसे खर्च करने लगते हैं। इससे जहां बालकों का स्वास्थ्य खराब होता है वहां उन्हें बुरी आदत भी पड़ती है। दुकानदार पहले तो कुछ दिनों तक पैसे ले ले कर सौदा देता जाता है; बाद को लड़कों के आग्रह पर वह उन्हें उधार भी देने लगता है; और फिर जब उन्हें घर में अधिक पैसे एकदम मिलने की अड़चन होती है तब वे चटुए लड़के अपने माबाप के सन्दूकों के तालेतक खोल कर पैसे उठाने लगते हैं। यही आदत आगे चल कर ऐसी भयंकर हो जाती है कि मनुष्य का जीवन तक सत्यानाश हो जाता है। अस्तु। इससे यह बात पाठकों को मालूम हो जायगी कि बालकों को पैसे का महत्व समय पर न समझा देने के कारण और इस विषय में उचित सावधानी न रखने के कारण, आगे चल कर कितने बड़े बड़े अनर्थ होते हैं। इस प्रकार की गृहशिक्षा दुर्गुणों का ही बीजारोपण करती है। और अन्त में उसके कटु फल माबाप और स्वयं लड़कों को भी भोगने पड़ते हैं। हमारे मन से तो यदि इन सब दोषों का खप्पर माबाप के ही सिर पर फोड़ा जाय तो कोई अनुचित बात न होगी। प्रजोत्पादन की अपेक्षा प्रजापालन अत्यन्त महत्व और उत्तरदायित्व का कार्य है; जब तक स्त्रीपुरुष अपना यह उत्तरदायित्व नहीं पहचानते; और तदनुसार प्रबन्ध करने की शक्ति उनमें नहीं आती, तब तक नैतिक दृष्टि और समाजहित की दृष्टि से प्रजोत्पादन का उन्हें कुछ भी अधिकार नहीं है।

इसके विरुद्ध बहुधा यह बात भी देखी जाती है कि लड़कों को पैसा मांगते देर नहीं होने पाती कि माबाप लोग चट उनके हाथ में पैसा रख देते हैं। इसका परिणाम यद्यपि चोरी करने का नहीं होता, तथापि यह बात भी कुछ कम हानिकारक नहीं है। क्योंकि पैसे का महत्व और उसका सदुपयोग जाने बिना ही पैसा उनके हाथ में आ जाता है। इस कारण वे बहुत लापरवाह बन जाते हैं। आज पैसा दिया वह खो डाला; फिर मांगा; और वह मिल भी गया इससे पैसे की कीमत उनके सामने कुछ भी नहीं रहती। कई जगह, विशेष कर मध्यम स्थिति के कुटुम्बों में देखा जाता है कि जहां लड़का हठ में आया कि उसके हाथ में पैसा दे कर दुकान से मिठाई ले देते हैं, अथवा कहते हैं कि ला कर खा लो; इससे उनका हठ दुगुना होता है। यही नहीं, किन्तु वे फिर भी पैसा मांग कर मिठाई खाने के मोह में पड़ जाते हैं। ऐसी दशा में यदि समय पर उनको पैसा मिल कर सन्तोष हो जाता है, तब तो ठीक है, अन्यथा ऐसे लड़कों को भी बुरी आदतें लग जाती हैं। पैसे के विषय में खर्चीलापन और कंजूसी, दोनों बातें बुरी ही होती हैं। तथापि खर्चीलापन यदि प्रमाण में होता होगा तो उससे कंजूसी ही हज़ारगुना अच्छी। पैसे का सदुपयोग और उसका महत्व समझने के पूर्व लड़कों के हाथ में पैसा दिया जाना मानो खर्चीलेपन की शिक्षा देना ही है। ऐसी दशा में उस पैसे का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग होना बहुत कुछ लड़कों की नैसर्गिक मानसिक प्रवृत्ति पर और कुछ अंशों में परिस्थिति पर अवलम्बित रहेगा। वास्तव में यह बात भी अनिष्ट ही है।

लड़कों के हाथ में पैसा देना अवश्य चाहिए, लेकिन देने के पहले, बिलकुल गरीब मनुष्यों के दृष्टान्त दे कर उनको यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि पैसे का महत्व क्या है, और उसके प्राप्त करने में कैसा और कितना परिश्रम करना पड़ता है। इसके सिवाय यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि लड़कों को पैसा, उनकी हठ पर अथवा यों ही स्वाभाविक ही उनके मांगने पर न दे देना चाहिए, किन्तु उनसे कोई अच्छा सा हलका काम—[illegible]—करा कर तब पैसा, पारितोषिक के तौर पर, देना चाहिए। ऐसा करने से लड़के यह अच्छी तरह समझ जाते हैं कि पैसा मुफ्त में नहीं मिलता, उसके कमाने के लिए काम करना पड़ता है। ऐसा करने से लड़कों को पैसे की सच्ची कीमत मालूम हो जाती है, [illegible]। इसके सिवाय, इससे उनको एक

प्रकार का यह स्वाभिमानसन्तोष भी मालूम होता है कि हम अपने कुटुम्ब के सब लोगों के हित का काम करते हैं। और जब वे देखते हैं कि हमारे इस कार्य की कदर होती है, और उसमें पारितोषिक भी मिलता है तब उन्हें आगे और काम करने के लिए उत्साह भी होता है। ऐसे हलके काम बहुत होते हैं। उदाहरणार्थ--घर के पास यदि कोई तरकारी-भाजी का बाग हो तो उससे तरकारी-भाजी अथवा कलियां इत्यादि तोड़ लाना, पूजा के लिए फूल, तुलसीदल, नित्यनियमानुसार तोड़ लाना, नज़दीक यदि कोई दूकान हो तो वहां से फुटकर कुछ सामान ले आना, घर में यदि कोई समाचारपत्र आता है तो उसका पिछले दिन का अंक सम्हाल कर रखते जाना, लड़का यदि कुछ बड़ा हो और लिखना-पढना जानने लगा हो तो धोबी के कपडों का हिसाब रखना, इत्यादि अनेक कार्य हो सकते हैं।

लड़कों के मन में *विद्याभिरुचि अथवा अन्य कोई उत्तम गुण उत्पन्न* करने के लिए उनमें चढ़ा-ऊपरी पैदा कर देनी चाहिए, और जो आगे रहे उसे पारितोषिक के तौर पर पैसे देने चाहिए। यह भी एक अच्छा तरीका है। लेकिन वह चढ़ा-ऊपरी ऐसी होनी चाहिए कि उसमें सब समान रूप से भाग ले सकें। उदाहरणार्थ, किसी गीत अथवा कविता के कहने की चढ़ा-ऊपरी यदि रखी जाय, और उसमें किसी एक ही लड़के का कंठ मधुर हुआ; और अन्यों का साधारण अथवा बेसुरा हुआ, तो ऐसी दशा में अवश्य ही मधुर कंठवाले को ही पारितोषिक का सौभाग्य प्राप्त होगा; और बाकी लड़कों को अपना सिर नीचा करना पडेगा। सच पूछिये तो ऐसी *प्रतियोगिता नहीं लगानी चाहिए;* और यदि *लगाना आवश्यक* ही जान पड़े तो साथ ही कुछ बार ऐसी भी शर्तें लगानी चाहिए कि जिनमें उस लड़के को भी हार खानी पड़े जो कि गाने में आगे रहता है। ऐसा करने से अन्य लड़कों को सदैव ही अपना सिर नीचा न करना पड़ेगा; और मधुर स्वरवाले लड़के को अनुचित अभिमान भी न होने पावेगा। ऐसी शर्तें लगाते समय एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए; वह यह है कि; इन बाज़ियों के कारण लड़कों में कहीं द्वेषाग्नि न पैठ जावे। जिस उद्देश्य से वे शर्तें लगाई जाती हैं उसका सिद्ध होना ही मुख्य हेतु है। ऐसी प्रतियोगिता के अन्त में जित और जेता दोनों को समान ही आनन्द मालूम होना चाहिए। किसी पाठ को थोडी देर पढ़ कर उसका मतलब व्यवस्थित रूप से बतलाना, कोई सुनी हुई पौराणिक आख्यायिका या इसापनीति इत्यादि की कहानी फिर स्वयं बतलाना; ऐसी चढ़ा-ऊपरी भी लगाई जा सकती है। हमारे यहां शारीरिक व्यायाम की अनेक बाज़ियां लोग समय समय पर लगाया करते हैं। हां, ये बाज़ियां बड़े बड़े मनुष्यों में लगती हैं; और हम अपने घर के लड़कों ही में (बहुत हुआ तो पड़ोस के लड़के भी शामिल कर लेना चाहिए) नाना प्रकार की शर्तें लगाने की चाल डालनी चाहिए।

यह बात हम ऊपर बतला ही चुके हैं कि पैसा हाथ में देने के पहले लड़कों को यह अच्छी तरह से बतला देना चाहिए कि उसका सदुपयोग क्या है। अच्छे विनियोग की ऐसी अनेक बातें हैं कि लड़कों के मन पर बैठाई जा सकती हैं "पैसा फंड" के समान अनेक संस्थाएं हैं कि जिनके योग से देशी उद्योगधंधों की होती है। यदि हो सके तो ऐसी एक आध संस्था, खास तौर, को दिखला देनी चाहिए; और उसके उद्देश तथा कार्यव्याप्ति अच्छी तरह समझा देनी चाहिए। *अनाथबालिकाश्रम, गोरक्षा,* कुल, ऋषिकुल, अनाथालय, साहित्यसम्मेलन, इत्यादि संस्थाओं को सहायता देना भी अच्छी बात है। सहायता चाहे कुल थोड़ी ही हो लेकिन उसका महत्व बहुत बड़ा है; और उससे भी बड़ा है। दीन, अनाथ, पंगु, दुर्भिक्ष-पीड़ित, इत्यादि दुर्बलों को सहायता करना भी एक अच्छा काम है। ऐसे लोगों देखने-दिखाने का मौका हाथ से न जाने देना चाहिए, और हृदयद्रावक दशा बालकों के मन में भलीं भांति बैठा चाहिए।

गोल्डस्मिथ के "विकर आफ वेकफील्ड" में इस विषय में जगह उल्लेख आया है। विकर के यहां जब कोई पाहुना आता अपने बालकों में कोई गीत गाने अथवा कोई पाठ पढ़ने की लगाता था; और जो सब से अच्छा निकलता उसे गिर्जाघर की दाय-पेटी में डालने के लिए एक पेनी देता था (The one who the loudest & distinctest was given a penny to thrown into the Poor Box) अवश्य ही, इस प्रकार की लड़कों को, धर्मादाय-पेटी में पैसा डालना बड़प्पन और बात मालूम होती होगी।

इन बातों के अतिरिक्त पैसे के विनियोग करने का एक और तरीका यह है कि उसके द्वारा लडकों की निजी आवश्यकताएं पूरी की जावें प्रायः ऐसी परिस्थिति बहुत कम आती है; तथापि जहां लडकों के हाथ में बहुत सा पैसा (pocket-money) दिया जाता है, अथवा जहां साम्पत्तिक दशा अच्छी होती है, अथवा जहां लड़के स्वयं बाज़ियां जीत कर या वज़ीफ़े (छात्रवृत्तियां) प्राप्त कर के पैसा पाते हैं वहां उपर्युक्त तरीके का उपयोग किया जा सकता है। धनिक कुटुम्बों को उचित है कि लड़कों के प्यारे खिलौने या पुस्तकें ले देने में ऐसे पैसे का उपयोग करें। गरीब स्थिति के कुटुम्ब कपडे-लत्ते, इत्यादि आवश्यक वस्तुएं लड़कों को मोल ले देने में उस पैसे का उपयोग करें। लड़कों को जब नवीन वस्तुएं प्राप्त होती हैं, तब स्वाभाविक ही उन्हें बड़ा आनन्द होता है। और जब वे देखें कि अब हम अपने प्राप्त किये हुए पैसे से ही ये वस्तुएं लेते हैं तब उन्हें और भी अधिक हर्ष होगा; और स्वाभिमान की उनमें जागृति उत्पन्न होगी। खिलौने इस प्रकार के ले देना चाहिए कि जिनके खेलने से लड़कों का मनोरंजन तो अवश्य ही हो, साथ ही उनके अंगों को व्यायाम मिले; और साथ ही उनमें सुरुचि का भी प्रभाव पड़ते रहे।
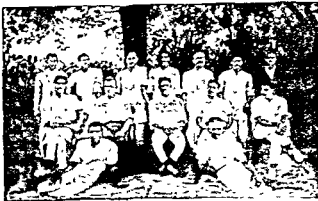
मराठी "बालपत्रक"।

कर्नाटक-क्रिकेट-टीम।

टीम के खिलाड़ियों का फ़ोटो।

शाहपुर-सारस्वत-व्यायाम-शाला।

मीनार-दिग्मिट।

इफिजीनिया और आरेस्टेस।

(लेखक---प्रो॰ शि॰ म॰ परांजपे, एम॰ ए॰ ।)
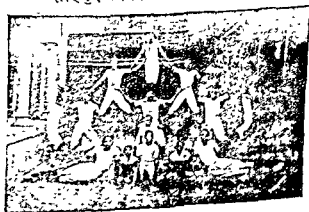
आज-कल एशियामैनर के नाम से जो देश प्रसिद्ध है, उस देश के पश्चिमी किनारे पर पूर्वकाल में ट्राय नाम का एक बड़ा शहर था। वहाँ पर प्रायम नामक राजा राज्य करता था। उसके लड़कों में से पॅरिस नामक लड़का अति रूपवान था, उसकी सुन्दरता दुनिया भर में प्रख्यात थी। ट्राय शहर से कुछ अन्तर पर समुद्रपार ग्रीस नाम का जो देश है, उसमें पहले अलग अलग अनेक छोटी छोटी रियासतें थीं। एक रियासत में मिनीलास नामक राजा राज्य करता था; और उसका भाई भी एक दूसरी रियासत का राजा था। उस समय एक बार ट्राय का राजपुत्र पॅरिस ग्रीस के राजा मिनीलास के यहाँ महमानी में आया। वहाँ पर पॅरिस ने मिनीलास की स्त्री हेलन को देखा। पॅरिस जैसा अति रूपवान था, वैसी ही हेलन भी बड़ी सुन्दर थी। हेलन की सुन्दरता भी जग-प्रसिद्ध थी। वे दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गये; और अन्त में मिनीलास के घर महमानी में आया हुआ पॅरिस हेलन को फुसला कर ट्राय शहर को भगा ले गया।

यह बात सुन कर ग्रीस के सारे राजाओं को बड़ा क्रोध आया, और मिनीलास के इस अपमान का बदला लेने के लिए और ट्राय का राज्य पादाक्रान्त कर के हेलन को लौटा लाने के लिए, ट्राय पर चढ़ाई करने के इरादे से सब छोटे बड़े राजे-रजवाड़े अपनी अपनी सेनाएं और जहाज़ लेकर समुद्र किनारे आ पहुँचे। मिनीलास का भाई अगमेमनन् सब राजाओं से अधिक शूर तथा पराक्रमी था, इसलिए वही सारी सेना का सेनापति बनाया गया। परन्तु सेनापति नियत होने पर उसको यह स्वप्न दिखाई दिया---' जब तू अपनी लड़की देवताओं के लिए बलि देगा, तभी तेरी सारी सेना समुद्र पार जा सकेगी; अन्यथा, तेरे सारे जहाज़ बीच में ही कहीं डूब जायँगे। " इस प्रकार के स्वप्न से अगमेमनन का चित्त बहुत व्याकुल हुआ; वह यह न समझ सका कि ऐसी दशा में अब क्या किया जाय। ग्रीशियन समुद्र के किनारे सारी सेना के तम्बू लगे हुए थे; समुद्र के पानी पर जहाज़ों की डोंगियां वायु की मंदगति से लहरा रही थीं; और अगमेमनन् अपने तम्बू में चिन्ता-ग्रस्त हुआ तलमला रहा था।

ऐसी दशा में एक रात उसे बिलकुल ही चैन न पड़ी। आधी रात व्यतीत होगयी, तथापि उसे नींद न आयी। उसका चित्त बिलकुल व्यग्र हो रहा था। इतने में वह अपनी स्त्री को एक पत्र लिखने बैठा परन्तु मन की व्यग्रता के कारण वह एक बार जो बात लिखता उसी को फिर काट देता, इसी प्रकार काटते-छांटते अन्त में उसने अपना पत्र पूरा किया। पत्र लिखते समय उसकी आँखों से एक समान अश्रुधारा बह रही थी। शोक के कारण उसने कई बार पत्र खोला और बन्द किया। अन्त में बन्द कर के उस पत्र को उसने एक सेवक को दिया। यह पत्र उसने अपनी स्त्री क्लायटेमनेस्ट्रा को लिखा था। इसके पहले उसने और भी एक पत्र उसको लिखा था। उसमें उसने यह बहाना किया था कि, " अपनी बेटी इफिजीनिया का ब्याह थेसेलियन नामक प्रान्त के एक अनिशूर राजा से करता हूँ; इसलिए, तुम अपनी बेटी को लेकर शीघ्र यहाँ आओ। " उसका पहला विचार यह था कि इस मिस से बेटी के साथ लड़की को बुला कर उसे देवता को बलि दे दें; परन्तु मन की कठिनता के कारण उसने पहला विचार बदल दिया; और अब इस पत्र में यह बात लिखी कि, " अब तुम अपनी बेटी को लेकर यहाँ मत आओ, इस समय विवाह का विचार मैंने स्थगित कर दिया है। ' सेवक को पत्र देकर उसने कहा कि यह पत्र उसकी स्त्री क्लायटेमनेस्ट्रा को ही देना।

परन्तु वह जासूस ज्योंही तम्बू से बाहर निकला त्योंही अगमेमनन के भाई मिनीलास ने, जो वहीं बाहर टहल रहा था, वह पत्र छीन लिया, और उसे खोल कर पढ़ा। आकिलिस से विवाह कर देने के मिस से अपनी लड़की को बुलाने के लिए जो पत्र अगमेमनन ने पहले अपनी स्त्री को लिखा था, उस पत्र का हाल भी मिनीलास पर प्रकट था। मिनीलास चूंकि चाहता था कि भावी कार्य की सिद्धि के लिए इफिजीनिया की बलि दी जावे, इसी लिए वह बाहर खड़ा हुआ उसकी बाट जोह रहा था। उसे इस बात का भी डर था कि शायद मेरा भाई प्रेमवश अपना विचार बदल दे। और इसी संशय से मिनीलास ने जासूस से वह पत्र छीन कर पढ़ा। अगमेमनन ने जासूस से कहा था कि यह पत्र दूसरे किसी मनुष्य के हाथ में न पड़ने पावे, जब मिनीलास ने वह पत्र छीन लिया तब जासूस बड़े जोर से चिल्लाया। उस गड़बड़ को सुन कर अगमेमनन अपने तम्बू से बाहर आया, और देखने लगा कि यह क्या गड़बड़ है. इतने में मिनीलास आगे आया और अगमेमनन से सम्बोधन कर बोला, " यह पत्र जो मेरे हाथ में है, क्या तुमने उसे देखा है ? "

अगमेमनन बोला, " हाँ, वह मेरा ही है; उसे मुझे लौटा दे। "

इस पर मिनीलास ने उत्तर दिया, " इस पत्र में तू ने जो कुछ लिखा है वह सारी ग्रीक सेना को जब तक मैं पढ़ कर न सुना लूंगा तब तक मैं यह पत्र तुझे कदापि वापस न दूंगा। "

" लेकिन पहले यह तो बतलाओ कि यह पत्र तुम्हारे हाथ में आया कैसे ? " अगमेमनन ने पूछा।

मिनीलास ने कहा, " मैं यहां खड़ा हुआ यह बाट जोह रहा था कि तुम्हारी लड़की इफिजीनिया कब आती है। इतने ही में तुम्हारा जासूस तम्बू से बाहर आया। मुझे इस बात का संशय था कि तुम अवश्य अपना निश्चय बदल दोगे, इसलिए मैंने जासूस के हाथ से यह पत्र छीन लिया है। "

इस पर अगमेमनन क्रोधित हो कर बोला, " यह मेरा निजी पत्र था, उससे तुम्हें मतलब ? क्या मुझे अपने निजी कामों में भी दूसरों की मर्ज़ी के अनुसार चलना पड़ेगा ? '

मिनीलास सख्ती से बोला, " जब तक लोगों ने तुम को सेनापति न बनाया था तब तक तुम सब लोगों की मर्ज़ी के अनुसार चलते थे, तुम सब लोगों की खुशामद करते थे, तुम उनका आगत स्वागत करते थे, तुम उनको दावतें देते थे। परन्तु सेनापति का अधिकार मिलते ही तुम्हारी सारी चाल बदल गयी, तुम गर्व से फूल गये, और तुमने गर्व के कारण सब से बोलना छोड़ दिया। आगे चल कर जब तुम को यह स्वप्न पड़ा कि जब तुम अपनी लड़की की बलि दोगे तभी तुम्हारी सेना ट्राय तक पहुँचेगी, तब तुमने इस डर से, कि मेरा सेनापति का पद छिन जायगा, मेरी अपकीर्ति होगी; और अपने भविष्यवादी ज्योतिषी कॅल्कस के कहने पर--तुम ने अपनी बेटी की बलि देना स्वीकार किया फिर इस बहाने से, कि आकिलिस से विवाह करना है, क्या तुमने उसे नहीं बुला भेजा है ? क्या ये सारी बातें सत्य नहीं हैं ? और अब तुम बदल गये ! तुम्हारे समान डरपोक सेनापति जो ग्रीस को मिला है, यह ग्रीस का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। "

अगमेमनन ने पूछा " तुमको इस प्रकार मेरी बदनामी करने का क्या अधिकार है ? तुम्हारी स्त्री तो जब तुम्हारे अधिकार में नहीं रहती, तब तुम भला मुझे कैसे दोष दे सकते हो ? अपनी स्त्री [illegible] लाने के लिए तुम क्यों आगे नहीं बढ़ते ? मेरे पहले विचारों में [illegible] भूल थी, बाद में मेरे विचार ठीक हो गये तो इस में हानि क्या है ?

अपनी स्त्री [illegible] पाने के लिए तुम [illegible] क्यों [illegible] ? तुम्हारी स्त्री के लिए क्या मैं अपनी बेटी की बलि देकर सदा [illegible] के लिए दुःखी हो बैठूं ? "

मिनीलास, यह कहते हुए, कि यदि तुम इसी [illegible] [illegible] घात करके मुझे [illegible] के बल [illegible] [illegible] मुझे कोई दूसरी सहायता करनी ही चाहिए, " [illegible] [illegible] कह दिया।

इतने ही में एक आदमी आकर कहने लगा कि "महाराज, आपकी बेटी इफ़ेजीनिया को मैं आपकी आज्ञानुसार ले आया हूँ। महारानीजी क्लायटेमनेस्ट्रा भी आयी हैं। वे अपने छोटे बेटे ऑरेस्टेस को भी साथ लायी हैं। अधिक दूर का प्रवास होने के कारण घोड़े बिलकुल थक गये हैं। इस कारण वे सब लोग इस पास की नदी के किनारे थोड़ी देर विश्राम करने के लिए ठहर गये हैं। उनको देखने के लिए सेना के बहुत सारे लोग उनके आस-पास जमा होगये हैं। और सैनिक लोगों में यह चर्चा हो रही है कि उनके आने का कारण क्या है। अनेक लोग यह कहते हैं कि बेटी का विवाह करने के लिए महाराज ने बुलाया है, तो बहुतेरे लोग कहते हैं कि नहीं, महाराज ने केवल उन्हें भेटने के लिएही बुलाया है।"

यह सुनकर, कि मेरी स्त्री आयी है, अगमेमनन् बड़े संकट में पड़ा, और वह अपने मन में बोला, "अब मैं इसमें क्या करूँगा? मैं ने यह लिख कर उसे बुलाया है कि लड़की का विवाह करना है, और यही समझ कर वह यहाँ आयी है। परन्तु जब वह मेरा सत्य हेतु जानेगी तब वह मुझे क्या कहेगी? मैं अपनी बेटी से क्या कहूँगा? पुत्री! तेरे समान हतभागी कोई नहीं है! मृत्यु से तेरा विवाह करने के लिए मैंने-तेरे पिताने-तुझे यहाँ बुलाया है! हाय! जब उसको सच्ची हालत मालूम होगी, तब वह मेरे पास आकर मुझ से पूछेगी "पिताजी, क्या तुम सचमुच मेरा वध करने वाले हो?" तब मैं उसका क्या उत्तर दूंगा? उसी प्रकार इस भयंकर प्रसंग में उसका छोटा भाई ऑरेस्टेस भी रोने लगेगा। उससे क्या कहूँगा? हाय हाय! यह सारा भयंकर प्रसंग उस नीच पॅरिस के कारण मुझ पर आया है! उस दुष्ट का एकदम सत्यानाश हो!"

इस समय अगमेमनन का भाई मिनिलास लौट आया, और अपना पश्चात्ताप प्रदर्शित करके बोला, "मैंने जो कुछ पहले तुम से कहा है वह मेरी भूल है। क्योंकि मेरे लिए तुम्हें भला अपनी लड़की मृत्यु के मुख में क्यों देनी चाहिए? मेरी स्त्री हेलन, लौट कर आवे चाहे न आवे, तुम्हारी लड़की से इस का क्या सम्बन्ध है? और, अब यह जो सेना जमा हुई है, इसको अपने अपने स्थान पर लौट जाने दो। क्योंकि तुम्हारी लड़की का बिना कारण घात करना अन्याय है; और यह हमारे हाथ से कदापि नहीं होना चाहिए!"

इस पर अगमेमनन ने उत्तर दिया, "यह कैसे हो सकता है! सैनिक लोग मेरी लड़की की बलि दिलाये बिना नहीं मानेंगे!"

इस पर मिनिलास ने यह युक्ति सुनाई कि "तुम अपनी लड़की को गुप-चुप ऑरगास को लौटा दो, फिर कोई क्या कर सकता है। परन्तु अगमेमनन को यह सलाह पसन्द न हुई, उसने कहा, कि मैंने अपनी लड़की को बलि देने का प्रण किया है, यह कलकस और यूलिसस जानते हैं, जब वे जानेंगे कि मैंने वचन भंग कर दिया, तो वे जिधर-तिधर डंका पिटवायेंगे। और यदि मैं भी ऑरगास को चला जाऊं तो ये सब लोग वहाँ मेरे पीछे ही पीछे आयेंगे और मेरा राज्य विध्वंस कर डालेंगे। सारांश यह है कि, अब मैं चाहे जो कुछ करूं, परन्तु मैं इस पेंच से कदापि नहीं छूट सकता—ऐसा भयंकर संकट मेरे ऊपर आ पड़ा है, परन्तु तुम जल्दी जा कर ऐसा प्रबन्ध करो, कि इन बातों का एक शब्द भी रानी क्लायटेमनेस्ट्रा के कान तक न पहुँचे।"

परन्तु ये बातें समाप्त न होने पायी थीं कि एकदम क्लायटेमनेस्ट्रा वहाँ आ पहुँची। तीनों एकदम रथ से उतरे। इफ़िजीनिया दौड़ कर पिता के गले से लिपट गयी। और बोली "पिताजी। यह बहुत अच्छा किया, जो मुझे यहाँ बुला लिया!"

अगमे०—ईश जाने भला हुआ अथवा बुरा!

इफि०—क्यों पिताजी! आप ऐसा क्यों कहते हैं? मुझे जान है कि मेरा आना आप को अच्छा न लगा।

अग०—पुत्री, जो राजा होता है, और जो किसी सेना का सेनापति होता है, उसके मन में अनेकों चिन्तायें रहती हैं।

इफि०—परन्तु ये सारी चिन्तायें आप क्षण भर के लिए दूर कर मुझ से खुले मन से बोलिये।

अग०—तुझे देख कर सचमुच मुझे बड़ा आनन्द होता है।

इफि०—यदि आप को आनन्द हो रहा है, तो आपकी आंखों से आंसू क्यों बह रहे हैं?

अग०—प्यारी पुत्री, अब तेरा और मेरा दीर्घ काल के लिए वियोग होनेवाला है, इसलिए मेरी आंखों से आंसू आरहे हैं।

इफि०—ईश्वर करे, ये लड़ाइयां एकदम जल जांय!

अग०—नहीं नहीं! ये कैसे जलेंगी! ये मेरे अन्तःकरण को जलाने के लिए निर्माण हुई हैं!

इफि०—पिता जी! इस लड़ाई के लिए क्या तुम को मुझ से दूर जाना है?

इफिजीनिया दौड़ कर पिता के गले से लिपट गई। और बोली "पिताजी। यह बहुत अच्छा किया, जो मुझे यहां बुला लिया।"

अग०—हाँ, और तुझे भी तो जाना है!

इफि०—परन्तु मेरे साथ माताजी तो रहेंगी, कि मुझे अकेले ही जाना होगा?

अग०—अकेले! अकेले! मां-बाप कोई भी तेरे साथ न जा सकेंगे!

इफि०—तो क्या पिता जी आप मुझे कहीं अकेली रहने के लिए भेजनेवाले हैं?

अग०—सुन, तू इतनी बातें क्यों करती है, बच्चों को इतनी बातें न पूछना चाहिए।

इफि०—अच्छा, जाने दीजिए। आप यहाँ का कार्य जल्दी कर के लौट तो आयेंगे?

अग०—परन्तु अपने जाने के पहिले मुझे देवताओं को बलिदान कर के सन्तुष्ट करना है।

इफि०—यह तो अवश्य करना चाहिए, यदि देव सन्तुष्ट होंगे, तो वे तुम्हें जय प्राप्त करा देंगे।

अग०—परन्तु, पुत्री, तुझे उस बलिदान के समय मेरे पास रहना चाहिए।

इफि०—हाँ! हाँ! मैं बड़े आनन्द से आप के पास खड़ी रहूँगी!

अग०—(मन में) इसको इन बातों का अर्थ कुछ भी नहीं जान पड़ता, इसलिए यह कितनी सुखी है! क्या यह सुख मुझे है? अच्छा, पुत्री, अब तू अपने तम्बू में जा। परन्तु ठहर, पहले मुझे एक बार चुम्बन दे; क्योंकि तुझ से एक बार वियोग होने पर फिर तेरा दर्शन कहाँ मिलेगा!

इतनी बात चीत समाप्त होने पर इफिजीनिया वहाँ से चल दी। तब अगमेमनन उसकी ओर देखते हुए अपने मन में बोला, "अहाहा! इसका शरीर कितना कोमल है। अब उसकी बलि दी जायगी! केवल इस बात के लिए ही हमें इतना भारी संकट सहना पड़ता है। कि हम सुरक्षित ट्राय जा पहुँचें। परन्तु इस समय इस विषय में अधिक सोच-विचार करने से क्या लाभ है!"

इसके अनन्तर अगमेमनन ने अपनी रानी की ओर फिर कर देखा। रानी ने पूछा, हमारा जामाता कौन है, उसने अकिलिस नाम बतलाया, और यह भी कहा कि इसी मास इसी छावनी में विवाह करना है। अन्त में उसने अपनी रानी से कहा—"मैं अपनी लड़की का कन्यादान करूंगा, तू आरगास लौट जा।"

इस पर रानी आश्चर्य से बोली, "क्या? मैं लौट जाऊं! मेरी लड़की का विवाह और मैं कैसे लौट जाऊं! अपनी पुत्री के कन्यादान के समय तुम्हारे हाथ पर कन्यादान का पानी कौन छोड़ेगा?"

अग०—मैं यह सब करूँगा। बस, तू यहाँ से चली जा। जहाँ सारी सेना एकत्रित हुई है वहाँ स्त्रियों का रहना ठीक नहीं है।

क्लाय०—परन्तु अपनी लड़की के विवाह के समय मेरा उसके पास रहना-कुछ अनुचित नहीं है।

अग०—परन्तु आरगास में तेरे बिना तेरे सारे काम खराब हो रहे होंगे।

क्लाय०—उन कामों के बिना अब हमारा वहाँ कुछ नहीं बिगड़ रहा है। और वे काम विवाह से अधिक महत्व के नहीं हैं।

जब कि इस प्रकार दोनों का सवाद हो रहा था, उसी समय आकिलिस वहाँ आया। वह वहाँ यह कहने के लिए आ रहा था कि सेना के कूच में इतनी देरी होने के कारण सब सैनिक घबरा उठे हैं, और सब लोग सेना छोड़ कर घर जाने के लिए तैयार होगये हैं। इधर जब रानी क्लायटमनेस्ट्रा ने आकिलिस के ही एक सेवक के मुख से यह सुना कि यही आकिलिस है तब वह तम्बू से बाहर आयी। और यह बात ध्यान में लाकर, कि इसी आकिलिस से मेरी बेटी का विवाह होनेवाला है, वह इस विषय में उससे कुछ बातचीत करने लगी। परन्तु आकिलिस इस विषय में सचमुच कुछ नहीं जानता था, क्योंकि अगममनन ने इफिजीनिया को केवल बलि देने के लिए ही बुलाया था और रानी को यह बात झूठ लिख भेजी थी कि आकिलिस से विवाह करना है। इस कारण आकिलिस को यदि विवाह के विषय में कुछ खबर न थी, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। परन्तु रानी यह कपट न जानती थी, इसलिए वह समझी कि आकिलिस लज्जा के कारण विवाह के विषय में कुछ नहीं बोलता। इस कारण उनके वार्तालाप में अधिक अधिक संशय और गड़बड़ उत्पन्न होने लगी। अब आकिलिस ने सोचा कि इस विषय में अगममनन से ही जाकर पूछना चाहिए, इतने ही में वह जासूस वहाँ आ पहुँचा जो कि अगममनन का पहला पत्र रानी के पास ले गया था। वह ये सारी बातें जानता था। उससे रानी ने पूछा। परन्तु वह किसी तरह कहने पर भी न बोला। अन्त में रानी ने उससे कहा कि तू डर मत, सब बातें मुझ से कह, तब उसने सारी कथा कह सुनायी। जब रानी ने यह बात सुनी कि राजा अपनी बेटी देवताओं को बलि देना चाहता है और इस विषय में आकिलिस ही हमको मदद दे सकता है, तब रानी आकिलिस से विनती करके बोली, कि अब इस संकट से हमें छुड़ाने के लिए तू ही समर्थ है। तेरे ही नाम पर यह पाप हो रहा है। तेरे ही नाम पर मैं धोखे में पड़ी हूँ। इस लिए अब तुझी ही को हमारी रक्षा करनी चाहिए। तेरे सिवा तारनेवाला दूसरा नहीं है।"

अब सब लोग एकटकी बाँध कर उस तलवार और कन्या की ओर देखने लगे। (पृष्ठ ३१८)

इस पर आकिलिस ने उत्तर दिया, "सत्य मार्ग से हो अथवा असत्य मार्ग से हो, जब अगममनन ने अपनी बेटी मुझे देने के लिए लिखा है तब तो इसका संरक्षण करना मेरा कर्तव्य ही है। उसके बाप के हाथ से मैं कभी उसे न मरने दूँगा। यदि वह इस तरह मरेगी तो मेरे नाम को बड़ा कलंक लगेगा। क्योंकि मुझ से विवाह करने के बहाने तुमको धोखा देकर यहाँ बुलाया है, इस लिए अब अपनी तलवार से इस अबला का रक्षण मुझे करना ही चाहिए।"

इतने ही में अगममनन अपने तम्बू से बाहर आया। उसको इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि मेरा गुप्त भेद रानी पर प्रकट हो गया। उसके आगे आते ही रानी बड़े क्रोध से दौड़ कर बोली, "आप का क्या विचार है? क्या हमारी बेटी के हनन करने का आप का विचार है?" इस पर अगममनन क्या उत्तर दे सकता था। वह स्तब्ध खड़ा रहा। उसको यह न सूझ पड़ा कि अब क्या उत्तर दे। उस समय रानी ने उसकी बड़ी निर्भर्त्सना की।

इधर इफिजीनिया को भी ये सारी बातें मालूम हो गयीं, और वह भी आरेस्टस को साथ ले कर एक पास ही के तम्बू से बाहर आयी और पिता के सन्मुख घुटने टेक कर दीन वचन से उसको विनती करने लगी—"पिताजी, मैं तो आपके पेट की लड़की हूँ! आप मुझे इस प्रकार क्यों मारते हैं? मेरी जब मृत्यु आवेगी। तब मैं मरूँगी; परन्तु आप मुझे न मारिये। यह देखिये, चारों ओर सूर्य का प्रकाश देखने में कितना आल्हादकारक है। उससे उठा कर आप मुझे अन्धेरे में न ढकेलिए। मैं तुम्हारी प्रथम पुत्री हूँ। पहले से जिसने आप को पिताजी कह कर बुलाया है वह मैं ही हूँ; और जब मैं छोटी थी तब आप मुझे अपनी गोद में बिठा कर मेरी पीठ पर हाथ फिराते हुए कहते थे कि, कोई सज्जन और सुखी लड़का देख कर मैं उससे तेरा विवाह करूँगा, मुझे वे तुम्हारी सारी बातें याद आ रही हैं। परन्तु तुम उनको भूल गये। मेरे बचपन में आप मुझ से ऐसी मीठी मीठी बातें बोलते थे और आज आप मुझे बलि देने के लिए तैयार हैं। पिता जी, परन्तु आप ऐसा पाप न कीजिये। अपने पूर्वजों की ओर दृष्टि ले जाइये। अपने पुरखों का स्मरण कीजिए; निदान जिसने नौ मास मुझे पेट में रखा है और जो अब ये बातें सुन कर अत्यन्त दुःखी हुई है, उस मेरी माँ की ओर ही देखिये। और यह देखिए अपना छोटा पुत्र। इसी की ओर देखिए। बेटा, तू ही मुझे कुछ सहायता कर। तू मेरे साथ रो और रोते हुए पिताजी से कह कि आप मेरी बहन को न मारिये!—पिता जी, देखिए इसकी ओर देखिए। यद्यपि इसे बोलना नहीं आता है, तथापि यह मेरे लिए आप से विनती कर रहा है, इसकी विनती पर ही आप अपने हृदय में दया धारण कीजिए; पिता जी, मुझ पर दया कीजिए। मुझे न मारिए!

राजा अपनी पुत्री का इस प्रकार करुणात्मक भाषण सुन कर घबरा गया और अब उसे यह न सूझी कि क्या करे, क्या करूं! क्योंकि इस समय राजा बड़े पेच में पड़ गया था। अपनी बेटी को बलि दे कर देवताओं को प्रसन्न किये बिना ग्रीशियन सेना ट्राय के किनारे पर सुरक्षित रीति से नहीं पहुँच सकती थी, इधर अपनी पुत्री का वध करना भी कठिन हो रहा था। इस प्रकार जब वह सोच विचार कर रहा था कि आकिलिस वहाँ आ पहुँचा, और कहने लगा कि "सारी सेना में बड़ा भयंकर शोर मच रहा है! सब यह चिल्ला रहे हैं कि राजा की लड़की का वध होना ही चाहिए। मैंने उनको शान्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किये; परन्तु वे सीधे मार्ग पर नहीं आते। अब मैं इस कुमारी के लिए उनसे जा कर लड़ाई शुरू करता हूँ और अभी उनका पराजय किये डालता हूँ।"

परन्तु यह बात जब इफिजीनिया ने सुनी तब तो उसका मन एकदम पलट गया। और वह बोली,—"अम्मा, तुम चुप रहो, अपने दुःख को रोको और पिताजी पर बिना कारण क्रोध मत करो। जान पड़ता है कि पिताजी भी इस विषय में लाचार हैं। इसलिए अब, जो हमारे नसीब में होगा उसे भोगने के लिए हमें तैयार होना चाहिए। यह राजपुत्र, आकिलिस, हमारे लिए अपने प्राण देने को तैयार हो गया है। परन्तु इसके लिए इसे भी बिना कारण वध में डालना ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त, इतनी भारी सेना के सामने यह अकेला क्या कर सकता है? इन सारी बातों की ओर ध्यान देकर मैंने अपना हृदय कठोर कर लिया है। [illegible] हाय! मैं

जो जन्म लिया है वह केवल तेरे ही लिए नहीं, बल्कि इन सारे देशबान्धवों के लिए मेरा जन्म हुआ है! इसलिए उनके कल्याण के लिए मैंने अपने आप को बलिदान करने का निश्चय किया है!-पिताजी, चलिए, उठिए, मुझे देवताओं को बलि दीजिए, और मेरे देशबान्धवों की सेना को ट्राय की यशस्वी मोहिम पर जाने दीजिए! इसी से मेरा नाम अजरामर होगा!"

इफिजेनिया का यह भाषण अकिलिस बड़ी उत्कंठा से सुन रहा था। ये बातें सुन कर वह सद्गदित हुआ और उस राजकन्या को सम्बोधन कर बोला, "ऐ कुमारी, तेरा यह उदात्त विचार सुनकर मेरा मन तेरे विषय में बिलकुल तल्लीन हो गया है। और इतनी उदात्त विचारोंवाली स्त्री को परमेश्वर यदि मेरी सहधर्मचारिणी बना देवे तो मैं समझूँगा कि मैं बड़ी भाग्यवान् हूँ। ऐ सुन्दरी, तू मेरे पराक्रम के विषय में *बिलकुल शंका न ला*। ग्रीस का सारा जनसमुदाय भी यदि मेरे ऊपर टूट पड़े तब भी मैं सब के बीच से मार्ग निकाल कर तुझे सुरक्षित घर पहुँचा दूँगा। परन्तु केवल तेरी इच्छा चाहिए!" इस पर उस कुमारी ने इस प्रकार उत्तर दिया, "अकिलिस, मैंने पूर्ण विचार करके अपना दृढ़ निश्चय किया है। मेरी यह बिलकुल इच्छा नहीं है कि मेरे लिए किसी प्राणी की जान धोखे में पड़े; बल्कि इसके विरुद्ध मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है कि मेरे हाथ से मेरे देशबान्धवों की जान धोखे से बचे!"

यह सुनकर अकिलिस ने भी सन्तोष प्रकट किया और उसके मन के उदात्तपन की बड़ी तारीफ करके अपना कथन वापस ले लिया। इफिजिनिया का मन उसके निश्चय से परावृत्त करने के लिए, उसकी माता ने भी, आखों से आंसू बहाते हुए, बहुत बिनती की; परन्तु किसी तरह उसका अटल निश्चय न टला। और अन्त में बलिदान का *निश्चय ही स्थिर रहा*।

जिस देवी को उसकी बलि दी जानेवाली थी उस देवी के मन्दिर के आसपास एक बड़ी वृक्षराजी थी। उसके बीच में एक भव्य मंडप खड़ा किया गया था। और उस मंडप के मध्य भाग में वेदी तैयार कर के वहाँ एक बड़ा अग्निकुंड प्रदीप्त किया गया था। और उसके आसपास सारी ग्रीक सेना एकत्रित हुई थी। उस मंडप की ओर जब इफिजीनियाँ को ले जाने लगे, उस समय अगामेमनन उसकी ओर देख कर अपना मुख ढँक कर चिल्लाचिल्ला कर रोने लगा। जीनिया बाप के सामने क्षणभर ठहर कर बोली, "पिता जी, क्यों रोते हैं? अपने देश के लोगों के विजय के लिए मैं स्वयं अपनी खुशी से, अपने शरीर की बलि देने के लिए तैयार हुई हूं! इस विषय में मेरी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि, वह इस लड़ाई आप को पूर्ण विजय देवे, और *आप सब लोग विजय* प्राप्त कर शल घर लौट आवें! अब आप लोग कोई मुझे रोकिये नहीं, मुझे सन्तोषपूर्वक देवी की बलि होने दीजिए!"

यह उसका भाषण सुन कर उसके अन्तःकरण के धैर्य के विषय में सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। बलिदान की तैयारी हुई उस मंडप की व्यवस्था रखनेवाला मुख्य अधिकारी मंडप में आ खड़ा हुआ। और उसने सब को, स्तब्ध रहने के लिए, दी। उस बलिदान-विधि के मुख्य उपाध्याय कॅलकस ने के गले में पुष्पों की माला डाली। इसके बाद अपनी म्यान से अपनी तलवार बाहर निकाली। अब सब लोग एकटकी बांध *उस तलवार और कन्या की ओर देखने लगे*।

परन्तु इतने ही में वहाँ एक बड़ा चमत्कार हुआ। कॅलकस के वार मारने की आवाज सब ने सुनी। परन्तु राजकन्या उसी अदृश्य होगयी, और फिर किसी को न दृष्टि पड़ी, यह भी किसी को न जान पड़ा, कि वह कहाँ गयी, क्या हुआ। केवल उस स्थान पर एक हरिणी उस तलवार की वार से कटी हुई दिखाई दी। उसके रक्त से वह सारी वेदी लाल हो रही थी। यह चमत्कार देख कर कॅलकस सब लोगों को सम्बोधन कर के बोला, "भाइयो, आप लोग यह चमत्कार देख ही रहे हैं कि राजकन्या के बदले देवी ने दूसरी बलि ले कर राजकन्या के प्राण कैसे बचाये, और उस पर उसने कितनी *दया की*। *देवी ने राजकन्या* इफजीनिया के एक बाल को भी धक्का नहीं लगने दिया, और उसको उसने सुरक्षित रूप ले जा कर मंदिर में एक जगह रखा है। हमारी दी हुई बलि उसने इस प्रकार स्वीकार की है। इस लिए अब तुम धैर्य रखो, और शत्रु के देश पर हमला करने के लिए कूच करने की अभी तैयारी करो।

—अगले अंक में समाप्य।

रासायनिक और कलाविषयक प्रयोगशाला, राज्य-ग्वालियर।

यह प्रयोगशाला प्रो० गज्जर के निरीक्षण में, इस दृष्टि से औद्योगिक संशोधन करने और शिक्षा देने के लिए खोली गई है कि ग्वालियर रियासत की खनिज सम्पत्ति का किस प्रकार उपयोग किया जा

प्रयोगशाला का अधिकारीमंडल।
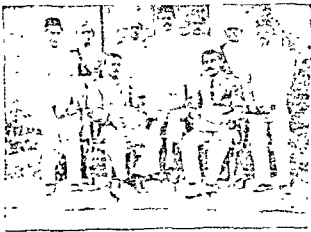
सकता है, और रासायनिक पृथक्करण के आधार पर रियासत के कच्चे माल से, व्यापारोपयोगी पदार्थ बनानेवाले कारखाने कैसे खोले जा सकते हैं। यह बड़े आनन्द की बात है कि, इस सिद्धान्त को ध्यान में रख कर, कि "व्यक्ति के हाथ से जो कार्य न हो सके उसे राज्य को करना चाहिए," महाराज सेन्धिया सरकार ने इस कार्य में हाथ लगाया है। वैज्ञानिक विषय ले कर जो पदवीधर या ग्रेज्युएट बने हैं, अथवा जिनके पास पूंजी के साथ साथ साधारण वैज्ञानिक ज्ञान भी है—ऐसे विद्यार्थी इस प्रयोगशाला में लिए जाते हैं। इस समय छः से अधिक विद्यार्थियों के लिए स्थान नहीं है। उक्त राज्य का यह भी संकल्प है कि होनहार विद्यार्थियों के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएं कर दी जावें, तथा उनके द्वारा औद्योगिक और कलाकौशल के संशोधन
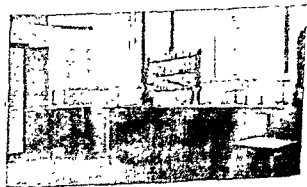
प्रयोगशाला का एक भाग।

का कार्य उत्तम प्रकार से होने के लिए सब प्रकार की आवश्यक सामग्री उन्हें दी जाये। हमारे देश के अन्य राज्य ग्वालियर-राज्य का अनुकरण इस विषय में यदि करें तो देश की साम्पत्तिक स्थिति सुधारने में बहुत सहायता मिलेगी। इस संस्था के विषय में जिन महाशयों को कुछ विशेष जानकारी प्राप्त करना हो उनको उसके व्यवस्थापक (लश्कर, ग्वालियर) से पत्रव्यवहार करना चाहिए।

महायुद्ध के चौथे वर्ष का नवम्बर मास।

(लेखक—श्रीयुत कृष्णजी प्रभाकर खाडिलकर बी० ए० ।)

रूस में राज्यक्रान्ति होने से जिस बात का बड़ा भारी डर सब को लगा रहा था वही बात आख़िर में नवम्बर मास में हो गई। सोशियालिस्टों में से लेनिन प्रभृति सान्धिवालों के हाथ में पेट्रोग्राड की राजसत्ता चली गई; और प्रधान मंत्री केरेन्स्की और उनके मंत्रिमंडल को अधिकार से अलग कर दिया। फिनलैंड की खाड़ी के जहाजों पर रहने वाले लेनिन के अनुयायी पेट्रोग्राड में प्रविष्ट हुए; और उन्हों ने राजसत्ता अपने हाथ में लेने का प्रारम्भ किया। उस समय, नवीन सरकार की नियत की हुई, पेट्रोग्राड शहर की रक्षक सेना भी उनमें मिल गई; और केरेन्स्की तथा उनका मंत्रिमंडल पेट्रोग्राड शहर से भाग गया। इस के बाद केरेन्स्की ने कुछ कज़्ज़ाक सेना की सहायता लेकर पेट्रोग्राड पर चढ़ाई की। केरेन्स्की और लेनिन की सेना में दो तीन लड़ाइयां भी हुईं। इन लड़ाइयों में केरेन्स्की की सेना का पराभव हुआ; और केरेन्स्की के सारे मंत्रिमंडल को लेनिन ने कैद कर लिया; और इन सब को वह पेट्रोग्राड ले आया। मास्को शहर तथा उसके आस-पास भी लेनिन और केरेन्स्की, दोनों दलों में अनेक लड़ाइयां हुईं; और मास्को की लड़ाई में हजारों लोगों के प्राण गये। इसके सिवाय मास्को के देवालय पर भी तोपों की वृष्टि की गई। इस प्रकार बराबर एक दो सप्ताह लड़ाई होने के बाद मास्को और पेट्रोग्राड के प्रान्तों में, अर्थात् रूस के मुख्य भाग में लेनिन के पक्ष की सत्ता स्थापित हुई। रणभूमि पर खड़ी हुई उत्तर और मध्य, दोनों ओर की सेनाएं लेनिन के पक्ष में आ मिलीं। दक्षिण ओर की अर्थात् गेलेशिया और रोमानिया की ओर की सेना अलबत्ता दिसम्बर के प्रारम्भ तक लेनिन के पक्ष में नहीं मिली। केरेन्स्की के नियुक्त किये हुए मुख्य सेनाध्यक्ष और उनके अधिकारी-मंडल ने लेनिन की सत्ता स्वीकार करने से इन्कार किया।

इसलिए पेट्रोग्राड से सेना का एक दल उनके ऊपर भेजा गया, और वे पकड़ लिये गये। नवम्बर के पहले सप्ताह में पेट्रोग्राड शहर में लेनिन ने राज्यक्रान्ति की; और नवम्बर के अन्त में उत्तर और मध्य रूस में उसकी सत्ता स्थापित हुई; और रणभूमि की दो-तृतीयांश से अधिक सेना उस सत्ता के अधीन हो गई। हां, केरेन्स्की अवश्यही भग गये, सो उनका पता नहीं लगा। अब दिसम्बर के प्रारम्भ में सेनापति कार्निलाफ, जो कि नजरबन्द थे, उनके भी भग जाने का समाचार आया है। दक्षिण ओर के कीव-ओडेसा प्रान्त के लोगों ने अपनी स्वातंत्र्यघोषणा की है। इस प्रान्त के पूर्व ओर डॉन नदी के किनारे के मैदान में कज़्ज़ाक लोगों की बस्ती है। इस प्रान्त को सेनापति कालेडिन ने अपने अधिकार में ले लिया है, और इस प्रकार उनके अधिकार में आई कोयले की खानें हैं उनसे उन्होंने मास्को तथा पेट्रोग्राड में कोयला भेजना बन्द कर दिया है। काकेशिया प्रान्त ने भी अपनी स्वतन्त्रता संपादन की है, और इस प्रान्त में स्वतंत्र राज्यसत्ता निर्माण होने लगी है। इस प्रकार नवम्बर के अन्त में रूस के टुकड़े हो गये हैं, तथा पेट्रोग्राड की मुख्य सत्ता अतिरेकी लोगों के विरोधी लेनिन प्रभृति सोशियालिस्टों के हाथ में चली गई है। इन सोशियालिस्टों ने, अपने हाथ में सत्ता आते ही, [illegible] करने का उपक्रम किया। ज़ार की सत्ता नष्ट होने के बाद केरेन्स्की की अधीन सरकार जब तक रूस में जारी रही तब तक वे इस पक्ष से बराबर यह चिल्लाहट मचा रहे थे कि "लड़ाई बन्द करो, लड़ाई बन्द करो," लेकिन उस समय चूंकि केरेन्स्की की यह सम्मति हुई थी कि जर्मनी के पराजय के बिना रूस में नवीन राज्यसत्ता टिकाऊ नहीं हो सकती, इस कारण उनकी चिल्लाहट उस समय दाब दी गई थी। परन्तु उस चिल्लाहट का अं

इटाली की रणभूमि।

प्रभाव सेना पर होना चाहिए था वह हुआ। और गेलेशिया तथा बुकोविना की लड़ाइयों में रूस का पराभव हुआ। उस पराभव से लाभ उठाते हुए, मि० कार्निलाफ ने, यह समझ कर, कि रूसी सेना और रूसी लोग सोशियालिस्ट पक्ष से त्रस्त हो गये हैं, पेट्रोग्राड में संग्रहवाले मध्यम लोगों की सत्ता स्थापित करने का उद्योग किया। परन्तु उस उद्योग में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु उलटे केरेन्स्की के फंद में उनको आना पड़ा। मि० कार्निलाफ के पराभव के बाद केरेन्स्की का एकच्छत्री राज्य हो गया। लेकिन इधर चूंकि रीगा की खाड़ी में जर्मन जलसेना घुस आई, और वहां के टापू भी उसने ले लिये, इस कारण लड़ाई बन्द करने की उपर्युक्त लिखावट की ओर पेट्रोग्राड के साधारण लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। अर्थात् पेट्रोग्राड शहर की रक्षक सेना केरेन्स्की के पक्ष की अपेक्षा लेनिन के पक्ष के लिए विशेष अनुकूल हो गई। यह मौका देख कर, फिन्लैंड की खाड़ी के खलासियों की सहायता ले कर लेनिन ने केरेन्स्की को मात कर दिया। लेनिन की सत्ता आज दो बुनियादों पर खड़ी है—एक यह कि रूस के लोग लड़ाई से त्रस्त हो रहे हैं; और दूसरी बुनियाद सोशियालिस्ट पक्ष का यह डर है कि रूस की सत्ता कहीं संग्रही मध्यम वर्ग के हाथ में न चली जावे। अवश्य ही अब यह सत्ता स्थिर होने के लिए, जितनी जल्दी हो सके, जर्मनी से सन्धि कर लेना लेनिन को इष्ट है। पेट्रोग्राड में लेलिन की सत्ता स्थापित होते ही जर्मनी से फिर सन्धि की चर्चा शुरू हुई, और २ दिसम्बर को प्रिंस लियोपोल्ड की गोष्ठी में रूस के वकील सन्धिचर्चा करने के लिए उपस्थित भी हुए। २ दिसम्बर से उत्तर और मध्य की छावनियों की रणभूमि में, अर्थात् रीगा की खाड़ी से ले कर प्रिपेट नदी और गेलेशिया के बीच के मैदान तक, गोलाबारी बन्द होगई है; और दोनों ओर की सेनाओं में परस्पर हेलमेल प्रारम्भ होगया है, और यह निश्चय किया गया है कि यदि सन्धि की बात कहीं फिसल जावे तो, जब तक दो दिन पहले से सूचना न दे दी जावे तब तक कोई किसी पर हथियार न उठावे। दिसम्बर के प्रारम्भ से रूस और जर्मनी के बीच जो यह सन्धिचर्चा चली है उसका परिणाम क्या होगा? सन्धि होगी या न होगी? रूस को सन्धि की आवश्यकता है; और जर्मनी का भी इस समय सन्धि के बिना काम नहीं चल सकता। अगले एक दो वर्ष चाहे रूस सिर्फ रणभूमि को पकड़े भर रहे, तो भी जर्मनी का पराभव अवश्य होगा। ऐसी दशा में, अर्थात् इस पराभव से बचने के लिए, चाहे जैसे हो, रूस से जर्मनी को सन्धि करनी ही पड़ेगी। जर्मन पार्लिमेंट में इस सन्धि के विषय में भाषण करते हुए जर्मन प्रधानमंत्री ने इस प्रकार प्रकट किया है कि हम यह सन्धि रूस के विषय में सदिच्छा रख कर ही करेंगे, और एशिया में रूस का जो हितसम्बन्ध है उसकी ओर भी पूरा पूरा ध्यान रखा जायगा। इसका मतलब यह है कि जर्मनी रूस पर ऐसी सन्धि नहीं लादना चाहता कि जो रूस के लिए अपमानास्पद हो। यह स्पष्ट है कि रूस से युद्ध व्यय नहीं लिया जायगा। रूस के वर्तमान अधिकारियों के पास इस समय एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। युद्ध व्यय देगा कौन; और लेगा कौन? बल्कि, इसके विरुद्ध, कुछ दिन तक तो जर्मनी को ही लेनिन का खर्च चलाना पड़ेगा। अब रहा प्रान्तविभाग का सवाल। जर्मनी को पोलैंड, कोर्लैंड और रीगा खाड़ी के टापुओं की आवश्यकता है। इन को वह अपनी सत्ता नीचे लाना चाहता है। लेकिन इस प्रकार मुल्क तोड़ लेना रूस के सर्वसाधारण लोगों को भी अपमान की बात मालूम होगी। ऐसे अपमान शब्दाडम्बर के नीचे छिपा डालने की युक्ति खूब मालूम है। पोलैंड, रीगा का मैदान, और रीगा के टापुओं की स्वतंत्रता सन्धि की शर्तों रूस स्वीकार कर लेगा; इस स्वतंत्रता को रखने का वचन जर्मनी भी देगा। हां, ये देश जब पूर्ण स्वतंत्र हो जायँगे तब जर्मनी से चाहे जैसी सन्धि करने की स्वतंत्रता भी इन्हें मिल जायगी। ये प्रदेश इस समय जर्मनी के अधिकार में हैं; और आगे यह भी निश्चय किया जायगा कि अपना अधिकार छोड़ कर वहां नवीन स्वतंत्र सरकार निर्माण करने का कार्य भी जर्मनी के ही हाथ से होना चाहिए; अर्थात् इन नवीन स्वतंत्र सरकारों के जन्मते ही जर्मन सन्धि की शर्तें, उर्फ बन्धन की शर्तें उनके पैरों में अटकेंगी। कोर्लैंड और पोलैंड के स्वतन्त्र राज्य बनेंगे और जर्मनी की सिर्फ छाया मात्र उनके ऊपर बनी रहेगी। इस प्रकार की स्वतंत्रता जब इन दो प्रदेशों को मिल जायगी तब रूस के सामान्य लोगों को यह नहीं मालूम होगा कि हमारा अपमान हुआ। लेनिन प्रभृति का यह मत है कि रूस का चाहे जो प्रदेश अपनी इच्छा से स्वदेश को स्वतन्त्र कर ले, इसके लिए कोई रोक नहीं। हां, बाहर के कोई लोग किसी दूसरे को पराधीन या परतंत्र न बनावें। ऐसी दशा में कोर्लैंड और पोलैंड में स्वतंत्रता का वाह्य दृश्य जर्मनी यदि खड़ा कर दे तो रूस की ओर से सन्धि की वार्ता फिसल नहीं सकती। अब, जब कि टर्की का कोई भी प्रान्त रूस को नहीं चाहिए, तब फिर यह बतलाने की आवश्यकता ही नहीं कि काकेशस की ओर टर्की का जो भाग रूस ने घेर लिया है वह सन्धि में छोड़ देने के लिए रूस अवश्य ही तैयार हो जायगा। इस प्रकार जब कि हम सन्धि की शर्तों पर विचार करते हैं; और दोनों पक्षों की सन्धिविषयक आतुरता पर जब कि हम ध्यान देते हैं, तब यही कहना पड़ता है कि एक दो मास में जर्मनी और रूस के बीच स्वतंत्र सन्धि हो जायगी। अच्छा, अब इस बात का विचार करना आवश्यक है कि एक दो मास में यदि इस प्रकार की स्वतंत्र सन्धि हो गई तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इस बात को ध्यान में रख कर हो, कि इस प्रकार की कुछ न कुछ सन्धि होनेवाली है, इंगलैंड, फ्रांस, इटली, अमेरिका और जापान, इत्यादि राष्ट्रों ने, इस नवम्बर-दिसम्बर मास से अपना अगला आचरण निश्चित करने का

फ्रान्स और इटली की रणभूमि।

[illegible] कर लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि लेनिन का यह सन्धि-विषय [illegible] इंग्लैंड, अर्थात् मित्रराष्ट्रों को बहुत तकलीफ देनेवाला है। लेकिन इंग्लैंड प्रभृति राष्ट्रों ने जब से यह अनुभव किया कि जब रूस में राज्यक्रान्ति हो जाने के बाद रूस की सेना लेनिन प्रभृति के [illegible] के दिल से दूषित हो गई है, तब से उनको यह मालूम होगया था कि हम पर इस प्रकार का संकट आने की सम्भावना है। अर्थात् यह न समझना चाहिए कि लेनिन की सन्धि का संकट उनके ऊपर अचानक आया है। इंग्लैंड इस नवीन संकट से भी टक्कर लगाने के लिए तैयार है। अच्छा, अब हम इस बात का विचार करते हैं कि लेनिन की यह सन्धि यदि एक दो मास में होगई तो इंग्लैंड प्रभृति राष्ट्रों पर कौनसा नवीन संकट आवेगा। रूस की ओर ख़ास रणभूमि में आस्ट्रो जर्मनों की १४ से २० लाख तक सेना लगी हुई है; और ४।५ लाख सेना इस रणभूमि की सहायता के लिए आस्ट्रिया और जर्मनी के भिन्न भिन्न स्थानों में रक्षित रखी गई है। सन्धि यदि दिसम्बर में होगई तो जनवरी की १५ तारीख़ तक उत्तर और मध्य ओर की सेना पश्चिम रणभूमि में अवश्य ही आ पहुँचेगी। और, उत्तर तथा मध्य ओर से रूसी सेना जब अपने अपने घर को लौट जायगी तब दक्षिण ओर के उक्रेन प्रान्त में अथवा कीव ओडेसा प्रान्त में, स्वतंत्र रीति से युद्ध जारी नहीं रखा जा सकता। उक्रेन प्रान्त पेट्रोग्राड से स्वतंत्र हो गया है; और यदि उसकी स्वतंत्रता जर्मनी दूसरी स्वतंत्र सन्धि से स्वीकार कर लेगा तो अगले जनवरी फरवरी मास में रूस के दक्षिण ओर की भी जर्मन सेना अवश्य ख़ाली हो जायगी। अच्छा, जब सारे रूस की सन्धि हो जायगी तब यह आशा की ही नहीं जा सकती कि सेरेथ नदी के उस पार की छोटीसी रोमानियन सेना लड़ाई आगे जारी रख सके। इस सब का मतलब यह है कि जनवरी-फरवरी महीनों में आस्ट्रिया, जर्मनी, बलगेरिया, और टर्की, इन सब की मिल कर २० से २५ लाख तक सेना ख़ाली हो जायगी। इसमें से टर्की की सेना ईरान, बग़दाद, पेलेस्टाइन की ओर जनवरी-फरवरी में अपना मोर्चा घुमावेगी; और इस नवीन संकट से टक्कर लगाने के लिए आस्ट्रेलिया और भारत से अनुमान की अपेक्षा अधिक सहायक सेना मेसोपोटेमिया और इजिप्ट के देशों की ओर भेजनी पड़ेगी। बलगेरिया पर सेलीनोका की सेना रोकनी पड़ेगी; और आस्ट्रिया जर्मनी की पन्द्रह-बीस लाख सेना और हज़ारों तोपें इटली और फ्रांस पर चढ़ धावेंगी। इस बात का भी कुछ ठीक नहीं है कि इस पन्द्रह-बीस लाख सेना में से भारी गट्ठा किस मर्मस्थल पर पटका जायगा, और इस कारण जब तक कि अमेरिका से पूरी पूरी मदद न आवेगी, इटली, फ्रांस और इंगलैंड को, दिसम्बर से ले कर चार-पांच मास, अपना बचाव करने के उद्योग में, बड़ी चिन्ता के साथ, व्यतीत करने पड़ेंगे। अगले वर्ष के मई-जून मास तक यदि एंग्लो-फ्रेंच सेना भली प्रकार से अपना बचाव कर सकेगी तो निस्सन्देह यह कहा जा सकेगा कि रूसी सन्धि के संकट से वह पार होगई। एंग्लो-फ्रेंच और इटालियन सेना इस समय आस्ट्रो-जर्मन सेना की अपेक्षा दस-पन्द्रह लाख अधिक है। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि रूस की ओर की सारी जर्मन सेना फ्रांस और इटली की ओर आजाने पर भी जर्मनी, सैनिकों की संख्या की दृष्टि से, कुछ बहुत भारी हो जायगा। जर्मनी को मिलनेवाला फायदा, किसी दुर्बल मर्मस्थान में चार पांच लाख सेना और हज़ार दो हज़ार तोपों का गट्ठा अचानक एकदम पटक देने से नहीं मिल सकता। और इसीलिए, कि जिससे उक्त लाभ जर्मनी को न मिले, इँगलेंड, फ्रांस और इटली के तीनों राष्ट्रों की सेनाएं सैनिक आज्ञा (आर्डर) की दृष्टि से, और अन्नपानी तथा गोलाबारूद की दृष्टि से, अब एकसूत्री बना ली गई हैं। तीनों राष्ट्रों की सेना की लगाम चूँकि एक बोर्ड के हाथ में चली गई है, इसलिए दुर्बल और लूले अब बहुत से नहीं बचेंगे; और यदि कोई ऐसा रह भी गया तो जर्मनी को उससे फ्रांस अथवा इटली में अधिक दूर घुसने का लाभ नहीं मिल सकता। अक्टूबर नवम्बर महीनों में इटली का इसांज़ो का दल फोड़ कर जर्मनी जिस प्रकार एकदम भीतर घुस गया, उसी प्रकार यदि अगले तीन चार महीनों में जर्मनी ने एंग्लो-फ्रेंच अथवा इटली का दल नहीं फोड़ा तो काम चल जायगा। और यदि रूस की ओर की सेना के बल पर वह दल जर्मनी दो तीन जगह फोड़ सका, तो अमेरिका की सहायता इस महायुद्ध में बिलकुल निरर्थक हो जायगी। इस लिए अगले चार-पांच महीने, इँगलेंड, फ्रांस और इटली को अपने दल की रक्षा करने का काम ही विशेष है। और यह अत्यन्त सन्तोष की बात है कि सेना की एकसूत्री नवीन व्यवस्था के कारण तीनों राष्ट्र उक्त कार्य को पूर्ण करने में समर्थ भी हैं। यह काम अत्यन्त संकट का है अवश्य। इसमें शंका नहीं। अब अगले तीन चार मास ऐसे संकट का समय आ गया है कि यदि कमाएंगे तो कमाएंगे, और यदि गमाएंगे तो बिलकुल गमा ही देंगे। इस संकट से पार पड़ कर जब अमेरिका की दस लाख सेना फ्रांस की रणभूमि पर आ जायगी तब यह रूसी संधि का अरिष्ट टलेगा। दस लाख अमेरिका की सेना जब आ पहुँचेगी तब कहीं इस बात का डर मिट जायगा कि कहीं जर्मनी की फ़तह फ्रांस और इटली में न हो जावे—अर्थात् सन १९१८ की अमेरिका की सहायता अब विजय के लिए कारणीभूत न हो सकेगी; किन्तु सिर्फ भय से मुक्त करनेवाली होगी। हां १९१९ साल की अमेरिका की सहायता जर्मनी को और उलटे भय उत्पन्न करनेवाली होगी; तथा १९२०-२१ की अमेरिकन सहायता मित्रों को जर्मनी पर विजय प्राप्त करा देगी। इसांज़ो पर इटली का जो पराभव हुआ, उसके कारण महायुद्ध का जीवन यदि पांच वर्ष का होनेवाला था तो अब रूसी सन्धि के कारण वह सात आठ वर्ष का हो जायगा। इँगलेंड का सैनिक बल इस समय भरी जवानी पर है। और भी तीन चार वर्ष महायुद्ध जारी रखने में जितना द्रव्य खर्च होगा वह सब अमेरिका दे सकता है। इसके सिवाय अमेरिका में यह भी ताक़त है कि वह तीन चार वर्ष में पचास-साठ लाख नवीन सेना भी तैयार करके यूरप में भेज सकता है। इँगलेंड और अमेरिका तो इस प्रकार कमर बांध ही रहे हैं, इधर फ्रांस और इटली भी उनके साथ जी-जान होम कर लड़ने के लिए तैयार हैं। इटली के पराभव और रूस की सन्धि के कारण १९१८ में चाहे एंग्लो-फ्रेंचों का पक्ष अंधेरे में गिरनेवाला हो, तथापि ये आज-कल के, अमावास्या के, तीन चार मास व्यतीत हो जाने पर १९१९ में प्रभात काल अवश्य होगा, और २०-२१ के साल में मित्र राष्ट्रों का प्रकाश सारे यूरप में फैल जायगा; इसमें अणुमात्र भी शंका नहीं है। सैनिक दृष्टि से, रूसी संधि के कारण जो अरिष्ट उत्पन्न होगा, उसका स्वरूप ऊपर दिखलाया गया। इस संधि से और भी दो तीन प्रकार के संकट उत्पन्न हो सकते हैं। रूस की इस सन्धि के बाद रूसी सेना ज्यों ही दिसम्बर-जनवरी महीनों में अपने अपने घर लौट कर जायगी त्योंही आस्ट्रिया, जर्मनी और रूस में तुरन्त ही व्यापारी हेलमेल प्रारम्भ हो जायगा। रूस के बड़े बड़े शहरों और रणभूमि के मैदानों में आज दिन दुर्भिक्ष सा छाया हुआ है। इसका यह कारण नहीं है कि रूस में भरपूर धान्य ही न हो। किन्तु बात यह है, कि वर्तमान महायुद्ध के कारण किसान लोग धान्य बाहर निकालने के लिए तैयार नहीं हैं; और रेलगाड़ियों का भी ठीक ठीक प्रबन्ध नहीं है कि वे धान्य को सारे देश में उचित रूप से पहुँचा सकें। सन्धि होने के बाद दो-तीन महीने में यह स्थिति बदल जायगी; और रूस आस्ट्रो-जर्मनों को पूरा पूरा अनाज पहुँचा सकेगा। इसके सिवाय यह भी अनुमान है कि रूस में तुर्किस्तान, आस्ट्रिया और जर्मनी के, मिल कर कम से कम आठ-दस लाख तो अवश्य ही सैनिक कैदी होंगे; और सेना के लिए उपयोगी आठ दस-लाख अन्य जवान भी रूस में नजरबन्द होंगे। यह पन्द्रह-बीस लाख का मनुष्यबल आस्ट्रो-जर्मन कोई वर्ष-डेढ़वर्ष की अवधि में बन्धमुक्त करके रणभूमि के उपयोग में ला सकते हैं। इसके सिवाय चूंकि सारा काला समुद्र खुल जायगा, इसलिए तुर्किस्तान बिलकुल बेखटके जहाज़ों में सेना भर कर काकेशियस पर्वत के मैदान में उतार सकेगा; और ईरान की राजधानी तहरान को अधिकार में ले कर ईरान को भी वह अपने पक्ष में शामिल कर सकेगा। सच तो यों है कि काले समुद्र के खुल जाने पर उत्तर ईरान आप ही आप तुर्किस्तान की घात में आ जाता है। आस्ट्रो-जर्मनों को अन्नसामग्री मिलती है, उत्तर ईरान घात में आता है; इन दो संकटों से भी अधिक भयानक स्वरूप का एक तीसरा संकट इस रूसी सन्धि से उत्पन्न हो सकता है। उसका भी थोड़ा सा विचार करना यहां आवश्यक है। रूस के लेनिन प्रभृति उच्छृंखल सोशियालिस्ट जर्मनी से सन्धि करके रणभूमि की रूसी सेना घरों में भेजने के लिए यद्यपि आज समर्थ हैं; तथापि राज्यक्रांति के कारण रूस में जो अन्तस्थ कलह मच रही है उस को मिटाने में वे समर्थ नहीं हैं। अर्थात् जर्मनी से सन्धि हो जाने के बाद भी रूस की यादवी (गृह-कलह) जारी ही रहेगी। इसके अतिरिक्त, जो सोशियालिस्ट स्वयं अपने देश के ही गंभरदी लोगों

की पूँजी छीन लेने के लिए तैयार हुए हैं वे सोशियालिस्ट परदेश से लिया हुआ कर्ज़ थोड़े ही चुकानेवाले हैं! गत तीस वर्षों से फ्रांस ने रूस को बहुत अधिक कर्ज़ दिया है; यहां तक कि रूस के बड़े बड़े कारखाने और रेलगाड़ियां फ्रांस की पूंजी से ही स्थापित हुई हैं। लेनिन की सन्धि से इस सम्पूर्ण पूंजी पर फ्रांस को पानी छोड़ना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त वर्तमान महायुद्ध में इँगलेंड, अमेरिका और जापान ने अरबों रुपये का कर्ज़ प्रत्यक्ष नकद के रूप से अथवा सामान, इत्यादि के रूप से रूस को दिया है। जर्मनी से स्वतंत्र सन्धि हो जाने के बाद रूस के सोशियालिस्ट, इन राष्ट्रों के साथ भी फ्रेंच राष्ट्र का सा ही बर्ताव करेंगे। परिणाम यह होगा कि जर्मनी से स्वतंत्र सन्धि होने के बाद इँगलेंड, फ्रांस, अमेरिका और जापान के राष्ट्र रूस के साथ तटस्थ वृत्ति का बर्ताव न करके वैरभाव का बर्ताव करेंगे। अब चूंकि जब तक महायुद्ध जारी है, तब तक इँगलेंड और फ्रांस के हाथ में ऐसा कोई साधन नहीं है कि जिससे वे रूस की प्रत्यक्ष हानि कर सकें, इस कारण इँगलेंड, फ्रांस और अमेरिका की ओर से रूस के विरुद्ध युद्धघोषणा नहीं होगी; परन्तु हां, जापान का यह हाल नहीं है। जापान को रूस का मंचूरिया प्रान्त लेना ही है; क्योंकि वह जापानी समुद्र से मिला हुआ है। और रूस का सैबीरिया का भाग, जो कि चीन के सिर पर है, वह भी जापान महीने दो महीने में सहज ही ग्रहण कर सकता है। रोमानिया की ओर से ऐसी सूचना की गई है कि जापान सम्पूर्ण सैबीरिया प्रान्त को घेर कर दक्षिण रूस में उतरे, और वहां से फिर रोमानिया को बड़ी भारी सैनिक मदद भेजे। रोमानिया को सैनिक सहायता पहुचाने के बहाने से, अथवा अपना कर्ज़ा वसूल करने के लिए मंचूरिया प्रांत को छीन लेने, और सैबीरिया जितना निगलते बने उतना उसको निगल लेने में जापान इस समय आगा-पीछा नहीं देखेगा। रूस और जर्मनी की यदि स्वतंत्र-सन्धि हो जायगी तो जापान रूस के सैबीरिया प्रदेश पर अवश्य चढ़ाई करेगा, इसमें सन्देह नहीं। लेनिन प्रभृति की दृष्टि से सैबीरिया का प्रदेश एक प्रकार से रद्दी ही है; और ऐसी दशा में जापान की चढ़ाई की उनको कोई विशेष चिन्ता भी नहीं है। तथापि अन्तस्थ कलह और बाहर के शत्रु के इस दूसरे संकट से बचने के लिए रूस के लोगों को जर्मनी का ही मुँह ताकना पड़ेगा। और अपने घर का ठीक ठीक प्रबन्ध करने के लिए वे जर्मन सेना को अपने घर में बुला लेंगे, इसका मतलब यह है कि रूस जर्मनी का एक बगलबच्चा राष्ट्र बन जायगा! लेनिन की सन्धि का परिणाम इतनी दूर तक जायगा; और इधर ईरान, अफगानिस्तान, भारत, चीन और जापान, इतने सब राष्ट्रों को यह परिणाम भोगना पड़ेगा। मतलब यह है कि रूस न केवल जर्मनी से सन्धि कर के चुप ही बैठेगा, किन्तु महायुद्ध यदि सात आठ वर्ष चला तो वह वर्ष छै मास में जर्मनी के गुट्ट में शामिल होकर आज के अपने मित्रों के विरुद्ध कदाचित् लड़ने भी लगेगा। इन सब बातों का विचार करते हुए यही कहा जा सकता है कि इस दिसम्बर से ले कर आगामी मई मास तक के ये चार-पांच महीने महायुद्ध के इतिहास में अत्यन्त महत्व के व्यतीत होंगे। दिसम्बर और जनवरी के दो महीनों में रूस की सन्धिचर्चा और इससे उत्पन्न होनेवाली कारवाइयों को विशेष महत्व देना चाहिए। अब रही यह बात कि यह सन्धि और ये कारवाइयां किसके लिए कितनी उपयोगी होंगी, सो यह बात फ्रांस और इटली की दो-तीन महीने की लड़ाइयों से जानी जायगी; और इसलिए फ्रांस और इटली को रणभूमि, अत्यन्त शीतकाल की ऋतु में भी—अर्थात् दिसम्बर, जनवरी और फरवरी के महीनों में भी—बड़ी भारी चिढ़ और भयंकर संताप से चेती हुई दिखाई देगी। नवम्बर के पहले आठवाड़े में इसांजो का दल फोड कर आस्ट्रो जर्मन सेना वेनिस बन्दर से मिली हुई पैव नदी तक आई; इटली ने सारे नवम्बर भर और दिसम्बर के प्रारम्भ तक उस शत्रुसेना को पैव नदी पर ही अटका रखा है। नवम्बर मास में आस्ट्रो जर्मनों ने इस बात का अत्यन्त प्रयत्न किया कि ट्रेंटिनो प्रान्त से ब्रेंटा नदी के उद्गम के पास के पहाड़ी प्रदेश से वेनिस के मैदान पर उतर जावें, कि जिससे पैव नदी पर की इटालियन सेना को बाईं बाजू में घेरा डाला जा सके, लेकिन एशियागो के पर्वत में और ब्रेंटा तथा पैव नदियों के [illegible] के पास के पहाड़ों में इटली इतनी बहादुरी के साथ लड़ा कि वर्डून में फ्रेंच विजय की याद उसने सब को करा दी! दिसम्बर के प्रथम [illegible] में एशियागो के पहाड़ी प्रदेश में और पैव नदी पर आस्ट्रोजर्मनी बड़ी बड़ी तोपें आ पहुँची हैं; और पैव नदी को भी उन्होंने [illegible] पार कर लिया है। ऐसी दशा में यह सम्भव है कि [illegible] दिसम्बर महीने में कदाचित् पैव नदी छोड़ कर वेनिस का [illegible] आस्ट्रो-जर्मनों के सिपुर्द कर के, स्वयं एडिज़ नदी के इस पार, [illegible] जगह तक, कि जिसको आज महीने-डेढ़ महीने से उसने खूब मज़बूत कर रखा है, कदाचित् इटालियन सेना पीछे हट आवे। [illegible] महीने में अँगरेज़ों ने फ्रांस की रणभूमि के सोमनदी के मैदान में, [illegible] के प्रदेश पर अचानक हमला किया कि जिससे जर्मनी अपनी फालतू सेना इटली की चढ़ाई पर न भेज सके। इस हमले में [illegible] की बड़ी भारी जीत हुई; और जर्मनी को पांच-सात मील पीछे [illegible] पड़ा; तथा वे कैंब्रे शहर के दो-तीन मील निकट तक जा पहुँचे! [illegible] म्बर के अन्त में और दिसम्बर के प्रारम्भ में रूस की ओर की दो [illegible] लाख नवीन सेना ला कर जर्मनी ने अँगरेज़ों पर फिर हमला किया। इस प्रत्याक्रमण में अँगरेज़ों को एक-दो मील पीछे हटना पड़ा सही; किन्तु जर्मनी की सेना की बहुत हानि हुई। जर्मनी इटली से लड़ते हुए जो अँगरेज़ों पर ऐसे आक्रमण कर रहा है, इससे उसका उद्देश्य दिखाई देता है कि जिससे एंग्लो-फ्रेंच इटली [illegible] न भेज सकें; और इधर रूस की ओर से जर्मनी की जो सेना खाली हुई है उसे वह फ्रांस और इटली, दोनों रणभूमियों में भेज भी रहा है। जानकार लोगों का यह अनुमान है कि दिसम्बर महीने में एडिज नदी पर यदि इटालियन पीछे हटे; और रूस से स्वतंत्र सन्धि होगई तो रूस की ओर की दस पन्द्रह लाख सेना का गट्ठा, इटली और फ्रांस के बीच का सम्बन्ध पहले तोड़ने में, और इटली के अकेले रह जाने पर उसकी सारी सेना नाश करने में, जर्मनी खर्च करेगा। इसके सिवाय कुछ तज्ञों का यह तर्क है कि महायुद्ध के प्रारम्भ में बेलजियम में जिस प्रकार जर्मनी अचानक घुस पड़ा; और बेलजियम की तटस्थ वृत्ति की और हकों की पायमाली जर्मनी ने जिस प्रकार की, उसी प्रकार रूस से स्वतंत्र सन्धि होते ही दस-पन्द्रह लाख जर्मन सेना स्विट्ज़रलेंड में एकदम घुस पड़ेगी; और वहां से फिर इटली के लोंबार्डी प्रान्त में उतर कर, पो नदी पार कर के जिनोवा की खाड़ी तक फैल कर वहां से, और स्विट्ज़रलेंड से दक्षिण फ्रांस पर जर्मनी चढ़ाई करेगा! इटली को यदि जर्मनी फ्रांस से अलग कर सकेगा; और इटली के वायव्य कोण से और स्विट्ज़रलेंड के बीच से यदि जर्मनी दक्षिण फ्रांस में उतर सकेगा, तभी अमेरिका की भारी सहायता को जर्मनी नीचा दिखा सकेगा; और तभी वह उस वर्चस्व तथा वैभव को पचा सकेगा जो कि उसे रूस की स्वतंत्र सन्धि के कारण मिलेगा। मतलब यह है कि रूस से स्वतंत्र सन्धि होते ही स्विट्ज़रलेंड में घुस कर, इटली को अलग कर के, पहले इटली को खा कर दक्षिण फ्रांस में घुसने में जर्मनी कभी नहीं चूकेगा। स्विट्ज़रलेंड में आधी बस्ती जर्मनों की है; और आधी बस्ती फ्रांस, इटली, आस्ट्रिया, इत्यादि देशों की है। स्विट्ज़रलेंड की चालीस-पचास हज़ार सेना में बीस हज़ार से अधिक सैनिक जर्मन हैं, इस कारण स्विट्ज़रलेंड में घुसना और वहां की रेलगाड़ियां अपने कब्ज़े में लेना, सैनिक दृष्टि से जर्मनी के लिए कुछ बहुत कठिन काम न होगा। हां, यह अवश्य है कि इस प्रकार स्विट्ज़रलेंड के स्वत्वों को पददलित करने का पाप करने पर, अपनी सैनिक नीति साधने के लिए, दस-पन्द्रह लाख फालतू सेना जर्मनी के पास अवश्य होनी चाहिए। रूस से स्वतंत्र सन्धि होने पर दस पन्द्रह लाख फालतू सेना जर्मनी के पास बच रहती है; और उसका उपयोग उपर्युक्त प्रकार से किये बिना जर्मनी का, एक दो साल बाद का, मरण बच नहीं सकता। ऐसी दशा में हमारी यह सूचना है कि रूसी सन्धि के वृत्तान्त के साथ ही साथ, दिसम्बर-जनवरी में पाठकों को स्विट्ज़रलेंड की ओर भी ध्यान रखना चाहिए।

गोधा में गुजराती राजनैतिक परिषद ।

दे० भ० महात्मा गान्धी ।

परिषद में "गरबा गुजरात" नामक सुप्रसिद्ध पद गानेवाली कुमारिका

स्वयंसेवक मंडल ।

३, ४ और ५ नवम्बर को गोधा नामक सुग्राम में गुजरात की राजनैतिक परिषद महात्मा गान्धी की अध्यक्षता में हुई। उपस्थिति दस हज़ार से भी अधिक थी। सात आठ सौ देवियां उपस्थित थीं। इस परिषद की सर्वश्रेष्ठ उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसकी सारी कार्यवाही उक्त प्रान्त की देशी भाषा, अर्थात् गुजराती, में हुई। महात्मा गान्धी का, अध्यक्ष के नाते से, जो व्याख्यान हुआ वह भी बड़े महत्व का था। राष्ट्र के अभ्युदय के लिए भिन्न भिन्न कामों की आवश्यकता है उनका उन्होंने सांगोपांग विवेचन किया, और कार्य में लगाने के लिए जनता को उत्तेजना दी। परिषद का प्रभाव जनता पर बहुत ही उत्तम रहा। अनेक प्रान्तों के कार्यकर्ताओं के लिए यह परिषद अनुकरणीय हुई।

माननीय गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे ।

श्रीयुत खापर्डे साहब मध्यप्रान्त के बहुत बड़े अनुभवी राजनैतिक नेता हैं। लो० मा० तिलक के आप अभिन्नहृदय स्नेही हैं। इस बार मध्यप्रान्त की ओर से आप बड़ी व्यवस्थापक सभा में लोकनियुक्त हुए हैं। इसके लिए हम खापर्डे साहब का अभिनन्दन करते हैं; हमें पूर्ण आशा है कि आपके द्वारा इस बड़ी सरकारी कौंसिल में राष्ट्र की अनुपम सेवा होगी। परमात्मा उस सेवा के लिए आपको उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करे।

साहित्यचर्चा ।

"प्रताप" का राष्ट्रीय अंक ।

प्रताप का राष्ट्रीय अंक प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी बड़ी उत्तमता से निकला है। प्रचलित राष्ट्रीय विषयों पर अनेक विद्वान् लेखकों के गद्यपद्यमय लेख इस अंक में सम्पादित हुए हैं। प्रताप के इस अंक को राष्ट्रीय साहित्य में हम बहुत ऊंचा स्थान दे सकते हैं। "प्रताप" पत्र युक्तप्रान्त के सुप्रसिद्ध व्यापारप्रधान कानपुर नगर से निकलता है। हिन्दी भाषा में सामयिक राष्ट्रीय चर्चा यह पत्र बड़े उत्साह से करता है। इसकी वार्षिक न्योछावर युद्ध के कारण अब ढाई रुपये से तीन रु० हो गई है। प्रत्येक देशभक्त युवक को इस पत्र का प्रचार, स्वयंसेवक के तौर पर, बढ़ाना चाहिए।

आर्यसमाजी पत्रों के ऋषि-अंक ।

स्वामी दयानन्द जी की यादगार में "आर्यमित्र" "नवजीवन" और "भास्कर" के ऋषि-अंक हम को मिले हैं। स्वामी जी के जीवन के भिन्न भिन्न अंगों पर इन अंकों में उत्तमोत्तम लेख संगृहीत हैं। हमारी सम्मति में आर्यसमाजी पत्रों को, प्रत्येक आर्यसमाजी को, अब स्वामी दयानन्द के प्रशंसा के गीतों को कम कर देना चाहिए, इसके बदले उनकी शिक्षा पर, सचाई के साथ, चलने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए, इसी में उनका और उनके समाज का कल्याण है।

हिन्दी-साहित्यसम्मेलन ।

सम्मेलन की निश्चित तिथियां अभी तक प्रकट नहीं हुई हैं। परन्तु समाचारपत्रों में कार्यकर्ताओं की ओर से जो सूचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं, उनसे जाना जाता है कि, इन्दौर में प्लेग का प्रकोप होते हुए भी, वहां के उत्साही साहित्यप्रेमी सम्मेलन की तैयारियां बड़े उत्साह से कर रहे हैं। मालवा प्रान्त में साहित्य-जागृति की भावनाओं का करने के लिए भी, कार्यकर्ता लोग निकल पड़े हैं। सम्मेलन के अभी बहुत कम विद्वानों ने भेजे हैं, इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। साहित्यविभाग के मंत्री पं० बनारसीदासजी का एक पत्र "साहित्य-प्रदर्शिनी" के विषय में में आन्दोलन कर रहा है, इसकी ओर साहित्यप्रेमियों ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होना चाहिए; क्योंकि साहित्य-सम्मेलन का एक मुख्य अंग है। हिन्दी की प्राचीन पत्रिकाएँ, सिक्के शिलालेख, स्वर्गीय साहित्यसम्राटों के चित्र, हस्तलिपियां, इत्यादि वस्तुएं जिन महाशयों के द्वारा प्रदर्शित सकेंगी उनको बड़ा पुण्य होगा। इस विषय में जिन महाशयों कोई विशेष जिज्ञासा हो, उनको साहित्यविभाग के उपर्युक्त महाशय को, इन्दौर के पते पर, पत्र लिख कर पूछ लेना चाहिए। जान कर हमारे पाठकों को अत्यन्त हर्ष होगा कि इस वर्ष अध्यक्ष पद पर महात्मा गान्धी ही विराजमान होंगे। राष्ट्रीय भाषा हिन्दी यह बड़ा भारी सौभाग्य है कि उसको भारतमाता का एक अद्वितीय सत्याग्रही सपूत नेता मिल गया है। सम्मेलन के विषय में कुछ नवीन विचार हम अगले अंक में प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे

सेवाधर्म ।

राजर्षि भर्तृहरि ने कहा है कि, "सेवाधर्म परम गहन है, योगियों को भी अगम्य है;" तथापि मनस्वी कार्यार्थी सुखदुःखों की भी परवा न करते हुए उस गहन और अगम्य सेवाधर्म को भी, अपने उद्योग, प्रबल और कार्यकारिणी शक्ति से, सरल और गम्य बनाता है। भारत के समान, सब प्रकार से रोगी राष्ट्र को सेवाधर्म से बनी मनस्वी कार्यार्थियों की कितनी आवश्यकता है, सो बतलाने की आवश्यकता नहीं है। सन्तोष की बात है कि अब भारत के नवयुवक राष्ट्रीय सेवा के लिए, अपनी जान की भी परवा न करते हुए, आगे बढ़ रहे हैं। 'जगत्' के किसी पिछले अंक में "अजमेर-सेवा-समिति" का सचित्र वृत्तान्त हम दे चुके हैं। प्लेग के दिनों में किस स्वार्थ और साहस के साथ उक्त समिति के सेवकों ने सेवाधर्म का निर्वाह किया, सो हमारे पाठकों को मालूम है। यहां तक कि उक्त सेवा कार्य करते हुए दो स्वयंसेवक प्लेग से आक्रान्त होकर स्वर्गवासी भी हुए। अहा! उनकी जननी को धन्य है कि जिन्होंने सेवाधर्म का पालन करते हुए अपने प्राण तक दे दिये! अब इन्दौर में भी बा० द्वारकाप्रसाद जी "सेवक" के उत्साह से ऐसी ही एक समिति कार्य कर रही है। परमात्मा हमारे इन नौनिहालों का सदुद्देश्य पूर्ण करे।

आसाम में हिन्दी-प्रचार ।

हिन्दी-संसार में यह समाचार बड़ी खुशी के साथ सुना जायगा कि गत कार्तिक शुक्ल ४ रविवार को आसाम प्रदेश के सिलहट शहर में "आसाम-हिन्दी-प्रचारिणी सभा" का संगठन होगया। चिकनागोल-टी-स्टेट के मैनेजिंग-प्रोप्राइटर श्रीयुत बाबू मुरलीधर तूण्णीवाल के उद्योग से शहर के प्रधान २ मारवाड़ी, संयुक्त प्रदेशवासी एवं कुछ गढ़वाली और बिहारी सज्जन भी सभा में उपस्थित थे। ला० लालचन्द्र-प्रतापचन्द्र-फर्म के प्रधानाध्यक्ष श्रीयुत किस्तूरचन्द्र जी ललवानी के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही एवं पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। सुरंगमल लाभचन्द्र-फर्म के प्रधानाध्यक्ष श्रीयुत जसकरण जी सियानी सभापति, पं० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी उपसभापति, पं० रामेश्वर वाजपेयी मंत्री, श्री० देवीसहाय त्रिवेदी स० मंत्री, पं० कृष्णकुमार वाजपेयी और श्री० छगनलाल मोहता कोषाध्यक्ष, पं० चूड़ामणि शर्मा और बाबू आनन्दलाल निरीक्षक, श्री० बाबू मूलचन्द्र ललवानी, बाबू मूलचन्द्र मुद्रा, बाबू लोनकरन बिलोणी, पं० शिवकण्ठ वाजपेयी व पं० शिवकण्ठ शुक्ल प्रधान सहायक, पं० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी उपदेशक और प्रचारक एवं श्रीयुत बाबू मुरलीधर तूण्णीवाल जी व्यवस्थापक चुने गये। उसी दिन सभा की ओर से "जगदीश-पुस्तकालय" भी खुल गया। गीतारहस्य और भारत-भारती से लेकर हिन्दी ग्र० र० कार्यालय बम्बई और मनोरंजन ग्र० माला काशी की सब पुस्तकें एवं अन्यान्य बहुतसी उपयोगी पुस्तकें हिन्दी-बँगला लगभग २००) की और भारतवर्ष, प्रवासी, सरस्वती, हिन्दी-चित्रमयजगत्, आदि मासिक पत्रों को भी श्रीयुत बाबू मुरलीधर तूण्णीवाल ने पुस्तकालय को दान कर के अपने हिन्दी-प्रेम और विशालहृदय का परिचय दिया। और भी कुछ उदार-हृदय सज्जनों ने धन एवं पुस्तकों तथा मासिक-साप्ताहिक पत्रों द्वारा पुस्तकालय की सहायता करने का वचन दिया। १५०) रु० की एककालीन एवं कुछ मासिक सहायता भी उसी दिन मिल गयी। साहित्यप्रेमी सज्जन, पुस्तकों और पत्रों को भेजने की उदारता दिखलावें।

—निवेदक मंत्री।